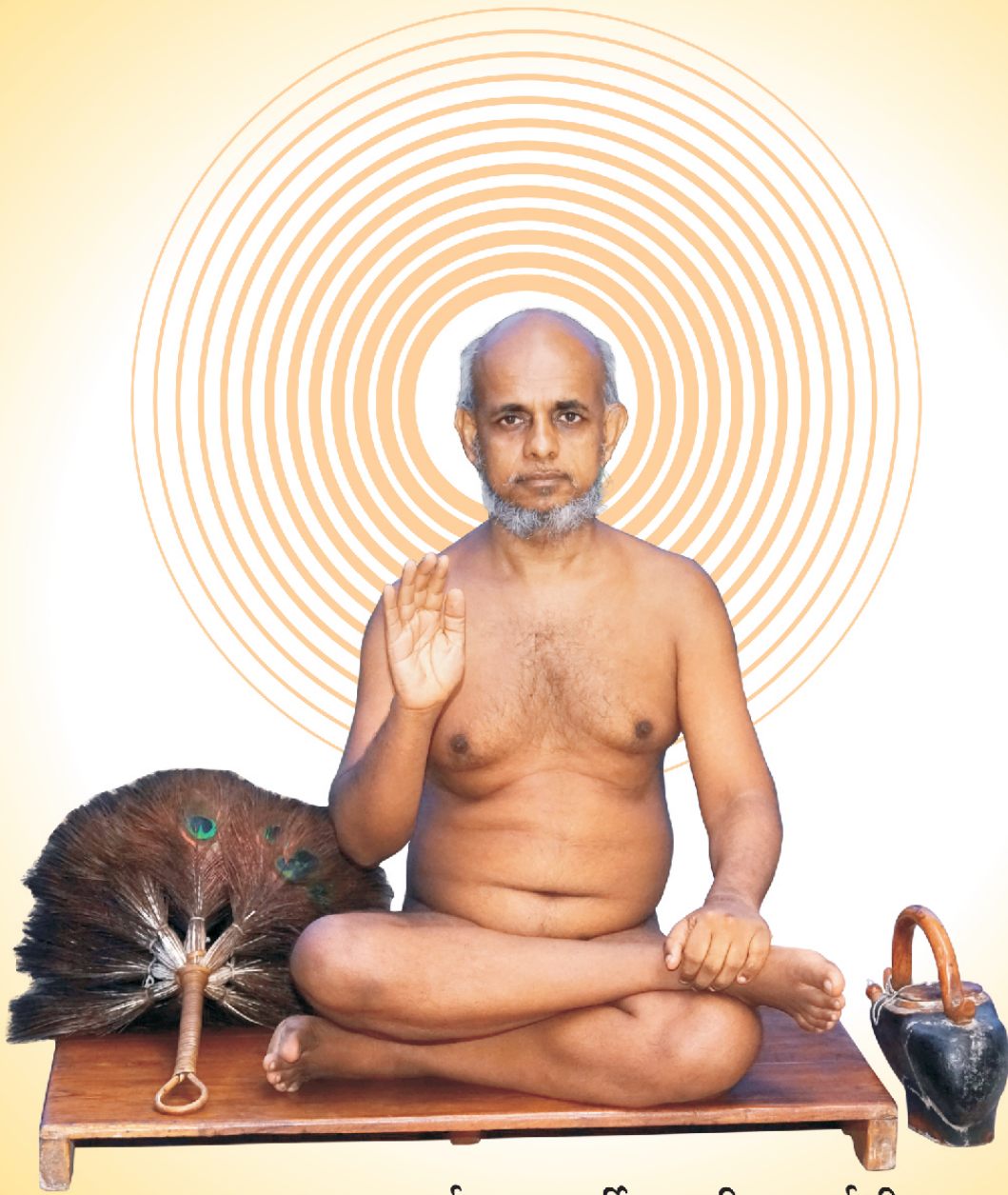




परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री
सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर
सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित
जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19-03-1971

* मुनिदीक्षा-11-05-1989

* आचार्यपद- 20-06-2004

पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मत्तिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)



तिलोयपण्णत्ती

भाग 3



ग्रन्थकर्त्ता

आचार्यश्री यतिवृषभ जी महाराज

टीकाकर्त्री

आर्यिकाश्री विशुद्धमती माताजी

सम्पादक

डॉक्टर चेतनप्रकाश पाटनी

प्रकाशक

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

(परम्परानायक)



परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

(द्वितीय पट्टाधीश)



परम पूज्य तीर्थमक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

卐 श्री बीतरागाय नमः 卐

श्रीयतिवृषभाचार्यविरचिता

तिलोयपण्णत्ती

[त्रिलोकप्रज्ञप्तिः]

[जैन लोकज्ञानसिद्धान्त विषयक प्राचीन प्राकृत ग्रंथ]
प्राचीन कल्लड प्रतियों के आधार पर प्रथम बार सम्पादित

[तृतीय खण्ड]

卐

टीकाकर्त्री :

ग्रार्थिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी

卐

सम्पादक :

डा० चेतनप्रकाश पाटनी

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

卐

प्रकाशक :

प्रकाशन विभाग, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

पुरीवाक्

श्रीयतिवृषभाचार्य विरचित 'तिलोपपणत्ती' करणानुयोग का श्रेष्ठतम ग्रन्थ है । इसके आधार पर हरिवंशपुराण, जम्बूद्वीप प्रजप्ति तथा त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों की रचना हुई है । श्री १०५ आर्यिका विशुद्धमती माताजी ने अत्यधिक परिश्रम कर इस ग्रन्थराज की हिन्दी टीका लिखी है । गणित के दुरूह स्थलों को सुगम रीति से स्पष्ट किया है । इसके प्रथम और द्वितीय भाग क्रमशः सन् १९८४ और सन् १९८६ में प्रकाशित होकर विद्वानों के हाथ में पहुँच चुके हैं प्रसन्नता है कि विद्वज्जगत् में इनका अच्छा आदर हुआ है । यह तीसरा और अन्तिम भाग है इसमें पाँच से नी तक महाधिकार हैं । प्रशस्ति में माताजी ने इस टीका के लिखने का उपक्रम किस प्रकार हुआ, यह सब निर्दिष्ट किया है । माताजी की तपस्या और सतत जारी रहने वाली श्रुताराधना का ही यह फल है कि उनका क्षयोपशम निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है ।

त्रिलोकसार, सिद्धान्तसारदीपक और तिलोपपणत्ती के प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग के अतिरिक्त अन्य लघुकाय पुस्तिकाएँ भी माताजी की लेखनी से लिखी गई हैं । रुग्ण शरीर और आर्यिका की कठिन चर्या का निर्वाह करते हुए भी इतनी श्रुत सेवा इनसे हो रही है, यह जैन जगत के लिये गौरव की बात है । आशा है कि माताजी के द्वारा इसी प्रकार की श्रुत सेवा होती रहेगी । मुझे इसी बात की प्रसन्नता है कि प्रारम्भिक अवस्था में माताजी ने (सुमित्राबाई के रूप में) मेरे पास जो कुछ अल्प अध्ययन किया था, उसे उन्होंने अपनी प्रतिभा से विशालतम रूप दिया है ।

विनीत :

१५-३-१९८८

पन्नालाल साहित्याचार्य



अपनी बात

सफलता एक सुन्दर फूल है, जिसे प्रत्येक प्राणी प्राप्त करना चाहता है, पर सफलता मिलती उसी को है, जो सफलता पाने के लिये दृढ़ संकल्पी हो। प्रत्येक बड़ी से बड़ी सफलता की कुञ्जी स्वयं का दृढ़ संकल्प, विश्वास, लगन और धैर्य है।

इस दुःषम पंचम काल में भौतिकवाद की भयावह रात्रि के सघनतम अन्धकार से प्रायः सारा जगत आच्छादित हो रहा है। इसमें सफलता प्राप्त कर लेना सहज बात नहीं है, कोई बिरली आत्माएँ ही जिनमें दृढ़ आत्म विश्वास, लगन और धैर्य हो वे ही स्वयं मार्ग प्राप्त कर पाती हैं और अन्य को भी कल्याण का मार्ग दे पाती हैं।

विशेष बुद्धि को धारण करने वाली और दृढ़ आत्मविश्वास रखने वाली परम पूज्य विदुषी रत्न अभीक्षण ज्ञानोपयोगी आशिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी (सुशिष्या स्व० आचार्य चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज के द्वितीय पट्टाधीश परम पूज्य कर्मठ तपस्वी चारित्र चूड़ामणि स्व० आचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज) उन्हीं में से एक हैं। आपके विषय में कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

सं० २०३८ मागशीर्ष कृष्ण ११ रविवार दि० २२-११-१९८१ के शुभ मुहूर्त में परम पूज्य माताजी ने परम पूज्य स्व० आचार्यकल्प १०८ श्री सन्मति सागरजी महाराज (टोडावाले) से मंगल आशीर्वाद प्राप्तकर इस महान् ग्रन्थराज 'तिलोप-पण्णत्ती' की टीका करने का कार्य प्रारम्भ किया था और सं० २०४० आषाढ़ शुक्ल ३ रविवार दि० १-७-१९८४ को अर्थात् ३११ वर्ष में इसी भीण्डर नगरी में प्रथम खण्ड आपके हाथों में पहुँचा था।

परम पूज्य माताजी प्रायः अस्वस्थ रहती हैं तथापि अभीक्षण ज्ञानोपयोग प्रवृत्ति से कभी विरक्त नहीं होतीं। हमेशा परिश्रम करते रहना ही आपकी विशेषता है और इसी का फल है कि जो ३००६ माथाओं वाला बृहद् काय द्वितीय खण्ड करीब १११ वर्ष की अल्पावधि में ही दि० २३-४-१९८६ को सलूमबर नगरी में आपके हाथों में पहुँच सका।

और अब तीसरा खण्ड भी इसी भीण्डर नगरी में करीब १११ वर्ष में ही आपके हाथों में पहुँच रहा है।

श्री भारतवर्षीय दि० जैन महासभा के प्रकाशन विभाग से इस ग्रन्थराज का प्रकाशन हुआ है।

श्री दानवीर सेठ श्री निर्मलकुमारजी सेठी 'सेठी ट्रस्ट' लखनऊ ने अत्यधिक आर्थिक सहयोग दिया है, आपका यह अनुदान अनुकरणीय और सराहनीय है तथा परम्परा से विशिष्ट ज्ञानका कारण है।

तिलोपपण्णत्ती ग्रन्थराज का प्रथम प्रकाशन 'जीवराज ग्रन्थमाला' सोलापूर से हुआ था। ग्रन्थमाला के इस उपकार को दृष्टि में रखते हुए वहाँ तीनों खण्डों की ५०-५० प्रतियाँ भेंट स्वरूप भेजी गई हैं।

इसके अतिरिक्त और भी महानुभावों ने ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ जो वित्तीय सहयोग दिया है, उस सबका विवरण दूसरे खण्ड में दे दिया था, उसके बाद जो सहयोग प्राप्त हुआ है वह इसप्रकार है :—

- ११०११) श्रीमती गुलाबबाई मातेश्वरी श्री महावीरजी अजितकुमारजी मीडा,
उदयपुर (राज०)
- ७६०३) श्री दि० जैन समाज कूसा, उदयपुर (राज०)
हस्ते ४१०१) सौ० शांतिबाई ध० प० श्री नीरजजी जैन, सतना (म० प्र०)
,, २२०१) सौ० प्रमिलादेवी ध० प० श्री शाहू पूतमचन्दजी भावनगर (म० प्र०)
,, १३०१) सौ० सत्यभामा ध० प० श्री सज्जनकुमारजी हंगावत,
उदयपुर (राज०)
- ७००१) श्रीमान् संतोषलालजी मेहता, उदयपुर (राज०) आपने ति० प० ग्रन्थ के तृतीय खण्ड की ५० प्रतियाँ श्री 'जीवराज ग्रन्थमाला' सोलापूर को भेंट स्वरूप प्रदान की हैं।
- ६०००) श्री दिगम्बर जैन चैत्यालय, कूच बिहार (वेस्ट बंगाल)
हस्ते—श्री गणेशमलजी पांड्या (सरावगी)।
- ५५११) श्री दि० जैन समाज, सलुम्बर (राज०)
हस्ते श्री केवलदासजी घनजी भाई, भावनगर (गुजरात)
- ३००१) श्री मगनीलालजी पन्नालालजी भोरावत, चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर।
- २५००) श्री मदनलालजी चांदवाड़, रामगंज-मंडी (राज०)
- २५००) श्री नाथूलालजी भानजा, निवाई (राज०)
- २०००) श्री नेमीचन्दजी गंगवाल, निवाई (राज०)
- १००१) श्री हरिनारायणजी जैन, निवाई (राज०)
- १०००) श्री कस्तूरचन्दजी नागवा, उदयपुर (राज०)

उपर्युक्त सभी दातारों को बहुत-बहुत धन्यवाद।

पूज्य माताजी स्वस्थ और दीर्घजीवी रहकर जिनवाणी माता की सेवा में संलग्न रहें ताकि मुझे भी सरस्वती माता की सेवा का सुअवसर प्राप्त होता रहे; यही मेरी हार्दिक भावना है।

वित्तित :

ब० कजोड़ीमल कामदार (संघस्था)

प्रकाशकीय

महासभा से प्रकाशित गौरवग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ती' की हिन्दी टीका का यह तृतीय खण्ड आपके हाथों में अर्पित करते हुए मैं विशेष आभूति व्यक्त करता हूँ। प्रथम खण्ड का प्रकाशन जुलाई १९८४ में और द्वितीय खण्ड का प्रकाशन अप्रैल १९८६ में हुआ था। दोनों खण्डों की सर्वत्र अनुशंसा की गई। पहले खण्ड में तीन अधिकार थे, चौथे अधिकार का द्वितीय खण्ड था, शेष पाँच महाधिकार (पाँच से नौ) इस तृतीयखण्ड में सम्मिलित हैं।

महासभा का प्रकाशन विभाग परम पूज्य आर्यिका श्री विष्णुद्वन्द्वती माताजी के चरणों में शतशः नमोस्तु निवेदन करता है जिनके प्रौढ़ ज्ञान का सुफल हमें ग्रन्थराज तिलोयपण्णत्ती की टीका के रूप में उपलब्ध हुआ है। शारीरिक अस्वस्थता की चिन्ता न करते हुए पूज्य आर्यिका श्री ने निरन्तर ६-७ वर्ष तक घोर श्रम करते हुए इस कठिन गणितीय ग्रन्थ की तीन बृहद्काय जिल्दों में जो सरल हिन्दी टीका निर्मित की है, उनका यह महत्त्वपूर्ण श्रवण निरस्मरणीय रहेगा। हम आशा करते हैं कि पूज्य आर्यिका श्री माँ जिनबाणी की सेवा में संलग्न रहकर हमें इसी प्रकार उपकृत करती रहेंगी। हम उनके स्वस्थ दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

ग्रन्थ के सम्पादक डॉ० चेतनप्रकाशजी पाटनो, जोधपुर के हम विशेष आभारी हैं जिन्होंने विविध कार्यों की व्यस्तता के बावजूद पर्याप्त समय निकाल कर इस बृहद् कार्य को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी प्रतिभा और क्षमता निरन्तर विकसित होती रहे, यही कामना है।

पुरोधाक् लेखक पं० पद्मलालजी साहित्याचार्य, सागर और गणित के विद्वान् प्रो० लक्ष्मीचन्दजी जैन, जबलपुर के भी हम आभारी हैं जिनका इस ग्रन्थराजके प्रकाशनमें पर्याप्त सहयोग रहा है।

'तिलोयपण्णत्ती' के तीनों खण्डों के प्रकाशन में माननीय श्रीमान् निर्मलकुमारजी सेठी अध्यक्ष, महासभा से हमें विपुल अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है। 'सेठी ट्रस्ट' से प्राप्त धनराशि के लिए हम उनके अतिशय अनुगृहीत हैं। अन्य दातारों से प्राप्त धनराशि के लिए हम उनका सादर आभार मानते हैं और कामना करते हैं कि जिनबाणी के प्रचार प्रसार में उनकी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग इसी प्रकार होता रहे।

माताजी के संघस्थ श्री कजोड़ीमलजी कामदार का इस ग्रंथ प्रकाशन में अविस्मरणीय सहयोग रहा है। इस बृहद् अनुष्ठान में आने वाली अड़चनों को आपने अपने अनुभव एवं सूझबूझ से अविलम्ब दूर किया है। एतदर्थ हम आपके आभारी हैं।

इस गणितीय जटिल ग्रंथ को बड़ी धीरता से कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज ने मुद्रित किया है। ग्रन्थ के तीनों खण्डों के सुरुचिपूर्ण एवं शुद्ध प्रकाशन के लिए हम श्री पद्मलालजी बंब एवं प्रेस कर्मचारियों को हार्दिक साधुवाद देते हैं।

आशा है, स्वाध्यायीजन महासभा के इस गरिमापूर्ण प्रकाशन से विशेष लाभान्वित होंगे।

इति शुभम् !

महावीर जयन्ती

३१-३-८८

राजकुमार सेठी
मंत्री, प्रकाशन विभाग
श्री भा० दि० जैन महासभा

महाधिकार	मुद्रित प्रति की गाथा संख्या	कल्लड़ प्रति से अधिक प्राप्त गाथा संख्या	गद्य के अक्षरों की गाथा संख्या	कुल योग
प्रथम महाधिकार	२८३	३	९१	३७७
द्वितीय "	३६७	४	१२	३८३
तृतीय "	२४२	१२	१२	२६६
चतुर्थ "	२९५१	५५	१०७	३११३
पंचम "	३२१	२	७४८	१०७१
षष्ठ "	१०३	४	६	१०९
सप्तम "	६१९	५	९९	७२३
अष्टम "	७०३	२३	२९	७५५
नवम "	७७	५	३	८५
	५६६६	१०६	११०७	६८८२

आचार्य श्री की प्रतिज्ञानुसार (८०००-६८८२) १११८ गाथाएँ कम हैं, किन्तु यदि अंक-संरुष्टियों के अंकों के अक्षर बनाकर गिने जावें तो कुल गाथाएँ ८००० ही हो जावेंगी । गाथाओं के इस प्रमाण से प्रक्षिप्त गाथाओं की भ्रान्ति का निराकरण हो जाता है ।

कल्लड़ प्रति से प्राप्त नवीन गाथाओं का सामान्य परिचय—

५वाँ महाधिकार— गाथा १७८ है, जो भगवान के जन्म के समय चारों दिशाओं को निर्मल करने वाली चार दिक्कन्याओं के नाम दर्शाती है । गाथा १८७ है, जो गोपुर प्रासादों की सत्रह भूमियों को प्रदर्शित करती है ।

७वाँ महाधिकार—गाथा २४२ है, यह सूर्य की १८४ वीथियाँ प्राप्त करने का नियम दर्शाती है । गाथा २७७ है, जो केतुदेव के कार्य (सूर्य ग्रहण को) प्रदर्शित करती है । गाथा ५०८ है, जो एक मुहूर्त में नक्षत्र के १८३५ गगनखण्डों पर गमन और उसी एक मुहूर्त में चन्द्र द्वारा १७६८ ग० ख० पर गमन का विधान दर्शाती है । गाथा ५३५ है, जो सूर्य के अग्रणों में चतुर्थ और पंचम आवृत्ति

को कहकर अपूर्ण विषय की पूर्ति करती है । गाथा ५६३ है जो प्रथम पथ स्थित सूर्य के बाह्य भाग में एवं शेष अन्य मार्गों में सूर्य किरणों के गमन का प्रमाण कहकर छूटे हुए विषय की पूर्ति करती है ।

दशौ महाधिकार—गाथा ३०५ में इंद्रादि की देवियों को कहने की प्रतिज्ञा की थी उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वाली गाथा ३०६ है । गा० ३२१ लोकपाल की देवियों को कहकर छूटे हुए विषय को पूर्ण करती है । गा० ३६६ गोपुरद्वारों के अधूरे प्रमाण को पूर्ण करती है । ५५६ से ५६२ तक की ४ गाथाएँ देवों के आहार काल के अपूर्ण विषय को पूर्ण करती हैं । गा० ५६३-५६४ देवों के उच्छ्वास काल के विषय का प्रतिपादन करती हैं । गा० ५६५-५६६ पाठान्तर से देवों के शरीर की अवगाहना का प्रमाण कहती हैं ५६८ से ५७८ तक ११ गाथाएँ देवायु के बन्धक परिणामों को कहकर विषय की पूर्ति करती हैं । इस प्रकार इस अधिकार में २३ गाथाएँ विशेष प्राप्त हुई हैं ।

दशौ महाधिकार—१८ से २१ (४) गाथाएँ सिद्ध परमेष्ठी के सुखों का कथन करके अपूर्ण विषय को पूर्ण करती हैं । गा० ८० ग्रन्थान्त भंगलाचरण को पूर्ण एवं स्पष्ट करती है ।

इसप्रकार इस तृतीय खण्ड में कलब प्रति से (२ + ० + ५ + २३ + ५ =) ३५ गाथाएँ विशेष प्राप्त हुई हैं जो पूरे हुए, अनुपलब्ध विषय का विन्दन करती हैं ।

विचारणीय स्थल

तिलोपपण्णत्ती प्रथम खण्ड : प्रथम महाधिकार

पृष्ठ २३-२४ पर दी हुई गाथा १०७ का अर्थ इस प्रकार है—

गाथार्थ—अंगुल तीन प्रकार का है—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल । परिभाषा से प्राप्त अंगुल उत्सेध सूच्यंगुल कहलाता है ।

विशेषार्थ—अवसन्नासत्र स्कन्ध से प्रारम्भ कर ८ जो का जो अंगुल बनता है वह उत्सेध-सूच्यंगुल है, इसके वर्ग को उत्सेधप्रतरांगुल और इसीके घनको उत्सेधघनांगुल कहते हैं । इसीप्रकार सर्वत्र जानना । यथा—

उत्सेधसूच्यंगुल	उत्सेधप्रतरांगुल	उत्सेधघनांगुल
प्रमाणसूच्यंगुल	प्रमाणप्रतरांगुल	प्रमाणघनांगुल
आत्मसूच्यंगुल	आत्मप्रतरांगुल	आत्मघनांगुल

(प्रमाण-अम्बूद्वीपपण्णत्ती १३/२३-२४, पृष्ठ २३७)

जिन-जिन वस्तुओं के माप में इन भिन्न-भिन्न अंगुलियों का प्रयोग करना है उनका निर्देश आचार्य ने इसी अधिकार की गाथा ११० से ११३ तक किया है। इस निर्देश के अनुसार जिस वस्तु के माप का कथन हो उसे उसी प्रकार के अंगुल से माप लेना चाहिये। जिस प्रकार १० पैसे, १० चवन्नी और १० रुपयों में १० का गुणा करने पर क्रमशः १०० पैसे, १०० चवन्नी और १०० रुपये आवेंगे, उसीप्रकार ३ उत्सेध यो०, ३ प्रमाण यो० और ३ आत्म योजन के कोस बनाने के लिये ४ से गुणित करने पर क्रमशः ३ उत्सेध कोस, ३ प्रमाण कोस और ३ आत्म कोस प्राप्त होंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि लघु योजन और महायोजन के मध्य जो अनुपात होगा वही अनुपात यहां उत्सेध कोस और प्रमाण कोस के बीच होगा। वही अनुपात उत्सेधांगुल और प्रमाणांगुल के बीच होगा।

आचार्यों ने भी इसीप्रकार के माप दिये हैं। यथा—

ति० प० खण्ड १, अधिकार २ रा, पृ० २५२ गा० ३१६ 'उच्छेह जोयणाणि सत्त'
 " " " ३ " ७ वां, पृ० २९२ " २०१ 'चत्तारि पमाण अंगुलाणि'
 " " " ३ " ७ वां, पृ० ३१२ " २७३ 'चत्तारि पमाण अंगुलाणि'

धवल ४/४० घरम पंक्ति उत्सेधघनांगुल।

धवल ४/४१ पंक्ति १० प्रमाणघनांगुल।

धवल ४/३४-३५ प्रमाणघनांगुल।

" ४/३४ मूल एवं टीका उत्सेधयोजन, प्रमाणयोजन इत्यादि।

प्रयास करने पर भी यह माप सम्बन्धी विषय पहले बुद्धिगत नहीं हुआ था, इसलिये ति० प० के दूसरे खण्ड में आद्यमिताक्षर पृ० १२ पर विचारणीय स्थल में प्रथम स्थल पर इसी विषय का उल्लेख किया था। दो वर्ष हो गये, कहीं से भी कोई समाधान नहीं हुआ। वर्तमान भीष्म-निवास में पं० जवाहरलालजी सिद्धान्त शास्त्री के माध्यम से विषय बुद्धिगत हुआ। अतः गाथा १०७ के अर्थ की शुद्धि हेतु और जिज्ञासुजनों की तृप्ति हेतु यह स्पष्टीकरण दिया जा रहा है।

ति० प० द्वितीय खण्ड : चतुर्थ अधिकार

✽ गाथा १६०४, १६०५ में कहा गया है कि 'ये तीर्थंकर जिनेन्द्र तृतीय भव में तीनों लोकों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले तीर्थंकर नामकर्म को बाधते हैं'। इस कथन का यह फलितार्थ है कि वे आने वाले दुःषम-सुषम काल में जब तीर्थंकर होंगे उसको आदि करके पूर्व के तृतीय भव में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लेंगे अर्थात् पचकल्याणक वाले ही होंगे। इन (गाथा १६०५-१६०७ में कहे हुए) २४ महापुरुषों में से राजा श्रेणिक को छोड़कर यदि अन्य को इसी भव में तीर्थंकर प्रकृति का बंधक मानते हैं तो सिद्धांत से विरोध आता है, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध अन्तः कोटाकोटि

सागर से अधिक नहीं होता और वह प्रकृति कुछ अन्तर्मुहूर्त आठ वर्ष कम दो पूर्व कोटि + ३३ सागर से अधिक सत्ता में मौजूद नहीं रह सकती । दुषम-सुषम काल का प्रमाण ४२ हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर है और इस काल में जब ३ वर्ष ८३ माह अवशेष रहेंगे तब (सात्यकि पुत्र का जीव) २४ वें अनन्तवीर्य तीर्थकर भोक्ष जावेंगे । यह काल अनेक करोड़ सागर प्रमाण है और इतने काल तक तीर्थकर प्रकृति बंधक जीव संसार में नहीं रह सकता ।

ति० प० तृतीयखण्ड : पंचम से नवम महाधिकार

इस खण्ड सम्बन्धी पाँचों अधिकारों के कतिपय स्थलों एवं विषयों का समाधान बुद्धिगत नहीं हुआ, जो गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा विचारणीय है—

पंचम-महाधिकार—* गाथा ७ में २५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पत्न्य के रोमों प्रमाण द्वीप-सागर का और गाथा २७ में ६४ कम २३ उद्धार सागर के रोमों प्रमाण द्वीप-सागर का प्रमाण कहा गया है । गाथा १३० के कथनानुसार २५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पत्न्य बराबर ही २३ उद्धार सागर है । जब गाथा २७ में ६४ कम किये हैं तब गाथा ७ में ६४ हीन क्यों नहीं कहे गये ?

सप्तम महाधिकार—* गाथा ६ में ज्योतिषी देवों के अगम्य क्षेत्र का प्रमाण योजनों में कहा गया है किन्तु इस प्रमाण की प्राप्ति परिधि $\times$ व्यास का चतुर्थांश $\times$ ऊँचाई के परस्पर गुणन से होती है अतः घन योजन ही हैं मात्र योजन नहीं ।

* बातवलय से ज्योतिषी देवों के अन्तराल का प्रमाण प्राप्त करने हेतु गाथा ७ की मूल संदृष्टि में इच्छा राशि १९०० और लब्ध राशि १०८४ कही गई है किन्तु १९०० इच्छा राशि के माध्यम से १०८४ योजन प्राप्त नहीं होते । यदि शनि ग्रह की ३ योजन ऊँचाई छोड़कर अर्थात् (१९००-३) १८९७ योजन इच्छा राशि मानकर गणित किया जाता है तो संदृष्टि के अनुसार १०८४ योजन प्रमाण प्राप्त होता है, जो विचारणीय है ।

* गाथा ८, ९ एवं १० का विषय विशेषार्थ में स्पष्ट अवश्य किया है किन्तु आत्म तुष्टि नहीं है अतः पुनः विचारणीय है ।

* गाथा २०२ में राहु का बाहल्य कुछ कम अर्ध योजन कहकर पाठान्तर में वही बाहल्य २५० धनुष है किन्तु केतु का बाहल्य आचार्य स्वयं (गा० २७५ में) २५० धनुष कह रहे हैं जो विचारणीय है । क्योंकि आगम में राहु-केतु दोनों के व्यास आदि का प्रमाण सदृश ही कहा गया है ।

* त्रिलोकसार गा० ३८९-३९१ में कहा गया है कि भरत क्षेत्र का सूर्य जब निषधाचल के ऊपर १४६२१ उ०० यो० आता है तब चक्रवर्ती द्वारा देखा जाता है किन्तु यहाँ गाथा ४३४-४३५ में

कहा गया है कि भरतक्षेत्र का सूर्य जब निषधाचल के ऊपर ५५७४ ३३३ यो० आता है तब चक्रवर्ती द्वारा देखा जाता है। इन दोनों कथनों का समन्वय गाथा ४३५ के विशेषार्थ में किया गया है, फिर भी यह विषय विचारणीय है।

* गाथा ४३७ से प्रारम्भ कर अनेक गाथाओं में कहा गया है कि सूर्य जब भरतक्षेत्र में उदित होता है तब विदेह की क्षेमा आदि नगरियों में कितना दिन अथवा रात्रि रहती है। इस ग्रंथ में यह विषय अपूर्व है अतः विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

* गाथा ८२ में ग्रह-समूह की नगरियों का अवस्थान १२ यो० बाह्य में कहा है। उसी प्रकार गा० ४९१-९२ में जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट नक्षत्रों के एवं अभिजित् नक्षत्र के मण्डल क्षत्रों का प्रमाण क्रमशः ३०।६०।६० और १८ यो० कहा गया है, इस विषय का अन्त गा० ५०७ पर हुआ है। यह विषय बुद्धिगत नहीं हुआ, अतः विशेष विचारणीय है।

* ५२९ से ५३२ तक की ४ गाथाएँ अपने अर्थ को स्पष्ट रूप से कहने में समर्थ नहीं पाई गई अतः इनका प्रतिपाद्य विषय त्रिलोकसार के आधार से पूर्ण करने का प्रयास किया है। ये विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

पृ० ४२२ पर गद्य भाग में चन्द्र-सूर्य दोनों का अन्तराल एक सदृश ४७९१४ १५३ यो० कहा है। जब चन्द्र-सूर्य दोनों का व्यास भिन्न-भिन्न है तब अन्तराल का प्रमाण सदृश कैसे? विशेषार्थ में विषय स्पष्ट करने का प्रयास किया है, फिर भी विचारणीय है।

श्री पं० जवाहरलालजी सिद्धान्त शास्त्री (भीण्डर) ने ज्योतिषी देवों के विषय में कुछ शंकाएँ भेजी थीं। सर्वोपयोगी होने से वह शंका-समाधान यहाँ दिया जा रहा है—

शंका—ज्योतिषी देवों के इन्द्र के परिवार देव कौन-कौन हैं?

समाधान—गाथा ५६-६० में इन्द्र (चन्द्र) के सामानिक, तनुरक्षक, तीनों पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिष (लोकपाल और त्रायस्त्रिंश को छोड़कर) ये आठ प्रकार के परिवार देव कहे हैं।

शंका—ये आठ भेद युक्त परिवार देव केवल इन्द्र के होते हैं या अन्य प्रतीन्द्रादि के भी होते हैं?

समाधान—गाथा ७८ में सूर्य प्रतीन्द्र के (इन्द्रको छोड़कर) सामानिक, तनुरक्षक, तीनों पारिषद, प्रकीर्णक, अनीक आभियोग्य और किल्बिष ये सात प्रकार के परिवार देव कहे गये हैं। गा० ८८ में ग्रहों के, गा० १०७ में नक्षत्रों के और त्रिलोकसार गाथा ३४३ में तारागण के भी आभियोग्य देव कहे गये हैं।

शंका—क्या ग्रह, नक्षत्र और तारागण इन्द्र (चन्द्र) के परिवार देव नहीं हैं ?

समाधान—गा० १२-१३ में ज्योतिषी देवों के इन्द्रों (चन्द्रों) का प्रमाण है । गाथा १४ में प्रतीन्द्रों (सूर्यों) का, गा० १५-२४ तक ग्रहों का, गा० २५ से ३० तक नक्षत्रों का और गा० ३१ से ३५ तक इन्द्रों के परिवार में ताराओं का प्रमाण कहा गया है । इससे सिद्ध होता है कि ग्रह, नक्षत्र और तारागण आठ प्रकार के भेदों से भिन्न परिवार देव हैं ।

आठवीं महाधिकार—* गाथा ८३ में ऋजु विमान की प्रत्येक दिशा में ६२ श्रेणीबद्ध कहे हैं इससे ज्ञात होता है कि सर्वार्थसिद्धि में कोई श्रेणीबद्ध विमान नहीं है किन्तु ति० प० कार भाचार्य स्वयं गाथा ८५ में 'जिन आचार्यों ने ६२ श्रेणी० का निरूपण किया है उनके उपदेशानुसार सर्वार्थसिद्धि के आश्रित भी चारों दिशाओं में एक-एक श्रेणीबद्ध विमान हैं' कहकर तिरेशठ श्रेणीबद्ध विमानों की मान्यता पुष्ट करते हैं, फिर पाठान्तर गाथा ८४ के कथन में और इस कथन में क्या अंतर रहा ? जब गा० ८३ स्वयं की है तब ८५ में 'जिन आचार्यों ने' ऐसा क्यों कहा है ? यह रहस्य समझ में नहीं आया ।

* गाथा १०० में सर्वार्थसिद्धि विमान की पूर्वादि चार दिशाओं में विजयादि चार श्रेणीबद्ध कहे हैं । गाथा १२६ में वही विषय पाठान्तर के रूप में कहा गया है । ऐसा क्यों ?

* यथार्थ में पाठान्तर पद गाथा १२५ के नीचे आना चाहिए था । क्योंकि इसमें दिशाएँ प्रदर्शिता क्रम से न देकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इस रूप से दी गई हैं ।

* गाथा ९९ और १२३ बिलकुल एक सदृश हैं । क्यों ? गाथा १०८ में चण्डविहेसु के स्थान पर चण्ड दिगेसु (चारों दिशाओं में) पाठ अपेक्षित है ।

* गाथा ११५-११६ में कल्पों के बारह और सोलह दोनों प्रमाणों को अन्य-अन्य आचार्यों के उद्धोषित कर दिये गये हैं तब स्वयं ग्रन्थकार को कितने कल्प स्वीकृत हैं ?

* ग्रन्थकार ने गा० १२० में बारह कल्प स्वीकृत कर गा० १२७-१२८ में सोलह कल्प पाठान्तर में कहे हैं ?

* गाथा १३७ से १४६ तक के भाव को समझकर पृ० ४७३ पर बना हुआ ऊर्ध्वलोक का चित्र और मुखपृष्ठ पर बना हुआ तल लोक का चित्र नया बनाया है । इसके पूर्व त्रिलोकसार, सिद्धान्तसार दीपक एवं तिलोपपण्णत्ती के प्रथम और द्वितीय खण्डों की लोकाकृति में सीधमेंशान आदि कल्पों के जो चित्रण दिये हैं वे गलत प्रतीत होते हैं । यह भी विचारणीय है ।

* गाथा १४८ में पुनः सोलह कल्प पाठान्तर में कहे गये हैं ।

* गा० २४६ में आनत आदि चारों इन्द्रों के अनीकों का प्रमाण कहा जाना चाहिए था किंतु आनत-प्राणत इन्द्रों के अनीकों का प्रमाण न कहकर 'आरण-इंदादि-दुमे' द्वारा आरण-अश्रुत इन दो इन्द्रों के अनीकों का ही प्रमाण कहा गया है। क्यों ?

* गा० २१५ में वैमानिक देव सम्बन्धी प्रत्येक इन्द्र के प्रतीन्द्रादि दस प्रकार के परिवार देव कहे हैं और गा० २८६ में प्रतीन्द्र, सामानिक और आयस्विश देवों में से प्रत्येक के दस-दस प्रकार के परिवार देव अपने-अपने इन्द्र सदृश ही कहे हैं ? यह कैसे सम्भव है ?

* गा० २८७ से २९६ तक सभी इन्द्रों के सभी लोकपालों के सामन्त, आभ्यन्तर, माध्यम और बाह्य पारिवर्त, अनीक, आभियोग्य, प्रकीर्णक और कित्त्विक परिवार देवों का प्रमाण कहा गया है।

* इन्द्रों के निवास स्थानों का निर्देश करते हुए गा० ३४१ से ३४८ तक कितने इन्द्रकों एवं श्रेणीबद्धों में से कौन से नम्बर के श्रेणीबद्ध में इन्द्र रहता है यह कहा गया है किन्तु गा० ३४९-३५० में इन्द्रकों तथा श्रेणीबद्धों की कुल संख्या निर्दिष्ट न करके मात्र 'जिणदिष्टु' (जिनेन्द्र द्वारा देखे गये नाम वाले) पद कहकर स्थान बताया गया है।

* गा० ४१० में सुधर्मा सभा की ऊँचाई ३००० कोस कही गई है। जो विचारणीय है क्योंकि अकृत्रिम मापों में ऊँचाई का प्रमाण प्रायः $\frac{\text{लम्बाई} + \text{चौड़ाई}}{२}$ होता है। अर्थात् $\frac{\text{ल० } ४०० + \text{चौ० } २००}{२} = ३००$ कोस होनी चाहिए।

* गा० ५४८ में सान्तव कल्पके अनीक देवों के विरह काल का प्रमाण छूट गया है।

* गा० ५६८, ५७५ और ५७६ का शाङ्ख्य खण्डित होने से इन गायत्रियों का अर्थ विचारणीय है।

* गा० ६२२ से ६३६ अर्थात् १४ गायत्रियों का यथार्थ भाव बुद्धिगत नहीं हुआ।

* गा० ६८१ का विशेषार्थ और नोट विशेष रूप से द्रष्टव्य और विचारणीय हैं।

* गा० ६८२ से ६८५ का विषय भी स्पष्ट रूप से बुद्धिगत नहीं हुआ।

सप्तम महाधिकार—गा० ४ में $\frac{८४०४७४०८१५६२५}{८}$ योजन कहा गया प्रमाण धन योजनों में है किन्तु गायत्रा में केवल योजन कहे गये हैं।

कार्यक्षेत्र—उदयपुर नगर के मध्य सण्डी की नाल स्थित १००८ श्री पार्श्वनाथ दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर में रहकर इस खण्डका अधिकांश भाग लिखा गया था। शेष कार्य १३।२।१९८६ को सलुम्बर में पूर्ण हुआ।

सम्बल—वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, धोरोपसर्ग विजेता, जगत् के निर्व्याज बन्धु १००८ श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर देव की चरण रज एवं हृदयस्थित अनुपम जिनेन्द्रभक्ति, आप्त-उपदिष्ट दिव्य वचनों के प्रति अगाधनिष्ठा और आचार्य कुन्दकुन्द देव की परम्परा में होने वाले २० वीं शताब्दी के आद्यगुरु समाधिसम्राट चारित्र्यकवर्ती बालब्रह्मचारी आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज के प्रथम शिष्य ज्ञान दह्याचारी पट्टाधीशाचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के प्रथमशिष्य बालब्रह्मचारी पट्टाधीशाचार्य वीरसा गुरु १०८ श्री शिवसागरजी महाराज, उनके पट्ट पर आरुढ़ मिथ्यात्वरूपी कदम से निकालकर सम्यक्स्वरूपी स्वच्छ जल में स्नान कराने वाले परमोपकारी बालब्रह्मचारी पट्टाधीशाचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, विद्यारसिक, ज्ञानपिपासु, बालब्रह्मचारी विद्यागुरु पट्टाधीशाचार्य १०८ श्री प्रजितसागरजी महाराज, परम श्रद्धेय अनुभववृद्ध, शिक्षागुरु आचार्य कल्प १०८ श्री वृत्तसागरजी महाराज और ग्रन्थ लेखन के लिए असीम आशीर्वाद प्रदाता १०८ श्री सम्मत्तिसागरजी आदि सभी आचार्य एवं साधु परमेष्ठियों का शुभाशीर्वाद रूप वरद हस्त ही मेरा सबल सम्बल रहा है। क्योंकि जैसे अन्धा व्यक्ति लकड़ी के आधार बिना चल नहीं सकता वैसे ही देव, शास्त्र और गुरु की भक्ति बिना मैं भी यह महान् कार्य नहीं कर सकती थी। ऐसे तारण-तरण देव, शास्त्र गुरु को मेरा हादिक कोटिशः त्रिकाल नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु !! नमोस्तु !!!

सहयोग—सम्पादक श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी सौम्य मुद्रा, सरल हृदय, संयमित जीवन, मधुर किन्तु सुस्पष्ट भाषा भाषी, विद्वान् और समीचीन ज्ञान भण्डार के धनी हैं। आधि और व्याधि तथा व्याधि सहस्र उपाधिरूपी रोग से आप अहर्निश अपना बचाव करते रहते हैं। निर्लोभ वृत्ति आपके जीवन की सबसे महान् विशेषता है। हिन्दी भाषा पर आपका विशिष्ट अधिकार है। आपके द्वारा किये हुए यथोचित संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धनों से ग्रंथ को विशेष सौष्ठव प्राप्त हुआ है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थ आदि को पकड़ने की तत्परता आपको पूर्व-पुण्य योग से सहज ही उपलब्ध है। सम्पादन कार्य के अतिरिक्त भी समय-समय पर आपका बहुत सहयोग प्राप्त होता रहता है।

प्रो० श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन जबलपुर ने पंचम महाधिकार में उन्नीस विकल्पों द्वारा द्वीप-समुद्रों के अल्पबहुत्व सम्बन्धी गणित को एवं तिर्यचों के प्रमाण सम्बन्धी गणित को स्पष्ट कर, गणित की दृष्टि से सम्पूर्ण ग्रंथ का अवलोकन कर तथा गणित सम्बन्धी प्रस्तावना लिखकर सराहनीय सहयोग दिया है।

पूर्वावस्था के विद्यागुरु, सरस्वती की सेवा में अनवरत संलग्न, सरल प्रकृति और सौम्याकृति विद्वन्मित्र, योगि श्री रं० महालालजी साहित्य-विचार-शाला की सत्प्रेरणा से ही यह महान् कार्य सम्पन्न हुआ है ।

उदारमना श्री निर्मलकुमारजी सेठी इस ज्ञानयज्ञ के प्रमुख यजमान हैं । आपने सेठी ट्रस्ट के विशेष द्रव्य से ग्रंथ के तीनों खण्ड भव्यजनों के हाथों में पहुँचाये हैं । आपका यह अनुपम सहयोग अवश्य ही विशुद्धज्ञान में सहयोगी होगा ।

संघस्थ ब्रह्मचारी श्री कजोड़ीमलजी कामदार ने इसके अनुदान की संयोजना आदि में अथक श्रम किया है उनके सहयोग के बिना ग्रंथ प्रकाशन का कार्य इतना शीघ्र होना सम्भव नहीं था ।

प्रेस मालिक श्री पंखूलालजी मदनगंज-किशनगढ़, श्री विमलप्रकाशजी ड्रापटमेन राजमेर, श्री रमेशकुमारजी मेहता उदयपुर एवं श्री दि० जैन समाज का अर्थ आदि का सहयोग प्राप्त होने से ही आज यह तृतीय खण्ड नवीन परिधान में प्रकाशित हो पाया है ।

आशीर्वाद—इस सम्यग्ज्ञान रूपी महायज्ञ में तन, मन एवं धन आदि से जित-जित भव्य जीवों ने जितना जो कुछ भी सहयोग दिया है वे सब परम्पराय शीघ्र ही विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त करें; यही मेरा मंगल आशीर्वाद है ।

मुझे प्राकृत भाषा का किञ्चित् भी ज्ञान नहीं है । बुद्धि क्षय होने से विषयज्ञान भी न्यूनतम है । स्मरणशक्ति और शारीरिक शक्ति भी क्षीण होती जा रही है । इस कारण स्वर, व्यंजन, पद, अर्थ एवं गणितीय अशुद्धियाँ हो जाना स्वाभाविक हैं क्योंकि—‘को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे’ अतः परम पूज्य गुरुजनों से इस अभिनय के लिए प्रायश्चित्त प्रार्थी हूँ । विद्वज्जन ग्रंथ को शुद्ध करके ही अर्थ ग्रहण करें । इत्यलम् !

भद्रं भूयात्—

वि० सं० २०४५

महावीर जयन्ती

—आयिका विशुद्धमतो

दिनांक ३१।३।१९८८

अभिक्षणज्ञानोपयोगी, आर्यमार्ग पोषक

परम पू० १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी

[संक्षिप्त जीवन वृत्त]

● गेहुँआ वर्ण, मझोला कद, अनतिस्थूल शरीर, चौड़ा ललाट, भीतर तक भाँकती सी ऐनक धारण की हुई आँखें, हितमित प्रिय स्पष्ट बोल, संयमित सधी चाल और सोम्य मुखमुद्रा—बस, यही है उनका अंगन्यास ।

नंगे पाँव, लुञ्जितसिर, धवल शाटिका, मयूरपिच्छिका—बस, यही है उनका देव विन्यास ।

विषयाशाविरक्त, ज्ञानध्यान तप जप में सदा निरत, करुणासागर, परदुःख कातर, प्रवचनपटु, निस्पृह, समता-विनय-धैर्य और सहिष्णुता की साकारमूर्ति, भद्रपरिणामी, साहित्य सृजनरत, साधना में वज्र से भी कठोर, वातसल्य में नवनीत से भी मृदु, आगमनिष्ठ, गुरुभक्तिपरायण, प्रभावनाप्रिय—बस, यही है उनका अन्तर आभास ।

जूली और जया, जानकी और जेनुत्रिसा सबके जन्मों का लेखा जोखा नगर पालिकायें रखती हैं पर कुछ ऐसी भी हैं जिनके जन्म का लेखा जोखा राष्ट्र, समाज और जातियों के इतिहास स्नेह और श्रद्धा से अपने अंक में सुरक्षित रखते हैं । वि० सं० १९८६ की चैत्र शुक्ला तृतीया को रीठी (जबलपुर, म० प्र०) में जन्मी वह बाला सुमित्रा भी ऐसी ही रही है—जो आज हैं आर्यिका विशुद्धमती माताजी ।

इस शताब्दी के प्रसिद्ध सन्त पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी के निकट सम्पर्क से संस्कारित धार्मिक गोलापूर्व परिवार में सद्गृहस्थ पिता श्री लक्ष्मणलालजी सिधई एवं माता सौ० मथुराबाई की पाँचवीं सन्तान के रूप में सुमित्राजी का पालन-पोषण हुआ । छूटी में ही दयाधर्म और सदाचार के संस्कार मिले । फिर थोड़ी पाठशाला की शिक्षा, बस; सब कुछ सामान्य विलक्षणता का कहीं कोई चिह्न नहीं । आयु के पन्द्रह वर्ष बीतते-बीतते पास के ही गाँव बाकल में एक घर की बधू बनकर सुमित्राजी ने पिता का घर छोड़ा । इतने सामान्य जीवन को लखकर तब कैसे कोई अनुमान कर लेता कि यह बालिका एक दिन ठोस आगमज्ञान प्राप्त करके स्व-पर कल्याण के पथ पर आरुढ़ हो स्त्री पर्याय का उत्कृष्ट पद प्राप्त कर लेगी ।

सच है, कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। चन्द्रमा एवं सूर्य को राहु और केतु नामक ग्रह विशेष से पीड़ा, सर्प तथा हाथी को भी मनुष्यों के द्वारा बन्धन और विद्वद्व्रजन की दरिद्रता देखकर अनुमान लगाया जाता है कि नियति बलवान है और फिर काल ! काल तो महाक्रूर है ! 'अपने मन कछु और है विधना के कछु और'। दैव दुविपाक से सुमित्राजी के विवाह के कुछ ही समय बाद उन्हें सदा के लिये मातृ-पितृ वियोग हुआ और विवाह के उड़ वर्ष के भीतर ही कन्या जीवन के लिये अभिशाप स्वरूप बंधव्य ने आपको आ घेरा।

अब तो सुमित्राजी के सम्मुख समस्याओं से घिरा सुदीर्घ जीवन था। इष्ट वियोग (पति और माता-पिता) से उत्पन्न हुई असहाय स्थिति बड़ी दारुण थी। किसके सहारे जीवन-यात्रा व्यतीत होगी? किस प्रकार निश्चित जीवन मिल सकेगा? अवशिष्ट दीर्घजीवन का निर्वाह किस विधि होगा? इत्यादि नाना प्रकार की विकल्प लतरियाँ मानस को मथने लगीं। भविष्य प्रकाशविहीन प्रतीत होने लगा। संसार में शीलव्रती स्त्रियाँ धैर्यशालिनी होती हैं, नाना प्रकार की विपत्तियों को वे हँसते-हँसते सहन करती हैं। निर्धनता उन्हें डरा नहीं सकती, रोगशोकादि से वे विचलित नहीं होतीं परन्तु प्रतिवियोगसंदर्भ दारुण दुःख का वे प्रतिकार नहीं कर सकती हैं। यह दुःख उन्हें असह्य हो जाता है। ऐसी दुःख पूर्ण स्थिति में उनके लिये कल्याण का मार्ग दर्शाने वाले विरल ही होते हैं और सम्भवतया ऐसी ही स्थिति के कारण उन्हें 'अबला' भी पुकारा जाता है। परन्तु सुमित्राजी में आत्मबल प्रगट हुआ, उनके अन्तरंग में स्फुरणा हुई कि इस जीव का एक मात्र सहायक या अवलम्बन धर्म ही है। 'धर्मो रक्षति रक्षितः'। अपने विवेक से उन्होंने सारी स्थिति का विश्लेषण किया और 'शिक्षार्जन' कर स्वावलम्बी (अपने पाँवों पर खड़े) होने का संकल्प लिया। भाइयों—श्री नीरजजी और श्री निर्मलजी सतना—के सहयोग से केवल दो माह पढ़ कर प्राइमरी की परीक्षा उत्तीर्ण की। मिडिल का त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम दो वर्ष में पूरा किया और शिक्षकीय प्रशिक्षण प्राप्त कर अध्यापन की अर्हता अर्जित की और अनन्तर सागर के उसी महिलाश्रम में—जिसमें उनकी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ था—अध्यापिका बनकर सुमित्राजी ने स्व + अवलम्बन के अपने संकल्प का एक चरण पूर्ण किया।

सुमित्राजी ने महिलाश्रम (विद्यदाश्रम) का सुचारु रीत्या संचालन करते हुए करीब बारह वर्ष पर्यन्त प्रधानाध्यापिका का गुरुत्तर उत्तरदायित्व भी संभाला। आपके सद्प्रयत्नों से आश्रम में श्री पार्श्वनाथ जैत्यालय की स्थापना हुई। भाषा और व्याकरण का विशेष अध्ययन कर आपने भी 'साहित्यरत्न' और 'विद्यालंकार' की उपाधियाँ अर्जित कीं। विद्वदशिरोमणि डॉ० प० पन्नालालजी साहित्याचार्य का विनीत शिष्यत्व स्वीकार कर आपने 'जैन सिद्धान्त' में प्रवेश किया और धर्मविषय में 'शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण की। अध्यापन और शिक्षार्जन की इस संलग्नता ने सुमित्राजी के जीवन विकास के नये क्षितिजों का उद्घाटन किया। शनैः शनैः उनमें 'ज्ञान का फल' अकूरित होने लगा। एक सुखद संयोग ही समझिये कि सन् १९६२ में परमपूज्य परमश्रद्धेय (स्व०) आचार्य

श्री धर्मसागरजी महाराज का वर्षायोग सागर में स्थापित हुआ । आपकी परम निरालस्युक्ति और शान्त सीम्य स्वभाव से सुमित्राजी अभिभूत हुई । संघस्थ प्रवर वक्ता पूज्य १०८ (स्व०) श्री सम्मति-सागरजी महाराज के मार्मिक उद्बोधनों से आपको असीम बल मिला और आपने स्व-अवलम्बन के अपने संकल्प के अगले चरण की पूर्ति के रूप में चारित्र्य का मार्ग अंगीकार कर सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये ।

विक्रम संवत् २०२१, श्रावण शुक्ला सप्तमी, दि० १४ अगस्त १९६४ के दिन परम पूज्य तपस्वी, अध्यात्मवेत्ता, चारित्र्यशिरोमणि, दिगम्बराचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज के पुनीत कर-कमलों से ब्रह्मचारिणी सुमित्राजी की आर्यिका दीक्षा अतिशय क्षेत्र पपीराजी (म० प्र०) में सम्पन्न हुई । अब से सुमित्राजी 'विशुद्धमती' बनीं । बुन्देलखण्ड में यह दीक्षा काफी वर्षों के अन्तराल से हुई थी अतः महती धर्मप्रभावना का कारण बनी ।

आचार्यश्री के संघ में ध्यान और अध्ययन की विविष्ट परम्पराओं के अनुरूप नवदीक्षित आर्यिकाश्री के नियमित शास्त्राध्ययन का श्रीगणेश हुआ । संघस्थ परम पूज्य आचार्यकल्प श्रुतसागरजी महाराज ने द्रव्यानुयोग और करणानुयोग के ग्रंथों में आर्यिकाश्री का प्रवेश कराया । अभीष्टज्ञानोपयोगी पूज्य अजितसागरजी महाराज (वर्तमान पट्टाधीश आचार्य) ने न्याय साहित्य, धर्म और व्याकरण के ग्रन्थों का अध्ययन कराया । जैन गणित के अभ्यास में और षट्खण्डागम सिद्धान्त के स्वाध्याय में (स्व०) ब्र० पं० रतनचन्द्रजी मुख्तार आपके सहायक बने । सततपरिश्रम, अनवरत अभ्यास और सच्ची लगन के बल पर पूज्य माताजी ने विशिष्ट ज्ञानार्जन कर लिया । यहां इस बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि दीक्षा के प्रारम्भिक वर्षों में आहार में निरन्तर अन्तराय आने के कारण आपका शरीर अत्यन्त अशक्त और शिथिल हो चला था पर शरीर में बलवती आत्मा का निवास था । श्रावकों-बूढ़ों ही नहीं अच्छी आँखों वाले युवकों की लाख सावधानियों के बावजूद भी अन्तराय आहार में बाधा पहुँचाते रहे । आर्यिकाश्री की कड़ी परीक्षा होती रही । असाता के क्षमता के लिये अनेक लोगों ने अनेक उपाय करने के सुझाव दिये, आचार्यश्री ने कर्मोपशमन के लिये वृहत्शांतिमंत्र का जाप करने का संकेत किया पर आर्यिकाश्री का विश्वास रहा है कि समताभाव से कर्मों का फल भोगकर उन्हें निर्जीर्ण करना ही मनुष्य पर्याय की सार्थकता है, ज्ञानकी सार्थकता है । आपकी आत्मा उस विषम परिस्थिति में भी विचलित नहीं हुई, कालान्तर में वह उपद्रव कारण पाकर शमित हो गया । पर इस अवधि में भी उनका अध्ययन सतत जारी रहा । आर्यिकाश्री द्वारा की गई 'त्रिलोकसार' की टीका के प्रकाशन के अवसर पर प० पू० आचार्य १०८ श्री अजितसागरजी महाराज ने आशीर्वाद देते हुए लिखा—

“सागर महिलाश्रम की अध्ययनशीला प्रधानाध्यापिका सुमित्राबाई ने अतिशय क्षेत्र पपीरा में आर्यिका दीक्षा धारण की थी । तत्पश्चात् कई वर्षों तक अन्तरायों के बाहुल्य के कारण शरीर से

अस्वस्थ रहते हुए भी वे धर्मग्रन्थों के पठन में प्रवृत्त रहें। आपने चारों ही अनुयोगों के निम्नलिखित ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया है। करणानुयोग—सिद्धान्तशास्त्र धवल (१६ खण्ड), महाधवल, (दो खण्डों का अध्ययन हो चुका है, तीसरा खण्ड चालू है।) ब्रह्मानुयोग—समयसार, प्रवचनसार, नियम-सार, पंचास्तिकाय, दृष्टोपदेश, समाधिगतक, आत्मानुशासन, बृहद्ब्रह्मसंग्रह। न्यायशास्त्रों में न्यायदीपिका, परीक्षामुख, प्रमेयरत्नमाला। व्याकरण में कातन्त्ररूपमाला, कलापव्याकरण, जैनेन्द्र लघुवृत्ति, शब्दार्णवचन्द्रिका। चरणानुयोग—रत्नकरण्ड आचकाचार, अनगार धर्माभूत, मूलाराधना, आचारसार, उपासकाध्ययन। प्रथमानुयोग—सम्यक्त्व कौमुदी, क्षत्रचूड़ामणि, गद्यचिन्तामणि, जीवन्धरचम्पू, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण आदि।” (त्रिलोकसार : आद्य पृ० ६)

इसप्रकार पूज्य माताजी ने इस अगाध आगम धारिणि का अवगाहन कर अपने ज्ञान को प्रोढ़ बनाया है और उसका फल अब हमें साहित्यसृजन के रूप में उनसे अनवरत प्राप्त हो रहा है। आज तो जैसे ‘जिनदाणी की सेवा’ ही उनका व्रत हो गया है। उन्होंने आचार्यों द्वारा प्रणीत करणानुयोग के विशाल काय प्राकृत संस्कृत ग्रंथों की सचित्र सरल सुबोध भाषा टीकाएँ लिखी हैं, साथ ही सामान्य जनोपयोगी अनेक छोटी बड़ी रचनाओं का भी प्रकाशन किया है। उनके द्वारा प्रणीत साहित्य की सूची इसप्रकार है—

भाषा टीकाएँ—१. श्रीमद् सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार की सचित्र हिन्दी टीका

२. भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक की हिन्दी टीका

३. परम पूज्य यतिवृषभाचार्य विरचित तिलोत्पण्णसी की सचित्र हिन्दी टीका (तीन खण्डों में)

मौलिक रचनाएँ—१. श्रुतनिकुञ्ज के किञ्चित् प्रसून (व्यवहार रत्नत्रय की उपयोगिता)

२. गुरु गौरव ३. आचक सोपान और बारह भावना

४. धर्म प्रवेशिका प्रश्नोत्तर माला ५. धर्मोद्योत प्रश्नोत्तर माला

संकलन—१. शिवसागर स्मारिका २. आत्मप्रसून

सम्पादन—१. समाधिदीपक २. श्रमणचर्या ३. दीपावली पूजन विधि

४. आचक सुमन संक्षेप ५. स्तोत्रसंग्रह ६. आचकसोपान

७. आर्यिका आर्यिका है, आचिका नहीं ८. संस्कार ज्योति ९. छहढाला

अब तक आपने पपीरा, श्रीमहावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़, टोडारायसिंह, भीण्डर, अजमेर, निवाई, किशनगढ़ रेतवाल, सवाईमाधोपुर, सीकर, बूरा, भीलवाड़ा आदि स्थानों पर वर्षा-योग सम्पन्न किये हैं। टोडारायसिंह, उदयपुर, रेतवाल, निवाई में आपके क्रमशः दो, पाँच, दो और तीन बार चातुर्मास हो चुके हैं। सर्वत्र आपने महती धर्मप्रभावना की है और आचकों को सन्मार्ग में

प्रवृत्त किया है। श्री शान्तिवीर गुरुकुल जोबनेर को स्थायित्व प्रदान करने के लिये आपकी प्रेरणा से श्री दि० जैन महावीर चैत्यालय का नवीन निर्माण हुआ है और वेदी प्रतिष्ठा भी हुई है। जनधन एवं आवागमन आदि अन्य साधन विहीन अलयादी ग्राम स्थित जिन मन्दिर का जीर्णोद्धार, नवीन जिनबिम्ब की रचना, नवीन वेदी का निर्माण एवं वेदी प्रतिष्ठा आपके ही सद्प्रयत्नों का फल है। श्री दि० जैन धर्मशाला टोडारायसिंह का नवीनीकरण एवं अशोकनगर, सदयपुर में श्री शिवसागर सरस्वती भवन का निर्माण आपके मार्गदर्शन का ही सुपरिणाम है।

श्री ब्र० सूरजबाई सु० डधोढी (जयपुर) की क्षुल्लिका दीक्षा, ब्र० मनफूलबाई (टोडारायसिंह) को आठवीं प्रतिमा एवं श्री कजोड़ीमलजी कामदार (जोबनेर) को दूसरी प्रतिमा के व्रत आपके करकमलों से प्रदान किये गये हैं।

शास्त्रसमुद्र का आलोड़न करने वाली पूज्य माताजी की आगम में अटूट आस्था है। क्षुद्र भौतिक स्वार्थों के लिये सिद्धान्तों को अपने अनुकूल तोड़मोड़ कर प्रस्तुत करने वाले आपकी दृष्टि में अक्षम्य हैं। सज्जातिस्त्व में आपकी पूर्ण निष्ठा है। बिधवा विवाह और विजातीय विवाह आपकी दृष्टि में कथमपि शास्त्रसम्मत नहीं है। आचार्य सोमदेव की इस उक्ति का आप पूर्ण समर्थन करती हैं—

स्वकीयाः परकीयाः वा मर्यादालोपिनो नराः ।

नहि माननीयं तेषां तपो वा धृतमेव च ॥

अर्थात् स्वजन से या परजन से, तपस्वी हो या विद्वान् हो किन्तु यदि वह मर्यादाओं का लोप करने वाला है तो उसका कहना भी नहीं मानना चाहिये। (धर्मोद्योत प्रश्नोत्तर माला तृतीय संस्करण पृ० ६६ से उद्धृत)

पूज्य माताजी स्पष्ट और निर्भीक धर्मोपदेशिका हैं। जनानुरंजन की क्षुद्रवृत्ति को आप अपने पास फटकने भी नहीं देती। अपनी चर्या में 'वज्रादपि कठोराणि' हैं तो दूसरों को धर्ममार्ग में लगाने के लिये 'मृदुनि कुसुमादपि'। ज्ञानपिपासु माताजी सतत ज्ञानाराधना में संलग्न रहती हैं और तदनुसार आत्म-परिष्कार में आपकी प्रवृत्ति चलती है। सिद्धान्तसारदीपक की प्रस्तावना में परमादरणीय पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य ने लिखा है—“माताजी की अभीक्षण ज्ञानाराधना और उसके फलस्वरूप प्रकट हुए क्षयोपशम के विषय में क्या लिखूँ? अल्पवय में प्राप्त वैधव्य का अपार दुःख सहन करते हुए भी इन्होंने जो वैदुष्य प्राप्त किया है वह साधारण महिला के साहस की बात नहीं है।.....ये सागर के महिलाश्रम में पड़ती थीं। मैं धर्मशास्त्र और संस्कृत का अध्ययन कराने प्रातः काल ५ बजे जाता था। एक दिन गृहप्रबन्धिका ने मुझसे कहा कि रात में निश्चित समय के बाद आश्रम की ओर से मिलने वाली लाइट की सुविधा जब बन्द हो जाती है तब ये खाने के घृत का दीपक जलाकर धूप आप पढ़ती रहती हैं और भोजन घृतहीन कर लेती हैं। गृहप्रबन्धिका के मुख से इनकी अध्ययनशीलता

की प्रशंसा सुन जहाँ प्रसन्नता हुई वहाँ अपार वेदना भी हुई । प्रस्तावना की ये पंक्तियाँ लिखते समय वह प्रकरण स्मृति में आ गया और नेत्र सजल हो गये । लगा, कि जिसकी इतनी अभिवृत्ति है अध्ययन में, वह अवश्य ही होनहार है । त्रिलोकसार की टीका लिखकर प्रस्तावना लेख के लिए जब मेरे पास मुद्रित फर्म भेजे गये तब मुझे लगा कि यह इनके तपश्चरण का ही प्रभाव है कि इनके ज्ञान में आश्चर्यजनक वृद्धि हो रही है । वस्तुतः परमार्थ भी यही है कि द्वादशांग का जितना विस्तार हम सुनते हैं वह सब गुरुमुख से नहीं पढ़ा जा सकता । तपश्चर्या के प्रभाव से स्वयं ही ज्ञानावरण का ऐसा विशाल क्षयोपशम हो जाता है कि जिससे अंगपूर्व का भी विस्तृत ज्ञान अपने आप प्रकट हो जाता है । श्रुतकेवली बनने के लिये निर्ग्रन्थ मुद्रा के साथ विशिष्ट तपश्चरण का होना भी आवश्यक रहता है ।”

दृढ़ संयमी, आर्यमार्ग की कट्टर पोषक, निस्पृह, परम विदुषी, अभीक्षाज्ञानोपयोगी, निर्भीक उपदेशक, आगम मर्मस्पर्शी, मोक्षमार्ग की पथिक, स्वपर उपकारी पूज्य माताजी के चरणों में शत शत नमोस्तु निवेदन करता हूँ और उनके दीर्घ स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ ताकि उनकी स्याद्धाद मयी लेखनी से जिनवाणी का हार्द हमें इसीप्रकार प्राप्त होता रहे और इस विषमकाल में हम भ्रान्त जीवों को सच्चा मार्गदर्शन मिलता रहे ।

पूज्य माताजी के पुनीत चरणों में शत शत वन्दन । इति शुभम्

—चेतनप्रकाश पाटनी

टीकाकर्त्री आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी के विद्यागुरु प० पू० अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी
आचार्यरत्न १०८ श्री अजितसागरजी महाराज का उन्हीं की हस्त-लिपि में

मंगल आशीर्वाद

तिलोद्यपणानि ग्रन्थ गतिवृद्धभाचार्य द्वारा रचित अतिप्रार्थनीय कृति हैं। यह ग्रन्थ
यथा नाम तथा गुणानुसार तीनलोक का अतिविस्तृत एवं गहन वर्णन करता है।
उर्ध्वलोक के वर्णन में कल्पवासी तथा कल्पातीत देवों का विस्तृत विवेचन है।
मध्यलोक के कथन में ज्योतिषी देवों का एवं असंख्यात दीपसमुद्रों का अति
विराट निरूपण है, तथा अधोलोक के विवेचन में भवनवासी, व्यन्तरदेवों का
कथन करते हुए नरकमृदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। अतः इस ग्रन्थ के
अध्ययन अध्यापन से भयप्राणी भयभीत जन सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर
अपने सम्यग्ज्ञान की वृद्धि करते हुए यथाशक्ति अणुवृत्त महावृत्त को धारण
कर सुचारुरीत्या पालन कर स्वर्गमोक्ष के सुख को प्राप्त करें। निरुद्यपति
करणानुयोग की मर्मज्ञा, व्याख्यान कला में अति निपुणा, विषम परिस्थिति
को सम करने में तत्परा एवं अपने सान्निध्य में समागत विद्वानों से
विवादरूपद विषयों पर निर्भयतापूर्वक त्यागोचित एवं आगमसम्मत-वर्धा
कर ठोस निर्णय करती है। अतिनिरुद्य इस भौतिक युग में ऐसी विदुषी आर्यिका
की नितात्त अमरमकता है। यतः प्रण्डितवर्गी श्रेष्ठिबृन्द तथा त्यागिगणों के
द्वारा किये गये आगमनिरुक्त प्रचार प्रसार को निःसंकोच भाव से निरोध
कर सकें। ऐसी विदुषी आर्यिका विशुद्धमती ने पुरातन प्रणियों से मिलान कर
अतिमरिचम पूर्वक इस ग्रन्थ की सरल सुबोध हिन्दी टीका की है, अतः पाठक
गण इसका पठन पाठन चिन्तन एवं मधन कर अपने सम्यग्ज्ञान की वृद्धि करें
तथा जैनशासनकेप्रचार प्रसार में सहायक बन दुर्लभता से प्राप्त नरजन्य को
सफल करें। हिन्दी टीका करीबीरोग रहकर शेष सम्पूर्ण जीवन को धर्म ध्यान से
व्यतीत करते हुए अपने लक्ष्य की सिद्धि में सतत संलग्न रहें ऐसी मेरी मङ्गल
कांक्षा है।
तथा मेरा यही शुभाशीर्वाद है कि निरोध उपयोगी अनुपलब्ध ग्रन्थों का
अनुवाद कर श्रुताराधना करती रहें और आर्यिकजनों की ज्ञानवृद्धि में
सहायिका बनें।

सम्पादकीय

तिलोयपण्णत्ती : तृतीय खण्ड

[५, ६, ७, ८, ९ महाधिकार]

प्राचीन कन्नड़ प्रतियों के आधार पर सम्पादित तिलोयपण्णत्ती का यह तीसरा और अन्तिम खण्ड— जिसमें पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ और नवाँ महाधिकार सम्मिलित है—अपने पाठकों तक पहुँचाते हुए हमें हादिक प्रसन्नता है। आचार्य यतिवृषभ द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ लोकरचना विषयक साहित्य की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें प्रसंगवश, धर्म, संस्कृति व इतिहास-पुराण से सम्बन्धित अनेक विषय गणित हुए हैं। तिलोयपण्णत्ती के इन नौ महाधिकारों का प्रथम प्रकाशन दो खण्डों में सन् १९४३ व सन् १९५१ में हुआ था। सम्पादक थे—प्रो० हीरालाल जैन व प्रो० ए० एन० उपाध्ये। पं० बालचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री ने गाथाओं का मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद किया था। सम्पादक द्वय ने उस समय ज्ञात प्राचीन प्रतियों के आधार पर अपनी प्रखर मेधा से परिश्रमपूर्वक बहुत सुन्दर सम्पादन किया था। प्रस्तुत सम्पादन में हमें उससे पर्याप्त सहायता मिली है, मैं सक्त विद्वज्जनों का हृदय से अनुग्रहीत हूँ।

प्रस्तुत संस्करण की आधार प्रति जैनबद्री से प्राप्त लिप्यन्तरित (कन्नड़ से देवनागरी) प्रति है। अन्य सभी प्रतियों के पाठभेद टिप्पण में दिये गये हैं। सभी प्रतियों का विस्तृत परिचय ति० प० के प्रथमखण्ड की प्रस्तावना में दिया जा चुका है।

सम्पादन की वही विधि अपनाई गई है जो पहले दो खण्डों में अपनाई गई थी अर्थात् उपलब्ध पाठों के आधार पर अर्थ की संगति को देखते हुए शुद्ध पाठ रखना ही बुद्धि का प्रयास रहा है। क्योंकि हिन्दी टीका के विशेषार्थ में तो सही पाठ या संक्षिप्त पाठ की ही संगति बैठती है, विकृत पाठ की नहीं। गणित और विषय के अनुसार जो संक्षिप्तार्थ शुद्ध हैं उन्हें ही मूल में ग्रहण किया गया है, विकृत पाठ टिप्पणी में दिये गये हैं। पाठालोचन और पाठसंशोधन के नियमों के अनुसार ऐसा करना यद्यपि अनूचित है तथापि व्यावहारिक दृष्टि से इसे अतीव उपयोगी जानकर अपनाया गया है। भ्रष्टा शास्त्रियों से एतदर्थ समा चाहता हूँ।

परम पूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी के गत पञ्च-छह वर्षों के कठोर श्रम से इस जटिल गणितीय ग्रन्थ का यह सरल रूप हमें प्राप्त हुआ है। आपने विशेषार्थ में सभी दुरुहताओं को स्पष्ट किया है, गणितीय समस्याओं का हल दिया है, विषय को चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है और अनेकानेक तालिकाओं के माध्यम से विषय का समाहार किया है। कानड़ी प्रतियों के आधार पर सम्पादित इस संस्करण में प्रथम सम्पादित संस्करण से कुछ गाथाओं की वृद्धि हुई है।

इसप्रकार पाँचों महाधिकारों में कुल १८२४ गाथाओं के स्थान पर १८५८ गाथाएँ हो गई हैं ।

जो निम्नतालिका से स्पष्ट है—

महाधिकार	प्रथम सम्पादित संस्करण की कुल गाथाएँ	प्रस्तुत संस्करण में गाथाएँ	नवीन गाथाओं की क्रम संख्या
पंचम महाधिकार	३२१	३२३	१७८, १८७ = (२)
षष्ठ " "	१०९	१०३	× × ×
सप्तम " "	६१६	६२४	२४२, २७७, ३०८, ५३५, ५६३ = (५)
अष्टम " "	७०३	७२६	३०६, ३२१, ३५९ } = (२३) ५५९ से ५७८
नवम " "	७७ + १	८२	१८, १९, २०, २१ = (४)

प्रस्तुत संस्करण में अनेक गाथा के विवरण को निदिष्ट करने के लिये उपशीर्षकों की योजना की गई है और तदनुसार ही विस्तृत विषयानुक्रमणिका तैयार की गई है ।

(क) पंचम महाधिकार : तिर्यंगलोक

इस महाधिकार में कुल ३२३ गाथाएँ हैं, गद्यभाग अधिक है । १६ अन्तराधिकारों के माध्यम से तिर्यंगलोक का विस्तृत वर्णन किया गया है । महाधिकार के प्रारम्भ में चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को नमस्कार किया गया है । अनन्तर स्थावरलोक का प्रमाण बताते हुए कहा गया है कि अहाँ तक आकाश में भ्रम एवं भ्रमं द्रव्य के निमित्त से होने वाली जीव और पुद्गल की गतिस्थिति सम्भव है, उतना सब स्थावर लोक है । उसके मध्य में सुषेच पर्वत के मूल से एक लाख योजन ऊँचा और एक राजू लम्बा चौड़ा तिर्यक् त्रसलोक है जहाँ तिर्यञ्च सब जीव भी पाये जाते हैं ।

तिर्यंगलोक में परस्पर एक दूसरे को चारों ओर से वेष्टित करके स्थित समवृत्त असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । उन सबके मध्य में एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप नामक प्रथम द्वीप है । उसके चारों ओर दो लाख योजन विस्तार से संयुक्त लवण समुद्र है । उसके आगे दूसरा द्वीप और फिर दूसरा समुद्र है यही क्रम अन्त तक है । इन द्वीप समुद्रों का विस्तार उत्तरोत्तर पूर्व पूर्व की अपेक्षा दूना-दूना होता गया है । यहाँ ग्रन्थकार ने प्रादि और अन्त के सोलह-सोलह द्वीप समुद्रों के नाम भी दिये हैं । इनमें से प्रादि के अट्ठाई द्वीप और दो समुद्रों की प्ररूपणा विस्तार से चतुर्थमहाधिकार (ति० प० द्वितीय खण्ड) में की जा चुकी है ।

इस महाधिकार में आठवें, ग्यारहवें और तेरहवें द्वीप का कुछ विशेष वर्णन किया गया है, अन्य द्वीपों में कोई विशेषता न होने से उनका वर्णन नहीं किया गया है । आठवें तन्वीश्वर द्वीप के विन्यास के बाद बताया गया है कि प्रतिवर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में इस द्वीप के बावन जिनालयों की पूजा के लिये भवनवासी आदि चारों प्रकार के देव शुक्लपक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक रहकर बड़ी भक्ति करते हैं । कल्पवासी देव पूर्व दिशा में, भवनवासी वक्षिण में, व्यन्तर पश्चिम में और ज्योतिषी देव उत्तर दिशा में पूर्वाह्नि, मयराह्नि, पूर्वरात्रि व

पश्चिम रात्रि में दो-दो प्रहर तक अभिषेकपूर्वक जलचन्दनादिक घाठ द्रव्यों से पूजन-स्तुति करते हैं। इस पूजन महोत्सव के निमित्त सोधर्मादि इन्द्र अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर हाथ में कुछ फल-पुष्पादि लेकर वहाँ जाते हैं।

अनन्तर कुण्डलवर और सचकवर इन दो द्वीपों का संक्षिप्त वर्णन करके कहा गया है कि जम्बूद्वीप से आगे संख्यात द्वीप समुद्रों के पश्चात् एक दूसरा भी जम्बूद्वीप है। इसमें जो विषयादिक देवों की नगरियाँ स्थित हैं, उनका वहाँ विशेष वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीप और उसके बीचों बीच बलयाकार से स्थित स्वयम्भूत पर्वत का निर्देश कर यह प्रकट किया है कि लवणोद, कालोद और स्वयम्भूरमण ये तीन समुद्र चूँकि कर्मभूमि सम्बन्ध हैं, अतः इनमें तो जलचर जीव पाये जाते हैं किन्तु अन्य किसी समुद्र में नहीं।

अनन्तर १९ पक्षों का उल्लेख करके उनमें द्वीप समुद्रों के विस्तार, खण्ड शलाकाओं, क्षेत्रफल सूचीप्रमाण और आयाम में जो उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है उसका गणित प्रक्रिया के द्वारा बहुत विस्तृत विवेचन किया गया है। पश्चात् ३४ भेदों में विभक्त त्रियंश जीवों की संख्या, आयु, आयुबन्धकभाव, उनकी उत्पत्तियोग्य योनियाँ, सुख-दुःख, गुणस्थान, सम्यक्त्वग्रहण के कारण, गति-आगति आदि का कथन किया गया है। फिर उक्त ३४ प्रकार के त्रियंशों में अल्पबहुत्व और अववाहन विकल्पों का कथन कर पुष्पदन्त जिनेन्द्र को नमस्कार कर इस महाधिकार को समाप्त किया गया है।

(स) षष्ठ महाधिकार : व्यन्तर लोक

कुल १०३ गाथाओं के इस अधिकार में १७ अन्तराधिकारों के द्वारा व्यन्तर देशों का निवास क्षेत्र, उनके भेद, चित्त, कुलभेद, नाम, दक्षिण-उत्तर इन्द्र, आयु, आहार, उच्छ्वास, अवधिज्ञान, शक्ति, उत्सेध, संख्या, जन्म-मरण, आयुबन्धकभाव, सम्यक्त्वग्रहण विधि और गुणस्थानादि विकल्पों की प्ररूपणा की गई है। इसमें कतिपय विशेष बातें ही उल्लिखित हुई हैं, शेष प्ररूपणा तृतीय महाधिकार में वर्णित भवनवासी देवों के समान कह दी गई है। प्रारम्भिक मंगलाचरण में शीतलनाथ जिनेन्द्र को और अन्त में क्षेत्रांशजिनेन्द्र को नमस्कार किया गया है।

(ग) सप्तम महाधिकार : ज्योतिर्लोक

इस महाधिकार में कुल ६२४ गाथाएँ हैं और १७ अन्तराधिकार हैं। ज्योतिषी देवों का निवास क्षेत्र, उनके भेद, संख्या, विन्यास, परिमाण, संचार-चर ज्योतिषियों की गति, अथवा ज्योतिषियों का स्वरूप, आयु, आहार, उच्छ्वास, उत्सेध, अवधिज्ञान, शक्ति, एक समय में जीवों की उत्पत्ति व मरण, आयुबन्धक भाव, सम्यक्त्वग्रहण के कारण और गुणस्थानादिक वर्णन अधिकारों के माध्यम से विस्तृत प्ररूपणा की गई है। प्रारम्भ में श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र को नमस्कार किया है और अन्त में विमलनाथ भगवान को।

निवास क्षेत्र के अन्तर्गत बतलाया गया है कि एक राजू सम्बे चौड़े और ११० योजन मोटे क्षेत्र में ज्योतिषी देवों का निवास है। चित्रा पृथिवी से ७९० योजन ऊपर आकाश में तारागण, इनसे १० योजन ऊपर सूर्य, उससे ८० योजन ऊपर चन्द्र, उससे ४ योजन ऊपर नक्षत्र, उनसे ४ योजन ऊपर बुध, उससे ३ योजन ऊपर शुक्र,

उससे ३ योजन ऊपर गुरु, उससे ३ योजन ऊपर मंगल और उससे ३ योजन ऊपर जाकर शनि के विमान हैं । ये विमान ऊर्ध्वमुख अर्धगोलक के आकार हैं । ये सब देव इनमें सपरिवार आनन्द से रहते हैं ।

इन देवों में से चन्द्र को इंद्र और सूर्य को प्रतीन्द्र माना गया है । चन्द्र का चार क्षेत्र जम्बूद्वीप में १८० योजन और लवणसमुद्र में ३३० १/२ यो० है । इस चार क्षेत्र में चन्द्र की अपने मण्डल प्रमाण ११ १/२ यो० विस्तार वाली १५ गलिर्मा हैं । जम्बूद्वीप में दो चन्द्र हैं । चन्द्र विमानों से ४ प्रमाणागुल (८३ ३/४ हाथ) नीचे राहु विमान के अवजवण्ड है । ये अरिष्टशस्त्रमय विमान काले रंग के हैं । इनकी गति दिन राहु और पर्वराहु के भेद से दो प्रकार है । जिस मार्ग में चन्द्र परिपूर्ण दिखता है, वह दिन पूर्णिमा नाम से प्रसिद्ध है । राहु के द्वारा चन्द्रमण्डल की कलाओं को पाच्छादित कर लेने पर जिस मार्ग में चन्द्र की एक कला ही अवशिष्ट रहती है, वह दिन भ्रमावस्था कहा जाता है ।

जम्बूद्वीप में सूर्य भी दो हैं । इनकी संचारभूमि ५१० १/२ योजन है । इसमें सूर्यबिम्ब के समान विस्तृत और इससे आधे बाहुल्य वाली १८४ बीधियाँ हैं । सूर्य के प्रथमादि पथों में स्थित रहने पर दिन और रात्रि का प्रमाण दर्शाया गया है, इसके आगे कितनी धूप और कितना अँधेरा रहता है, यह विस्तार से बतलाया है । इसी प्रकार भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में सूर्य के उदयकाल में कहीं कितना दिन और रात्रि होती है, यह भी निर्दिष्ट किया गया है ।

अनन्तर ८८ ग्रहों की संचारभूमि व बीधियों का निर्देश मात्र किया गया है । विशेष वर्णन न करने का कारण तद्विषयक उपदेश का नष्ट हो जाना बतलाया गया है । इसके बाद २८ नक्षत्रों की प्ररूपणा की गई है । फिर ज्योतिषी देवों की संख्या, आहार, उच्छ्वास और उत्सेध आदि कहकर इस महाधिकार की समाप्ति की गई है ।

(घ) अष्टम महाधिकार : सुरलोक

इस महाधिकार में ७२६ गाथाएँ हैं । वैमानिक देवों का निवास क्षेत्र, विन्यास, भेद, नाम, सीमा, विमान संख्या, इंद्रविभूति, आयु, जन्म-मरण अन्तर, आहार, उच्छ्वास, उत्सेध, आयुष्यकभाव, लौकान्तिक देवों का स्वरूप, गुणस्थानादिक, सम्भवत्वग्रहण के कारण, आगमन, अवधिज्ञान, देवों की संख्या, शक्ति और योनि शीर्षक इक्कीस अन्तराधिकारों के द्वारा वैमानिक देवों की विस्तार से प्ररूपणा की है ।

तिलोपपण्णसीकार के समस्त बारह और सोलह कल्पों विषयक भी पर्याप्त ससंभेद रहा है । ग्रन्थकर्ता ने दोनों मान्यताओं का उल्लेख किया है । गाथा ५५२ त्रिलोकसहस्र ग्रन्थ (५२६) में ज्यों की त्यों मिलती है । अधिकार के आरम्भ में भगवान् अनन्तनाथ को और अंत में भगवान् धर्मनाथ को नमस्कार किया गया है ।

(ङ) नवम महाधिकार : सिद्धलोक

इस महाधिकार में कुल ८२ गाथाएँ हैं । सिद्धों का क्षेत्र, उनकी संख्या, अवगाहना, सोम्य और सिद्धत्व के हेतु भूत माय-नामके पाँच अन्तराधिकार हैं । इस अधिकार की बहुत सी गाथाएँ समयसार, प्रवचनसार और

पंचास्तिकाय में दृष्टिगोचर होती हैं। अविकार के प्रारम्भ में ज्ञान्ति जिनेन्द्र को नमस्कार किया गया है और अंत में श्री कुण्डुनाथ भगवान, अरुनाथ, महिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, भमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी को नमस्कार किया गया है। फिर एक गाथा में सिद्ध, सूरिसमूह और साधुसंघ के जयवंत रहने की कामना की गई है। पुनः एक गाथा में भारत क्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार किया गया है। फिर पंचपरमेष्ठी को नमन किया है। अन्त में तिलोपपण्णसी ग्रन्थ का प्रमाण आठ हजार श्लोक बताया गया है। अन्तर्गत ग्रन्थकर्ता ने अपनी विनम्रता व्यक्त करते हुए कहा है कि “प्रवचनभक्ति से प्रेरित होकर मैंने मार्गप्रभावना के लिये इस श्रेष्ठ ग्रन्थ को कहा है। बहुश्रुत के धारक आचार्य इसे शुद्ध कर लें।”

प्रस्तुत खण्ड के करणसूत्र, प्रयुक्त संकेत, पाठान्तर, चित्र और तालिका भावि का विवरण इसप्रकार है—

करणसूत्र

गाथा	अधि०/गाथा संख्या	गाथा	अधि०/गाथा संख्या
अहवा आदिम मज्झिम	५।२४५	लवणूणद्वन्द्व	५।२६३
अहवा तिगुणिय मज्झिम	५।२४६	लवणूणं द्वन्द्व	५।२४४
तिगुणियत्तासं परिणी	५।२४७	लवणविहीणं वासे	७।४२४
बाहिर सूई वग्गो	५।२६	गच्छं चएण गुणिदं	८।१६०
लवणविहीणं द्वन्द्व	५।२६८		

प्रस्तुत संस्करण में प्रयुक्त महत्वपूर्ण संकेत

—	== श्रेणी	६==प्रसंख्यात लोक का चिह्न पृ. १५०	दं	==दण्ड
=	== प्रतर	७==संख्यात बहुभाग पृ. १५०	से	==सेव
≡	== त्रिलोक	८==संख्यात एक भाग पृ. १५०	ह	==हस्त
१६	== सम्पूर्ण जीवराशि		घं	==अंगुल
१६ स	== सम्पूर्ण पुद्गल (की परमाणु) राशि	प==पत्योपम	घ	==अमुष
१६ स ख	== सम्पूर्ण काल (की समय) राशि	सा==सागरोपम	ह	==हस्तक
१६ स ख ख	== सम्पूर्ण आकाश (की प्रदेश) राशि	सू==सूच्यंगुल	सेढी	==श्रेणीबद्ध
७	== संख्यात	प्र==प्रतरांगुल	प्र	==प्रकीर्णक
रि	== असंख्यात	घ==अनांगुल	मु	==मुहूर्त
असं	== असंख्यात	ज. श्रे.==जगच्छ्रेणी	छे	==अध्यांछेद
यो	== योजन	लोक प==लोकप्रतर	दि	==दिन
जो	== योजन	भू==भूमि	मा	==माह
रु	== रज्जु	को==कोस		

पाठान्तर

गाथा	अधि०/गाथा सं०	गाथा	अधि०/गाथा सं०
ते चउ चउ कोणेसुं	३।६६	खं णह णहट्ट-दुग इणि	दा३८६
गंदीसर विविसासुं	५।८२	गंदीसं कोदीको	दा३९०
तग्गिरि वरस्स होंति	५।१२८	सोहम्मदि चउक्के	दा४४४
लोयविणिच्चय कत्ता	५।१२९	इंदाणं चिण्हाणि	दा४५३
एक्केक्का जिण कूडा	५।१४०	सूवर हरिणो महिसा	दा४५४
दिस विदिसं तम्भागे	५।१६६	तेत्तीस उवहि उवमा	दा५१४
लोयविणिच्चयकत्ता	५।१६७	पल्लः सत्तेवकारस	दा५३२
तक्कूडम्भंतरए, चत्तारि	५।१७९	कप्पं पडि पंचादिसु	दा५३३
अहुवा रुंदपमाणं	६।१०	पलिदीवमाणि पंचय	दा५३४
ओइग्गण णयदीभं	७।११५	आरणवुग परिशंतं	दा५३५
पण्णासाहिय कुसया	७।२०३	इय जम्मण मरणाणं	दा५५३
उहुणामे सेहियमा	दा८४	दुसुदुसु चउसु दुसु सेसे	दा६६६
वारस कप्पा केई	दा११३	लोयविभागाहरिया	दा६५८
सब्बदु सिद्धि णामे	दा१२६	पुब्बत्तर दिग्भाए	दा६५९
सोहम्मो ईसाणो	दा१२७	वक्खिण विसाए अरुणा	दा६६०
सदरसहस्साराणद	दा१२०	उत्तर विसाए रिट्ठा	दा६६१
जे सोलस कप्पाणि	दा१४८	पत्तेक्कं सारस्सद	दा६६२
जे सोलस कप्पाहं	दा१७८	सोहम्मिदो णियमा	दा७२२
अहुवा आणव जुगळे	दा१८५	लोयविणिच्चय मंथे	९।१०
सब्बाणि अणीयाणि	दा२७०	पण्णासुत्तर ति सया	९।११
बसहाणीयादीणं पुह पुह	दा२७१	तणुवाड पवण भल्ले	९।१२
एवं सत्तक्किहाणं सत्ताणीयाण	दा२७२	तणुवादस्स य बहल्ले	९।१३
छवजुगल सेसएसुं	दा३५३		

चित्र विवरण

क्र० सं०	विषय	अधि०/गाथा सं०	पृष्ठ सं०
१	नन्दीश्वर द्वीप के आसन जिनालय	५।१२-८२	२३
२	कुण्डलश्वरद्वीप, पर्वत, कूट, स्वामी	५।११७-१२७	३३
३	रुक्मिणी पर्वत, कूट, नाम, देवियाँ	५।१४१-१६६	४०

क्रम सं०	विषय	अधि०/पाया सं०	पृष्ठ सं०
४	चन्द्र विमान	७।३६-४०	२५७
५	सूर्य विमान	७।६७-६८	२६०
६	दिन रात्रिका प्रमाण	७।२७८-२९२	३१७
७	प्रथम पथ में स्थित सूर्य के भारत क्षेत्र में उदित होने पर क्षेमा भाषि १६ क्षेत्रों में रात्रि दिन का विभाग	७।४३७-४४२	३६५
८	चन्द्रगलियों में तक्षत्रों का संचार	७।४६१-४६४	३७१
९	आदिश्य इन्द्रक के श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक	८।१२३-१२४	४७०
१०	ऊर्ध्वलोक	८।१३१-१३५	४७३
११	सौम्यादिक कल्पों के आश्रित श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक विमान	८।१३७-१३८	४७४
१२	ग्रहवैयकों के श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक विमान	८।१६६-१७६	४८५
१३	प्रथ नामक इन्द्रक के श्रेणीबद्ध विमान में ईशान नामक इन्द्र की स्थिति	८।३४२	५२६
१४	लोकान्तिक लोक	८।६३७-६५७	६०२
१५	ईषत्प्राग्भार (दवी) पृथ्वी का अवस्थान एवं स्वरूप	८।६७५-६८१	६०७

तालिका विवरण

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ सं०	अधि०/पाया सं०
१	चारस्यावर जीवों में सामान्य, बाहर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त रात्रियों का प्रमाण	१५०	५। गद्य सप्त
२	सामान्य द्वीन्द्रियादि जीवों का प्रमाण	१६०	५। गद्य खण्ड
३	पर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवों का प्रमाण	१६३	५। " "
४	अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवों का प्रमाण	१६४	५। " "
५	समस्त प्रकार के स्यावर एवं जल जीवों की जघन्य उत्कृष्ट अवगाहना का क्रम	२१०-१३	५। " "
६	व्यन्तरदेवों का वर्णन	२२८	६। २५-५६
७	व्यन्तरदेवों की सप्तप्रतीकों का प्रमाण	२३१	६। ७१-७५
८	चन्द्रादि ग्रहों के अवस्थान, विस्तार, बाह्य एवं बाह्यदेवों का प्रमाण	२६८	७। ३६-११३
९	चन्द्र के अन्तर प्रमाण भाषि का विवरण	२६१	७। १८३-२००
१०	दोनों सूर्यों के प्रथम पथ में स्थित रहते ताप और तमक्षेत्र का प्रमाण	३४५	७। २९३-१७९

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ सं०	अधि०/गाथा सं०
११	नक्षत्रों के नाम, ताराओं की संख्या एवं आकार	३७३	७। ४६५-४६६
१२	ताराओं का प्रमाण	३७५	७। ४७०-४७१
१३	जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्रकुलाचलादि के दोनों चन्द्र सम्बन्धी ताराओं की संख्या	३८४	७। ४६६
१४	पाँच वर्षों में दक्षिणायन-उत्तरायण सूर्य की पाँच-पाँच आवृत्तियाँ	३९७	७। ५३३-५४०
१५	विष्णुओं के पर्व, तिथि और नक्षत्र	४०१	७। ५४१-५५३
१६	मनुष्य लोक के ज्योतिषी देवों का एकत्र प्रमाण	४१८	७। ६१४
१७	तृतीय समुद्र से अन्तिम समुद्र पर्यन्त की गुण्यमान राशियाँ	४३०	७। गद्य खण्ड
१८	इन्द्रक विमानों का विस्तार	४६०	८। १२-८१
१९	ऋतु इन्द्रक विमान की श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या	४६४	८। ८७-९७
२०	इवर्गों के विमानों की संख्या	४७८	८। १४६-१५४
२१	कल्पों की सब विमान संख्या	४८६	८। १७७
२२	विमानों का कुल प्रमाण एवं विमानतल का वाह्यत्व	४९३	८। १४६-२०२
२३	इन्द्रों के परिवार देव	५०३	८। २१४-२४६
२४	लोकपालों के सामन्तों का और दोनों के पारिवर्द्ध देवों का प्रमाण	५१३	८। २८७-२९२
२५	इन्द्रों की देवियों का प्रमाण	५१६	८। ३०६-३१६
२६	वैमानिक इन्द्रों के परिवार देवों की देवियों का प्रमाण	५२३	८। ३२०-३३२
२७	कल्पों की इन्द्रक एवं एक विमानत श्रेणीबद्धों की संख्या	५२८	८। ३५२
२८	इन्द्रों के रात्रागण, प्राकार एवं जोपुरखार	५३३	८। ३५८-३६६
२९	देवियों और बल्लमाओं के भवनों का विवेचन	५४५	८। ४१६-४२२
३०	सौषमैन्द्र आदि के यान विमान व मुकुट चिह्न	५५३	८। ४४१-४५४
३१	कल्पों में इन्द्रों के परिवार देवों की आयु	५६८	८। ५२३
३२	इन्द्रों की देवियों की आयु	५७२	८। ५२८-५३५
३३	देव-देवियों के जन्म-मरण का अन्तर (विरह) काल	५८१	८। ५४५-५५३

आभार

'तिलोपपण्णत्ती' जैसे बृहद्काय ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना में हमें अनेक महानुभावों का प्रचुर प्रोत्साहन और सौहार्दपूर्ण सहयोग मिला है। आज तृतीय और अन्तिम खण्ड के प्रकाशनावसर पर उन सबका कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण करना मन्त्र-मोक्षक वाञ्छित है।

सर्व प्रथम मैं परम पूज्य (स्वर्गीय) आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज के पावन चरणों में अपनी विनीत श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ जिनके आशीर्वादन सदैव मेरे प्रेरणास्रोत रहे हैं। आज इस तीसरे खण्ड के प्रकाशनावसर पर वे हमारे बीच नहीं हैं परन्तु उनकी सौम्यछवि सदैव आशीर्वाद की मुद्रा में मेरा सम्बल रही है। सब पुनीत आत्मा को शत-शत नमन।

परम पूज्य आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज का मैं प्रतिशयकृतज्ञ हूँ जिनका वास्तव्यपरिपूर्ण वरदहस्त सदैव मुझ पर रहता है। आपका असीम अनुग्रह ही मेरे द्वारा सम्पन्न होने वाले इन साहित्यिक कार्यों की मूल प्रेरणा है। आर्यमार्ग एवं श्रुत के संरक्षण की आपको बड़ी चिन्ता है। ८२-८३ वर्ष की अवस्था में भी आप निर्दोष मुनिचर्या का पालन करते हुए इन कार्यों के लिए एक युवा की भाँति सक्रिय और तत्पर हैं। मैं इस निस्पृह आत्मा के पुनीत चरणों में अपना नमोस्तु निवेदन करता हुआ इनके दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।

अभिक्षणज्ञानोपयोगी स्वाध्यायशील परमपूज्य चतुर्थ पट्टाधीश आचार्य पूज्य अजितसागरजी महाराज के चरण कमलों में सादर नमन करता हुआ उनके स्वस्थ दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

ग्रन्थ की टीकाकर्त्री पूज्य आर्यिका १०५ श्री विभुद्धमती माताजी का मैं चिरकृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझपर अनुकम्पा कर इस ग्रन्थ के सम्पादन का गुह्यतर भार मुझे सौंपा। तीनों खण्डों के माध्यम से ग्रन्थ का जो नवीनरूप बन पड़ा है वह सब पूज्य माताजी की साधना, कष्ट सहिष्णुता, असीम धैर्य, त्याग-तप और निष्ठा का ही सुपरिणाम है। ग्रन्थ को बोधगम्य बनाने के लिए माताजी ने जितना श्रम किया है उसे शब्दों में आँका नहीं जा सकता। यद्यपि आपका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता तथापि आपने कार्य में अनवरत संलग्न रह कर प्रस्तुत टीका को चिन्तों, तालिकाओं और विशेषार्थ से समलंकित कर सुकोष बनाया है। मैं यही कामना करता हूँ कि पूज्य माताजी का रत्नत्रय कुशल रहे और स्वास्थ्य भी अनुकूल बने ताकि आपकी यह श्रुत सेवा अबाधगति से चलती रहे। मैं आर्यिका श्री के चरणों में शतशः वन्दामि निवेदन करता हूँ।

बयोबृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अख्येय पं० पद्मलालजी साहित्याचार्य, सागर और प्रोफेसर लक्ष्मीचन्दजी जैन, जबलपुर का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रथम दो खण्डों की भाँति इस खण्ड के लिए भी पुरोवाक् और गणित विषयक लेख लिखकर भिजवाया है। 'जम्बूद्वीप के क्षेत्रों और पर्वतों के क्षेत्रफलों की गणना' शीर्षक एक विशेष लेख बिड़ला इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालोजी, मेसरा (रांची) के प्रोफेसर डा० राधाचरण गुप्त ने भिजवाया है। इस लेख में प्राचीन विधि से क्षेत्रफल निकाले गये हैं जो पूर्णतया ग्रन्थ (द्वितीयखण्डः चतुर्थ अधिकार) के मानों से मिल जाते हैं। मैं प्रोफेसर गुप्त का हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत खण्ड में मुद्रित चित्रों की रचना के लिए श्री विमलप्रकाशजी जैन अजमेर और श्री रमेशचन्द्रजी मेहता, उदयपुर धन्यवाद के पात्र हैं ।

पूज्य माताजी की संवत्स्र आर्थिका प्रशान्तमतीजी और आर्थिका पवित्रमतीजी को सविनय नमन करता हूँ जिनका प्रोत्साहन ग्रन्थ को शीघ्र प्रकाशित करने में सहयोगी रहा है ।

आदरणीय ब्र० काजीहीमलजी कामदार पूज्य माताजी के संघ में ही रहते हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ के बीजारोपण से लेकर सीन खण्डों के रूप में इसके प्रकाशन तक आने वाली अनेक छोटी बड़ी बाधाओं का आपने तत्परता से परिहार किया है । एतदर्थ मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ ।

श्री पखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रकाशन विभाग को इस गरिमापूर्ण प्रकाशन के लिए बधाई देता हूँ । सेठी ट्रस्ट के निरामक एवं वर्तमान महासभाध्यक्ष आदरणीय श्री निर्मलकुमारजी सेठी का आभार किन शब्दों में व्यक्त करूँ । उन्हीं की प्रेरणा से यह ग्रन्थ इस रूप में आपके सम्मुख आ पाया है । आपने विपुल अर्थ सहयोग प्रदान कर एतत्सम्बन्धी विन्ताओं से हमें सदैव मुक्त रखा है, एतदर्थ मैं आपका व प्रम्य सहयोगी दातारों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और इस श्रुत सेवा के लिए उन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूँ ।

ग्रन्थ के तीनों खण्डों का शुद्ध और सुन्दर मुद्रण कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज-किशनगढ़ में हुआ है । मैं प्रेस मालिक श्रीमान् पॉन्चूलाखजी जैन के सहयोग का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता । आज कोई बीस वर्ष से मेरा जो सम्बन्ध इस प्रेस से चला आ रहा है उसका मुख्य कारण श्री पॉन्चूलाखजी का सौजन्य और मेरे प्रति सद्भाव ही है । इसी कारण मेरे जोषपुर आ जाने पर भी इस प्रेस से सम्बन्ध बिच्छेद की मैंने कभी कल्पना भी नहीं की । मुझे आशा है, जब तक उनका प्रेस से सम्बन्ध है और मेरा साहित्यिक कार्य से, तब तक हमारा सहयोग अस्खलित बना रहेगा । मैं सुवचिपूर्ण मुद्रण के लिए प्रेस के सभी कर्मचारियों को धन्यवाद देता हूँ ।

वस्तुतः अपने वर्तमानरूप में 'तिलोपपणत्ती' के प्रस्तुत संस्करण की जो कुछ उपलब्धि है वह सब इन्हीं धर्मशील धर्मनिष्ठ पुण्यारमाओं की है । मैं हृदय से सबका अनुगृहीत हूँ ।

सुधीगुणग्राही विद्वानों से सम्पादन प्रकाशन में रही श्रुतों के लिए सविनय अमायाचना करता हूँ ।

महावीर जयन्ती ३१-३-८८

श्री पौष्पनाथ जैन मन्दिर

शास्त्रीनगर जोषपुर

विनीत :

डा० चेतनप्रकाश पाटनी

सम्पादक

तिलोयपण्णत्ती के पाँचवें और सातवें महाधिकार का गणित

[लेखक : प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन, सूर्या एम्पोरियम, ६७७ सराफा जबलपुर (म० प्र०)]

पाँचवाँ महाधिकार

गाथा ५/३३

इस गाथामें अंतिम आठ द्वीप-समुद्रों के विस्तार भी गुणोत्तर श्रेणि में दिये गये हैं।

अंतिम स्वयंभूवर समुद्र का विस्तार—

$$(\text{जगश्रेणी} \div २८) + ७५००० \text{ योजन}$$

इसके पश्चात् १ राजु चौड़े तथा १००००० योजन बाह्यवाले मध्यलोक तल पर पूर्व पश्चिम में

$$“\{ १ \text{ राजु} - [(३ \text{ राजु} + ७५००० \text{ योजन}) + (३ \text{ राजु} + ३७५०० \text{ योजन})$$

$$+ (३ \text{ राजु} + १८७५० \text{ योजन}) + \dots + (५०००० \text{ योजन})] \}”$$

जगह बचती है। यद्यपि १ राजु में से एक अनन्त श्रेणी भी घटाई जाये तब भी यह लम्बाई ३ राजु से कुछ कम योजन बच रहती है। यह गुणोत्तर श्रेणी है।

गाथा ५/३४

यदि जम्बूद्वीप का विष्कम्भ D_1 है। मानलो $2n$ वें समुद्र का विस्तार D_{2n} मान लिया जाय और $2n + 1$ वें द्वीप का विस्तार D_{2n+1} मान लिया जाय तब निम्नलिखित सूत्रों द्वारा परिभाषा प्रदर्शित की जा सकेगी।

$$D_a = D_{2n+1} \times 2 - D_1 \times 3 = \text{उक्त द्वीप की आदि सूची}$$

$$D_m = D_{2n+1} \times 3 - D_1 \times 3 = \text{उक्त द्वीप की मध्यम सूची}$$

$$D_b = D_{2n+1} \times 4 - D_1 \times 3 = \text{उक्त द्वीप की बाह्य सूची}$$

द्वीपों के लिये इस सूत्र का परिवर्तित रूप होगा।

गाथा ५/३५ n वें द्वीप या समुद्र की परिधि

$$= \frac{D_1 \sqrt{10}}{D_1} \times [n \text{ वें द्वीप या समुद्र की सूची}]$$

गाथा ५/३६ यदि n वें द्वीप या समुद्र की बाहरी सूची D_{nb} तथा आन्तर सूची (अथवा आदि सूची) D_{na} प्ररूपित की जावे तो

$$\frac{(D_{nb})^2 - (D_{na})^2}{(D_1)^2} = \text{उक्त द्वीप या समुद्र के क्षेत्र में समा जाने वाले जम्बूद्वीप क्षेत्रों की संख्या होती है।}$$

यहाँ D_1 जम्बूद्वीपका विष्कम्भ है और $D_{na} = D_{(n-1)b}$ है क्योंकि किसी भी द्वीप या समुद्र की बाह्य सूची, अगुवानी समुद्र या द्वीप की आदि या आन्तर सूची होती है।

गाथा ५/२४२ यहाँ स्थूल क्षेत्रफल निकालने के लिये ग्रंथकार ने ११ का स्थूल मान ३ मान लिया है और नवीन सूत्र दिया है।

$$n \text{ वें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल} = [D_n - D_1] (3)^2 \{D_n\}$$

यहाँ $[D_n - D_1] (3)^2$ को आयाम कहा गया है।

D_n को n वें द्वीप या समुद्र का विष्कम्भ लिया है।

स्मरण रहे कि $D_n = 2^{(n-1)} D_1$ लिखा जा सकता है।

पुनः,

n वें बलयाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिए सूत्र यह है—

बादर क्षेत्रफल

$$= D_n [D_{na} + D_{nm} + D_{nb}]$$

यहाँ

$$D_{na} = [2 \{2^{n-2} + 2^{n-3} + \dots + 2\} + 1] D_1$$

$$D_{nb} = [2 \{2^{n-1} + 2^{n-2} + 2^{n-3} + \dots + 2^2 + 2\} + 1] D_1$$

$$D_{nm} = \frac{D_{nb} + D_{na}}{2}$$

इनका मान रखने पर

$$\begin{aligned} \text{बादर क्षेत्रफल} &= 2^{n-1} D_1 [D_{na} + \frac{1}{2} (D_{na} + D_{nb}) + D_{nb}] \\ &= 3^2 [2^{n-1}] (D_1)^2 [2^{n-1} - 1] \end{aligned}$$

गाथा ५/२४४ यह सूत्र पिछली गाथा के समान है।

$$[L_{aj} (A_{pj}) + 1] \text{ वें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल,}$$

(Apj) ($Apj-1$) { ९००० करोड़ योजन } वर्ग योजन होगा,
जहाँ Apj जघन्य परीतासंख्यात है, $\log_2$ अर्द्धच्छेदका आधुनिक प्रतीक है ।

पिछली (२४३) वीं गायामें n वें बलयाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल
 $2^n (D_1)^2 [2^{n-1}] [2^{n-1}-1]$ बतलाया गया है जो
 $9 (१०००००)^2 [2^{n-1}] [2^{n-1}-1]$ के बराबर है ।

यदि $n = \log_2 Apj + 1$ हो तो

$n-1 = \log_2 Apj$ होगा, इसलिए $2^{n-1} = Apj$ हो जायेगा ।

इसप्रकार ग्रंथकार ने यहाँ छेदा गणित का उपयोग किया है । उन्होंने १६ संदृष्टि जघन्य-
परीतासंख्यात के लिए और १५ संदृष्टि एक कम जघन्य परीतासंख्यात के लिये ली है ।

इसीप्रकार { $\log_2$ (पल्योपम) + १ } वें द्वीपका क्षेत्रफल
 $= (\text{पल्योपम}) (\text{पल्योपम}-1) \times ६ \times (१०)^{10}$ वर्ग योजन होता है ।

आगे स्वयंभूरमण समुद्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये २४३ या २४४वीं गायामें दिये
गये सूत्र

{ बाहर क्षेत्रफल $= D_n (३)^2 (D_n - D_1)$ } का उपयोग किया है ।

इस समुद्र का विष्कम्भ =

$D_n = \frac{\text{जगश्रेणी}}{२८} + ७५०००$ योजन है, इसलिये,

बाहर क्षेत्रफल =

$[\frac{१}{२८} \text{जगश्रेणी} + ६७५००० \text{ योजन}]$

$[\frac{\text{जगश्रेणी}}{२८} - ७५००० \text{ योजन} - १०००००० \text{ योजन}]$

$= \frac{१}{२८} (\text{जगश्रेणी})^2 + [११२५०० \text{ वर्गयोजन} \times १ \text{ राजु}]$

$- [१६८७५०००००००० \text{ वर्ग योजन}]$ वर्ग योजन

गाथा ५/२४५ मानलो दृष्ट द्वीप या समुद्र n वां है; उसका विस्तार D_n है तथा आदि सूची
का प्रमाण D_{na} है ।

तब, शेष वृद्धि का प्रमाण $= २ D_n - (\frac{४ D_n + D_{na}}{३})$ होता है ।

इसे साधित करने पर, $= \frac{२ D_n - D_{na}}{३}$

यहाँ $D_n = 2^{n-1} D_1$ है तथा $D_{na} = 1 + 2 [2 + 2^2 + \dots + 2^{n-2}]$ है।

अर्थात्, $D_{na} = [1 + 2 (2^{n-1} - 2)] D_1$ योजन है।

$$\therefore \frac{2 D_n - D_{na}}{2} = \frac{2^n D_1 + [-1 - 2^n + 4] D_1}{2} = D_1 = 100000 \text{ योजन}$$

गाथा ५/२४६-२४७ : प्रतीकरूपेण,

$$100000 \text{ योजन} + \frac{D_{na}}{2} = \frac{D_{nb} + [D_n - 200000]}{2}$$

गाथा ५/२४८ प्रतीकरूप से,

$$\text{उक्त वृद्धि का प्रमाण} = \{ \frac{1}{2} (D_{nb}) - D_{na} \} = 1\frac{1}{2} \text{ लाख योजन है।}$$

गाथा ५/२५० प्रतीक रूप से,

$$\text{वर्णित वृद्धि का प्रमाण} = \frac{(3D_n - 300000) - \{ \frac{3D_n}{2} - 300000 \}}{2}$$

गाथा ५/२५१ प्रतीक रूप से वर्णित वृद्धि

$$= \frac{3}{2} D_n - \{ \frac{D_n - 500000}{12} \}$$

वर्णित वृद्धियों के प्रकरण में व्यावहारिक उपयोग स्पष्ट नहीं है। द्वीप और समुद्रों के विस्तार १, २, ४, ८, ... अर्थात् गुणोत्तर श्रेणी में दिये गये हैं। तथा द्वीपों के विस्तार १, ४, १६, ६४, ... भी गुणोत्तर श्रेणी में हैं जिसमें साधारण निष्पत्ति ४ है। इन्हीं के विषय में गुणोत्तर श्रेणी के योग निकालने के सूत्रों की सहायता से, भिन्न २ प्रकार की वृद्धियों का वर्णन दिया गया है।

गाथा ५/२५२ चतुर्थ पक्ष की वर्णित वृद्धि को यदि K_n माना जाए तो इच्छित वृद्धि वाले (n वें) समुद्र से, पहिले के समस्त समुद्रों सम्बन्धी विस्तार का प्रमाण $= \frac{K_n - 200000}{2}$ होता है।

गाथा ५/२६१ जैसाकि पूर्व में बतलाया जा चुका है, n वें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल $\sqrt{10} \{ (D_{nb})^2 - (D_{na})^2 \}$ है।

इसी सूत्र के आधार पर विविध क्षेत्रफलों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है। यहाँ वर्णित क्षेत्रफल वृद्धि का प्रमाण

$$= \frac{3 (D_n - 100000) \times 4 D_n}{(100000)^2} \text{ है,}$$

जो जम्बूद्वीप के समान खंडों की संख्या होती है ।

गाथा ५/२६२ यहाँ लवण समुद्र का क्षेत्रफल $(१०)^{८३} [६००]$ वर्ग योजन है जो जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल $(१०)^{८३} [२५]$ वर्ग योजन से २४ गुणा है ।

इसीप्रकार अन्य द्वीप समुद्रों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य है ।

पुनः, पुष्करवर द्वीप का क्षेत्रफल $= (१०)^{८३} [(११०)^२ - (१६०)^२]$ वर्ग योजन अथवा $(१०)^{८३} [७२०००]$ वर्ग योजन है जो जम्बूद्वीप से २८८० गुणा है, तथा कालोदधि समुद्र की खण्ड शलाकाओं से घीगुता होकर ६६×२ अधिक है, अर्थात् $२८८० = (४ \times ६७२) + २ (९६)$ है । सामान्यतः यदि किसी अधस्तन द्वीप या समुद्रकी खंड शलाकाएँ Kan' मानली जायें जहाँ n' की गणना घातकी खंड द्वीप से आरम्भ हो तो, उपरिम समुद्र या द्वीप की खंडशलाकाओं की संख्या $(४ \times Kan') + २ (n'-१) (९६)$ होगी ।

यहाँ प्रक्षेप ९६ का मान निकालने का सूत्र निम्नलिखित है—

$$\text{प्रक्षेप ९६} = \frac{Kan'}{\frac{Dn'}{१०००००} - १०००००}$$

इस सूत्र में Kan' उस द्वीप या समुद्र की खंड शलाकाएँ हैं तथा Dn' विस्तार है ।

गाथा ५/२६३

जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल से अल्प बहुत्व

जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल	$= (१०)^{८३} (२५)$ वर्ग योजन	१ गुणा
लवणसमुद्र का क्षेत्रफल	$= (१०)^{८३} (६००)$ वर्गयोजन	२४ गुणा
घातकी द्वीपका क्षेत्रफल	$= (१०)^{८३} (३६००)$ वर्गयोजन	१४४ गुणा
कालोदधि समुद्रका क्षेत्रफल	$= (१०)^{८३} (१६८००)$ वर्गयोजन	६७२ गुणा

यहाँ लवणसमुद्र की खंड शलाकाएँ घातकीखंड द्वीप की शलाकाओं से $(१४४-२४)$ या १२० अधिक हैं ।

कालोदधि की खंड शलाकाएँ घातकीखंड तथा लवणसमुद्र की शलाकाओं से $(६७२)-(१४४-२४)$ या ५०४ अधिक हैं ।

इस वृद्धिके प्रमाण को $(१२०) \times ४ + २४$ लिखते हैं ।

इसप्रकार अगले द्वीप की इस वृद्धि का प्रमाण $\{ (५०४) \times ४ \} + (२ \times २४)$ है

इसलिये यदि धातकीखंड से n' की गणना प्रारम्भ की जाये तो इष्ट n' वें द्वीप या समुद्र की खंड शलाकाओं की वर्णित वृद्धि का प्रमाण प्रतीकरूप से

$$\left\{ \left(\frac{Dn'}{1000000} \right)^2 - 1 \right\} \times \infty \text{ होता है।}$$

यहाँ Dn' जो है वह n' वें द्वीप या समुद्र का विष्कम्भ है। यह प्रमाण उस समान्तरी गुणोत्तर श्रेणी (Arithmetico-geometric series) का n' वाँ पद है, जिसके उत्तरोत्तर पद पिछले पदों के चौगुनेसे क्रमशः $24 \times 2^{n'-1}$ अधिक होते हैं। यह आधुनिक arithmetico-geometric series से भिन्न है।

Dn' स्वतः एक गुणोत्तर संकलन का निरूपण करता है जो ∞ से प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर १६, ३२, ६४, १२८ आदि हैं। वृद्धि के प्रमाण को n' वाँ पद, मानकर बनने वाली श्रेणी अध्ययन योग्य है। इस पदका साधन करने पर

$$\left\{ \frac{(Dn' + 1000000)(Dn' - 1000000)}{(1000000)^2} \right\} \times \infty \text{ प्रमाण प्राप्त होता है।}$$

गाथा ५/२६४ यहाँ n' वें द्वीप या समुद्र से अधस्तन द्वीप समुद्रों को सम्मिलित खंडशलाकाओं के लिए ग्रंथकार ने निम्नलिखित सूत्र दिया है—

$$\text{उक्त प्रमाण} = \left[\frac{Dn'}{2} - 1000000 \right] \times [Dn' - 1000000] \div 12500000000$$

यहाँ n' की गणना धातकीखंड द्वीपसे आरम्भ करना चाहिए। यह प्रमाण दूसरी तरह से भी प्राप्त किया जा सकता है।

गाथा ५/२६५ अतिरिक्त प्रमाण ७४४ $\frac{Ksn'}{Dn' \div 2000000}$

गाथा ५/२६६ यहाँ ९ $Dn(Dn - 1000000) = 3 \left[\left(\frac{Dnb}{2} \right)^2 - \left(\frac{Dna}{2} \right)^2 \right]$

गाथा ५/२६८ n वें द्वीप या समुद्र से अधस्तन द्वीप-समुद्रों के पिछफल को लाने के लिए गाथा को प्रतीकरूपेण निम्नप्रकार प्रस्तुत किया जा सकेगा—अधस्तन द्वीप-समुद्रों का सम्मिलित पिछफल $= [Dn - 1000000] [9(Dn - 1000000) - 1000000] \div 3$ दूसरी विधि से इसका प्रमाण

$$3 \left(\frac{Dna}{2} \right)^2 \text{ आयेगा।}$$

गाथा ५/२७१ अधस्तन समस्त समुद्रों के क्षेत्रफल निकालने के लिए गाथा दी गई है। चूँकि द्वीप ऊनी (अयुग्म) संख्या पर पड़ते हैं इसलिए हम इष्ट उपरिम द्वीप को $(2n-1)$ वाँ मानते हैं। इसप्रकार, अधस्तन समस्त समुद्रों का क्षेत्रफल—

$= [D_{2n-1} - १०००००] [१ (D_{2n-1} - १०००००) - १०००००] \div १५$
प्राप्त होगा। यह सूत्र महत्वपूर्ण है।

गाथा ५/२७४ जब द्वीप का विष्कम्भ दिया गया हो, तब इच्छित द्वीप से (जम्बूद्वीप को छोड़कर) अधस्तन द्वीपों का संकलित क्षेत्रफल निकालने का सूत्र यह है—

$$(D_{2n-1} - १०००००) [(D_{2n-1} - १०००००) ९ - २७०००००] \div १५$$

यहाँ D_{2n-1} , $2n-1$ वीं संख्या क्रम में आने वाले द्वीप का विस्तार है।

गाथा ५/२७६ धातकी खंड द्वीपके पश्चात् वर्णित वृद्धियाँ त्रिस्थानोंमें क्रमशः

$$\frac{Dn'}{२} \times २, \frac{Dn'}{२} \times ३, \frac{Dn'}{२} \times ४ \text{ होती हैं जब कि गणना } n' \text{ की धातकी खंडद्वीप से प्रारंभ}$$

होती है।

गाथा ५/२७७ अधस्तन द्वीप या समुद्र से उपरिम द्वीप या समुद्र के आयाम में वृद्धि का प्रमाण प्राप्त करने के लिए सूत्र दिया गया है। यहाँ n' की गणना धातकीखंड द्वीप से प्रारम्भ होती है।

$$\text{प्रतीक रूपेण आयामवृद्धि} = \frac{Dn'}{२} \times १०० \text{ है।}$$

गाथा ५/२८० आदि

यहाँ से कायमार्गणा स्थान में जीवों की संख्या प्ररूपणा, संदृष्टियों के द्वारा दी गई है। संदृष्टियों का विशेष विवरण पं० टोडरमल की गोम्मटसार की सम्यक्ज्ञान चंद्रिका टीका के संदृष्टि अधिकार में विशेष रूपसे स्पष्ट कर लिखी गई है। संदृष्टियों में संख्या प्रमाण तथा उपमा प्रमाण का उपयोग किया गया है जो दृष्टव्य है। इसीप्रकार आगे इंद्रिय मार्गणा की संख्या प्ररूपणा भी की गयी है। इनके मध्य अल्पबहुत्व भी दृष्ट्वा है जो संदृष्टियों में दिया गया है।

गाथा ५/३१८ इस गाथा के पश्चात् अवगाहना के विकल्प का स्पष्टीकरण दिया गया है। धवला टीका में भी इस प्रकरण को देखना चाहिए।

गाथा ५/३१९-३२० शंख क्षेत्र का गणित इस गाथा में है जो माधवचन्द्र त्रैविद्य की त्रिलोकसार की संस्कृत टीका में सविस्तार दिया है। शंखावर्त क्षेत्र का घनफल ३६५ घन योजन निकाला गया है इसकी वासना माधवचन्द्र त्रैविद्य ने प्रस्तुत की है जिसे पूज्य आधिका माता विशुद्धमतीजी ने विशेष विस्तार के साथ स्पष्ट की है। *

यहाँ सूत्र यह है : क्षेत्रफल =

$$\left[\left(\text{लम्बाई} \right)^2 - \left(\frac{\text{मुख व्यास}}{2} \right)^2 + \left(\frac{\text{मुख व्यास}}{2} \right)^2 \right] \times \frac{2}{3} =$$

पुनः घनफल निकालने हेतु

$$\text{बाह्यत्व} = \left[\left(\text{आयाम मुख} \right) + \text{आयाम} \right] \div \text{मुख}$$

यहाँ लम्बाई या आयाम = १२ योजन

मुख = ४ योजन

∴ क्षेत्रफल = ७३ वर्ग योजन और बाह्यत्व = ५ योजन

इसलिए शंख क्षेत्र का घनफल = ७३ × ५ घन योजन = ३६५ घनयोजन

शंख को पूर्ण मुरजाकार नहीं माना गया

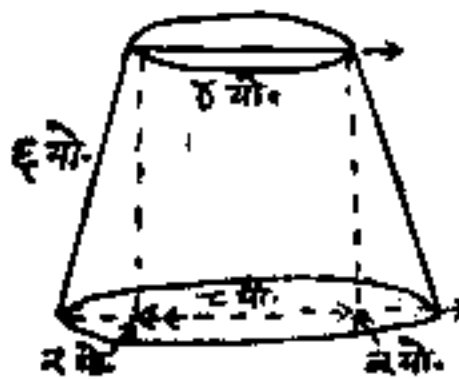
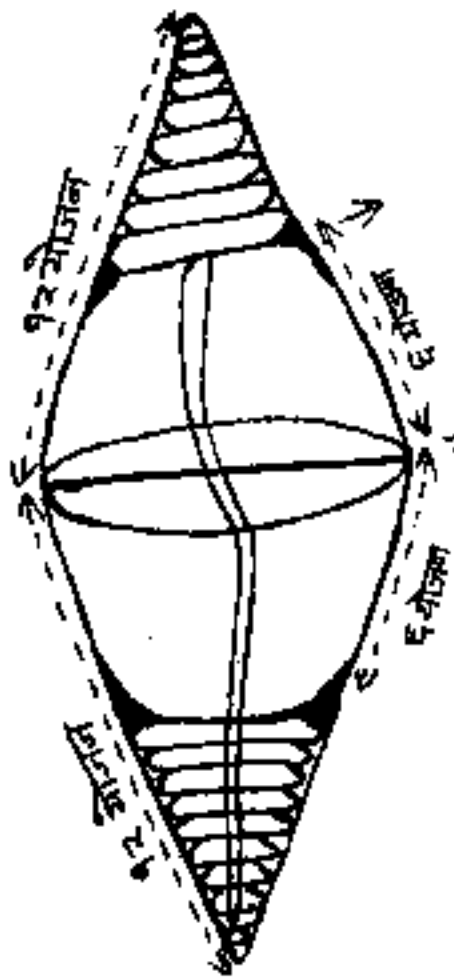
है इसलिए उसमें से क्षेत्र

$\left(\frac{5}{4} \right)^2$ घटा देना चाहिये

मुख व्यास ४ योजन

$$\text{मध्यभाग} = \frac{१२ + ४}{२} = ८ \text{ योजन}$$

जो दो खंड दिख रहे हैं उनमें एक को ग्रहणकर क्षेत्रफल निकालना चाहिए। उपर्युक्त घटाया खंड भी आधा याने $\left(\frac{5}{4} \right)^2$ हो जाता है।



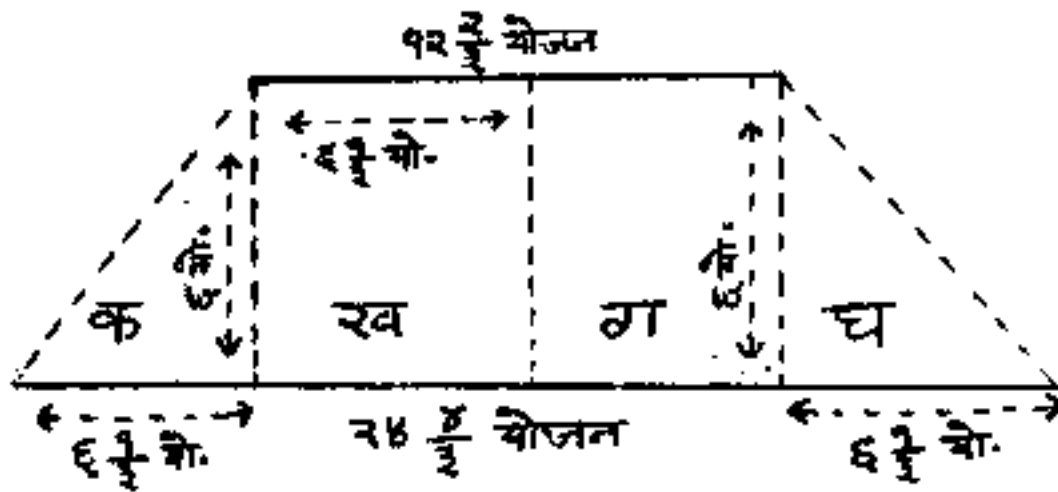
$$\text{परिधि} = ४ \times \sqrt{१०} = ४ \left[३ + \frac{१}{२} \right] = ४ \times \frac{७}{२} = १४ \frac{१}{२} \text{ योजन}$$

$$\text{परिधि} = ८ \times \sqrt{१०} = २४ \frac{१}{२} = २४ \frac{१}{२} \text{ योजन}$$

जैन ग्रन्थों में चूँकि $\sqrt{१०}$ का मान $\left(३ + \frac{१}{२} \right)$ दिया गया है, अथवा $\frac{७}{२}$ माना गया है जैसे $\sqrt{१०} =$

$$\sqrt{९} + \frac{१}{२ \times \sqrt{९}} = ३ \frac{१}{२} = \frac{७}{२}$$

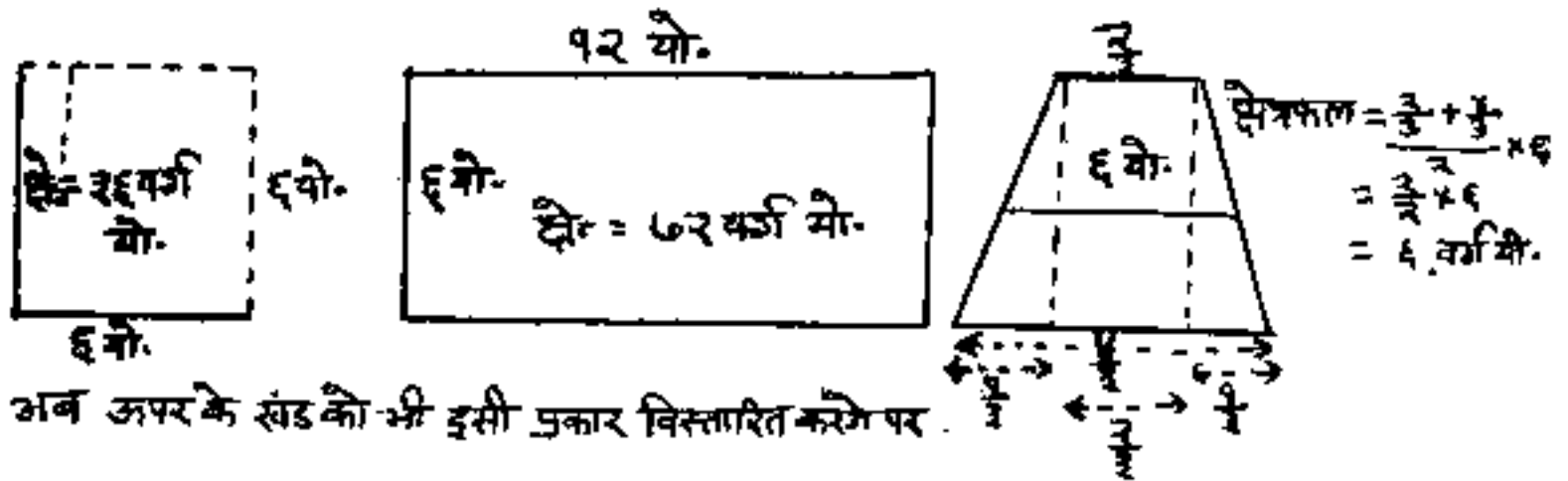
उपरोक्त आकृति तल को पसारते हैं ताकि वह तल समलम्ब चतुर्भुज के रूप में आजाये।—



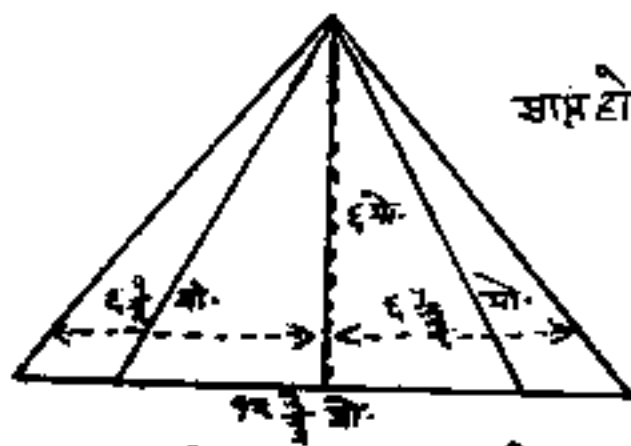
यहाँ ४ आकृतियाँ क्रमशः क
ख ग घ प्राप्त होती हैं जिनमें
क = घ और ख = ग हैं।

क और घ को समामेलित
करने पर एक चतुर्भुज प्राप्त
हो जाता है जो ख और ग
के समान होता है। इनमें

से $\frac{1}{3}$ योजन वाली पट्टियाँ अलग तथा $\frac{1}{3}$ योजन वाली पट्टी अलग करने पर तथा $\frac{1}{3}$ योजन वाली पट्टी
अलग करने पर



अब ऊपर के खंड को भी इसी प्रकार विस्तारित करेंगे पर



प्राप्त होगी जिसमें से

एक पट्टी

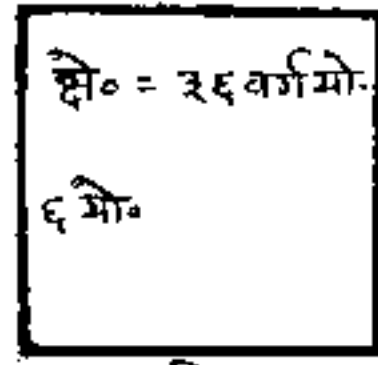


$\frac{1}{3}$

प्राप्त होगी।

६ यो.

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{1}{3} \times 6 = 2 \text{ वर्ग यो.}$$



६ यो.

का वर्ग तथा

इस प्रकार यहाँ सर्वप्रथम दयाब
 $36 + 72 + 18 = 126$ वर्ग योजन
और दिया है। 6 वर्ग योजन को
अलग करते हुए केवल 2 वर्ग यो.
को गणना में लेकर $126 + 2 = 128$
वर्ग योजन क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

इसीप्रकार नीचे के शेष अर्द्ध भाग का क्षेत्रफल भी १४६ वर्ग योजन होगा। कुल $१४६ \times २ = २९२$ वर्ग योजन होगा। इसमें प्रत्येक खंड का वेध $\frac{५}{४}$ मानते हुए $२९२ \times \frac{५}{४} = ७३ \times ५ = ३६५$ घनयोजन घनफल प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि पर्व का वेध प्रत्येक खंड में $\frac{५}{४}$ योजन लिया गया है और ऐसे ही पर्व से शंख क्षेत्र को निर्मित माना गया है।

पद्म के आकार के क्षेत्र का घनफल निकालने के लिए बेलनाकार ठोस का सूत्र $\pi r^2 h$ का उपयोग किया गया है। यहाँ π का मान ३ , r का मान व्यास १ योजन है तथा उत्सेध h का मान $१०००\frac{३}{४}$ योजन है।

महामत्स्य की अवगाहना, आयतन (cuboid) के आकार का क्षेत्र है जहाँ घनफल = लम्बाई $\times$ चौड़ाई $\times$ ऊँचाई होता है।

भ्रमर क्षेत्र का घनफल निकालने के लिए बीच से विदीर्ण किये गये अर्द्ध बेलन के घनफल को निकालने के लिए उपयोग में लाया गया सूत्र दिया है जिसमें π का मान ३ लिया गया है। आकृतियाँ मूल ग्रन्थ में देखिये, अथवा "तिलोय पण्यत्ती" का मणित" में देखिये।

सातवाँ महाधिकार

गाथा ७/५-६

ज्योतिषी देवों का निवास जम्बूद्वीप के बहु मध्यभाग में प्रायः १३ अरब योजन के भीतर नहीं है। उनकी बाहरी सीमा = $४६।११०$ योजन दी गई है जो एक राजु से अधिक प्रतीत होती है। जहाँ बाहरी सीमा १ राजु से अधिक है उस प्रदेश को अगम्य कहा गया है। ज्योतिषियों का निवास शेष गम्य क्षेत्र में माना गया है। प्रतीक से लगता है कि ११० का भाग है किंतु शब्दों में उसे गुणक बतलाया गया है।

वह अगम्य क्षेत्र में समवृत्त जम्बूद्वीप के बहुमध्यभाग में भी स्थित है। यह १३०३२९२५०१५ योजन है।

गाथा ७/११ सम्पूर्ण ज्योतिषी देवों की राशि $\frac{(जग श्रेणी)^२}{६५५३६ (वर्ग अंगुल)}$ है।

यहाँ २५६ अंगुलों का वर्ग ६५५३६ वर्ग अंगुल बतलाया गया है। प्रतीक में

$\frac{१}{४}।६५५३६$ दिया है, जहाँ ४ प्रतरांगुल का प्रतीक है।

गाथा ७/११७ आदि

जितने बलयाकार क्षेत्र में चन्द्रबिम्ब का गमन होता है उसका विस्तार $५१०\frac{१}{६}$ योजन है। इसमें से वह १८० योजन जम्बूद्वीप में तथा $३३०\frac{१}{६}$ योजन लवण समुद्र में रहता है। एक लाख

योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप के मध्य में १०००० योजन विस्तार वाला सुमेरु पर्वत है। चन्द्रों के चार क्षेत्र में पन्द्रह गलियाँ हैं, जिनमें प्रत्येक का विस्तार ५६ योजन है। यह गमन वृत्ताकार वीथियों में होता बतलाया गया है जिनके अंतराल ३५३३३ योजन हैं। बलयाकार-क्षेत्र का विस्तार ५१०६६ योजन है। इनसे परिधि आदि प्राप्त होती है, परन्तु गमन वास्तव में समापन एवं असमापन कुंतल में होता होगा। π का मान $\sqrt{१०}$ ही लिया गया है।

गाथा ७/१७६ जब त्रिज्या बढ़ती है तो परिधि पथ बढ़ जाता है किन्तु नियत समय में वह पथ पूर्ण करने हेतु चन्द्र व सूर्य दोनों की गतियाँ शीघ्र होती हैं, जिससे वे समानकाल में असमान परिधियों का अतिक्रमण कर सकें। उनकी गति काल के असंख्यातवें भाग में समान रूप से बढ़ती होगी।

गाथा ७/१८६ चंद्रमा की रेखीयगति अंतः वीथी में स्थित होने पर १ मुहूर्त में $३१५०८९ \div ६२३३३ = ५०७३४७७५५$ योजन होती है।

गाथा ७/२०१ चंद्रमा की कलाओं तथा ग्रहण को समझाने हेतु चन्द्र बिंब से ४ प्रमाणांगुल नीचे कुछ कम १ योजन विस्तारवाले काले रंग के दो प्रकार के राहुओं (दिन राहु और पर्व राहु) की कल्पना की गई है। राहु के विमान का बाहुल्य २००० योजन है। राहु की गति और चंद्र गति के वैशिष्ट्य पर कलाएँ प्रकट होती हैं।

गाथा ७/२१३ चंद्र दिवस का प्रमाण ३१३३३ माना गया है।

गाथा ७/२१६-२१७ पर्वराहु का गतिविशेषों से चांद की गति से मेल होने पर चंद्र ग्रहणादि होते माना गया है।

गाथा ७/२२८ चन्द्र जैसा विवरण सूर्य का है।

गाथा ७/२७६ सूर्य की मुख्यतः १९४ परिधियों या अक्षांशों में स्थित प्रदेशों एवं नगरियों का वर्णन मिलता है।

गाथा ७/२७७ जब सूर्य प्रथम पथ में रहता है तब समस्त परिधियों में १८ मुहूर्त का दिन तथा १२ मुहूर्त की रात्रि होती है। यह स्थान कश्मीर के उत्तर में होना चाहिए क्योंकि भिन्न भिन्न अक्षांशों में यह समय बदलता है। ठीक इसके विपरीत बाह्य पथ में सूर्य के स्थित होने पर होता है।

शेष विवरण स्पष्ट हैं।

ज्योतिषविम्बों के प्रमाण की गणना, जघन्य परीतासंख्यात निकालने की गणना, पल्य राशि की गणना के लिए "तिलोपपण्णसी का गणित" पृ० ६६ से लेकर पृ० १०४ तक दृष्टव्य है।

उपर्युक्त गणित का किंचित्स्वरूप पूज्य आर्यिका विशुद्धमती माताजी के निर्देशानुसार प्रस्तुत परम्परानुसार चित्रित किया है। कई स्थलों पर मूल ग्रंथों के अभिप्राय समझने में अभी हम असमर्थ हैं और वे बहुश्रुतधारी मुनिवरों के द्वारा आगामी काल में शोध द्वारा निर्णीत किये जायेंगे, ऐसी आशा है। परम पूज्य माताजी ने कई स्थलों पर अपनी प्रज्ञा से स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया है जो दृष्टव्य है। ❖

जम्बूद्वीप के क्षेत्रों और पर्वतों के क्षेत्रफलों की गणना

लेखक—प्रो० डॉ० राधाचरण गुप्त
बी० आइ० टी०, मेसरा, दौली—७३५ २१५

आयिका विशुद्धमतीजी की भाषा टीका के साथ यतिवृषभाचार्य रचित तिलोयपण्णत्ती (त्रिलोक प्रज्ञप्ति) का नया संस्करण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा आंशिकरूप में प्रकाशित हो चुका है । इसके प्रथम खण्ड (१९८४) में तीन अधिकार और दूसरे खण्ड (१९८६) में चतुर्थ अधिकार छप चुका है जो कि गणित की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । चौथे अधिकार की गाथाओं २४०१ से २४०६ (पृष्ठ ६३६ से ६३९ तक) में जो विभिन्न क्षेत्रों के मान और उनके निकालने की विधि दी गई है उन्हीं का विस्तृत विवेचन इस लेख में किया जा रहा है ।

वृत्ताकार जम्बूद्वीप को पूर्व से पश्चिम तक १२ समानान्तर सीमा रेखाएँ खींचकर १३ भागों में बाँटा गया है जिनमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नामके ७ क्षेत्र तथा उनको एक दूसरे से अलग करने वाले हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी नामके ६ पर्वत हैं (खण्ड दो, पृष्ठ ३३ पर दी गई तालिका देखें) । जम्बूद्वीप के दक्षिणी बिन्दु से आरम्भ करके उपर्युक्त ७ क्षेत्रों और उनके बीच-बीच में स्थित ६ पर्वतों का विस्तार क्रमशः १, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, ३२, १६, ८, ४, २ तथा १ शलाकाएँ हैं जहाँ एक शलाका का मान $= \frac{100000}{128} = 781.25$ योजन है ।

क्योंकि—

$1 + 2 + 4 + 8 + 16 + 32 + 64 + 32 + 16 + 8 + 4 + 2 + 1 = 190$ तथा जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन है (जिसे १९० शलाकाओं में विभाजित मान लिया गया है) ।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि जम्बूद्वीप का पूर्व से पश्चिम तक खींचा गया व्यास मध्यवर्ती विदेह क्षेत्र के दो बराबर भाग करता है जिन्हें उत्तरविदेह और दक्षिणविदेह कहा जायगा । यह भी स्पष्ट है कि भरत, हिमवान्, हैमवत, महाहिमवान्, हरि, निषध तथा दक्षिणविदेह की उत्तरी सीमाएँ जम्बूद्वीप के दक्षिणी चाप के साथ मिलकर विभिन्न धनुषाकार क्षेत्र (सेगमेंट) बनाते हैं जिनकी ऊँचाइयाँ क्रमशः १, ३, ७, १५, ३१, ६३ व ६५ शलाकाएँ होंगी (जिनमें से अन्तिम ऊँचाई व्यासार्ध के बराबर है) । प्राचीन ग्रंथों में धनुषाकार क्षेत्र की ऊँचाई को इषु या बाण कहा गया है ।

‘तिलोयपण्णत्ती’ के चतुर्थ महाधिकार की गाथा १८३ (देखिए खण्ड २, पृष्ठ ५१) में धनुषाकार क्षेत्र की जीवा निकालने का यह सूत्र दिया गया है—

$$\text{जीवा} = \sqrt{4 \left[(\text{व्यासार्ध})^2 - (\text{व्यासार्ध} - \text{इषु})^2 \right]}$$

इसीका सरल रूप होगा—

$$\text{जीवा} = \sqrt{4 \text{ इषु } (\text{व्यास} - \text{इषु})} \dots (१)$$

इसका प्रयोग करके भरत क्षेत्र की जीवा का प्रमाण—

$$= \sqrt{4 \times \frac{10000}{48} \times (100000 - \frac{10000}{48})}$$

$$= \sqrt{(3256 \times 10000, 0000) / 12}$$

$$= \sqrt{(264954)^2 + 296664 / 12}$$

$$= (264954.54) / 12 \text{ लगभग } 1$$

यदि ऊपर की गई गणना में वर्गमूल केवल पूर्ण अंकों तक ही ग्रहण किया जाय तो जीवा का मान (दशमलव वाला भाग छोड़ देने पर)

$$= 22081 \frac{1}{2} = 14471 \frac{1}{2} \text{ योजन होता है ।}$$

भरत क्षेत्र की उत्तरी जीवा का यही प्रमाण तिलोयपण्णसी, चतुर्थ महाधिकार की गाथा १६४ (देखिये खण्ड २, पृष्ठ ५६) में दिया गया है । इसी प्रकार सूत्र (१) को लगाकर हम जम्बू-द्वीप के दक्षिणार्ध में स्थित विभागों से बने धनुषाकार क्षेत्रों की जीवाएँ निकाल सकते हैं और यदि प्रत्येक बार हर में १२ अलग करके अंश (न्यूमेरेटर) का वर्गमूल केवल पूर्ण अंकों तक निकालें तो हमें निम्नलिखित तालिका प्राप्त हो जायगी—

तालिका १ (जीवाएँ)

क्र० सं०	विभाग	विस्तार (शलाका)	इषु (शलाका)	उत्तरी जीवा (योजन)
१	भरत क्षेत्र	१	१	१४४७१ + $\frac{1}{2}$
२	हिमवान् पर्वत	२	३	२४९३२ + $\frac{1}{2}$
३	हैमवत क्षेत्र	४	७	३७६७४ + $\frac{1}{2}$
४	महा हिमवान् प०	८	१५	५३६३१ + $\frac{1}{2}$
५	हरि क्षेत्र	१६	३१	७३९०१ + $\frac{1}{2}$
६	निषध पर्वत	३२	६३	९४१५६ + $\frac{1}{2}$
७	दक्षिण विदेह क्ष०	६४/२	६५	१००००० + ०

‘तिलोयपण्णत्ती’ के चतुर्थ महाधिकार की गाथा १६४७ में हिमवान् की उत्तर जीवा का कलात्मक मान एक (यानी १/१९) है और गाथा १७२२ में हैमवत की उत्तर जीवा का कलात्मक मान “किञ्चुण सोलस” अर्थात् (१६ से कुछ कम) है । अन्य सब मान ग्रंथ के अनुकूल हैं (देखिये गाथाएँ १७४२, १७६३, १७७५ तथा १७९८) । लेकिन हमने तालिका में दी गई जीवाओं को प्राप्त करने में वर्गमूल निकालते समय पूर्णांकों के बाध शेष भाग (चाहे वह आधा या उससे अधिक भी क्यों न हो) छोड़ने की समाननीति अपनाई है और इसी नीति को अपनाकर अब हम क्षेत्रफल निकालेंगे जो कि ग्रंथ में दिये गये मानों से पूर्णतया मिल जाते हैं ।

धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये ‘तिलोयपण्णत्ती’ (देखिये गाथा २४०१) में निम्नलिखित सूत्र दिया गया है ।

$$\text{क्षेत्रफल (सूक्ष्म)} = \sqrt{१०} (\text{जीवा} \times \text{इषु/४})^2 \quad \dots\dots(२)$$

इसका उपयोग करने पर भरतक्षेत्र का क्षेत्रफल

$$= \sqrt{(१०/१६) \times (२७४६५४/१६)^2 \times (१००००/१६)^2}$$

$$= (\sqrt{४७२४, ६८१३, ८२२५ \times १०^8}) / ३६१$$

$$= (२१, ७३७०, २२२६) / ३६१$$

जहाँ हमने अंश का वर्गमूल केवल पूर्णांकों तक ही निकालकर शेष भाग छोड़ दिया है ।

इसप्रकार भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल

$$= ६०२, १३३५ + २६४/३६१ (वर्ग योजन)$$

जो कि ग्रंथ की गाथा २४०२ (खंड २, पृ० ६३६) में दिये गये मानके समान है ।

ठीक इसी प्रकार सूत्र (२) का उपयोग करके और वर्गमूल निकालने में वही नीति अपनाकर हमने भरत तथा हिमवान् आदि से बने अन्य धनुषाकार क्षेत्रों का क्षेत्रफल निकाला है । यहाँ प्राप्त किये गये मान निम्नलिखित तालिका २ में दिये जा रहे हैं ।

तालिका २ (क्षेत्रफल)

क्र.सं.	विभाग	सम्मिलित धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल	विभाग का क्षेत्रफल
१	भरत	६०२, १३३५ + $\frac{३६६}{४}$	६०२, १३३५ + $\frac{३६६}{४}$
२	हिमवान्	३११२, १८०५ + $\frac{३६६}{४}$	२५१०, ०४६९ + $\frac{३६६}{४}$
३	हैमवत	१, ०९७३, २५०२ + $\frac{३६६}{४}$	७८६१, ०६९६ + $\frac{३६६}{४}$
४	महाहिमवान्	३, ३६६०, ३५४२ + $\frac{३६६}{४}$	२, २६८७, १०४० + $\frac{३६६}{४}$
५	हरि	६, ५३२४, ३१०६ + $\frac{३६६}{४}$	६, १६६३, ९५६६ + $\frac{३६६}{४}$
६	निषध	२४, ६८१७, २१२३ + $\frac{३६६}{४}$	१५, १४९२, ९०१३ + $\frac{३६६}{४}$
७	दक्षिण विदेह	३६, ५२८४, ७०७५	१४, ८४६७, ४९५१ + $\frac{३६६}{४}$

विभागीय क्षेत्रफलों का योग ३९, ५२८४, ७०७५

नोट—जम्बूद्वीप के उत्तरार्ध में स्थित ऐरावत क्षेत्र से उत्तरविदेह तक के सात विभागों का क्षेत्रफल भी क्रमशः यही होगा ।

ध्यान रहे कि तालिकाओं में उल्लिखित भरत से दक्षिण विदेह तक के सात विभाग मिलकर जो धनुषाकार क्षेत्र बनाते हैं वह जम्बूद्वीप का दक्षिणार्ध है और जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल 'तियोयपण्णसी' चतुर्थ महाधिकार की गाथा ५६ (देखिये पृष्ठ १७) में ७९ ०५६६ ४१५० वर्गयोजन पहले ही दिया जा चुका है (यही प्रमाण बाद में गाथा २४०९ में भी आया है) । अतः सातों विभागों से बने सम्मिलित धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल ऊपर के मान का आधा होगा जो कि तालिका २ में दिया गया है । इसके लिए सूत्र (२) के उपयोग की आवश्यकता फिर से नहीं है ।

दूसरी बात यह है कि छपे ग्रन्थ में हमें महाहिमवान् पर्वत का क्षेत्रफल उपलब्ध नहीं है क्योंकि सत्सम्बन्धी गाथा हस्तलिखित पोथी में कीड़ों ने खाली है (देखिए पृष्ठ ६३७ पर दिया नोट) बाकी सब निकाले गए क्षेत्रफल 'सिलोयपण्णसी' की गाथाओं (२४०२ से २४०७) में दिये गये मूल मानों से पूर्णतया मेल खाते हैं । इससे स्पष्ट है कि हमारी विधि ठीक है और सम्भवतः यही विधि प्राचीनकाल में अपनाई गई थी । हाँ, लिखने की विधि या व्यावहारिक कार्य प्रणाली चाहे भिन्न रही हो । एक बात और स्पष्ट है, तालिका १ में दिये गए जीवाओं के मान ही सम्भवतः मूल ग्रन्थ में थे । एक या दो स्थानों में भिन्नता सुधार की दृष्टि से किये गए बाद के परिवर्तन के कारण हों ।

इस लेख की सामग्री लेखक के उस संक्षिप्त लेख से मिलती जुलती है जो कि कुछ समय पहले अंग्रेजी में लिखा गया था और अब गणित-भारती नामकी पत्रिका के खंड ६ (१९८७) में प्रकाशित है । *

विषयानुक्रम

विषय	गाथा, पृ० सं०	विषय	गाथा/पृ० सं०
पंचम महाधिकार (गाथा १-३२३, पृ० १-२१४)		आदि के नवद्वीप समुद्रों के अधिपति देव	३७।१३
मंगलाचरण	१।१	शेष द्वीप समुद्रों के अधिपति देव	४८।१५
तिर्यग्लोक प्रकृति में १६ अन्तराधिकारों का निर्देश	२।१	देवों की आशु एवं उत्सेधादि	५१।१५
१. स्वाधरलोक का लक्षण एवं प्रमाण	५।२	नन्दीश्वर द्वीप की अवस्थिति एवं व्यास	५२।१५
२. तिर्यग्लोक का प्रमाण	६।२	नन्दीश्वर द्वीप की बाह्य सूची का प्रमाण	५४।१६
३. द्वीपों एवं सागरों की संख्या	७।३	अभ्यन्तर और बाह्य परिधि का प्रमाण	५५।१७
४. विन्यास (८-२४२)		अंजतगिरि पर्वतों का कथन	५७।१७
द्वीप समुद्रों की अवस्थिति	८।३	चार प्रहों का कथन	६०।१८
आदि अन्त के द्वीप समुद्रों के नाम	११।३	पूर्व दिशागत वापिकायें	६२।१८
आभ्यन्तर भाग में स्थित द्वीप समुद्रों के नाम	१३।४	वापिकाओं के वनलक्षण	६३।१९
बाह्यभाग में स्थित द्वीप समुद्रों के नाम	२२।५	दक्षिमुख पर्वत	६५।१९
समस्त द्वीप समुद्रों का प्रमाण	२७।६	रतिकर पर्वत	६७।१९
समुद्रों के नामों का निर्देश	२८।६	प्रत्येक दिशा में १३-१३ जिनालय	७०।२०
समुद्रस्थित जल के स्वाद का निर्देश	२९।७	दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा की वापिकायें	७५।२१
समुद्रों में जलचर जीवों के सद्भाव और अभाव का दिग्दर्शन	३१।७	घनों में अवस्थित प्रासाद और उनमें रहने वाले देव	७९।२२
द्वीप समुद्रों का विस्तार	३२।७	न० द्वीप में विशिष्ट पूजन काल	८३।२४
विवक्षित द्वीप समुद्र का वलय व्यास प्राप्त करने की विधि	३३।८	सौधर्म आदि १६ इन्द्रों का पूजन के लिये आग्रामन	८४।२४
आदि, मध्य और बाह्य सूची प्राप्त करने की विधि	३४।९	भवनत्रिक देवों का पूजा के लिये आग्रामन	९८।२६
परिधि का प्रमाण प्राप्त करने की विधि	३५।११	पूजन के लिये दिशाओं का विभाजन	१००।२७
द्वीप समुद्रादिकों के जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड प्राप्त करने हेतु करण मूत्र	१६।१२	प्रत्येक दिशा में प्रत्येक इन्द्र की पूजा के लिए समय का विभाजन	१०२।२७

विषय	गाथा/पृ० सं०
प्रतिमाओं का अभिषेक, विलेपन और पूजा	१०४।२८
नृत्य गान एवं नाटकादि के द्वारा भक्तिप्रदर्शन	११४।३०
कुण्डल पर्वत	११७।३०
पर्वत पर स्थित कूटों का निरूपण	१२०।३१
सतान्तर से कुण्डलगिरि का निरूपण	१२८।३३
रत्नकण्ठ द्वीप में रत्नकण्ठ पर्वत	१४१।३५
पर्वत पर स्थित कूट और उनमें निवास करने वाली देवीगनाएँ और जन्माभिषेक में उनके कार्य	१४४।३६
सिद्धकूटों का अवस्थान	१६५।३६
सतान्तर से सिद्धकूटों का अवस्थान	१६६।४०
सतान्तर से रत्नकण्ठ पर्वत का निरूपण	१६७।४०
द्वितीय अम्बुद्वीप का अवस्थान	१८०।४३
वहाँ विजय आदि देवों की नगरियों का अवस्थान और उनका विस्तार	१८१।४३
नगरियों के प्राकारों का उत्प्रेषण आदि	१८३।४३
प्रत्येक दिशा में स्थित गोपुर द्वार	१८५।४४
नगरियों में स्थित भवन	१८६।४४
राजागण का अवस्थान एवं प्रमाणादि	१८८।४४
राजागण स्थित प्रासाद	१९०।४५
पूर्वोक्त प्रासाद की चारों दिशाओं में स्थित प्रासाद	१९२।४५
सुधर्म सभा की अवस्थिति और उसका विस्तारादि	२०१।४७
उत्पाद आदि छद्म सभाओं (भवनों) की अवस्थिति	२०३।४८
विजयदेव के परिवार का अवस्थान व प्रमाण	२१६।५०

विषय	गाथा/पृ० सं०
विजयदेव के नगर के बाहर स्थित वनसङ्घ	२२६।५२
चैत्यधूस	२३२।५६
अशोकदेव के प्रासाद का वर्णन	२३४।५३
स्वयम्भूत पर्वत	२४०।५५
५. क्षेत्रफल (२४३-२७९)	
वृत्ताकार क्षेत्र का स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त करने की विधि	२४३।५५
द्वीप समुहों के बाहर क्षेत्रफल का प्रमाण	५७
जम्बून्य परीतासंख्यातर्द्धे क्रम वाले द्वीप या समुद्र का बाहर क्षेत्रफल	५८
स्वयम्भूरमण समुद्र का बाहर क्षेत्रफल	५९
उन्नीस विकल्पों द्वारा द्वीप समुहों का अन्ववद्भव	६०
६. तिर्यक्ष जीवों के भेद प्रमेद (२८०-२८२)	
तिर्यक्ष त्रस जीवों के १० भेद और कुल ३४ भेद	२८२।१३९
७. तिर्यक्षों का प्रमाण (संहवा)	पृ० १४०
तेजस्कायिक जीवराशि का उत्पादन विधान	१४०
सामान्य पृथिवी, जल और वायुकायिक जीवों का प्रमाण	१४३
बाहर और सूक्ष्म जीवराशियों का प्रमाण	१४४
पृथिवीकायिक आदि चारों की पर्याप्त अपर्याप्त जीवराशि का प्रमाण	१४५
सामान्य वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण	१४६
साधारण " " " " " "	१४१
साधारण बाहर वनस्पतिका. और साधारण सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण	१४१
साधारण बाहर पर्याप्त-अपर्याप्त राशि का प्रमाण	१४२

विषय	गाथा पृ० सं०
साधारण सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त जीवों का प्रमाण	१५२
प्रत्येक शरीर वनस्पतिकादिक जीवों के भेद प्रभेद	१५२
बादर निगोद प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवों का प्रमाण	१५३
बादर निगोद प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित अपर्याप्त जीव राशि	१५४
त्रस जीवों का प्रमाण प्राप्त करने की विधि	१५५
द्वीन्द्रिय जीवों का प्रमाण	१५६
तेजन्द्रिय जीवराशि का प्रमाण	१५७
चार इन्द्रिय जीवों का प्रमाण	१५८
पंचेन्द्रिय जीवराशि का प्रमाण	१५९
सामान्य द्वीन्द्रियादि जीवों का प्रमाण	१६०
पर्याप्त त्रस जीवों का प्रमाण प्राप्त करने की विधि	१६०
पर्याप्त तीन इन्द्रिय जीवों का प्रमाण	१६१
पर्याप्त दो इन्द्रिय जीवों का प्रमाण	१६२
पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण	१६२
पर्याप्त चार इन्द्रिय जीवों का प्रमाण	१६२
अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवों का प्रमाण	१६४
तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्त जीवों का प्रमाण	१६५
तिर्यंच संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त जीवराशि का प्रमाण	१६५
न. आयु (२८३-२९२)	
स्थावर जीवों की उत्कृष्टायु	२८३।१६६
विकलेन्द्रियों और सरीसृपों की उत्कृष्टायु	२८४।१६६
पक्षियों, सर्पों और शेष तिर्यंचों की उत्कृष्टायु	२८५।१६६

विषय	गाथा पृ० सं०
तिर्यंचों की यह उत्कृष्ट आयु कहाँ- कहाँ और कब प्राप्त होती है ।	२८६।१६७
कर्मभूमिज तिर्यंचों की जन्म आयु	२८८।१६७
भोगभूमिज तिर्यंचों की आयु	२८९।१६७
६ तिर्यंच आयु के बन्धकभाव	२९३-२९४।१६८
१०. तिर्यंचों की उत्पत्ति योग्य योनियाँ	२९५-२९९।१६९
११ तिर्यंचों में सुख दुःख वी परिकल्पना	३००।१७०
१२. तिर्यंचों के गुणस्थानों का कथन	३०१-३०९।१७०
१३. तिर्यंचों में सम्यक्त्वग्रहणके कारण	३१०-३११।१७२
१४ तिर्यंच जीवों की गति भागति	३१२-३१६।१७२
१५ तिर्यंच जीवों के प्रमाण का चौतीस पर्वों में	
अल्प बहुत्व	पृ० १७३-१७७
१६ तिर्यंचों की आकश्यकता (३१७-३२२)	
सर्व जन्म्य अवगाहना का स्वामी	३१७।१७७
सर्वोत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण	३१८।१७७
एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण	३१९।१७८
पर्याप्त त्रस जीवों में जन्म्य अवगाहना के स्वामी	३२०।१७८
अवगाहना के विकल्पों का क्रम	पृ० १७८
त्रीन्द्रिय जीव (गोमटी) की उत्कृष्ट अवगाहना	पृ० २०३
चतुरिन्द्रिय जीव (जमर) की उत्कृष्ट अवगाहना	२०४
द्वीन्द्रिय जीव (शंख) की उत्कृष्ट अवगाहना	२०५
बादर व. का. प्रत्येक शरीर नि. प. कमल की उत्कृष्ट अवगाहना	२०७
पंचेन्द्रिय जीव (महामस्य) की सर्वोत्कृष्ट अवगाहना	२०९
अधिकारान्त मंगल	३२३।२१४

विषय	गाथा/पृ० सं०	विषय	गाथा/पृ० सं०
षष्ठ महाधिकार		व्यन्तरदेवों के नगरों का वर्णन	
(गाथा १-१०३ पृष्ठ २१५-२४१)		व्यन्तरेन्द्रों के परिवार देव	
मंगलाचरण	१।२१५	प्रतीन्द्र एवं सामानिकादि देवों का प्रमाण	६९।२३१
१७ अन्तराधिकारों का निरूपण	२।२१५	सप्त अनीक सेनाओं के नाम एवं प्रमाण	७१।२३२
१. व्यन्तर देवों का निवास क्षेत्र	५।२१६	प्रकीर्णकादि व्यन्तरदेवों का प्रमाण	७६।२३३
निवास, भेद, स्थान और प्रमाण	६।२१६	गणिका महत्तरियों के नगर	७८।२३४
कूट एवं जिनेन्द्र भवनों का निरूपण	११।२१७	नीचोपपाद व्यन्तरदेवों के निवासक्षेत्र	८०।२३४
अकृत्रिम जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा	१५।२१८	७. व्यन्तर देवों की आयु	८३।२३५
व्यन्तर-भवनों की अवस्थिति एवं संख्या	१८।२१९	८. व्यन्तर देवों का आहार	८७।२३६
भवनपुरों का निरूपण	२१।२१९	९. व्यन्तर देवों का उच्छ्वास	८९।२३७
भाषाओं का निरूपण	२३।२२०	१०. व्यन्तर देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र	९०।२३७
२. व्यन्तर देवों के भेद	२५।२२०	११. व्यन्तर देवों की शक्ति	९२।२३८
३. विविध ब्रह्म : संस्पृक्ष	२७।२२१	१२. व्यन्तर देवों का उत्प्रेष	९८।२३९
जिनेन्द्र प्रतिमाओं का निरूपण	३०।२२१	१३. व्यन्तर देवों की संख्या	९९।२३९
४. व्यन्तर देवों के कुल भेद	३२।२२२	१४. एक समय में जन्म-मरण का प्रमाण	१००।२४०
५. नाम : किसर जाति के दस भेद	३४।२२२	१५. प्रायुबन्धक भाव,	१०१।२४०
किम्पुरुष जाति के दस भेद	३६।२२३	१६. सम्पत्तवग्रहण विधि	१०१।२४०
महोदग जाति के दस भेद	३८।२२३	१७. गुणस्वानादि विकल्प	१०१।२४०
गन्धर्व जाति के दस भेद	४०।२२४	व्यन्तरदेव सम्बन्धी जिनभवनों का	
यक्ष देवों के १२ भेद	४२।२२४	प्रमाण	१०२।२४०
राक्षसों के ७ भेद	४४।२२४	अधिकारान्त मंगलाचरण	१०३।२४१
भूतदेवों के ७ भेद	४६।२२५	सप्तम महाधिकार	
दिशाचदेवों के १४ भेद	४८।२२५	(गाथा १-६२४, पृष्ठ २४२-४४२)	
गणिका महत्तरियों के नाम	५०।२२६	मंगलाचरण	१।२४२
व्यन्तरों के शरीर वर्ण का निर्देश	५५।२२६	१७ अन्तराधिकारों का निर्देश	२।२४२
६ वज्रिण-उत्तर इन्द्रों का निर्देश	५९।२२७	१. ज्योतिष देवों का निवास क्षेत्र	५।२४३
व्यन्तर देवों के नगरों के आश्चर्यरूप द्वीप	६०।२२६	प्राम्य क्षेत्र का प्रमाण	६।२४३
नगरों के नाम एवं उनका अवस्थान	६१।२२९	२. ज्योतिष देवों के भेद	७।२४४
आठों द्वीपों में इन्द्रों का निवास विभाग	६२।२२९	वासवत्रय से उनका अन्तराल	७।२४४

विषय	गाथा/पृ० सं०
पूर्व पश्चिम दिशा में अन्तराल का प्रमाण	६।२४५
दक्षिण उत्तरदिशा में अन्तराल का प्रमाण	१०।२४६
३. ज्योतिष देवों की संख्या का निर्देश	११।२४६
इन्द्रस्वरूप चन्द्रज्योतिषी देवों का प्रमाण	२२।२४७
प्रतीग्रस्वरूप सूर्य ज्योतिषीदेवोंका प्रमाण	१४।२४७
अठ्ठासी ग्रहों के नाम	१५।२४७
सम्पूर्ण ग्रहों की संख्या का प्रमाण	२३।२४९
एक-एक चन्द्र के नक्षत्रों का प्रमाण एवं उनके नाम	२५।२४९
समस्त नक्षत्रों का प्रमाण	२६।२५०
एक चन्द्र सम्बन्धी ताराओं का प्रमाण	३१।२५०
ताराओं के नामों के उपदेश का अभाव	३२।२५१
समस्त ताराओं का प्रमाण	३३।२५१
४. विष्णुस : चन्द्रमण्डलों की प्ररूपणा	३६।२५१
चन्द्रप्रासादों का वर्णन	५०।२५४
चन्द्र के परिवार देव-देवियों का निरूपण	५७।२५५
चन्द्र विमान के बाह्य देवों का आकार एवं संख्या	६३।२५६
सूर्य मण्डलों की प्ररूपणा	६५।२५७
सूर्य के परिवार देव देवियों का निरूपण	७६।२५९
सूर्य विमान के बाह्य देवों का आकार एवं उनकी संख्या	८०।२६०
ग्रहों का अवस्थान	८२।२६१
बुध नगरों की प्ररूपणा	८३।२६१
बुधग्रह के नगरों की प्ररूपणा	८९।२६२
गुरुग्रह के नगरों की प्ररूपणा	९२।२६३
मंगलग्रह के नगरों की प्ररूपणा	९६।२६३
शनिग्रह के नगरों की प्ररूपणा	९९।२६४
अवशेष ८३ ग्रहों की प्ररूपणा	१०१।२६४

विषय	गाथा/पृ० सं०
नक्षत्र नगरियों की प्ररूपणा	१०४।२६५
तारा नगरियों की प्ररूपणा	१०८।२६६
ताराओं के भेद व उनके विस्तार का प्रमाण	११०।२६६
ताराओं का अन्तराल एवं अन्य वर्णन	११२।२६६
५. परिमाण : चन्द्रादि देवों के नगरादि का प्रमाण	११४।२६९
लोकविभागानुसार ज्योतिषनगरों का बाहुल्य	११५।२६९
६. संचार : चन्द्रविमानों की संचार भूमि	११६।२६९
चन्द्रगती के विस्तारादि का प्रमाण	११९।२७०
सुमेरुपर्वत से चन्द्र की अभ्यन्तर वीथी का अन्तर प्रमाण	१२०।२७०
चन्द्र की ध्रुवराशि का प्रमाण	१२२।२७१
चन्द्र की सम्पूर्ण गतियों के अन्तराल का प्रमाण	१२४।२७१
चन्द्र की प्रत्येक वीथी का अन्तराल प्रमाण	१२५।२७२
चन्द्र के प्रतिदिन गमन क्षेत्र का प्रमाण	१२७।२७२
द्वितीयादि वीथियों में स्थित चन्द्रों का सुमेरुपर्वत से अन्तर	१२८।२७३
प्रथम वीथी में स्थित दोनों चन्द्रों का पारस्परिक अन्तर	१४३।२७६
चन्द्रों की अन्तराल दृष्टि का प्रमाण	१४५।२७७
प्रथम पथ में दोनों चन्द्रों का पारस्परिक अन्तर	१४६।२७७
चन्द्रपथ की अभ्यन्तर वीथी का परिधि प्रमाण	१६१।२८०
परिधि के प्रक्षेप का प्रमाण	१६२।२८१

विषय	गाथा/पृ० सं०
चन्द्र की द्वितीय आदि पथों की परिधि	१६५।२८१
चन्द्र के गमनक्षण्ड एवं सनका अतिक्रमण काल	१८०।२८५
चन्द्र के बीचों परिभ्रमण का काल	१८१।२८५
प्रत्येक बीचों में चन्द्र के एक मुहूर्त-परिमित गमनक्षेत्र का प्रमाण	१८५।२८६
राहु विमान का वर्णन	२०१।२८२
राहुओं के भेद	२०५।२८२
पूर्णिमा की पहिचान	२०६।२८३
कृष्ण पक्ष होने का कारण	२०७।२८३
अमावस्या की पहिचान	२१२।२८४
चन्द्र दिवस का प्रमाण	२१३।२८४
१५ दिन पर्यन्त चन्द्रकला की प्रतिदिन की हानि का प्रमाण	२१४।२८४
मत्तान्तर से कृष्ण व शुक्ल पक्ष होने का कारण	२१५।२९५
चन्द्रग्रहण का कारण एवं काल	२१६।२८५
सूर्य की संसारभूमि का प्रमाण व अवस्थान	२१७।२९५
सूर्योच्चियों का प्रमाण, विस्तारादि और अन्तराल का वर्णन	२१८।२८६
सूर्य की प्रथम बीचों का और मेरु के बीच अन्तर-प्रमाण	२२१।२९६
सूर्य की ध्रुवराशि का प्रमाण	२२२।२८६
सूर्यपथों के बीच अन्तर का प्रमाण	२२३।२९७
सूर्य के प्रतिदिन गमनक्षेत्र का प्रमाण	२२५।२८७
मेरु से बीचियों का अन्तर प्राप्त करने का विधान	२२६।२८८

विषय	गाथा/पृ० सं०
प्रथमादि पथों में मेरु से सूर्य का अन्तर	२२८।२८८
मध्यम पथ में सूर्य और मेरु का अन्तर	२३१।२८९
बाह्य पथ स्थित सूर्य का मेरु से अन्तर	२३२।२८६
दोनों सूर्यों का पारस्परिक अन्तर	२३४।३००
सूर्यों की अन्तराल वृद्धि का प्रमाण	२३६।३००
सूर्यों का अभीष्ट अन्तराल प्राप्त करने का विधान	२३७।३००
द्वितीयादि पथों में सूर्यों का पारस्परिक अन्तर प्रमाण	२३८।३०१
सूर्य का विस्तार प्राप्त करने की विधि	२४१।३०२
सूर्य-मागों का प्रमाण प्राप्त करने की विधि	२४३।३०२
चार क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त करने की विधि	२४४।३०३
मेरुपरिधि का प्रमाण	२४६।३०३
क्षेमा और अवध्या के प्रणिधि भागों की परिधि	२४७।३०४
क्षेमपुरी और अवध्या के प्रणिधिभाग में परिधि का प्रमाण	२४८।३०४
वज्रपुरी और अरिष्टा के प्रणिधिभागों की परिधि	२४९।३०५
अक्रपुरी और अरिष्टपुरी की परिधि	२५०।३०५
खड्गा और अपराजिता की परिधि	२५१।३०६
मंजूषा और जयन्ता पर्यन्त परिधि प्रमाण	२५२।३०६
बीषणिपुर और वैजयन्ती की परिधि	२५३।३०६
विजयपुरी और पुण्डरीकिणी की परिधि	२५४।३०७
सूर्य की अन्त्यन्तर बीचों की परिधि	२५५।३०७
सूर्य के परिधि प्रक्षेप का प्रमाण	२५६।३०७
द्वितीयादि बीचियों की परिधि	२५८।३०८

विषय

गाथा/पृ० सं०

सूर्य के बाह्य पथ का परिधि प्रमाण	२६४।३०६
लवणसमुद्र के जलच्छिन्न भाग की परिधि का प्रमाण	२६५।३१०
समानकाल में विसर्ज्य प्रमाणवाली परिधियों का भ्रमण पूर्ण कर सकने का कारण	२६६।३१०
सूर्य के कुल गमनखण्डों का प्रमाण	२६७।३१०
गमनखण्डों का अतिक्रमण काल	२६८।३११
सूर्य का प्रत्येक परिधि में एक मुहूर्त का गमनक्षेत्र	२७०।३११
बाह्य बीधी में एक मुहूर्त का प्रमाणक्षेत्र	२७२।३१२
केतु दिग्गों का वर्णन	२७३।३१२
अभ्यन्तर और बाह्य बीधी में दिनरात का प्रमाण	२७८।३१३
रात्रि और दिन की हानिवृद्धि का चय प्राप्त करने की विधि एवं उसका प्रमाण	२८१।३१४
सूर्य के द्वितीयादि पथों में स्थित रहते दिन रात्रि का प्रमाण	२८३।३१५
सूर्य के मध्यम पथ में रहने पर दिन एवं रात्रि का प्रमाण	२८६।३१६
सूर्य के बाह्य पथ में रहते दिन रात्रि का प्रमाण	२८७।३१६
आतप एवं तपक्षेत्रों का स्वरूप	२८४।३१८
प्रत्येक आतप एवं तपक्षेत्र की सम्बाद्ध	२८५।३१८
प्रथम पथ स्थित सूर्य की परिधियों में तापक्षेत्र निकालने की विधि	२८६।३१८
प्रथम पथ स्थित सूर्य की क्रमशः दस परिधियों में तापपरिधियों का प्रमाण	२९७।३१९
द्वितीय पथ में तापक्षेत्र की परिधि	३०७।३२१
मध्यम पथ में तापक्षेत्र की परिधि	३०८।३२२

विषय

गाथा/पृ० सं०

बाह्य पथ में तापक्षेत्र का प्रमाण	३०६।३२२
लवणोदधि के छठे भाग की परिधि में तापक्षेत्र का प्रमाण	३१०।३२३
सूर्य के द्वितीय पथस्थित होने पर हविष्ठत परिधियों में तापक्षेत्र निकालने की विधि	३१२।३२३
सूर्य के द्वितीय पथ स्थित होने पर मेरु या वि परिधियों में तापक्षेत्र का प्रमाण	३१३।३२३
सूर्य के द्वितीय पथ स्थित होने पर अभ्यन्तर (प्रथम) बीधी में तापक्षेत्र का प्रमाण	३२२।३२६
द्वितीय पथ की द्वितीय बीधीका तापक्षेत्र	३२३।३२६
द्वितीय पथ की तृतीय बीधीका तापक्षेत्र	३२४।३२७
द्वितीय पथ की मध्यम बीधीका तापक्षेत्र	३२५।३२७
द्वितीय पथ की बाह्य बीधीका तापक्षेत्र	३२६।३२८
सूर्य के द्वितीय पथ में स्थित होने पर लवणसमुद्र के छठे भाग में तापक्षेत्र	३२७।३२८
सूर्य के तृतीय पथ में स्थित होने पर परिधियों में तापक्षेत्र प्राप्त करनेकी विधि	३२८।३२८
सूर्य के तृतीय पथ में स्थित होने पर मेरु या वि परिधियों में तापक्षेत्र का प्रमाण	३२९।३२९
सूर्य के तृतीय पथ में स्थित रहते अभ्यन्तर बीधी का तापक्षेत्र	३३८।३३१
सूर्य के तृतीय पथ में स्थित रहते द्वितीय बीधी का तापक्षेत्र	३३९।३३२
तृतीय बीधी का तापक्षेत्र	३४०।३३२
चतुर्थ बीधी का तापक्षेत्र	३४१।३३२
मध्यम पथ का तापक्षेत्र	३४२।३३२
बाह्य बीधी का तापक्षेत्र	३४३।३३३
लवणसमुद्र के छठे भाग में तापक्षेत्र	३४४।३३३
शेष बीधियों में तापक्षेत्र का प्रमाण	३४५।३३३

विषय	गाथा/पृ० सं०
सूर्य के बाह्य पथ में स्थित होने पर इच्छित परिधि में तापक्षेत्र निकालने की विधि	३४६।३३४
सूर्य के मेरु आदि की परिधियों में तापक्षेत्र का प्रमाण	३४७।३३४
सूर्य के बाह्य पथ में स्थित होने पर प्रथम पथ में तापक्षेत्र	३४६।३३७
सूर्य के द्वितीय बीधी में तापक्षेत्र	३४७।३३७
सूर्य के मध्यम पथ में तापक्षेत्र	३४८।३३७
सूर्य के बाह्यपथ में तापक्षेत्र	३४९।३३८
सूर्य के लवणसमुद्र के छठे भाग में तापक्षेत्र	३५०।३३८
सूर्य की किरणशक्तियों का परिणय	३५१।३३८
दोनों सूर्यों का तापक्षेत्र	३५२।३३९
सूर्य के प्रथम पथ में स्थित रहते रात्रि का प्रमाण	३५३।३३९
सूर्य के प्रथम इच्छित परिधि में तिमिर क्षेत्र प्राप्त करने की विधि	३५४।३३९
सूर्य के प्रथम मेरु आदि परिधियों में तिमिर क्षेत्र	३५५।३४०
सूर्य के प्रथम अन्तर बीधी में तमक्षेत्र	३७४।३४२
द्वितीय पथ में तमक्षेत्र	३७५।३४२
तृतीय पथ में तमक्षेत्र	३७६।३४३
मध्यम पथ में तमक्षेत्र	३७७।३४३
बाह्य पथ में तमक्षेत्र	३७८।३४३
लवण समुद्र के छठे भाग में तमक्षेत्र	३७९।३४४
सूर्य के द्वितीय पथ में स्थित रहते इच्छित परिधि में तिमिरक्षेत्र प्राप्त करने की विधि	३८०।३४६
सूर्य के मेरु आदि की परिधियों में तमक्षेत्र का प्रमाण	३८१।३४६
अन्तर पथ में तमक्षेत्र	३८०।३४९

विषय	गाथा/पृ० सं०
द्वितीय पथ में तमक्षेत्र	३९१।३४९
तृतीय पथ में तमक्षेत्र	३९२।३४९
मध्यमपथ में तमक्षेत्र	३९३।३५०
बाह्यपथ में तमक्षेत्र	३९४।३५०
लवणोदधि के छठे भाग में तमक्षेत्र	३९५।३५०
शेष परिधियों में तमक्षेत्र	३९६।३५१
सूर्य के बाह्य पथ में स्थित होने पर तमक्षेत्र का प्रमाण	३९७।३५१
सूर्य के बाह्य पथ में विवक्षित परिधि में तमक्षेत्र प्राप्त करने की विधि	३९८।३५१
सूर्य के बाह्य पथ में मेरु आदि की परिधियों में तमक्षेत्र का प्रमाण	३९९।३५२
सूर्य के बाह्य पथ में स्थित रहते प्रथम बीधी में तमक्षेत्र का प्रमाण	४००।३५४
द्वितीय बीधी में तमक्षेत्र का प्रमाण	४०१।३५४
तृतीय बीधी में तमक्षेत्र का प्रमाण	४०२।३५४
चतुर्थ बीधी में तमक्षेत्र	४०३।३५४
मध्यम पथ में तमक्षेत्र का प्रमाण	४०४।३५५
सूर्य के बाह्य पथ में स्थित रहते बाह्य पथ में तमक्षेत्र	४०५।३५५
लवणोदधि के छठे भाग में तमक्षेत्र का प्रमाण	४०६।३५५
दोनों सूर्यों के तिमिर क्षेत्र का प्रमाण	४०७।३५६
तिमिर क्षेत्र की हानिवृद्धि का क्रम	४०८।३५६
आतप और तिमिर क्षेत्रों का क्षेत्रफल	४०९।३५६
दोनों सूर्य सम्बन्धी आतप एवं तम का क्षेत्रफल	४१०।३५७
ऊर्ध्व और अधः स्थानों में सूर्यों के आतप क्षेत्र का प्रमाण	४११।३५८

विषय	गाथा/पृ० सं०
सूर्य के उदय अस्त के विवेचन का निर्देश	४२३।३५८
जोषा और धनुष की कृति प्राप्त करने की विधि	४२४।३५८
हरिवर्ष क्षेत्र के धारा का प्रमाण	४२५।३५९
सूर्य के प्रथम पथ से हरिवर्ष क्षेत्र के धारा का प्रमाण	४२६।३५९
प्रथम पथ का सूची व्यास	४२८।३६०
प्रथम पथ से हरिवर्ष क्षेत्र के धनुष की कृति का प्रमाण	४२९।३६०
प्रथम पथ से हरिवर्ष क्षेत्र के धनुः पृष्ठ का प्रमाण	४३०।३६०
निषध पर्वत की उपरिम पृथ्वी का प्रमाण	४३१।३६१
चक्षुस्पर्श के उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण	४३२।३६१
भरतक्षेत्र के चक्रवर्ती द्वारा सूर्यविम्ब में स्थित जिनविम्ब का दर्शन	४३४।३६२
ऐरावत क्षेत्र के चक्रवर्ती द्वारा सूर्यस्थित जिनविम्ब-दर्शन	४३६।३६३
प्रथम पथ में स्थित सूर्य के भरतक्षेत्र में उदित होने पर क्षेमा आदि सोलह क्षेत्रों में रात दिन का विभाग	४३७।३६३
प्रथम पथ में स्थित सूर्य के ऐरावत क्षेत्र में उदित होने पर अवध्या आदि १६ नगरियों में रात दिन का विभाग	४४३।३६५
भरत ऐरावत में मध्याह्न होने पर विदेह में रात्रि का प्रमाण	४४६।३६६
नील पर्वत पर सूर्य का उदय अस्त	४४७।३६६
भरत ऐरावत क्षेत्र स्थित चक्रवर्तियों द्वारा अदृश्यमान सूर्य का प्रमाण	४४८।३६६

विषय	गाथा/पृ० सं०
दोनों सूर्यों के प्रथम मार्ग से द्वितीय मार्ग में प्रविष्ट होने की दिशाएँ	४५१।३६७
सूर्य के प्रथम और बाह्य मार्ग में स्थित रहते दिन-रात्रि का प्रमाण	४५२।३६७
सूर्य के उदय स्थानों का निरूपण	४५६।३६८
ग्रहों का निरूपण	४५९।३६९
चन्द्रपथों में संचार करनेवाले नक्षत्र	४६१।३७०
प्रत्येक नक्षत्र के ताराओं की संख्या	४६५।३७२
प्रत्येक तारा का आकार	४६७।३७२
कृतिका आदि नक्षत्रों की परिवार ताराएँ और सकल ताराएँ	४७०।३७३
अधन्य, उत्कृष्ट और मध्यम नक्षत्रों के नाम तथा इन तीनों के गगनखण्डों का प्रमाण	४७२।३७६
अभिजित् नक्षत्र के गगनखण्ड	४७४।३७६
एक मुहूर्त के गगनखण्ड	४७५।३७६
सर्व गगनखण्डों का प्रमाण और आकार	४७६।३७७
सर्व गगनखण्डों का अतिक्रमण काल	४७७।३७७
चन्द्र की प्रथम वीथी में स्थित १२ नक्षत्रों का एक मुहूर्त का गगनक्षेत्र	४८०।३७८
चन्द्र की तीसरी वीथी स्थित नक्षत्रों का गगनक्षेत्र	४८२।३७८
कृतिका नक्षत्र का एक मुहूर्त का गगनक्षेत्र	४८३।३७९
चित्रा और रोहिणी का एक मुहूर्त का गगनक्षेत्र	४८४।३७९
विशाखा नक्षत्र का एक मुहूर्त का गगनक्षेत्र	४८६।३८०
अनुराधा नक्षत्र का एक मुहूर्त का गगनक्षेत्र	४८७।३८०

विषय	गाथा/पृ० सं०
ज्येष्ठा नक्षत्र का एक मुहूर्त का गमनक्षेत्र	४८८।३८०
पृथ्वादि ८ नक्षत्रों में से प्रत्येक के गमन क्षेत्र का प्रमाण	४८९।३८१
नक्षत्रों के मण्डल क्षेत्रों का प्रमाण	४९१।३८१
स्वाति आदि पाँच नक्षत्रों की अवस्थिति	४९३।३८२
कृत्तिका आदि नक्षत्रों के उदय एवं अस्त आदि की स्थिति	४९५।३८२
जम्बूद्वीपस्थ चर एवं घचर ताराओं का विवरण	४९६।३८३
चन्द्र से तारा पर्यन्त ज्योतिषीदेवों के गमन विशेष	४९८।३८४
सूर्य एवं चन्द्र के अयन और उनमें दिन-रात्रियों की संख्या	५००।३८५
अभिजित् नक्षत्र के गमन खण्ड	५०३।३८५
नक्षत्र, चन्द्र एवं सूर्य द्वारा एक मुहूर्त में साधने योग्य गमनखण्डों का प्रमाण	५०८।३८६
सूर्य की अपेक्षा चन्द्र एवं नक्षत्र के अधिक गमनखण्ड	५१०।३८७
सूर्य के तीस मुहूर्तों के गमनखण्डों का प्रमाण	५११।३८७
त्रैराशिक द्वारा प्राप्त १८६० नक्षत्रखण्डों के गमन-मुहूर्त का काल	५१२।३८८
नक्षत्र के तीस मुहूर्तों के अधिक नक्षत्रखण्ड	५१४।३८८
त्रैराशिक द्वारा प्राप्त १५० नक्षत्रखण्डों का अधिकतम काल	५१५।३८९
सूर्य और चन्द्र की नक्षत्रभुक्तिका विधान	५१७।३८९
सूर्य के साथ अभिजित् नक्षत्र का भुक्तिकाल	५१८।३८९

विषय	गाथा/पृ० सं०
सूर्य के साथ जघन्य नक्षत्रों का भुक्तिकाल	५२०।३९०
„ „ उत्कृष्ट नक्षत्रों „ „	५२१।३९०
„ „ मध्यम नक्षत्रों „ „	५२२।३९१
चन्द्र के साथ अभिजित् का भुक्तिकाल	५२३।३९१
„ „ जघन्य नक्षत्रों का भुक्तिकाल	५२५।३९२
„ „ मध्यम „ का योग	५२६।३९२
„ „ उत्कृष्ट „ „	५२७।३९३
सूर्य सम्बन्धी अयन	५२८।३९३
दक्षिण एवं उत्तर अयनों में आवृत्ति संख्या	५२९।३९३
एक युग के विषुवों की संख्या	५३०।३९४
तिथि, पक्ष और वर्ष निकालने की विधि	५३१।३९४
आवृत्ति और विषुव के नक्षत्र प्राप्त करने की विधि	५३२।३९५
युग की पूर्णता एवं उसके प्रारम्भ की तिथि और दिन आदि	५३३।३९५
दक्षिणायन सूर्य की द्वितीय और तृतीय आवृत्ति	५३४।३९५
चतुर्थ और पंचम आवृत्ति	५३५।३९५
सूर्य सम्बन्धी पाँच उत्तरावृत्तियाँ	५३७।३९६
युग के वस अयनों में विषुवों के वर्ष, तिथि और नक्षत्र	५४१।३९७
उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालों के दोनों अयनों का एवं विषुवों का प्रमाण	५४१।३९८
लवणसमुद्र से पुष्करार्थ पर्यन्त के चन्द्र बिम्बों का निवेदन	५४४।४०१
चन्द्र के अन्त्यस्तर पथ में दिष्ट होने पर प्रथम पथ व द्वीपसमुद्र जगती के बीच अन्तराल	५४८।४०२

विषय

गाथा पृ० सं०

लवणसमुद्र में अम्यन्तर बीधी और जगती के अन्तराल का प्रमाण	५६०।४०२
घातकी खण्ड द्वीप में जगती से प्रथम बीधी का अन्तराल	५६१।४०३
कालोदधि में जगती से प्रथम बीधीगत चन्द्र का अन्तराल	५६२।४०३
पुष्करार्धद्वीप में जगती से प्रथम बीधीगत चन्द्र का अन्तराल	५६३।४०३
दो चन्द्रों का पारस्परिक अन्तर प्राप्त करने की विधि	५६४।४०४
लवण समुद्रगत चन्द्रों का अन्तराल प्रमाण	५६७।४०४
घातकी खण्डस्थ चन्द्रों का पारस्परिक अन्तर प्रमाण	५६८।४०५
कालोदधि स्थित चन्द्रों का अन्तर प्रमाण	५६९।४०५
पुष्करार्धस्थित चन्द्रों का अन्तरप्रमाण	५७०।४०६
चन्द्रकिरणों की गति	५७१।४०६
लवणसमुद्रादि में चन्द्रबीधियोंका प्रमाण	५७२।४०६
लवणोदधि भादि में चन्द्र की मुहूर्त परिमित गति का प्रमाण प्राप्त करने की विधि	५७३।४०७
लवणसमुद्रादि में चन्द्रों की शेष प्ररूपणा	५७४।४०७
लवणसमुद्रादि में सूर्यों का प्रमाण	५७५।४०७
उपयुक्त सूर्यों का अवस्थान, प्रत्येक का चारक्षेत्र और चारक्षेत्र का विस्तार	५७६।४०८
बीधियों का प्रमाण एवं विस्तार	५७८।४०८
लवणसमुद्रादि में प्रत्येक सूर्य के बीच तथा प्रथमपथ एवं जगती के मध्य का अन्तर प्राप्त करने की विधि	५७९।४०८
लवणसमुद्र में प्रत्येक सूर्य का और जगती से प्रथम पथ का अन्तराल	५८१।४०९

विषय

गाथा/पृ० सं०

घातकी खण्डस्थ सूर्य भादि के अन्तर प्रमाण	५८३।४०९
कालोदधि में स्थित सूर्य आदि के अन्तर प्रमाण	५८५।४१०
पुष्करार्धगत सूर्यादि के अन्तर प्रमाण	५८७।४१०
जम्बूद्वीप में अश्लिष मार्ग से अम्यन्तर में किरणों की गति का प्रमाण	५८०।४११
लवणसमुद्र में जम्बूद्वीपस्थ चन्द्रादि की किरणों की गति का प्रमाण	५८१।४११
जम्बूद्वीपस्थ अम्यन्तर और बाह्य पथ स्थित सूर्य की किरणों की गति का प्रमाण	५९२।४१२
लवणसमुद्रादि में किरणों का फैलाव	५८४।४१३
लवणसमुद्रादि में सूर्यबीधियों की संख्या	५८५।४१३
प्रत्येक सूर्य की मुहूर्त परिमित गति का प्रमाण	५८७।४१३
लवणसमुद्रादि में सूर्यों की शेष प्ररूपणा	५९८।४१४
लवणसमुद्रादि में ग्रह संख्या	५९९।४१४
लवणसमुद्रादि में नक्षत्र संख्या	६०१।४१४
नक्षत्रों का शेष कथन	६०३।४१५
लवणसमुद्रादि चारों की ताराओं का प्रमाण	६०४।४१५
ताराओं का शेष निरूपण	६०८।४१६
लवणसमुद्रादि चारों की स्थिर ताराओं का प्रमाण	६०९।४१६
मनुष्यलोक स्थित सूर्यचन्द्रों का विभाग	६११।४१७
मनुष्यलोक स्थित सर्वग्रह, नक्षत्र और अस्थिर स्थिर ताराओं का प्रमाण	६१२।४१७
ग्रहों की संवरण विधि	६१५।४१८
उपोत्तिष देवों की शेष प्ररूपणा का निरूपण	६१६।४१८

विषय	गाथा/पृ० सं०
७. अङ्गाई द्वीप के बाहर अन्तर ज्योतिषियों की प्रकृति	६९७।४९९
मानुषोत्तर से स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त स्थित चन्द्र सूर्य की विन्यास विधि	४१९
प्रत्येक द्वीप समुद्र के प्रथम बलय के चन्द्र सूर्य प्राप्त करने की विधि	६१८।४२१
प्रत्येक बलय में चय का प्रमाण	४२१
समस्त ज्योतिष देवों का प्रमाण	४२६
८. ज्योतिषी देवों की आयु का निरूपण	६९६।४४९
९-१७. आहारादि प्रकृतिगणों का निर्देशन	६२९।४४९
शरीर के उल्लेख आदि का निर्देश	६२३।४४२
अधिकारान्त अंगलाक्षण	६२४।४४२
अष्टम महाधिकार	
(गाथा १—७२७, पृष्ठ ४४३—६१८)	
अंगलाक्षण	९।४४३
इक्कीस अन्तराधिकारों का निर्देश	२।४४३
१. सुरलोक निवासलक्षण	६।४४४
२. विन्यास : स्वर्ग पटलों की स्थिति एवं इन्द्रक विमानों का पारस्परिक अन्तराल	८।४४५
६३ इन्द्रक विमानों के नाम	१२।४४५
प्रथम और अन्तिम इन्द्रक विमानों के विस्तार का प्रमाण	१८।४४६
इन्द्रक विमानों की हानिवृद्धि का प्रमाण एवं उसके प्राप्त करने की विधि	१९।४४७
इन्द्रक विमानों का पृथक्-पृथक् विस्तार	२१।४४७
अतु इन्द्रकादि के श्रेणीबद्ध विमानों के नाम एवं उनका विन्यास क्रम	८२।४६१
प्रत्येक इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानों के नाम	९८।४६४
श्रेणीबद्ध विमानों की अवस्थिति	१०१।४६५
श्रेणीबद्ध विमानों के तिर्यग् अन्तराल और विस्तार का प्रमाण	१०७।४६७

विषय	गाथा/पृ० सं०
शेष द्वीपसमुद्रों पर श्रेणीबद्धों के विन्यास का नियम	१०८।४६७
श्रेणीबद्ध विमानों की आकृति आदि	१०९।४६७
प्रकीर्णक विमानों का अवस्थान आदि	११०।४६७
तट वेदी	११२।४६८
३. भेद : कल्प और कल्पातीत का विभाग	११४।४६८
कल्प और कल्पातीत विमानों का अवस्थान	११८।४६९
४. नाम : बारह कल्प एवं कल्पातीत विमानों के नाम	१२०।४७०
आदिष्य इन्द्रक के श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकों के नाम	१२३।४७०
सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक के श्रेणीबद्ध विमानों के नाम	१२५।४७१
५. सीमा : कल्प एवं कल्पातीत विमानों की स्थिति और सीमा	१२९।४७१
६. संख्या : सौधर्म आदि कल्पों के आश्रित श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक विमानों का निर्देश	१३७।४७४
समस्त विमानों की संख्या का निर्देश	१४९।४७६
सौधर्मादि कल्पस्थित श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या प्राप्त करने हेतु मुख एवं गच्छ का प्रमाण	१५५।४७८
संकलित धन प्राप्त करने की विधि	१६०।४८०
सभी कल्पाकल्पों के पृथक्-पृथक् श्रेणीबद्ध और इन्द्रक विमानों का प्रमाण	१६१।४८१
प्रकीर्णक विमानों का अवस्थान और उनकी पृथक्-पृथक् संख्या	१६८।४८३
प्रकारान्तर से विमान संख्या	१७८।४८७
संख्यात योजन विस्तारवाले विमानों की संख्या	१८६।४८८
असंख्यात योजन विस्तारवाले विमानों की संख्या	१९२।४९०

विषय	पाया/पृ० सं०
विमानतलों के बाहुल्य का प्रमाण	१६८।४६१
स्वर्ग विमानों का वर्ण	२०३।४६३
विमानों के आचार का कथन	२०६।४६४
इन्द्रकादि विमानों के ऊपर स्थित प्रासाद	२०८।४६४
७. इन्द्रविभूति : इन्द्रों के परिवार देव, नाम और पद	२१४।४६५
प्रतीन्द्र	२१८।४६६
सामानिक देव	२१९।४६६
आगस्त्रिभुव और लोकपाल देव	२२३।४६७
तनुरक्षक देव	२२४।४६७
अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य परिषद् के देव	२२८।४६८
अनीक देव	२३१।५००
सात अनीकों की अपनी अपनी प्रथमादि कक्षाओं में स्थित वृषभादिकों के वर्ण का वर्णन	२४७।५०४
प्रत्येक कक्षा के अन्तराल में बजनेवाले वादित्त	२५४।५०५
वृषभादि सेनाओं की शोभा का वर्णन	२५५।५०५
प्रत्येक कक्षा के नर्सक देवों के कार्य	२६०।५०६
सप्त अनीकों के अधिपतिदेव	२७३।५०८
वाहमदेवगत ऐरावत हाथी	२७८।५०९
इन्द्र के परिवार देवों के परिवार देवों का प्रमाण	२८१।५१०
लोकपालों के सामन्त देवों का प्रमाण	२८७।५१०
दक्षिणेन्द्रों के लोकपालों के पारिषद् देवों का प्रमाण	२८९।५११
उत्तरेन्द्रों के लोकपालों के पारिषद् देवों का प्रमाण	२९१।५११
लोकपालों के सामन्त देवों के तीनों पारिषदों का प्रमाण	२९२।५१२
लोकपालों के अनीकादि परिवार देव	२९३।५१४
लोकपालों के विमानों का प्रमाण	२९७।५१४

विषय	पाया/पृ० सं०
इन्द्रादि की ज्येष्ठ एवं परिवार देवियाँ	३०५।५१६
इन्द्रों की बल्लभा और परिवार बल्लभा देवियाँ	३१२।५१७
सब इन्द्रों की प्राणबल्लभाओं के नाम	३१७।५१८
प्रतीन्द्रादिक तीन की देवियाँ	३२०।५२०
लोकपालों की देवियाँ	३२१।५२०
लोकपालों में से प्रत्येक के सामानिक देवों की देवियाँ	३२४।५२०
इन्द्रों में तनुरक्षक और पारिषद् देवों की देवियाँ	३२५।५२१
अनीक देवों की देवियाँ	३३०।५२१
देवियों की उत्पत्ति का विधान	३३३।५२४
सौधर्मादिकल्पों में प्रदीचार का विधान	३३८।५२५
इन्द्रों के निवास स्थानों का निर्देश	३४१।५२५
ओणियाँ एवं उनके मध्यस्थित नगरों के प्रमाण आदि का निर्देश	३५४।५२६
प्राकारों का उत्सेध आदि	३६१।५३०
गोपुर द्वारों का प्रमाण आदि	३६५।५३१
राजांगण के मध्यस्थित प्रासादों का विवेचन	३७०।५३४
प्रासादों के उत्सेधादि का कथन	३७४।५३४
सिंहासन एवं इन्द्रों का कथन	३७७।५३५
प्रत्येक इन्द्र की समस्त देवियों का प्रमाण	३८२।५३६
मतान्तर से सौधर्मेन्द्र की देवियों का प्रमाण	३८०।५३८
इन्द्रों की सेवाविधि	३८१।५३८
प्रधान प्रासाद के अतिरिक्त अन्य चार प्रासाद	३८९।५३९
इन्द्र के प्रासादों के सम्मुख स्थित स्तम्भ	४०१।५४०
इन्द्र भवनों के सामने न्यग्रोध वृक्ष	४०८।५४१
सुधर्मा सभा	४१०।५४२
उपपाद सभा	४१३।५४२

विषय	गाथा/पृ० सं०	विषय	गाथा/पृ० सं०
जिनेन्द्रप्रासाद	४१४।५४२	१४. लौकान्तिक देवों का स्वरूप	६३७।५९७
देवियों और वस्त्रभाओं के भवन	४१६।५४३	मतान्तर से लौकान्तिक देवों की स्थिति	
द्वितीयादि देवियों का कथन	४२४।५४६	एवं संख्या	६५८।६०२
उपवन प्ररूपणा	४३२।५४८	ली. देवों के उत्सेधादि का कथन	६६३।६०३
लोकपालों के श्रीङ्गानगर	४३६।५४८	ली. देवों में उत्पत्ति का कारण	६६९।६०४
गणिका महत्तरियों के नगर	४३८।५४९	१५. गुणस्थानादिक का स्वरूप :	
सौम्येन्द्र आदि के यान-विमान	४४१।५४९	२० प्ररूपणाएँ	६८६।६०९
इन्द्रों के मुकुट चिह्न	४५१।५५१	१६. सम्भवत्त्वग्रहण के कारण	७००।६११
अहमिन्द्रों की विशेषता	४५५।५५४	१७. वैमानिक देव मर कर कहाँ कहाँ जन्म	
८. आयु : प्रत्येक पटल में देवों की आयु	४६१।५५५	लेते हैं	७०३।६१२
उत्कृष्ट आयु	४६५।५५५	१८. अवधिज्ञान :	७०८।६१३
अधन्य आयु	५१३।५६६	१९. देवों की संख्या : वैमानिक देवों का	
इन्द्रों के परिवार देवों की आयु	५१६।५६६	पृथक्-पृथक् प्रमाण	७१४।६१५
इन्द्र देवियों की आयु	५२८।५६६	२०. देवों की शक्ति :	७२०।६१६
इन्द्र के परिवार देवों की देवियों की		२१. चारों प्रकार के देवों की योनि प्ररूपणा	७२३।६१७
आयु	५३६।५७३	अधिकारान्त मंगलाचरण	७२७।६१८
प्रथम युगल के पटलों में आयु का		नवम महाधिकार	
प्रमाण	५७४	(गाथा १—८२, पृ. ६१६—६३६)	
९. जन्म-मरण का अन्तर	५४५।५७८	मंगलाचरण व प्रतिज्ञा	१।६१९
मतान्तर से विरह काल	५५२।५७९	पाँच अन्तराधिकारों का निर्देश	२।६१९
१०. आहार : सपरिवार इन्द्रों के आहार		१. सिद्धों का निवास क्षेत्र	३।६२०
का काल	५५४।५८२	२. सिद्धों की संख्या	५।६२१
११. श्वासीच्छ्वस	५६३।५८३	३. सिद्धों की अवगाहना	६।६२१
१२. देवों के शरीर का उत्सेध	५६५।५८४	४. सिद्धों का मुख	१७।६२४
१३. वेद्यायुधन्यक परिणाम	५६८।५८५	५. सिद्धत्व के हेतुभूत भाव	२२।६२५
देवों में उत्पद्यमान जीवों का स्वरूप	५८०।५८७	कुन्धुनाथ जिनेन्द्र से वर्धमान जिनेन्द्र को	
उत्पत्ति समय में देवों की विशेषता	५९०।५८९	क्रमशः नमस्कार	७०।६३४
धेरी के शब्द श्रवण के बाद होनेवाले		पंच परमेष्ठी को नमस्कार	७८।६३५
विविध क्रिया कलाप	५९४।५८९	भरत क्षेत्रगत २४ जिनों को नमन	७९।६३५
जिनपूजा का प्रक्रम	५९६।५९०	॥ ग्रन्थान्त मंगलाचरण	८०।६३६
देवों का सुखोपभोग	६१३।५९२	॥ ग्रन्थका प्रमाण एवं भाषावि	८१।६३६
समस्काय का निरूपण	६२०।५९४	॥ टीकाकर्त्री माताजी की प्रशस्ति	६३७
कृष्णराजियों का अल्पबहुत्व	६३२।५९६	॥ गाथानुक्रमणिका	६४१

शुद्धि-पत्र

[तिलोपपणत्ती-तृतीय खण्ड]

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
६	२० से २४	इस सम्पूर्ण अनुच्छेद को निरस्त समझें ।	
६	४	द्वीप-समुद्रक	द्वीप-समुद्र के
१०	२०	२७१८७५	२७१८७५ योजन
१०	२१	२६२५००	२६२५०० योजन
११	१२	इच्छिय-दवद्धि	इच्छिय-दीवद्धि
१२	९	अथ	अर्थ
१३	१५	कालादक	कालोदक
१३	१८	पुष्कवरद्वीपका	पुष्करवरद्वीपको
२५	८	ब्रह्मन्द	ब्रह्मोन्द
३६	४	(४०००)	(८४०००)
३६	२३	और इतने	और इतने ही
३७	१०	य	ये
४७	५	३ र	३ रे
५१	८	सहस्राणि	सहस्राणि
५४	५	६२। को २।४।८	६२।२ को । को २।४।८
५६	५	३०००००।०००००	३००००० × १०००००
६२	१०	ग्यारहव	ग्यारहवें
९४	१८	(१३००००००) ^१ — १	(१३००००००) ^२ — १
१०९	७	($\frac{९ जग०}{२८} - \frac{११२५०००}{३}$)	($\frac{९ जग०}{३ \times २८} - \frac{११२५०००}{३}$)
११०	२३	दिवकंभं	दिवखंभं
११७	२, ६	क्षेत्रफल	क्षेत्रफल
१२०	७	$\frac{\text{राजू}}{२} + ७५०००$ योजन	$\frac{\text{राजू}}{४} + ७५०००$ योजन

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
१२४	२१	पचास	पचहत्तर
१२४	२५, २६	९३७०	९३७५
१२४	२७	$\frac{९ \text{ राजू}}{३२}$, ९०६३०, ८१५६७०	$\frac{९ \text{ राजू}}{३२}$, ९०६२५, ८१५६२५
१२८	४	समुद्र का क्षेत्रफल	द्वीप का क्षेत्रफल
१३१	४	विशेषार्थ	विशेषार्थ
१३१	१६-१७	स्वयम्भूरमणद्वीप का क्षेत्रफल	स्वयम्भूरमण द्वीप से अधस्तन समस्त द्वीपों का सम्मिलित क्षेत्रफल
१३१	१८	$= (\frac{१}{२} \text{ राजू} + ६२५००)$	$= (\frac{१}{२} \text{ राजू} - ६२५००)$
१३३	विशेषार्थ तालिका	तीनों कॉलमों के शीर्षक इस प्रकार पढ़ें—आदिम सूची + प्रक्षेप; मध्यम सूची + प्रक्षेप । बाह्य सूची + प्रक्षेप ।	
१३९	४ तालिका	पक्षय ४	पक्षेय ४
१४२	३	असंखेज्जा	असंखेज्जा
१६०	तालिका क्र. २	त्रिन्द्रिय	त्रीन्द्रिय
१६२	१०	पर्याप्त चतुरिन्द्रिय	पर्याप्त पंचेन्द्रिय
१६९	२, ११	समुच्छिन्न	संमुच्छिन्न
१७७	७	अनन्तगुण	अनन्तगुणे
१७७	८	असंख्यातगुण	असंख्यातगुणे
१८०	५	जीवाण	जीवाणं
१८२	२	भाग स	भाग से
१८२	५, १३,	जीवाण	जीवाणं
१८३	१, ८, १५	जीवाण	जीवाणं
१९१	२६	जीवाण	जीवाणं
१९५	४	ना	नौ
२०४	६	पर्वत	पर्वत
२०४	१८	गोम्हीक	गोम्हीके
२१४	३	भठ्य	भठव
२१७	१५	कोदंडारि	कोदंडारि
२२८	क्रम सं० ४	तुम्बुरु	तुम्बुरु

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
२२९	१०	प्रभ कान्त, आवर्त	प्रभ, कान्त, आवर्त
२३४	३	एवं बिह	एवंबिह
२३५	३	००००,	२००००
२३६	१४	वर्ष पत्य	वर्ष, पत्य
२४३	८	शेष में	शेष में
२४३	१५	अक	अक
२४६	१३	बिम्बों	बिम्ब
२५६	२३	सफद	सफेद
२५८	२	करंत	फुरंत
२६८	तालिका ३ पंक्ति	घोड़	घोड़े
२६९	६	११ स ३५	११ से ३५
२७६	१५	साठु जुद	सठि-जुद
२९३	८	ससि-बिबां	ससि-बिबा
२९८	५	(की परिधि के प्रमाण)	इसे निरस्त समझें ।
२९९	(गाथार्थ) १३	कुछ अधिक पैंतालीस हजार पचहत्तर योजन है ॥२३१॥	पचहत्तर योजन अधिक पैंतालीस हजार है ॥२३१॥
२९९	१८	गाथा.....आया	इस पंक्ति को निरस्त समझें ।
३११	८	मुहूर्त	मुहूर्त
३२४	१०	५३२३१३३३	५३२३१३३३
३५८	२२	जीव की	जीवा की
३७७	४	य गगनखण्ड	ये गगनखण्ड
३८१	२	ज्येष्ठा के	ज्येष्ठा के
४०८	२३	बिबाणि फेलिस्ता, तत्तोणिय....	बिबाणि फेलिस्ता, तत्तोणिय
४२०	३	१४००००००	१४०००००० यो०
४२७	८	पत्यक अर्धच्छेद असंख्यात	पत्यके अर्धच्छेद असंख्यात
४३७	१६	देनपर	देने पर
४७१	१५	मण्णते	मण्णते

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
४८५	चित्र	उपरिन	उपरिम
५०६	६	॥ २५८ ॥	॥ २५६ ॥
५१३	तालिका पंक्ति २	कुबेर	कुबेर
५१३	ता.कॉलम ७, ९	देव, देवों के	देव, देवों के
५१६	६	पडिदादीणं	पडिदादीणं
५१८	१४	विनयसिरि	विणयसिरि
५२३	ता. कॉलम ७	प्रत्येक	प्रत्येक
"	" " ८	४०	४००
"	" " ७	००	६००
५३८	गाथा ३६३ का अर्थ इस प्रकार पढ़ें—इन्द्रों के आस्थान में पीठानीक के अधिपति देव पादपीठ सहित बहुत से रत्नमय आसन देते हैं ॥ ३९३ ॥		
५३६	गाथा ३६४ का अर्थ इस प्रकार पढ़ें—स्थान के विभागों को जानकर जो जिसके योग्य होता है, देव उसे वैसा ही ऊँचा या नीचा तथा निकटवर्ती अथवा दूरवर्ती आसन देते हैं ॥ ३९४ ॥		
५४०	३	बैड्यं	वैडूयं
५५५	१२	ग्यारहवें	ग्यारह में
५५६	९	चोदह	चोदस
५५७	१६	अक	अङ्क
५६१	१८	णदावट्टम्मि	णंदावट्टम्मि
५७६	१५	अरिष्ट द्वा सा० सुरसमिति ९ सा०	अरिष्ट की द्वा सा० सुरसमिति की ९ सा०
५७७	१२	शातकम	शातक में
५८३	१३	(यमव)	(यम व)
५८४	२०	शुत्र	शुक्र
५८४	२१	चारम	चार में
५८८	४	जम्मते	जम्मते
५८९	२३	वाल	वाले
५९६	४	सखेज्ज	संखेज्ज

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अमृद्ध	शुद्ध
५९६	१७	तह यह तम	तह य तम
५९८	१८	इस कार	इस प्रकार
५९९	४	ध्वेयस्कर	ध्वेयस्क
५९९	७	वृषभष्ट	वृषभेष्ट
६०३	१०	॥ ६६१-६६२ ॥	॥ ६५९-६६२ ॥
६०३	१७	लोयंतपुरा	लोयंतसुरा
६०४	१२	होत है	होते हैं
६०८	६	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
६०९	१२	जीवसमाज	जीवसमास
६१६	४	ग्रव्यक	ग्रेव्यक
६१६	१६	उत्तम	उत्त में
६१७	'स्वर्गसुख के भोक्ता' शीर्षक के अन्तर्गत ७२५-७२६ दो गाथायें दर्शायी हुई हैं, वस्तुतः यह एक ही श्लोक है उसे संख्या ७२५ मानें ।		
६१८	३	॥ ७२७ ॥	॥ ७२६ ॥
६१८	४	एवंमाइरिय	एवमाइरिय
६२०	८	— १५७५ ध०	+ १५७५ ध०
६२५	५	सव	सर्व
६३७	४	सुरोर्धनिपातु	सुरोर्धनिपातु
६३७	१८	मंभूत्	मेभूत्
६३८	११	विदधात्य सां	विदधात्यसी
६३९	४	ब्रूते	ब्रूते
६३९	५	त्रिलोकसारस्ये	त्रिलोकसारस्य
६४०	१४	प्रमोदभर्त्री	प्रमोदभर्त्री
६४०	२०	यानात्	यत्नात्

विशेष १—पृष्ठ २१७ से २८७ तक फोलियो में 'पंचमो महाहियारो' छप गया है । कृपया इसके स्थान पर २१७ पृ० से २४१ तक 'छठो महाहियारो' पढ़ें और पृ० २४३ से २८७ तक 'सप्तमो महाहियारो' पढ़ें ।

[शुद्धि-पत्र तिलोपपणसी : द्वितीय खण्ड]

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
५२	१	(१८३३२४) २	(१८३३२४) २
५२	१०	भरत क्षेत्र	दक्षिण भरत क्षेत्र
११०	चित्र	ज्योतिरांग	ज्योतिरंग
२१२	ता. पंक्ति ५ कॉलम ७	४ धनुष	४ कोस
४५७	२१	इन तीर्थंकरों की ऊँचाई, आयु और तीर्थंकर प्रकृतिबंध के भवसम्बन्धी नाम—	इन तीर्थंकरों की ऊँचाई, आयु और जो जीव तीर्थंकर होने वाले हैं उनके नाम —
५९९	चित्र	देवारण्य-देवारण्य भूतारण्य-भूतारण्य	भूतारण्य-भूतारण्य देवारण्य-देवारण्य
७३६	१०	४०००००—२१०५५६	४००००० × २१०५५६
७८७	अंतिम	१४६१०१३३३६ + २३८३३३६	१४६१०१३३३६ — २३८३३३६
७८८	८	१४६०७७४३३६ + ९४४८३३६	१४६०७७४३३६ — ९४४८३३६





जदिवसहाइरिय-विरइवा

तिलोयपण्णत्ती

पंचमो महाहियारो

मङ्गलाचरण

भव-कुमुदेवक-चवं, चंदप्पह-जिणवरं^१ हि पणमिदूण ।

भासेमि तिरिय-लोयं, लवमेत्तं अप्प-सत्तोए ॥१॥

अर्थ—भवजनरूप कुमुदोंको विकसित करने के लिए अद्वितीय चन्द्रस्वरूप चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रको नमन करके मैं अपनी शक्तिके अनुसार तिर्यग्लोकका यत्किंचित् (लेशमात्र) निरूपण करता हूँ ॥ १ ॥

तिर्यग्लोक-प्रज्ञप्तिमें १६ अन्तराधिकारोंका निर्देश

थावरलोय-पमाणं, मज्झम्मि य तस्स तिरिय-तस-लोमो^२ ।

दीवोवहीण संखा, विण्णासो एवम - संजुत्तं ॥२॥

एणाणाविह - खेत्तफलं, तिरियाणं भेद - संख - आऊ य ।

आऊग - बंधण - भावं, जोणी सुह - दुक्ख - गुण - पहुदो ॥३॥

सम्मत्त - गहण - हेदु, गदिरागदि - थोव - बहुगमोणाहं ।

सोलसया अहियारा, पण्णसोए य तिरियाणं ॥४॥

अर्थ—स्थावर लोकका प्रमाण^१, उसके मध्यमें तिर्यक् त्रस-लोक^२, द्वीप-समुद्रोंकी संख्या^३, नाम सहित विन्यास^४, नानाप्रकारका क्षेत्रफल^५, तिर्यचोंके भेद^६, संख्या^७, आयु^८, आयुबन्धके

निमित्तभूत परिणाम^१, योनि^{१*}, सुख-दुःख^{१*}, गुणस्थान आदिक^{१*}, सम्यक्त्व-ग्रहणके कारण^{१*}, गति-आगति^{१*}, अल्पबहुत्व^{१*} और अवगाहना^{१*}, इसप्रकार तिर्यंचोंकी प्रज्ञप्तिमें ये सोलह अधिकार हैं ॥ २-४ ॥

स्थावर-लोक का लक्षण एवं प्रमाण

जा जीव-पोसालाणं, धम्ममाधम्म-पवंध-आयासे ।
होति ह गवागदाणि, ताव हसे थावरो लोओ ॥५॥

≡ ।

थावरलोयं गवं ॥१॥

अर्थ—धर्म एवं अधर्म द्रव्यसे सम्बन्धित जितने आकाशमें जीव और पुद्गलोंका आवागमन रहता है, उतना (≡ अर्थात् ३४३ घन राजू प्रमाण तीन लोक) स्थावर लोक है ॥ ५ ॥

स्थावर-लोकका कथन समाप्त हुआ ॥ १ ॥

तिर्यंगलोकका प्रमाण

मंदरगिरि-मूलादो, इगि-लख्खं जोयणाणि बहलम्मि ।
रज्जुअ पवर-खेत्ते, चेद्वेदि^१ ह तिरिय-तस-लोओ ॥६॥

२३ । १००००० ।

तस-लोय-परुवणा गदा ॥२॥

अर्थ—मन्दरपर्वतके मूलसे एक लाख (१०००००) योजन बाहुल्य (ऊँचाई) रूप राजू-प्रतर अर्थात् एक राजू लम्बे-चोड़े क्षेत्र में तिर्यक्-त्रसलोक स्थित है ॥ ६ ॥

॥ त्रस-लोक प्ररूपणा समाप्त हुई ॥ २ ॥

द्वीपों एवं सागरोंकी संख्या

पणुवीस-कोडकोडी-पमाण-उद्धार-पल्ल-रोम-समा ।
वीओवहीण संखा, तस्सद्ध^१ वीव-जलणिही कमसो ॥७॥

संखा समत्ता ॥३॥

अर्थ—पच्चीस कोड़ाकोड़ी उच्चार-पत्थरोंके रोमोंके प्रमाण द्वीप एवं समुद्र दोनों की संख्या है । इसकी आधी क्रमशः द्वीपोंकी और आधी समुद्रोंकी संख्या है ॥ ७ ॥

नोट—कितु देखें इसी अधिकार की २७ वीं गाथा ।

संख्या का कथन समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

द्वीप-समुद्रोंकी अवस्थिति

सध्वे दीव-समुद्रा, संखादीवा हवन्ति समवृता ।

पदमो दीओ उवही, चरिमो मज्झम्मि दीवुवही^१ ॥८॥

अर्थ—सब द्वीप-समुद्र असंख्यात हैं और समवृत्त (गोल) हैं । इनमें सबसे पहले द्वीप, सध्वे अन्त में समुद्र और सध्वे में द्वीप-समुद्र हैं ॥ ८ ॥

चित्तावणि बहु-मज्झे, रज्जू-परिमाण-दीह-विषलम्भे^२ ।

चेट्ठन्ति दीव-उवही, एक्केक्कं वेड्डिऊण हु प्परिदो^३ ॥९॥

अर्थ—चित्रा पृथिवीके (ऊपर) बहु मध्यभागमें एक राजू लम्बे-चौड़े क्षेत्रके भीतर एक-एकको चारों ओरसे घेरे हुए द्वीप एवं समुद्र स्थित हैं ॥ ९ ॥

सन्वे वि वाहिणीसा, चित्तलिदि खंडिदूण चेट्ठन्ति ।

वज्ज-खिदीए उवरि, दीवा वि हु उवरि चित्ताए ॥१०॥

अर्थ—सब समुद्र चित्रा पृथिवीको खण्डितकर वज्जापृथिवीके ऊपर और सब द्वीप चित्रा-पृथिवीके ऊपर स्थित हैं ॥१०॥

विशेषार्थ—चित्रापृथिवीकी मोटाई १००० योजन है और सब समुद्र १००० योजन गहराई वाले हैं । अर्थात् समुद्रोंका तल भाग चित्राको भेदकर वज्जापृथिवीके ऊपर स्थित है ।

आदि-अन्तके द्वीप-समुद्रोंके नाम

आदो जंबूदीओ, हवेदि दीवाण ताण सयलानं ।

अन्ते सयंभूरमणो, नामेणं विस्सुवो दीओ ॥११॥

अर्थ—उन सब द्वीपोंके आदिमें जम्बूद्वीप और अन्तमें स्वयंभूरमण नामसे प्रसिद्ध द्वीप है ॥ ११ ॥

आदी लवण-समुद्रो^१, सद्वाण हवेदि सलिलरासीणं ।

अंते सयंभूरमणो, णामेणं विस्सुदो उवहो ॥१२॥

अर्थ—सब समुद्रोंमें आदि लवणसमुद्र और अन्तिम स्वयम्भूरमण नामसे प्रसिद्ध समुद्र है ॥ १२ ॥

अभ्यन्तरभाग (प्रारम्भ) में स्थित ३२ द्वीप-समुद्रों के नाम

पट्ठमो जंबूदीओ, तप्परदो होदि लवण-जलरासी ।

तत्तो धावइसंडो, दीओ उवहो य कालोदो ॥१३॥

पोक्खरवरो त्ति दीओ, पोक्खरवर^२-वारिहो तदो होदि ।

वारुणिवरक्ख-दीओ, वारुणिवर-णीरधो^३ वि तप्परदो ॥१४॥

तत्तो खीरवरक्खो, खीरवरो होदि णीररासी य ।

पच्छा घववर-दीओ, घववर-जलही य परो तत्स ॥१५॥

खोदवरक्खो दीओ, खोदवरो णाम वारिहो होदि ।

णंदीसर-वर दीओ, णंदीसर - णीररासी य ॥१६॥

अरुणवर-णाम-दीओ, अरुणवरो णाम वाहिणीणाहो ।

अरुणबभासो दीओ, अरुणबभासो पयोरासी ॥१७॥

कुंडलवरो त्ति दीओ, कुंडलवर-णाम-रयणरासी य ।

संखवरक्खो दीओ, संखवरो होदि मयरहरो ॥१८॥

रुजगवर-णाम-दीओ, रुजगवरक्खो तरंगिणी-रमणो^४ ।

भुजगवर-णाम-दीओ, भुजगवरो अण्णओ होदि ॥१९॥

कुसवर-णामो दीओ, कुसवर-णामो य णिण्णगा-णाहो ।

कुंचवर-णाम-दीओ, कुंचवरो-णाम-आपगा-कंतो ॥२०॥

अब्भन्तर-भागादो, एदे वत्तीस-दीव-वारिणिही ।

बाहिरदो एवाणं, साहेमि इमाणि णामाणि ॥२१॥

१. द. क. ज. समुद्रो ।

२. द. ब. क. ज. पोक्खरवा ।

३. द. ब. क. ज. दीदि ।

४. द. ज. रमणाओ ।

अर्थ—प्रथम जम्बूद्वीप, उसके परे (आगे) लवणसमुद्र फिर धातकीखण्डद्वीप और उसके पश्चात् कालोदसमुद्र है । तत्पश्चात् पुष्करवर द्वीप एवं पुष्करवर वारिधि और फिर वारुणीवरद्वीप तथा वारुणीवरसमुद्र है । उसके पश्चात् क्रमशः क्षीरवरद्वीप, क्षीरवरसमुद्र और तत्पश्चात् घृतवरद्वीप और घृतवर समुद्र है । पुनः क्षौद्रवरद्वीप, क्षौद्रवर समुद्र और तत्पश्चात् नन्दीश्वरद्वीप तथा नन्दीश्वर समुद्र है । इसके पश्चात् अरुणवरद्वीप, अरुणवरसमुद्र, अरुणाभासद्वीप और अरुणाभाससमुद्र है । पश्चात् कुण्डलवरद्वीप, कुण्डलवरसमुद्र, शंखवरद्वीप और शंखवरसमुद्र है । पुनः रुचकवर नामक द्वीप, रुचकवरसमुद्र, भुजगवर नामक द्वीप और भुजगवरसमुद्र है । तत्पश्चात् कुशवर नामक द्वीप, कुशवरसमुद्र, कौचवर नामक द्वीप और कौचवर समुद्र है । ये बत्तीस द्वीप - समुद्र अभ्यन्तर भाग से हैं । अब बाह्यभागमें द्वीप - समुद्रोंके नाम कहता हूँ जो इस प्रकार हैं—॥ १३ - २१ ॥

बाह्यभागमें स्थित द्वीप-समुद्रोंके नाम

उवही सयंभुरमणो, अंते दीओ सयंभुरमणो सि ।
 आइल्लो णादब्बो, अहिंदवर - उवहि - दीवा य ॥२२॥
 देववरोवहि - दीवा, जक्खवरक्खो समुद्दीवा य ।
 भूदवरणव - दीवा, समुद्दीवा चि णागवरा ॥२३॥
 वेरुलिय-जलहि-दीवा, वज्जवरा वाहिणीरमण-दीवा ।
 कंचण-जलणिहि-दीवा, रुपवरा सलिलणिहि - दीवा ॥२४॥
 हिमुल-पयोहि-दीवा, अंजणवर-णिणगाहिवद्ध^१-दीवा ।
 सामंभोणिहि - दीवा, सिदूर - समुद्दीवा य ॥२५॥
 हरिवाल-सिधु-दीवा, मणिसिल-कल्लोत्तिणोरमण-दीवा ।
 एस समुद्दीवा - दीवा, बाहिरदो होति बत्तीसं ॥२६॥

अर्थ—अन्तसे प्रारम्भ करने पर स्वयंभूरमण समुद्र पश्चात् स्वयंभूरमण द्वीप आदिमें है ऐसा जानना चाहिये । इसके पश्चात् अहीन्द्रवर समुद्र, अहीन्द्रवर द्वीप, देववर समुद्र, देववर द्वीप, यक्षवर समुद्र, यक्षवर द्वीप, भूतवर समुद्र, भूतवरद्वीप, नागवर समुद्र, नागवर द्वीप, वैडूर्यसमुद्र, वैडूर्यद्वीप, वज्रवरसमुद्र, वज्रवरद्वीप, कांचनसमुद्र, कांचनद्वीप,

रूप्यवरसमुद्र, रूप्यवरद्वीप, हिगुलसमुद्र, हिगुलद्वीप, अंजनवरनिम्नगाधिप, अंजनवर द्वीप, श्यामसमुद्र, श्यामद्वीप, सिद्धरसमुद्र, सिद्धरद्वीप, हरिताल समुद्र, हरिताल द्वीप तथा मनःशिलसमुद्र और मनःशिलद्वीप, ये बत्तीस समुद्र और द्वीप बाह्यभागमें अवस्थित हैं ॥ २२-२६ ॥

समस्त द्वीप-समुद्रोंका प्रमाण

चउसट्ठी-परिवज्जिव-अड्ढाद्वज्जंबु-रासि-रोम-समा ।

सेसंभोणिहि-दीवा, सुभ-णामा एक-णाम बहुवारणं ॥ २७ ॥

अर्थ—चौसठ कम अड्ढाई उद्धार-सागरोंके रोमों प्रमाण अवशिष्ट शुभ-नाम-धारक द्वीप-समुद्र हैं । इनमेंसे बहुतोंका एक ही नाम है ॥ २७ ॥

विशेषार्थ—त्रिलोकसार गाथा ३५९ और उसकी टीकामें सर्व द्वीपसागरों की संख्या इस प्रकार दर्शाई गयी है—

$$\text{जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेद} = \left(\frac{५० \text{ छे०}}{\text{असं०}} \times \text{साधिक } ५० \text{ छे०} \times ३ \right)$$

जगच्छ्रेणीके इन अर्धच्छेदोंमेंसे ३ अर्धच्छेद घटा देनेपर राजूके अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं । यथा—

$$\text{राजूके अर्धच्छेद} = \left[\left(\frac{५० \text{ छे०}}{\text{असं०}} \times \text{साधिक } ५० \text{ छे०} \times ३ \right) - ३ \right]$$

राजूके इन अर्धच्छेदोंमेंसे जम्बूद्वीपके साधिक ५० छे० कम कर देनेपर $\left[\left(\frac{५० \text{ छे०}}{\text{असं०}} \times ५० \text{ छे०} \times ३ - ३ \right) - \text{साधिक } ५० \text{ छे०} \right]$ जो अवशेष रहे उतने प्रमाण ही द्वीप-समुद्र हैं । इनमेंसे आदि-अन्तके ३२ द्वीपों और ३२ समुद्रों (६४) के नाम कह दिये गये हैं । शेष द्वीप-समुद्र भी शुभ नाम वाले हैं और इनमें बहुतसे द्वीप-समुद्र (एक) समान नाम वाले ही हैं, क्योंकि शब्द संख्यात हैं और द्वीप-समुद्र असंख्यात हैं ।

द्वीप-समुद्रोंका जो प्रमाण प्राप्त हुआ है वह पल्यके आधारित है, सागरके आधारित नहीं है । इसी ग्रन्थके प्रथम अधिकारकी गाथा ९४ और १२८ में तथा इसी ५वें अधिकार की गाथा ७ में आचार्य स्वयं कह चुके हैं कि उद्धार पल्यके जितने समय (रोम) हैं उतने ही द्वीप-समुद्र हैं किन्तु इस गाथामें उद्धार सागरके रोमोंके प्रमाण बराबर द्वीप-सागरोंका प्रमाण कहा गया है; जो विद्वानों द्वारा विचारणीय है ॥ २७ ॥

समुद्रोंके नामोंका निर्देश

जंबूदीवे लवणो, उवही कालो ति धादईसंडे ।

अवसेसा वारिणिही, बत्तव्वा दीव-सम-णामा ॥ २८ ॥

अर्थ—जम्बूद्वीपमें लवणोदधि और धातकीखण्डमें कालोद नामक समुद्र हैं । शेष समुद्रों के नाम द्वीपोंके नामोंके सदृश ही कहने चाहिए ॥ २८ ॥

समुद्रस्थित जलके स्वादोंका निर्देश

पत्तेयरसा जलही, चत्वारो ह्येति तिणिण उदय-रसा ।

सेसं^१ वीउच्छु-रसा, तदिय-समुद्गम्मिमधु-सलिलं ॥२९॥

अर्थ—चार समुद्र प्रत्येक रस (अर्थात् अपने-अपने नामके अनुसार रसवाले), तीन समुद्र उदक (जलके स्वाभाविक स्वाद सदृश) रस और शेष समुद्र ईश्वर रस सदृश हैं । तीसरे समुद्रमें मधु (के स्वाद) सदृश जल है ॥ २९ ॥

पत्तेष्क-रसा वारुणि-लघणद्धि-घदवरो य क्षीरवरो ।

उदक-रसा कालोदो, पोषखरओ सयंभूरमणो य ॥३०॥

अर्थ—वारुणीवर, लवणाब्धि, धृतवर और क्षीरवर, ये चार समुद्र प्रत्येक रस (अपने-अपने नामानुसार रस) वाले तथा कालोद, पुष्करवर और स्वयम्भूरमण, ये तीन समुद्र उदक रस (जल रसके स्वाभाविक स्वाद) वाले हैं ॥ ३० ॥

समुद्रों में जलचर जीवों के सद्भाव और अभाव का दिग्दर्शन

लवणोदे कालोदे, जीवा अन्तिम-सयंभूरमणम्मि ।

कम्म-मही-संबद्धे, जलयरया ह्येति ण हु सेसे ॥३१॥

अर्थ—कर्मभूमिसे सम्बद्ध लवणोद, कालोद और अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्रमें ही जलचर जीव हैं । शेष समुद्रोंमें नहीं हैं ॥ ३१ ॥

द्वीप-समुद्रोंका विस्तार

जंबू जोयण-लवणं, पमाण-यासा दु दुगुण-दुगुणाणि ।

विषलंभ - पमाणाणि, लवणादि - सयंभूरमणंतं ॥३२॥

१००००० । २००००० । ४००००० । ८००००० । १६००००० । ३२००००० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन प्रमाण है । इसके आगे लवणसमुद्र से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त द्वीप-समुद्रोंके विस्तार प्रमाण क्रमशः दुगुने-दुगुने हैं ॥३२॥

विशेषार्थ—प्रत्येक द्वीप-समुद्रका विस्तार इसप्रकार है—

क्र०	नाम	विस्तार	क्र०	नाम	विस्तार
१.	जम्बूद्वीप	१ लाख योजन	७.	वारुणीवर द्वीप	६४ लाख योजन
२.	लवणसमुद्र	२ लाख योजन	८.	वारुणीवर समुद्र	१२८ लाख योजन
३.	धातकी खण्ड	४ लाख योजन	९.	क्षीरवर द्वीप	२५६ लाख योजन
४.	कालोदधि	८ लाख योजन	१०.	क्षीरवर समुद्र	५१२ लाख योजन
५.	पुष्करवरद्वीप	१६ लाख योजन	११.	घृतवर द्वीप	१०२४ लाख योजन
६.	पुष्करवर समुद्र	३२ लाख योजन	१२.	घृतवर समुद्र	२०४८ लाख योजन

एवं भूवरसागर-पर्यन्तं दटूठव्यं । तत्सोवरिमञ्जवस्ववर दीवस्स
 वित्थारो ॥ ३५८४ धण जोयणाणि ॥ जवस्ववर - समुद्र - वित्थारो ॥ १७४२
 धण जोयणाणि ॥ देववर - दीव ॥ ८७२ धण ॥ देववर समुद्र ॥
 ४४८ धण ॥ अहिन्दवरदीव ॥ २२४ धण ॥ अहिन्दवरसमुद्र ॥
 धण १८७५० ॥ सयम्भुवरदीव ॥ ५६ धण ३७५०० ॥ सयम्भुरमणसमुद्र ॥
 धण ७५००० ।

अर्थ—इसप्रकार भूतवर-सागर पर्यन्त ले जाना चाहिए । उसके ऊपर—

यक्षवर द्वीपका विस्तार [जगच्छ्रेणी ÷ ३५८४ = ४६५ राजू] + १७४२ यो० ।
 यक्षवर समुद्रका विस्तार [ज० श्रे० ÷ १७९२ = ४६५ राजू] + १७४२ यो० ।
 देववर द्वीप का विस्तार [ज० श्रे० ÷ ८९६ = ४६५ राजू] + १७४२ यो० ।
 देववर समुद्र का विस्तार [ज० श्रे० ÷ ४४८ = ४६५ राजू] + १७४२ यो० ।
 अहीन्द्रवर द्वीप का विस्तार [ज० श्रे० ÷ २२४ = ४६५ राजू] + १७४२ यो० ।
 अहीन्द्रवर समुद्र का विस्तार [ज० श्रे० ÷ ११२ = ४६५ राजू] + १८७५० यो० ।
 स्वयम्भूरमणद्वीप का विस्तार [ज० श्रे० ÷ ५६ = ४६५ राजू] + ३७५०० योजन ।
 स्वयम्भूरमणसमुद्र का विस्तार [ज० श्रे० ÷ २८ = ४६५ राजू] + ७५००० योजन है ।

विवक्षित द्वीप-समुद्रका वलय-व्यास प्राप्त करनेकी विधि

बाहिर-सूई-मज्ज्मे, लवण-तयं मेलिवूण चउ-भज्जिदे ।

इच्छिय - दीवड्ढीणं, वित्थारो होदि वसयाणं ॥३३॥

अर्थ—विवक्षित द्वीप-समुद्रक बाह्य-सूची-व्यासके प्रमाणमें तीन-लाख जोड़कर चारका भाग देनेपर वलय-व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है ॥३३॥

विशेषार्थ—यहाँ कालोदधि समुद्र विवक्षित है । इसका सूची-व्यास २६ लाख योजन है । इसमें तीन लाख जोड़कर ४ का भाग देनेपर कालोदधिके वलय व्यासका प्रमाण $(२९००००० + ३०००००) \div ४ = ८$ लाख योजन प्राप्त होता है ।

आदिम, मध्य और बाह्य-सूची प्राप्त करनेकी विधि

लवणादीणं रुंदं, दु-ति-चउ-गुणिदं कमा ति-लवखाणं ।

आदिम-मज्जिम-बाहिर-सूईणं होदि परिमाणं ॥३४॥

लव १००००० । ३००००० । ५००००० ॥ धाद ५००००० । ९००००० । १३००००० ।
कालो १३००००० । २१००००० । २९००००० । एवं देववर-समुद्रति दट्ठुवं । तस्सु-
वरिमहिदवर^१-दीवस्स ११२ रिण जोयणाणि २८१२५०^२ । मज्जिम २२४ । रिण
२७१८७५^३ । बाहिर ५६ । रिण २६२५०० ॥ अहिदवर-समुद्रं । ५६ रिण २६२५०० । मज्जिम
११२ । रिण २४३७५० । बाहिर २८ । रिण २२५००० ॥ सयंभूरमणदीव । २८ रिण
२२५००० । मज्जिम ५६ । रिण १८७५०० । बाहिर १४ रिण १५०००० ॥ सयंभूरमणसमुद्र । १४
रिण १५०००० । मज्जिम २८ । रिण ७५००० । बाहिर ८ ॥

अर्थ—लवणसमुद्रादिकके विस्तारको क्रमशः दो, तीन और चारसे गुणाकर प्राप्त लब्ध-
राशिमेंसे तीन लाख कम करनेपर क्रमशः आदिम, मध्यम और बाह्य सूचीका प्रमाण प्राप्त होता
है ॥३४॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रादिमेंसे विवक्षित जिस द्वीप-समुद्रका अभ्यन्तर सूची-व्यास ज्ञात
करना इष्ट हो उसके वलय-व्यासको दो से गुणित कर प्राप्त लब्धराशिमेंसे तीन लाख घटाने पर
अभ्यन्तर सूची-व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विवक्षित वलय-व्यासके प्रमाणको तीनसे गुणित कर तीन लाख घटाने पर मध्यम सूची-व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विवक्षित वलय-व्यासको चारसे गुणितकर तीन लाख घटा देनेपर बाह्य सूची-व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

लवणसमुद्रका

$$\text{अभ्यन्तर सूची-व्यास} = (२००००० \times २) - ३ \text{ लाख} = १००००० \text{ यो० ।}$$

$$\text{मध्यम सूची-व्यास} = (२००००० \times ३) - ३ \text{ लाख} = ३००००० \text{ यो० ।}$$

$$\text{बाह्य सूची-व्यास} = (२००००० \times ४) - ३ \text{ लाख} = ५००००० \text{ यो० ।}$$

घातकीखण्डका

$$\text{अभ्यन्तर सूची-व्यास} = (४००००० \times २) - ३ \text{ लाख} = ५००००० \text{ यो० ।}$$

$$\text{मध्यम सूची-व्यास} = (४००००० \times ३) - ३ \text{ लाख} = ९००००० \text{ यो० ।}$$

$$\text{बाह्य सूची-व्यास} = (४००००० \times ४) - ३ \text{ लाख} = १३००००० \text{ यो० ।}$$

कालोदसमुद्रका

$$\text{अभ्यन्तर सूची-व्यास} = (८००००० \times २) - ३ \text{ लाख} = १३००००० \text{ यो० ।}$$

$$\text{मध्यम सूची-व्यास} = (८००००० \times ३) - ३ \text{ लाख} = २१००००० \text{ यो० ।}$$

$$\text{बाह्य सूची-व्यास} = (८००००० \times ४) - ३ \text{ लाख} = २९००००० \text{ यो० ।}$$

गद्य का अर्थ—इसीप्रकार देववर समुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए । इसके बाद अहीन्द्रवर द्वीपका—

$$\text{अभ्यन्तर सूची-व्यास} = (२२४ + ९३७५) \times (२) - ३ \text{ लाख} = १९२ - २८१२५० \text{ यो० ।}$$

$$\text{मध्यम सूची-व्यास} = (२२४ + ९३७५) \times (३) - ३ \text{ लाख} = २२३ - २७१८७५ ।$$

$$\text{बाह्य सूची-व्यास} = (२२४ + ९३७५) \times (४) - ३ \text{ लाख} = ८६ - २६२५०० ।$$

अहीन्द्रवर समुद्रका

$$\text{अभ्यन्तर सूची-व्यास} = (१९२ + १८७५०) \times (२) - ३ \text{ लाख} = ८६ - २६२५०० ।$$

$$\text{मध्यम सूची-व्यास} = (१९२ + १८७५०) \times (३) - ३ \text{ लाख} = १९३ - २४३७५० ।$$

$$\text{बाह्य सूची-व्यास} = (१९२ + १८७५०) \times (४) - ३ \text{ लाख} = २८ - २२५००० ।$$

स्वयम्भूरमणद्वीपका

अभ्यन्तर सूची-व्यास = $(५६ + ३७५००) \times (२) - ३ \text{ लाख} = १०८ - २२५००० ।$

मध्यम सूची-व्यास = $(५६ + ३७५००) \times (३) - ३ \text{ लाख} = १६२ - १०८५०० ।$

बाह्य सूची-व्यास = $(५६ + ३७५००) \times (४) - ३ \text{ लाख} = २१६ - १५०००० ।$

स्वयम्भूरमण समुद्रका

अभ्यन्तर सूची-व्यास = $(२८ + ७५०००) \times (२) - ३ \text{ लाख} = १५६ - १५०००० ।$

मध्यम सूची-व्यास = $(२८ + ७५०००) \times (३) - ३ \text{ लाख} = २३४ - ७५००० ।$

बाह्य सूची-व्यास = $(२८ + ७५०००) \times (४) - ३ \text{ लाख} = ३१२ \text{ या } १ \text{ राजू है ।}$

विवक्षित द्वीप-समुद्रकी परिधिका प्रमाण

प्राप्त करनेकी विधि

जंबू-परिहो-जुगलं, इच्छिय-दीयंबु-रासि-सूइ-हवं ।

जंबू-वास-विहत्तं, इच्छिय-द्वद्वि-परिहृ त्ति ॥३५॥

अर्थ—जम्बूद्वीपके परिधि-युगल (स्थूल और सूक्ष्म) को अभीष्ट द्वीप एवं समुद्र की (बाह्य) सूचीसे गुणा करके उसमें जम्बूद्वीपके विस्तारका भाग देनेपर इच्छित द्वीप तथा समुद्रकी (स्थूल एवं सूक्ष्म) परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है ॥३५॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपकी स्थूल-परिधि ३ लाख योजन और सूक्ष्म-परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष और साधिक १३३ अंगुल है ।

लवणसमुद्र, घातकीखण्ड और कालोद समुद्र विवक्षित समुद्र एवं द्वीपादि हैं ।

लवण म० की परिधि = $\frac{\text{जंबू० की परिधि} \times \text{ल० स० का बाह्य सूची व्यास}}{१०००००}$

लवण स० की स्थूल परिधि = $\frac{३ \text{ लाख} \times ५ \text{ लाख}}{१ \text{ लाख}}$

= १५ लाख योजन स्थूल परिधि ।

लवण स० की सूक्ष्म प० = $\frac{(३१६२२७ \text{ यो०, } ३ \text{ कोस, } १२८ \text{ ध०, } १३३ \text{ अंगुल}) \times ५ \text{ लाख}}{१०००००}$

= १५८११३८ यो० ३ कोस, ६४० धनुष, २ हाथ और १६३ अंगुल लवणसमुद्रकी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण है ।

$$\text{धातकी खण्डकी स्थूल परिधि} = \frac{३ \text{ लाख} \times १३ \text{ लाख}}{१ \text{ लाख}}$$

$$= ३९ \text{ लाख योजन स्थूल परिधि ।}$$

$$\text{कालोदधिकी स्थूल परिधि} = \frac{३ \text{ लाख} \times २९ \text{ लाख}}{१ \text{ लाख}}$$

$$= ८७ \text{ लाख योजन स्थूल परिधि ।}$$

द्वीप-समुद्रादिकोंके जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड प्राप्त करने हेतु करण-सूत्र

बाहिर - सूई - वरगो, अन्तर्-सूई-वर्ग-परिहीणो ।

लवणस्स कदिम्मि हिंदे, इच्छित्त-वीवुवहि-खंड-परिमाणं ॥३६॥

२४ । १४४ । ६७२ । एवं सयंभुरमण-परियंतं दट्ठब्बं ।

अर्थ — बाह्य सूची-व्यासके वर्गमेंसे अन्तर् सूची-व्यासका वर्ग घटानेपर जो प्राप्त हो उसमें एक लाख (जम्बूद्वीपके व्यास) के वर्गका भाग देनेपर इच्छित द्वीप-समुद्रोंके खण्डोंका प्रमाण (निकल) आता है ॥३६॥

$$\text{विशेषार्थ—जम्बूद्वीप बराबर खण्ड} = \frac{\text{बाह्य सूची व्यास}^२ - \text{अन्तर् सूची व्यास}^२}{१०००००^२}$$

$$\text{लवणसमुद्रके जम्बूद्वीप बराबर खण्ड} = \frac{५ \text{ लाख}^२ - १ \text{ लाख}^२}{१ \text{ लाख}^२}$$

$$= २४ \text{ खण्ड होते हैं ।}$$

$$\text{धातकी० के जम्बूद्वीप बराबर खण्ड} = \frac{१३ \text{ लाख}^२ - ५ \text{ लाख}^२}{१ \text{ लाख}^२}$$

$$= \frac{१६९ \text{ ला ला} - २५ \text{ ला ला}}{१ \text{ ला ला}}$$

$$= १४४ \text{ खण्ड होते हैं ।}$$

$$\text{कालोद के जम्बूद्वीप बराबर खण्ड} = \frac{२९ \text{ लाख}^२ - १३ \text{ लाख}^२}{१ \text{ लाख}^२}$$

$$= \frac{८४१ \text{ ला ला} - १६९ \text{ ला ला}}{१ \text{ ला ला}}$$

$$= ६७२ \text{ खण्ड होते हैं ।}$$

इसप्रकार स्वयम्भूरमणिसमुद्र पर्यन्त जानना चाहिए ।

जम्बूद्वीपको आदि लेकर नौ द्वीपों और लवणसमुद्र को आदि लेकर नौ समुद्रोंके अधिपति देवोंके नाम निर्देश

जंबू-लवणादीणं, दीवुवहीणं च अहिर्वई वोणि ।

पसेवकं अंतरया, ताणं णामाणि 'साहेमि ॥३७॥

अर्थ—जम्बूद्वीप एवं लवणसमुद्रादिकोंमेंसे प्रत्येकके अधिपति जो (दो-दो) व्यन्तरदेव हैं, उनके नाम कहता हूँ ॥ ३७ ॥

आदर-अणादरवत्ता, जंबूदीवस्स अहिर्वई होति ।

तह य पभासो पियदंसणो व लवणांबुरासिम्मि ॥३८॥

अर्थ—जम्बूद्वीपके अधिपति देव आदर और अनादर हैं तथा लवणसमुद्रके प्रभास और प्रियदर्शन हैं ॥ ३८ ॥

भुंजेदि प्पिय-णामा, वंसण-णामा य धावईसंडे ।

कालोदयस्स पहुणो, काल-महाकाल-णामा य ॥३९॥

अर्थ—प्रिय और दर्शन नामक दो देव घातकीखण्ड द्वीपका उपभोग करते हैं तथा काल और महाकाल नामक दो देव कालादक-समुद्रके प्रभु हैं ॥ ३९ ॥

पउमो पुं'डरियक्खो, दीवं भुंजंति पोक्खरवरक्खं ।

चक्खु-सुचक्खू पहुणो, होति य मणुसुत्तर-गिरिस्स ॥४०॥

अर्थ—पद्म और पुण्डरीक नामक दो देव पुष्करवरद्वीपका भोगते हैं । चक्षु और सुचक्षु नामक दो देव मानुषोत्तर पर्वतके प्रभु हैं ॥ ४० ॥

सिरिपह^१-सिरिधर-णामा, देवा पालंति पोक्खर-समुद्दं ।

वरुणो वरुण - पहुक्खो, भुंजंते वारुणी - दीवं ॥४१॥

अर्थ—श्रीप्रभ और श्रीधर नामक दो देव पुष्कर-समुद्रका तथा वरुण और वरुणप्रभ नामक दो देव वारुणीवर द्वीपका रक्षण करते हैं ॥ ४१ ॥

वारुणिवर-जलहि-पहू, णामेणं मडिभू-मडिभूमा देवा ।

पंडुरय^१ - पुष्पदन्तः, दीवं भुजंति क्षीरवरं ॥४२॥

अर्थ—मध्य और मध्यम नामक दो देव वारुणीवर-समुद्रके प्रभु हैं । पाण्डुर और पुष्पदन्त नामक दो देव क्षीरवर-द्वीपकी रक्षा करते हैं ॥ ४२ ॥

विमल-पहूवखो विमलो, क्षीरवरंभोगिहस्स अहिवइणो ।

सुप्पह - घटवर - देवा, घटवर - दीवस्स अहिणाहा ॥४३॥

अर्थ :—विमलप्रभ और विमल नामक दो देव क्षीरवर-समुद्रके तथा सुप्रभ और घटवर नामक दो देव घटवर द्वीपके अधिपति हैं ॥ ४३ ॥

उत्तर-महप्पहवखा, देवा रक्खंति घटवरंभुणिहि ।

कणय-कणयाभ-णामा, दीवं पालंति खोदवरं^२ ॥४४॥

अर्थ—उत्तर और महाप्रभ नामक दो देव घटवर-समुद्रकी तथा कनक और कनकाभ नामक दो देव खोदवर-द्वीपकी रक्षा करते हैं ॥ ४४ ॥

पुण्णं पुण्ण-पहूवखा, देवा रक्खंति खोदवर-सिधुं ।

णंदीसरम्मि दीवे, गंध - महागंधया पट्टणो ॥४५॥

अर्थ पूर्ण और पूर्णप्रभ नामक दो देव खोदवर-समुद्रकी रक्षा करते हैं । गंध और महा-गंध नामक दो देव नन्दीश्वर द्वीपके प्रभु हैं ॥ ४५ ॥

णंदीसर-वारिरिणिहि, रक्खंते^३ णंदि-णंदिपहू-णामा ।

भद्र - सुभद्रा देवा, भुजंति अरुणवर - दीवं ॥४६॥

अर्थ—नन्दि और नन्दिप्रभ नामक दो देव नन्दीश्वर-समुद्रकी तथा भद्र और सुभद्र नामक दो देव अरुणवर-द्वीपकी रक्षा करते हैं ॥ ४६ ॥

अरुणवर-वारिरासि, रक्खंते अरुण-अरुणपहू-णामा ।

अरुणवभासं दीवं, भुजंति सुगंध-सव्वगंध-सुरा ॥४७॥

अर्थ—अरुण और अरुणप्रभ नामक (व्यन्तर) देव अरुणवर समुद्रकी तथा सुगन्ध और सव्वगन्ध नामक देव अरुणाभास-द्वीपकी रक्षा करते हैं ॥ ४७ ॥

शेष द्वीप-समुद्रोंके अधिपति देवोंका निर्देश

सेसाणं दीवाणं, वारि-णिहीणं^१ च अहिर्वई देवा ।

जे केइ ताण नामं, सुवएसो संपहि पणिट्ठो ॥४८॥

अर्थ—शेष द्वीप-समुद्रोंके जो कोई भी अधिपति देव हैं, उनके नामोंका उपदेश इस समय नष्ट हो गया है ॥ ४८ ॥

उत्तर-दक्षिण अधिपति देवोंका निर्देश

पठम-पवण्णिद-देवा, दक्खिण-भागम्मि दीव-उवहीणं ।

चरिमुच्चारिद - देवा, चेट्ठंते उत्तरे भाए ॥४९॥

अर्थ—इन देवों (युगलों) में से पहले कहे हुए देव द्वीप-समुद्रोंके दक्षिणभागमें तथा अन्तमें कहे हुए देव उत्तरभागमें स्थित हैं ॥ ४९ ॥

णिय-णिय-दीउवहीणं, निय-णिय-तल-सट्ठिबेसु एयरेसु^२ ।

बहुविह - परिवार - जुदा, कीडंते बहु - विणोदेण ॥५०॥

अर्थ—ये देव अपने-अपने द्वीप-समुद्रोंमें स्थित अपने-अपने नगर-तलोंमें बहुत प्रकारके परिवारसे युक्त होकर बहुत विनोदपूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ ५० ॥

उपयुक्त देवोंकी आयु एवं उत्सेधादिका वर्णन

एवक-पलिदीवमाऊ, पत्तेवकं दस-धणूणि उत्तुंगा ।

भुंजंते विविह - सुहं, समचउरस्संग - संठाणा ॥५१॥

अर्थ—इनमेंसे प्रत्येककी आयु एक पत्तयोपम है एवं ऊँचाई दस-धनुष प्रमाण है । ये सब समचतुरस्रसंस्थानसे युक्त होते हुए अनेक प्रकारके सुख भोगते हैं ॥ ५१ ॥

नन्दीश्वरद्वीपकी अवस्थिति एवं व्यास

जम्बू-दीवाहितो, अट्ठमओ होवि भुवण-विक्खादो ।

गंदीसरो त्ति दीओ, गंदीसर-जलहि-परिखिओ ॥५२॥

अर्थ—भुवन-विख्यात एवं नन्दीश्वर-समुद्रसे वेष्टित जम्बूद्वीपसे आठवाँ द्वीप 'नन्दीश्वर' है ॥ ५२ ॥

एक-सया तेसट्ठी, कोडीओ जोयणाणि लवखाणि ।

धूलसीदी तद्दीवे, विक्खंभो चक्कवालेणं ॥५३॥

१६३८४००००० ।

अर्थ—उस द्वीपका मण्डलाकार विस्तार एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख (१६३८४०००००) योजन प्रमाण है ॥ ५३ ॥

विशेषार्थ—इष्ट गच्छके प्रमाणमेंसे एक कम करके जो प्राप्त हो उतनी बार दो-दोका परस्पर गुणाकर लब्धको एक लाखसे गुणित करनेपर वलय-व्यास प्राप्त होता है ।

जैसे—यहाँ द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित गणनासे १५ वीं नन्दीश्वरद्वीप इष्ट है । उपर्युक्त करणसूत्रानुसार इसमेंसे १ घटाकर जो (१५ - १ = १४) शेष बचे उतनी (१४) बार दो का संवर्गन कर लब्धमें एक लाख का गुणा करना चाहिए । यथा $2^{14} \times 1000000 = 1638400000$ योजन नन्दीश्वरद्वीपका विस्तार है ।

नन्दीश्वरद्वीपकी बाह्य-सूचीका प्रमाण

पणवण्णाहिय छस्सय, कोडीओ जोयणाणि तेसीसा ।

लवखाणि तस्स बाहिर - सूचीए होदि परिमाणं ॥५४॥

६५५३३००००० ।

अर्थ—उस नन्दीश्वरद्वीपकी बाह्य-सूचीका प्रमाण छहसौ पचपन करोड़ तैंतीस लाख (६५५३३०००००) योजन है ॥ ५४ ॥

विशेषार्थ—इसी अधिकारकी गाथा ३४ के नियमानुसार नन्दीश्वर द्वीपकी सूचियोंका प्रमाण इसप्रकार है—

नन्दीश्वरद्वीपकी अभ्यन्तर सूची = (१६३८४००००० × २) — ३ लाख = ३२७६८००००० योजन है ।

इसी द्वीपकी मध्यम सूची = (१६३८४००००० × ३) — ३ लाख = ४९१४६००००० योजन प्रमाण है ।

इसी द्वीपकी बाह्य सूची = (१६३८४००००० × ४) — ३ लाख = ६५५३३००००० योजन प्रमाण है ।

नन्दीश्वरद्वीपकी अभ्यन्तर और बाह्य-परिधिका प्रमाण

तिदय-पण-सत्त-बु-ख-दो-एककच्छलिय-सुण्ण-एक-अंक-कमे' ।

जोयणया णंदीसर - अरुभंतर - परिहि - परिमाणं ॥५५॥

१०३६१२०२७५३ ।

बाहसरि-जुव-दु-सहस्स-कोडो-सेत्तोस-लक्ख-जोयणया ।

चउवण्ण-सहस्साइ', इगि-सय-राउदो य बाहिरे परिही ॥५६॥

२०७२३३५४१९० ।

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप की अभ्यन्तर परिधिका प्रमाण अंक-क्रमसे तीन, पानि, सात, दो, शून्य, दो, एक, छह, तीन, शून्य और एक, इन अंकोंसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (१०३६१२०२७५३) योजन है ॥ ५५ ॥

इसकी बाह्य परिधि दो हजार बहत्तर करोड़ तैंतीस लाख चउवन हजार एक सौ नब्बे (२०७२३३५४१९०) योजन प्रमाण है ॥ ५६ ॥

विशेषार्थ—चतुर्थाधिकार गाथा ९ के नियमानुसार नन्दीश्वरद्वीपकी अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य परिधि इसप्रकार है—

नन्दीश्वर द्वीपकी अभ्यन्तर परिधि = $\sqrt{(३२७६५०००००)^२ \times १०} = १०३६१२०२७५३$ योजन, २ कोस, २३७ धनुष, ३ हाथ और साधिक १२ अंगुल प्रमाण है ।

इसी द्वीपकी मध्यम परिधि— $\sqrt{(४६१४९०००००)^२ \times १०} = १५५४२२७८४७९$ योजन, ३ कोस, १६६२ धनुष, २ हाथ और साधिक ५ अंगुल प्रमाण है ।

इसी द्वीप की बाह्य परिधि = $\sqrt{(६५५३३०००००)^२ \times १०} = २०७२३३५४१९०$ योजन, १ कोस, १०५१ धनुष, २ हाथ और साधिक २ अंगुल प्रमाण है ।

अंजनगिरि पर्वतोंका कथन—

णंदीसर - बहुमज्जे, पुण्व - विसाए हवेदि सेलवरो ।

अंजनगिरि विक्खावो, णिम्मल - वर - इवणीलमओ ॥५७॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीपके बहुमध्यभागमें पूर्व-दिशाकी ओर अञ्जनगिरि नामसे प्रसिद्ध, निर्मल, उत्तम-इन्द्रनीलमणिमय श्रेष्ठ पर्वत है ॥ ५७ ॥

जोयण-सहस्स-गाढो, चुलसीदि-सहस्समेत्त-उच्छेहो ।

सव्वेस्सि चुलसीदी-सहस्स-हंदो अ सम-वड्ढो ॥५८॥

१००० । ८४००० । ८४००० ।

अर्थ—यह पर्वत एक हजार (१०००) योजन गहरा, चौरासी हजार (८४०००) योजन ऊँचा और सब जगह चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण विस्तार युक्त समवृत्त है ॥ ५८ ॥

मूलम्मि उवरिमत्तले, तट्ट-वेदीओ विचित्त-वण-संडा ।

वर-वेदीओ तस्स य, पुब्बोदित-यण्णणा होंति' ॥५९॥

अर्थ—उस (अञ्जनगिरि) के मूल एवं उपरिम-भागमें तट्ट-वेदियाँ तथा अनुपम वन-खण्ड स्थित हैं । उसकी उत्तम वेदियोंका वर्णन पूर्वोक्त वेदियोंके ही सदृश है ॥ ५९ ॥

चार द्रहोंका कथन

चउसु दिसा-भागेसु, चत्तारि दहा हवंति तग्गिरिणो ।

पत्तेवकमेवक-जोयण-लक्ख-पमाणा य चउरस्सा ॥६०॥

१००००० ।

अर्थ—उस पर्वतके चारों ओर चार दिशाओंमें चौकोण चार द्रह हैं । इनमेंसे प्रत्येक द्रह एक लाख (१०००००) योजन विस्तार वाला एवं चतुष्कोण है ॥ ६० ॥

जोयण-सहस्स-गाढा, टंकुविकण्णा य जलयर-विमुक्का ।

फुल्लंत-कमल-कुवलय-कुमुव - वणा - मोद - सोहिल्ला ॥६१॥

१००० ।

अर्थ—फूले हुए कमल, कुवलय और कुमुदवनोंकी सुगन्धसे सुशोभित ये द्रह एक हजार (१०००) योजन गहरे, टंकोत्कीर्ण एवं जलचर जीवोंसे रहित हैं ॥ ६१ ॥

पूर्व दिशागत-वापिकाओंका प्ररूपण

णंदा - एणंदवदीओ, णंदुत्तर - णंदिघोस - णामा य ।

एदाओ वावीओ, पुब्बादि - पदाहिण - कमेणं ॥६२॥

अर्थ—नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिघोषा नामक ये वापिकायें पूर्वादिदिशाओं में प्रदक्षिणा रूपसे अवस्थित हैं ॥ ६२ ॥

वापिकाओंके वन-खण्डोंका वर्णन

वावीण असोय-वणं, सप्तच्छद-चंपयाणि विविहानि ।

चूदवणं पत्तेकं, पुन्धावि - विसासु चत्तारि ॥६३॥

अर्थ—उन वापिकाओंकी पूर्वादि चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें क्रमशः अशोक वन, सप्तच्छद, चम्पक और आम्रवन हैं ॥ ६३ ॥

जोयण-लक्खायामा, तदद्ध-वासा हवन्ति वण-संडा ।

पत्तेकं जेत्त-नुमा, वण-णाम-जुत्ता सि एडाणं ॥६४॥

१००००० । ५०००० ।

अर्थ—ये वन-खण्ड, एक लाख (१०००००) योजन लम्बे और इससे अर्ध (५०००० योजन) विस्तार सहित हैं । इनमेंसे प्रत्येक वनमें, वनके नामसे संयुक्त चैत्यवृक्ष हैं ॥ ६४ ॥

दधिमुख नामक पर्वतोंका निरूपण

वावीणं बहु-मज्जे, वहिमुह-णामा हवन्ति वहियण्णा ।

एक्केवका वर-गिरिणो, पत्तेकं अयुद-जोयणुच्छेहो ॥६५॥

१००००

अर्थ—वापियोंके बहु-मध्यभागमें दहीके सदृश वर्ण वाला एक-एक दधिमुख नामक उत्तम पर्वत है । प्रत्येक पर्वतकी ऊँचाई दस हजार (१००००) योजन प्रमाण है ॥ ६५ ॥

तम्मेत्त-वास-जुत्ता, सहस्स-गाढम्मि वज्जमय-वड्ढा ।

ताडोवरिम-तडेसुं, तड-वेवी-वर-वणाणि विविहानि ॥६६॥

१०००० । १००० ।

अर्थ—उत्तने (१०००० योजन) प्रमाण विस्तार सहित उक्त पर्वत एक हजार (१०००) योजन गहराईमें वज्रमय एवं गोल हैं । इनके तटोंपर तट-वेदियाँ और विविध प्रकारके वन हैं ॥६६॥

रतिकर पर्वतोंका कथन

वावीणं बाहिरए, दोसुं कोणेसु दोणिण पत्तेकं ।

रतिकर-णामा गिरिणो, कणयमया वहिमुह-सरिच्छा ॥६७॥

अर्थ—वापियोंके दोनों बाह्य कोनोंमेंसे प्रत्येकमें स्वर्णमय रतिकर नामक दो पर्वत दधि-मुखोंके आकार सदृश हैं ॥ ६७ ॥

जोयण-सहस्स-वासा, तेत्तिय-मेत्तोदया य पत्तेवकं ।

अड्ढाइञ्ज-सयाइ य, अदगाढा रतिकरा^१ गिरिणो^२ ॥६८॥

१००० । १००० । २५० ।

अर्थ—प्रत्येक रतिकर पर्वतका विस्तार एक हजार (१०००) योजन, इतनी (१००० यो०) ही ऊँचाई और अढ़ाई सौ (२५०) योजन प्रमाण अवगाह (नींव) है ॥ ६८ ॥

ते चउ-चउ-कोणेषुं, एक्केक्क-वहस्स होति चचारि ।

लोयविणिच्छिय - कत्ता, एवं नियमा परुवेति ॥६९॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—वे रतिकर पर्वत प्रत्येक द्रह्मके चारों कोनोंमें चार होते हैं, इसप्रकार लोक विनिश्चय कर्ता नियमसे निरूपण करते हैं ॥ ६९ ॥

पाठान्तर ।

नन्दीश्वरद्वीपकी प्रत्येक दिशामें तेरह-तेरह जिनालयों की अवस्थिति

एक्क-चउ-अट्ठ-अञ्जण-वहिमुह-रइयर-गिरीण सिंहरम्मि ।

चेट्ठवि^३ वर - रयणमओ, एक्केक्क-जिणिद-पासादो ॥७०॥

अर्थ—एक अञ्जनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर पर्वतोंके शिखरों पर उत्तम रत्नमय एक-एक जिनेन्द्र मन्दिर स्थित हैं ॥ ७० ॥

नन्दीश्वरद्वीप स्थित जिनालयोंकी ऊँचाई आदिका प्रमाण

जं भइसाल-वरा-जिण-घराण उस्सेह-पट्ठवि-उवइट्ठं ।

तेरस - जिण - भवणाणं, तं एवाणं पि वत्तब्बं ॥७१॥

अर्थ—भद्रशाल वनके जिन-गृहोंकी जो ऊँचाई आदि बतलाई है, वही इन तेरह जिन-भवनों की भी कहना चाहिए ॥ ७१ ॥

विशेषार्थ—चतुर्थ्याधिकार गाथा २०२६ में भद्रशालवन स्थित जिनालयोंकी लम्बाई-चौड़ाई आदि पाण्डुकवन स्थित जिनालयोंकी लम्बाई-चौड़ाई आदिसे चौगुनी कही गई है और इसी

अधिकारकी गाथा १८७९-१८८० में पाण्डुकवन स्थित जिनालयोंकी लम्बाई १०० कोस, चौड़ाई ५० कोस, ऊँचाई ७५ कोस और नींव ३ कोस कही गई है अतः भद्रशालवन एवं नन्दीश्वरद्वीप स्थित जिनालयोंका प्रमाण इससे चौगुना अर्थात् १०० योजन लम्बाई, ५० यो० चौड़ाई, ७५ यो० ऊँचाई और २ यो० की नींव जानना चाहिए ।

पूजा, नृत्य और वाद्यों द्वारा भक्ति प्रदर्शन

जल-गंध-कुसुम-तंदुल-वर-चरु-फल-दीप-धूप-पहुवोहि ।

अचंचते धुण-माणा, जिणिद-पडिमाओ देवा^१ य ॥ ७२ ॥

अर्थ—इन मन्दिरों में देव जल, गन्ध, पुष्प, तन्दुल, उत्तम नैवेद्य, फल, दीप और धूपादिक द्रव्योंसे जिनेन्द्र प्रतिमाओंको स्तुति-पूर्वक पूजा करते हैं ॥ ७२ ॥

जोइसय-वाणवेंतर-भावण-सुर-कप्पवासि-देवीओ ।

णचंचंति य गायंति य, जिण-भवणेषु^२ विचित्त-भंगोहि ॥ ७३ ॥

अर्थ—ज्योतिषी, वानव्यन्तर, भवनवासी और कल्पवासी देवोंकी देवियाँ इन जिन-भवनोंमें अद्भुत रीतिसे नाचती और गाती हैं ॥ ७३ ॥

भेरी-महल-घंटा-पहुवोणि विविह-दिब्ब-वज्ज्राणि ।

वायंते देववरा^३, जिणवर - भवणेषु भत्तोए ॥ ७४ ॥

अर्थ—जिनेन्द्र-भवनोंमें उत्तम देव भक्ति-पूर्वक भेरी, मर्दल और घण्टा आदि अनेक प्रकार के दिव्य वाजे बजाते हैं ॥ ७४ ॥

दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा स्थित वापिकाओंके नाम

एवं दक्खिण-पच्छिम-उत्तर-भागेसु होंति दिब्ब-ब्रह्मा ।

णवरि विसेसो णामा, पडमिणि-संठाण अण्णाणि ॥ ७५ ॥

अर्थ—इसीप्रकार (पूर्व दिशाके सदृश ही) दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भागोंमें भी दिव्य ब्रह्म हैं । विशेष इतना है कि इन दिशाओंमें स्थित कमल युक्त वापियोंके नाम शिखर-भिन्न हैं ॥ ७५ ॥

पुब्बादीसु^४ अरजा, विरजासोका य बीवसोको चि ।

दक्खिण - अंजण - सेले, चत्तारो पडमिणीसंडा ॥ ७६ ॥

अर्थ—दक्षिण अञ्जनगिरिकी पूर्वादिक दिशाओंमें अरजा, विरजा, अशोका और वीत-शोका नामक चार वापिकाएँ हैं ॥ ७६ ॥

विजय सि वज्रयन्ती, जयन्ति णामापराजिता सुरिमा ।

पच्छिम - अंजण - सेले^१, अशारो कमलिणीसंडा ॥७७॥

अर्थ—पश्चिम अञ्जनगिरिकी चारों दिशाओंमें विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और चौथी अपराजिता, इसप्रकार ये चार वापिकाएँ हैं ॥ ७७ ॥

रम्मा-रमणीयाओ, सुप्पह - णामा य सव्वदो - भद्दा ।

उत्तर - अंजण - सेले, पुब्बादिमु कमलिणीसंडा ॥७८॥

अर्थ—उत्तर अञ्जनगिरिकी पूर्वादिक दिशाओंमें रम्मा, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतो-भद्रा नामक चार वापिकाएँ हैं ॥ ७८ ॥

वनोमें अवस्थित प्रासाद और उनमें रहनेवाले देवोंका कथन

एक्केवक्का^२ पासादा, चउसट्ठि-वणेसु अंजणगिरीणं ।

धुव्वंत-धय-वड्डाया, ह्वन्ति वर-रयण-कणयमया^३ ॥७९॥

अर्थ—अञ्जनगिरियोंके चौंसठ वनोंमें फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त उत्तम रत्न एवं स्वर्णमय एक-एक प्रासाद है ॥ ७९ ॥

विशेषार्थ—नन्दीश्वरद्वीपकी चारों दिशाओंमें एक-एक अञ्जनगिरि पर्वत है । प्रत्येक अंजनगिरिकी चारों दिशाओंमें एक-एक वापिका है और प्रत्येक वापिकाकी प्रत्येक दिशामें एक-एक वन है ।

इसप्रकार एक दिशामें एक अञ्जनगिरिकी चार वापिकाओं सम्बन्धी १६ वन हैं । चारों दिशाओंके ६४ वन हैं और प्रत्येक वनमें एक-एक प्रासाद हैं ।

वासट्ठि जोयणाणि, उदओ इगितीस ताण वित्थारो ।

वित्थार-समो वीहो, वेदिय-चउ-गोउरेहि परियरिओ ॥८०॥

अर्थ—इन (प्रासादों) की ऊँचाई वासठ योजन और विस्तार इकतीस योजन प्रमाण है । इनकी लम्बाई भी विस्तारके सदृश इकतीस योजन प्रमाण ही है । ये सब प्रासाद वेदियों और चार-गोपुरोंसे व्याप्त हैं ॥ ८० ॥

णंदीसर-विदिसासुं, अञ्जण-सेला हवन्ति चत्तारि ।
रत्नकर - माण^१ - सरिच्छा, केई एयं परुवेति ॥८२॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—नन्दीश्वरद्वीपकी विदिशाओंमें रत्नकर पर्वतोंके सदृश परिमाणवाले चार अञ्जन-
शेल हैं । इसप्रकार भी कोई आचार्य निरूपण करते हैं ॥ ८२ ॥

पाठान्तर ।

नन्दीश्वर द्वीपमें विशिष्ट पूजनके सम्यक् निर्धारण

वरिसे-वरिसे चउ-विह-देवा णंदीसरम्मि दीवम्मि ।
आषाढ - कर्त्तिकेसुं, फल्गुण - मासे समायन्ति ॥८३॥

अर्थ—चारों प्रकारके देव नन्दीश्वर द्वीपमें प्रत्येक वर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन
मासमें आते हैं ॥ ८३ ॥

नन्दीश्वरद्वीपमें सौधमें आदि १६ इन्द्रोंका पूजनके लिए आगमन

ऐरावणमारुढो, विव्व - विभूदीए भूसिदो रम्मो ।
णालियर - पुण्ण - पाणी, सोहम्मो एदि भसीए ॥८४॥

अर्थ—इससमय ऐरावत हाथीपर आरूढ़ और दिव्य विभूतिसे विभूषित, रमणीय सौधमें
इन्द्र हाथमें पवित्र नारियल लिए हुए भक्तिसे यहाँ आता है ॥ ८४ ॥

वर - वारणमारुढो, वर-रण-विभूषणेहि सोहंतो ।
पूग - फल - गोच्छ - हत्थो, ईसाणिदो वि भसीए ॥८५॥

अर्थ—उत्तम हाथीपर आरूढ़ और उत्कृष्ट रत्न-विभूषणोंसे सुशोभित ईशान इन्द्र भी
हाथमें सुपारी फलोंके गुच्छे लिये हुए भक्तिसे यहाँ आता है ॥ ८५ ॥

वर-केसरिसारुढो^२, एव-रवि-सारिच्छ-कुंउलाभरणो ।
सूद-फल-गोच्छ-हत्थो, सणक्कुमारो वि भत्ति - जुदो ॥८६॥

अर्थ—उत्तम सिंहपर चढ़कर, नवीन सूर्यके सदृश कुण्डलोंसे विभूषित और हाथमें आभ-
रनोंके गुच्छे लिये हुए सनत्कुमार इन्द्र भी भक्तिसे युक्त होता हुआ यहाँ आता है ॥ ८६ ॥

आरुढो वर-तुरयं, वर-भूषण-भूसिदो विविह-सोहो ।

कदली - फल - लुंवि - हृत्यो, माहिदो एदि भत्तीए ॥८७॥

अर्थ—श्रेष्ठ घोड़ेपर चढ़कर, उत्तम भूषणोंसे विभूषित और विविध प्रकारकी शोभाको प्राप्त माहेन्द्र इन्द्र लटकते हुए केले हाथमें लेकर भक्तिसे यहाँ आता है ॥ ८७ ॥

हंसमिम चंद - धवले, आरुढो विमल-देह-सोहिल्लो ।

वर-केई-कुसुम-करो, भत्ति - जुदो एदि बम्हिदो ॥८८॥

अर्थ—चन्द्र सदृश धवल हंसपर आरुढ़, निर्मल शरीरसे सुशोभित और भक्तिसे युक्त ब्रह्मन्द्र उत्तम केतकी पुष्पको हाथमें लेकर आता है ॥ ८८ ॥

कोंच-विहंगारुढो, वर-चामर-विविह-छत्त-सोहंतो ।

पफुल्ल-कमल-हृत्यो, एदि हु बम्हुत्तरिबो वि ॥८९॥

अर्थ—कोंच पक्षीपर आरुढ़, उत्तम चँवर एवं विविध छत्रसे सुशोभित और खिला हुआ कमल हाथमें लेकर ब्रह्मोत्तर इन्द्र भी यहाँ आता है ॥ ८९ ॥

नोट—ऐसा ज्ञात होता है कि शायद यहाँ लांतव और कापिष्ठ इन्द्रकी भक्तिको प्रदर्शित करनेवाली दो गाथाएँ छूट गई हैं ।

वर - चक्कगायरुढो, कुंडल-केयूर-पहुदि-विप्पंतो ।

सयवंती-कुसुम-करो, सुक्किदो भत्ति-भरिद-मणो ॥९०॥

अर्थ—उत्तम चक्रवाकपर आरुढ़ कुण्डल और केयूर आदि आभरणोंसे देदीप्यमान एवं भक्तिसे पूर्ण मन-वाला शुकेन्द्र सेवन्ती पुष्प हाथमें लिये हुए यहाँ आता है ॥ ९० ॥

कीर - विहंगारुढो, महसुक्किदो वि एदि भत्तीए ।

विठथ-विभूदि-विमूसिव-देहो वर-विविह-कुसुम-दाम करो ॥९१॥

अर्थ—तोता पक्षीपर चढ़कर, दिव्य विभूतिसे विभूषित शरीरको धारण करनेवाला तथा उत्तम एवं विविध प्रकारके फूलोंकी माला हाथमें लिये हुए महाशुकेन्द्र भी भक्ति वश यहाँ आता है ॥ ९१ ॥

णीलुप्पल-कुसुम-करो, कोइल-वाहण-विमाणमारुढो ।

वर - रघण - भूसिदंगो, 'सदरिदो एदि भत्तीए ॥९२॥

अर्थ—कोयल-वाहन विमानपर आरूढ़, उत्तम रत्नोंसे अलंकृत शरीरसे संयुक्त और नील-कमलपुष्प हाथमें धारण करनेवाला शतार इन्द्र भक्तिसे प्रेरित होकर यहाँ आता है ॥ ९२ ॥

गरुड-विमाणारूढो, दाडिम-फल-लुंचि-सोहमाण-करो ।

जिण-चलण-भत्ति-जुत्तो, एदि सहस्सार - इंदो वि ॥९३॥

अर्थ—गरुडविमान पर आरूढ़, अनार फलोंके गुच्छेसे शोभायमान हाथवाला और जिन-चरणोंकी भक्तिमें अनुरक्त हुआ सहस्रार इन्द्र भी आता है ॥ ९३ ॥

विहगाहिव-मारूढो, पणसप्फल-लुंचि-लंबमाण-करो ।

वर-दिव्य - विभूदीए, आगच्छदि प्राणदिंदो वि ॥९४॥

अर्थ—विहगाधिप अर्थात् गरुडपर आरूढ़ और पनस अर्थात् कटहल फलके गुच्छेको हाथमें लिये हुए आनतेन्द्र भी उत्तम एवं दिव्य विभूतिके साथ यहाँ आता है ॥ ९४ ॥

पउम-विमाणारूढो, पाणद-इंदो वि एदि भत्तीए ।

तुंबुरु-फल-लुंचि-करो, वर - मंडल - मंडियायारो ॥९५॥

अर्थ—पशु विमानपर आरूढ़ उत्तम आभरणोंसे मण्डित प्राकृतिसे संयुक्त और तुम्बुरु फलके गुच्छेको हाथमें लिये हुए प्राणतेन्द्र भी भक्तिवश होकर यहाँ आता है ॥ ९५ ॥

परिपक्क'-उच्छु-हत्थो, कुमुद-विमाणं विवित्तमारूढो ।

विविहालंकार - धरो, 'आगच्छइ आरणिंदो वि ॥९६॥

अर्थ—अद्भुत कुमुद-विमानपर आरूढ़, पके हुए गन्नेको हाथमें धारण करनेवाला आरणेन्द्र भी विविध-प्रकारके अलंकार धारण करके यहाँ आता है ॥ ९६ ॥

आरूढो वर-मोरं, वलयंगद - मड्ड - हार-सोहंतो^१ ।

ससि-धवल-चमर-हत्थो, आगच्छइ अच्चुवाहिवई ॥९७॥

अर्थ—उत्तम मयूरपर चढ़कर, कटक, अंगद, मुकुट एवं हारसे सुशोभित और चन्द्र सदृश धवल चमरको हाथमें लिये हुए अच्युतेन्द्र यहाँ आता है ॥ ९७ ॥

भवनत्रिक देवोंका पूजाके लिये आगमन

णाणाविह-वाहणया, णाणा-फल-कुसुम-दाम-भरिव-करा ।

णाणा-विभूवि-सहिदा, जोइस-वण-भवरण एंसि भत्ति-जुवा ॥९८॥

अर्थ—नाना प्रकारके वाहनोंपर आरुढ़, नाना-प्रकारकी विभूति सहित, अनेक फल एवं पुष्पमालाएँ हाथोंमें लिये हुए ज्योतिषी, व्यन्तर तथा भवनवासी देव भी भक्तिसे संयुक्त होकर यहाँ आते हैं ॥ ९८ ॥

आगच्छिष्य णंदीसर-घर-दीव-जिणिद-दिव्व^१-भयणाइ^२ ।

बहुविह - थुवि - मुहल - मुहा, पदाहिणाहिं पकुब्बंति ॥९९॥

अर्थ—इसप्रकार ये देव नन्दीश्वर द्वीपके दिव्य जिनेन्द्र भवनोंमें आकर नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे वाचाल-मुख होते हुए प्रदक्षिणाएँ करते हैं ॥ ९९ ॥

पूजन प्रारम्भ करते समय दिशाओंका विभाजन

पुव्वाए कप्पवासी, भयणसुरा दक्खिणाए वेतरया^३ ।

पच्छिम - दिसाए तेसुं, जोइसिया उत्तर - दिसाए ॥१००॥

णिय-णिय-विभूदि-जोगं, महिमं कुब्बंति थोत्त-बहुल-मुहा ।

णंदीसर - जिणमंदिर - जत्तासुं विउल - भत्ति - जुवा ॥१०१॥

अर्थ—नन्दीश्वरद्वीपस्थ जिन-मन्दिरोंकी यात्रामें प्रचुर भक्तिसे युक्त कल्पवासी देव पूर्व-दिशामें, भवनवासी दक्षिणमें, व्यन्तर पश्चिममें और ज्योतिषी देव उत्तर दिशामें (स्थित होकर) मुखसे बहुत स्तोत्रोंका उच्चारण करते हुए अपनी-अपनी विभूतिके योग्य महिमाको करते हैं ॥ १००-१०१ ॥

प्रत्येक दिशामें प्रत्येक इन्द्रकी पूजाके लिए समयका विभाजन

पुव्वण्हे अवरण्हे, पुव्वणिंसाए वि पच्छिम-णिसाए ।

पहराणि दोणिं दोणिं, णिबभर^४-भत्ती पसत्त-मणा ॥१०२॥

कमसो पदाहिणेणं, पुण्णिमयं^५ जाव अट्टमीदु तदो ।

देवा विविहं पूजं, जिणिद - पडिमाण कुब्बंति ॥१०३॥

अर्थ—ये देव आसक्त चित्त होकर अष्टमीसे लेकर पूर्णिमा पर्यन्त पूर्वार्द्ध, अपरार्द्ध, पूर्बरात्रि और पश्चिमरात्रिमें दो-दो प्रहर तक उत्तम भक्ति-पूर्वक प्रदक्षिण-क्रमसे जिनेन्द्र-प्रतिमाओं की विविध प्रकारसे पूजा करते हैं ॥ १०२-१०३ ॥

१. व. दव्व । २. द. वेतरिया । ३. व. क. ज. भरभत्तीए । ४. द. व. क. ज. पुण्णमयं

जाव अट्टमीदु ।

विशेषार्थ—नन्दीश्वर द्वीपकी चारों दिशाओंमें १२ जिनालय अवस्थित हैं। आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीके पूर्वाह्न में सर्व कल्पवासी देवोंसे युक्त सौधर्मेन्द्र पूर्व दिशामें, भवनवासो देवोंसे युक्त चमरेन्द्र दक्षिण दिशामें, व्यन्तर देवोंसे युक्त किम्पुरुष इन्द्र पश्चिम दिशामें और ज्योतिषी देवोंसे युक्त चन्द्र इन्द्र उत्तर दिशामें पूजा प्रारम्भ करते हैं। दो प्रहर बाद अपराह्णमें कल्पवासी दक्षिणमें, भवनवासो पश्चिममें, व्यन्तरदेव उत्तरमें और ज्योतिषी देव पूर्वमें आ जाते हैं। फिर दो प्रहर बाद पूर्व रात्रिको ये देव प्रदक्षिणा क्रमसे पुनः दिशा परिवर्तन करते हैं। इसके बाद दो प्रहर व्यतीत हो जाने पर अपर रात्रि को उसी प्रकार पुनः दिशा परिवर्तन करते हैं। इसप्रकार अहोरात्रिके ८ प्रहर पूर्णकर नवमी तिथिको प्रातःकाल कल्पवासी आदि चारों निकायों के देव पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः दो-दो प्रहर तक पूजन करते हैं इसी क्रमसे पूर्णिमा पर्यन्त अर्थात् आठ दिन तक चारों निकायोंके देवों द्वारा अनवरत महापूजा होती है।

नन्दीश्वरद्वीप स्थित जिन-प्रतिमाओंके अभिषेक, विलेपन और पूजा आदिका कथन

कुब्बन्ते अभिसेयं, महाविभूवीहि ताण देविवा ।

कंचण-कलस-गर्देहि, विजल - जलेहि सुगंधेहि ॥१०४॥

अर्थ—देवेन्द्र, महान् विभूतिके साथ उन जिन प्रतिमाओंका सुवर्ण-कलशोंमें भरे हुए विपुल सुगन्धित जलसे अभिषेक करते हैं ॥ १०४ ॥

कुंकुम - कप्पूरेहि, चन्दण - कालागरुहि अण्णेहि ।

ताणं विलेयणाइ^१, ते कुब्बन्ते सुगंध - गंधेहि ॥१०५॥

अर्थ—वे इन्द्र कुंकुम, कप्पूर, चन्दन, कालागरु और अन्य सुगन्धित द्रव्योंसे उन प्रतिमाओंका विलेपन करते हैं ॥ १०५ ॥

कुर्वेवु - सुन्दरेहि, कोमल - विमलेहि सुरहि - गंधेहि ।

वर - कलम - तंडुलेहि^२, पूजंति जिणिद - पडिमाओ^३ ॥१०६॥

अर्थ—वे देव, कुन्दपुष्प एवं चन्द्र सदृश सुन्दर, कोमल, निर्मल और सुगन्धित उत्तम कलम-धान्यके तन्दुलोंसे जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥ १०६ ॥

सयसंतराय चंपय-माला पुण्णाग - णाग - पटुवीहि ।

अरुचंति ताओ देवा, सुरहीहि कुसुम - मालाहि ॥१०७॥

अर्थ—वे देव सेवन्तीराज, चम्पकमाला, पुन्नाग और नाग आदि सुगन्धित पुष्प-मालाओंसे उन प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥ १०७ ॥

बहुविह - रसवन्तेहि, वर - भवखेहि विचिल-खेहि ।

अमय-सरच्छेहि सुरा, जिणिद - पडिमाओ महयंति ॥१०८॥

अर्थ—वे देवगण, बहुत प्रकारके रसोंसे संयुक्त, अद्भुत रूपवाले और अमृत सहस्र उत्तम भोज्य-पदार्थोंसे (नैवेद्यसे) जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥ १०८ ॥

विष्फुरिद-किरण-मंडल-मंडिद-भवणेहि^१ रयण-दीप्तेहि ।

शिवकज्जल - कलुसेहि, पूजंति जिणिद - पडिमाओ ॥१०९॥

अर्थ—देदीप्यमान किरण-समूहसे जिन-भवनोंको विभूषित करनेवाले, कज्जल एवं कालुष्य रहित (ऐसे) रत्न-दीपकोंसे इन प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥ १०९ ॥

वासिद - दियंतरेहि, कालागरु-पमुह-विविध-धूवेहि ।

परिमलिद - मंदिरेहि, महयंति जिणिद - बिबाणि ॥११०॥

अर्थ—देवगण मन्दिर एवं दिग्-मण्डलको सुगन्धित करनेवाले कालागरु आदि अनेक प्रकारके धूपोंसे जिनेन्द्र-बिम्बोंकी पूजा करते हैं ॥ ११० ॥

दवखा-दाडिम-कदली - नारंगय - मातुलिग-चूदेहि^२ ।

अण्णेहि पक्केहि, फलेहि पूजंति जिणणाहं ॥१११॥

अर्थ—दाख, अनार, केला, नारंगी, मातुलिग, आम तथा अन्य भी पके हुए फलोंसे वे देव जिननाथकी पूजा करते हैं ॥ १११ ॥

णचंचंत-चमर-किंकिणि, विविह-विताणादियाहि^३ वत्थाहि ।

ओसंखिद - हारेहि, अचंचंति जिणसरं देवा ॥११२॥

अर्थ—वे देव विस्तीर्ण एवं लटकते हुए हारोंसे संयुक्त तथा नाचते हुए चंवर एवं किंकिणियों सहित अनेक प्रकारके चंदोदा आदिसे जिनेश्वरकी पूजा करते हैं ॥ ११२ ॥

महल-मुइंग^४-भेरी-पडह-प्पहुडीणि विविह - वज्जाणि ।

वायंति जिणवरानं, देवा पूजासु^५ भसीए ॥११३॥

अर्थ—देवगण पूजाके समय भक्तिसे मर्दल, मृदङ्ग, भेरी और पटहादि विविध बाजे बजाते हैं ॥ ११३ ॥

१. व. सवखेहि । २. भूदेहि । ३. द. व. वित्थाहि । ४. व. मुयिग । ५. द. व.

नृत्य, गान एवं नाटक आदिके द्वारा भक्ति प्रदर्शन

विविहाइ गच्छणाइं, वर-रयण-विभूषिदाओ दिव्वाओ ।

कुब्बंते 'कण्णाओ, गायंति जिणिव - चरिदाणि ॥११४॥

अर्थ—उत्तम रत्नोंसे विभूषित दिव्य कन्यायें विविध नृत्य करती हैं और जिनेन्द्रके चरित्रोंको गाती हैं ॥ ११४ ॥

जिण-चरिय-णाडयं ते, चउ-विवाहाभिराय-भंग-सोहिल्लं ।

आणंदेणं देवा, बहु - रस - भावं पकुब्बंति ॥११५॥

अर्थ—वे चार प्रकारके देव आनन्दके साथ अभिनयके प्रकारोंसे शोभायमान बहुत प्रकार के रस-भाववाले जिनचरित्र सम्बन्धी नाटक करते हैं ॥ ११५ ॥

एवं जेतियमेत्ता, जिणिव - णिलया विचिस-पूजाओ ।

कुब्बंति तेत्तिएसुं, णिब्भर - भस्सीसु सुर - संघा^२ ॥११६॥

अर्थ—इसप्रकार नन्दीश्वरद्वीपमें जितने जिनेन्द्र-मन्दिर हैं, उन सबमें गाढ़ भक्ति युक्त देवगण अद्भुत रीतिसे पूजाएँ करते हैं ॥ ११६ ॥

कुण्डलपर्वतकी अवस्थिति एवं उसका विस्तार आदि

एवकारसमो कुण्डल-णामो वीओ हवेदि रमणिज्जो ।

एवस्स य बहु - मज्झे, अत्थि गिरी कुंडलो णाम ॥११७॥

अर्थ—ग्यारहवीं कुण्डल नामा रमणीक द्वीप है । इस द्वीपके बहुमध्य भागमें कुण्डल नामक पर्वत है ॥ ११७ ॥

पण्णासरी सहस्सा, उच्छेहो जोयणाणि तगिरिणो ।

एवक - सहस्सं गाडं, जाणाविह - रयण - भरिदस्स ॥११८॥

७५००० । १०००

अर्थ—नाना प्रकारके रत्नोंसे भरे हुए इस पर्वतकी ऊँचाई पचहत्तर हजार (७५०००) योजन और अवगाह (नींव) एक हजार (१०००) योजन प्रमाणा है ॥ ११८ ॥

थासो वि माणुसुत्तर-वासादो दस-गुण-प्पमाणेण ।

तग्गिरिणो मूलोवरि, तड - वेदी - प्पहुदि-जुत्तस्स ॥११६॥

मूल १०२२० । मज्झ ७२३० । सिंह ४२४० ।

अर्थ — तटवेदी आदिसे संयुक्त इस पर्वतका मूल एवं उपरिम विस्तार मानुषोत्तर पर्वतके विस्तार-प्रमाणसे दसगुना है ॥ ११६ ॥

विशेषार्थ — चतुर्थाधिकार गाथा २७९४ में मानुषोत्तर पर्वतका मूल वि० १०२२ योजन, मध्य वि० ७२३ यो० और शिखर वि० ४२४ यो० कहा गया है । कुण्डलगिरिका विस्तार इससे दस गुना है अतः उसका मूल विस्तार १०२२० योजन, मध्य विस्तार ७२३० योजन और शिखर विस्तार ४२४० योजन प्रमाण है ।

कुण्डलगिरिपर स्थित कूटोंका निरूपण

उवरि कुण्डलगिरिणो, दिव्वाणि ह्वंति वीस कूडाणि ।

एवाणं विण्णासं^१, भासेमो^२ आणुपुब्बोए ॥१२०॥

अर्थ — कुण्डलगिरिके ऊपर जो दिव्य कूट हैं, उनका विन्यास अनुक्रमसे कहता है ॥ १२० ॥

पुब्बादि-चउ-दिसासुं, चउ-चउ कूडाणि ह्वंति पत्तेवकं ।

ताण्णभंतर - भागे, एवकेवको सिद्धवर - कूडो ॥१२१॥

अर्थ — पूर्वादिक चार दिशाओंमेंसे प्रत्येकमें चार-चार कूट हैं और उनके अभ्यन्तर-भागमें एक-एक सिद्धवर कूट है ॥ १२१ ॥

वज्जं वज्जपहवखं, कणयं कणयप्पहं च पुब्बाए ।

वविखण-दिसाए रजवं, रजदप्पह-सुप्पहा महप्पहयं ॥१२२॥

अंकं अंकपहं मणिकूडं पच्छिम-दिसाए मणिपहयं ।

उत्तर-दिसाए रुचकं, रुचकाभं हेमवतं^३ - संबरथा ॥१२३॥

अर्थ — वज्र, वज्रप्रभ, कनक और कनकप्रभ, ये चार कूट पूर्व-दिशामें; रजत, रजतप्रभ, सुप्रभ और महाप्रभ, ये चार दक्षिण-दिशामें; अङ्क, अङ्कप्रभ, मणिकूट और मणिप्रभ, ये चार पश्चिम दिशामें तथा रुचक, रुचकाभ, हिमवान् और मन्दर, ये चार कूट उत्तर-दिशामें स्थित हैं ॥ १२२-१२३ ॥

एवे सोलस कूडा, णंदणवण वणिदाण कूडाणं ।
उच्छेहादि^१ - समाणा, पासादेहि विचिचेहि ॥१२४॥

अर्थ—ये सोलह कूट नन्दनवनमें कहे हुए कूटोंकी ऊँचाई आदि तथा अद्भुत प्रासादोंसे समान हैं ॥ १२४ ॥

विशेषार्थ—चतुर्थाधिकार गा० १९१६ में सोमनसके कूटोंका उत्सेध २५० योजन, मूल विस्तार २५० योजन और शिखर विस्तार १२५ योजन कहा गया है तथा गाथा २०२३-२०२४ में नन्दनवनके कूटोंका विस्तार सोमनस के कूट विस्तारसे दुगुना कहा है और यहाँ कुण्डलगिरिके कूटों का विस्तार नन्दनवनके कूट विस्तार सदृश कहा है । अर्थात् कुण्डलगिरिके कूटोंका उत्सेध ५०० योजन, मूल विस्तार ५०० योजन और शिखर विस्तार २५० योजन प्रमाण है ।

एदेसुं कूडेसुं, जिणभवण - विभूसिएसुं^२ रम्मेसुं ।
जिवसंति वेतर-सुरा, णिय-णिय-कूडेहि सम - णामा ॥१२५॥

अर्थ—जिन-भवनसे विभूषित इन रमणीय कूटोंपर अपने-अपने कूटोंके सदृश नामवाले ध्यन्तरदेव निवास करते हैं ॥ १२५ ॥

एवक - पलिदोवमाऊ, बहु-परिवारा हवति ते सव्वे ।
एवाणं णयरीओ, विचित्त - भवणाओ तेसु कूडेसु ॥१२६॥

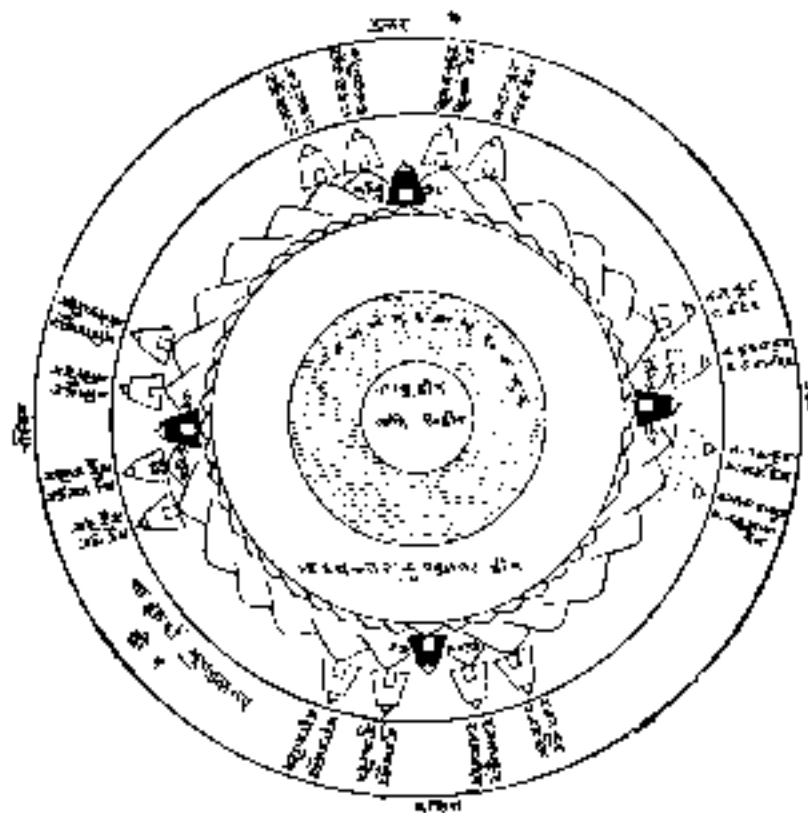
अर्थ—वे सब देव एक पत्योपम-प्रमाण आयु और बहुत प्रकारके परिवार सहित होते हैं । उपर्युक्त कूटोंपर अद्भुत भवनोंसे संयुक्त इन देवोंकी नगरियाँ हैं ॥ १२६ ॥

चत्तारि सिद्ध-कूडा, चउ-जिण-भवणेसु ते पभासंते ।
एसहगिरि-कूड-वणिद-जिएघर-सम-वास-पहुवीहि ॥१२७॥

अर्थ—ये चार सिद्धकूट निषध पर्वतके सिद्धकूट पर कहे हुए जिनपुरके सदृश विस्तार एवं ऊँचाई आदि सहित ऐसे चार जिन-भवनोंसे शोभायमान होते हैं ॥ १२७ ॥

विशेषार्थ—चतुर्थाधिकार गाथा १५५ में कहे गये निषधपर्वतके सिद्धकूटपर स्थित जिन भवन के व्यासादिके सदृश यहाँ सिद्धकूटोंपर स्थित प्रत्येक जिनभवनका आयाम एक कोस, विष्कम्भ अर्ध-कोस और उत्सेध पौन (३) कोस प्रमाण है ।

नोट—कुण्डलवर द्वीप, उसके मध्य स्थित कुण्डलगिरि पर्वत, इसपर स्थित जिनेन्द्रकूट एवं अन्य १६ कूट और इन कूटोंके स्वामियोंके नाम आदि इस चित्रमें चित्रित हैं—



मतान्तरसे कुण्डलगिरि पर्वतका निरूपण

तगिरि-वरस्स होंति ह, विसि विविसासुं जिनिव-कूडाणि ।

परोषक एषकेवके, केई एवं परुवेति ॥१२८॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—इस श्रेष्ठ पर्वतकी दिशाओं एवं विदिशाओंमेंसे प्रत्येकमें एक-एक जिनेन्द्रकूट है, इसप्रकार भी कोई आचार्य बतलाते हैं ॥ १२८ ॥

पाठान्तर ।

लोयविनिश्चय-कर्ता, कुण्डलसेलस्स वर्णन-पयारं ।

अवरेण सरुवेणं, ववखाइ तं परुवेमो ॥१२९॥

अर्थ—लोकविनिश्चय-कर्ता कुण्डल पर्वतके वर्णन-प्रकारका जो दूसरी तरहसे व्याख्यान करते हैं, उसका यहाँ निरूपण किया जाता है ॥ १२९ ॥

मणुसुत्तर-सम-वासो, बादाल-सहस्स-जोयणुच्छेहो ।

कुण्डलगिरी सहस्सं, गाढो बहु-रयण-कय-सोहो ॥१३०॥

अर्थ—बहु-रत्न-कृत शोभा युक्त यह कुण्डलपर्वत मानुषोत्तर-पर्वत सदृश विस्तार-वाला, बयालीस हजार योजन ऊँचा और एक हजार योजनप्रमाण अवगाह सहित है ॥ १३० ॥

कूडाणं ताडं चिय, एगामाणं माणुसुत्तर-गिरिस्स ।

कूडेहि सरिच्छाणं, णवरि सुताणं इमे जामा ॥१३१॥

पुव्व-दिसाए विसिट्ठो, पंचसिरो महसिरो महाबाहु ।

पउमो पउमुत्तर-महपउमो दक्खिण-दिसाए वासुगिओ ॥१३२॥

थिरह्मदय-महाह्मदया, सिरिच्छो सत्थिओ य पच्छिमवो ।

सुन्दर - विसालणेत्तां, पाण्डुर - पुण्डरय उत्तरए ॥१३३॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतके कूटोंके सदृश इस पर्वतपर स्थित कूटोंके नाम तो वही हैं किन्तु देवोंके नाम इसप्रकार हैं—पूर्व दिशामें विशिष्ट (त्रिशिर), पंचशिर, महाशिर और महाबाहु; दक्षिण-दिशामें पद्म, पद्मोत्तर, महापद्म और वासुकि; पश्चिममें स्थिरहृदय, महाहृदय, श्रीवृक्ष और स्वस्तिक तथा उत्तरमें सुन्दर, विशालनेत्र, पाण्डुर और पुण्डरक, ये सोलह देव उपर्युक्त क्रमसे उन कूटोंपर स्थित हैं ॥ १३१-१३३ ॥

एक-पलिवोवमाऊ, वर-रयण-विभूसियंग-रमणिज्जा ।

बहु - परिवारेहि जुदा, ते देवा होति सागिदा ॥१३४॥

अर्थ—एक पल्यप्रमाण आयुवाले वे नागेन्द्रदेव उत्तम रत्नोंसे विभूषित शरीरसे रमणीय और बहुत परिवारोंसे युक्त होते हैं ॥ १३४ ॥

बहुविह-देवोहि जुदा, कूडोवरिमेसु तेसु भवणेषु ।

णिय-णिय-विभूदि-जोगं, सोक्खं भुजंति बहु-भेयं ॥१३५॥

अर्थ—ये देव बहुत प्रकारकी देवियोंसे युक्त होकर कूटोंपर स्थित उन भवनोंमें अपनी-अपनी विभूतिके योग्य बहुत प्रकारके सुख भोगते हैं ॥ १३५ ॥

पुव्वावर-दिग्भायं, ठिवाण कूडाण अग-भूमीए ।

एककेवका वर-कूडा, तड-वेदी-पहुदि-परियरिया ॥१३६॥

अर्थ—पूर्वापर दिग्भागमें स्थित कूटोंकी अग्रभूमिमें तट-वेदी आदिकसे व्याप्त एक-एक श्रेष्ठ कूट है ॥ १३६ ॥

जोयण-सहस्स-तुंगा, पुह-पुह तम्मेत्त-मूल-वित्थारा ।

पंच-सय-सिहर-हंदा, सग-सय-पण्णास-मज्झ-वित्थारा ॥१३७॥

१००० । ५०० । ७५० ।

अर्थ—ये कूट पृथक्-पृथक् एक हजार (१०००) योजन ऊँचे, इतने-मात्र (१००० यो०) मूल विस्तार सहित, पाँच सौ (५००) योजन प्रमाण शिखर विस्तारवाले और सात सौ पचास (७५०) योजन प्रमाण मध्य विस्तारसे युक्त हैं ॥ १३७ ॥

ताणोवरिम-घरेसुं, कुंडल-दीवस्स अहिबई देवा ।

वैतरया^१ शिथ-जोगं, बहु-परिवारा^२ बिराजंति^३ ॥१३८॥

अर्थ—इन कूटोंके ऊपर स्थित भवनोंमें कृण्डलद्वीपके अधिपति व्यन्तर देव अपने योग्य बहुत परिवारसे संयुक्त होकर निवास करते हैं ॥ १३८ ॥

अब्भंतर-भागेसुं, एवाणि जिणिद-दिब्ब-कूडाणि ।

एक्केक्काणं अंजणगिरि-जिण-मंदिर-समाणानि ॥१३९॥

अर्थ—इन सभी कूटोंके अभ्यन्तर भागोंमें अंजनपर्वतस्थ जिन मन्दिरोंके सदृश दिव्य जिनेन्द्र कूट हैं ॥ १३९ ॥

एक्केक्का जिण-कूडा, चेट्ठंते दक्खिणुसर-विसासुं ।

तानि अंजण-पठवय - जिणिद - पासाद - सारिच्छा ॥१४०॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—उनके उत्तर-दक्षिण भागोंमें अंजनपर्वतस्थ जिनेन्द्रप्रासादोंके सदृश एक-एक जिन-कूट स्थित हैं ॥ १४० ॥

पाठान्तर ।

रुचकवर द्वीपके मध्य रुचकवर पर्वतका अवस्थान एवं उसके विस्तार आदिका विवेचन

तेरसमो रुचकवरो, दीवो चेट्ठेदि तस्स बहु-मज्झे ।

अस्थि गिरी रुचकवरो, कणयमओ चक्कबालेणं ॥१४१॥

अर्थ—तेरहवाँ द्वीप रुचकवर है । इसके बहु-मध्यभागमें मण्डलाकारसे स्वर्णमय रुचकवर पर्वत स्थित है ॥ १४१ ॥

सव्वत्थ तस्स रुंदो, चउसीदि-सहस्स-जोयण-पमाणा ।

तम्मेटो उच्छेहो, एवक - सहस्सं पि गाहत्तां ॥१४२॥

५४००० । १००० ।

अर्थ—उस पर्वतका विस्तार सर्वत्र चौगुनी हजार (४०००) योजन, इतनी ही ऊँचाई और एक हजार (१०००) योजन प्रमाण अवगाह है ॥ १४२ ॥

मूलोवरिम्मि भागे, तड-वेदी उववणाइ चेद्वंति ।

तग्गिरिणो वण-वेदि-प्पहुदीहि अहिय-रम्माणि ॥१४३॥

अर्थ—उस पर्वतके मूल और उपरिम भागमें वन-वेदी आदिकसे अधिक रमणीय तट-वेदियाँ एवं उपवन स्थित हैं ॥ १४३ ॥

रुचक पर्वतके ऊपर स्थित कूट, उनका विस्तार आदि, उनमें निवास करने वाली देवांगनाएँ और जन्माभिषेकमें उन देवांगनाओंके कार्य

तग्गिरि-उवरिम-भागे, चोदाला होति दिव्व-कूडाणि ।

एदाणं विण्णासं, भासेमो आणुपुव्वीए ॥१४४॥

अर्थ—इस (रुचक) पर्वतके उपरिम भागमें जो चवालीस दिव्य कूट हैं, उनका विन्यास अनुक्रमसे कहता हूँ ॥ १४४ ॥

कणयं कंचण-कूडं, तवणं सत्थिय^१-विसासु-भट्ठाणि ।

अंजणमूलं^२ अंजणवज्जं^३ कूडाणि अट्ठ पुव्वीए ॥१४५॥

अर्थ—कनक, कांचनकूट, तपन, स्वस्तिकदिशा, सुभद्र, अंजनमूल, अंजन और वज्र, ये आठ कूट पूर्व दिशामें हैं ॥ १४५ ॥

पंच-सय-जोयणाई, तुंगा तम्मेट-मूल-विषखंभा ।

तद्दल-उवरिम-रुंदा, ते कूडा वेदि - वण - जुत्ता ॥१४६॥

५०० । ५०० । २५० ।

अर्थ—वेदी एवं वनोंसे संयुक्त ये कूट पाँच सौ (५००) योजन ऊँचे और इतने (५०० यो०) प्रमाण मूल-विस्तार तथा इससे आधे (२५० यो०) उपरिम विस्तार सहित हैं ॥ १४६ ॥

१. द. ब. क. ज. संविय । २. द. ज. क. अंजमूलं, ब. अजमूल । ३. द. ज. क. अजवज्जं, ब. अंजवज्जं । ४. ब. अड ।

ताणोवरि भवणाणि, गोदम-देवस्त नेह-सरिसारिण ।

जिण - भयण - भूसिदाइं, विचित्र - रुवाणि रेहंति ॥१४७॥

अर्थ—उन कूटोंपर जिन-भवनोंसे भूषित और विचित्र रूपवाले गौतम देवके भवन सदृश भवन विराजमान हैं ॥ १४७ ॥

एदेसु दिसा-कण्णा, णिवसंते णिरुवमेहि रुवेहि ।

विजया य वैजयंता, जयत-णामा वराजिदया ॥१४८॥

णंदा-णंदवदीओ, णंदुत्तरया य णंदिसेण ति ।

भिगार-धारणीओ, ताओ जिण-जम्मकल्लाणे ॥१४९॥

अर्थ—इन भवनोंमें अनुपम-रूपसे संयुक्त विजया, वैजयन्ता, जयन्ता, अपराजिता, नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिदेणा नामक दिक्-कन्याएँ निवास करती हैं । ये जिन-भगवान्‌के जन्म-कल्याणकमें भारी धारण किया करती हैं ॥ १४८-१४९ ॥

दक्खिण-दिसाए फलिहं, रज्जदं कुमुदं च णलिण-पडमाणि ।

चंदक्खं वेसमणं, वेरुलियं अट्ट कूडाणि ॥१५०॥

अर्थ—स्फटिक, रजत, कुमुद, नलिन, पद्म, चन्द्र, वैश्रवण और वैडूर्य, ये आठ कूट दक्षिण दिशामें स्थित हैं ॥ १५० ॥

उच्छेह-प्पहुवोहि, ते कूडा होति पुव्व-कूडो व्व ।

एदेसु दिसा-कण्णा, वसंति इच्छा - समाहारा ॥१५१॥

सुपविण्णा जसधरया, लच्छी-णामा य सेसवदि-णामा ।

तह चित्तागुता - देवी, वसुंधरा दप्पण - धराओ ॥१५२॥

अर्थ—ये सब कूट ऊँचाई आदिकमें पूर्व कूटोंके सदृश ही हैं । इनके ऊपर इच्छा, समाहारा, सुप्रकीर्णा, यशोधरा, जशमी, जेषवती, चित्रगुप्ता और वसुंधरा नामकी आठ दिक्कन्याएँ निवास करती हैं । ये सब जिन-जन्म कल्याणकमें दर्पण धारण किया करती हैं ॥ १५१-१५२ ॥

होति असोधं सत्थिय-मंदर-हेमवद-रज्ज-णामाणि ।

रज्जुत्ताम-चंद-सुवंसणाणि^१ पच्छिम-दिसाए कूडाणि ॥१५३॥

अर्थ—अमोघ, स्वस्तिक, मन्दर, हैमवत, राज्य, राज्योत्तम, चन्द्र और सुदर्शन, ये आठ कूट पश्चिम-दिशामें स्थित हैं ॥ १५३ ॥

पुव्वोविद-कूडाणं, वाम-प्पहुवीहि^१ होंति सारिच्छा ।
एदेसुं^२ कूडेसुं, कुण्णति वासं^३ दिसा - कण्णा ॥१५४॥
वृल-णामा गुण्णदेवी, पुदवी^१ गहवासी^२ एइकणासा य ।
णवमी सीदा भदा, जिण-जणणी छत्ता-धारीओ ॥१५५॥

अर्थ—ये कूट विस्तारादिकमें पूर्वोक्त कूटोंके ही सदृश हैं । इनके ऊपर इला, सुरदेवी, पृथिवी, पद्मा, एकनामा, नवमी, सीता और भद्रा नामक दिक्कन्याएँ निवास करती हैं । ये दिक्कन्याएँ जिन-जन्म कल्याणकमें जिन-माताके ऊपर छत्र धारण किया करती हैं ॥ १५४-१५५ ॥

विजयं च बहुजयंतं, जयंदमपराजियं च कुण्डलयं ।
रुजगक्ख-रयणा-कूडाणि सव्वरयणा त्ति उत्तर-दिसाए ॥१५६॥

अर्थ—विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, कुण्डलक, रुचक, रत्नकूट और सर्वरत्न, ये आठ कूट उत्तर दिशामें स्थित हैं ॥ १५६ ॥

एदे वि अट्ठ कूडा, सारिच्छा होंति पुव्व-कूडाणं ।
तेसुं^१ पि दिसा-कण्णा, अलंबुसा - मिस्सकेसीओ ॥१५७॥
तह पुण्डरीकिणी वारुणि त्ति आसा य सच्च-णामा य ।
हिरिया सिरिया देवी, एवाओ^२ चमर - धारीओ ॥१५८॥

अर्थ—ये आठ कूट भी पूर्व कूटोंके सदृश ही हैं । इनके ऊपर भी अलंबूषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सत्या, ह्री और श्री नामकी आठ दिक्कन्याएँ निवास करती हैं । जिन-जन्मकल्याणकमें ये सब चक्र धारण किया करती हैं ॥ १५७-१५८ ॥

एवाणं देवीणं, कूडाणभंतरे चउ - दिसासु ।
चत्तारि महाकूडा, चेद्वंते पुव्व - कूड - समा ॥१५९॥
णिच्चउज्जोवं विमलं, णिच्चालोयं सयंपहं कूडं ।
उत्तर-पुव्व-दिसासुं, दक्खिण-पच्छिम-दिसासु कमा ॥१६०॥

अर्थ—पूर्वोक्त कूटोंके ही सदृश चार महाकूट इन देवियोंके कूटोंके अभ्यन्तर भागमें चार दिशाओंमें स्थित हैं । ये नित्योद्योत, विमल, नित्यालोक और स्वयंप्रभ नामक चारों कूट क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशामें स्थित हैं ॥ १५९-१६० ॥

सोदामिणि त्ति कणया, सदहृद-देवी य कणय-चित्ते त्ति ।

उज्जोवकारिणीओ, दिसासु जिण - जम्मकरुलाणे ॥१६१॥

अर्थ—इन कूटोंपर स्थित होती हुई सोदामिनी, कनका, शतहृदा और कनकचिन्ता, ये चार देवियाँ जिन-जन्मकरुलाणकमें दिग्गम्योंकी निर्मल स्त्रिया करती हैं ॥ १६१ ॥

सक्कूडब्भंतरए, कूडा पुव्वुत्त-कूड - सारिच्छा ।

वेरुलिय-रुचक-मणि-रज्जउत्तमा^१ पुव्व-पहुदीसु^२ ॥१६२॥

अर्थ—इन कूटोंके अभ्यन्तरभागमें पूर्वोक्त कूटोंके सदृश बंडूर्य, रुचक, मणि और राज्योत्तम नामक चार कूट पूर्वोक्त दिशाओंमें स्थित हैं ॥ १६२ ॥

तेसुं पि दिसाकण्णा, वसंति रुचका तथा रुचककित्ती ।

रुचकादी-कंत-पहा, जणंति जिण - जातकम्माणि ॥१६३॥

अर्थ—उन कूटोंपर भी रुचका, रुचककीर्ति, रुचककांता और रुचकप्रज्ञा, ये चार दिक्कन्याएँ निवास करती हैं । ये कन्याएँ जिन-भगवान्का जातकर्म करती हैं ॥ १६३ ॥

पल्ल-पमाणाउ-ठिदी, पत्तेषकं होदि सयल-देवीणं ।

सिरि-देशोए सरिच्छा, परिवारा ताण एादव्वा ॥१६४॥

अर्थ—उन सब देवियोंमेंसे प्रत्येककी आयु एक पल्ल-प्रमाण होती है । उनके परिवार श्रीदेवीके परिवार सदृश जानने चाहिए ॥ १६४ ॥

सिद्धकूटोंका अवस्थान

तक्कूडब्भंतरए, चत्तारि हवंति सिद्ध - कूडाणि ।

पुव्व-समाणं णिसह-ट्टिद-जिण^३-घर-सरिस-जिण णिकेदाणि ॥१६५॥

अर्थ—इन कूटोंके अभ्यन्तर भागमें चार सिद्ध-कूट हैं, जिनपर पहलेके सदृश निषध-पर्वतस्थ जिन-भवनोंके समान जिन-मन्दिर विद्यमान हैं ॥ १६५ ॥

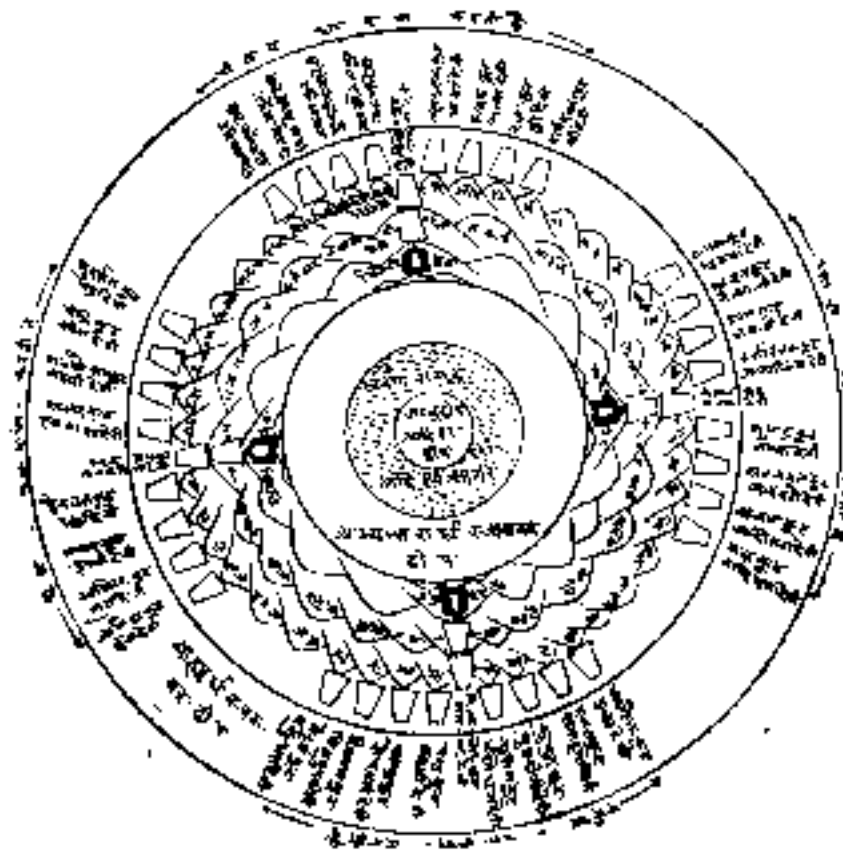
मतान्तरसे सिद्धकूटोंका अवस्थान

दिस-विदिसं तद्वभागे, चउ-चउ श्रद्धाणि सिद्ध-कूडाणि ।

उच्छेद - प्पहुदीए, णिसह - समा' केइ इच्छंति ॥१६६॥

अर्थ--कोई आचार्य ऊंचाई आदिकमें निषध पर्वतके सदृश (ऐसे) दिशाओंमें चार और विदिशाओंमें चार इसप्रकार आठ सिद्ध कूट स्वीकार करते हैं ॥ १६६ ॥

नोट—रुचकवर पर्वत पर स्थित कूटोंका प्रमाण, नाम, उनपर स्थित देवियाँ और उन देवियोंके कार्य आदिका चित्रण इसप्रकार है—



मतान्तरसे रुचकगिरि-पर्वतका निरूपण

लोकविनिश्चय-कर्ता, रुचकवरहिस्स वण्णाण-पयारं ।

अण्णोण सरुवेणं, वक्खाणइ तं पयासेमि ॥१६७॥

अर्थ—लोकविनिश्चय-कर्ता रुचकवर पर्वतके वर्णन-प्रकारका जो अन्य-प्रकारसे व्याख्यान करते हैं, उसको यहाँ दिखाता हूँ ॥ १६७ ॥

होवि गिरि रुचकवरो, रुंढो अंजणगिरिव-सम-उवओ ।

बादाल-सहस्साणि, वासो सव्वत्थ वस-धणो गाढो ॥१६८॥

८४००० । ४२००० । १००० ।

अर्थ—रुचकवर पर्वत अञ्जनगिरिके सदृश (८४००० योजन) ऊँचा, बयालीस हजार (४२०००) योजन विस्तारवाला और सर्वत्र दसके धन (१००० यो०) प्रमाण अवगाहसे युक्त है ॥ १६८ ॥

कूडा णंदावत्तो, सत्थिय-सिरिवच्छ-वड्डमाणवत्ता ।

तगिरि-पुब्बावि-विसे, सहस्स-रुंढं तवद्ध-उच्छेहो ॥१६९॥

अर्थ—इस पर्वतकी पूर्व दिशासे क्रमशः नन्दावर्त, स्वस्तिक, श्रीवृक्ष और वर्धमान नामक चार कूट हैं । इन कूटोंका विस्तार एक हजार (१०००) योजन और ऊँचाई इससे आधी (५०० यो०) है ॥ १६९ ॥

एवेसु 'दिग्गजिदा, देवा णिवसंति एवक-पल्लाऊ ।

णामेहि पडमुत्तर - सुभद् - नीलजण - गिरीओ ॥१७०॥

अर्थ—इन कूटोंपर एक पत्य प्रमाण आयु के धारक पद्मोत्तर, सुभद्र, नील और अञ्जन-गिरि नामक चार दिग्गजेन्द्र देव निवास करते हैं ॥ १७० ॥

तक्कूडभंतरए, वर-कूडा चउ-दिसासु अड्डा ।

चेट्ठंति विव्व-रूपा, सहस्स-रुंढा तवद्ध-उच्छेहा ॥१७१॥

वि १००० । उ ५०० ।

अर्थ—इन कूटोंके अभ्यन्तर भागमें एक हजार (१०००) योजन विस्तारवाले और इससे अर्ध (५०० योजन) प्रमाण ऊँचे चारों दिशाओंमें आठ-आठ दिव्य-रूपवाले उत्तम कूट स्थित हैं ॥ १७१ ॥

पुब्बोविद-णाम-जुवा, एदे वत्तीस रुचक-वर-कूडा ।

तेसुं य दिसाकण्णा, ताइं चिय ताण णामाणि ॥१७२॥

अर्थ—ये वत्तीस रुचकवर कूट पूर्वोक्त नामोंसे युक्त हैं । इनपर जो दिक्कन्याएँ रहती हैं, उनके नाम भी वे (पूर्वोक्त) ही हैं ॥ १७२ ॥

होति हु 'ईसाणादिसु, विविसासु' दोण्णि-दोण्णि वर-कूडा ।

वेदुरिय^१ - भगी^२ - णाणा, उल्लका रयणप्पहा णामा ॥१७३॥

रयणं च सव्व-रयणा, रुचकुत्तम-रयणउच्चका^३ कूडा ।

एदे पवाहिणेणं, पुब्बोदिद - कूड - सारिच्छा ॥१७४॥

अर्थ—वैडूर्य, मणिप्रभ, रुचक, रत्नप्रभ, रत्न, सर्वरत्न, रुचकोत्तम और रत्नोच्चय इन पूर्वोक्त कूटोंके सदृश कूटोंमें दो-दो उत्तम कूट प्रदक्षिणा-क्रमसे ईशानादि विदिशाओंमें स्थित हैं ॥ १७३-१७४ ॥

तेसु दिसाकण्णणं, महत्तरीओ कमेण णिवसंति ।

रुचका विजया^४ रुचकाभा वडजयंति रुचककन्ता ॥१७५॥

तह य जयंती रुचकुत्तमा य अपराजिदा जिणिदस्स ।

कुट्ठवंति जाद - कम्मं, एदाओ परम - भत्तोए ॥१७६॥

अर्थ—इन कूटोंपर क्रमशः रुचका, विजया, रुचकाभा, वडजयन्ती, रुचककान्ता, जयन्ती, रुचकोत्तमा और अपराजिता, ये दिक्कन्याओंकी महत्तरियाँ (प्रधान) निवास करती हैं । ये सब उत्कृष्ट भक्तिसे जिनेन्द्र-भगवान् का जातकर्म किया करती हैं ॥ १७५-१७६ ॥

विमलो णिच्चालोको, सयंपहो तह य णिच्चउज्जोवो ।

चत्तारो वर - कूडो, पुब्बादि - पदाहिणा होति ॥१७७॥

अर्थ—विमल, नित्यालोक, स्वयंप्रभ तथा नित्योद्योत, ये चार उत्तम कूट पूर्वोक्त दिशाओंमें प्रदक्षिणा रूपसे स्थित हैं ॥ १७७ ॥

तेसुं पि दिसाकण्णा, वसंति सोदामिणी तहा कणया ।

सदहद-देवी कञ्चणचिन्ता ताओ कुणंति उज्जोवं ॥१७८॥

अर्थ—उन कूटोंपर क्रमशः सौदामिनी, कनका, शतहृत देवी और कञ्चनचिन्ता ये चार दिक्कन्याएँ रहती हैं जो दिशाओंको प्रकाशित करती हैं ॥ १७८ ॥

तक्कूडभन्तरए, चत्तारि हवन्ति सिद्ध - वर - कूडा ।

पुब्बादिसु पुठव-समा, अंजण-जिण-गेह-सरिस-जिण-गेहा ॥१७९॥

पाठान्तरम् ।

१. द. ब. क. ज. ईसाणदिसा । २. द. ज. वेदुरिय । ३. द. ब. क. ज. पयणि । ४. द. ब. क. ज. उल्लका । ५. द. ब. क. ज. रुचकाय ।

अर्थ—इन कूटोंके अभ्यन्तर-भागमें चार सिद्धवर कूट हैं, जिनके ऊपर पहलेके ही सदृश अंजन-पर्वतस्थ जिन-भवनोंके सदृश जिनालय स्थित हैं ॥ १७६ ॥

पाठान्तर ।

द्वितीय जम्बूद्वीपका अवस्थान

जंबूदीवाहितो, संखेज्जाणि पयोहि - दीवाणि ।

संतुण अण्णि अण्णो, जंबूदीओ परम - रम्मो ॥१८०॥

अर्थ—जम्बूद्वीपसे आगे संख्यात समुद्र एवं द्वीपोंके पश्चात् अतिशय रमणीय दूसरा जम्बू-द्वीप है ॥ १८० ॥

वहाँ विजय आदि देवोंकी नगरियोंका अवस्थान और उनका विस्तार

तत्थ हि विजय-प्पहुविसु हवंति देवाण दिव्य-णयरीओ^१ ।

उव्वरि^२ वज्ज-खिवीए, चित्ता-मज्झम्मि पुव्व-पहुवीसु^३ ॥१८१॥

अर्थ—(जहाँ दूसरा जम्बूद्वीप स्थित है) वहाँ पर भी वज्रा पृथिवीके ऊपर चित्राके मध्यमें पूर्वदिक् दिशाओंमें विजय-आदि देवोंकी दिव्य नगरियाँ हैं ॥ १८१ ॥

उच्छेह - जोयणेणं, पुरिओ बारस-सहस्स-रुंदाओ ।

जिण-भवण-सूसियाओ, उववण - वेदीहि जुत्ताओ ॥१८२॥

१२००० ।

अर्थ—ये नगरियाँ उत्सेध योजनसे बारह हजार (१२०००) योजन-प्रमाण विस्तार सहित, जिन-भवनोंसे विभूषित और उपवन-वेदियों से संयुक्त हैं ॥ १८२ ॥

नगरियोंके प्राकारोंका उत्सेध आदि

पण्णत्तरि-दल-तुंगा, पायारा जोयणद्धमवगाढा ।

सट्ठाणं णयरीणं, एत्तचंत-विचित्त-धय-माला ॥१८३॥

^२/_३ । ३ ।

अर्थ—इन सब नगरियोंके प्राकार पचहत्तरके आधे (३७^१/_२) योजन ऊँचे, अर्ध (३) योजन-प्रमाण अवगाह सहित और फहराती हुई नाना प्रकारकी ध्वजाओं के समूहसे संयुक्त है ॥ १८३ ॥

कंचण-पायारारणं, वर-रयण-विणिम्मियाण सू-वासो ।

जोयण-पणुवीस-दलं, तच्चउ-भागो य मुह-वासो ॥१८४॥

^२/_३ । ३ ।

अर्थ—उत्तम रत्नोंसे निर्मित इन स्वर्ण-प्राकारोंका भू-विस्तार पच्चीसके आधे (१२½)
योजन और मुख-विस्तार पच्चीसके चतुर्थ भाग (६¼ योजन) प्रमाण है ॥ १८४ ॥

नगरियोंकी प्रत्येक दिशामें स्थित गोपुरद्वार

एककेकाए दिसाए, पुरीण पणुवीस-गोउर-बुधारा ।
जंबूणद-णिम्मिघिदा, मणि-तोरण-थंभ-रमणिज्जा ॥१८५॥

अर्थ—इन नगरियोंकी एक-एक दिशामें सुवर्णसे निर्मित और मणिमय तोरण-स्तम्भोंसे
रमणीय पच्चीस गोपुरद्वार हैं ॥ १८५ ॥

नगरियोंमें स्थित भवनोंका निरूपण

बासट्ठ जोयणाणि, बे कोसा गोउरोवरि-घराणं ।
उवओ^१ तहलमेत्तो, हंदो गाढो दुवे कोसा^२ ॥१८६॥

६२ । को २ ॥ ३१ । को १ ॥ को २ ॥

अर्थ—उन गोपुरद्वारोंके ऊपर भवन स्थित हैं । उन भवनोंकी ऊँचाई बासठ (६२)
योजन, दो (२) कोस, विस्तार इससे आधा (३१ योजन, १ कोस) और अवगाह (नींव) दो (२)
कोस प्रमाण है ॥ १८६ ॥

ते गोउर-पासादा, संच्छण्णा बहु-विहेहि रयणेहि ।
सत्तरस-भूमि-जुत्ता, विमाण सरिसा विराजंति ॥१८७॥

अर्थ—वे गोपुर-प्रासाद अनेक प्रकारके रत्नोंसे आच्छन्न हैं और सत्रह भूमियों से युक्त
विमान सदृश शोभायमान होते हैं ॥ १८७ ॥

राजाङ्गणका अवस्थान एवं प्रमाण आदि

पायाराणं मज्झे, चेदुदि रायंगणं परस - रम्मं ।
जोयण-सवाणि बारस, वास-जुवं एक्क-कोस-उच्छेहो ॥१८८॥

१२०० । को १ ।

अर्थ—प्राकारके मध्यमें अतिशय रमणीय, बारह सौ (१२००) योजन-प्रमाण विस्तार सहित और एक कोस ऊँचा राजाङ्गण स्थित है ॥ १८८ ॥

तस्स य श्वलस्स उर्वारि, समंतदो द्वाणि कोस उच्छेहं ।

पंच-सय - चाव - रुंदं, चउ - गोउर - संजुवं वेदी ॥१८९॥

को २ । दंड ५०० ।

अर्थ—इस स्थलके ऊपर चारों ओर दो (२) कोस ऊँची, पाँचसौ (५००) धनुष विस्तीर्ण और चार गोपुरोंसे युक्त वेदी स्थित है ॥ १८९ ॥

राजाङ्गण स्थित प्रासादका विस्तारादि

रायंगण-बहु-मज्जे, कोस - सयं पंचवीसमवहियं ।

विक्खंभो तद्दुगुणो, उदओ गाढं^१ दुवे कोसा ॥१९०॥

१२५ । २५० । को २ ।

पासादो मणि - तोरण - संपुण्णो अट्ट-जोयणुच्छेहो ।

चउ-वित्थारो दारो^२, वज्ज - कवाडेहि सोहिल्लो ॥१९१॥

८ । ४ ।

अर्थ—राजाङ्गणके बहु-मध्य-भागमें एक सौ पचवीस (१२५) कोस विस्तारवाला, इससे दूना (२५० कोस) ऊँचा, दो (२) कोस-प्रमाण अवगाह सहित और मणिमय तोरणोंसे परिपूर्ण प्रासाद है । वज्जमय कपाटोंसे सुशोभित इसका द्वार आठ (८) योजन ऊँचा और चार (४) योजन प्रमाण विस्तार सहित है ॥ १९०-१९१ ॥

पूर्वोक्त प्रासादकी चारों दिशाओंमें स्थित प्रासाद

एदस्स चउ-विसासुं, चत्तारो होंति दिव्व-पासादा ।

उप्पण्णुप्पण्णाणं, चउ चउ वड्ढंति जाव स्रवकंतं ॥१९२॥

अर्थ—इस (राजाङ्गणके बहुमध्यभागमें स्थित) प्रासादकी चारों दिशाओंमें चार दिव्य प्रासाद हैं । इसके आगे छोटे मण्डल पर्यन्त ये प्रासाद उत्तरोत्तर चार-चार गुणे बढ़ते जाते हैं ॥ १९२ ॥

प्रत्येक मण्डलके प्रासादोंका प्रमाण

एत्तो^१ पासादाणं, परिमाणं मंडलं पडि भणामो ।
एक्को हवेदि मुखो, चत्तारो मंडलम्मि पढमम्मि ॥१९३॥

। १।४।

अर्थ—यहाँसे प्रत्येक मण्डलके प्रासादोंका प्रमाण कहता हूँ । मध्यका प्रासाद मुख्य है ।
प्रथम मण्डलमें चार प्रासाद हैं ॥ १९३ ॥

सोलस बिदिए तविए, चउसट्ठो बे-सवं च छप्पणं ।
तुरिमे तं चउपहवं, पंचमए मंडलम्मि पासादा ॥१९४॥

१६।६४।२५६।१०२४।

अर्थ—द्वितीय मण्डलमें सोलह (१६), तृतीयमें चौसठ (६४), चतुर्थमें दो सौ छप्पन (२५६) और पाँचवें मण्डलमें इससे चौगुने (१०२४) प्रासाद हैं ॥ १९४ ॥

चत्तारि सहस्सारिण, छण्णउवि-जुवाणि होति छट्ठीए ।
एत्तो पासादाणं, उच्छेहादि पखवेमो ॥१९५॥

४०९६।

अर्थ—छठे मण्डलमें चार हजार छ्यानबै (४०९६) प्रासाद हैं । अब यहाँसे आगे भवनोंकी ऊँचाई आदि का निरूपण किया जाता है ॥ १९५ ॥

मण्डल स्थित प्रासादोंकी ऊँचाई आदि का कथन

सध्यभंतर - सुषलं, पासादुस्सेह - वास-गाढ-समा ।
आदिम-दुग^२-मंडलए, तस्स दलं तदिय-तुरियम्मि ॥१९६॥
पंचमए छट्ठीए, तहलमेत्तं हवेवि उवयादी ।
एक्केक्के पासादे, एक्केक्का वेदिया विचित्तयरा ॥१९७॥

अर्थ—आदिके दो मण्डलोंमें स्थित प्रासादोंकी ऊँचाई, विस्तार और अवगाह सबके मध्य स्थित प्रमुख प्रासादकी ऊँचाई, विस्तार और अवगाहके सदृश है । तृतीय और चतुर्थ मण्डल के प्रासादों की ऊँचाई आदि उससे अर्ध है । इससे भी आधी पञ्चम और छठे मण्डल के प्रासादों की ऊँचाई आदिक है । प्रत्येक प्रासादकी एक-एक विचित्रतर वेदिका है ॥ १९६-१९७ ॥

विशेषार्थ—

प्रासाद	विस्तार	ऊँचाई	नीच
राजांगणके मध्य स्थित प्रमुख प्रासाद का	१२५ कोस	२५० कोस	२ कोस
१ले, २ रे मण्डलोंमें स्थित प्रासादों का	१२५ कोस	२५० कोस	२ कोस
३ रे, ४ थे मण्डलोंमें स्थित प्रासादों का	६२३ कोस	१२५ कोस	१ कोस
५ वें, ६ ठे मण्डलोंमें स्थित प्रासादों का	३१३ कोस	६२३ कोस	३ कोस

प्रासादोंके आश्रित स्थित वेदियों की ऊँचाई आदि
वे-कोसुच्छेहाओ, पंच-सयाणि धनुषि विस्थिणा ।

आदिल्लय - परसादे, एहमे विदिपणिः तस्मेता ॥१९८॥

अर्थ—प्रमुख प्रासाद के आश्रित जो वेदी है वह दो कोस ऊँची और पाँचसौ (५००) धनुष विस्तीर्ण है । प्रथम और द्वितीय मण्डलमें स्थित प्रासादोंकी वेदियाँ भी इतनी ही ऊँचाई आदि सहित (२ कोस ऊँची और ५०० धनुष विस्तीर्ण) हैं ॥ १९८ ॥

पुक्खिल्ल-वेदि-अद्ध^१, तदि ए तुरियम्मि होति मंडल ए ।

पंचम ए छट्ठी ए, तस्सद्ध - पमाण - वेदीओ ॥१९९॥

अर्थ—तृतीय और चतुर्थ मण्डल के प्रासादों की वेदिका की ऊँचाई एवं विस्तार का प्रमाण पूर्वोक्त वेदियों के प्रमाण से आधा अर्थात् ऊँचाई १ कोस तथा विस्तार २५० धनुष है और इससे भी आधा अर्थात् ऊँचाई ३ कोस और विस्तार १२५ धनुष प्रमाण पाँचवें तथा छठे मण्डलके प्रासादों की वेदिकाओं का है ॥ १९९ ॥

सर्व भवनोंका एकत्र प्रमाण

गुण-संकलण^२-सरुवं, ठिवाण भवणाण होदि परिसंखा ।

पंच - सहस्सा^३ चउ - सय - संजुत्ता एवक-सट्ठी य ॥२००॥

५४६१ ।

अर्थ—गुणित-क्रमसे स्थित इन सब भवनोंकी संख्या—पाँच हजार चार सौ एकसठ (१+४+१६+६४+२५६+१०२४+४०९६=५४६१) है ॥ २०० ॥

सुधर्म-सभाकी अवस्थिति और उसका विस्तार आदि

आदिम-पासादादो^३, उत्तर-भागे द्विदा सुधम्म-सभा ।

दलिव-पणुवीस - जोयण - दोहा तस्सद्ध - वित्थारा ॥२०१॥

३५ । ३५ ।

अर्थ—प्रथम प्रासादके उत्तर-भागमें पच्चीस योजन के आधे (१२½) योजन लम्बी और इससे आधे (६½ यो०) विस्तार वाली सुधर्म-सभा स्थित है ॥ २०१ ॥

राव-जोयण-उच्छेहा^१, गण्ड-गाढा सुवण्ण-रयणमई ।

तीए उत्तर - भागे, जिण - भवणं होवि तम्मैत्तं ॥२०२॥

९ । को १ ।

अर्थ—सुवर्ण और रत्नमयी यह सभा नौ (९) योजन ऊँची और एक गव्यूति (१ कोस) अवगाह सहित है । इसके उत्तर-भागमें इतने ही प्रमाणसे संयुक्त जिन-भवन है ॥ २०२ ॥

उपपाद आदि छह सभाओं (भवनों) की अवस्थिति आदि

पवण-दिसाए पढमं, पासादादो जिणिद-पासादा ।

चेट्ठवि उववाव-सभा, कंसण-वर-रयण-जिण्हमई ॥२०३॥

३५ । ३५ । यो ९ । को १ ।

अर्थ—प्रथम प्रासादमें वायव्य-दिशामें जितेन्द्रभवन सदृश (१२½ योजन लम्बी, ६½ यो० चौड़ी, ९ यो० ऊँची और १ कोस अवगाह वाली) स्वर्ण एवं उत्तम रत्न-समूहोंसे निर्मित उपपाद सभा स्थित है ॥ २०३ ॥

पुव्व-दिसाए पढमं, पासादादो विचित्त-विण्णासा ।

चेट्ठवि अभिसेय-सभा, उववाव-सभेहि-सारिच्छा ॥२०४॥

अर्थ—प्रथम प्रासादके पूर्वमें उपपाद सभाके सदृश विचित्र रचना संयुक्त अभिवेक-सभा (भवन) स्थित है ॥ २०४ ॥

तत्थं चिय विवभाए, अभिसेयसभा-सरिच्छ-वासादी ।

होवि अलंकार-सभा, मणि-तोरणदार-रमणिज्जा ॥२०५॥

अर्थ—इसी दिशा-भागमें अभिवेक सभाके सदृश विस्तारादि सहित और मणिमय तोरण-द्वारोंसे रमणीय अलंकार-सभा (भवन) है ॥ २०५ ॥

तस्सि चिय विवभाए, पुव्व-सभा-सरिस-उदय-वित्थारा ।

मंत - सभा चामीयर - रयणमई सुन्दर - बुवारा ॥२०६॥

अर्थ—इसी दिशा-भागमें पूर्व सभाके सदृश ऊँचाई एवं विस्तार सहित, स्वर्ण एवं रत्नोंसे निर्मित और सुन्दर द्वारोंसे संयुक्त मन्त्र-सभा (भवन) है ॥ २०६ ॥

एदे छप्पासादा, पुन्वेहि संविरेहि मेलविदा ।

पंच सहस्सा चउ-सय-अब्भहिया सत्त-सट्ठीहि ॥२०७॥

५४६७ ।

अर्थ—इन छह प्रासादोंकी पूर्व प्रासादोंमें मिला देनेपर प्रासादों (भवनों) की समस्त संख्या पाँच हजार चार सौ सड़सठ ($५४६१ + ६ = ५४६७$) होती है ॥ २०७ ॥

भवनोंकी विशेषताएँ

ते सब्बे पासादा, चउ-बिम्भुह^१-विष्फुरंत-किरणोहि ।

वर-रयण-पईयेहि, णिच्चं न्नि य णिडभरुज्जोवा ॥२०८॥

अर्थ—वे सब भवन चारों दिशाओंमें प्रकाशमान किरणोंसे युक्त उत्तम रत्नमयी प्रदीपोंसे नित्य अर्चित और नित्य उद्योतित रहते हैं ॥ २०८ ॥

पोखरणी-रम्भेहि, उववण-संडेहि^२ विविह-रुक्खेहि ।

कुसुमफल-सोहिदेहि, सुर - मिहुण जुदेहि सोहंति ॥२०९॥

अर्थ—वे प्रासाद पुष्करिणियोंसे रमणीय, फल-फूलोंसे सुशोभित, अनेक प्रकारके वृक्षों सहित और देव-श्रृंगलोंसे संयुक्त उपखण्डोंसे शोभायमान होते हैं ॥ २०९ ॥

विद्दुम-वण्णा केई, केई कप्पूर-कुंद-संकासा ।

कंचण - वण्णा केई, केई^३ खज्जिद-णील-णिहा ॥२१०॥

अर्थ—(इनमेंसे) कितने ही (भवन) मूंगा सदृश वर्णवाले, कितने ही कपूर और कुन्द-पुष्प सदृश, कितने ही स्वर्ण वर्ण सदृश और कितने ही वज्र एवं इन्द्रनीलमणि सदृश वर्ण वाले हैं ॥ २१० ॥

तेसुं पासादेसुं, विजयो देवी - सहस्स - सोहिल्लो ।

णिच्च - जुवाणा देवा, वर-रयण-विभूसिद-सरीरा ॥२११॥

लवखण-येंजण-जुत्ता, वादु-विहीणा य वाहि-परिचत्ता ।

विचिह - सुहेसुं सत्ता, कीडते बहु - विणोदेण ॥२१२॥

अर्थ—उन भवनोंमें हजारों देवियोंसे सुशोभित, विजय नामक देव शोभायमान है और वहाँ उत्तम रत्नोंमें विभूषित शरीर वाले लक्षण एक व्यञ्जनों सहित, (सप्त) धातुओंसे विहीन, व्याघ्रसे रहित तथा विविध प्रकारके सुखोंमें आसक्त नित्य-युवा, देव बहुत विनोद पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ २११ २१२ ॥

सयणाणि आसणाणि, रयणमयानि हवन्ति भवणेषु ।

मउवाणि निम्मलानि, मण-णयणाणंद-जणणाणि ॥ २१३ ॥

अर्थ—इन भवनोंमें मृदुल, निर्मल और मन तथा नेत्रोंको आनन्ददायक रत्नमय सय्यायें एवं आसन विद्यमान हैं ॥ २१३ ॥

आदिम-पासादस्स य, बहु-मउक्के होवि कणय-रयणमयं ।

सिहासणं विसालं, सपाद - पीठं परम - रम्मं ॥ २१४ ॥

अर्थ—प्रथम प्रासादके बहु-मध्य-भागमें अतिशय रमणीय और पादपीठ सहित सुवर्ण एवं रत्नमय विशाल सिंहासन है ॥ २१४ ॥

सिहासणमारूढो, विजयो णामेण अहिबुद्धं तत्थ ।

पुण्व - बुद्धे पासादे, अत्थाणं देवि लीलाए ॥ २१५ ॥

अर्थ—वहाँ पूर्व-मुख प्रासादमें सिंहासन पर आरूढ़ विजय नामक अधिपति देव लीलासे आनन्दको प्राप्त होता है ॥ २१५ ॥

विजयदेव के परिवार का अवस्थान एवं प्रमाण

तस्स य सामाणीया, चेदुत्तंते छस्सहस्स-परिमाणा ।

उत्तर-दिशा-विभागे, विदिसाए विजय - पीडादो ॥ २१६ ॥

अर्थ—विजयदेवके सिंहासनसे उत्तर-दिशा और विदिशामें उसके छह हजार प्रमाण सामानिक देव स्थित रहते हैं ॥ २१६ ॥

चेदुत्तंति निरुवमाओ^१, छस्सिय विजयस्स अग-देवीओ ।

तारां पीडा रम्मा, सिहासण - पुण्व - दिग्भाए ॥ २१७ ॥

अर्थ—मुख्य सिंहासनके पूर्व-दिशा-भागमें विजयदेवकी अनुपम छहों अग्र-देवियाँ स्थित रहती हैं । उनके सिंहासन रमणीय हैं ॥ २१७ ॥

परिवारा देवीओ, तिण्णि सहस्सा हवन्ति पत्तेक्कं ।

साहिय-पल्लं आऊ, णिय-णिय-ठाणम्मि चेदुत्तंति ॥ २१८ ॥

अर्थ—इनमेंसे प्रत्येक अग्र-देवीकी परिवार-देवियाँ तीन हजार हैं, जिनकी आयु एक पल्यसे अधिक होती है । ये परिवार देवियाँ अपने-अपने स्थानमें स्थित रहती हैं ॥ २१८ ॥

बारस देव-सहस्सा, बाहिर-परिसाए विजयदेवस्स ।

णइरिदि-दिसाए ताणं, पीढाणि सामि - पीढादो ॥२१९॥

१२००० ।

अर्थ—विजय देवकी बाह्य परिषद्में बारह हजार (१२०००) देव हैं । उनके सिंहासन, स्वामीके सिंहासनसे नैऋत्य-दिशा-भागमें स्थित हैं ॥ २१९ ॥

देवदस-सहस्साणि, मज्झिम-परिसाए होंति विजयस्स ।

दक्खिण-दिसा-विभागे, तप्पीढा णाह - पीढादो ॥२२०॥

१०००० ।

अर्थ—विजयदेवकी मध्यम परिषद्में दस हजार (१००००) देव होते हैं । उनके सिंहासन, स्वामीके सिंहासनसे दक्षिण-दिशा-भागमें स्थित रहते हैं ॥ २२० ॥

अब्भंतर - परिसाए, अट्ठ सहस्साणि विजयदेवस्स ।

अग्नि - दिसाए होंति हु, तप्पीढा णाह - पीढादो ॥२२१॥

८००० ।

अर्थ—विजयदेवकी अभ्यन्तर परिषद्में जो आठ हजार (८०००) देव रहते हैं उनके सिंहासन स्वामीके सिंहासनसे अग्नि-दिशामें स्थित रहते हैं ॥ २२१ ॥

सेणा - महत्तराणं, सत्ताणं होंति दिव्व - पीढाणि ।

सिंहासण - पच्छिमदो, वर - कंचण-रयसा-रइवाइं ॥२२२॥

अर्थ—मातृ सेना-महत्तरोंके सत्तम स्वर्ण एवं रत्नोंसे रचित दिव्य पीठ मुख्य सिंहासनके पश्चिममें होते हैं ॥ २२२ ॥

तणुरक्खा अट्टारस - सहस्स - संखा हवन्ति पत्तेक्कं ।

ताणं चउसु विसासुं, चेट्ठंते भद्द - पीढाणि ॥२२३॥

१५००० । १५००० । १५००० । १५००० ।

अर्थ—विजयदेवके शरीर-रक्षक देवोंके भद्रपीठ चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें अठारह हजार (पूर्वमें १५०००, दक्षिणमें १५०००, पश्चिममें १५००० और उत्तरमें १५०००) प्रमाण स्थित हैं ॥ २२३ ॥

सप्त-सर-महुर-गीयं, गायंता पलह-वंस-पहुदीणि ।
वायंता एचचंता^१, विजयं रज्जंति तत्थ सुरा ॥२२४॥

अर्थ—वहाँ देव सात स्वरोसे परिपूर्ण मधुर गीत गाते हैं और पटह एवं बांसुरी आदिक बाजे बजाते एवं नाचते हुए विजयदेवका मनोरंजन करते हैं ॥ २२४ ॥

रायंगणस्स बाहि, परिवार-सुराण होंति पासादा ।
विप्फुरिय-धय - बडाया, घर-रयणुज्जोइ-अहियंता ॥२२५॥

अर्थ—परिवार-देवोंके प्रासाद राजाङ्गणसे बाहर फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित और उत्तम रत्नोंकी ज्योतिसे अधिक रमणीय हैं ॥ २२५ ॥

बहुविह-रति-करणेहि, कुसलाओ णिचच-जोव्वण-जुदाओ ।
णाणा - विगुव्वणाओ, माया - लोहादि - रहिदाओ ॥२२६॥
उल्लसिद - विबभमाओ, छत्त - सहावेण पेम्मवंताओ ।
सव्वाओ देवीओ, ओलमंते विजयदेवं ॥२२७॥

अर्थ—बहुत प्रकारकी रति करनेमें कुशल, नित्य यौवन युक्त, नानाप्रकारकी विक्रिया करने वाली, माया एवं लोभादिसे रहित, उल्लास युक्त विलास सहित और छत्र^३-योगके स्वभाव सदृश प्रेम करने वाली समस्त देवियाँ विजयदेवकी सेवा करती हैं ॥ २२६-२२७ ॥

णिय-णिय-ठाण णिविट्ठा, देवा सव्वे वि विणय-संपुण्णा ।
णिब्भर - भत्ति - पसत्ता, सेवन्ते विजयमणवरत्तं ॥२२८॥

अर्थ—अपने-अपने स्थान पर रहते हुए भी सब देव विनयसे परिपूर्ण होकर और अतिशय भक्तिमें आसक्त होकर निरन्तर विजयदेवकी सेवा करते हैं ॥ २२८ ॥

विजयदेवके नगरके बाहर स्थित वन-खण्डोंका निरूपण
तण्णायरीए बाहि, गंतूणं जोयणाणि पणवीसं ।
चत्तारो वणसंडा, पत्तेवकं चेत्त - तह - जुत्ता ॥२२९॥

१. द. ब. ज. एं चित्ता, क. एं चत्ता । २. द. ब. क. ज. छित्त । ३. ज्योतिषमें छत्र योग दो प्रकारसे कहे गये हैं । (१) जन्मकुण्डलीमें सप्तम भावसे आगेके सातों स्थानोंमें समस्त ग्रह स्थित हों तो छत्र योग होता है । यह योग जातकको अपूर्व सुख-शान्ति देता है । (२) रविवारको पू० फा०, सोमवारको स्वाति, मंगलको मूल, बुधवारको श्रवण, गुरुवारको उत्तरा भा०, शुक्रवारको कृत्तिका और शनिवारको पुनर्वसु नक्षत्र हो तो छत्र योग बनता है । इस योगमें किया हुआ कार्य शुभ फलदायी होता है ।

अर्थ—उस नगरीके बाहर पच्चीस (२५) योजन जाकर चार वन-खण्ड स्थित हैं । प्रत्येक वनखण्ड चैत्यवृक्षोंसे संयुक्त है ॥ २२९ ॥

होति हु तारिणि^१ वरणाणि, दिव्याणि असोय-सत्त-वण्णाणं ।

चंपय - धूद - वणा तह, पुब्बादि - पदाहिणि - कमेणं ॥ २३० ॥

अर्थ—अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र वृक्षोंके ये वन पूर्वादिक दिशाओंमें प्रदक्षिणा क्रमसे हैं ॥ २३० ॥

बारस-सहस्स-जोयण-दीहा ते होति पंच-सय-रुंदा ।

पत्तेवकं वणसंडा, बहुधिह रुक्खेहि परिपुण्णा ॥ २३१ ॥

१२००० । ५०० ।

अर्थ—बहुत प्रकारके वृक्षोंसे परिपूर्ण वे प्रत्येक वन-खण्ड बारह हजार (१२०००) योजन लम्बे और पाँच सौ (५००) योजन चौड़े हैं ॥ २३१ ॥

चैत्य-वृक्ष

एवेसुं चेत्त-दुमा, भावण-चेत्त-दुमा य सारिच्छा ।

तारणं अउसु दिसासुं, चउ-चउ-जिण-णाह-पडिमाओ ॥ २३२ ॥

अर्थ—इन वनोंमें भावनलोकके चैत्यवृक्षोंके सदृश जो चैत्यवृक्ष स्थित हैं, उनकी चारों दिशाओंमें चार जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं ॥ २३२ ॥

देवासुर-महिदाओ, सपाडिहेराओ^२ रयण-मइयाओ ।

पल्लंक - आसणाओ, जिणिंद - पडिमाओ विजयंते ॥ २३३ ॥

अर्थ—देव एवं असुरोंसे पूजित, प्रातिहार्यों गृहित और पद्मासन स्थित वे रत्नमय जिनेन्द्र प्रतिमाएँ जयवंत हैं ॥ २३३ ॥

अशोकदेवके प्रासादका सविस्तार वर्णन

चेत्तदुम^३ - ईसाणे, भागे चेट्ठेदि दिव्व - पासादो ।

इगितीस - जोयणाणि, कोसठभहियाणि वित्थिण्णो ॥ २३४ ॥

३१ । को १ ।

१. द. व. क. ज. तारणं । २. द. व. सपादिहोराओ रमणमहराओ, क. ज. सपादिहेराओ रमणमहराओ । ३. द. व. क. ज. चेत्तदुमीपारो भागे चेट्ठेदि हु होदि दिव्वपासादो ।

अर्थ — प्रत्येक चतुर्वक्षके ईशान-दिशा-भागमें एक कोस अधिक इकतीस योजन प्रमाण विस्तारवाला दिव्य प्रासाद स्थित है ॥ २३४ ॥

वासाहि दुगुण-उदग्नो, दु-कोस गाढो विचित्त-मणि-खंभो ।

चउ - अट्ठ - जोयणाणि, ^१हं वुच्छेदाओ तहारे ॥ २३५ ॥

६२ । को २ । ४ । ८ ।

अर्थ — अनुपम मणिमय खम्भोंसे संयुक्त इस प्रासादकी ऊँचाई विस्तारसे दुगुनी (६२ ई योजन) ओर अवगाह दो कोस प्रमाण है । उसके द्वारका विस्तार चार (४) योजन और ऊँचाई आठ (८) योजन है ॥ २३५ ॥

पजलंत-रयण-दीप्ता, विचित्त - सयणासणेहि परिपुण्णा ।

सट्ठ - रस - रूप - गंध^२ - प्पासेहिं खय^३-मणाणंदो ॥ २३६ ॥

कणयमय-कुड्ड^४-विरचित्त-विचित्त-चित्त-प्पबंध-रमणिज्जो ।

अच्छरिय-जणण-रूपो, किं बहुणा सो निरुयमाणो ॥ २३७ ॥

अर्थ — उपर्युक्त प्रासाद वेदीप्यमान रत्नदीपकों सहित, अनुपम शय्याओं एवं आसनोंसे परिपूर्ण और शब्द, रस, रूप, गन्ध तथा स्पर्शसे इन्द्रिय एवं मनको आनन्दजनक, सुवर्णमय भीतों पर रचे गये अद्भुत चित्रोंके सम्बन्धसे रमणीय और आश्चर्यजनक स्वरूपसे संयुक्त है । बहुत कहनेसे क्या ? वह प्रासाद अनुपम है ॥ २३६-२३७ ॥

तस्स असोयदेशो, रमेदि देवी - सहस्स - संजुतो ।

वर-रयण-मउडधारी, चमरं छत्तादि - सोहिल्लो ॥ २३८ ॥

अर्थ — उस प्रासादमें उत्तम रत्न-मुकुटको धारण करने वाला और चमर तथा छत्रादिसे सुशोभित वह अशोक देव हजारों देवियोंसे युक्त होकर रमण करता है ॥ २३८ ॥

सेसम्मि वड्ढजयंत-सिदए विजयं व^५ वण्णाणं सयलं ।

दक्खिण-पच्छिम-उत्तर-विसासु ताणं पि णयराणि ॥ २३९ ॥

^६जंबूदीव-वण्णाणा समत्ता ।

अर्थ — शेष बंजयन्तादि तीन देवोंका सम्पूर्ण वर्णन विजय देवके ही सदृश है । इनके भी नगर क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें स्थित हैं ॥ २३९ ॥

इस प्रकार (द्वितीय) जम्बूद्वीपका वर्णन समाप्त हुआ ।

१. ह. ज. हं वं छेदाओ, ब. हं वं छेदाओ । २. द. व. गंधे । ३. द. ज. कुयमणाणंमा, ब. सुरयम-णाणंमा, क. कुणयमणाणंमा । ४. व. कुड्डस । ५. द. व. क. ज. पि । ६. व. जंबूद्वीप ।

स्वयम्प्रभ-पर्वत का वर्णन

दीग्रो^१ सयंभुरमणो, चरिमो सो होदि सयल-दीवाणं^२ ।

चंदठेवि तस्स मज्झे, चलएण सयंपहो सेलो ॥२४०॥

अर्थ—सब द्वीपोंमें अन्तिम वह स्वयम्भुरमणद्वीप है । उसके मध्य-भागमें मण्डलाकार स्वयंप्रभ शैल स्थित है ॥ २४० ॥

जोयण-सहस्समेवकं, गाढो वर-विविह-रयण-दिप्पंतो ।

मूलोवरि-भाएसुं, तड - वेदी - उववणादि - जुदो ॥२४१॥

अर्थ—यह पर्वत एक हजार (१०००) योजन प्रमाण अवगाह सहित, उत्तम अनेक प्रकारके रत्नोंसे दीर्घायु और मूल एवं उपरिम भागोंमें तट-वेदी तथा उपवनादिसे संयुक्त है ॥ २४१ ॥

तगिरिणो उच्छेहे^३, वासे कूडेसु जेतियं माणं ।

तस्सि काल - वसेणं,^४ उवएसो संपइ पणट्ठो ॥२४२॥

एवं विण्णासो समत्तो ॥४॥

अर्थ—इस पर्वतकी ऊँचाई, विस्तार और कुटोंका जितना प्रमाण है, उसका उपदेश इस समय कालवश नष्ट हो चुका है ॥ २४२ ॥

इसप्रकार विन्यास समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

वृत्ताकार क्षेत्रका स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधि

एत्तो दीव^५-रयणायरानं बावर-खेत्तफलं वत्तइस्सामो । तत्थ जंबूवीरमावि
कावूण वट्टसख्खावट्ठद-खेत्ताणं खेत्तफल-पमाणाणयणट्ठमिमा^६ सुत्त-गाहा—

अर्थ—अब यहाँसे आगे द्वीप-समुद्रोंके स्थूल क्षेत्रफलको कहते हैं । उनमेंसे जम्बूद्वीप को आदि करके गोलाकारसे अवस्थित क्षेत्रोंके क्षेत्रफलका प्रमाण लानेके लिए यह सूत्र-गाथा है—

ति-गुणिय-वासा परिही, तीए^७ विक्खंभ-पाव-गुणिदाए ।

जं लद्धं तं बादर - खेत्तफलं सरिस - वट्ठाणं^८ ॥२४३॥

१. द. क. ज. आदीओ । २. द. देवाण । ३. द. व. क. ज. उच्छेहो । ४. द. व. क. ज. वसेसा ।
५. द. व. क. ज. दीवरणायरानाण बावरभेदत्तफलं । ६. द. व. क. ज. मिसा । ७. द. व. क. ज. परिहीए ।
८. द. व. क. ज. दंडाणं ।

अर्थ—गोल क्षेत्रके विस्तारसे तिगुनी उसकी बादर परिधि होती है, इस परिधिको विस्तारके चतुर्थ भागसे गुणा करने पर जो राशि प्राप्त हो उतना समान-गोल-क्षेत्रोंका बादर क्षेत्रफल होता है ॥ २४३ ॥

उदाहरण—जम्बूद्वीपका विस्तार १००००० योजन है । $१००००० \times ३ = ३०००००$ योजन स्थूल परिधि । $३००००० \times \frac{१०००००}{४} = ७५००००००००$ वर्ग योजन बादर क्षेत्रफल ।

वलयाकार क्षेत्रका आयाम एवं स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधियाँ

लवणसमुद्रमादि कादूण उधरि वलय-सरुवेण ठिवदीव-समुद्राणं खेत्तफलमाण-
यत्थं एदा वि सुत्त-गाथाओ—

अर्थ—लवणसमुद्रको आदि करके आगे वलयाकारसे स्थित द्वीप-समुद्रोंका क्षेत्रफल लानेके लिए ये सूत्र-गाथाएँ हैं—

लक्खेणूणं रुदं, णवहि गुणं इच्छियस्स आयामो ।

तं रुदेण य गुणिदं, खेत्तफलं दीव - उवहीणं ॥२४४॥

अर्थ—इच्छित क्षेत्रके विस्तारमेंसे एक लाख कम करके शेष को नौसे गुणा करने पर इच्छित द्वीप या समुद्रका आयाम होता है । पुनः इस आयामको विस्तारसे गुणा करने पर द्वीप-समुद्रोंका क्षेत्रफल होता है ॥ २४४ ॥

उदाहरण—लवणसमुद्रका विस्तार २ लाख यो० है ।

ल० स० का आयाम = (२ ला० — १ ला०) $\times ९ = ९०००००$ योजन ।

,, ,, ,, बादर क्षेत्रफल = ९ ला० आयाम $\times २$ ला० वि० = १८०००००००००० वर्ग योजन ।

अहवा आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूईण मेलिदं माणं ।

विक्खंभ - हदे इच्छिय - वलयाणं बावरं खेत्तं ॥२४५॥

अर्थ—अथवा—आदि, मध्य एवं बाह्य सूचियोंके प्रमाणको मिलाकर विस्तारसे गुणित करने पर इच्छित वलयाकार क्षेत्रोंका बादर क्षेत्रफल होता है ॥ २४५ ॥

उदाहरण—लवण समुद्रकी आदि सूची १ ला० यो० + मध्य सूची ३ ला० यो० + बाह्य सूची ५ ला० यो० = ९ लाख योजन । ल० स० का बादर क्षेत्रफल = ९ लाख $\times २$ लाख विस्तार = १८००००००००००० वर्ग योजन ।

अहवा ति-गुणिय-मज्झिम-सूई जाणेज्ज इहु-वलयाणं ।

तह य पमाणं तं चिय, रुदं - हदे वलय - खेत्तफलं ॥२४६॥

अर्थ—अथवा-तिगुनी मध्य-सूचीको इष्ट वलय-क्षेत्रोंका पूर्वोक्त अर्थात् आदि, मध्यम और बाह्य सूचियोंका सम्मिलित प्रमाण जानना चाहिए । इसे विस्तारसे गुणित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतना उन वलय-क्षेत्रोंका बादर क्षेत्रफल होता है ॥ २४६ ॥

उदाहरण - लवण समुद्रकी तीनों सूचियोंका योग (१ ल० + ३ ल० + ५ ल० =) ९ लाख होता है और मध्यम सूची ३ लाख को ३ से गुणित करनेपर भी (३ लाख × ३ =) ९ लाख होता है ।

ल० स० का बादर क्षेत्रफल = ९ लाख × २ लाख विस्तार = १८०००००००००० वर्ग योजन ।

द्वीप-समुद्रोंके बादर क्षेत्रफलका प्रमाण

जम्बूद्वीपस्स बादर - क्षेत्रफलं सत्त - सय - पण्णास - कोडि-जोयण-प्रमाणं—
७५००००००००० । लवणसमुद्रस्स क्षेत्रफलं अट्ठारस-सहस्स-कोडि-जोयण-प्रमाणं—
१८००००००००००० । धावइसंड-द्वीपस्स बादर-क्षेत्र-फलं अट्ठ-सहस्स-कोडि-अब्भहिय-
एक्क-लक्ख-कोडि-जोयण-प्रमाणं—१०८००००००००००० । कालोदग - समुद्रस्स बादर-
क्षेत्रफलं चत्तारि - सहस्स - कोडि - अब्भहिय - पंच - लक्ख - कोडि - जोयण-प्रमाणं—
५०४०००००००००००० । पोक्खरवर - द्वीपस्स क्षेत्रफलं सट्ठि-सहस्स-कोडि-अब्भहिय^१-
एक्क-वीस-लक्ख-कोडि-जोयण-प्रमाणं—२१६०००००००००००० । पोक्खरवर - समुद्रस्स
क्षेत्रफलं अट्ठावीस - सहस्स - कोडि - अब्भहिय - उणणउदि-लक्ख-कोडि-जोयण-प्रमाणं—
८६२८०००००००००००० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपका बादर क्षेत्रफल सात सौ पचास करोड़ (७५०००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है । लवणसमुद्र का बादर क्षेत्रफल अठारह हजार करोड़ (१८०००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है । धातकी खण्डद्वीपका बादर क्षेत्रफल एक लाख आठ हजार करोड़ (१०८०००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है । कालोदसमुद्रका बादर क्षेत्रफल पाँच लाख चार हजार करोड़ (५०४०००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है । पुष्करवरद्वीपका बादर क्षेत्रफल इक्कीस लाख साठ हजार करोड़ (२१६००००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है और पुष्करवर समुद्रका बादर क्षेत्रफल नवासी लाख अट्ठाईस हजार करोड़ (८६२८०००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है ।

विशेषार्थ—

क्र०	नाम	(विस्तार-१ लाख) × ९ = आयाम	आयाम × वि० = बादर क्षेत्रफल
१.	लवण समुद्र	(२ ला०—१ ला०) × ९ = ९ ला० यो०	९ ला० × २ ला० = १८००० करोड़ वर्ग यो०
२.	धातकी खण्ड	(४ ला०—१ ला०) × ९ = २७ ला० यो०	२७ ला० × ४ ला० = १०८००० क० „ „
३.	कालोद स०	(८ ला०—१ ला०) × ९ = ६३ ला० यो०	६३ ला० × ८ ला० = ५०४००० क० „ „
४.	पुष्कर० द्वीप	(१६ ला०—१ ला०) × ९ = १३५ ला० यो०	१३५ ला० × १६ ला० = २१६०००० „ „
५.	पुष्कर० समुद्र	(३२ ला०—१ ला०) × ९ = २७९ ला० यो०	२७९ ला० × ३२ ला० = ८९२८००० „ „

जघन्य-परीतासंख्यातवें क्रमवाले द्वीप या समुद्रका बादर क्षेत्रफल

एवं जंबूद्वीप-प्पहुदि-जहण्ण-परित्तासंखेज्जयस्स 'रुवाहियच्छेदणयमेत्तद्वारणं' गंतूण द्विद-बीवस्स' खेत्तफलं जहण्ण-परित्तासंखेज्जयं रुऊण-अहण्ण-परित्तासंखेज्जएण गुणिय-पुणो णव-सहस्स-कोडि-जोयणेहि गुणिदमेत्त' खेत्तफलं होदि । तच्चेवं—१६ । १६ । ६००००००००००० ।

अर्थ—इसप्रकार जम्बूद्वीपको आदि लेकर जघन्य-परीतासंख्यातके एक अधिक अर्धच्छेद प्रमाण स्थान जाकर जो द्वीप स्थित है उसका क्षेत्रफल जघन्य-परीतासंख्यातको एक कम जघन्य-परीतासंख्यातसे गुणा करके फिर नौ हजार करोड़ योजनोंसे भी गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतना है । वह प्रमाण यह है—१६ × (१६ — १) × ९००००००००००० ।

(संदृष्टिमें ग्रहण किया गया १६, जघन्यपरीतासंख्यातका कल्पित मान है) ।

पत्योपमके एक अधिक अर्धच्छेद स्थानपर स्थित द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल

पुणो जंबूद्वीप-प्पहुदि-पलिदोवमस्स रुवाहियच्छेदणय-मेत्त' ठाणं गंतूण द्विद-बीवस्स खेत्तफलं पलिदोवमं रुऊण-पलिदोवमेण गुणिय पुणो णव-सहस्स-कोडि-जोयणेहि गुणिदमेत्त' होदि । तच्चेवं पमाणं—५ । ५ १ । ६००००००००००० । एवं जाणिदूण' णेद्वं जाव सयंभूरमण-समुदोत्ति ।

१. द. ज. क. रुवोविय, ब. रुवोय । २. द. क. मेत्तधारणं । ३. द. जीवस्स । ४. द. ज. गुणिद सेतं होदि । ५. द. ज. गणिणिदूण, ब. गणिणदूण ।

अर्थ—पश्चात् जम्बूद्वीपको आदि लेकर पत्योपमके एक अधिक अर्धच्छेदप्रमाण स्थान जाकर जो द्वीप स्थित है उसका क्षेत्रफल पत्योपमको एक कम पत्योपमसे गुणा करके फिर नौ हजार करोड़ योजनोंसे भी गुणा करनेपर प्राप्त हुई राशिके प्रमाण है । वह प्रमाण यह है—पत्य $\times$ (पत्य—१) $\times$ ९०००००००००० यो० । इसप्रकार जानकर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त क्षेत्रफल ले जाना चाहिए ।

स्वयम्भूरमण समुद्रका बादर क्षेत्रफल

तत्थ अंतिम-वियप्यं वत्तइस्सामो-सयंभूरमण-समुद्रस्स खेत्तफलं जगसेढीए वगं
णव-रुवेहि गुणिय सत्त-सय-चउसीदि-रुवेहि भजिदमेत्तं पुणो एक्क - लख बारस-सहस्स-
पंच-सय-जोयणीहि गुणिद-रउजूए अठभहियं होदि । पुणो एक्क-सहस्स-छस्सय-सत्तासीवि-
कोडीओ पण्णास-लख-जोयणीहि पुब्बिल्ल-दोण्णि-रासीहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा
 $\frac{=9}{954}$ घण रउजू ७ । ११२५०० रिण जोयणाणि १६८७५००००००० ।

अर्थ—इनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—

जगच्छ्रेणीके वर्गको नौसे गुणा करके प्राप्त राशिमें सात सौ चौरासीका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें फिर एक लाख बारह हजार पाँच सौ योजनोंसे गुणित राजूको जोड़कर पुनः एक हजार छह सौ सत्तासी करोड़ पचास लाख योजनोंसे पूर्वोक्त दोनों राशियोंको कम करनेपर जो शेष रहे उतना स्वयम्भूरमण समुद्रका क्षेत्रफल है । उसकी स्थापना—{ (७ $\times$ ७ $\times$ ९) $\div$ (७८४) } + (१ राजू $\times$ ११२५००)—१६८७५००००००० योजन ।

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका बादर-क्षेत्रफल निकालनेके लिए इसी अधिकारकी गाथा २४४ का उपयोग किया गया है । स्वयम्भूरमण समुद्रके बादर-क्षेत्रफलकी प्राप्ति हेतु सूत्र—
स्वयं० का बा० क्षेत्रफल = (स्वयं० समुद्रका व्यास) $\times$ ९ $\times$ (स्वयं० सं० का व्यास—१ ला० यो०)
नोट—स्वयम्भूरमण समुद्रका व्यास जगच्छ्रेणी + ७५००० योजन है ।

बादर क्षेत्रफल = $\frac{(जग० + ७५००० यो०)}{२८} \times ९ \times \frac{(जग० + ७५००० यो० - १००००० यो०)}{२८}$

= $\frac{(इह जगच्छ्रेणी + ६७५००० यो०)}{२८} \times \frac{(जग० - २५००० यो०)}{२८}$

क्षेत्रफल = $\frac{९ (जगच्छ्रेणी)^2}{७८४} + जग० [इह \times (-२५००० यो०) + \frac{६७५००० यो०}{२८}] -$

(२५००० यो० $\times$ ६७५००० यो०)

$= ७६६४ (जगच्छ्रेणी)^२ + (११२५०० वर्ग यो० \times १ राजू) - १६८७५०००००००$
वर्ग योजन बादर क्षेत्रफल है ।

नोट—(२८)^२ = ७८४ होता है और जगच्छ्रेणी = ७ राजू है ।

उन्नीस विकल्पों द्वारा द्वीप-समुद्रोंका अल्पबहुत्व

एतो दीव-रयणायराणं एऊणवीस-वियप्पं अप्पबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा—

पढम-पक्खे जंबूदीव-सयल-रुंदावो लवणणीर-रासिस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-
गदे सिज्जइ । जंबूदीव-लवणसमुद्रादो धादइ-संडस्स । एवं सव्वभंतरिम-दीव-रयणायराणं
एय-दिस-रुंदावो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स वा तरंगिणी-रमणस्स वा एस-दिस-
रुंद-वड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—अब यहाँसे उन्नीस विकल्पों द्वारा द्वीप-समुद्रोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह
इसप्रकार है—

प्रथम पक्षमें जम्बूद्वीपके सम्पूर्ण विस्तारकी अपेक्षा लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी
विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है । जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रके सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा
धातकीखण्डके विस्तारमें वृद्धिका प्रमाण ज्ञात किया जाता है । इसप्रकार समस्त अभ्यन्तर द्वीप-
समुद्रोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके अनन्तर बाह्य-भागमें स्थित द्वीप अथवा
समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिके प्रमाणकी सिद्धि ज्ञात की जाती है ॥

द्वितीय-पक्षमें जंबूदीवस्सद्धावो लवण-णिण्णगाणाहस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी
गदे सिज्जइ । तदो जंबूदीवस्सद्धम्मि सम्मिलिद-लवणसमुद्रादो धादइसंडस्स । एवं
सव्वभंतरिम-दीव-उवहोणं एय-दिस-रुंदावो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स वा तरंगिणी
रमणस्स वा एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे-सिज्जइ ॥

अर्थ—द्वितीय-पक्षमें जम्बूद्वीपके अर्ध-विस्तारसे लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी
विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है । पश्चात् जम्बूद्वीपके अर्ध-विस्तारसे लवणसमुद्रके विस्तारको
मिलाकर इस सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डद्वीपके विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।
इसप्रकार संपूर्ण अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके एक दिशा संबन्धी विस्तारसे उनके अनन्तर बाह्य भागमें
स्थित द्वीप अथवा समुद्रके एक दिशा संबन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

तदिय-पक्खे इच्छिय-सलिलरासिस्स एय-दिस-रुंदावो तदणंतर-तरंगिणी-णाहस्स
एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—तृतीय-पक्षमें अभीष्ट समुद्रके एक दिशा संबन्धी विस्तारसे उसके अनन्तर स्थित समुद्रके एक दिशासंबन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

तुरिम-पक्खे अब्भंतरिम-णीरधीणं एय-दिस-विक्खम्भादो तदणंतर-तरंगिणी-
एणहस्स एय-दिस-विक्खम्मि वड्ढी-गवे सिज्जइ ॥

अर्थ—चतुर्थ-पक्षमें अभ्यन्तर समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर समुद्रके एक-दिशासम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी खोज की जाती है ॥

पंचम-पक्खे इच्छिय-दीवस्स एय-दिस-रुंदादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स एय-दिस-
रुंदम्मि वड्ढी-गवे सिज्जइ ॥

अर्थ—पंचम-पक्षमें इच्छित द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारसे तदनन्तर उपरिम द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

छट्ठम-पक्खे अब्भंतरिम-सध्व-दीवाणं एय-दिस-रुंदादो तदणंतोवरिम-दीवस्स
एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गवे सिज्जइ ॥

अर्थ—छठे पक्षमें अभ्यन्तर सब द्वीपोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर उपरिम द्वीपके एकदिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

सप्तम-पक्खे अब्भंतरिमस्स दीवाणं दोणि-दिस-रुंदादो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ
दीवस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गवे सिज्जइ ॥

अर्थ—सातवें पक्षमें अभ्यन्तर द्वीपोंके दोनों दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर बाह्य स्थित द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

अट्ठम-पक्खे हेट्ठिम-सयल-मयरहराणं दोणि दिस-रुंदादो तदणंतर-बाहिणी-
रमणस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गवे सिज्जइ ॥

अर्थ—आठवें पक्षमें अद्यस्तन सम्पूर्ण समुद्रोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

नवम-पक्खे जंबूदीव-बादर-सुहुम-खेत्तफलप्पमाणेण उपरिमापगाकंत-दीवाणं
खेत्तफलस्स खंड^१-सत्तागं कादूण वड्ढी-गवे सिज्जइ ॥

अर्थ—नवमपक्षमें जम्बूद्वीपके बाहर और सूक्ष्म क्षेत्रफलके प्रमाणसे आगेके समुद्र और द्वीपोंके क्षेत्रफलकी खण्ड-शलाकाएँ करके वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

दसम-पक्षमें जम्बूद्वीपको लवणसमुद्रस्स लवणसमुद्रादो धादईसंडस्स एवं दीवादो उवहिस्स लवहीदो दीवस्स वा खंडसलागाणं बड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—दसवें पक्षमें जम्बूद्वीपसे लवणसमुद्रकी और लवणसमुद्रसे धातकीखण्डद्वीपकी इसप्रकार द्वीपसे समुद्रकी अथवा समुद्रसे द्वीपकी खण्डशलाकाओंकी वृद्धिके प्रमाणकी सिद्धि की जाती है ॥

एककारसम-पक्षमें अद्भन्तर-कल्लोलिणी-रमण-दीवाणं खंडसलागाणं समूहादो बाहिर-णिविट्ठ-णोररासिस्स वा दीवस्स वा खंडसलागाणं बड्ढी-गदे-सिज्जइ ॥

अर्थ—ग्यारहवें-पक्षमें अभ्यन्तरसमुद्र एवं द्वीपोंकी खण्डशलाकाओंके समूहसे बाह्य भागमें स्थित समुद्र अथवा द्वीपकी खण्डशलाकाओंकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

बारसम पक्षमें इच्छिद्य-सायरादो दीवस्स दीवादो णोररासिस्स खेत्तफलस्स बड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—बारहवें-पक्षमें इच्छित समुद्रसे द्वीपके और द्वीपसे समुद्रके क्षेत्रफलकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

तेरसम-पक्षमें अद्भन्तरिम-दीव-पयोहीणं खेत्तफलादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स वा तरंगिणी-णाहस्स वा खेत्तफलस्स बड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—तेरहवें-पक्षमें अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके क्षेत्रफलकी अपेक्षा तदनन्तर अग्रिम द्वीप अथवा समुद्रके क्षेत्रफलकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

चोद्दसम-पक्षमें लवणसमुद्रादि-इच्छिद्य-समुद्रादो तदणंतर-तरंगिणी-रासिस्स खेत्तफलस्स बड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—चौदहवें-पक्षमें लवणसमुद्रको आदि लेकर इच्छित समुद्रके क्षेत्रफलसे उससे अतन्तर स्थित समुद्रके क्षेत्रफलकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

पण्णारसम - पक्षमें सद्भवद्भन्तरिम-मयरहराणं खेत्तफलादो तदणंतरोवरिम-णिण्णगा-णाहस्स [खेत्तफलस्स] बड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—पन्द्रहवें-पक्षमें समस्त अभ्यन्तर समुद्रोंके क्षेत्रफलसे उनके अनन्तर स्थित अग्रिम समुद्रके क्षेत्रफलकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ॥

सोलसम-पक्खे धादइसंडादि-इच्छिय-दीवादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स खेत्त-
फलस्स वड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—सोलहवें-पक्षमें धातकीखण्डादि इच्छित द्वीपसे उसके अनन्तर स्थित अग्रिम द्वीपके क्षेत्रफलकी वृद्धि सिद्ध की जाती है ॥

सत्तरसम-पक्खे धादइसंड-प्पहुदि अब्भंतरिम-दीवाणं खेत्तफलादो तदणंतर-
बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स खेत्तफलस्स वड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—सत्तरहवें-पक्षमें धातकीखण्डादि अभ्यन्तर द्वीपोंके क्षेत्रफलसे उनके अनन्तर बाह्य भागमें स्थित द्वीपके क्षेत्रफलमें होनेवाली वृद्धि सिद्ध की जाती है ॥

अठारसम-पक्खे इच्छिय-दीवस्स वा तरंगिणी-णाहस्स वा आदिम-मज्झिम-
बाहिर-सूर्इणं परिमाणादो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स वा तरंगिणी-णाहस्स वा
आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूर्इणं पत्तेक्कं वड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—अठारहवें-पक्षमें इच्छित द्वीप अथवा इच्छित समुद्रकी आदि-मध्य और बाह्य-सूचीके प्रमाणसे उसके अभ्यन्तर बाह्य-भागमें स्थित द्वीप अथवा समुद्रकी आदि-मध्य एवं बाह्य सूचियोंमेंसे प्रत्येककी वृद्धि सिद्ध की जाती है ॥

एऊणवीसविम-पक्खे इच्छिय-दीव-णिण्णगा-णाहाणं आयामादो तदणंतर-
बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स वा णोररासिस्स वा आयाम-वड्ढी-गदे सिज्जइ ॥

अर्थ—उन्नीसवें-पक्षमें इच्छित द्वीप-समुद्रोंके आयामसे उनके अनन्तर-बाह्य-भागमें स्थित द्वीप अथवा समुद्रके आयामकी वृद्धि सिद्ध की जाती है ॥

प्रथम-पक्ष

पूर्वोक्त उन्नीस विकल्पोंमेंसे प्रथमपक्ष द्वारा दो सिद्धान्त कहते हैं—

(१) अपरवर्ती द्वीप-समुद्रके सम्मिलित एक दिशा सम्बन्धी विस्तारसे पूर्ववर्ती द्वीप या समुद्रका विस्तार १ लाख यो० अधिक होता है—

तत्थ पढम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा-जंबूदीवस्स सयल-विकखंभादो
तदणसमुद्दस्स एय-दिस-रुंदं एक्क-लक्खेणब्भहियं होइ । जंबूदीवेणब्भहिय-तवणसमुद्दस्स
एय-दिस-रुंदादो धादइसंडस्स एय-दिस-रुंदं एक्क-लक्खेणब्भहियं होइ । एवं जंबूदीव-
सयल-रुंदेणब्भहियं अब्भंतरिम रयणायर-दीवाणं एय-दिस-रुंदादो तदणंतर बाहिर-

णिविट्ठ-दीवस्स वा तरंगिणी-रमणस्स वा एय-विस-रुवं एवक-लवखेणवभहियं होवूण
गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुदो त्ति ।

अर्थ—उपर्युक्त उन्तीस विकल्पोंमेंसे प्रथम पक्षमें अल्पबहुत्वको कहते हैं वह इसप्रकार है—

जम्बूद्वीपके समस्त विस्तारकी अपेक्षा लवण समुद्रका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार एक लाख योजन अधिक है । जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा घातकीखण्डका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार एक लाख योजन अधिक है । इसप्रकार जम्बूद्वीपके समस्त विस्तार सहित अभ्यन्तर समुद्र एवं द्वीपोंके सम्मिलित एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके आगे (बाहर) स्थित द्वीप अथवा समुद्रका विस्तार एक-एक लाख योजन अधिक है । इसप्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र-पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ जम्बूद्वीपसे लेकर इष्ट द्वीप या समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी सम्मिलित विस्तारसे उनके आगे स्थित द्वीप या समुद्रका विस्तार निकाला जाता है । इस तुलनामें वह एक-एक लाख योजन अधिक रहता है । यथा—जम्बूद्वीपके पूर्ण विस्तारकी अपेक्षा लवणसमुद्रका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार एक लाख योजन अधिक है ।

पुनः जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रका विस्तार यदि एक दिशामें सम्मिलित किया जाय तो ३ लाख योजन होगा, जिसकी अपेक्षा घातकीखण्डद्वीपका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार ४ लाख योजन होनेसे (४ लाख — ३ लाख =) १ लाख योजन अधिक है ।

तव्वड्ढो-आणयण-हेदुं इमा सुत्त-गाहा—

इच्छिय-दीवुवहीणं^१, चउ-गुण-रुंदम्मि पढस-सूइ-जुदं ।

तिय-भजिदं तं सोहसु, दुगुणिद-रुंदम्मि सा हवे वड्ढी ॥२४७॥

अर्थ—इस वृद्धि-प्रमाणको प्राप्त करनेके लिए यह गाथा सूत्र है—

इच्छित द्वीप-समुद्रोंके चौगुने विस्तारमें आदि सूचीके प्रमाणको मिलाकर तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे विवक्षित द्वीप-समुद्रके दुगुने विस्तारमेंसे कम कर देनेपर शेष वृद्धिका प्रमाण होता है ॥२४७॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथामें शेष वृद्धिका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि दर्शाई गई है । जिसका सूत्र इसप्रकार है—

शेषवृद्धि = २ (इष्ट द्वीप या समुद्रका व्यास) — $\left(\frac{४ \times \text{इष्ट द्वीप या समुद्रका व्यास} + \text{उसकी आदि सूची}}{३} \right)$

= $२ \times (\text{इष्टद्वीप या समुद्रका व्यास}) - (\text{उसकी आदि सूची})$

उदाहरण—यहाँ पुष्करवरद्वीप विवक्षित है अतः उसकी विस्तार वृद्धिका प्रमाण निकालना है । पुष्करवरद्वीपका व्यास १६ लाख योजन तथा उसकी आदि सूची २९ लाख योजन है, अतएव यहाँ—

शेषवृद्धि = $(२ \times १६ \text{ लाख यो०}) - \left(\frac{४ \times १६ \text{ ला० यो०} + २९ \text{ ला० यो० आदि सूची}}{३} \right)$

= ३२ लाख यो० — $\frac{६३ \text{ ला० यो०}}{३}$

= ३२ लाख यो० — ३१ लाख यो० = १ लाख योजन शेष वृद्धि ।

(२) इष्ट द्वीप या समुद्रकी अर्ध आदिम सूची प्राप्त करनेकी विधि—

इष्टस्स दीवस्स वा साधरस्स वा आदिम-सूदस्सद्ध^१

लक्खद्ध-संजुदस्स आणयण-हेदुमिमा सुत्त-गाहा—

इच्छिय-दीववहीणां,^१ त्वं दो-लक्ख-विरहिं मिलिदं ।

बाहिर-सूदम्मि तवो, पंच-हिं तत्थ जं लद्धं ॥२४८॥

आदिम-सूदस्सद्ध^१, लक्खद्ध-जुदं हवेदि इष्टस्स ।

एवं लवणसमुद्र - प्पट्ठदि आणेज्ज अंतो ति ॥२४९॥

अर्थ—विवक्षित द्वीप अथवा समुद्रकी अर्ध-लाख योजनोंसे संयुक्त अर्ध आदिम सूची प्राप्त करने हेतु ये सूत्र-गाथाएँ हैं—

इच्छित द्वीप-समुद्रोंके विस्तारमेंसे दो लाख कम करके शेषको बाह्य सूचीमें मिलाकर पाँचका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो, उतना अर्ध-लाख सहित इष्ट द्वीप अथवा समुद्रकी अर्ध-आदिम सूचीका प्रमाण होता है । इसीप्रकार लवणसमुद्रसे लेकर अन्तिम समुद्र पर्यन्त (सूची प्रमाणको) लाना चाहिए ॥ २४८-२४९ ॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथासे सम्बन्धित सूत्र इसप्रकार है—अर्ध लाख यो० + इष्ट द्वीप समुद्रकी अर्ध आदि सूची = $\frac{५०००० \text{ योजन} + \text{आदिम सूची}}{२}$

$$= \frac{\text{उसकी बाह्य सूची} + (\text{उसका व्यास} - २००००० \text{ यो०})}{५}$$

उदाहरण—मानलो—धातकीखण्डद्वीपकी अर्धलाख योजन सहित आदिम सूची प्राप्त करना है। धातकीखण्डका व्यास ४ लाख योजन, आदिम सूची व्यास ५ लाख योजन और बाह्य सूची व्यास १३ लाख योजन प्रमाण है। इसकी अर्धलाख (५००००) यो० सहित अर्ध आदि (५ लाख $\div २ = २५००००$ यो०) सूची प्राप्त करनेके लिए—

$$= \frac{१३ \text{ लाख यो०} + (४ \text{ लाख यो०} - २ \text{ लाख यो०})}{५}$$

$$= \frac{१३ \text{ ला० यो०} + २ \text{ लाख यो०}}{५}$$

$$= \frac{१५ \text{ ला० यो०}}{५} = ३ \text{ लाख योजन}$$

$$= ५०००० \text{ यो०} + २५०००० \text{ योजन।}$$

द्वितीय-पक्ष

उत्तीस विकल्पोंमेंसे द्वितीय पक्षमें दो सिद्धान्त कहते हैं

(१) विवक्षित सम्पूर्ण अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा अग्रिम द्वीप या समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें १३ लाख यो० की वृद्धि होती है—

विधिय - पक्खे अप्पबहुत्वं 'वत्तइस्सामो - जम्बूदीवस्सद्धस्स विक्खंभादो लवण-समुद्दस्स एय-दिस-रुंदं दिवद्ध - लक्खेणब्भहियं होइ । जम्बूदीवस्सद्धस्स विक्खंमेण विक्खेणब्भहिय-लवणसमुद्दस्स एय-दिस-रुंदादो तवणंतर-उवरिम-दीवस्स वा सायरस्स वा एय-दिस-रुंद-वद्धी दिवद्धी-लक्खेणब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो सि ॥

अर्थ— द्वितीय-पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके अर्ध-विस्तारकी अपेक्षा लवणसमुद्र का एक-दिशा-सम्बन्धी विस्तार डेढ़ लाख योजन अधिक है।

जम्बूद्वीपके अर्धविस्तार सहित लवणसमुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डद्वीपका एक दिशा-सम्बन्धी विस्तार भी डेढ़ लाख योजन अधिक है।

इसीप्रकार सम्पूर्ण अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके अनन्तर स्थित अग्रिम द्वीप अथवा समुद्रके एक दिशा विस्तारमें स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त डेढ़ लाख योजन वृद्धि होती गई है ।।

तद्यद्द्वी-आणयण-हेदुमिमा सुप्त-गाहा—

इच्छिय-दीबुवहीणं,^१ बाहिर-सूइस्स अद्धमेत्तम्मि ।

आदिम - सूई सोहसु, जं^२ सेसं तं च परिवड्ढी ॥२५०॥

अर्थ—इस वृद्धि-प्रमाणको प्राप्त करने हेतु ये सूत्र-गाथाएँ हैं—

इच्छित द्वीप-समुद्रोंकी बाह्य सूचीके अर्ध-प्रमाणमेंसे आदिम सूचीका प्रमाण घटा देनेपर जो शेष रहे उतना उस वृद्धि का प्रमाण है ॥ २५० ॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके अर्ध-विस्तार सहित इष्ट द्वीप या समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा उससे अग्रिम द्वीप या समुद्रका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार १३ लाख योजन अधिक होता है । इस वृद्धिका प्रमाण प्राप्त करने हेतु इष्ट द्वीप या समुद्रकी बाह्य सूचीके अर्ध-प्रमाणमेंसे उसीकी आदि सूचीका प्रमाण घटा देना चाहिए । उसका सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या समुद्रके विस्तारमें उपयुक्त वृद्धि—

= [३ (इष्टद्वीप या समुद्रकी बाह्यसूची) - (उसकी आदि सूची)] = १३ ला० यो० ।

उदाहरण—यहाँ इष्ट कालोदक समुद्र है । इसके विस्तारमें उपयुक्त वृद्धि प्राप्त करना है । कालोदक समुद्रका विस्तार ८ लाख यो०, बाह्य सूची २९ लाख योजन और आदि सूचीका प्रमाण १३ लाख योजन है । तदनुसार—

कालोदकसमुद्रके विस्तारमें उपयुक्त वृद्धि—

= $\frac{26000000}{2}$ — १३००००० योजन ।

= १४५०००० — १३००००० योजन ।

= १५०००० या १३ लाख योजन वृद्धि ।

(२) इष्ट द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप या समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार अपनी आदि सूचीके अर्ध-भाग-प्रमाण होता है—

इच्छिप-दीव्यहीशो,^१ हेट्टिम-दीवोवहीण^२ सं पिडं ।

सग-सग - आदिम - सूइस्सद्ध^३ लवणादि - चरिमंतं ॥२५१॥

अर्थ—लवणसमुद्रसे लेकर अन्तिम समुद्र पर्यन्त इच्छित द्वीप या समुद्रसे अधस्तन (पहिलेके) द्वीप-समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार अपनी-अपनी आदिम सूचीके अर्ध-भाग-प्रमाण होता है ॥ २५१ ॥

विशेषार्थ—मानलो-पुष्करवरद्वीप इष्ट है । इसका विस्तार १६ लाख यो० और आदि सूची २९ लाख यो० है । इस आदि सूचीका अर्ध भाग (२९ लाख ÷ २ =) १४५०००० योजन होता है । जो जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, घातकीखण्ड और कालोद समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी सम्मिलित विस्तार (३ ला० + २ ला० + ४ ला० + ८ लाख =) १४५०००० योजनके बराबर है । इसकी सिद्धिका सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप या समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार = अपनी-आदि सूची ÷ २ ।

उदाहरण— मानलो— इष्ट द्वीप पुष्करवरद्वीप है । उसके पहले स्थित द्वीप-समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार—

= पुष्करवर द्वीपकी आदि सूची
२

= २९ लाख यो० = १४५०००० योजन ।
२

तृतीय-पक्ष

विवक्षित समुद्रके विस्तारकी अपेक्षा उससे अग्रिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें उत्तरोत्तर चीगुनी वृद्धि होती है—

तदिय-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—

लवणसमुद्रस्स एय-विस-रुंदादो कालोदग-समुद्रस्स एय-विस-रुंद-वड्ढि छल्ल-वखेणवभहियं होदि । कालोदग-समुद्रस्स एय-विस-रुंदादो पोक्खरवर समुद्रस्स एय-विस-रुंद - वड्ढी चउवीस - लवणेणवभहियं होदि । एवं कालोदग - समुद्रप्पहुदि विवक्खिद-

तरंगिणीरमण-साहादो तदणंतरोवरिम-णीररासिस्स एय-दिस-रुं-व-वड्ढी चउ-गुणं होदूण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुदो सि ।।

अर्थ—तृतीय-पक्षमें श्रृण्वबहुत्व कहते हैं—

लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा कालोदकसमुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि छह लाख योजन अधिक है । कालोदकसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि चौबीस लाख योजन अधिक है । इसप्रकार कालोदक-समुद्रसे स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त विवक्षित समुद्रके विस्तारकी अपेक्षा उसके अनन्तर स्थित अग्रिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें उत्तरोत्तर चौगुनी वृद्धि होती गई है ।।

विशेषार्थ—लवणसमुद्रका एक दिशाका विस्तार दो लाख योजन है । उसकी अपेक्षा कालोद समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी ८ लाख योजन विस्तारकी वृद्धि (८ लाख यो० — २ लाख यो० =) ६ लाख योजन है । कालोदके एक दिशा सम्बन्धी ८ लाख यो० विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी ३२ लाख यो० विस्तारकी वृद्धि (३२ लाख यो० — ८ लाख यो० = २४ लाख योजन अधिक है । पुष्करवर समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी ३२ लाख योजन विस्तार की अपेक्षा वारुणीवरसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी १२८ लाख यो० की वृद्धि (१२८ लाख यो० — ३२ लाख यो० =) ९६ लाख योजन है, जो पुष्करवर समुद्रकी वृद्धिसे (२४ × ४ = ९६) चौगुनी है । इसप्रकार स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

अन्तिम स्वयम्भूरमणसमुद्रकी वृद्धि

तस्स अन्तिम - वियप्पं वत्तइस्सामो—अहिंदवर-सायरस्स एय-दिस-रुं-वादो सयंभूरमण - समुदस्स एय - दिस - रुं-व-वड्ढी बारसुत्तर - सएण भजिद-ति-गुण-सेढीओ पुणो छप्पण-सहस्स-दु-सद-पण्णास-जोयणेहि अब्भहियं होवि । तस्स उवणा—११३ । एदस्स धरा जोयणाणि ५६२५० ।

अर्थ—उसका अन्तिम विकल्प कहते हैं—अहीन्द्रवर-समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तार की अपेक्षा स्वयम्भूरमण-समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें एकसौ बारहसे भाजित तिगुनी जगच्छ्रेणियाँ और छप्पन हजार दो सौ पचास योजन-प्रमाण वृद्धि हुई है ।

उसकी स्थापना इसप्रकार है— $\frac{\text{जगच्छ्रेणी} \times ३}{११२} + ५६२५० \text{ यो० ।}$

उपर्युक्त वृद्धि प्राप्त करनेकी विधि

तव्वड्ढीणं आणयण-सुत्त-गाहा—

इच्छिय-जलणिहि-रुं-व, ति-गुणं दलिदूण तिणिण-लवखूणं ।

ति-लवखूण-ति-गुण-वासे सोहिय दलिबम्मि सा हवे वड्ढी ।। २५२ ।।

अर्थ—उन वृद्धियोंको लानेके लिए यह सूत्र गाथा है—

इच्छित समुद्रके त्रिगुने विस्तारको आधा करके उसमेंसे तीन लाख कम कर देनेपर जो शेष रहे उसे तीन लाख कम त्रिगुने विस्तारमेंसे घटाकर शेषको आधा करने पर वह वृद्धि-प्रमाण आता है ॥ २५२ ॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथासे सम्बन्धित सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट समुद्रके विस्तारमें वर्णित वृद्धि—

$$= \frac{(३ \times \text{इष्ट समुद्रका व्यास} - ३००००० \text{ यो०}) - \left(\frac{३ \times \text{इष्ट समुद्रका व्यास} - ३००००० \text{ यो०}}{२} \right)}{२}$$

उदाहरण—मानलो-कालोद समुद्रकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रके विस्तारमें हुई वृद्धिका प्रमाण ज्ञात करना है ।

सूत्रानुसार—

$$\begin{aligned} \text{वर्णित वृद्धि} &= \frac{(३ \times ३२ \text{ ला० यो०} - ३००००० \text{ यो०}) - \left(\frac{३ \times ३२ \text{ ला० यो०} - ३००००० \text{ यो०}}{२} \right)}{२} \\ &= \frac{९३००००० \text{ यो०} - ४५००००० \text{ यो०}}{२} \\ &= \frac{४८००००० \text{ यो०}}{२} = २४००००० \text{ यो० वृद्धि ।} \end{aligned}$$

अब यहाँ गाथा-सूत्रानुसार अन्तिम विकल्पमें (अहीन्द्रवर-समुद्रकी अपेक्षा स्वयम्भूरमण समुद्रके विस्तारमें) वर्णित वृद्धि कहते हैं—

वर्णित वृद्धि—

$$\begin{aligned} &= \frac{\{ ३ \times \left(\frac{\text{जग०} + ७५०००}{३६} \text{ यो०} \right) - ३००००० \text{ यो०} \} - \{ ३ \times \left(\frac{\text{जग०} + ७५०००}{३६} \text{ यो०} \right) - ३ \text{ ला० यो०} \}}{२} \\ &= \frac{३ \times \left(\frac{\text{जग०} + ७५०००}{३६} \right) - ३००००० \text{ यो०} - \left\{ \frac{३}{३६} (\text{जग०} + ७५०००) - ३००००० \text{ यो०} \right\}}{२} \\ &= \frac{\frac{३}{३६} (\text{जग०} + ७५०००)}{२} \\ &= \frac{३ \text{ जग०}}{२ \times २ \times ३६} + \frac{३ \times ७५०००}{४} \text{ यो०} \end{aligned}$$

$$= \frac{३}{११२} \text{ जगच्छ्रेणी} + ५६२५० \text{ योजन।}$$

चतुर्थ-पक्ष

चतुर्थपक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं।

(१) अधस्तन समुद्र-समूहसे उसके आगे स्थित समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें दो लाख कम चौगुनी वृद्धि होती है—

चउत्थ-पक्षे अप्पबहुत्वं वत्तइस्सामो—लवणणीर-रासिस्स एय-दिस-रुंद-वावो कालोदग-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी छल्लक्खेणअभहियं होइ । लवण-समुद्द-संमिलिद-कालोदग-समुद्दावो पोक्खरवर-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी बावोस - लक्खेण अभहियं होइ । एवं हेट्ठिम-सायराणं समूहावो तवणंतरोवरिम-णीररासिस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी चउ-गुणं दो-लक्खेहि रहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ॥

अर्थ—चतुर्थ-पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा कालोद समुद्रका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार छह लाख योजन अधिक है। लवणसमुद्र सहित कालोदसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवरसमुद्रकी एक दिशा सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि बाईस लाख योजन अधिक है। इसप्रकार अधस्तन समुद्र-समूहसे उसके अनन्तर स्थित अग्रिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें दो लाख कम चौगुनी वृद्धि स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त होती गई है ॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी २ लाख यो० विस्तारकी अपेक्षा कालोद-समुद्रका एक दिशा सम्बन्धी ८ लाख यो० विस्तार (८ ला० यो० — २ ला० यो० =) ६ लाख यो० अधिक है। लवणसमुद्र सहित कालोदके एक दिशा सम्बन्धी (२ ला० यो० + ८ ला० यो० =) १० लाख योजन विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रकी एक दिशा सम्बन्धी ३२ ला० यो० विस्तारमें वृद्धिका-प्रमाण (३२ लाख यो० — १० लाख यो० =) २२ लाख यो० है।

इसप्रकार अधस्तन समुद्र समूहसे उस समुद्रके बादमें (अनन्तर) स्थित अग्रिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें २ लाख योजन कम ४ गुनी वृद्धि स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त होती गई है। अर्थात् (६ लाख × ४)—२ लाख = २२ लाख योजनोंकी वृद्धि होती गयी है ॥

स्वयम्भूरमणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिका प्रमाण

तस्स अंतिम-विषयं वत्तइस्सामो-सयंभूरमणसमुद्दस्स हेट्ठिम-सयल-सायराणं एय-दिस-रुंद-समूहावो सयंभूरमण-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी छ-रुवेहि भजिद-रञ्जू

पुणो तिदय-हिद तिण्णि-लक्ख-पण्णास-सहस्स-जोयणाणि अब्भहियं होवि — ४२ घण-
जोयणाणि ३५०००० ।

अर्थ — उसका अन्तिम विकल्प कहते हैं - स्वयम्भूरमण-समुद्रके अधस्तन सम्पूर्ण समुद्रोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तार-समूहकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणसमुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें छह-रूपोंसे भाजित एक राजू और तीनसे भाजित तीन लाख पचास हजार योजन अधिक वृद्धि हुई है । इसकी स्थापना (४२ या $\frac{1}{2}$ राजू) + ३५०००० योजन ।

विशेषार्थ — स्वयम्भूरमण समुद्रके पहलेके सभी समुद्रोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तार-समूहकी अपेक्षा अन्तिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें $\frac{1}{2}$ राजू + ३५०००० योजनोंकी वृद्धि होती है ।

तव्वद्धी-आणयण-हेतुमिभं गाहा-सुत्तं —

अड-लक्ख-हीण-इच्छिय-यासं बारसहि भजिदे लद्धं ।

सोहसु ति-चरण-भागेणाहव वासम्मि तं हवे वद्धी ॥२५३॥

अर्थ — इस वृद्धिकी प्राप्त करने हेतु यह गाथा—सूत्र कहते हैं—इच्छित समुद्रके विस्तारमेंसे आठ लाख कम करके शेषमें बारहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे विस्तारके तीन चतुर्थ भागोंमेंसे घटा देनेपर जो अवशिष्ट रहे उतनी विवक्षित समुद्रके विस्तारमें वृद्धि होती है ॥२५३॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

वर्णित वृद्धि = $\frac{3}{8} \times (\text{इष्ट समुद्रका व्यास}) - (\frac{\text{उसका व्यास}}{12} - ५००००० \text{ यो०})$

उदाहरण—मानलो-इष्ट समुद्र वारुणीवरसमुद्र है । इसका विस्तार १२८ लाख योजन है । तदनुसार उसमें—

वर्णित वृद्धि = $\frac{3}{8} \times (१२८००००० \text{ यो०}) - (\frac{१२८०००००}{१२} - ५००००० \text{ यो०})$
= ९६००००० यो० — १०००००० = ८६००००० योजन वृद्धि ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारका प्रमाण $\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० \text{ यो०}$ है ।

अतः इसकी—

वर्णित वृद्धि = $\frac{3}{8} \times \left[\frac{\text{जगच्छेणी}}{२८} + ७५००० \text{ यो०} \right] - \left[\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० - ५००००० \text{ यो०} \right]$
= $\frac{3}{8 \times २८} \text{ जगच्छेणी} - \frac{३}{८ \times २८} \text{ जग०} + \frac{3}{8} \times ७५००० - \frac{०५०००}{२८} + \frac{५०००००}{२८}$
= $\frac{९ \text{ जग०} - १ \text{ जग०}}{३३६} + \frac{२२५०००}{८} (३ - \frac{१}{३}) + \frac{२०००००}{३}$

$$= \frac{८}{३३४} \text{ जग०} + \left(\frac{७५०००}{३} \times \frac{६}{३} + \frac{३०००००}{३} \right) \text{ यो०}$$

$$= \frac{\text{जग०}}{४३} + \left(\frac{१५००००}{३} + \frac{२०००००}{३} \right) \text{ यो०}$$

$$= \frac{\text{जग०}}{४३} + \frac{३५००००}{३} \text{ योजन ।}$$

(२) इच्छित वृद्धिसे अधस्तन समस्त समुद्रों-सम्बन्धी एक दिशाका विस्तार प्राप्त करनेकी विधि—

इच्छित-वृद्धीदो हेट्टिम-सयल-सायराणं एय-दिस-रुं-व-समासाणं आणयणट्टं गाहा-सुत्तं—

सग-सग-वड्ढि-पमाणे, दो-लक्खं अवणिदूण अद्ध-कवे ।

इच्छित - वृद्धीदो तदो हेट्टिम - उवहीण - संबंधं ॥२५४॥

अर्थ—इच्छित वृद्धिसे अधस्तन समस्त समुद्रों-सम्बन्धी एक दिशाके विस्तार-योगोंको प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

अपनी-अपनी वृद्धिके प्रमाणमेंसे दो लाख कम करके शेषको आधा करनेपर इच्छित वृद्धि-वाले समुद्रसे पहलेके समस्त समुद्रों सम्बन्धी विस्तारका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ २५४ ॥

विशेषार्थ—गाथा २५३ की प्रक्रियासे इस गाथाकी प्रक्रियाका फल विपरीत है । यहाँ इच्छित समुद्रकी वृद्धि द्वारा उस समुद्रसे पहलेके (अधस्तन) समुद्रों-सम्बन्धी एक दिशाके विस्तार योगोंको प्राप्त करनेकी विधि दर्शाई गयी है ।

इष्ट वृद्धिवाले समुद्रके पहलेके समस्त समुद्रों सम्बन्धी विस्तारका प्रमाण प्राप्त करने हेतु सूत्र इसप्रकार है—इष्ट समुद्रसे पहलेका समस्त समुद्रों सम्बन्धी विस्तार—

$$= \frac{\text{वर्णित वृद्धि} - २००००० \text{ यो०}}{२}$$

उदाहरण—मानलो-वारुणोवर समुद्रकी वृद्धि इष्ट है । इस समुद्रकी वृद्धिका प्रमाण ८६ लाख योजन है अतः इसके पहलेके समस्त समुद्रोंका विस्तार (लवणसमुद्र २ लाख + कालोदका ८ लाख + पुष्करवर समुद्रका ३२ लाख =) ४२ लाख योजन है । यथा—

$$\begin{aligned} \text{अधस्तन समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार} &= \frac{८६००००० - २०००००}{२} \\ &= ४२००००० \text{ योजन ।} \end{aligned}$$

पंचम-पक्ष

दृष्ट द्वीपके विस्तारसे उसके आगे स्थित द्वीपके विस्तारमें तिगुनी वृद्धि होती है -

पंचम-पक्षे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—सयल-जम्बूदोवस्स रुंदादो धावइसंडस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढो तिय-लक्खेणअभहियं होदि । धावईसंडस्स एय-दिस-रुंदादो पोक्खरवर-दोवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढो बारस-लक्खेणअभहियं होदि । एवं तदणंतर-हेट्ठिम-दीवावो अणंतरोवरिम-दीवस्स दास-वड्ढो ति-गुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणदीवो सि ॥

अर्थ—पाँचवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके सम्पूर्ण विस्तारसे धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें तीन लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है । धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारसे पुष्करवर द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें बारह लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है । इसप्रकार स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त अनन्तर अधस्तनद्वीपसे उसके आगे स्थित द्वीपके विस्तारमें तिगुनी वृद्धि होती गई है ॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके पूर्ण (१ लाख यो०) विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी ४ लाख यो० विस्तारमें (४ — १ =) ३ लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है । धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी ४ लाख यो० विस्तारसे पुष्करवरद्वीपके एक दिशा सम्बन्धी १६ लाख यो० विस्तारमें (१६ लाख — ४ लाख =) १२ लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है ।

इसप्रकार यहाँ सभी अधस्तनद्वीपोंसे स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त आगे-आगे स्थित द्वीपके विस्तारसे (१२ लाख — ३ लाख = ९ लाख यो० अर्थात्) ३ गुनी वृद्धि होती है ।

अहीन्द्रवरद्वीपसे अन्तिम स्वयम्भूरमणद्वीपके विस्तारमें होनेवाली वृद्धिका प्रमाण—

तस्स अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो-द्वचरिम-अहिंदवर-दीवादो अंतिम-सयंभूरमण-दीवस्स वड्ढि-पमाणं तिय-रज्जुओ वत्तीस-रुवेहि अवहरिद-पमाणं पुणो अट्ठावीस-सहस्स-एक-सय-पणुवीस-जोयणेहि अब्भहियं होइ । ७ । ३३ । धण जोयण २८१२५ ॥

अर्थ—उसका अन्तिम विकल्प कहते हैं—द्विचरम अहीन्द्रवर-द्वीपसे अन्तिम स्वयम्भूरमण-द्वीपके विस्तारमें होने वाली वृद्धिका प्रमाण वत्तीससे भाजित तीन राजू और अट्ठाईस हजार एकसौ पच्चीस योजन अधिक है । अर्थात् राजू ३३ + २८१२५ योजन है ॥

विशेषार्थ—द्विचरम अहीन्द्रवरद्वीपसे अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीपके विस्तारमें अधिक वृद्धि का प्रमाण ३२ से भाजित ३ राजू तथा २८१२५ योजन है ।

तद्वद्द्वीपं भ्राजयणे गाहा-सुतं—

इच्छिद्य-दीवे रुदं, ति-गुणं दलिदूण तिणिण-लक्खूणं ।

ति-लक्खूण-ति-गुण-वासे, सोहिंय दलिदे हुवे वड्ढी ॥२५५॥

अर्थ—इस वृद्धि प्रमाणको लानेके लिए यह गाथा सूत्र है— इच्छित द्वीपके तिगुने विस्तार-को आधा करके उसमेंसे तीन लाख कम कर देनेपर जो शेष रहे उसे तीन लाख कम तिगुने विस्तारमेंसे घटाकर शेषको आधा करनेपर वृद्धिका प्रमाण होता है ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{(३ \times \text{इष्ट द्वीपका व्यास} - ३०००००) - (३ \times \text{उसका विस्तार} - ३०००००)}{२}$$

उदाहरण—मानलो—इष्टद्वीप पुष्करवरद्वीप है । जिसका विस्तार १६ लाख योजन है ।
उसकी

$$\begin{aligned} \text{वर्णित वृद्धि} &= \frac{(३ \times १६००००० - ३०००००) - (३ \times १६००००० - ३०००००)}{२} \\ &= \frac{४५००००० - ४९०००००}{२} = १२००००० \text{ योजन वृद्धि ।} \end{aligned}$$

इसीप्रकार अन्तिम विकल्पमें इष्टद्वीप स्वयम्भूरभरण द्वीप है । जिसका विस्तार जगच्छ्रेणी + ७५००० योजन है । इसलिए उसकी

$$\begin{aligned} \text{वर्णित वृद्धि} &= \frac{[३ \times (\text{जग०} + \frac{७५०००}{३ \times ३६}) - ३०००००] - [३ \times ३ \times (\text{जग०} + \frac{७५०००}{३ \times ३६}) - ३०००००]}{२} \\ &= \frac{३ (\text{जग०} + \frac{७५०००}{३ \times ३६}) - ३००००० - ३ (\text{जग०} + \frac{७५०००}{३ \times ३६}) + ३०००००}{२} \\ &= \frac{३ (\text{जग०} + \frac{७५०००}{३ \times ३६})}{२} \\ &= \frac{३ \text{ जग०}}{२ \times २ \times २ \times ४ \times ७} + \frac{३ \times ७५०००}{२ \times २ \times २} = \frac{३ \text{ राजू}}{३२} + २८१२५ \text{ योजन ।} \end{aligned}$$

षष्ठम-पक्ष

छठे पक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं—

(१) इच्छित द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा अग्रिम द्वीपके विस्तारमें २३ लाख कम चौगुनी वृद्धि होती है—

छट्टम-पक्षे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—जम्बूदीवस्स अट्ठ-रुंदादो धावइसंडस्स एय-विस-रुंदं आहुट्ठ-लक्खेणअभहियं होदि ३५०००० । जम्बूदीवस्स अट्ठेण सम्मिलिदे धावईसंडस्स एय-विस-रुंदादो पोक्खरवर-दीवस्स एय-विस-रुंद-वड्ढी एयारस-लक्ख-पण्णास-सहस्स-जोयणेहि अभहियं होइ ११५०००० । एवं धावईसंड-प्पहुवि-इच्छिय-दीवस्स एय-विस-रुंद-वड्ढीदो तदनंतर-उवरिम-दीवस्स वड्ढी चउ-गुणं अड्ढाइज्ज-लक्खेणुणं होदूण गच्छइ जाव सयंभूरमणदीओ ति ॥

अर्थ—छठे पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इसप्रकार है—जम्बूद्वीपके अर्ध विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डका एक दिशा-सम्बन्धी विस्तार साढ़े तीन लाख योजन अधिक है—३५०००० । जम्बूद्वीपके अर्ध विस्तार सहित धातकीखण्डके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवरद्वीपके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि ग्यारह लाख पचास-हजार योजन अधिक है—११५०००० । इसप्रकार धातकीखण्ड-प्रभृति इच्छित द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर अग्रिम द्वीपके विस्तारमें अढ़ाई लाख कम चौगुनी वृद्धि स्वयम्भूरमण द्वीप तक होती चली गई है ।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके अर्ध विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार (४ लाख यो० — ३ लाख यो० =) ३३ लाख योजन अधिक है । पुनः जम्बूद्वीपके अर्ध विस्तार सहित धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवरद्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि (१६ — ४३ लाख यो०) = ११५०००० योजन है ।

इसप्रकार धातकीखण्ड आदि द्रष्ट द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा बादमें आगे आनेवाले द्वीपके विस्तारमें २३ लाख यो० कम ४ गुनी वृद्धि अन्तिम द्वीप तक चली गई है ।

अधस्तन द्वीपोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणद्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि

तत्थ अन्तिम-विषयं वत्तइस्सामो—[सयंभूरमणदीवस्स हेट्ठिम-सयल-दीघाणं एय-विस-रुंद-समूहादो सयंभूरमणदीवस्स एय-विस-रुंद-वड्ढी] चउरासीवि - रुवेहि

भजिव-सेढी पुणो तिय-हिद-तिण्णि-लक्ख-पणुओस-सहस्स-जोयणेहि अब्भहियं होइ । तस्स ठवणा ८४ धण-जोयण ३२५००० ।

अर्थ—उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-द्वीपसे पहलेके समस्त द्वीपोंके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणद्वीपके एक-दिशा सम्बन्धी विस्तारमें चौरासी रूपोंसे भाजित जगच्छेणी और तीनसे भाजित तीन लाख पच्चीस हजार योजन अधिक वृद्धि हुई है । उसकी स्थापना इसप्रकार है— $(\text{जगच्छेणी} \div ८४) + ३२५०००$ ।

सव्वड्ढीणं आणयणद्वं गाहा-सुत्तं—

अंतिम-रुंद-पमाणं, लक्खूणं तीहि भाजिवं दुगुणं ।

बलिद-तिय-लक्ख-जुत्तं, परिघड्ढी होदि बीवाणं ॥२५६॥

अर्थ—उन वृद्धियोंको प्राप्त करने हेतु गाथा-सूत्र—

एक लाख कम अन्तिम विस्तार-प्रमाणमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे दुगुना करके अर्धित तीन लाख (३०००००) और मिला देनेपर द्वीपोंकी वृद्धिका प्रमाण होता है ॥ २५६ ॥

उदाहरण—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{\text{द्विष्ट द्वीपका व्यास}}{३} \times २ + \frac{३०००००}{२}$$

उदाहरण—मानलो— पुष्करवरद्वीपकी वर्णित - वृद्धि निकालना है जिसका व्यास १६००००० यो० है । सूत्रानुसार

$$\begin{aligned} \text{वर्णित वृद्धि} &= \frac{१६०००००}{३} \times २ + \frac{३०००००}{२} \\ &= (५००००० \times २) + १५०००० = ११५०००० \text{ योजन ।} \end{aligned}$$

इसीप्रकार स्वयम्भूरमणद्वीपकी

$$\begin{aligned} \text{वर्णित वृद्धि} &= \left(\frac{\text{जग०} + \frac{७५०००० - १०००००}{३}}{३६ \times ३} \right) \times २ + \frac{३०००००}{२} \\ &= \left(\frac{\text{जग०}}{३६ \times ३} \times २ \right) + \left(\frac{७५००००}{३} \times २ \right) - \left(\frac{१०००००}{३} \times २ \right) + ३००००० \\ &= \frac{\text{जग०}}{५४} + (७५०००० - २००००० + १५००००) \text{ यो०} \\ &= \frac{\text{जग०}}{५४} + ७५००० - २००००० + १५०००० \text{ यो०} \end{aligned}$$

$$= \frac{जग०}{२४} + \frac{३३५०००}{३} \text{ योजन ।}$$

(२) इष्टद्वीपसे पहलेके द्वीपोंके विस्तार समूहको प्राप्त करनेकी विधि

इच्छित्त-दीवादो हेट्टिम-दीवाणं रुंद-समासाणं आणयणद्धं गाहा-सुत्तं—

चउ-भजिद-इट्ट-रुंदं, 'हेट्ठं च ट्ठाविदूण तत्थेक्कं ।

लक्खूणे तिय-भजिदे, उवरिम-रासिम्मि सम्मिलिदे ॥२५७॥

सक्खद्धं हीण-कदे, अंबूदीवस्स अद्ध - पहुवि तवो ।

इट्ठस्स दुवरिमंतं, दीवाणं मेलणं होवि ॥२५८॥

अर्थ—इच्छित द्वीपसे पहलेके द्वीपोंके विस्तार-समूहको प्राप्त करने हेतु गाथा-सूत्र—

चारसे भाजित इष्ट द्वीपके विस्तारको अलग रखकर इच्छित द्वीपसे पहले द्वीपका जो विस्तार हो उसमेंसे एक लाख कम करके शेषमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उपरिम राशिमें मिलाकर आधा लाख कम करनेपर अर्ध जम्बूद्वीपसे लेकर इच्छित द्विचरम (अहीन्द्रवर) द्वीप तक उन द्वीपोंका सम्मिलित विस्तार होता है ॥ २५७-२५८ ॥

विशेषार्थ—अर्धजम्बूद्वीपसे इष्ट द्वीप पर्यन्तके द्वीपोंका सम्मिलित विस्तार प्राप्त करने हेतु दोनों गाथाओंके अनुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{सम्मिलित विस्तार} = \frac{\text{इष्ट द्वीपका विस्तार}}{४} + \frac{\text{इष्ट द्वीपसे पहलेके द्वीपका व्यास} - १०००००}{३} - \frac{१०००००}{३}$$

उदाहरण—इस सूत्रसे अर्धजम्बूद्वीप सहित पुष्करवर द्वीप तकका विस्तार योग प्राप्त करने हेतु उससे आगेके वासुणीवर-द्वीपका विस्तार ६४ लाख योजन और पुष्करवरका विस्तार १६ लाख योजन प्रमाण है । तदनुसार—

$$\begin{aligned} \text{उपर्युक्त सम्मिलित विस्तार} &= \frac{२४००००००}{४} + \frac{१६०००००० - १०००००}{३} - \frac{१०००००}{३} \\ &= ६०००००० + ५००००० - ३३३३३३ \text{ योजन ।} \\ &= २०५००००० \text{ योजन ।} \end{aligned}$$

सप्तम-पक्ष

सातवें पक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं

(१) इच्छित द्वीपोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके अनन्तर स्थित अग्रिम द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें पाँच लाख कम चौगुनी वृद्धि प्राप्त होती है ।

सप्तम-पक्षके अल्पबहुत्वं वत्तइस्सामो—सयल-जंबूदीप-रुंदादो धावईसंडस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढो तिण्णि-लक्खेणब्भहियं होइ ३००००० । जंबूदीप-सम्मिलित-धावई-संड-दीवस्स दोण्णि-दिस-रुंदादो पोक्खरवर-दीवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढो सत्त-लक्खेहि अब्भहियं होइ ७००००० । एवं धावईसंड-प्पहुदि-इच्छिय-दीवाणं दोण्णि-दिस-रुंदादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स एय-दिस रुंद-वड्ढो चउ-गुणं पंच-लक्खेणूणं होदूण गच्छवि जात्र सयंभूरमणदीयो सि ॥

अर्थ—सातवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके सम्पूर्ण विस्तारसे धातकीखण्डके एक-दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें तीन लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है—३००००० । जम्बूद्वीप सहित धातकीखण्डके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवरद्वीपके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें सात लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है—७००००० । इसप्रकार धातकीखण्ड आदि इच्छित द्वीपोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके अनन्तर स्थित अग्रिम द्वीपके एक-दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें पाँच लाख कम चौगुनी वृद्धि स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त होती चली गई है ॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके १ लाख यो० विस्तारसे धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी ४ लाख यो० विस्तारमें (४००००० — १००००० यो० =) ३००००० यो० अधिक वृद्धि हुई है । जम्बूद्वीप के (१ लाख यो०) सहित धातकीखण्डके दोनों दिशाओं सम्बन्धी (४ ला० + ४ ला० = ८ लाख योजन) विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर-द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी (१६००००० यो०) विस्तारमें (१६००००० — ९००००० =) ७००००० योजनकी अधिक वृद्धि हुई है । इसप्रकार धातकीखण्ड आदि इष्ट द्वीपोंके दोनों दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके बाद (अनन्तर) स्थित आगेके द्वीपके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें (३ लाख × ४ = १२ लाख । १२ लाख — ७ लाख =) ५००००० कम चौगुनी वृद्धि स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त चली गई है ।

अधस्तन समस्त द्वीपोंके दोनों दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणद्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि—

तत्थ अंतिम-विषयं वत्तइस्सामो—सयंभूरमण-दीवस्स हेट्ठिम-सयल-दीवाणं दोण्णि-दिस-रुंद-समूहादो सयंभूरमण-दीवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढो चउवीस-रुवेहि भजिद-

रज्जू पुणो तिय-हिव-पंच-लख-सत्ततीस-सहस्स-पंच-सय जोयणेहि अब्भहियं होदि ।
तस्स ठवणा ७ । २४ धण जोयणाणि ५३७५०० ।

अर्थ—इनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-द्वीपसे अघस्तन सम्पूर्ण द्वीपोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमण-द्वीपके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें चौबीससे भाजित एक राजू और तीनसे भाजित पाँच लाख सैंतीस हजार पाँचसौ योजन अधिक वृद्धि हुई है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—राजू $२\frac{१}{४} + ५३७५००$ यो० ।

तच्चङ्कोणं आणयणट्ठं गाहा-सुसं—

सग-सग-वास-पमाणं, लख्खणं तिय-हिवं दु-लख-जुवं ।

अहया पण-लक्खाहिय-वास-ति-भागं तु परिवड्ढी ॥२५६॥

अर्थ—उत वृद्धियोंको प्राप्त करने हेतु गाथा-सूत्र—

एक लाख कम अपने-अपने विस्तार-प्रमाणमें तीनका भाग देकर दो लाख और मिलानेपर उस वृद्धिका प्रमाण होता है । अबवा पाँच लाख अधिक विस्तारमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना उक्त वृद्धिका प्रमाण होता है ॥ २५९ ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णितवृद्धि} = \frac{\text{विस्तार} - १०००००}{३} + २००००० \text{ यो० ।}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{विस्तार} + ५००००० \text{ यो०}}{३}$$

उदाहरण—मानलो-इष्ट-द्वीप पुष्करवर है । तदनुसार—

$$\begin{aligned} \text{वर्णितवृद्धि (प्रथम सूत्र से)} &= \frac{१६००००० - १०००००}{३} + २००००० \text{ यो० ।} \\ &= ७००००० \text{ योजन वृद्धि ।} \end{aligned}$$

$$\begin{aligned} \text{अथवा, वर्णितवृद्धि (द्वितीय सूत्रसे)} &= \frac{१६००००० + ५०००००}{३} \\ &= ७००००० \text{ योजन वृद्धि ।} \end{aligned}$$

इसीप्रकार स्वयम्भूरमणद्वीपकी

$$\begin{aligned}
 \text{वर्णित वृद्धि} &= \frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{५६} + \frac{३७५००}{३} - \frac{१०००००}{३} \text{ यो०} \\
 &\quad + २००००० \text{ यो०} \\
 &= \frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{७ \times ८ \times ३} + \frac{३७५००}{३} - \frac{१०००००}{३} + २००००० \text{ यो०} \\
 &= \left(\frac{\text{जग०}}{७} \times \frac{१}{२४} \right) + \left(\frac{३७५०० - १००००० + ६०००००}{३} \right) \text{ यो०} \\
 &= \left(\frac{\text{जग०}}{७} \times \frac{१}{२४} \right) + \frac{५३७५००}{३} \text{ योजन वृद्धि ।}
 \end{aligned}$$

(२) इष्ट द्वीपसे अधस्तन समस्त द्वीपोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारके योगका प्रमाण—

पुणो इच्छिय-दीवादो हेट्टिम-सयल-बीवाणं कोणिए-दिस-रुंदस्स समासो वि
एक-लवखावि-चउ-गुणं पंच-लक्खेहि अब्भहियं होऊण मच्छइ जाव अहिंदवरदीवो ति ॥

अर्थ—पुनः इच्छित द्वीपसे अधस्तन समस्त द्वीपोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारका योग भी एक लाखको आदि लेकर चौगुना और पाँच लाख अधिक होकर अहीन्द्रवर-द्वीप तक चला जाता है ॥

तव्वड्ढोणं आणयण-हेवुं 'इमं गाहा-सुत्तं—

दु-गुणिय-सग-सग-वासे, पण-लक्खं अवणिवूण तिय-भजिदे ।

हेट्टिम-बीवाण पुढं, दो-दिस-रुंदम्मि होदि 'पिड-फलं ॥२६०॥

अर्थ—उस वृद्धिको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अपने-अपने दुगुने विस्तारमेंसे पाँच लाख कम करके शेषमें तीनोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना अधस्तन द्वीपोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारका योगफल होता है ॥ २६० ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित विस्तार योगफल} = \frac{२ \times \text{व्यास} - ५०००००}{३}$$

मानलो—पृष्करवरद्वीप इष्ट है । उसका व्यास १६००००० योजन है । अतएव उसके अधस्तन द्वीपोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी द्वीपोंका—

$$\begin{aligned} \text{विस्तार योगफल} &= \frac{2 \times 16000000 - 4000000}{2} \text{ यो०} \\ &= 9000000 \text{ योजन ।} \end{aligned}$$

अष्टम-पक्ष

आठवें पक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं ।

- (१) इच्छित समुद्रोंकी एक दिशा सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि अधस्तन सब समुद्रोंकी दोनों दिशा-सम्बन्धी विस्तार वृद्धिसे ४ लाख यो० कम चौगुनी होती है—

अष्टम-पक्षके अल्पबहुत्वं वसइस्सामो-लवणसमुद्रस्स बोणिण-विस-रुंदादो कालोदग-समुद्रस्स एय-विस-रुंदा-वड्ढी चउ-लक्खेणब्भहियं होदि ४००००० । लवण-कालोदग-समुद्राणं बोणिण-विस-रुंदादो पोक्खरवर-समुद्रस्स एय-विस-रुंदा-वड्ढी बारस-लक्खेणब्भहियं होदि १२००००० । एवं कालोदग-समुद्र-प्पहुवि तत्तो उवरिम-तदनन्तर-इच्छिय-रयणायराराणं एय-विस-रुंदा-वड्ढी हेट्ठिम-सव्व-णीररासीणं बोणिण-विस-रुंदा-वड्ढीदो चउ-गुणं चउ-लक्ख-विहीणं होऊणं गच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्रो ति ॥

अर्थ—आठवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तार की अपेक्षा कालोद-समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें चार लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है—४००००० यो० । लवण और कालोद समुद्रके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा पृष्करवर-समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें बारह लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है—१२००००० यो० । इसप्रकार कालोद समुद्रसे लेकर उपरिम तदनन्तर इच्छित समुद्रोंकी एक दिशा-सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि अधस्तन सब समुद्रोंकी दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारवृद्धिसे चार लाख कम चौगुनी होकर स्वयंभूरमण-समुद्र पर्यन्त चली गई है ॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके दोनों दिशाओं सम्बन्धी (२ लाख + २ लाख = ४ लाख यो०) विस्तारकी अपेक्षा कालोद-समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी (८ लाख यो०) विस्तारमें (८ लाख — ४ लाख यो० =) ४००००० योजन अधिक वृद्धि होती है । लवण और कालोद समुद्रके दोनों

दिशाओं सम्बन्धी सम्मिलित [(२+२) + (८+८) = २० लाख यो०] विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी (३२ लाख यो०) विस्तारमें (३२ लाख यो० — २० लाख यो० =) १२००००० योजन अधिक वृद्धि होती है ।

इसप्रकार कालोदसमुद्रसे लेकर उससे उपरिम तदनन्तर इष्ट समुद्रोंकी एक दिशा-सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि अधस्तन समस्त समुद्रोंकी दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तार-वृद्धिसे ४००००० कम ४ गुनी होकर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चली जाती है ।

अधस्तन समस्त समुद्रोंके दोनों दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि—

तत्थ अंतिम - वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंभूरमणस्स हेट्ठिम-सब्ब-सायराणं वोणि-दिस-रुंदावो सयंभूरमण-समुद्रस्स एय-दिस-रुंदा-वड्ढी रज्जूए बारस-भागो पुणो तिय-हिद-चउ-लवख-पंचहत्तरि-सहस्स-जोयणेहि अबभहियं होदि । तस्स ठवणा—
७ । १२ । धण जोयणाणि ४००००० ।

अर्थ—उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-समुद्रके अधस्तन सम्पूर्ण समुद्रोंके दोनों दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणसमुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें राजूका बारहवां भाग और तीनसे भाजित चार-लाख पचहत्तर हजार योजन अधिक वृद्धि हुई है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—राजू १२ + ४००००० यो० ।

तव्वड्ढीणं आणयण-हेवुं इमं गाहा-सुत्तं—

इट्ठोवहि-विक्खंभे, चउ-लवखं मेल्लिवूण तिय-भजिदे ।

तीव-रयणायराणं, दो-दिस-रुंदावु उवरिमेय-दिसं ॥२६१॥

अर्थ—उस वृद्धिको प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

इष्ट समुद्रके विस्तारमें चार लाख मिलाकर तीसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी यतीत समुद्रोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उपरिम समुद्रके एक-दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धि होती है ॥ २६१ ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

वर्णितवृद्धि =
$$\frac{\text{इष्ट समुद्रका विस्तार} + ४०००००}{३}$$

उदाहरण—मानलो—इष्ट समुद्र वास्णीवर है । उसका विस्तार १२८ लाख योजन है ।
तदनुसार—

वास्णीवर समुद्रके अतीत समुद्रोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उपरिम समुद्रकी एक दिशा सम्बन्धी—

$$\text{विस्तार वृद्धि} = \frac{१२८००००० + ४०००००}{३}$$

$$= ४४००००० योजन ।$$

इसीप्रकार स्वयम्भूरमण समुद्रकी

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{\text{जग०}}{२८} + \frac{७५००० + ४०००००}{३}$$

$$= \frac{\text{जग०}}{७ \times ४ \times ३} + \frac{४७५०००}{३}$$

$$= \frac{१}{३२} \text{ राजू} + ४७५००० योजन ।$$

(२) अभ्यन्तर समुद्रोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारसे तदनन्तर स्थित
उपरिम समुद्रकी दोनों दिशा-सम्बन्धी विस्तारवृद्धि
चौगुनी और चार लाख अधिक है—

हेट्टिम-समासो वि-इट्टस्स-कालोदग-समुद्दादो हेट्टिमेक्कस्स समुद्दस्स दोण्णि-विस-
रुंद-समासं चउ-लक्खं होवि ४००००० । पोक्खरवर-समुद्दादो हेट्टिम-दोण्णि-समुद्धानं
दोण्णि-दिस-रुंद-समासं बीस-लक्ख-जोयण-यमानं होवि २०००००० । एवमब्भंतरिम-
णीररासीणं दोण्णि-दिस-रुंद-समासादो तदणंतरोवरिम-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी
चउगुणं चउ-लक्खेणभहियं होऊण गच्छइ जाय अहिंदवर-समुद्दो ति ॥

अर्थ—अधस्तन योग भी—इष्ट कालोद समुद्रसे अधस्तन (केवल) एक लवणसमुद्रका
दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तार-समास चार लाख है—४००००० यो० । पुष्करवर-समुद्रसे अधस्तन
दोनों समुद्रोंका दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तार-समास बीस लाख—२०००००० योजन-प्रमाण है ।
इसप्रकार अभ्यन्तर समुद्रोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारसमाससे तदनन्तर स्थित उपरिम समुद्रकी
दोनों दिशा-सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि चौगुनी और चार लाख अधिक होकर अहीन्द्रवर-समुद्र पर्यन्त
चली गई है ॥

तव्यड्डीणं आणयण-हेदुं इमं गाहा-सुत्तं —

दु-गुणिय-सग-सग-वासे, चउ-लवखे अवणिवूण तिय-भजिवे ।

तीव - रयणायराणं, दो - दिस - भायम्मि पिड - फलं ॥२६२॥

अर्थ — उस वृद्धिको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है —

अपने-अपने दुगुने विस्तारमेंसे चार लाख कम करके शेषमें तीवका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना अतीत समुद्रोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारका योग होता है ॥ २६२ ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित विस्तार} = \frac{(\text{इष्ट द्वीपका विस्तार} \times २)}{३} = ४०००००$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ पुष्करवरद्वीप इष्ट है और उसका विस्तार ३२ लाख यो० है ।

अतीत समुद्रोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी (लवण और कालोद समुद्रका) सम्मिलित विस्तार योग = $\frac{(३२००००० \times २)}{३} = ४०००००$ यो० ।

= २०००००० योजन ।

नवम-पक्ष

इष्ट द्वीप या समुद्रमें जम्बूद्वीपके समान खण्डोंकी संख्या

प्राप्त करनेकी विधि —

रावम - पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—जंबूदीवस्स बादर-सुहुम-खेत्तफल-
प्पमाणेण लवण-समुद्रस्स खेत्तफलं किज्जंतं^१ चउवीस-गुणं होदि २४ । जंबूदीवस्स खेत्त-
फलादो धादईसंडस्स खेत्तफलं चउवालीसवहियं एक्क-सयमेत्तं होदि १४४ । एवं जाणि-
वूण एोदब्बं जाव सयंभूरमणसमुद्रो त्ति ॥

अर्थ — नवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके बादर एवं सूक्ष्म क्षेत्रफलके प्रमाणसे लवणसमुद्रका क्षेत्रफल करनेपर चौबीस-गुणा होता है २४ । जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे धातकीखण्डका क्षेत्रफल एक सौ चवालीस गुणा है १४४ । इसप्रकार जानकर स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए ॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका बादर क्षेत्रफल $३ \times (१०००००)^२$ अथवा $३ \times (२५००००००००)$ वर्ग योजन है और उसका सूक्ष्मक्षेत्रफल $\sqrt{१०} \times (२५००००००००)$ वर्ग योजन है ।

इसीप्रकार लवणसमुद्रका बादर क्षेत्रफल—

$$३ \times [(५०००००)^२ - (१०००००)^२]$$

अथवा $३ \times [६२५०००००००० - २५००००००००]$ वर्ग योजन

अथवा $३ \times [६००००००००००]$ वर्ग योजन है । और उसका सूक्ष्म-क्षेत्रफल—

$$\sqrt{१०} \times [६००००००००००]$$
 वर्ग योजन है ।

लवणसमुद्रका बादर एवं सूक्ष्म (प्रत्येक) क्षेत्रफल जम्बूद्वीपके बादर एवं सूक्ष्म (प्रत्येक) क्षेत्रफलसे २४ गुणा है । यथा—लवणसमुद्रका बादर क्षेत्रफल = (जम्बूद्वीपका बादर क्षेत्र० $\times २४$)

$$= ३ \times (२५००००००००० \times २४)$$

$$= ३ \times (६०००००००००००)$$
 वर्ग योजन ।

लवणसमुद्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल = (जम्बूद्वीपका सूक्ष्म क्षेत्र० $\times २४$)

$$= \sqrt{१०} \times (२५००००००००० \times २४)$$

$$= \sqrt{१०} \times (६०००००००००००)$$
 वर्ग योजन ।

इसीप्रकार जम्बूद्वीपके बादर एवं सूक्ष्म क्षेत्रफलसे घातकीखण्डके बादर एवं सूक्ष्म क्षेत्रफल प्रत्येक १४४ गुणे हैं ।

$$\text{घातकीखण्डका बादर क्षेत्रफल} = ३ \times [(१३०००००)^२ - (५०००००)^२]$$

अथवा $३ \times [३६००००००००००० - २५००००००००००]$ वर्ग योजन है ।

उसीका सूक्ष्मक्षेत्रफल = $\sqrt{१०} \times [३६०००००००००००]$ वर्ग योजन है । जो जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे क्रमशः १४४ गुणे हैं ।

जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे स्वयम्भूरमण समुद्रका क्षेत्रफल कितना

गुणा है ? उसका कथन—

तत्थ अंतिम-वियप्यं वत्तइस्सामो-जगसेढीए वग्गं ति-गुणिय एक्क-लवण-
छण्णउदि-सहस्स-कोडि-रुवेहि भजिदमेत्तं पुणो ति गुणिद-सेहि चोद्दस-लवण-रुवेहि
भजिय-मेत्तेहि अब्भहियं होवि पुणो णव-कोसेहि परिहीणं । तस्स ठवणा—

=३

---३

१६६०००००००००० घण खेत १४०००००० रिण कोसाणि ६ ॥

अर्थ— उनमेंसे अन्तिम-विकल्प कहते हैं—जगच्छ्रेणीके वर्गको तिगुना करके उसमें एक लाख छयानवै हजार करोड़ रूपोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उनना और तिगुनी जगच्छ्रेणीमें चौदह लाखका भाग देनेपर प्राप्त हुए लब्ध प्रमाणसे अधिक तथा नी कोस कम है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—

[(जग० × जग० × ३) ÷ १६६००००००००००] + [{ (जग० × ३) ÷ १४००००० } — ९ को०]

तटवद्धीणं आणयण-हेतुं इमं गाथा-सूत्रं—

लवखूण-इष्ट-रुदं, ति-गुणं च-उ-गुणैव-इष्ट-भास-गुणं ।

लवखस्स कदिम्मि हिदे, जंबूदीवोवमा खंडा ॥२६३॥

अर्थ—उस वृद्धिको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

एक लाख कम इष्ट द्वीप या समुद्रके विस्तारको तिगुना करके फिर उसे चौगुने अपने विस्तारसे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसमें एक लाखके वर्गका भाग-द देनेपर जम्बूद्वीप सदृश खण्डोंकी संख्या प्राप्त होती है ॥ २६३ ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

इष्टद्वीप या समुद्रमें जम्बूद्वीप सदृश खण्डोंकी संख्या अथवा

वर्णित क्षेत्रफलमें वृद्धिका प्रमाण—

$$= \frac{३ \times (\text{इष्ट द्वीप या समुद्रका विस्तार} - १०००००) \times ४ \times (\text{उसका विस्तार})}{(१०००००)^२}$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ वारुणीवर समुद्र इष्ट है और उसका विस्तार १२८ लाख योजन है, इसमें जम्बूद्वीप सदृश खण्डोंकी संख्या—

$$= \frac{३ \times (१२८००००० - १०००००) \times ४ \times (१२८०००००)}{(१०००००)^२}$$

$$= \frac{३ \times १२७००००० \times ४ \times १२८०००००}{१००००० \times १०००००}$$

$$= १२ \times १२७ \times १२८ = १९५०७२ खण्ड होते हैं ।$$

इसीप्रकार [उपर्युक्त सूत्रानुसार] स्वयम्भूरमणसमुद्रमें—

$$\text{वर्णित-खण्ड-वृद्धि} = \frac{३ \times (\text{जग०} + ७५००० - १०००००) \times ४ \times (\text{जग०} + ७५०००)}{(१०००००)^२}$$

$$= \frac{३ \times \text{जग०} \times ४ (\text{जग०} + ७५०००) + ३ \times (-२५०००) \times ४ (\text{जग०} + ७५०००)}{(१०)^{१०}}$$

$$= \frac{३ (\text{जग०} \times \text{जग०})}{१९६ \times (१०)^{१०}} + \frac{३ \text{जग०} \times ७५०००}{७ \times (१०)^{१०}} - \frac{३ \text{जग०} \times २५०००}{७ \times (१०)^{१०}} - ३ \times २५००० \times \frac{४ \times ७५०००}{(१०)^{१०}}$$

$$= \frac{३ (\text{जग०} \times \text{जग०})}{१९६ \times (१०)^{१०}} + \frac{३ \text{जग०}}{७ \times (१०)^{१०}} (७५००० - २५०००) - \frac{३ \times ४ \times २५००० \times ७५०००}{१००००० \times १०००००}$$

$$= \frac{३ (\text{जग०} \times \text{जग०})}{१९६ \times (१०००००)^२} + \frac{३ \text{जग०} \times ५००००}{७ \times (१०००००) \times (१०००००)} - \frac{९}{४} \text{ योजन ।}$$

$$= \frac{३ (\text{जग०} \times \text{जग०})}{१९६०००००००००००} + \frac{३ \text{जग०} \times ५००००}{१४००००००} - ६ \text{ कोस ।}$$

$$= \frac{३ \times \text{जग०}^२}{१९६००००००००००००} + \frac{३ \text{जग०}}{१४००००००} - ६ \text{ कोस ।}$$

दसवाँ-पक्ष

अधस्तम द्वीप या समुद्रसे उपरिम द्वीप या समुद्रकी खण्ड-शलाकाएँ चौगुनी हैं और प्रक्षेपभूत ९६ उत्तरोत्तर दृगुने-दृगुने होते गये हैं—

दसम-पक्षे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—जंबूवीवस्स भादर-सुहम-वत्तेत-फल-प्पमाणेण लवणसमुद्दस्स खेत्तफलं किञ्जलं चउवीस-गुण-प्पमाणं होदि २४ । लवण-समुद्दस्स खंड-सलागाणं संखादो भादइसंडस्स खंड-सलागा छगुणं होदि । भादइसंडस्स-खंड-सलागादो कालोदग-समुद्दस्स खंड-सलागा चउ-गुणं होऊण' छण्णउदि-रुवेणव्वभहियं होदि तत्तो उवरिम-तवणंतर-हेट्ठिम-दीव-उवहीवो अणंतरोवरिम-दीवस्स उवहिस्स वा खंड-सलागा चउगुणं-अउगुणं पक्खेव-भूव-छण्णउदी दृगुण-दृगुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो ति ॥

अर्थ—दसवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इसप्रकार है—जम्बूद्वीपके बाहर एवं सूक्ष्म क्षेत्रफलके बराबर लवण-समुद्रका क्षेत्रफल करनेपर वह उससे चौबीस-गुणा होता है २४ । लवण-समुद्र सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी संख्यासे धातकीखण्डकी खण्ड-शलाकाएँ छह-गुणी हैं धातकीखण्ड-द्वीपकी खण्डशलाकाओंसे कालोद-समुद्रकी खण्डशलाकाएँ चार-गुणी होकर छयानबँ रूपोंसे अधिक हैं । पुनः इससे ऊपर तदनन्तर अधस्तन द्वीप या समुद्रसे अनन्तर उपरिम द्वीप या समुद्रकी खण्ड-शलाकाएँ चौगुनी हैं और इनके प्रक्षेपभूत छयानबँ उत्तरोत्तर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त दुगुने-दुगुने होते गये हैं ।

विशेषार्थ—धातकीखण्डका बाहर क्षेत्रफल—

$$३ [(१३०००००)^२ - (५०००००)^२]$$

अथवा ३×३६००००००००००० वर्ग योजन ।

उसीका सूक्ष्म क्षेत्रफल—

$$\sqrt{१०} [(१३०००००)^२ - (५०००००)^२]$$

$$= \sqrt{१०} \times ३६००००००००००० \text{ वर्ग योजन ।}$$

कालोदकका बाहर क्षेत्रफल—

$$= ३ (१०)^६ [(३६०)^२ - (१३०)^२]$$

$$= ३ \times (१०)^६ \times १६८०० \text{ वर्ग योजन ।}$$

उसीका सूक्ष्म क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{१०} \times (१०)^६ [(३६०)^२ - (१३०)^२]$$

$$= \sqrt{१०} \times (१०)^६ \times १६८०० \text{ वर्ग योजन ।}$$

पुष्करवर द्वीपका बाहर क्षेत्रफल—

$$= ३ (१०)^६ [(६३०)^२ - (२६०)^२]$$

$$= ३ \times ७२०००००००००००० \text{ वर्ग योजन ।}$$

उसीका सूक्ष्म क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{१०} \times (१०)^६ [(६३०)^२ - (२६०)^२]$$

$$= \sqrt{१०} \times (१०)^६ [७२०००] \text{ वर्ग योजन ।}$$

जम्बूद्वीपके सूक्ष्म क्षेत्रफल $\sqrt{१०} \times (१०)^६ \times (२५)$ वर्ग योजनसे लवणसमुद्रका सूक्ष्म-क्षेत्रफल $\sqrt{१०} \times (१०)^६ \times (६००)$ वर्ग योजन २४ गुणा है ।

उसी (जम्बूद्वीप) के सूक्ष्म क्षेत्रफलसे धातकीखण्डद्वीपका सूक्ष्म-क्षेत्रफल $\sqrt{10} \times (10)^4 \times (३६००)$ वर्ग योजन १४४ गुणा है। उसीके सूक्ष्मक्षेत्रफलसे कालोदधि समुद्रकी सूक्ष्म क्षेत्रफल $\sqrt{10} \times (10)^4 \times (१६८००)$ वर्ग योजन ६७२ गुणा है।

उसी (जम्बूद्वीप) के सूक्ष्मक्षेत्रफलसे पुष्करवर द्वीपका $\sqrt{10} \times (10)^4 \times (७२०००)$ वर्ग योजन सूक्ष्म क्षेत्रफल २८८० गुणा है।

खण्डशलाकाएँ—धातकीखण्ड द्वीपकी १४४ खण्ड शलाकाओंसे कालोदधिसमुद्रकी ६७२ खण्डशलाकाएँ ४ गुणी होकर ९६ अधिक हैं।

$$\text{यथा-} ६७२ = (१४४ \times ४) + ९६।$$

कालोदधि समुद्रकी ६७२ खण्डशलाकाओंसे पुष्करवरद्वीपकी २८८० खण्डशलाकाएँ ४ गुणी होकर ९६ $\times २$ अधिक हैं।

$$\text{यथा-} २८८० = (६७२ \times ४) + (९६ \times २)। \text{ इत्यादि।}$$

इसीप्रकार $\sqrt{10}$ के स्थान पर ३ रख देनेपर उपर्युक्त समस्त द्वीप-समुद्रोंके बादर क्षेत्रफल के लिए घटित हो जावेगा।

उपर्युक्त गरुित-प्रक्रियासे स्पष्ट हो जाता है कि अधस्तन द्वीप या समुद्रकी खण्डशलाकाओंसे अनन्तर उपरिम द्वीप या समुद्रकी खण्डशलाकाएँ चौगुनी हैं और इनके प्रक्षेप-भूत ९६ उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने होते गये हैं। इसीप्रकार स्वयम्भूरमण पर्यन्त जानना चाहिए।

स्वयम्भूरमणद्वीपकी खण्डशलाकाओंसे स्वयम्भूरमण-समुद्रकी खण्डशलाकाएँ कितनी अधिक हैं? उन्हें कहते हैं—

तत्थ अन्तिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—[सयंभूरमणदीव-खंड-सलागादो सयंभूरमणसमुद्रस्स खंड-सलागा] तिण्णि-सेढीओ सत्त-लक्ख-जोयणेहि भजिवाओ पुणो णव-जोयणेहि अब्भहियाओ होवि । तस्स ठवणा— ७००००० धण जोयणाणि ६ ॥

अर्थ—उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—(स्वयम्भूरमणद्वीपकी खण्ड-शलाकाओंसे स्वयम्भूरमणसमुद्रकी खण्डशलाकाएँ) सात लाख योजनोंसे भाजित तीन जगच्छ्रेणी और नौ योजनोंसे अधिक हैं। उसकी स्थापना इसप्रकार है—जगच्छ्रेणी $३ \div ७००००००$ यो० + ९ यो०।

तत्थ अविरेगस्स पमाणाणयणट्ठं इमा सुत्त-गाहा—

लक्खेण भजिद-सग-सग-वासं इगि-रूव-विरहिदं तेण ।

सग-सग-खंड-सलागं, भजिदे अविरेग - परिमाणं ॥२६४॥

अर्थ—उतमें (चौगुनीसे) अतिरिक्त प्रमाण लानेके लिए यह गाथा-सूत्र है—

एक लाखसे भाजित अपने-अपने विस्तारमेंसे एक रूप कम करके शेषका अपनी-अपनी खण्ड-शलाकाओंमें भाग देनेपर अतिरिक्त संख्याका प्रमाण आता है ॥ २६४ ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

अतिरिक्त खण्ड-शलाकाएँ अथवा प्रक्षेप

$$= \frac{\text{क्षेत्रकी निज खण्ड-शलाकाएँ}}{\text{निज विस्तार}} - १$$

उदाहरण—मानलो—कालोद समुद्रकी ४ गुणित खण्ड-शलाकाओंसे अतिरिक्त खण्ड-शलाकाओं (प्रक्षेप) का प्रमाण ज्ञात करना है । कालोद समुद्रका विस्तार ८ लाख यो० है । इसमें १ लाखका भाग देनेपर ८ प्राप्त होते हैं । ८ मेंसे एक घटाकर षो शेष बचे उसका कालोदकी खण्ड-शलाकाओंके प्रमाणमें भाग देनेपर प्रक्षेपका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$\text{प्रक्षेप} = \frac{\frac{६७२}{८०००००}}{\frac{१००००००}} - १ = \frac{६७२}{८} - १ = ९६ \text{ प्रक्षेप अथवा अतिरिक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।}$$

स्वयम्भूरमणद्वीपके क्षेत्रफलमें जम्बूद्वीप सदृश खण्डोंकी संख्या ।

अथवा जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे स्वयम्भूरमणद्वीप का क्षेत्रफल कितना गुना है ? उसका प्रमाण ।

गाथा २६३ से सम्बन्धित सूत्रानुसार ।

स्वयम्भूरमणद्वीपका बाहर क्षेत्रफल = $३ \times \frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५००$ यो० ।

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{३ \times \left(\frac{\text{जग०} + ३७५०० - १०००००}{५६} \right) \times ४ \times \left(\frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० \right)}{(१०००००)^२}$$

$$= \left(\frac{१}{१०} \right)^१० \left[३ \times ४ \left\{ \frac{\text{जग०}}{५६} \times \left(\frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० \right) - ६२५०० \times \left(\frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० \right) \right\} \right]$$

$$= \left(\frac{१}{१०} \right)^१० \left[३ \times ४ \left\{ \frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{५६ \times ५६} + \frac{\text{जग०} \times ३७५००}{५६} - \frac{\text{जग०} \times ६२५००}{५६} - ६२५०० \times ३७५०० \right\} \right]$$

$$\begin{aligned}
&= \frac{1}{(10)^{10}} [3 \times 4 \{ \frac{ज० \times ज०}{३१३६} + \frac{जग०}{५६} (३७५०० - ६२५००) - ६२५०० \times ३७५०० \}] \\
&= \frac{1}{(10)^{10}} [३ \times ४ \{ \frac{ज० \times ज०}{३१३६} - (\frac{जग०}{५६} \times २५०००) - ६२५०० \times ३७५०० \}] \\
&= \frac{1}{(10)^{10}} \times \frac{१२ \times ज० \times ज०}{३१३६} - (\frac{१२ \times ज० \times २५०००}{५६ \times (10)^{10}}) - (\frac{१२}{(10)^{10}} \times ६२५०० \times ३७५००) यो. \\
&= \frac{३}{७५४} \times \frac{जग० \times जग०}{(10)^{10}} - \frac{३ \times ४ \times जग० \times २५०००}{१४ \times ४ \times (१०००००) \times १०००००} - \frac{३ \times ४ \times ६२५०० \times ३७५००}{(१०००००) \times (१०००००)} यो. \\
&= ३ \times (\frac{जग० \times जग०}{७५४ \times (10)^{10}}) - \frac{३ जग०}{५६००००००} - \frac{४५}{१६} योजन ।
\end{aligned}$$

इन खण्डशलाकाओंको ४ से गुणित करके स्वयम्भूरमण-समुद्र की खण्ड-शलाकाओंमेंसे घटा देनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्र की प्रक्षेपभूत (अतिरिक्त) संख्या का प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

स्वयम्भूरमणसमुद्रकी खण्ड-शलाकाएँ—

$$\begin{aligned}
&= [(\frac{३ \times जग० \times जग०}{१९६ \times (10)^{10}}) + (\frac{३ जग०}{१४००००००}) - (\frac{६}{४} यो०)] - [स्वयम्भूरमण- द्वीप की \\
&खण्ड शलाकाएँ \times ४ = (\frac{३ \times ज० \times ज० \times ४}{७५४ \times (10)^{10}}) - \frac{३ ज० \times ४}{५६००००००} - \frac{४५ \times ४}{१६}] \\
&= (\frac{३ जग०}{१४००००००} + \frac{३ जग०}{१४००००००}) - (\frac{९}{४} यो० - \frac{४५}{४} यो०) \\
&= \frac{३ जग०}{७००००००} + ९ योजन । अथवा ७०००००० धरा जोयणाणि ९ ।
\end{aligned}$$

ग्यारहवाँ-पक्ष

ग्यारहवें-पक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं—

(१) अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी शलाकाओंसे उपरिम द्वीप या समुद्र की शलाका-वृद्धि चौगुनी से २४ अधिक है—

एवकारसप्त-पक्षे अप्यबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा-लवणसमुद्दस्स खंड-सलागाणं संखादो धावईसंड-दीवस्स खंड-सलागाणं वड्ढी धीमुत्तर-एवक-सएणअभहियं होदि १२० । लवणसमुद्दस्स-खंड-सलागाणं सम्मिलिद-धावईसंड-दीवस्स खंड-सलागाणं संखादो कालो-

दग समुद्रस्स खंड-सलागाणं सङ्घो चउरुत्तर-पंच-सएणवभहियं होदि ५०४ । एवं धादई-संडस्स वड्डि^१-प्पहुवि हेट्ठिम-दीव-उवहीणं समूहादो अणंतरोवरिम-दीवस्स वा रयणा-यरस्स वा खंड^२-सलागाणं वड्ढो चउगुणं चउवीस-रुवेहि अबभहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुदो त्ति ॥

अर्थ—ग्यारहवें-पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इसप्रकार है—लवणसमुद्र-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओं की संख्या से धातकीखण्ड-द्वीपकी खण्ड-शलाकाओं की वृद्धि का प्रमाण एक सौ बीस है १२० । लवणसमुद्र की खण्ड-शलाकाओं को मिलाकर धातकीखण्ड द्वीप-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओं की संख्यासे कालोदकसमुद्र-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी वृद्धि का प्रमाण पाँच सौ चार है ५०४ । इसप्रकार धातकीखण्डद्वीप-सम्बन्धी शलाका-वृद्धिसे प्रारम्भ कर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त अधस्तन द्वीप-समुद्रों के शलाका-समूह से अनन्तर उपरिम द्वीप अथवा समुद्र की खण्ड-शलाकाओं की वृद्धि चौगुनी और चौबीस संख्या से अधिक होती गई है ।

विशेषार्थ—लवणसमुद्र सम्बन्धी २४ खण्डशलाकाओं से धातकीखण्ड-द्वीप की १४४ खण्ड-शलाकाओं में वृद्धि का प्रमाण (१४४—२४=) १२० है । लवणसमुद्र और धातकीखण्ड द्वीप की सम्मिलित (२४+१४४=) १६८ खण्डशलाकाओं से कालोद समुद्र सम्बन्धी ६७२ खण्डशलाकाओं में वृद्धिका प्रमाण (६७२—१६८=) ५०४ है । जो ४ गुनी होकर २४ अधिक हैं । यथा—
 $५०४ = (१२० \times ४) + २४$ ।

इसप्रकार धातकी खण्डद्वीप सम्बन्धी शलाका वृद्धि से प्रारम्भ कर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त अधस्तन द्वीप-समुद्रों के शलाका-समूह से उपरिम द्वीप या समुद्र की शलाकाओं की वृद्धि ४ गुनी और २४ से अधिक होती गई है । यथा—पुष्करवर द्वीप की २८८० खण्ड-शलाकाओं में वृद्धि का प्रमाण $२०४० = [\{ (५०४) \times ४ \} + २४]$ है ।

अधस्तन द्वीप-समुद्रों के शलाका समूह से स्वयम्भूरमण समुद्र की शलाकाओं में वृद्धि का प्रमाण कितना है ?

तत्थ अंतिम-विषयं वत्तइस्सामो-सयंभूरमण-समुद्दादो हेट्ठिम-सव्व-दीव-रयणा-यराणं खंड-सलागाण-समूहं सयंभूरमण-समुद्दस्स खंड-सलागम्मि अवणिदे वड्डि-पमाणं केत्ति यमिदि भणिदे जगसेदोए वग्गं अट्ठाणउदि-सहस्स-कोडि-जोयणेहि भजिदं पुणो सत्त-सव्व-जोयणेहि भजिद-तिणिण-जग-सेदो-अवभहियं पुणो चोदस-कोसेहि परिहोणं होदि । तस्स ठवणा— ०००००००००००० धण जोयणाणि ०००००० रिण कोस १४ ।

अर्थ—स्वयम्भूरमण समुद्र से अधस्तन समस्त द्वीप-समुद्रोंके खण्ड-शलाका-समूहको स्वयम्भूरमणसमुद्रकी खण्ड-शलाकाओंमेंसे घटा देनेपर वृद्धिका प्रमाण कितना है ? ऐसा कहनेपर षट्ठानवै हजार करोड़ योजनोंसे भाजित जगच्छ्रेणीके वर्गसे अतिरिक्त सात लाख योजनोंसे भाजित तीन जगच्छ्रेणी अधिक तथा १४ कोस ^{१०} है । उसकी स्थापना इस प्रकार है—

$$= \frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{१८ \times (१०)^{१०}} + \frac{३ \text{ जग०}}{७००००० \text{ यो०}} = १४ \text{ कोस ।}$$

तच्चङ्खी-आणयण-हेदुमिमं गाहा-सुत्तं—

सक्खेण भजिद-अन्तिम-वासस्स^१ कदीए एग-रुक्कणं ।

अट्ठ^२-गुणं हिट्ठाणं, संकलणावो दु उवरिमे चङ्खी ॥२६५॥

अर्थ—इस वृद्धि-प्रमाणको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

एक लाखसे भाजित अन्तिम विस्तारका जो वर्ग हो उसमेंसे एक कम करके शेषको आठसे गुणा करने पर अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके शलाका-समूहसे उपरिम द्वीप एवं समुद्रकी खण्ड-शलाकाओंकी वृद्धिका प्रमाण आता है ॥२६५॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इस प्रकार है—

$$\text{वर्णित खण्ड-शलाका वृद्धि} = \left[\left(\frac{\text{अन्तिम विस्तार}}{१०००००} \right)^२ - १ \right] \times ८$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ वारुणीवर समुद्र द्रष्ट है । उसका विस्तार १२८ लाख योजन है ।

वारुणीवर समुद्रकी वर्णित खण्ड-शलाका वृद्धि—

$$= \left[\left(\frac{१२८०००००}{१०००००} \right)^२ - १ \right] \times ८$$

$$= (१६३८४ - १) \times ८$$

$$= १३१०६४ \text{ योजन ।}$$

इसीप्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र-सम्बन्धी—

$$\text{वर्णित खण्ड-शलाका वृद्धि} = \left[\left(\frac{\text{जग०}}{२८} + \frac{७५००० \text{ यो०}}{१०००००} \right)^२ - १ \right] \times ८$$

$$\begin{aligned}
&= \left[\left(\frac{\text{जग० च० ए०}}{२५०००००} + \frac{३}{४} \right)^२ - १ \right] \times ८ \\
&= \left(\frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{२५००००० \times २५०००००} \times ८ \right) + \left(\frac{९}{१६} \times ८ \right) + \left(\frac{२ \times ३ \times \text{जग०}}{२५००००० \times ४} \times ८ \right) - ८ \\
&= \frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{७००००० \times १४०००००} + \frac{९}{२} - ८ + \frac{३ \times \text{जग०}}{७००००० \text{ यो०}} \\
&= \frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{९८०००००००००००० \text{ यो०}} + \frac{३ \times \text{जग०}}{७००००० \text{ यो०}} - १४ \text{ कोम ।}
\end{aligned}$$

(२) इच्छित द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-शलाकाओंका पिंड-फल प्राप्त करनेकी विधि —

पुणो इट्टस्स दीवस्स वा समुद्रस्स वा हेट्ठिम-दीव-रयणायराणं मेलावणं भणमाणे^१ लवणसमुद्रस्स खंड-सलागादो लवणसमुद्र-संमिलित-धावईसंड-दीवस्स खंड-सलागाओ^२ सत्त - गुणं होदि । लवण-णीररासि-खंड-सलाग-संमिलित-धावईसंड-खंड-सलागाओ कालोदग-समुद्र-खंड-सलाग-संमिलित-हेट्ठिम-खंड-सलागाओ पंच-गुणं होदि । कालोदग-समुद्रस्स खंड-सलाग-संमिलित-हेट्ठिम-दीवोवहोणं खंड-सलागादो पोक्खरवर-दीव-खंड-सलाग-संमिलित-हेट्ठिम-दीव-रयणायराणं खंड-सलागा चउगुणं होऊण तिण्णि-सय-सट्ठि - रुवेहि अब्भहियं होदि । पोक्खरवरदीव खंड-सलाग-संमिलित-हेट्ठिम-दीव-रयणायराणं खंड-सलागादो पोक्खरवर-समुद्रस्स संमिलित-हेट्ठिम-दीवोवहोणं खंड-सलागा चउगुणं होऊण सत्त-सय-चउदाल-रुवेहि अब्भहियं होदि । एत्तो उवरिम-चउगुणं चउगुणं पक्खेय-सूव-सत्त-सय-चउदालं दुगुण-दुगुणं होऊण चउथीस-रुवेहि अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्रो सि ॥

अर्थ — पुनः द्रष्ट द्वीप अथवा समुद्रके अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-शलाकाओंका मिश्रित कथन करने पर लवण-समुद्रकी खण्ड-शलाकाओं से लवणसमुद्र-संमिलित धातकीखण्ड द्वीपकी खण्ड-शलाकाएँ सात-गुणी हैं । लवणसमुद्रकी खण्ड-शलाकाओंसे संमिलित धातकीखण्डद्वीप-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी अपेक्षा कालोदसमुद्रकी खण्डशलाकाओं सहित अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-शलाकाएँ पाँच-गुणी हैं । कालोदसमुद्रकी खण्ड-शलाका-संमिलित अधस्तन द्वीप-समुद्रों-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी अपेक्षा पुक्खरवरद्वीपकी खण्डशलाकाओं सहित अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-

शलाकाएँ चौगुनी होकर तीन सौ साठ अधिक हैं । पुष्करवरद्वीप की खण्ड-शलाकाओं सहित अधस्तन द्वीप-समुद्रों-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी अपेक्षा पुष्करवर-समुद्र-सम्मिलित अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्डशलाकाएँ चौगुनी होकर सात सौ चवालीस अधिक हैं । इससे ऊपर स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त चौगुनी-चौगुनी होनेके अतिरिक्त प्रक्षेप-भूत सात सौ चवालीस दुगुने-दुगुने और चौबीस अधिक होते गये हैं ।।

विशेषार्थ—इष्ट द्वीप अथवा समुद्रके अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-शलाकाओंका मिश्रित कथन किया जाता है । लवणसमुद्रकी खण्डशलाकाओं (२४) से लवणसमुद्र सहित धातकीखण्ड द्वीपकी खण्डशलाकाएँ ($२४ + १४४ = १६८$) सात गुनी ($२४ \times ७ = १६८$) हैं ।

लवणसमुद्र और धातकी खण्ड द्वीप सम्बन्धी सम्मिलित १६८ खण्ड-शलाकाओं में कालोद-समुद्रकी ६७२ खण्ड शलाकाएँ मिला देनेपर ($२४ + १४४ + ६७२ =$) ८४० खण्ड-शलाकाएँ प्राप्त होती हैं । जो लवणसमुद्र और धातकीखण्ड की सम्मिलित ($२४ + १४४ =$) १६८ खण्ड-शलाकाओं से ५ गुनी ($१६८ \times ५ = ८४०$) हैं ।

पुष्करवरद्वीपसे अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित ($२४ + १४४ + ६७२ =$) ८४० खण्ड-शलाकाओं में पुष्करवर द्वीप की २८८० खण्ड-शलाकाओं में मिला देनेपर ($८४० + २८८०$) $= ३७२०$ खण्ड-शलाकाएँ होती हैं; जो अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित ८४० खण्ड-शलाकाओं की अपेक्षा ३६० अधिक ४ गुनी हैं । यथा—(८४०×४) $+ ३६० = ३७२०$ ।

पुष्करवर समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रों की सम्मिलित ($२४ + १४४ + ६७२ + २८८० =$) ३७२० खण्ड-शलाकाओंमें पुष्करवरसमुद्रकी ११९०४ खण्ड-शलाकाएँ मिला देनेपर पुष्करवरसमुद्र पर्यन्तकी सम्मिलित खण्ड-शलाकाएँ ($३७२० + ११९०४ =$) १५६२४ हैं । जो अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित ३७२० खण्डशलाकाओंकी अपेक्षा ७४४ अधिक ४ गुनी हैं । यथा—(३७२०×४) $+ ७४४ = १५६२४$ ।

इससे ऊपर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त ४ गुना-४ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत खण्ड-शलाकाएँ २४ अधिक ७४४ की दुगुनी-दुगुनी होती चली गई हैं । यथा—

वारुणीवर द्वीपसे अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित ($२४ + १४४ + ६७२ + २८८० + ११९०४ =$) १५६२४ खण्ड-शलाकाओंमें वारुणीवर द्वीपकी ४८३८४ खण्डशलाकाएँ मिला देनेपर वारुणीवरद्वीप पर्यन्त की सम्मिलित खण्डशलाकाएँ ($१५६२४ + ४८३८४ =$) ६४००८ हैं । जो अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित १५६२४ खण्डशलाकाओंकी अपेक्षा ४ गुनी होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत शलाकाएँ २४ अधिक ७४४ की दुगुनी हैं । यथा—

$$६४००० = [(१५६२४ \times ४) + (७४४ \times २) + २४]$$

तव्वड्ढो-आणयण-हेवुमिमं गाहा-सुत्तं—

अन्तिम-विवलंभद्धं, लवखूणं लवख-होण-वास-गुरां ।

पण-घण-कोडोहि हिबं, इट्ठावो हेट्ठिमाण पिण्ड-फलं ॥२६६॥

अर्थ—इस वृद्धि को प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अन्तिम विस्तारके अर्ध भागमेंसे एक लाख कम करके शेष को एक लाख कम विस्तार से गुणा करके प्राप्त राशिमें पाँचके घन अर्थात् एक सौ पच्चीस करोड़ का भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना इच्छित द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रों का पिण्डफल होता है ॥२६६॥

गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

दृष्ट द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रका पिण्डफल—

$$= \left(\frac{\text{अन्तिम विस्तार}}{२} - १००००० \right) \times \left(\frac{\text{अन्तिम विस्तार} - १०००००}{१२५०००००००} \right)$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ क्षीरवर द्वीप दृष्ट है । जिसका विस्तार २५६ लाख योजन प्रमाण है ।

क्षीरवर द्वीपसे अधस्तन (जम्बूद्वीपसे वास्तीवर समुद्र पर्यन्त) द्वीप - समुद्रका पिण्डफल—

$$\text{पिण्डफल} = \left(\frac{२५६००००००}{२} - १००००० \right) \times \left(\frac{२५६०००००० - १०००००}{१२५००००००००} \right)$$

$$= \frac{१२७०००००० \times २५५०००००}{१२५००००००००} = २५६०५० \text{ योजन ।}$$

साविरेय-पमाणाणयणद्धं इमं गाहा-सुत्तं—

दो-लवखेहि विभाजिव-सग-सग-वासम्मि लद्ध-रुवेहि ।

सग-सग-खंडसलागं, भजिवे अदिरेग - परिमाणं ॥२६७॥

अर्थ :—अतिरिक्त प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अपने-अपने विस्तारमें दो लाखका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसका अपनी-अपनी छण्डशलाकाओं में भाग देनेपर अतिरेकका प्रमाण आता है ॥ २६७ ॥

विशेषार्थ :—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित अतिरेक} = \frac{\text{निज खण्डशलाकाएँ}}{\text{निज विस्तार}} \\ \frac{७८३३६०}{२०००००}$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ क्षीरवर द्वीप इष्ट है । जिसका विस्तार २५६००००० योजन है और खण्डशलाकाएँ ७८३३६० हैं ।

$$\text{वर्णित अतिरेक} = \frac{७८३३६०}{२५६०००००} \\ \frac{७८३३६०}{२०००००}$$

$$= \frac{७८३३६०}{१२८} = ६१२० ।$$

बारहवाँ—पक्ष

जम्बूद्वीपको छोड़कर समुद्रसे द्वीप और द्वीपसे समुद्रका विष्कम्भ

दुगुना एवं आयाम दुगुनेसे १ लाख योजन अधिक है—

बारसप्त-पक्षे अप्पबहुलं वसइस्सामो । तं जहा-जाव जंबूद्वीपमवणिज्ज लवण-समुद्दस्स विक्खंभं वेणिण-लक्खं आयामं णव-लक्खं, धादईसंड-दीवस्स विक्खंभं चत्तारि-लक्खं आयामं सत्तावीस-लक्खं, कालोदगसमुद्दस्स विक्खंभं अट्ठ-लक्खं आयामं तेसट्ठि-लक्खं, एवं समुदादो दीवस्स दीवादो समुद्दस्स विक्खंभादो विक्खंभं दुगुणं आयामादो आयामं दुगुणं णव-लक्खेहि प्रव्वहियं होऊण मच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्दो सि ॥

अर्थ—बारहवें पक्षमें अप्पबहुल कहते हैं । वह इसप्रकार है—जम्बूद्वीपको छोड़कर लवणसमुद्र का विस्तार दो लाख यो० और आयाम ती लाख योजन है । धातकीखण्डका विस्तार चार लाख यो० और आयाम सत्ताईस लाख योजन है । कालोदसमुद्र का विस्तार आठ लाख यो० और आयाम तिरेसठ लाख योजन है । इसप्रकार समुद्रसे द्वीपका और द्वीपसे समुद्रका विस्तार दुगुना तथा आयामसे आयाम दुगुना और ती लाख अधिक होकर स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त चला गया है ॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपको छोड़कर लवणसमुद्रका विस्तार २ लाख योजन है और आयाम १००००० योजन है ।

इसी अधिकारकी गाथा २४४ के अनुसार—

आयाम निकालनेकी विधि :—इच्छित क्षेत्रके विस्तारमेंसे एक लाख कम करके शेषको नौसे गुणा करने पर इच्छित द्वीप या समुद्रका आयाम होता है । तदनुसार लवणसमुद्रका आयाम (२ लाख — १ लाख) $\times ९ = ९$ लाख योजन है ।

धातकीखण्डद्वीपका विस्तार ४ लाख योजन है और आयाम (४ लाख यो० — १ लाख) $\times ९ = २७$ लाख योजन है ।

कालोद समुद्र का विस्तार ८ लाख योजन है और आयाम (८ लाख यो० — १ लाख) $\times ९ = ६३$ लाख यो० है ।

इसीप्रकार समुद्रसे द्वीपका और द्वीपसे समुद्रका विस्तार दुगुना तथा आयाम से आयाम दुगुना और ९ लाख योजन अधिक होकर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चला जाता है ।

अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल चौगुना तथा प्रक्षेप ७२००० करोड़ योजन है—

लवणसमुद्रस्स खेत्तफलादो धादईसंडस्स खेत्तफलं छग्गुणं, धादईसंडदीवस्स खेत्तफलादो कालोदसमुद्रस्स खेत्तफलं चउग्गुणं बाहत्तरि-सहस्स-कोटि-जोयणेहि अब्भहिं होदि । खेत्तफलं ७२००००००००००० । एवं हेट्ठिम-दीवस्स वा नीररासिस्स वा खेत्तफलादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा खेत्तफलं चउग्गुणं पक्खेवभूद-बाहत्तरि-सहस्स-कोटि-जोयणारिण दुग्गुण-दुग्गुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्रो ति ॥

अर्थ—लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे धातकीखण्डका क्षेत्रफल छह-गुणा और धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे कालोदसमुद्रका क्षेत्रफल चौगुना एवं बहत्तर हजार करोड़ योजन अधिक है—७२००००००००००० । इसप्रकार अधस्तन द्वीप अथवा समुद्रके क्षेत्रफलसे तदनन्तर उपरिम द्वीप अथवा समुद्र का क्षेत्रफल चौगुना और प्रक्षेपभूत बहत्तर हजार करोड़ योजन स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त दुगुने होते गये हैं ॥

विशेषार्थ—गा० २४३ के अनुसार जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल $३ \times (५००००)^२$ या ७५००००००००० वर्ग योजन है अतः अन्य द्वीप-समुद्रोंके क्षेत्रफलमें जम्बूद्वीप सदृश जो खण्ड हुए हैं उनमेंसे प्रत्येक खण्डका प्रमाण ७५० करोड़ वर्ग योजन है ।

लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे धातकीखण्डद्वीपका क्षेत्रफल ६ गुना अर्थात् (लवण० की खण्ड-शलाकाएँ २४ हैं अतः) $२४ \times ६ = १४४$ है । धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे कालोदक-समुद्रका क्षेत्रफल ९६ से अधिक ४ गुना है । अर्थात् $६७२ = (१४४ \times ४) + ९६$ खण्डशलाकाएँ हैं ।

जब एक खण्डशलाका का प्रमाण ७५० करोड़ वर्ग योजन है तब ६६ खण्डशलाकाओं का क्या प्रमाण होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर उपर्युक्त (७५० करोड़ $\times$ ९६ =) ७२००० करोड़ वर्ग योजन अतिरेक रूपमें प्राप्त होते हैं ।

इसप्रकार अधस्तान द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे तदनन्तर उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल ४ गुना और प्रक्षेपभूत ७२००००००००० वर्ग योजन दुगुना-दुगुना होता हुआ स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चला गया है ।

स्वयम्भूरमण द्वीप का विस्तार, आयाम एवं क्षेत्रफल—

तस्य अन्तिम-विषयं वत्तद्वस्सामो-सयम्भूरमण-दीवस्स विक्खंभं छप्पण-रुवेहि भजिव-जगसेदी पुणो सत्त-तीस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि अब्भहियं होदि । तस्स ठवणा-
५६ । धण जोयणाणि ३७५०० ।

आयामं पुण छप्पण-रुवेहि हिव-एव-जगसेदीओ पुणो पंच-लक्ख-वासट्ठि-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा ५६ । रिण जोयणाणि ५६२५०० ।

पुणो विक्खंभायामं परोप्पर-गुणिदे खेत्तफलं रज्जुवे कदि एव-रुवेहि गुणिय चउसट्ठि-रुवेहि भजिवमेत्तं किच्चूणं होदि । तस्स किच्चूणं पमाणं रज्जु ठविय अट्ठाधीस-सहस्स-एक-सय-पंच-वीस-रुवेहि गुणिदमेत्तं पुणो पण्णास-सहस्स-सत्त^१-तीस-लक्ख-एव-कोटि-अब्भहिय-दीणि-सहस्स-एक-सय-कोटि-जोयणमेत्तं होदि । तस्स ठवणा^२ ५६ । रिण ७ । २८१२५ रिण जोयणाणि २१०६३७५०००० ॥

अर्थ—इनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-द्वीपका विस्तार छप्पनसे भाजित जगच्छेणी प्रमाण और सैंतीस हजार पाँच सौ योजन अधिक है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

जग०
५६ + ३७५०० योजन ।

स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम छप्पनसे भाजित नी जगच्छेणियोंमेंसे पाँच लाख बासठ हजार पाँचसौ योजन कम है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

जग० ९
५६ — ५६२५०० योजन ।

इस विस्तार और आयामको परस्पर गुणित करने पर स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके चौंसठका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उससे कुछ कम होता है। इस किञ्चित् कमका प्रमाण राजूको स्थापित करके अट्ठाईस हजार एक सौ पच्चीससे गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उतना और दो हजार एकसौ नौ करोड़ सैंतीस लाख पचास हजार वर्ग योजन प्रमाण है। इसकी स्थापना इसप्रकार है—

$$\text{राजू} \times \text{राजू} \times \frac{1}{4} = (1 \text{ राजू} \times २८१२५ \text{ यो०} + २१०९३७५००००) \parallel$$

$$\text{विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका विस्तार} = \frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० \text{ योजन}$$

अर्थात् $\frac{1}{2}$ राजू + ३७५०० योजन है।

स्वयम्भूरमण द्वीपका आयाम =

$$= (\text{द्वीपका विस्तार} - १०००००) \times ९$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० - १००००० \right) \times ९$$

$$= \left(\frac{\text{जग०} \times ९}{५६} \right) - ५६२५०० \text{ योजन या } \frac{1}{2} \text{ राजू} - ५६२५०० \text{ यो०} \parallel$$

स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल—

इस द्वीपके विस्तार और आयाम को परस्पर गुणित करनेसे स्वयम्भूरमण द्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको ९ से गुणित कर ६४ का भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उससे कुछ कम होता है। यथा—

कुछ कम स्वयं० द्वीपका क्षेत्रफल = विस्तार $\times$ आयाम।

$$= \left(\frac{1}{2} \text{ राजू} + ३७५०० \text{ यो०} \right) \times \left(\frac{1}{2} \text{ राजू} - ५६२५०० \text{ यो०} \right)$$

$$= \frac{1}{4} \times (\text{राजू})^2 + \text{राजू} (- ५६२५०० + २ \times ३७५००) - ३७५०० \times ५६२५००$$

$$= \frac{1}{4} (\text{राजू})^2 - ३३५००० \text{ राजू} - २१०९३७५००००० \text{ वर्ग योजन} \parallel$$

स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल $\frac{1}{4} (\text{राजू})^2$ से कुछ कम कहा गया है। इस किञ्चित् कमका प्रमाण—

$$- २८१२५ \text{ राजू} - २१०९३७५००००० \text{ वर्ग योजन है।}$$

इसकी स्थापना इसप्रकार है—

$$\frac{1}{4} \parallel \frac{1}{4} \parallel \text{रिण } \frac{1}{4} \parallel २८१२५ \text{ रिण जोयणाणि } २१०९३७५००००० \parallel$$

स्वयम्भूरमणसमुद्रके विष्कम्भ, आयाम और क्षेत्रफलका प्रमाण—

सयम्भूरमणसमुद्रस्स विक्खंभं अट्ठावीस-रुवेहि भजिद-जगसेढी पुणो पंचहत्तरि-
सहस्स-जोयणेहि अब्भहिणं होदि । आयामं सट्ठतीस-रुवेहि भजिद-णव-जगसेढी पुणो
दोण्णि-लक्ख-पंचवीस-सहस्स-जोयणेहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा—२८ धण
७५००० । आयाम २४ रिण २२५००० ।

क्षेत्रफल रज्जूए कदी णव-रुवेहि गुणिय सोलस-रुवेहि भजिदमेत्तं पुणो रज्जू
ठविय एक्क-लक्ख-बारस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि गुणिय-किचूणिय-कदिमेत्तेहि अब्भहियं
होदि । तं किचूण-पमाणं पण्णास-लक्ख-सत्तासीदि-कोडि-अब्भहिय-छस्सय-एक्क-सहस्स-
कोडि-जोयणमेत्तं होदि ।

तस्स ठवणा— $\frac{२८}{१६}$ । $\frac{१६}{१६}$ । धण ७ । ११२५०० । रिण १६८७५०००००० ।

अर्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार अट्ठाईससे भाजित जगच्छेणी और पचहत्तर हजार
योजन अधिक है तथा आयाम अट्ठाईससे भाजित नौ जगच्छेणीमेंसे दो लाख पच्चीस हजार योजन
कम है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—विस्तार = $\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५०००$ योजन ।

आयाम = $\frac{\text{जग०}}{२८} - २२५०००$ योजन ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नीसे गुणा करके प्राप्त राशिमें सोलहका
भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना और राजूको स्थापित करके एक लाख बारह हजार पाँच सौ
योजनसे गुणित लब्धमेंसे कुछ कम करके जो शेष रहे उससे अधिक है । इस किञ्चित् कमका प्रमाण
एक हजार छह सौ सतासी करोड़ पचास लाख योजन है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$[(\text{राजू})^२ \times ९ \div १६] + (\text{राजू } १ \times ११२५०० \text{ यो०}) = १६८७५०००००० ।$

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमण समुद्रका विस्तार = $\frac{\text{जगच्छेणी}}{२८} + ७५०००$ योजन ।

= $\frac{३}{४}$ राजू + ७५००० योजन ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका आयाम = (विस्तार — १०००००) × ९

= $[\frac{३}{४} \text{ राजू} + ७५००० - १०००००] \times ९$

= $\frac{३}{४}$ राजू — २२५००० योजन ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल = (विस्तार × आयाम)

= ($\frac{1}{2}$ राजू + ७५००० योज) × ($\frac{1}{2}$ राजू — २२५००० योजन ।

= $\frac{1}{4}$ (राजू)^२ + राजू [$\frac{1}{2}$ × (— २२५०००) + ($\frac{1}{2}$ × ७५०००)] — ७५००० × २२५००० योज ।

= $\frac{1}{4}$ × (राजू)^२ + राजू (— ५६२५० + १६८७५०) — १६८७५०००००० ।

= $\frac{1}{4}$ × (राजू)^२ + (११२५००) राजू — १६८७५००००००० बर्ग योजन ।

गोलाकार क्षेत्रका क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधि—

एवं दीवोदहीणं विखलंभायाम-क्षेत्रफलं च परुवण-हेकुमिमं गाहा-सुत्तं—

लख-विहीणं रुदं, णवहि गुणं इच्छियस्स बोहसं ।

तं क्षेत्र य रुद - गुणं, क्षेत्रफलं होवि बलयाणं^१ ॥२६८॥

अर्थ—इसप्रकार द्वीप-समुद्रके विस्तार, आयाम और क्षेत्रफलके निरूपण हेतु यह गाथा सूत्र है—

एक लाख कम विस्तारको नौसे गुणा करनेपर इच्छित द्वीप या समुद्रकी लम्बाई होती है । इस लम्बाईको विस्तारसे गुणा करनेपर गोलाकार क्षेत्रोंका क्षेत्रफल होता है ॥ २६८ ॥

उदाहरण—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या समुद्रका आयाम (लम्बाई) = (विस्तार — १०००००) × ९

इष्ट द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल = लम्बाई (आयाम) × विस्तार

मानलो—यहाँ नन्दीश्वर द्वीप इष्ट है, जिसका विस्तार १६३८४००००० योजन है ।

नन्दीश्वरद्वीपका आयाम = (१६३८४००००० — १०००००) × ९

= १४७४४७००००० योजन ।

नन्दीश्वरद्वीपका क्षेत्रफल = १४७४४७००००० × १६३८४००००० ।

= २४१५७७१६४८०००००००००० बर्ग योजन ।

अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलकी सातिरेकताका प्रमाण—

हेट्टिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा खेत्तफलादो उवरिम-दीवस्स वा तरंगिणी-
णाहस्स वा खेत्तफलस्स साविरेयत्त-परुवण-हेट्टुमिमा गाहा-सुत्तं—

कालोदगोवहीदो, उवरिम-दीवोवहीण पत्तेक्कं ।

रुंदं णव-लक्ख-गुणं, परिवड्ढी होदि उवरुवरि ॥२६६॥

अर्थ—अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलकी सातिरेकता के निरूपण हेतु यह गाथा-सूत्र है—

कालोदसमुद्रसे उपरिम द्वीप-समुद्रोंमेंसे प्रत्येकके विस्तारको नौ लाखसे गुणा करनेपर ऊपर-ऊपर वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ २६९ ॥

विशेषार्थ—कालोद समुद्रके बाद अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल चार-चार गुना होता गया है श्रीर प्रक्षेप (७२००० करोड़) दूना-दूना होता गया है । उपर्युक्त गाथा द्वारा प्रक्षेप (सातिरेक) का प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि दर्शाई गई है । यथा—

गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

वरिणत्त ऊपर-ऊपर वृद्धि = (कालोदसे ऊपर इष्ट द्वीप या स० का विस्तार) × ९

मानलो—नन्दीश्वर समुद्रके प्रक्षेप (सातिरेक) का प्रमाण इष्ट है । इससे अधस्तन स्थित नन्दीश्वर द्वीपका विस्तार १६३८४ लाख योजन है अतः—

$१६३८४००००० \times ९००००० = १४७४५६००००००००००$ योजन है जो ७२००० करोड़ योजनोंका दूना होता हुआ २०४८ गुना है

यथा— $७२००० \text{ करोड़} \times २०४८ = १४७४५६००००००००००$ ।

तेरहर्वा—पक्ष

अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके पिण्डफल एवं प्रक्षेपभूत क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल कितना होता है ? उसे कहते हैं—

तेरसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामोज्ज्वलीवस्स खेत्तफलादो लवणभीरघिस्स खेत्तफलं चउवीस'-गुणं । जंबूद्वीव-सहिय-लवणसमुद्दस्सखेत्तफलादो धादईसंडीवस्स खेत्त-

फलं पंच-गुणं होऊण चोदस-सहस्स बे-सय-पण्णास-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होवि १४२५०००००००० । जम्बूद्वीप-लवणसमुद्-सहिय-धावईसंडदीवस्स खेतफलादो कालोदग-समुद्दस्स खेतफलं तिगुणं होऊण एय-लक्ख-तेवीस-सहस्स-सत्तसय-पण्णास-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होवि । तस्स ठवणा—१२३७५०००००००० । एवं कालोदग-समुद्-पहुदि-हेट्ठिम-दीव-रयणायराणं पिड-फलादो उवरिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा खेतफलं पत्तेयं तिगुणं पक्खेवभूद-एय-लक्ख-तेवीस-सहस्स-सत्तसय-पण्णास-कोडि-जोयणारिण कमसो दुगुण-दुगुणं होऊण बीस-सहस्स-दु-सय-पण्णास-कोडि-जोयणेहि पमाणं २०२५००००००००० अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्धो त्ति ॥

अर्थ—तेरहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे लवणसमुद्रका क्षेत्रफल चौबीस (२४) गुना है । जम्बूद्वीप सहित लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे धातकीखण्डद्वीपका क्षेत्रफल पाँच-गुना होकर चौदह हजार दो सौ पचास करोड़ योजन अधिक है—१४२५००००००००० । जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे युक्त धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे कालोदसमुद्रका क्षेत्रफल तिगुना होकर एक-लाख तेईस हजार सात सौ पचास करोड़ योजन अधिक है । उसकी स्थापना—१२३७५००००००००० । इसप्रकार कालोदसमुद्र आदि अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके पिण्डफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल प्रत्येक तिगुना होनेके साथ प्रक्षेपभूत एक लाख तेईस हजार सात सौ पचास करोड़ योजन क्रमसे दुगुने-दुगुने होकर बीस हजार दो सौ पचास करोड़ योजन २०२५००००००००० अधिक होता हुआ स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त चला गया है ॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल १ खण्ड-शलाका और लवणसमुद्रका क्षेत्रफल २४ खण्ड शलाका स्वरूप है । जम्बूद्वीप सहित लवणसमुद्रके (१ + २४ = २५ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफलसे धातकीखण्डद्वीपका (१४४ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफल ५ गुना होकर १९ खण्ड-शलाका प्रमाण वर्ग योजनसे अधिक है । यथा—

$$(२५ \times ५) + १९ = १४४ ।$$

एक खण्डशलाका $३ \times (५००००)^२$ अथवा $७५ \times (१०)^६$ वर्ग योजन प्रमाण होती है अतः १९ खण्डशलाकाओंके [$१९ \times ३ (५००००)^२$ या $५७ \times २५ \times (१०)^६ =$] १४२५००००००००० वर्ग योजन प्राप्त हुए ।

धातकी खण्डका प्रक्षेपभूत (अधिक धनका) यही प्रमाण ऊपर कहा गया है ।

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र और घातकीखण्डके सम्मिलित ($१ + २४ + १४४ = १६९$ खण्ड-शलाका स्वरूप) क्षेत्रफलसे कालोदका (६७२ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफल ३ गुना ($१६९ \times ३ = ५०७$) होकर ($६७२ - ५०७ =$) १६५ खण्डशलाका प्रमाण वर्ग योजनसे अधिक है ।

$$\text{यथा—} ६७२ = (१६९ \times ३) + १६५ ।$$

एक खण्डशलाका $७५ \times (१०)^६$ वर्ग योजन प्रमाण है अतः १६५ खण्डशलाकाओंका प्रमाण $१६५ \times ७५ \times (१०)^६ = १२३७५००००००००$ वर्ग योजन है । कालोदधिका प्रक्षेपभूत (अधिक धनका) यही प्रमाण ऊपर कहा गया है ।

इसप्रकार अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके पिण्डफलसे कालोदका क्षेत्रफल $= ६७२$ खण्ड० $= (१ + २४ + १४४) \times ३$ खण्ड० $+ १२३७५००००००००$ वर्ग यो० है ।

मानलो—यहाँ पुष्करवरद्वीपकी प्रक्षेप वृद्धि प्राप्त करना इष्ट है । जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, घातकीखण्डद्वीप और कालोदसमुद्रके सम्मिलित ($१ + २४ + १४४ + ६७२ = ८४१$ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका (२८८० खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफल तिगुना ($८४१ \times ३ = २५२३$) होकर ($२८८० - २५२३ =$) ३५७ खण्डशलाका प्रमाण वर्ग योजनोंसे अधिक है ।
यथा—

$$२८८० = (८४१ \times ३) + ३५७ ।$$

एक खण्डशलाका $७५ \times (१०)^६$ वर्ग योजन प्रमाण है अतः ३५७ खण्डशलाकाओंका प्रमाण ($३५७ \times ७५ \times (१०)^६$) $= २६७७५००००००००$ वर्ग योजन प्राप्त होता है । यही पुष्करवर द्वीपका प्रक्षेपभूत (अधिक धन) क्षेत्र है । जो कालोदधिके प्रक्षेपभूत क्षेत्रके दुगुनेसे २०२५०००००००० वर्ग यो० अधिक है । इसका सूत्र पु० द्वीपका प्रक्षेप० क्षेत्र $= (\text{कालोदधिका प्रक्षेप} \times २) + २०२५ \times (१०)^६$ । $२६७७५ \times (१०)^६ = (१२३७५०००००००० \times २) + २०२५००००००००$ ।

कालोदधि समुद्रके ऊपर द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधिमें दो नियम निर्णीत हैं—

१. अधस्तन द्वीप-समुद्रके पिण्डफल क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप-समुद्रका पिण्डफल क्षेत्रफल नियमसे तिगुना होता हुआ अन्त-पर्यन्त जाता है ।

२. अधस्तन द्वीप या समुद्रके प्रक्षेप [$१२३७५ \times (१०)^६$] से उपरिम द्वीप या समुद्रका प्रक्षेप नियमसे दुगुना होता हुआ अन्त पर्यन्त जाता है ।

अब यहाँ प्रश्नोपके ऊपर जो २०२५ (१०)६ अधिक घन कहा गया है वह ऊपर-ऊपर किस विधिसे प्राप्त होता है ? उसे दर्शाते हैं—

कालोद समुद्रके प्रक्षेपसे पुष्करवर द्वीपका प्रक्षेपभूत दुगुनेसे $2025 (10)^6$ वर्ग योजन अधिक है। इस $2025 \times (10)^6$ वर्ग योजन अधिककी १ शलाका मानकर उपरिम द्वीप या समुद्रका यह अधिक धन अवस्थान द्वीप-समुद्रकी शलाकासे १ अधिक दुगुना है। इसका सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या स० का अधिक धन = $[(\text{अवस्तन द्वीप या स० की खण्ड श०} \times 2) + 1] \times 2025 \times (10)^n$ ।

पुष्करवर समुद्रका अधिकृत धन = [(१ × २) + १] × २०२५००००००००० ।

$$= 3 \times [2025 \times (10)^6 = 60750000000 \text{ वर्ग योजन है।}$$

अर्थात् पु० स० का अधिक धन = (प्रक्षेप युक्त अधिक धन) — (प्रक्षेप × ४)

पु० समुद्रका अ० धन $६०७५ \times (१०)^८ = [५५५७५ \times (१०)^८] - [१२३७५ \times (१०)^८]$
 ×४ |

$$\text{वारुणीवर द्वीपका अधिक धन} = [(३ \times २) + १] \times २०२५ \times (१०)^०$$

$$= 1416500000000 = [6 \times 20250000000] \text{ वर्ग योजन ।}$$

इसीप्रकार आगे भी जानना चाहिए ।

जम्बूद्वीप और स्वयम्भूरमणसमुद्रके मध्य स्थित समस्त द्वीप-समुद्रोंके क्षेत्रफलका प्रमाण—

तत्थ अंतिस-वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंसूरमण-समुद्दस्स हेट्ठिम-दीध-उधहाओ
सब्बाओ जंबूवीध-विरहिदाओ ताणं खेत्तफलं रज्ज्जूवे कदी ति-गुणिय सोलसेहि भजिवमेत्तं,
पुणो णध-सय-सत्तत्तोस-कोडि-प्पण्णास-लक्ख-जोयणेहि अकभहियं होवि । पुणो एक-लक्ख-
वारस^१-सहस्स पंच-सय-जोयणेहि गुणिद-रज्ज्जूए हीणं होवि । तस्स ठवणा—

²⁄₄₆ । ³⁄₄₆ भ्रण जोयणाणि ६३७५०००००० रिण-रज्जूओ ७ । ११२५०० ।

अर्थ— इसमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-समुद्रके नीचे जम्बूद्वीपको छोड़कर जितने द्वीप-समुद्र हैं उन सबका क्षेत्रफल राजाके बर्गको तिगुना करके सोलहका भाग देनेपर जो लब्ध

क्षेत्रफल =

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० - १००००० \right) \times \left[\left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० - १००००० \right) \times ९ - ९००००० \right] \div ३$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left[\left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times ९ - ९००००० \right] \div ३$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left[\left(\frac{९ \text{ जग०}}{२८} - २२५००० \right) - ९००००० \right] \div ३$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left(\frac{९ \text{ जग०}}{२८} - ११२५००० \right) \div ३$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left(\frac{९ \text{ जग०}}{२८} - \frac{११२५०००}{३} \right)$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left(\frac{३ \text{ जग०}}{२८} - ३७५००० \right)$$

$$= \frac{३ \times (\text{जग०})^२}{(२८)^२} - \frac{\text{जग०}}{२८} \times (३७५००० + ७५०००) \text{ यो०} + २५००० \times$$

३७५००० वर्ग योजन ।

$$= \frac{३ \times (\text{जग०})^२}{(२८)^२} - \frac{\text{जग०}}{७ \times ४} \times (४५००००) \text{ यो०} + ९३७५००००००० \text{ वर्ग यो० ।}$$

$$= \frac{३ \text{ जग०}}{७ \times ४} \times \frac{\text{जग०}}{७ \times ४} - \frac{\text{जग०}}{७} \times (११२५००) \text{ यो०} + ९३७५००००००० \text{ वर्ग यो० ।}$$

$$= \frac{३ (\text{राजू०})^२}{१६} + (९३७५०००००००) \text{ वर्ग यो०} - (\text{राजू०} \times ११२५०० \text{ यो०}) ।$$

$$= \frac{३}{४} \times \frac{३}{४} + ९३७५००००००० - ७ \times ११२५०० ।$$

साविरेयस्स आणयणद्धं गाहा-सुत्तं—

इच्छिद्य-वासं कुगुणं, दो-लक्खणं ति-लक्ख-संगुणियं ।

जंघुदीध - फलूणं, सेसं तिगुणं हवेदि अबिरेमं ॥२७१॥

अर्थ—सातिरेकका प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

इच्छित द्वीप या समुद्रके दुगुने विस्तारमेंसे दो लाख कम करके शेष को तीन लाखसे गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसमेंसे जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलको कम करके शेषको तिगुना करने पर अतिरेक (प्रक्षेपभूत) का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ २७१ ॥

गाथानुसार सूत्र इस प्रकार है—

$$\text{वर्णित अतिरेक प्रमाण} = ३ [\{ २ \times \text{इष्ट द्वीप या स० का विस्तार} - २००००० \} \times (३०००००) - ३ \times (१०००००)^२]$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ पुष्करवर समुद्र इष्ट है । जिसका विस्तार ३२००००० लाख योजन है । इसका प्रक्षेपभूत—

$$\text{अतिरेक प्रमाण} = ३ [\{ २ \times ३२००००० - २००००० \} \times ३००००० - ३ \times २५००००००]$$

$$= ३ [६२००००० \times ३००००० - ७५००००००]$$

$$= ३ \times [१८५२५००००००००] = ५५५७५००००००००० \text{ वर्ग योजन ।}$$

अर्थात् पुष्करवर द्वीपके क्षेत्रफलको तिगुनाकर ५५५७५ × (१०)^८ जोड़ देनेसे पुष्करवर समुद्रका क्षेत्रफल प्राप्त होता है ।

चौबहवाँ—पक्ष

अधस्तन समुद्रके विष्कम्भ और आयामसे उपरिम समुद्रका विष्कम्भ और आयाम

कितना अधिक होता हुआ गया है ? उसे कहते हैं—

चोदसम-पक्षे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—लवणसमुद्दस्स विक्खंभं वेण्णि-लक्खं २०००००, आयामं णव-लक्खं ६००००० । कालोवगसमुद्द-विक्खंभं अट्ठ-लक्खं ८०००००, आयामं तेसट्ठि - लक्खं ६३००००० । पोक्खरवरसमुद्दस्स विक्खंभं वत्तीस - लक्खं ३२०००००, आयामं एऊणसीवि-लक्खेणढभहिय-वे-कोडीओ होइ २७६००००० । एवं हेट्ठिम-समुद्द-विक्खंभादो उवरिम-समुद्दस्स विक्कंभं चउग्गुणं, आयामादो आयामं चउग्गुणं सत्तावीस-लक्खेहि अम्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्दो ति ॥

अर्थ—चौदहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रका विस्तार दो लाख योजन और आयाम नौ लाख योजन है । कालोदक समुद्रका विस्तार आठ लाख योजन और आयाम निरैमठ लाख ६३००००० योजन है । पुष्करवरसमुद्रका विस्तार ३२ लाख योजन और आयाम दो करोड़ उन्चासी लाख २७६००००० योजन है । इसप्रकार अधस्तन समुद्रके विष्कम्भसे उपरिम समुद्रका विष्कम्भ चौगुना तथा आयाम से आयाम चौगुना और २७ लाख योजन अधिक होकर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चला गया है ।

विशेषार्थ—अधस्तन समुद्रकी अपेक्षा उपरिम समुद्रका विस्तार चार गुना होता हुआ जाता है । यथा—

कालो० स० का वि० ८००००० यो० = (ल० स० का वि० २०००००) × ४ ।

पुष्कर० स० का वि० ३२००००० यो० = (क० स० का वि० ८०००००) × ४ ।

वारुणी स० का वि० १२८००००० यो० = (पु० स० का वि० ३२०००००) × ४ आदि ।

अधस्तन समुद्रकी अपेक्षा उपरिम समुद्रका आयाम चौगुना और २७००००० योजन अधिक होता हुआ जाता है । यथा—

कालोद समुद्रका आयाम ६३००००० यो० = (६ लाख × ४) + २७ लाख ।

पुष्कर० स० का आयाम २७९००००० यो० = (६३००००० × ४) + २७००००० यो० ।

वारुणी स० का आयाम ११४३००००० यो० = (२७९ लाख × ४) + २७००००० यो० ।

अधस्तन समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल—

लवणसमुद्रस्य क्षेत्रफलादो कालोदक समुद्रस्य क्षेत्रफलं अष्टाधीस - गुणं, कालोदकसमुद्रस्य क्षेत्रफलादो पोषखरवर-समुद्रस्य क्षेत्रफलं सत्तारस-गुणं होऊण तिण्णि-लक्ख-सट्ठि-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होदि ३६०००००००००००० । पोषखरवर-समुद्रस्य क्षेत्रफलादो वारुणिवर समुद्रस्य क्षेत्रफलं सोलस-गुणं होऊण पुणो चोत्तीस-लक्ख-छप्पण-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होदि ३४५६०००००००००००० । एत्तो पहुदि हेट्ठिम-णीररासिस्स क्षेत्रफलादो तदणंतरोवरिम-णीररासिस्स क्षेत्रफलं सोलस-गुणं पक्खेव-सूद-चोत्तीस-लक्ख-छप्पण-सहस्स-कोडि-जोयणाणि चउग्गुणं होऊण मच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्रो ति ॥

अर्थ—लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे कालोदकका क्षेत्रफल अट्ठाईस-गुना और कालोदक-समुद्र के क्षेत्रफलसे पुष्करवरसमुद्रका क्षेत्रफल सत्तरह-गुना होकर तीन लाख साठ हजार करोड़ योजन अधिक है ३६००००००००००० । पुष्करवरसमुद्रके क्षेत्रफलसे वारुणीवरसमुद्रका क्षेत्रफल सोलह-गुना होकर चौतीस लाख छप्पन हजार करोड़ योजन अधिक है ३४५६००००००००००० । यहाँसे आगे अधस्तन समुद्रके क्षेत्रफलसे अन्तर उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त क्रमशः सोलह-गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत चौतीस लाख छप्पन हजार करोड़ योजनोंसे भी चौगुना होता गया है ।

१ विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल $३ \times (५००००)^२$ वर्ग योजन है । जिसका मान १ खण्ड शलाका है । इसप्रकार लवणसमुद्रकी २४, कालोदककी ६७२, पुष्करवरसमुद्रकी ११९०४ और वारुणीवरसमुद्रकी १९५०७२ खण्ड-शलाकाएँ हैं ।

लवणसमुद्रके (२४ खं० श० स्वरूप) क्षेत्रफलसे कालोदक-समुद्रका क्षेत्रफल २८ गुना है । यथा—

$$\text{कालोदकका क्षेत्रफल } ६७२ \text{ खं० श० प्रमाण} = (२४ \text{ खं० श०} \times २८)$$

कालोदके क्षेत्रफलसे पुष्करवरसमुद्रका (११९०४ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफल १७ गुनेसे $३६ \times (१०)^११$ वर्ग योजन अधिक है । जो $११९०४ - (६७२ \times १७) = ४८०$ खं० श० प्रमाण है । यथा—

$$\begin{aligned} ११९०४ &= (६७२ \times १७ \text{ खं० श०}) + [४८० \times ३ (५००००)^२] \\ &= (६७२ \times १७ \text{ खं० श०}) + ४८० \times ७५०००००००००० \text{ वर्ग यो० } । \\ &= ६७२ \times १७ \text{ खं० श०} + ३६००००००००००००० \text{ वर्ग योजन } । \end{aligned}$$

पुष्करवर समुद्रके क्षेत्रफलसे वारुणीवरसमुद्रका (१९५०७२ खण्ड शलाका स्वरूप) क्षेत्रफल १६ गुनेसे $३४५६ \times (१०)^१०$ वर्गयोजन अधिक है । जो $१९५०७२ - (११९०४ \times १६) = ४६०८$ खण्डशलाका प्रमाण है । यथा—

$$\begin{aligned} १९५०७२ &= (११९०४ \times १६ \text{ खं० श०}) + [४६०८ \times ३ (५००००)^२] \\ &= (११९०४ \times १६ \text{ खं० श०}) + ४६०८ \times ७५०००००००००० \text{ वर्ग यो० } \\ &= ११९०४ \times १६ \text{ खं० श०} + ३४५६०००००००००००० \text{ वर्ग योजन } । \end{aligned}$$

इससे आगे अधस्तन समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल अन्तिम समुद्र पर्यन्त क्रमशः १६ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत $३४५६ \times (१०)^१०$ वर्ग योजनोंसे भी चौगुना होता गया है । यथा—

मानलो—क्षीरवरसमुद्र दृष्ट है। इसका विस्तार ५१२००००० यो० और खण्डशलाकाएँ ३१३९५५४ हैं।

३१३९५८४—(१९५०७२ × १६ खं० श०) = १८४३२ खं० श० वारुणी० समुद्र से अधिक है ।

$$333954 = (294032 \times 16 \text{ खं० श०}) + [25432 \times 3 (40000)^2]$$

$$= (195092 \times 16 \text{ ख० श०}) + 1352280000000000 \text{ वर्ग यो० है।}$$

लीरवर समुद्रका यह $13224 \times (10)^{10}$ वर्ग योजन प्रक्षेप वारुणीवर समुद्रके $3456 \times (10)^{10}$ वर्ग योजनसे 4 गुना है।

तत्थ विक्खंभायाम-खेत्तफलाणं अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—

अर्थ—उनमें विस्तार, आयाम और क्षेत्रफलके अन्तिम विकल्पको कहते हैं—

अहीन्द्रवर समुद्रका विस्तार थीर आयाम—

अहिद्वारसमुद्गस्त विक्खंभं रज्जूए सोलस-भागं पुणो अट्टारस-सहस्त सत्तसय-
पण्णास-जोयणेहि अक्कभहियं होदि । तस्त ठवणा ७ । १, १ । धण जोयणाणि १८७५० ।

तस्स आयास णव रज्जू ठविय सोलस-रुवेहि भजिदमेत्तं पुणो सत्त-लक्ख-
एकत्तीस-सहस्स वेणिण-सय-पण्णात्त जोयणेहि परिहीणं होवि । तस्स ठवणा— ७ । १६ ।
रिण जोयणाणि ७३१२५० ॥

अर्थ—अहीन्द्रवर समुद्रका विस्तार राजूका सोलहवाँ भाग और अठारह हजार सात सौ पचास योजन अधिक है। उसकी स्थापना इसप्रकार है:—राजू $\frac{1}{16} + 15750$ योज०।

इस समुद्रका आयाम नौ राजुओंको रखकर सोलहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे सात लाख इकतीस हजार दो सौ पचास योजन हीन है। उसकी स्थापना— $\frac{1}{6}$ राजू — ७३१२५० योजन ॥

विशेषार्थ—अहीन्द्रवरसमुद्रका विस्तार = राजू $\times \frac{1}{4} + 15650$ योजन है।

इसी समुद्रका आयाम = $(\frac{\text{राज}}{1000} + 15950 - 100000) \times 8$

१ राजू - (८१२५० × ९)

= ९ राजू — ७३१२५० योजन ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार और आयाम—

सयम्भूरमणसमुद्रस्स विषखंभं एक्क-सेट्ठि ठविय अट्ठावीस-रूवेहि भजिदमेत्तं पुणो पंचहत्तरि-सहस्स-जोयणेहि अब्भहियं होवि । तस्स ठवणा— $\frac{१६}{१६}$ धण जोयणाणि ७५००० । तस्सेव आयामं णव-सेट्ठि ठविय अट्ठावीसेहि भजिदमेत्तं, पुणो दोणिण-लक्ख-पंचवीस-सहस्स-जोयणेहि परिहीणं होवि । तस्स ठवणा— $\frac{३६}{३६}$ । रिण जोयणाणि २२५००० ।

अर्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार एक जगच्छेणीको रखकर उसमें अट्ठाईसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना और पचहत्तर हजार योजन अधिक है । उसकी स्थापना—जग० $\frac{१६}{१६}$ —७५००० योजन ।

उसका आयाम ती जगच्छेणियोंको रखकर अट्ठाईसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें दो लाख पच्चीस हजार योजन कम है ।

उसकी स्थापना—जग० $\frac{३६}{३६}$ — २२५००० योजन ।

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमण समुद्रका विस्तार= $\frac{\text{जग०}}{३६} + ७५०००$ योजन ।

स्वयम्भूरमण समुद्रका आयाम = $(\frac{\text{जग०}}{३६} + ७५००० - १०००००) \times ९$

= $\frac{९}{३६} \text{ जग०} - २२५०००$ योजन ।

अहीन्द्रवर समुद्रका क्षेत्रफल —

अहिंदवरसमुद्रस्स क्षेत्रफलं रज्जूए कवी णव-रूवेहि गुणिय बेसद-छप्पण-रूवेहि भजिदमेत्तं, पुणो एक्क-लक्ख-चालीस-सहस्स-छस्सय-पंचवीस-जोयणेहि गुणिद-मेत्तं रज्जूए सउडभागं, पुणो एक्क-सहस्स-तिणिण-सय-एक्कहत्तरि-कोडीओ णव-लक्ख-सत्ततीस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि-परिहीणं होवि । तस्स ठवणा— $\frac{२२}{२२}$ । $\frac{३६}{३६}$ । रिण रज्जू ३ । १४०६२५ रिण जोयणाणि १३७१०६३७५०० ।

अर्थ—अहीन्द्रवरसमुद्रका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नीसे गुणाकर दो सौ छप्पनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे एक लाख चालीस हजार छह सौ पच्चीस योजनोंसे गुणित राजू का चतुर्थ भाग और एक हजार तीन सौ इकहत्तर करोड़ नौ लाख सैंतीस हजार पाँचसौ योजन कम है । स्थापना इसप्रकार है—

$$= \frac{९ \text{ राजू}^२}{२५६} - (\text{राजू} \frac{१}{४} \times १४०६२५) - १३७१०६३७५०० ।$$

विशेषार्थ—अहीन्द्रवरसमुद्रका क्षेत्रफल = आयाम × विस्तार

$$= (\frac{९}{४} \text{ राजू} - ७३१२५०) \times (\frac{१}{४} \text{ राजू} + १८७५०)$$

$$= \frac{९(\text{राजू})^२}{१६} + [\text{राजू} \{ \frac{९}{४} \times १८७५० - \frac{१}{४} \times ७३१२५० \}] - ७३१२५० \times १८७५०$$

$$= \frac{९(\text{राजू})^२}{१६} + [\text{राजू} \times (\frac{९४३७५}{४} - \frac{३६५६२५}{४})] - १३७१०६३७५०० ।$$

$$= \frac{९(\text{राजू})^२}{१६} - (\text{राजू} \times १४०६२५) - १३७१०६३७५०० \text{ वर्ग यो० ।}$$

स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल—

सयम्भूरमण-णिण्णग-रमणस्स खेत्तफलं रज्जुए कदी णव-रुद्धेहि गुणिय सोलस-रुद्धेहि भजिदमेत्तं, पुणो एक-लख-बारस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि (गुणिद-रज्जुए) अरुभहियं, पुणो एक-सहस्स-छस्सय-सत्तासीवि-कोटि-पण्णास-लख-जोयणेहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा— $\frac{९}{४}$ । $\frac{१}{४}$ धण रज्जु ७ । ११२५०० रिण जोयणाणि १६८७५००००००० ॥

अर्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके सोलहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना होकर एक लाख बारह हजार पाँचसौ योजनोंसे गुणित राजूसे अधिक और एक हजार छह सौ सत्तासी करोड़ पचास लाख योजन कम है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$$\frac{९ \text{ राजू}^२}{१६} + (\text{राजू} \times ११२५०० \text{ यो०}) - १६८७५००००००० ।$$

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल = आयाम × विस्तार

$$= (\frac{९ \text{ जग०}}{१६} - २२५००० \text{ यो०}) \times (\frac{\text{जग०}}{४} + ७५००० \text{ यो०})$$

$$= \frac{९(\text{जग०})^२}{(१६)^२} + \text{जग०} [(\frac{९}{१६} \times ७५०००) - (\frac{१}{४} \times २२५०००)] - २२५००० \times ७५००० ।$$

$$= \frac{९(\text{जग०})^२}{(७)^२ \times (४)^२} + \frac{\text{जग०}}{७} \times [१६८७५० - ५६२५०] - २२५००० \times ७५००० \text{ यो० ।}$$

$$= \frac{९(\text{राजू})^२}{१६} + \text{राजू} \times ११२५०० \text{ यो०} - १६८७५००००००० \text{ वर्ग योजन ।}$$

अदिरेयस्स पमाणं आणयण-हेदुं इमं गाथा-सुत्तं—

वारुणिवरवि-उवरिम-इच्छिन्न-रयणायरस्स रुंदत्तां ।

सत्तावीसं लक्खे गुणिदे, अहियस्स परिमाणं ॥२७२॥

अर्थ—अतिरेकका प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

वारुणीवर समुद्रको आदि लेकर उपरिम इच्छित समुद्रके विस्तारको सत्ताईस लाखसे गुणा करने पर अधिकतम प्रमाण प्राप्त होता है ॥२७२॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

वर्णित अतिरेक धन = (उपरिम इच्छित समुद्रका विस्तार) × २७००००० ।

उदाहरण—मानलो—यहाँ क्षीरवरसमुद्रका अतिरेक धन प्राप्त करना इष्ट है । जिसका विस्तार ५१२००००० योजन है अतः क्षीर० स० का अतिरेक धन = ५१२००००० × २७००००० ।
= १३८२४००००००००००० योजन ।

पन्द्रहवाँ-पक्ष

अधस्तनसमुद्रके (पिण्डफल + प्रक्षेपभूत) क्षेत्रफलसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल कितना होता है ?

पणारस-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—तं जहा—लवणसमुद्रस्स खेत्तफलादो कालोदगसमुद्रस्स खेत्तफलं अट्ठावीस-गुणं । लवणसमुद्र-सहिद-कालोदगसमुद्रस्स खेत्तफलादो पोक्खरवरसमुद्रस्स खेत्तफलं सत्तारस-गुणं होऊण चउवण-सहस्स-कोटि-जोयणेहि अब्भहियं होदि ५४००००००००००० । लवण-कालोदग-सहिद-पोक्खरवर-समुद्रस्स खेत्तफलादो वारुणिवर-णीररासिस्स खेत्तफलं पणारस-गुणं होऊण पणवाल-लक्ख-चउवण-सहस्स-कोटि-जोयणेहि अब्भहियं होइ ४५५४०००००००००००० । एवं वारुणिवरणीर-रासिप्पहुवि-हेट्ठिम-णीररासीणं खेत्तफल-समूहादो उवरिम-णिण्णगणाहस्स खेत्तफलं पत्तेय पणारस-गुणं पक्खेवमूद-पणवाल-लक्ख-चउवण-सहस्स-कोटिओ चउगुणं होऊण पुणो एक-लक्ख-वासट्ठि-सहस्स-कोटि-जोयणेहि अब्भहियं होइ १६२०००००००००००० । एवं णेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुदो त्ति ।

अर्थ—पन्द्रहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है—लवणसमुद्रके क्षेत्रफल से कालोदकसमुद्रका क्षेत्रफल अट्ठाईस-गुणा है । लवणसमुद्र सहित कालोदक समुद्रके क्षेत्रफलसे पुष्करवरसमुद्रका क्षेत्रफल सत्तरह-गुणा होकर चौवन हजार करोड़ योजन अधिक है ५४००००००००००० । लवण एवं कालोदक सहित पुष्करवरसमुद्रके क्षेत्रफलसे बाहणीवर-समुद्रका क्षेत्रफल पन्द्रह गुना होकर पैंतालीस लाख चौवन हजार करोड़ योजन अधिक है ४५५४००००००००००० । इसप्रकार बाहणीवरसमुद्रसे सब अधस्तन समुद्रोंके क्षेत्रफल समूहसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल प्रत्येक पन्द्रह-गुणा होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत पैंतालीस-लाख चौवन हजार करोड़ योजनोंसे भीगुणा होकर एक लाख बासठ हजार करोड़ योजन अधिक है १६२०००००००००००० । इसप्रकार यह क्रम स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त जानना चाहिए ॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे कालोदकका क्षेत्रफल २८ गुना है । यथा—

$$= ६७२ = २४ \times २८ \text{ खण्डशलाका स्वरूप है ।}$$

लवणसमुद्र और कालोदकके (२४ + ६७२ = ६९६ खण्डशलाकारूप) क्षेत्रफलसे पुष्कर-वर समुद्रका (११९०४ खं० श० रूप) क्षेत्रफल १७ गुना होकर [११९०४ — (६९६ × १७) = ७२ खं० श० रूप] ५४ × (१०)^{१०} वर्ग योजन अधिक है । यथा—

$$\begin{aligned} \text{वृद्धि सहित क्षेत्रफल } ११९०४ &= (६९६ \times १७ \text{ खं० श० }) + (७२ \times ७५०००००००००) \\ &= (६९६ \times १७ \text{ खं० श० }) + ५४००००००००००००० \text{ वर्ग योजन ।} \end{aligned}$$

लवणसमुद्र, कालोदक और पुष्करवरसमुद्रके (२४ + ६७२ + ११९०४ = १२६०० खं० श० रूप) क्षेत्रफलसे बाहणीवर समुद्रका (१९५०७२ खं० श० रूप) क्षेत्रफल १५ गुना होकर [१९५०७२ — (१२६०० × १५) = ६०७२ । खं० श० रूप] ४५५४ × (१०)^{१०} वर्ग योजन अधिक है । यथा—

$$\begin{aligned} \text{वृद्धि सहित क्षेत्रफल } १९५०७२ \text{ खं० श० रूप} &= (१२६०० \times १५ \text{ खं० श० }) + [६०७२ \text{ खं० श० } \times ७५ \times (१०)^८] \\ &= (१२६०० \times १५ \text{ खं० श० }) + ४५५४००००००००००००० \text{ वर्ग यो० ।} \end{aligned}$$

इसप्रकार बाहणीवर समुद्रसे लेकर सर्व अधस्तन समुद्रोंके क्षेत्रफल समूहसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल प्रत्येक १५ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत ४५५४ × (१०)^{१०} से ४ गुना होकर १६२ × (१०)^{१०} वर्ग योजन अधिक है । यथा—

बाहणीवरसमुद्रसे उपरिम क्षीरवर समुद्रका विस्तार ५१२ लाख योजन है और इसकी खं० श० ३१३९५८४ हैं । जो लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र, पुष्करवरसमुद्र और बाहणीवर समुद्रकी

करोड़ पचास लाख योजन अधिक और बावन हजार पांच सौ योजनोंसे गुणित राजूसे हीन है। उसकी स्थापना—

$$\left(\frac{(\text{राजू})^2 \times 3}{50} \right) + १६८७५००००००० \text{ वर्ग योजन} - \text{राजू} \times ५२५०० \text{ वर्ग यो० ॥}$$

स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल -

सयम्भूरमणसमुद्रस्स खेत्तफलं रज्जुए वर्गं एव-रुवेहि गुणिय सोलस-रुवेहि भजिदमेत्तां, पुणो एक-लखं बारस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि गुणिव-रज्जु-अवभहियं होइ, पुणो पण्णास-लख-सत्तासीदि-कोडि-अवभहिय-अस्सय-एक-सहस्स - कोडि - जोयणाहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा — ४ । १ । धण ७ । ११२५०० रिण १६८७५०००००० ।

अर्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका जो क्षेत्रफल है उसका प्रमाण राजूके वर्गको नीसे गुणा करके सोलहका भाग देनेपर जो प्राप्त हो उतना होनेके अतिरिक्त एक लाख बारह हजार पांच सौ योजनोंसे गुणित राजूसे अधिक और एक हजार छह सौ सत्तासी करोड़ पचास लाख योजन कम है। उसकी स्थापना—

$$= \frac{(\text{राजू})^2 \times 9}{१६} + (\text{राजू} \times ११२५०० \text{ वर्ग यो०}) - १६८७५००००००० \text{ वर्ग यो० ।}$$

तव्यङ्गीणं आणयण-हेतुमिमं गाहा-सुत्तं—

तिय-लख्खणं अंतिम-रुवं णव-लख-रहिद-आयामो ।

पण्णरस-हिदे संगुण-लद्धं हेट्ठल्ल-सव्व-उवहि-फलं ॥२७३॥

अर्थ—इन वृद्धियोंको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

तीन लाख कम अंतिम विस्तार और नौ लाख कम आयामको परस्पर गुणित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसमें पन्द्रहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना अधस्तन सब समुद्रोंका क्षेत्रफल होता है ॥२७३॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\left. \begin{array}{l} \text{अधस्तन समस्त} \\ \text{समुद्रोंका क्षेत्रफल} \end{array} \right\} = \frac{(\text{इष्ट समुद्रका विस्तार} - ३०००००) \times (\text{आयाम} - ९०००००)}{१५}$$

उदाहरण—१. पुष्करवर समुद्रका विस्तार ३२००००० योजन और आयाम २७९००००० योजन है ।

$$\begin{aligned} \text{वर्णित क्षेत्रफल} &= \frac{(३२००००० - ३०००००) \times (२७९००००० - ९०००००)}{१५} \\ &= \frac{२०००००० \times २७००००००}{१५} = ५२२००००००००००० \text{ वर्ग योजन ।} \end{aligned}$$

यह पुष्करवर समुद्रके पूर्व स्थित लवण और कालोदसमुद्रका सम्मिलित क्षेत्रफल है ।

२. स्वयम्भूरमणसमुद्रसे अधस्तन समस्त समुद्रोंका क्षेत्रफल—

$$\text{स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार} = \frac{\text{राजू}}{२} + ७५००० \text{ योजन ।}$$

$$\text{स्वयम्भूरमणसमुद्रका आयाम} = \frac{९ \text{ राजू}}{४} - २२५००० \text{ योजन ।}$$

$$\begin{aligned} \left. \begin{array}{l} \text{स्वयं० समुद्रसे अधस्तन} \\ \text{समुद्रों का क्षेत्रफल} \end{array} \right\} &= \frac{[\frac{\text{राजू}}{२} + ७५००० - ३००००००] \times [\frac{९\text{राजू}}{४} - २२५००० \text{ यो०} - ९०००००]}{१५} \\ &= \frac{[\frac{\text{राजू}}{२} - २२५०००] \times [\frac{९\text{राजू}}{४} - ११२५०००]}{१५} \end{aligned}$$

$$\begin{aligned} &= \frac{९ \text{ राजू}^2}{१६} - \frac{\text{राजू}}{४} [६ \times २२५००० \times ११२५००० \text{ यो०}] + (२२५००० \times ११२५००० \text{ यो०}) \\ &= \frac{३(\text{राजू})^2}{१६ \times ५} - \frac{७८७५०० \text{ राजू यो०}}{१५} + \frac{२५३१५ \times (१०)^6}{१५} \text{ वर्ग योजन ।} \end{aligned}$$

$$= \frac{३(\text{राजू})^2}{८०} - ५२५०० \text{ राजू यो०} + १६८७५ \times १०^6 \text{ वर्ग योजन ।}$$

यहां राजू × योजन का अर्थ है राजूओंका योजनोंके साथ गुणा करना ।

साविरेय-पमाणमाणयण-णिमित्तं गाहा-सुत्तं—

तिविहं सृष्ट-समूहं, वारुणिवर-उवहि-पहुवि-उवरिल्लं ।

वड-लक्ख-गुणं अहियं, अटुरस-सहस्स-कोडि-परिहीणं ॥२७४॥

अर्थ—सातिरेक प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

वारुणीवरसमुद्र आदि उपरिम समुद्रकी तीनों प्रकारकी सूचियोंके समूहको चार लाखसे गुणा करके प्राप्त राशिमेंसे अठारह हजार करोड़ कम कर देनेपर अधिकताका प्रमाण आता है ॥२७४॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सुत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित सातिरेकता} = (\text{समुद्रकी तीनों सूचियोंका योग}) \times 400000 - 1 = \times (10)^{10}$$

उदाहरण—

[illegible]

स्वयम्भूरमणसमुद्रकी अभ्यन्तर सूची ३ राजू—१५०००० योजन है, मध्यम सूची ३ राजू—७५००० योजन और बाह्य सूची १ राजू प्रमाण है। इन सूचियोंके सम्बन्धसे उक्त—

$$\left. \begin{array}{l} \text{समुद्र सम्बन्धी} \\ \text{सातिरेकता} \end{array} \right\} = [(\frac{1}{2} \text{ रा०} - १५००००) + (\frac{3}{4} \text{ रा०} - ७५००० \text{ यो०}) + (१ \text{ राजू})] \times$$

$$४००००० - १८ \times (१०)^{10} \text{ यो० ।}$$

$$= [\frac{1}{2} \text{ रा०} + \frac{3}{4} \text{ रा०} + १ \text{ रा०}) - २२५००० \text{ यो०}] \times ४००००० -$$

$$१८००००००००००० \text{ यो० ।}$$

$$= \frac{5}{4} \text{ राजू} \times ४०००००) - १०००००००००० - १८०००००००००० \text{ योजन ।}$$

$$= १००००० \text{ राजू} - २७ \times (१०)^{10} \text{ यो० ।}$$

अधस्तन समुद्रोंके क्षेत्रफलका प्रमाण—

$$= \left[\frac{3}{4} \times (\text{राज})^2 - 52500 \text{ रा०} \times \text{यो०} + 16595 \times (10)^6 \text{ वर्ग यो०} \right] \text{ है।}$$

इसमें १५ का गुणकर उपर्युक्त सातिरेकताका प्रमाण जोड़ देनेपर स्वयंभूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल प्राप्त होता है । यथा—

$$\text{स्वयं० स० का क्षेत्र०} = \left[\frac{4}{3} \text{ राजू}^3 - 52500 \text{ रा०} \times \text{यो०} + 16595 \times (10)^6 \right] \times 15 + 900000 \text{ रा०} - 27 \times (10)^{10} \text{ वर्ग योजन}$$

$$\begin{aligned}
&= \frac{1}{4} \text{ राजू}^2 - (५२५०० \text{ रा० यो०} \times १५ - १००००० \text{ राजू}) + [१६८७५ \times \\
&\quad १५ \times (१०)^६ - २७ \times (१०)^१०] \text{ वर्ग यो०} \\
&= \frac{1}{4} \text{ राजू}^2 - (७८७५०० - १०००००) \text{ रा० यो०} + (२५३१२५०००००० - \\
&\quad २७००००००००००) \\
&= \frac{1}{4} \text{ राजू}^2 + ११२५०० \text{ राजू} \times \text{यो०} - १६८७५०००००० \text{ वर्ग योजन ।}
\end{aligned}$$

सोलहवाँ-पक्ष

अधस्तन द्वीपके विष्कम्भ और आयामसे उपरिम द्वीपका विष्कम्भ और आयाम कितना अधिक होता हुआ गया है ? उसे कहते हैं—

सोलसम-पक्षे अप्यबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—धादईसंडवीवस्स विक्खंभं चत्तारि-लक्खं, आयामं सत्तावीस-लक्खं । पोक्खवरदीव-विक्खंभं सोलस-लक्खं, आयामं पणत्तीस-लक्ख-सहिय-एय-कोडि-जोयण-पमाणं । वारुणिवरदीव-विक्खंभं चउसट्ठि-लक्खं, आयामं सत्तसट्ठि-लक्ख-सहिय-पंच-कोडीओ । एवं हेट्ठिम-विक्खंभादो उवरिम-विक्खंभं चउगुणं, आयामादो आयामं चउगुणं सत्तावीस-लक्खेहि अठ्ठहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणदीओ त्ति ॥

अर्थ—सोलहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इसप्रकार है—धातकीखण्डद्वीपका विस्तार चार लाख और आयाम सत्ताईस लाख योजन है । पुष्करवरद्वीपका विस्तार सोलह लाख और आयाम एक करोड़ पैंतीस लाख योजन है । वारुणीवरद्वीपका विस्तार चौंसठ लाख और आयाम पाँच करोड़ सड़सठ लाख योजन है । इसप्रकार अधस्तन द्वीपके विस्तारसे तदनन्तर उपरिम द्वीपका विस्तार चौगुना और आयामसे आयाम चौगुना होनेके अतिरिक्त सत्ताईस लाख योजन अधिक होता हुआ स्वयंभूरमण-द्वीप पर्यन्त चला गया है ।

विशेषार्थ—अधस्तन द्वीपकी अपेक्षा उपरिम द्वीपका विस्तार ४ गुना होता हुआ जाता है ।

यथा—

$$\text{धातकी० द्वीपका वि० } ४००००० \text{ यो०} = (\text{जम्बूद्वीपका वि० } १०००००) \times ४$$

$$\text{पुष्कर० द्वीपका वि० } १६००००० \text{ यो०} = (\text{धातकी०का विस्तार } ४०००००) \times ४$$

वारुणी० द्वीपका वि० ६४००००० यो० = (पुष्कर० का विस्तार १६०००००) × ४ आदि
अधस्तन द्वीपके आयामकी अपेक्षा उपरिम द्वीपका आयाम चौगुना होनेके अतिरिक्त
२७००००० योजन अधिक होता हुआ जाता है । यथा—

धातकी० द्वीपका आयाम २७००००० यो० = (४००००० — १०००००) × ९

पुष्कर० द्वीपका आयाम १३५००००० यो० = (२७००००० × ४) + २७००००० यो० ।

वारुणी० द्वीपका आयाम ५६७००००० यो० = (१३५००००० × ४) + २७००००० यो०
आदि ।

अधस्तन द्वीपके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीपका क्षेत्रफल—

धातकीखण्डद्वीप-क्षेत्रफलादो पक्षखरवरदीवस्स क्षेत्रफलं बीस-गुणं । पुषखरवर-
दीवस्स क्षेत्रफलादो वारुणीवरदीवस्स क्षेत्रफलं सोलस-गुणं होऊण सत्तारस-लख-
अट्ठावीस-सहस्स-कोटि-जोयणेहि अब्भहियं होइ १७२८००००००००००० । एवं हेट्ठिम-
दीवस्स क्षेत्रफलादो तदुत्तरोपरिम-दीवस्स क्षेत्रफलं सोलस-गुणं पक्खेवमूद-सत्तारस-
लख-अट्ठावीस-सहस्स-कोटिओ चउगुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणदीओ त्ति ॥

अर्थ—धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल बीस-गुना है । पुष्करवर-
द्वीपके क्षेत्रफलसे वारुणीवर द्वीपका क्षेत्रफल सोलह गुना होकर सत्तरह लाख अट्ठाईस हजार करोड़ वर्ग
योजन अधिक है १७२८०००००००००००० । इसप्रकार स्वयंभूरमण-द्वीप पर्यन्त अधस्तन द्वीपके
क्षेत्रफलसे अनन्तर उपरिम द्वीपका क्षेत्रफल सोलह गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत सत्तरह लाख
अट्ठाईस हजार करोड़ योजनोंसे चौगुना होता गया है ॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल ७५ × (१०)^८ वर्ग योजन है । इसकी एक शलाका मानी
गई है । इसी मापके अनुसार धातकी खण्डकी १४४, पु० द्वीपकी २८८० और वारुणी० द्वीपकी
४८३८४ खण्डशलाकाएँ हैं ।

धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल २० गुना है । यथा—

पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल २८८० खं० श० प्रमाण = १४४ × २० ।

पुष्करवरद्वीपके क्षेत्रफलसे वारुणीवरद्वीपका क्षेत्रफल १६ गुना होकर १७२८ × (१०)^{१०}
वर्ग यो० अधिक है । जो ४८३८४ — (२८८० × १६ खं० श०) = २३०४ खं० श० प्रमाण है ।
यथा—

$$४८३८४ = (२८८० \times १६ \text{ खं० श० }) + [२३०४ \text{ खं० श० } \times ७५ \times (१०)^६]$$

$$= 2550 \times 16 + 19200000000000 \text{ वर्ग योजन।}$$

इससे आगे अधस्तात द्वीपके क्षेत्रफलसे अन्तरिम द्वीपका क्षेत्रफल अन्तिम द्वीप पर्यन्त क्रमशः १६ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत $१७२८ \times (१०)^{10}$ वर्ग योजनोसे भी चौगुना होता गया है।
यथा—

मानलो—क्षीरवरद्वीप इष्ट है । इसका विस्तार २५६ लाख योजन और खण्डशलाकाएँ ७५३३६० हैं—

७८३३६० खं० श० — (४८३८४ × १६ खं० श०) = ६२१६ खं० श० बाकणी० द्वीपसे अधिक हैं

$$\begin{aligned} 75336 &= (45354 \times 16 \text{ खं० श०}) + (9216 \times 75 \times (10)^6) \\ &= (45354 \times 16 \text{ खं० श०}) + 691200000000000 \text{ वर्ग योजन।} \end{aligned}$$

क्षीरवस्तीपका यह $6912 \times (10)^{10}$ वर्ग योजन प्रक्षेप बाह्यीवस्तीपके $1725 \times (10)^{10}$ वर्ग योजनसे ४ गुना है।

एतथ थिक्खंभायाम-खेत्तफलाणं अंतिम-विद्यप्पं वत्तइत्तामो—

अर्थ—उनमें विस्तार, आयाम और क्षेत्रफलका अन्तिम विकल्प कहते हैं—

अहीन्द्रवरद्वीपका विस्तार और आयाम—

अहिंदवरदीवस्स विक्खंभं रज्जूए बत्तीसम-भागं, पुणो णव-सहस्स-तिण्णि-सय-
पंचहसरि-जोयणेहि अ०भहियं होदि । आयामं णव-रज्जू ठविय बत्तीस-रूवेहि भागं धत्तूण
पुणो अट्ठ-लख-पण्णारस-सहस्स-छस्सय-पणवीस-जोयणेहि परिहीणं होइ । तस्स ठवणा—
७ । ३२ धण जोयणाणि ६३७५ । आयामं ७ । $\frac{३}{२}$ । रिण जोयणाणि ८१५६२५ ।

अर्थ—अहिन्द्रवरद्वीपका विस्तार राजूके बत्तीसवें भाग और नौ हजार तीन सौ पचास योजन अधिक है तथा इसका आयाम नौ राजुओंको रखकर बत्तीसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे आठ लाख पन्द्रह हजार छह सौ पच्चीस योजन हीन है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

विस्तार=राजू $3\frac{1}{2}$ + ६३७५ यो० । आयाम=राजू $3\frac{1}{2}$ — ८१५६२५ यो० ।

विशेषां—अहोन्द्रवरद्वीपका विस्तार = रा० $\times \frac{3}{2} + ६३७०$ योजन ।

$$\text{इसी द्वीपका आयाम} = (\text{राजू} \times \frac{3}{4} + 9370 - 100000) \times 9$$

$$= \frac{9 \text{ राजू}}{प्रद} - (90630 \times 9) = \frac{9 \text{ राजू}}{उद} - 815670 \text{ योजन।}$$

अहीन्द्रवर द्वीपका क्षेत्रफल—

अहिंदवरदीवस्स खेतफलं रज्जूए षण्णं णव-रूवेहि गुणिय एक्क-सहस्स-चउवीस
रूवेहि भजिबमेत्तां, पुणो रज्जूए सोलसम-भागं ठविय तिण्ण-लक्ख-पंच-सट्ठि-सहस्स-छस्सय-
पणवीस-जोयणेहि गुणिबमेत्तां परिहीणं होदि, पुणो सत्तासय-चउसट्ठि-कोडि-चउसट्ठि-
लक्ख-चउसीदि-सहस्स-ति-सय-पंचहत्तरि-जोयणेहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा— $\frac{१}{३६}$ ।
१०२४ रिण रण्णुओ ७ । २५६०० रिण ओयणाणि ७६४६४८४३७५ ।

अर्थ—अहीन्द्रवरद्वीपका क्षेत्रफल राजूके षण्णको नौसे गुणा करके एक हजार चौबीसका
भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे, राजूके सोलहवें भागको रखकर तीन लाख पैंसठ हजार छह
सौ पच्चीस योजनोंसे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसना कम है, पुनः सातसौ चौंसठ करोड़
चौंसठ लाख चौरासी हजार तीन सौ पचहत्तर योजन कम हैं । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$$\frac{१}{३६} \text{ राजू}^२ = \left(\text{रा० } \frac{१}{३६} \times ३६५६२५ \text{ यो०} \right) = ७६४६४८४३७५ ।$$

विशेषार्थ—अहीन्द्रवरद्वीपका क्षेत्रफल = विस्तार × आयाम ।

$$= \left(\frac{\text{राजू}}{३६} + ९३७५ \right) \times \left(\frac{१}{३६} \text{ राजू} - ८१५६२५ \text{ यो०} \right)$$

$$= \frac{१}{३६} \left(\frac{\text{राजू}}{३६} \right)^२ + \frac{\text{राजू}}{३६} \times \left[\left(९३७५ \times ९ \right) - ८१५६२५ \text{ यो०} \right] - ९३७५ \times ८१५६२५ \text{ वर्ग यो० ।}$$

$$= \frac{१}{३६} \frac{\text{राजू}^२}{३६} - \frac{\text{राजू}}{३६} \times ७३१२५० \text{ यो०} - ७६४६४८४३७५ \text{ वर्ग यो० ।}$$

$$= \frac{१}{३६} \frac{\text{राजू}^२}{३६} - \frac{\text{राजू}}{३६} \times ३६५६२५ \text{ यो०} - ७६४६४८४३७५ \text{ वर्ग योजन ।}$$

स्वयम्भूरमणद्वीपका विस्तार एवं आयाम—

सयंभूरमणदीवस्स विक्खंभं रज्जूए अट्ठम-भागं पुणो सत्तात्तीस-सहस्स-पंचसय-
जोयणेहि अग्गभहियं होदि, आयामं पुणो णव-रज्जूए अट्ठम-भागं पुणो पंच-लक्ख-बासट्ठि-
सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि परिहीणं होइ । तस्स ठवणा — $\frac{१}{३६}$ । १ धरा जोयणाणि
३७५०० । आयाम $\frac{१}{३६}$ । २ रिण जोयणाणि ५६२५०० ॥

अर्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका विस्तार राजूका आठवाँ भाग होकर सैंतीस हजार पाँच सौ
योजन अधिक है और इसका आयाम नौ राजूओंके आठवें भागमेंसे पाँच लाख बासठ हजार पाँच सौ
योजन हीन है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$$\text{वि०} = \frac{१}{३६} \text{ राजू} + ३७५०० \text{ यो० । आयाम} = \frac{१}{३६} \text{ राजू} - ५६२५०० \text{ यो० ॥}$$

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका विस्तार = $\frac{\text{राजू}}{६} + ३७५००$ योजन ।

$$\begin{aligned} \text{स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम} &= \left(\frac{\text{राजू}}{६} + ३७५०० - १००००० \right) \times ९ \\ &= \frac{९ \text{ राजू}}{६} - ५६२५०० \text{ योजन है ।} \end{aligned}$$

स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल—

पुणो खेत्ताफलं रज्जू ए कदी णव-रुवेहि गुणिय चउसट्ठि-रुवेहि भजिदमेत्ताम्मि-
पुणो रज्जू ठविय अट्ठावीस-सहस्स-एक्कसय-पंचवीस-रुवेहि गुणियदमेत्तां, पुणो पण्णास-
सहस्स-सत्तत्तीस-लक्ख-णव-कोडि-अब्भहिय-दोण्णि-सहस्स-एक्कसय-कोडि-ओयणं एवेहि^१
दोहि रासीहि परिहोणं पुव्विल्ल-रासी होवि । तस्स ठवणा— $\frac{२८१२५}{६४}$ । $\frac{९}{६४}$ रिण रज्जूओ ७ ।
२८१२५ रिण जोयणाणि २१०९३७५०००० ॥

अर्थ—पुनः इस (स्वयम्भूरमण) द्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नीसे गुणा करके प्राप्त राशिमें चौंसठका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे, राजूको स्थापित करके अट्ठाईस हजार एक सौ पच्चीससे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसे और दो हजार एकसौ नी करोड़ सैंतीस लाख पचास हजार योजन, इन दो राशियोंको कम कर देनेपर अवशिष्ट पूर्वोक्त राशि प्रमाण है । उसकी स्थापना इसप्रकार है— $\frac{९ \text{ राजू}^२}{६४} - (\text{रा० } १ \times २८१२५ \text{ यो०}) - २१०९३७५०००० ॥$

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल = विस्तार $\times$ आयाम इस द्वीपका विस्तार = $\frac{\text{राजू}}{६} + ३७५००$ योजन है और आयाम = $\frac{९ \text{ राजू}}{६} - ५६२५००$ यो० है ।

$$\begin{aligned} \text{इस द्वीपका क्षेत्रफल} &= \left(\frac{\text{राजू}}{६} + ३७५०० \text{ यो०} \right) \times \left(\frac{९ \text{ राजू}}{६} - ५६२५०० \text{ यो०} \right) \\ &= \frac{९ \text{ राजू}^२}{६४} + \frac{\text{राजू}}{६} [६ \times ३७५०० - ५६२५०० \text{ यो०}] - ३७५०० \times ५६२५००] \\ &= \frac{९ \text{ राजू}^२}{६४} + (\text{राजू} \times २८१२५ \text{ यो०}) - २१०९३७५०००० \text{ वर्ग यो० ।} \\ &= \frac{९}{६४} \text{ राजू}^२ - २८१२५ \text{ राजू यो०} - २१०९३७५०००० \text{ वर्ग योजन ।} \end{aligned}$$

अतिरेयस्स पमाणायण-हेट्टुमिमा सुत्त-गाहा—

सग-सग-मज्झिम-सूई, णव-लक्ख-गुणं पुणो वि मिलिद्व्वं ।

सत्तावीस - सहस्सं, कोडोओ तं हवेदि अतिरेगं ॥२७५॥

अर्थ—अतिरेकका प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अपनी-अपनी मध्यम-सूचीको नौ लाखसे गुणा करके उसमें सत्ताईस हजार करोड़ और मिला देनेपर वह अतिरेक-प्रमाण होता है ॥२७५॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

अतिरेक का प्रमाण = (निज मध्यम सूची × ९०००००) + २७ × (१०)^{१०} वर्ग योजन ।

उदाहरण—(१) वासुणीवरद्वीपकी मध्यम सूचीका प्रमाण १८९ ला० योजन है ।

वासुणी० द्वीप सम्बन्धी अतिरेक-प्रमाण = (१८९००००० × ९०००००) + २७०००००००००००
वर्ग योजन ।

= १७२८००००००००००० वर्ग योजन है ।

(२) स्वयम्भूरमणद्वीपकी मध्यम सूचीका प्रमाण (३ रा०—१८७५०० यो०) है ।

इसके अतिरेक प्रमाण = [(३ रा०—१८७५०० यो०) × ९०००००] + २७ × (१०)^{१०}
वर्ग यो०

= (३ रा० × ९००००० यो०) — (१८७५०० × ९०००००)
+ २७००००००००००० वर्ग योजन

= २७००००००००००००० रा० यो० — १६८७५००००००००० +
२७००००००००००००० वर्ग यो०

= ३३७५०० रा० यो० + १०१२५००००००००० वर्ग योजन है ।

इस अतिरेकके प्रमाणमें अहीन्द्रवरद्वीपका १६ गुना क्षेत्रफल जोड़ देनेपर स्वयम्भूरमण-द्वीपका क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है । यथा—

(अहीन्द्रवर द्वीपका १६ गुना क्षेत्रफल = $\frac{१६}{१००}$ राजू^२ — ३६५६२५ रा० यो० —
१२२३४३७५०००० वर्ग यो०) + (अतिरेकका प्रमाण = ३३७५०० रा० यो० + १०१२५०००००००००
वर्ग यो०) ।

= $\frac{1}{4}$ राजू^२ - २८१२५ रा० यो० - २१०६३७५०००० वर्ग योजन स्वयम्भूरमण द्वीपका क्षेत्रफल है ।

सत्तरहवाँ-पक्ष

अधस्तन द्वीपके (पिण्डफल + प्रक्षेपभूत) क्षेत्रफलसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल कितना होता है ?

सत्तारसम-पक्षे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—धावईसंड-खेत्तफलादो पुक्खरवरदीवस्स खेत्तफलं बीस-गुणं । धावईसंड - सहिद - पोक्खरवरदीव - खेत्तफलादो वारुणिवर-खेत्तफलं सोलस-गुणं । धावईसंड-पोक्खरवरदीव-सहिय-वारुणिवरदीव-खेत्तफलादो क्षीरवरदीव-खेत्तफलं पण्णारस-गुणं होऊण सीदि-सहस्स-सहिय-एक्काणउवि-लक्ख-कोडीओ अम्भहियं होइ ६१८०००००००००००० । एवं क्षीरवर-दीव-प्यहुवि अम्भंतरिम-सब्ब-दीव णउवि-लक्ख-कोडीओ चउग्गुणं होऊण एयलक्ख-अट्ठ^१-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अम्भहियं होइ १०८००००००००००००० । एवं एवेदव्वं जाव सयंभूरमण-दीओ त्ति ॥

अर्थ—सत्तरहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इसप्रकार है—धातकीखण्डके क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल बीस गुना है । धातकीखण्ड सहित पुष्करवरद्वीपके क्षेत्रफलसे वारुणीवर-द्वीपका क्षेत्रफल सोलह गुना है । धातकीखण्ड और पुष्करवरद्वीप सहित वारुणीवरद्वीपके क्षेत्रफलसे क्षीरवरद्वीपका क्षेत्रफल पन्द्रह गुना होकर इक्यानबै लाख अस्सी हजार करोड़ योजन अधिक है ९१८०००००००००००००० । इसप्रकार क्षीरवर आदि अभ्यन्तर सब द्वीपोंके क्षेत्रफलसे अनन्तर बाह्य भागमें स्थित द्वीपका क्षेत्रफल पन्द्रह गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत इक्यानबै लाख अस्सी हजार करोड़ चौगुने होकर एक लाख आठ हजार करोड़ योजनोंसे अधिक है १०८००००००००००००० । यह क्रम स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—धातकीखण्डके क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल २० गुना है ।

यथा—

$$\text{पु० द्वीपकी खं० श० } २८८० = (\text{धा० की खं० श० } १४४) \times २० ।$$

धातुको खण्ड और पुष्करद्वीपके ($१४४ + २८८० = ३०२४$ खं० श० रूप) क्षेत्रफलसे
 बाह्यीवरद्वीपका (४८३८४ खण्डशलाका रूप) क्षेत्रफल १६ गुना है । यथा—

$$\text{वारुणीवर द्वीपकी खं० श० ४८३८४} = (३०२४ \text{ खं० श०}) \times १६।$$

धातकीखण्ड, पुष्करवरद्वीप और वासुकीवरद्वीपके (१४४ + २८८० + ४८३८४ = ५१४०८ खं० श० रूप) क्षेत्रफलसे औरवरद्वीपका (७८३३६० खं० श० रूप) क्षेत्रफल १५ गुना होकर [७८३३६० खं० श० — (५१४०८ खं० श० × १५) = १२२४० खं० श० रूप] ६१८ × (१०)^{११} वर्ग योजन अधिक है । यथा—

$$\begin{aligned} \text{वृद्धि सहित क्षेत्रफल } 353360 \text{ खं० श० रूप} &= (51800 \times 15 \text{ खं० श०}) + 12240 \\ &\quad \text{खं० श०} \times 35 \times (10)^2 \\ &= (51800 \times 15 \text{ खं० श०}) + 41840000000000 \text{ वर्ग यो०} \end{aligned}$$

इसप्रकार क्षीरवर आदि अभ्यन्तर सब द्वीपोंके क्षेत्रफलसमूहसे उपरिम द्वीपका क्षेत्रफल प्रत्येक १५ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत $९१८ \times (१०)^{11}$ से ४ गुना होकर $१०८ \times (१०)^{10}$ वर्ग योजन अधिक है। यथा—

क्षीरवरद्वीपसे ऊपर घृतवरद्वीप है । जिसका विस्तार १०२४ लाख योजन और आयाम [(१०२४ लाख) $\times$ (१०२४ ला० — १ ला०) $\times$ ९] योजन है । इस द्वीपकी खण्ड श० १२५७०६२४ हैं । जो धातकी खण्ड, पुष्करवरद्वीप, वासुणीवरद्वीप और क्षीरवरद्वीपकी (१४४ + २८८० + ४८३८४ + ७८३३६० =) ८३४७६८ सम्मिलित खण्ड शलाकाओंसे १५ गुना होकर [१२५७०६२४ — (८३४७६८ $\times$ १५) + ४९१०४ खं० श० रूप] ९१८ $\times$ (१०)^{११} वर्ग योजन का ४ गुना होते हुए १०८ $\times$ (१०)^{१०} वर्ग योजन अधिक है । यथा—

घृत० द्वीपका क्षेत्र० १२५७०६२४ ख० श० रूप = (८३४७६८ ख० श० × १५) + (४९१०४ ख० श०) अथवा ८३४७६८ × १५ = १२५२१५२० ख० श० रूप क्षेत्र० + [६१८ × (१०)^{११} × ४ = ३६७२००००००००००००] + १०८००००००००००० वर्ग योजन है ।

स्वयम्भूरमणद्वीपके अधस्ततः सर्व-द्वीपोंके क्षेत्रफलका प्रमाण—

तत्थ अंतिम-विशेषं वसइस्सामो—सयंभूरमणदीवस्स हेट्ठिम-सव्व-दीवाणं
खेत्तफल-पमाणां रज्ज्जूए वगगं ति-गुणिय धीसुत्तर-तिय-सदेहि भजिवमेत्तं, पुणो एक-
सहस्सं तिण्णि-सय-उणसट्ठि—कोडीओ सत्ततीस-लक्खं पण्णास-सहस्स-जोयणेहि अब्भहियं
होइ । पुणो एककतीस-सहस्सं अट्ठ-सय-पंचहत्तरि-जोयणेहि गुणिद-रज्ज्जूए^१ परिहीणां होइ ।

तस्स ठवणा— $\frac{२}{४६}$ । ३३० । धण जोयणाणि १३५६३७५०००० । रिण रज्जू ७ ।
३१८७५ ।

अर्थ—स्वयम्भूरमण्णद्वीपके अधस्तन सब द्वीपोंके क्षेत्रफलका प्रमाण राजूके वर्गको तिगुना करके तीनसौ बीसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें एक हजार तीन सौ उनसठ करोड़ सैंतीस लाख पचास हजार योजन अधिक तथा इकतीस हजार आठ सौ पचहत्तर योजनोंसे गुणित राजूसे हीन है । उसकी स्थापना—

$$\left(\frac{२}{३१८} \text{ राजू}^२ \right) + १३५९३७५०००० \text{ यो०} = (\text{रा०} \times ३१८७५) ।$$

स्वयम्भूरमण्णद्वीपका क्षेत्रफल—

सयंभूरमण्णदीवस्स खेत्तफलं रज्जूए कदो णव-रूवेहि गुणिय चउसट्ठि - रूवेहि भजिदमेत्तं, पुणो रज्जू ठविय अट्ठावीस-सहस्स-एकसय-पंचवीस'-रूवेहि गुणिवमेत्तं, पुणो पण्णास'-सहस्स-सत्ततीस-लक्ख-णव-कोडि-अठ्ठभहिय-वोण्णि-सहस्स-एकसय-कोडि-जोयणं, एदेहि देवेहि रासीहि अदिहीअं दुव्विअल-रासी होवे । तस्स ठवणा— $\frac{२}{४६}$ । ३३० । रिण रज्जूओ ७ । २८१२५ रिण जोयणाणि २१०६३७५०००० ।

अर्थ—स्वयम्भूरमण्णद्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके चौंसठका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे, राजूको स्थापित करके अट्ठाईस हजार एक सौ पच्चीससे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसको तथा दो हजार एक सौ नौ करोड़ सैंतीस लाख पचास हजार योजन, इन दो राशियोंको कम कर देनेपर अवशिष्ट पूर्वोक्त राशि प्रमाण है । उसकी स्थापना— $\left[९ \left(\frac{\text{राजू}}{४६} \right)^२ \right] - (१ \text{ राजू} \times २८१२५) = २१०९३७५०००० ।$

अभ्यन्तर समस्त द्वीपोंका क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधि—

अब्भंतरिम-सव्व-दीव-खेत्तफलं भेलावेदूण आणयण-हेट्ठिमा सुत्त-गाहा—

विक्खंभायामे इगि सगधीसं लक्खमवणमंतिमए ।

पण्णारस-हिंवे लद्धं, इच्छादो हेट्ठिमाणं^३ संकलणं ॥२७६॥

अर्थ—अभ्यन्तर सब द्वीपोंके क्षेत्रफलको मिलाकर निकालनेके लिए यह गाथा-सूत्र है—

अन्तिम द्वीपके विष्कम्भ और आयाममें क्रमशः एक लाख और सत्ताईस लाख कम करके (शेषके गुणनफलमें) पन्द्रहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना इच्छित द्वीपसे (जम्बूद्वीपको छोड़कर) अधस्तन द्वीपोंका संकलन होता है ॥२७६॥

विशेषाथ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\left. \begin{array}{l} \text{अधस्तन समस्त} \\ \text{द्वीपोंका क्षेत्रफल} \end{array} \right\} = \frac{(\text{अन्तिम द्वीपका विष्कम्भ—१०००००}) \times (\text{उसीका आयाम—२७०००००})}{१५}$$

उदाहरण—(१) मानलो—यहां अन्तिम इष्ट द्वीप बाह्यीवर है। जिसका विष्कम्भ ६४००००० योजन और आयाम ५६७००००० योजन है।

$$\left. \begin{array}{l} \text{घातकी० और पु० द्वीपका} \\ \text{सम्मिलित क्षेत्रफल} \end{array} \right\} = \frac{(६४००००० - १०००००) \times (५६७००००० - २७०००००)}{१५}$$

$$= \frac{६३००००० \times ५४००००००}{१५} = २२६८०००००००००००० \text{ वर्ग यो०।}$$

(२) स्वयम्भूरमणद्वीपसे अधस्तन समस्त (जम्बूद्वीपको छोड़कर) द्वीपोंके सम्मिलित क्षेत्रफलका प्रमाण—

स्वयम्भूरमणद्वीपका विष्कम्भ = $\frac{१}{२}$ राजू + ३७५०० योजन।

स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम = $\frac{१}{२}$ राजू - ५६२५०० योजन।

$$\left. \begin{array}{l} \text{स्वयम्भूरमणद्वीपका} \\ \text{क्षेत्रफल} \end{array} \right\} = \frac{(\frac{१}{२}\text{राजू} + ३७५०० - १०००००) \times (\frac{१}{२}\text{राजू} - ५६२५०० - २७००००० \text{ वर्ग यो०})}{१५}$$

$$= \frac{(\frac{१}{२}\text{राजू} + ६२५००) \times (\frac{१}{२}\text{राजू} - ३२६२५००)}{१५}$$

$$= \frac{[\frac{१}{४}\text{राजू}^२ + \frac{\text{राजू}}{२}(-३२६२५०० - १ \times ६२५००) \text{ यो०} + ६२५०० \times ३२६२५०० \text{ वर्ग यो०}]}{१५}$$

$$= \frac{\frac{१}{४}\text{राजू}^२ - ४७८१२५ \text{ रा० यो०} + २०३९०६२५०००० \text{ वर्ग यो०}}{१५}$$

$$= \frac{३ \text{ रा०}^२}{३२०} - \text{रा० यो० } ३१८७५ + १३५५९३७५०००० \text{ वर्ग योजन।}$$

अहिय-पमाणमाणयण-हेडुमिमा सुत्त-गाहा—

स्त्रीरवरदीव-पहुदि, उवरिम-दीवस्स दीह-परिमाणं ।

चउ - लक्खे संगुणिदे, परियङ्को होइ उवन्नरि ॥२७७॥

अर्थ—अधिक प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

क्षीरवरद्वीपको आदि लेकर उपरिम द्वीपकी दीर्घताके प्रमाण अर्थात् आशामको चार लाखसे गुणित करने पर ऊपर-ऊपर वृद्धिका प्रमाण होता है ॥२७७॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णिन वृद्धि} = (\text{होषका आयाम}) \times 800000$$

उदाहरण—(१) क्षीरधर द्वीपका आयाम २२९५००००० योजन है।

$$\text{वर्षात वृद्धि} = 229500000 \times 400000$$

$$= 91500000000000 \text{ वर्ग योजन।}$$

यह क्षीरवरद्वीपसे अधस्तन (पहलेके) द्वीपोंके क्षेत्रफलसे १५ गुना होकर अधिकका प्रमाण है । जो क्षीरवरद्वीपमें प्राप्त होता है ।

(२) अधस्तन द्वीपोंके क्षेत्रफलसे १५ गुना होकर जो अधिकताका प्रमाण स्वयम्भूरमण-द्वीपमें पाया जाता है वह इसप्रकार है—

स्वयम्भूरमण्डीपवा आशाम = ३ राजू—५६२५०० योजन

$$\text{वृद्धि-प्रमाण-क्षेत्रफल} = (\frac{5}{8} \text{ रा०} - 562500 \text{ यो०}) \times 400000 \text{ यो०}$$

$$= 420000 \text{ रा० यो०} - 225 \times (10)^6 \text{ वर्ग यो०}$$

इसलिए स्वयम्भूरमण्डीपका क्षेत्रफल

$$= \frac{1}{4} \text{ राजू}^2 - 49 = 125 \text{ रा० यो०} + 203906250000 \text{ वर्ग यो०}$$

सातिरेकका प्रमाण ४५०००० रा० यो०—२२५०००००००० बर्ग खोजत

= $\frac{1}{2}$ राजू^२—२८१२५ रा० खो०—२१०९३७५०००० वर्ग मोजन ।

अठारहवाँ पक्ष

अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके त्रिस्थानक सूची-व्यास द्वारा उपरिम द्वीप-समुद्रोंका
सूची-व्यास प्राप्त करनेकी विधि—

अट्ठारसम-पक्षे अप्पबहुलं वत्ताइस्सामो—

लवणणीरधोए^१ आदिम-सूई एक-लवणं, मज्झिम-सूई तिण्णि-लवणं, बाहिर-सूई पंच-लवणं, एवेसि ति-ट्ठाण-सूईणं मज्झे कमसो चउ-छक्कट्ट-लवणाणि मेलिदे धावई-संडदीवस्स आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूईओ होति । पुणो धावईसंडदीवस्स ति-ट्ठाण-सूईणं मज्झे पुठिवल्ल-पक्खेवं दुगुणिय कमसो मेलिदे कालोदक-समुद्रस्स ति-ट्ठाण-सूईओ होवि । एवं हेट्ठिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा ति-ट्ठाण-सूईणं मज्झे चउ-छक्कट्ट-लवणाणि अक्कभहियं करिय उवरिम-दुगुण-दुगुणं कमेण मेलायेदक्खं जाव सयंभूरमणसमुद्रो ति ॥

अर्थ—अठारहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रकी आदिम सूची एक लाख, मध्यम सूची तीन लाख और बाह्य सूची पाँच लाख योजन है । इन तीन सूचियोंके मध्यमें क्रमशः चार लाख, छह लाख और आठ लाख मिलाने पर धातकी खण्डकी आदिम, मध्यम और बाह्य सूची होती है । पुनः धातकीखण्डकी तीनों सूचियोंमें पूर्वोक्त प्रक्षेपको दुगुनाकर क्रमशः मिला देनेपर कालोदक समुद्रकी तीनों सूचियाँ होती हैं । इसप्रकार अधस्तन द्वीप अथवा समुद्रकी त्रिस्थान सूचियोंमें चार, छह और आठ लाख अधिक करके आगे-आगे स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त दूने-दूने क्रमसे मिलाते जाना चाहिए ॥

विशेषार्थ—

लवणसमुद्र की = प्रक्षेप	१००००० यो० + ४००००० यो०	३००००० यो० + ६००००० यो०	५००००० यो० + ८००००० यो०
धातकीखण्डद्वीपकी = दुगुना प्रक्षेप	५००००० यो० + ४००००० × २	६००००० यो० + ६००००० × २	१३००००० यो० + ८००००० × २
कालोदक समुद्रकी = दुगुना प्रक्षेप	१३००००० यो० + ८००००० × २	२१००००० यो० + १२००००० × २	२९००००० यो० + १६००००० × २
पुष्करवर द्वीपकी =	२९००००० यो०	४५००००० यो०	६१००००० यो०

इसीप्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रकी तीनों सूचियाँ प्राप्त करनेकी विधि—

तत्थ अन्तिम-वियप्पं वत्ताहस्सामो । तं जहा—सयंभूरमणवीवस्सं आदिम-सूई-
मज्जे रज्जूए चउडभागं पुणो पंचहत्तारि-सहस्स-जोयणाणि संमिलिदे सयंभूरमणसमुद्रस्स
आदिम-सूई होदि । तस्स ठवणा—७ । ४ धण जोयणाणि ७५००० । पुणो तद्दीवस्स
मज्झिम-सूइम्मि तिय-रज्जूणं अट्ठम-भागं पुणो एवक-लक्ख बारस-सहस्स-पंचसय-जोयणाणि
संमिलिदे सयंभूरमणसमुद्रस्स मज्झिम-सूई होइ । तस्स ठवणा—७ । ३ धण जोयणाणि ।
११२५०० । पुणो सयंभूरमणवीवस्स बाहिर-सूई-मज्जे रज्जूए 'अट्ठ' पुणो विवड्ढ-लक्ख-
जोयणाणि संमिलिदे^१ अरम-समुद्र-अन्तिम-सूई होइ । तस्स ठवणा—७ । २ धण
जोयणाणि १५०००० ।

अर्थ—उत्तमें अन्तिम विकल्प कहते हैं । वह इसप्रकार है—स्वयम्भूरमणद्वीपकी आदिम
सूचीमें राजूके चतुर्थ-भाग और पचहत्तर हजार योजनों को मिलाने पर स्वयम्भूरमण समुद्रकी आदिम
सूची होती है । उसकी स्थापना— $\frac{१}{३}$ राजू + ७५००० यो० । पुनः इसी द्वीपकी मध्यम सूचीमें तीन
राजुओं के आठवें भाग और एक लाख बारह हजार पाँच सौ योजनों को मिलाने पर स्वयम्भूरमण-
समुद्र की मध्यम सूची होती है । उसकी स्थापना— $\frac{३}{३}$ राजू + ११२५०० यो० । पुनः स्वयम्भूरमण-
द्वीपकी बाह्य सूचीमें राजूके अर्ध भाग और डेढ़ लाख योजनोंको मिलानेपर उपरिम (स्वयम्भूरमण)
समुद्रकी अन्तिम सूची होती है । उसकी स्थापना— $\frac{३}{३}$ राजू + १५०००० यो० ।

एत्थ वड्ढोण आणयण-हेट्ठमिमा सुत्त-गाहा—

धावइसंढ-प्पहुवि, इच्छिय दीवोवहीण रुवद्धं ।

दु-ति-चउ-रुवेहि, हवी ति-ट्ठाणे होदि वरियड्ढी ॥२७८॥

अर्थ—यहाँ वृद्धियोंको प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

धातकीखण्ड आदि इच्छित द्वीप-समुद्रोंके आधे विस्तारको दो, तीन और चारसे गुणा
करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो क्रमसे तीनों स्थानोंमें उतनी वृद्धि होती है ॥२७८॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

क्रमशः तीनों वृद्धियाँ = $\frac{\text{इष्ट द्वीप या समुद्रका विस्तार}}{२} \times \text{क्रमशः २, ३ और ४ ।}$

उदाहरण—(१) मानलो—यहाँ क्षीरवर समुद्र इष्ट है । जिसका विस्तार ५१२००००० योजन है अतः—

क्षीर० स० में तीनों वृद्धियाँ = $11200000 \times 2, 3$ और ४ अर्थात्

$22400000 \times 2 = 44800000$ योजन आदिम सूची का वृद्धि प्रमाण ।

$22400000 \times 3 = 67200000$ योजन मध्यम सूची का वृद्धि प्रमाण ।

$22400000 \times 4 = 89600000$ योजन बाह्य सूची का वृद्धि प्रमाण ।

अर्थात् क्षीरवरद्वीपके तीनों सूची-व्यासमें इन तीनों वृद्धियोंका प्रमाण जोड़ देनेपर क्षीरवर समुद्रके तीनों सूची-व्यास का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।

(२) यहाँ अन्तिम समुद्र इष्ट है । जिसका विस्तार $\frac{1}{2}$ राजू + ७५००० योजन है अतः—

अन्तिम स० में तीनों वृद्धियाँ = $\frac{\frac{1}{2} \text{ राजू} + 75000 \text{ यो०}}{2} \times$ क्रमशः २, ३ और ४ अर्थात्

$\frac{1}{2} \text{ राजू} + 37500 \text{ यो०} \times 2 = \frac{1}{2} \text{ राजू} + 75000 \text{ यो०} ।$

$\frac{1}{2} \text{ राजू} + 37500 \text{ यो०} \times 3 = \frac{1}{2} \text{ राजू} + 112500 \text{ यो०} ।$

$\frac{1}{2} \text{ राजू} + 37500 \text{ यो०} \times 4 = \frac{1}{2} \text{ राजू} + 150000 \text{ यो०} ।$

स्वयम्भूरमणद्वीपकी आदि सूची $\frac{1}{2}$ रा०—२२५००० यो०, मध्यम सूची $\frac{1}{2}$ राजू — १८७५०० यो० और अन्त सूची $\frac{1}{2}$ राजू—१५०००० यो० है । इसमें उपर्युक्त प्रक्षेपभूत वृद्धियाँ क्रमशः जोड़ देनेसे अन्तिम समुद्रकी तीनों सूचियों का प्रमाण क्रमशः प्राप्त हो जाता है । यथा—

स्वयम्भूरमणद्वीपका आदि सूची-व्यास $\frac{1}{2}$ रा०—२२५००० यो०

प्रक्षेप $\frac{1}{2}$ रा० + ७५००० यो० ।।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका आदि सूची-व्यास $\frac{1}{2}$ रा० — १५०००० यो०

स्वयम्भूरमणद्वीपका मध्यम सूची-व्यास $\frac{1}{2}$ रा० — १८७५०० यो०

प्रक्षेप $\frac{1}{2}$ राजू + ११२५०० यो०

स्वयम्भूरमण समुद्रका मध्यम सूची-व्यास $\frac{1}{2}$ रा० — ७५००० यो०

स्वयम्भूरमण द्वीपका अन्तिम सूची-व्यास $\frac{1}{2}$ राजू — १५०००० यो०

प्रक्षेप $\frac{1}{2}$ राजू + १५०००० यो०

स्वयम्भूरमण समुद्रका अन्तिम सूची-व्यास १ राजू

उन्नीसवाँ-पक्ष

अधस्तन द्वीप-समुद्रसे उपरिम द्वीप-समुद्रके आयाममें वृद्धिका प्रमाण—

एऊणवीसदिम-पक्खे अप्पवहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—लवणसमुद्रस्सायामं
णव-लक्खं, तम्मि अट्ठारस-लक्खं संमेलिदे धादईसंडदीवस्स आयामं होदि । धादईसंड-
दीवस्स^१ आयामम्मि पक्खेवभूव-अट्ठारस-लक्खं दु-गुणिय मेलिदे कालोदगसमुद्रस्स
आयामं होइ । एवं पक्खेवभूव-अट्ठारस-लक्खं दुगुण-दुगुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभू-
रमणसमुद्रो त्ति ॥

अर्थ—उन्नीसवें पक्षमें अप्पवहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रका आयाम नौ लाख है । इसमें
अठारह लाख मिलानेपर धातकीखण्डका आयाम होता है । धातकीखण्डके आयाममें प्रक्षेपभूत
अठारह लाख को दुगुना करके मिलाने पर कालोदक समुद्र का आयाम होता है । इसप्रकार स्वयम्भू-
रमणसमुद्र पर्यन्त प्रक्षेपभूत अठारह-लाख दुगुने-दुगुने होते गये हैं ।

स्वयम्भूरमणद्वीपके आयामसे स्वयं० समुद्रके आयाममें वृद्धि का प्रमाण—

तत्थ अन्तिम-विषयं वत्तइस्सामो—तत्थ सयंभूरमण-दीवस्स आयामादो
सयंभूरमणसमुद्रस्स आयाम-वड्ढी णव-रज्जुणं अट्ठम-भागं पुणो तिण्णि-लक्ख-सत्ततीस-
सहस्स-पंचसय-जोयणेहि अब्भहियं होइ । तस्स ठवणा—७ । ६ धण जोयणाणि
३३७५०० ।

अर्थ—यहाँ अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमणद्वीपके आयामसे स्वयम्भूरमणसमुद्रके
आयाममें नौ राजुओंके आठवें भाग तथा तीन लाख सैंतीस हजार पाँच सौ योजन अधिक वृद्धि होती
है । उसकी स्थापना— $\frac{1}{6}$ राजू + ३३७५०० यो० ॥

आयाम-वृद्धि प्राप्त करनेकी विधि—

लवणसमुद्रादि - इच्छिय दीव-रयणायरारणं आयाम-वड्ढि-पमाणायण-हेटुं
इमं गाहा-सुत्तं—

धादइसंड - प्पहुदि, इच्छिय - दीवोवहीण वित्थारं ।

अद्विय तं णवहि गुणं, हेट्टिमवो होदि उवरिमे वड्ढी ॥२७६॥

एवं दीवोवहीणं णाणाविह-खेत्तफल-परूवणं समत्तं ॥२७॥

अर्थ—लवणसमुद्रको आदि लेकर इच्छित द्वीप-समुद्रोंकी आयाम-वृद्धिके प्रमाणको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

धातकीखण्डको आदि लेकर द्वीप-समुद्रोंके विस्तारको आधा करके उसे नीसे गुणित करने पर प्राप्त राशि प्रमाण अधस्तन द्वीप या समुद्रसे उपरिम द्वीप या समुद्रके आयाममें वृद्धि होती है ॥२७९॥

विशेषार्थ—इसी अधिकारकी गाथा २४४ के नियमानुसार लवणसमुद्रका आयाम [(२ लाख — १ लाख) × ६] = ९ लाख योजन, धातकीखण्ड द्वीपका [(४ लाख — १ लाख) × ६] = २७ लाख योजन और कालोदक-समुद्रका ६३ लाख योजन है। अधस्तन द्वीप-समुद्रके आयाम प्रमाणसे उपरिम द्वीप-समुद्रके आयाममें वृद्धि-प्रमाण प्राप्त करने हेतु उपर्युक्त गायानुसार सूत्र इस प्रकार है—

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{\text{दृष्ट द्वीप — समुद्रका विस्तार}}{२} \times ९$$

उदाहरण—(१) मानलो—यहाँ कालोदक समुद्र दृष्ट है। जिसका विस्तार ८ लाख योजन है अतः

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{८०००००० \text{ यो०}}{२} \times ९ = ३६०००००० \text{ यो०} ।$$

धातकीखण्डद्वीपके २७ लाख योजन आयाममें ३६०००००० यो० की वृद्धि होकर कालोदक-समुद्रके आयामका प्रमाण (२७ लाख + ३६ लाख =) ६३ लाख योजन प्राप्त होता है।

(२) स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार ३ राजू + ७५००० योजन है। अतएव उपर्युक्त नियमानुसार स्वयम्भूरमणद्वीपके आयामसे उसकी आयामवृद्धिका प्रमाण इसप्रकार होगा—

$$\text{आयाम वृद्धि} = \frac{३ \text{ राजू} + ७५००० \text{ यो०}}{२} \times ९$$

$$= ६ \text{ राजू} + ३३७५०० \text{ योजन} । \text{ अर्थात्}$$

$$\text{वृद्धिका प्रमाण } ६ \text{ राजू} + ३३७५०० \text{ यो०} =$$

(स्वयम्भूरमणसमुद्रका आयाम ६ राजू — २२५००० यो०) — (स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम ६ राजू — ५६२५०० यो०) ।

इसप्रकार द्वीप-समुद्रोंके नाना प्रकारके क्षेत्रफलका प्ररूपण समाप्त हुआ ॥५॥

तिर्यञ्च जीवोंके भेद-प्रभेद—

एयक्ख-घियल-सयला, आरस तिय दोणिं होति उत्त-कमे ।

मू - आउ - तेउ - वाऊ, पत्तेक्कं वावरा सुहमा ॥२८०॥

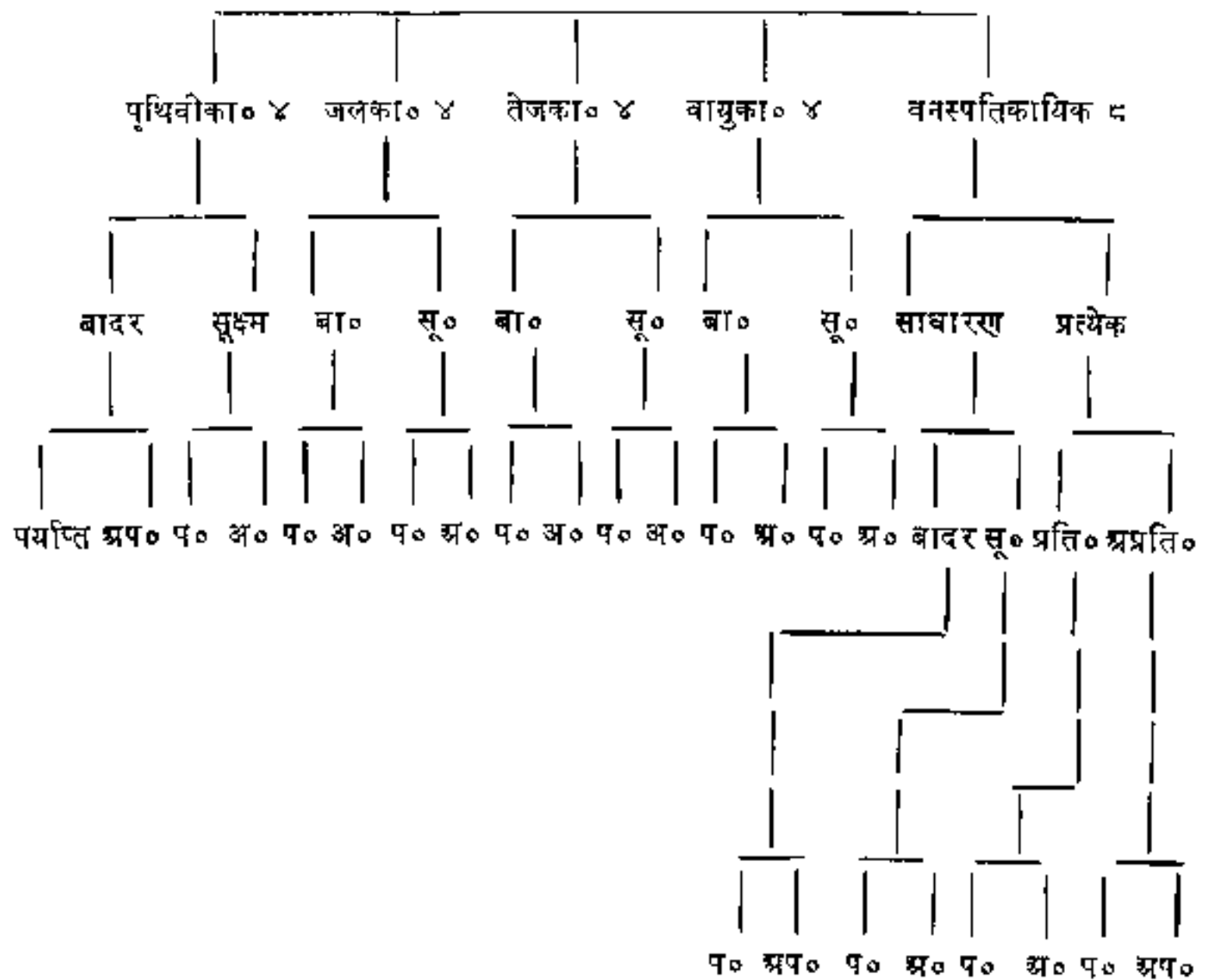
साहारण - पत्तेय - सरीर - वियप्पे वणप्फई^१ दुविहा ।

साहारण थूलिदरा^२, पदिट्टिदिवरा^३ य पत्तेयं ॥२८१॥

अर्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीव कहे जाने वाले क्रमसे बारह, तीन और दो भेदरूप हैं । इनमेंसे एकेन्द्रियोंमें पृथिवी, जल, तेज और वायु, ये प्रत्येक बादर एवं सूक्ष्म होते हैं । साधारण शरीर और प्रत्येक शरीरके भेदसे वनस्पति कायिक जीव दो प्रकार हैं । इनमें साधारण-शरीर जीव बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक शरीर जीव प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित (के भेदसे दो-दो प्रकारके) होते हैं ॥२८०-२८१॥

विशेषार्थ—

एकेन्द्रियोंके २४ भेद—



१. द. व. क. ज. वणप्फई । २. द. व. क. ज. थूलिदिदा । ३. द. व. क. ज. परिदिट्टिदिदा ।

तिर्यञ्च त्रस जीवोंके १० भेद और कुल ३४ भेद—

वियला बि-ति-चउ-रक्खा, सयला सण्णी असण्णिणो एदे ।

पज्जसेदर - भेदा^१, चोत्तीसा अह अणेय - बिहा ॥२८२॥

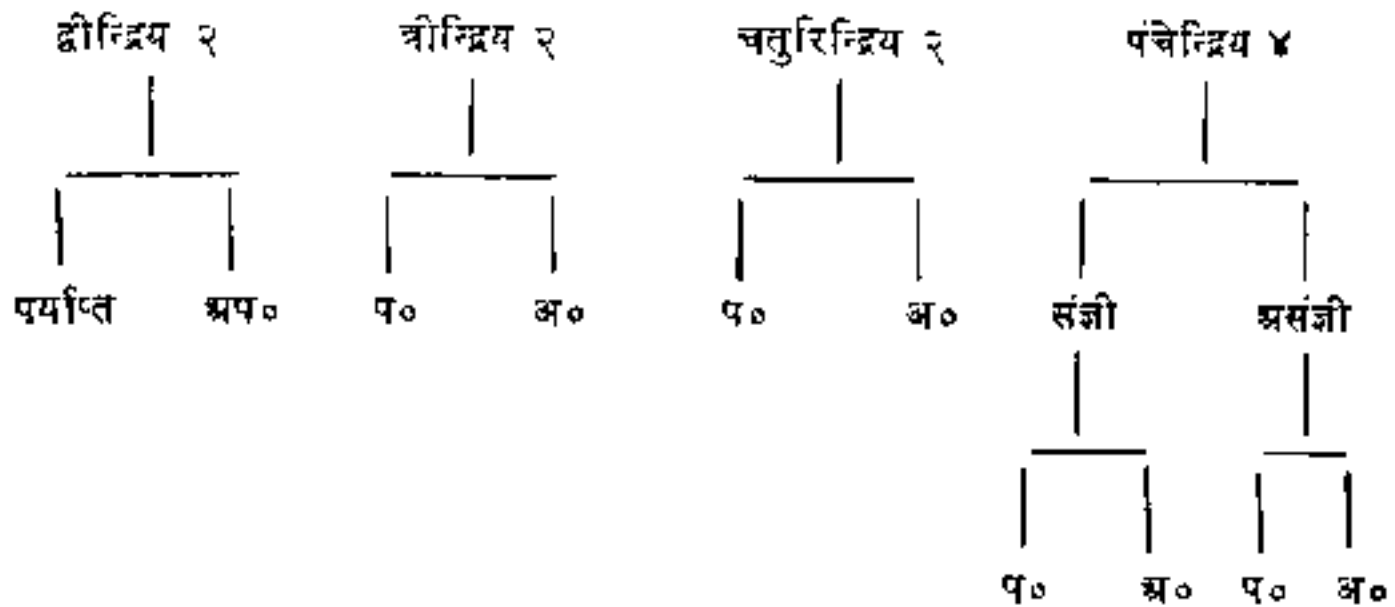
पृथिवी० ४	अप० ४	तेज० ४	वायु ४	साधा० ४	पत्तय ४
बा० सू०	बा० सू०	बा० सू०	बा० सू०	बा० सू०	प० अ०

बि० २	ति० २	च० २	असंजी २	संजी २
प० अ०	प० अ०	प० अ०	प० अ०	प० अ०

एवं जीव-भेद-परूपणा गदा ॥६॥

अर्थ—दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय और चारइन्द्रियके भेदसे विकल जीव तीन प्रकार के तथा संजी और असंजीके भेदसे सकल जीव दो प्रकारके हैं। ये सब जीव (१२ + ३ + २) पर्याप्त एवं अपर्याप्तके भेदसे चौत्तीस प्रकारके होते हैं। अथवा अनेक प्रकारके हैं ॥२८२॥

विशेषार्थ—



इसप्रकार एकेन्द्रियके २४, द्वीन्द्रियके २, त्रीन्द्रियके २, चतुरिन्द्रियके २ और पंचेन्द्रियके ४, ये सब मिलकर तिर्यञ्चोंके ३४ भेद होते हैं।

इसप्रकार जीवोंकी भेद-परूपणा समाप्त हुई ॥६॥

एतो चोत्तीस-विहाणं तिरिविहाणं परिमाणं उच्चदे—

अर्थ—यहसे आगे चौत्तीस प्रकारके तिरिचर्चोंका प्रमाण कहते हैं—

तेजस्कायिक जीव राशिका उत्पादन विधान—

गुणाविहारेण भाइरिय-परंपरा-गदोवदेसेण तेजस्काइय-रासि-उत्पायण-विहाणं वत्तइस्सामो । तं जहा—एग^१ घणलोगं सलागा-भूदं ठविय अवरेगं^२ घणलोगं विरलिय एक्केवक^३-रुवस्स घणलोगं दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो एगरुवमवणे-यव्वं । ताहे एक्का अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा लद्धा हवन्ति । तस्सुप्पण्ण-रासिस्स पलिदो-वमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वग्ग सलागा हवन्ति । तस्सद्धच्छेदणय-सलागा असंखेज्जा लोगा, रासी वि असंखेज्जलोगमेत्तो जादो ।

अर्थ—सूत्रसे अविहृद्ध आचार्य-परम्परासे प्राप्त उपदेशके अनुसार तेजस्कायिक राशिका उत्पादन-विधान कहते हैं । वह इसप्रकार है—एक घनलोकको शलाकारूपसे स्थापित कर और दूसरे घनलोकका विरलन करके एक-एक-रूपके प्रति घनलोकप्रमाणको देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाका राशिमेंसे एक-रूप कम करना चाहिए । तब एक अन्योन्यगुणकार-शलाका प्राप्त होती है । इसप्रकारसे उत्पन्न हुई उस राशिकी वर्गशलाकाएँ पत्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण होती हैं । इसीप्रकारकी अर्धच्छेदशलाकाएँ असंख्यातलोक प्रमाण और वह राशि भी असंख्यातलोक प्रमाण होती है ।

पुणो उट्ठिद^४-महारासि विरलिदूण तत्थ एक्केवक-रुवस्स उट्ठिद-महारासि-प्रमाणं दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो अवरेगरुवमवणेयव्वं । ताहे^५ अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा दोण्णि, वग्ग-सलागा अद्धच्छेदणय-सलागा रासी च असंखेज्जा लोगा । एवमेदेण कमेण णेदव्वं जाव लोगमेत्त-सलागा-रासी समत्तो सि । ताहे अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा प्रमाणं लोगो^६, सेस-तिगमसंखेज्जा लोगा ।

अर्थ—पुनः उत्पन्न हुई इस महाराशिका विरलन करके उसमेंसे एक-एक रूपके प्रति इसी महाराशि-प्रमाणको देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाकाराशिमेंसे एक अन्य रूप कम करना चाहिए । इससमय अन्योन्य-गुणकार-शलाकाएँ दो और वर्गशलाका एवं अर्धच्छेद-शलाका-राशि असंख्यातलोक-प्रमाण होती है । इसप्रकार जब तक लोक प्रमाण शलाकाराशि समाप्त न हो जावे तब तक इसी क्रमसे करते जाना चाहिए । उस समय अन्योन्यगुणकार-शलाकाएँ लोकप्रमाण और शेष

१. द. व. कं. ज. पुणसोगस्स । २. द. व. क. ज. पुणलोगं । ३. द. व. एक्केवकं सरुवस्स ।

४. द. क. ज. उट्ठिद, व. ईट्ठिद । ५. द. व. क. ज. ता जह । ६. द. व. क. ज. लोगा ।

तीन राशियों ((१) उस समय उत्पन्न हुई महाराशि (२) उसकी वर्गशलाकाओं और (३) अर्धच्छेद-शलाकाओं) का प्रमाण असंख्यातलोक होता है ।।

पुणो उट्टिद - महारासि - विरलितूण तं चेव सलागा-भूद ठविय विरलिय एक्केक्क-रूवस्स उप्पण्ण-महारासि-पमाणं दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय^१ सलागा-रासीदो एग-रूवमवणेयव्वं । ताहे अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा लोगो रूवाहिओ, सेस-तिगम-संखेज्जा लोगा ।।

अर्थ—पुनः उत्पन्न हुई इस महाराशिका विरलन करके इसे ही शलाकारूपसे स्थापित करके विरलित राशिके एक-एक रूपके प्रति उत्पन्न महाराशि-प्रमाणको देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाकाराशिमेंसे एक रूप कम करना चाहिए । तब अन्योन्यगुणकार-शलाकाएँ एक अधिक लोक-प्रमाण और शेष तीनों राशियाँ असंख्यात-लोक-प्रमाण ही रहती हैं ।

पुणो उप्पण्णरासि विरलिय रूवं पडि उप्पण्णरासिमेव दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो अणेग रूवमवणेयव्वं । ताहे अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा लोगो दुरुवाहिओ, सेस-तिगमसंखेज्जा लोगा । एवमेदेण कमेण^२ दुरुवाणुक्कस्स-संखेज्जलोग-मेत्त लोग-सलागासु दुरुवाहिय लोगम्मि पविट्ठासु चत्तारि^३ वि असंखेज्जा-लोगा हवन्ति । एवं णेदव्वं जाव विदियधार-टुविद-सलागारासी समत्तो^४ स्ति । ताहे चत्तारि वि असंखेज्जा लोगा ।

अर्थ—पुनः उत्पन्न राशिका विरलन करके एक-एक रूपके प्रति उत्पन्न राशिको ही देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाकाराशिमेंसे अन्य एक रूप कम करना चाहिए । तब अन्योन्य-गुणकार-शलाकाएँ दो रूप अधिक लोक-प्रमाण और शेष तीनों राशियाँ असंख्यात लोक-प्रमाण ही रहती हैं । इसप्रकार इस क्रमसे दो कम उत्कृष्ट-संख्यातलोक-प्रमाण अन्योन्य-गुणकार-शलाकाओंके दो अधिक लोक-प्रमाण अन्योन्य-गुणकार-शलाकाओंमें प्रविष्ट होनेपर चारों ही राशियाँ असंख्यात लोकप्रमाण हो जाती हैं । इसप्रकार जब तक दूसरीबार स्थापित शलाकाराशि समाप्त न हो जावे तब तक इसी क्रमसे करना चाहिए । तब भी चारों राशियाँ असंख्यात - लोक - प्रमाण होती हैं ।

१. द. ब. क. ज. वग्गिद करिय । २. द. ब. क. ज. दुरुवाणुक्कस्स । ३. द. ब. वि तियसंखेज्जा ।

४. द. ब. क. ज. पविट्ठा ।

पुणो उट्ठिद-महारासि सलागाभूदं ठविय अवरेगमुट्ठिद^१-महारासि विरलिदूण उट्ठिद-महारासि-पमाणं^२ दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो एग-रुवमवणे-यव्वं । ताहे चत्तारि वि असखेज्जा लोगा । एवमेवेण कमेण^३ णेदव्वं जाव तवियवारं ठुविद-सलागारासी समत्तो त्ति । ताहे^४ चत्तारि वि असखेज्जा लोगा ।

अर्थ—पुनः उत्पन्न हुई महाराशिकी शलाकारूपसे स्थापित करके उसी उत्पन्न महाराशि का विरलन करके उत्पन्न महाराशि प्रमाणको एक-एक रूपके प्रति देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाकाराशिमेंसे एक कम करना चाहिए । इससमय चारों राशियाँ असंख्यात-लोकप्रमाण रहती हैं । इसप्रकार तीसरीवार स्थापित शलाका-राशिके समाप्त होने तक इसी क्रमसे ले जाना चाहिए । तब चारों ही राशियाँ असंख्यात-लोक-प्रमाण रहती हैं ।

तेजस्कायिक जीव राशि और उनकी अन्योन्य-गुणकार-शलाकाओंका प्रमाण—

पुणो उट्ठिद-महारासि तिप्पडि-रासि कादूण तत्थेग सलागाभूदं ठविय अणेग-रासि विरलिदूण तत्थ एक्केक्क-रुवस्स एग-रासि-पमाणं दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो एग रुवमवणेयव्वं । एवं पुणो पुणो करिय णेदव्वं जाव^५ अदिक्कंत-अण्णोण्ण-गुणगार-सलागाहि ऊण-चउत्थवार-ठुविद-अण्णोण्ण-गुणगार-सलागारासी समत्तो त्ति । ताहे^६ तेउकाइय^७-रासी उट्ठिदो हवदि = रि । तस्स गुणगार-सलागा चउत्थवार-ठुविद-सलागा-रासि-पमाणं होदि ॥६॥^८

अर्थ—पुनः इस उत्पन्न महाराशिकी तीन महाराशियाँ करके उनमेंसे एकको शलाकारूपसे स्थापित कर और दूसरी एक राशिका विरलन करके उसमेंसे एक-एक-रूपके प्रति एक राशिको देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाका-राशिमेंसे एक रूप कम करना चाहिए । इसप्रकार पुनः पुनः करके जब तक अतिक्रान्त अन्योन्य-गुणकार-शलाकाओंसे रहित चतुर्थवार स्थापित अन्योन्य-गुणकार-शलाका-राशि समाप्त न हो जावे तब तक इसी क्रमसे ले जाना चाहिए । तब तेजस्कायिक-राशि उत्पन्न होती है जो असंख्यात-घनलोक-प्रमाण है । (यहाँ घनलोककी संदृष्टि = तथा असंख्यात की संदृष्टि रि है ।) उस तेजस्कायिक राशिकी अन्योन्य-गुणकार-शलाकाएँ चतुर्थवार स्थापित शलाका-राशिके सदृश होती हैं ।

(इस राशिके असंख्यातकी संदृष्टि ६ है ।)

१. द. क. ज. वगेतमुट्ठिद, व. वेत्तागमुट्ठिद । २. द. समाणं । ३. द. व. णावव्वं । ४. द. व. क. ज. तादे । ५. द. व. क. ज. जाव । ६. द. व. क. ज. तादे । ७. द. व. तेउकायपरासी । ८. द. व. ॥६॥

सामान्य पृथिवी, जल और वायुकायिक जीवोंका प्रमाण—

पुनो तेजकाइयरासिमसंखेज्ज-लोगेण भागे हिदे लद्धं तम्मि चेव पक्खित्ते पुढविकाइयरासी होदि = रि । १० ।।

अर्थ—पुनः तेजस्कायिक-राशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे इसी (तेजस्कायिक) राशिमें मिला देनेपर पृथिवीकायिक जीव राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—यथा—इसका सूत्र इसप्रकार है—

$$(\text{सामान्य}) \text{ पृथिवीकायिक राशि} = \text{तेजस्कायिक राशि} + \frac{\text{ते० का० रा०}}{\text{असं० लोक}}$$

$$\text{या} = \text{रि} + \frac{\text{रि}}{४} \text{ या} = \text{रि } १\frac{१}{४} ।$$

नोट—यहाँ १० का अंक असंख्यातलोक + १ का प्रतीक है ।

तम्मि असंखेज्जलोगेण भागे हिदे लद्धं तम्मि चेव पक्खित्ते आउकाइय-रासी होदि = रि । १० । १०^२ ।।

अर्थ—इसमें असंख्यातलोकका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे इसी राशिमें मिला देनेपर जलकायिक जीवराशिका प्रमाण प्राप्त होता है ।।

$$\text{विशेषार्थ—(सामान्य) जलकायिक राशि} = \text{पृ० का० रा०} + \frac{\text{पृ० का० राशि}}{\text{असं० लोक}}$$

$$\text{या} = \text{रि } १\frac{१}{४} + \frac{\text{रि}}{४} \text{ या} = \text{रि } १\frac{१}{४} ।$$

तम्मि असंखेज्जलोगेण भागे हिदे लद्धं तम्मि चेव पक्खित्ते वाउकाइय-रासी होदि = रि । १० । १० । १०^३ ।।

अर्थ—इसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे इसी राशिमें मिला देनेपर वायुकायिक जीवराशिका प्रमाण होता है ।

$$\text{विशेषार्थ—(सामान्य) वायुकायिक राशि} = \text{वा० का० राशि} + \frac{\text{वा० का० रा०}}{\text{असं० लोक}}$$

$$\text{या} = \text{रि } १\frac{१}{४} \text{ या } \frac{\text{रि}}{४} \text{ या } \text{रि } १\frac{१}{४} ।$$

या $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ ।

बादर और सूक्ष्म जीव राशियोंका प्रमाण—

पुनो एदे चत्तारि सामण्ण रासीओ पत्तोक्कं तप्पाओग्ग-असंख्खेज्जलोगेण खंदिदे तत्थेग^१-खंडं सग-सग-बादर-रासि-पमाणं होदि । तेउ $\equiv$ रि पुढवि $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ । आउ $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ । बाउ $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ । सेस-बहुभागा सग-सग-सुहुस-जीवा होति । तेउ $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ । पुढवि $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ । आउ $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ । बाउ $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ ॥

अर्थ—पुनः इन चारों सामान्य राशियोंमेंसे प्रत्येकको अपने योग्य असंख्यात लोकसे खण्डित करने पर एक भाग रूप अपनी-अपनी बादर राशिका प्रमाण होता है और शेष बहुभाग-प्रमाण अपने-अपने सूक्ष्म जीव होते हैं ।

विशेषार्थ—बादर ते० का० राशि = $\frac{\text{तेज० राशि}}{\text{असं० लोक}}$

या $\equiv$ रि $\div \frac{1}{2}$ या $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$

या $\equiv$ रि बादर तेजस्कायिक जीवोंका प्रमाण ।

सूक्ष्म ते० का० राशि = (सा०) ते० का० राशि—बादर तेज० राशि

या $\equiv$ रि — $\equiv$ रि

या $\equiv$ रि — $\equiv$ रि $\div \frac{1}{2}$

या $\equiv$ रि — $\equiv$ रि $\times \frac{1}{2}$

या $\equiv$ रि ($\frac{1}{2}$ — $\frac{1}{2}$)

या $\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ सूक्ष्म ते० का० राशिका प्रमाण ।

नोट—यहाँ ८ का अंक असंख्यात लोक — १ का प्रतीक है ।

बादर पृ० का० राशि = $\frac{\text{पृ० का० राशि}}{\text{असं० लोक}}$

या $\equiv$ रि $\frac{1}{2} \div \frac{1}{2}$

या $\equiv$ रि $\frac{1}{2} \frac{1}{2}$ बादर पृ० का० जीवोंका प्रमाण ।

सूक्ष्म पृ० का० राशि = पृ० का० राशि—बादर पृ० का० राशि

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} - \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१}{४}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} (\frac{१}{४} - \frac{१}{४})$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१}{४} सूक्ष्म पृ० का० जीवोंका प्रमाण ।$$

$$\text{बादर जल का० राशि} = \frac{\text{जलका० राशि}}{\text{असं० लोक}}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \div \frac{१}{४}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१}{४} \text{ बादर जलका० राशिका प्रमाण ।}$$

$$\text{सूक्ष्म जलका० राशि} = \text{जलका० राशि} - \text{बादर जलका० राशि}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} - \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१}{४}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} (\frac{१}{४} - \frac{१}{४}) \text{ या } \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१}{४} \text{ सूक्ष्म ज० का० राशिका प्रमाण ।}$$

$$\text{बादर वायु का० राशि} = \frac{\text{वायु का० राशि}}{\text{असं० लोक}}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \div \frac{१}{४}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१}{४} \text{ बादर वायु का० जीवोंका प्रमाण}$$

$$\text{सूक्ष्म वायु का० राशि} = \text{वायु का० रा०} - \text{बादर वायु का० राशि}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} - \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१}{४}$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} (\frac{१}{४} - \frac{१}{४})$$

$$या \equiv रि \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१०}{४} \frac{१}{४} \text{ सूक्ष्म वायु का० जीवोंका प्रमाण ।}$$

पृथिवीकाधिक आदि चारोंकी पर्याप्त अपर्याप्त जीव राशिका प्रमाण—

पुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जवि-भागमेत्त-जगपदरं आवलियाए असंखेज्जवि-
भागेण गुणिद - पदरंगुलेहि भागे हिवे पुढविकाइय-बादर-पज्जत्त-रासि-पमाणं होवि

=
४ २
प ९ ।
रि

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित प्रतरांगुलका जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसका पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव राशिका प्रमाण होता है ॥

विशेषार्थ—

$$\text{पृथिवीका० बादर पर्याप्त राशि} = \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\frac{\text{प्र०} \times \text{आ०}}{\text{अस०}}} \times \frac{\text{पल्य०}}{\text{अस०}}$$

$$\text{या } \frac{\frac{४ \times २}{५}}{\text{रि}} \quad \text{या } \frac{४}{५} \quad \text{या } = \frac{४}{५} \times \frac{५}{४} \text{ रि}$$

या $\frac{४}{५} \times \frac{५}{४} \text{ रि}$ बादर पृथिवीका० पर्याप्त जीवोंका प्रमाण ।

तम्मि आवलियाए असंखेज्जवि-भागेण गुणिदेहि बादर-आउ-पज्जत्त-रासि-
पमाणं होवि $\frac{४}{५}$ रि

अर्थ—इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर बादर जलकायिक पर्याप्त जीव-
राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—जलका० बादर पर्याप्त राशि = पृथिवी० बादर पर्याप्त $\times$ आवली० अस०

या $\frac{५०}{४} \times \frac{१}{५}$ या $\frac{५}{४} \text{ रि}$ जलकायिक बादर पर्याप्त राशिका प्रमाण ।

पुणो घणावलिस्स असंखेज्जवि-भागे आदर-तेउ-पज्जत्त-जीव-परिमाणं होवि
 $\frac{५}{४} \text{ रि}$ ॥

अर्थ—पुनः घनावलीके असंख्यातवें-भाग-प्रमाण बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव राशि
होती है ॥

विशेषार्थ—तेजस्कायिक बादर पर्याप्त राशि = घनावली या $\frac{६}{५}$ रि ।

पुणो लोगस्त संखेज्जदि-भागे बादर-वाउ-पञ्जत्त-जीव-प्रमाणं होदि ॥

अर्थ—पुनः लोकके संख्यातवें भागरूप बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवराशि होती है ।

विशेषार्थ—वायु बादर पर्याप्त राशि = लोक सं० या $\frac{३}{७}$ ।

सग-सग-बादर-पञ्जत्त-राशि सग-सग-बादर-रासीवो सोहिदे सग-सग-बादर-अपञ्जत्त-रासी होवि ।

$$\begin{array}{l|l} \text{पुठ} \equiv \text{रि } \frac{१०}{९} \text{ रिण } \frac{८}{५} \text{ रि} & \text{वाउ} \equiv \text{रि } \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \text{ रिण } \frac{८}{५} \text{ रि} \\ \hline \end{array}$$

$$\begin{array}{l|l} \text{तेउ} \equiv \text{रि रिण } \frac{८}{५} \text{ रि} & \text{वाउ} \equiv \text{रि } \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \text{ रिण } \frac{८}{५} \text{ रि} \\ \hline \end{array}$$

अर्थ—अपनी-अपनी बादर राशिमेंसे अपनी-अपनी बादर पर्याप्त राशिको घटा देनेपर शेष अपनी-अपनी बादर अपर्याप्त राशिका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ—तेजस्का० बादर अपर्याप्त राशि = ते० बा० राशि — ते० बा० पर्याप्त राशि
या $\equiv \text{रि } \frac{१}{५} - \frac{६}{५} \text{ रि} \text{ या } \equiv \text{रि रिण } \frac{६}{५} \text{ रि} ।$

पृ० का० बादर अप० राशि = पृ० का० बादर — पृ० का बादर पर्याप्त राशि

$$\text{या} \equiv \text{रि } \frac{१०}{९} \frac{१}{९} - \frac{८}{५} \times \frac{१}{५} \text{ रि} ।$$

$$\text{या} \equiv \text{रि } \frac{१०}{९} \frac{१}{९} - \frac{८}{५} \text{ रि} \quad \left| \quad \frac{१}{९} \text{ पृ० कायिक बा० अपर्याप्त राशि ।} \right.$$

जलका० बादर अप० राशि = जलका० बादर — जलका० पर्याप्त राशि ।

$$\text{या} \equiv \text{रि } \frac{१०}{९} - \frac{१०}{९} \frac{१}{९} - \frac{८}{५} \text{ रि} ।$$

$$\text{या} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{१}{९} = \frac{१००}{८१} \text{ जलका० बादर अपर्याप्त राशि ।}$$

वायुका० बादर अप० राशि = वायुका० बादर राशि — वायुका० पर्याप्त राशि ।

$$\text{या} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{१}{९} = \frac{१०००}{७२९} \text{ वायुका० बादर अपर्याप्त राशि ।}$$

पुणो पृथिवीकायादीनां सुहृम-रासि-पक्षेयं तत्प्राओम्य संक्षेज्ज-रूवेहि खंडिदे
बहुभाग सुहृम-पञ्जस्त-जीव-रासि-प्रमाणं होवि ।

$$\text{पृथिवी} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad | \quad \text{आउ} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad |$$

$$\text{तेज} \equiv \text{रि} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad | \quad \text{वायु} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad |$$

अर्थ—पुनः पृथिवीकायिकादि जीवोंकी प्रत्येक सूक्ष्मराशिको अपने योग्य संख्यात
रूपोंसे खण्डित करनेपर बहुभागरूप सूक्ष्म पर्याप्त जीव राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक सूक्ष्म पर्याप्त राशि = $\frac{\text{पृ० सूक्ष्म रा०}}{\text{संख्यात}}$ (बहुभाग) ।

$$\text{या} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad |$$

जलकायिक सूक्ष्म पर्याप्त राशि = $\frac{\text{ज० सूक्ष्म रा०}}{\text{संख्यात}}$

$$\text{या} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad |$$

तेजस्कायिक सूक्ष्म पर्याप्त राशि = $\frac{\text{ते० सूक्ष्म रा०}}{\text{संख्यात}}$

$$\text{या} \equiv \text{रि} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad |$$

वायुकायिक सूक्ष्म पर्याप्त राशि = $\frac{\text{वायु० सूक्ष्म रा०}}{\text{संख्यात}}$

$$\text{या} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad |$$

तत्प्रेगभागं सग-सग-सुहृम-अपञ्जस्त-रासि परिमाणं होवि । पृथिवी $\equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५}$

$$\frac{५}{९} \quad | \quad \text{आउ} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad | \quad \text{तेज} \equiv \text{रि} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad | \quad \text{वाउ} \equiv \text{रि} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{१०}{९} \frac{५}{९} \frac{४}{५} \quad |$$

अर्थ—इसमेंसे एक भागरूप अपनी-अपनी सूक्ष्म अपर्याप्त जीवराशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—पृथिवी० सूक्ष्म अपर्याप्त राशि $\equiv$ रि $\frac{१०}{४}$ ६ ।

जलकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त राशि $\equiv$ रि $\frac{१०}{४}$ $\frac{१०}{४}$ ६ ।

तेजस्कायिक सूक्ष्म अपर्याप्त राशि $\equiv$ रि $\frac{५}{४}$ ।

वायुकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त राशि $\equiv$ रि $\frac{१०}{४}$ $\frac{१०}{४}$ $\frac{१०}{४}$ ६ ।

[तालिका को अगले पृष्ठ पर देखिये]

सामान्य वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण—

पुणो सब-जीव-रासीदो सिद्ध-राशि-तसकाइय-पुठविकाइय-आउकाइय-तेउ-काइय-वाउकाइय जीवराशि पमाणमवणिदे अवसेसं सामण-वणप्फविकाइय-जीवराशि परिमाणं होदि ॥१३॥

अर्थ—पुनः सब जीवराशिमेंसे सिद्धराशि, तसकायिक, पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेज-स्कायिक और वायुकायिक जीवोंके राशि-प्रमाणको घटा देनेपर शेष सामान्य वनस्पतिकायिक जीव-राशिका प्रमाण होता है ॥१३॥

विशेषार्थ—सामान्य वन० जीवराशि = [सर्व जीवराशि] रिण { (सिद्ध) धण (तस) धण (तेज०) धण (पृ०) धण (जल) धण (वायु) }

या [१६] — { (३) + ($\frac{१०}{४}$) + ($\equiv$ रि) + ($\equiv$ रि $\frac{१०}{४}$) + ($\equiv$ रि $\frac{१०}{४}$) + ($\equiv$ रि $\frac{१०}{४}$) }

या १३ — { ($\frac{१०}{४}$) + $\equiv$ रि (३ + $\frac{१०}{४}$ + $\frac{१०}{४}$ + $\frac{१०}{४}$) }

या १३ — { ($\frac{१०}{४}$) + $\equiv$ रि $\frac{३५}{४}$ }

चार स्थावर जीवोंमें सामान्य, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त राशियों का प्रमाण—

क्र०	स्थावर जीवोंके नाम	सामान्य राशिका प्रमाण	बादर राशिका प्रमाण	सूक्ष्म राशिका प्रमाण	बादर पर्याप्त राशि	बादर अपर्याप्त राशि	सूक्ष्म पर्याप्त राशि	सूक्ष्म अपर्याप्त राशि	प्रतीक
१.	पृथिवीकाधिक	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$ रिण $\frac{1}{2}$ प रि	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$ रिण $\frac{1}{2}$ प रि	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ लोकका चिह्न । रि असंख्याका चिह्न । असंख्यात लोकका चिह्न । सूक्ष्मता बहुतमान का और सूक्ष्मता एक मानका चिह्न है ।
२.	जल-काधिक	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$ रिण $\frac{1}{2}$ प रि	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$ रिण $\frac{1}{2}$ प रि	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	
३.	तेजस्काधिक	$\equiv$ रि	$\equiv$ रि $\frac{1}{2}$	$\equiv$ रि $\frac{1}{2}$	$\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ रिण $\frac{1}{2}$ रि	$\equiv$ रि $\frac{1}{2}$ रिण $\frac{1}{2}$ रि	$\equiv$ रि $\frac{1}{2}$	$\equiv$ रि $\frac{1}{2}$	
४.	वायु काधिक	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$ रिण $\frac{1}{2}$ रिण $\frac{1}{2}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$ रिण $\frac{1}{2}$ रिण $\frac{1}{2}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	$\equiv$ रि $\frac{10}{8}$	

या, संसार राशि १३—{ ($\frac{=२}{४रि}$) + $\equiv$ रि ४७३ $\frac{३}{४}$ } सामान्य वनस्पतिकायिक जीव-

राशिका प्रमाण है ।

साधारण वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण—

तस्मि असंखेज्जलोग-परिमाणमवणिदे सेसं साधारण-वणप्फविकाइय-जीव-परिमाणं होवि । १३ $\equiv$ ।

अर्थ—इसमें (सामान्य वनस्पतिकायिक जीवराशियों) से असंख्यात लोकप्रमाणको घटाने पर शेष साधारण वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—सामान्य वनस्पतिकायिक जीवराशि — असंख्यात लोक ।

$$१३ - \{ (\frac{=२}{४रि}) + \equiv रि ४७३\frac{३}{४} \} = \{ \equiv रि \equiv रि \}$$

अर्थात् १३ $\equiv$ प्रमाण है ।

साधारण बादर वनस्पतिका० और साधारण सूक्ष्म
वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण—

सं सप्पाद्योग-असंखेज्जलोगेण खंडिदे तत्थ एव-भागो साधारण-बादर-जीव-परिमाणं होवि । १३ $\frac{=}{४}$ ।

अर्थ—इसे अपने योग्य असंख्यातलोकसे खण्डित (भाजित) करने पर उसमेंसे एक भाग साधारण बादर जीवोंका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—साधारण बादर वन० जीव राशि = $\frac{\text{साधारण वनस्पति० जीव राशि}}{\text{असंख्यात लोक}}$

= ($\frac{१३ \equiv}{४}$) प्रमाण है ।

सेस-बहुभागो साधारण-सुहुमरासि परिमाणं होवि । १३ $\equiv \frac{६}{४}$ ।

अर्थ—शेष बहुभाग साधारण सूक्ष्म जीव राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—साधारण सूक्ष्म वन० जीवराशि = $\frac{\text{साधा० वन० जीवराशि}}{\text{असंख्यात लोक}} \times \frac{\text{असं० लोक—१}}{१}$

अर्थात् ($१३ \equiv + \frac{६}{४}$) प्रमाण है ।

साधारण बादर पर्याप्त-अपर्याप्त राशिका प्रमाण—

पुनो साहारण-बादररासि तप्पाओग-असंखेज्जलोगेण खंडिदे तत्थेग भागं
साहारण-बादर-पज्जत्तरासि परिमाणं होदि $१३ \frac{३}{४} \frac{३}{४}$ । सेस-बहुभाग साहारण-बादर-
अपज्जत्त-रासि परिमाणं होदि $१३ \frac{३}{४} \frac{३}{४}$ ।

अर्थ—पुनः साधारण बादर वनस्पतिकायिक जीव राशिको अपने योग्य असंख्यात लोकसे
खण्डित करनेपर उसमेंसे एक भाग साधारण बादर पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है और शेष बहुभाग
साधारण बादर अपर्याप्त जीव राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—साधारण बादर पर्याप्त वन० का० जीवराशि = $\frac{\text{साधारण बादर वन० का० जीव}}{\text{असंख्यात लोक}}$

या $१३ \frac{३}{४} \div ७$ अर्थात् $१३ \frac{३}{४} \frac{३}{४}$) प्रमाण है ।

साधारण बादर अपर्याप्त वन० का० जीवराशि = $\frac{\text{सा० बादर वन० जीव}}{\text{असंख्यात}} \times \frac{\text{असं} - १}{१}$

अर्थात् $(१३ \frac{३}{४} \frac{३}{४})$ प्रमाण है ।

साधारण सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण—

पुनो साहारण-सुहुमरासि तप्पाओग-संखेज्ज-रुवेहि खंडिय तत्थ बहुभागं
साहारण-सुहुम-पज्जत्त-परिमाणं होदि $१३ \frac{३}{४} \frac{३}{४}$ । सेसेगभागं साहारण-सुहुम-अप-
ज्जत्तरासि-परिमाणं होदि $१३ \frac{३}{४} \frac{३}{४}$ ।

अर्थ—पुनः साधारण सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव राशिको अपने योग्य संख्यात रूपोंसे
खण्डित करनेपर उसमेंसे बहुभाग साधारण सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है और शेष एक भाग
साधारण सूक्ष्म-अपर्याप्त जीवोंकी राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—साधारण सूक्ष्म वन० पर्याप्त जीव = $\frac{\text{सा० सूक्ष्म वन० जीव}}{\text{संख्यात}} \times \frac{\text{संख्यात} - १}{१}$

= $(१३ \frac{३}{४} \frac{३}{४})$ प्रमाण है ।

साधारण सूक्ष्म वन० अपर्याप्त जीवराशि = $\frac{\text{साधारण सूक्ष्म वन० जीव राशि}}{\text{संख्यात}}$

अर्थात् $(१३ \frac{३}{४} \frac{३}{४})$ प्रमाण है ।

प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीवोंके भेद-प्रभेद और उनका प्रमाण—

पुनो पुण्वमवणिद-असंखेज्जलोग-परिमाणरासी पत्तेयसरीर-वणप्फदि-जीव-
परिमाणं होदि = रि $\frac{३}{४}$ रि ।

अर्थ—पुनः पूर्वमें घटाई गई असंख्यात लोक प्रमाण राशि प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण होता है ॥

विशेषार्थ—सामान्य वनस्पतिकायिक जीव राशिमेंसे साधारण-वनस्पतिकायिक जीवराशि घटा देनेपर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवराशि शेष रहती है । जिसका प्रमाण $\equiv$ रि $\equiv$ रि है ।

तत्पत्तयेसरीर-वणप्फई दुविहा बादर-णिगोद-पविट्टिद-अपदिट्टिद-भेदेण । तत्थ अपविट्टिद-पत्तये-सरीर-वणप्फई असंखेज्जलोग-परिमाणं होइ $\equiv$ रि तम्मि असंखेज्जलोगेण गुणिदे बादर-णिगोद-पविट्टिद-रासि-परिमाणं होदि $\equiv$ रि $\equiv$ रि ॥

अर्थ—बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित (सहित) और अप्रतिष्ठित (रहित) होने के कारण वे प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार हैं । इनमेंसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव असंख्यातलोक प्रमाण हैं । इस अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवराशिको असंख्यात लोकोंसे गुणा करने पर बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पति जीवराशि का प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीवराशिका प्रमाण असंख्यात-लोक प्रमाण ($\equiv$ रि) है ।

सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवराशि = अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवराशि $\times$ असंख्यात लोक । अर्थात् ($\equiv$ रि $\equiv$ रि) है ।

बादर निगोद प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका प्रमाण—

ते दो वि रासी पज्जत्त-अपज्जत्त-भेदेण दुविहा होंति । पुणो पुव्वुत्त-बादर-पुढवि-पज्जत्त-रासि-आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदे बादर-णिगोद-पविट्टिद-पज्जत्त रासि परिमाणं होदि $\frac{\equiv}{४}$ १ १ । तं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण भागे ।
प
रि

हिदे बादर-णिगोद-अपदिट्टिद-पज्जत्तरासि परिमाणं होदि $\frac{\equiv}{४}$ १ १ १ ॥
प
रि

अर्थ—ये दोनों ही राशियाँ पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे दो प्रकार हैं । पुनः पूर्वोक्त बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करनेपर बादर-निगोद-प्रतिष्ठित-पर्याप्त-जीवोंकी राशिका प्रमाण होता है । इसमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग

देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना बादर-निगोद-अप्रतिष्ठित-पर्याप्त-जीवोंकी राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—बादर-निगोद-प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव राशि
 = पृथिवीका० बादर पर्याप्त जीव-राशि ÷ आवली
 असंख्यात

$$= \left(\frac{= ५९}{४ रि} \div \frac{१}{९} \right) = \left(\frac{= ५९}{४ रि} \frac{९}{१} = \right)$$

बादर-निगोद-अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर वन० का० पर्याप्त जीवराशि =

बादर-नि० प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर वन० पर्याप्त जीवराशि ÷ आवली
 असंख्यात

$$= \left(\frac{= ५९}{४ रि} \frac{९}{१} \frac{९}{१} \div \frac{१}{९} \right) = \left(\frac{= ५९}{४ रि} \frac{९}{१} \frac{९}{१} \frac{९}{१} \right)$$

बादर निगोद प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित अपर्याप्त जीवराशिका प्रमाण—

सग-सग-पञ्जत्त-रासि सग-सग-सामण्ण-रासिम्मि अवणिदे सग-सग-अपञ्जत्त-
 रासि-पमाणं होवि ।

$$\text{बादर-निगोद-पविट्ठिद} \equiv रि \equiv रि रिण = ६ ६ ।$$

४
५
रि

$$\text{बादर-निगोद-अपविट्ठिद} \equiv रि रिण = ६ ६ ६ ।$$

४
५
रि

अर्थ—अपनी-अपनी सामान्य राशिमेंसे अपनी-अपनी पर्याप्त राशि घटा देनेपर शेष अपनी-
 अपनी अपर्याप्त राशिका प्रमाण होता है ।।

विशेषार्थ—बादर-निगोद अप्रतिष्ठित प्रत्येक० वनस्पति० अपर्याप्त जीवराशि

= अप्रति० प्रत्येक० वन० जीवराशि—अप्रति० प्रत्येक० वन० पर्याप्त जीवराशि

$$= (\equiv रि) - \left(\frac{= ५९}{४ रि} \frac{६}{१} \frac{६}{१} \right)$$

बादर-निगोद सप्रतिष्ठित प्रत्येक० वनस्पति अपर्याप्त जीवराशि

= सप्रति० प्रत्येक शरीर वन० जीवराशि—सप्रति० प्रत्येक० वन० जीव राशि

$$= \left(\frac{= रि = रि}{४ रि} \right) = \left(\frac{= ५ ९ ६}{४ रि} \right) :$$

वस जीवोंका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

पुणो आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण पदरंगुल-मवहारिय लब्धेण जगपदरे
भागं घेतूण लब्धं = ।
४
२
रि

तं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिण्णेगखंडं पि पुधं ठविय सेस-बहुभागे
घेतूण चत्तारि सम-पुंजं कावूण पुधं ठवेयव्वं' ॥

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे आवलीके असंख्यातवें भागसे खंडित कर एक भागको पृथक् स्थापित करके और शेष बहुभागको ग्रहण करके उसके चार समान पुञ्ज करके पृथक् स्थापित करना चाहिए ।

विशेषार्थ—आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देने से
= लब्ध प्राप्त होता है ।
४
२
रि

यही सामान्य वस-राशिका प्रमाण है । इसमें आवलीके असंख्यातवें (१) भागका भाग देना चाहिए । यथा—
(= १) ।
४
२
रि

इसका एक भाग अर्थात् (= १ के चार समान पुञ्ज करके पृथक् स्थापित करना
४
२
रि

चाहिए । यथा—

$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}}$	$\frac{\frac{६}{४} \frac{३}{२}}$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}}$	$\frac{\frac{६}{४} \frac{३}{२}}$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}}$	$\frac{\frac{६}{४} \frac{३}{२}}$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}}$	$\frac{\frac{६}{४} \frac{३}{२}}$

द्वीन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुणो आवलियाए असंख्यज्जदि-भागे विरलिवूण अथणिद-एगखंड करिय दिण्णे तत्थ बहुखंडे पढम-पुंजे पक्खित्ते^१ बे-इं बिया होत्ति ।

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर अपनीत एक खण्डके समान खण्डकर उसमेंसे बहुभागको प्रथम पुञ्जमें मिला देनेपर दो इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ—अलग स्थापित $\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}}$ राशिका बहुभाग प्राप्त करने हेतु उसे आवलीके

असंख्यातवें भाग ($\frac{३}{४}$) से गुणित करने पर $[\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} (\frac{३}{४} \times \frac{३}{४}) = \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} २\frac{९}{४}]$ प्राप्त होते हैं ; इन्हें गुण्य-

मान राशिमेंसे घटा देने पर जो शेष बचता है, वही उसका बहुभाग है ।

यथा : $\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} १ - २\frac{९}{४} = \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} २\frac{५}{४}$ । इस राशिको प्रथम स्थापित राशि पुञ्जमें जोड़ देनेपर दो-

इन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा — $\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{६}{४} \frac{३}{२} + \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} २\frac{५}{४}$ ।

अथवा $\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} [(\frac{६}{४} \times \frac{३}{४} \times \frac{६३}{४} \times \frac{३}{४}) + \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} (\frac{६५}{४} \times \frac{५}{४} \times \frac{६३}{४})]$

या $\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{४} [(\frac{६}{४} \times \frac{६३}{४} \times \frac{३}{४}) + (\frac{६५}{४} \times \frac{५}{४} \times \frac{६३}{४})]$

$$\text{या} = \frac{१}{४} \text{ रि} = \frac{(८ \times ८१ \times ९) + (८ \times ४ \times ८१)}{८१ \times ८१} \text{ या} = \frac{१}{४} \left(\frac{५८३२ + २५९२}{६५६१} \right)$$

अथवा $\frac{१}{४} \text{ रि} = \frac{१}{४} \frac{६४३२}{६५६१}$ सामान्य द्वीन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण है ।

तेन्द्रिय जीव राशिका प्रमाण—

पुणो आवलियाए असंखेज्जभागं विरलिवूण दिण्ण-सेस-सम-खंडं करिय दादूण तत्थ बहुभागे बिदियपुंजे पक्खित्ते तेइदिया होंति । पुण्व-विरलणादो' संपहि विरलणा कि सरिसा कि साहिया कि ऊणेत्ति पुच्छिदे णत्थि एत्थ उवएसो ॥

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलन करके देनेसे अवशिष्ट रही राशिके सदृश खण्ड करके देनेपर उसमेंसे बहुभागको द्वितीय पुंजमें मिलानेसे तीन इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण होता है । इस समयका विरलन पूर्वं विरलनसे क्या सदृश है ? क्या साधिक है, कि वा न्यून है ? इसप्रकार पूछनेपर यही उत्तर है कि इसका उपदेश नहीं है ।

विशेषार्थ—अलग स्थापित $\frac{१}{४} \text{ रि}$ राशिका बहुभाग प्राप्त करनेके लिए उसे $\frac{१}{४}$ से गुणित

करने पर $\frac{१}{४} \text{ रि}$ प्राप्त होते हैं । इसे मुख्यमान राशिमेंसे घटा देनेपर शेष बहुभागका प्रमाण $\frac{३}{४} \text{ रि}$

८६ प्राप्त होता है । इसको पुनः आवलीके असंख्यातवें रूप $\frac{१}{४}$ से गुणित कर प्राप्त लब्ध $\frac{६९}{४} \text{ रि}$

को पूर्व स्थापित राशिके द्वितीय पुंजमें मिला देनेसे तीन इन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$\frac{१}{४} \text{ रि} \frac{६९}{४} \text{ या } \left(\frac{१}{४} \right) \frac{६९}{४} + \frac{६९}{४} \text{ रि} = \frac{६९}{४} \text{ रि}$$

$$\text{या} = \left[\left(\frac{१}{४} \times \frac{६९}{४} \times \frac{६९}{४} \right) + \left(\frac{६९}{४} \times \frac{६९}{४} \times \frac{६९}{४} \right) \right]$$

$$\text{या } \frac{४}{३} \text{ रि} = \frac{१}{३} \left[\left(\frac{६}{३} \times \frac{७२६}{३} \right) + \left(\frac{६५}{३} \times \frac{४}{३} \times \frac{२६}{३} \right) \right]$$

$$\frac{४}{३} \text{ रि} = \frac{१}{३} \left(\frac{८ \times ७२६}{८१ \times ८१} \right) + \left(\frac{८ \times ४ \times ६}{८१ \times ८१} \right) \text{ या } \frac{४}{३} \text{ रि} = \frac{१}{३} \frac{५८३२ + २८८}{८१ \times ८१}$$

$$\text{या } \frac{४}{३} \text{ रि} = \frac{१}{३} \frac{६१२०}{८१ \times ८१} \text{ सामान्य तीन इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण ।}$$

चार इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुनो तत्प्रायोग्य आवलियाए असंखेज्जदिभागं विरलिवूण सेस-खंडं सम-खंडं करिय विण्णे तत्थ बहुखंडे तदिय पुंजे पक्खित्ते चउरिखिया होंति ॥

अर्थ—पुनः तत्प्रायोग्य आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर शेष खण्डके सदृश (समान) खण्ड करके देनेपर उनमेंसे बहुभागको तृतीय पुञ्जमें मिला देनेसे चार इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है ॥

विशेषार्थ—अलग स्थापित राशि $\frac{४}{३}$ रि को $\frac{१}{३}$ से गुणितकर लब्धराशि को (पूर्ववत्)

गुण्यमान राशिमेंसे घटा देनेपर $\frac{४}{३}$ रि लब्ध प्राप्त होता है । इसे $\frac{१}{३}$ से गुणितकर लब्ध को पुनः $\frac{१}{३}$

से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे पूर्व स्थापित तृतीय पुञ्जमें मिला देनेसे चार इन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$\frac{४}{३} \text{ रि} \frac{६}{३} \frac{७२६}{३} + \frac{४}{३} \text{ रि} = \frac{२६}{३} \times \frac{६५}{३} \times \frac{४}{३}$$

$$\text{या } \frac{४}{३} \text{ रि} = \left[\left(\frac{१}{३} \times \frac{६}{३} \times \frac{७२६}{३} \right) + \frac{४}{३} \text{ रि} \left(\frac{६६}{३} \times \frac{२६}{३} \times \frac{४}{३} \right) \right]$$

$$\text{या } \frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} \text{ रि} = \frac{1}{4} \left[\left(\frac{1}{4} \times \frac{1038}{4} \right) + \left(\frac{21}{4} \times \frac{21}{4} \times \frac{1}{4} \right) \right]$$

$$\text{या } \frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} \text{ रि} = \frac{1}{4} \frac{(5 \times 1029) + (5 \times 4)}{51 \times 51} \text{ या } \frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} \text{ रि} = \frac{1}{4} \frac{5152 + 20}{5151}$$

$$\text{या } \frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} \text{ रि} = \frac{1}{4} \frac{5152}{5151} \text{ सामान्य चार इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण है।}$$

पंचेन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण—

सेसेग-खंडं चउत्थ-पुंजे पक्खित्ते पंचेन्द्रिय—मिच्छाद्विती होंति । तस्स ठवणा—

वी — ४ रि	ती — ४ रि	च — ४ रि	प — ४ रि
$\frac{1}{4} \mid \frac{1038}{4}$	$\frac{1}{4} \mid \frac{1038}{4}$	$\frac{1}{4} \mid \frac{1038}{4}$	$\frac{1}{4} \mid \frac{1038}{4}$

अर्थ—शेष एक खण्डको चतुर्थ पुञ्जमें मिलानेपर पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंका प्रमाण होता है । उनकी स्थापना इसप्रकार है—

विशेषार्थ—सामान्य त्रस-राशिके $\frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} \text{ रि}$ प्रमाणमें श्रावलीके असंख्यातवें भाग

(१) का भाग देनेपर प्राप्त हुए उसके एक भाग $\frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} \text{ रि}$ को जो पूर्वमें अलग स्थापित

किया था उसमेंसे प्रत्येक बार अपने-अपने बहुभागको प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुञ्जमें मिला देनेके पश्चात् जो शेष बचा है उसे चतुर्थ पुञ्जमें मिला देनेपर पंचेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है ।
यथा—

$$\frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} \text{ रि} = \frac{1}{4} \frac{1038}{4} + \frac{\frac{1}{4}}{\frac{1}{4}} \text{ रि} = \frac{21}{4} \frac{21}{4} \frac{1}{4}$$

१६०]

$$\text{या} \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \left[\left(\frac{३}{२} \times \frac{६}{२} \times \frac{३३९}{२} \right) + \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \left(\frac{८१}{२} \times \frac{६३}{२} \times \frac{४}{२} \right) \right]$$

$$\text{या} \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{२} \left[\left(\frac{६}{२} \times \frac{३३९}{२} \right) + \left(\frac{८१}{२} \times \frac{६३}{२} \times \frac{४}{२} \right) \right]$$

$$\text{या} \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{२} \left(\frac{८ \times ७२६ + १ \times ४}{८१ \times ८१} \right) \text{ या } \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{२} \left(\frac{५८३२ + ४}{८१ \times ८१} \right)$$

$$\text{या} \frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{२} \left(\frac{५८३६}{८१ \times ८१} \right) \text{ सामान्य पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण है ।}$$

सामान्य द्वीन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण —

क्र०	नाम	समभाग +	देय-भाग =	प्रमाण
१.	द्वीन्द्रिय जीव- राशि	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{२} \frac{६}{२} +$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{६}{२} \frac{३}{२} =$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{९}{२} \frac{८४२४}{२}$
२.	त्रन्द्रिय जीव राशि	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{२} \frac{६}{२} +$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{६}{२} \frac{९}{२} \frac{३}{२} =$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{९}{२} \frac{३३३३९}{२}$
३.	चतुरिन्द्रिय जीव राशि	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{२} \frac{६}{२} +$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{६}{२} \frac{९}{२} \frac{९}{२} \frac{३}{२} =$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{९}{२} \frac{१८६४}{२}$
४.	पंचेन्द्रिय जीव राशि	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{३}{२} \frac{६}{२} +$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{९}{२} \frac{९}{२} \frac{९}{२} \frac{३}{२} =$	$\frac{=}{\frac{४}{२} \text{ रि}} \frac{९}{२} \frac{१८६४}{२}$

पर्याप्त अस जीवोंका प्रमाण प्राप्त करने की विधि—

पुणो पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेण जगपदरे^१ भागं घेतूण जं लद्धं तं आवलियाए
असंखेज्जदिभागेण खंडिऊणेग-खंडं पुधं ठवेवूण सेस-बहुभागं घेतूण चत्तारि सरिस-पुंजं
कावूण ठवेयव्वं^२ ।।

१. द. क. ज. जगपदर, व. जगपदरं । २. द. व. क. ज. ठवेयं वा ।

अर्थ—पुनः जगत्प्रतरमें प्रतरांगुलके संख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित कर एक भागको पृथक् स्थापित करके शेष बहुभागके चार सदृश पुञ्ज करके स्थापित करना चाहिए ।

जगत्प्रतरमें प्रतरांगुलके संख्यातवें भागका भाग देनेपर $\frac{1}{4}$ लब्ध प्राप्त होता है । यही पर्याप्त त्रस राशिका प्रमाण है । इसमें आवलीके असंख्यातवें भाग (१) का भाग देना चाहिए । यथा— $\frac{1}{4}$ । इसका एक भाग ($\frac{1}{4} \times \frac{1}{4} = \frac{1}{16}$) अलग स्थापित कर शेष बहुभाग ($\frac{1}{4} - \frac{1}{16} = \frac{3}{16}$) के चार समान पुञ्ज करके पृथक् स्थापित करना चाहिए ।

पर्याप्त तीन-इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुणो आत्तलियाए असंखेज्जविभागं विरलित्वाण अण्णिव-एय-खंडं सम-खंडं करिय दिण्णे' तत्थ बहुखंडे पठम-पुंजे पक्खित्ते ते-इंदिय-पज्जत्ता होति ॥

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर पृथक् स्थापित किये हुए एक खण्डके सदृश करके देनेपर उसमेंसे बहुभागको प्रथम पुञ्जमें मिला देनेसे तीन-इन्द्रिय पर्याप्त जीवों का प्रमाण होता है ॥

विशेषार्थ—अलग स्थापित ($\frac{1}{16}$) राशिका बहुभाग करने हेतु उसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित कर प्राप्त ($\frac{1}{16} \times \frac{1}{4} = \frac{1}{64}$) राशिको गुण्यमान राशिमेंसे घटा देनेपर जो ($\frac{1}{4} - \frac{1}{64} = \frac{15}{64}$) शेष बचा वही उसका बहुभाग है । इस राशिको प्रथम स्थापित राशि-पुञ्जमें जोड़ देनेसे पर्याप्त तीन इन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$\frac{1}{4} \left[\left(\frac{1}{4} \times \frac{1}{4} \times \frac{1}{4} \times \frac{1}{4} \right) + \frac{1}{4} \left(\frac{15}{64} \times \frac{1}{4} \times \frac{1}{4} \right) \right]$$

$$= \frac{1}{4} \left(\frac{15 \times 15 \times 15}{64 \times 64} + \frac{15 \times 15 \times 15}{64 \times 64} \right)$$

$$= \frac{1}{4} \frac{225 \times 225 + 225 \times 225}{64 \times 64} \text{ या } \frac{1}{4} \frac{450 \times 225}{64}$$

पर्याप्त दो इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुनो आवलियाए असंखेज्जविभागं विरलिट्ठण सेस-एय-खंडं सम-खंडं कादूण विण्णे तत्थ बहुखंडं विदिय-पुंजे पक्खित्ते खे-इंदिय-पज्जत्ता होंति ॥

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर शेष एक भागके सदृश खण्ड करके देनेपर उसमेंसे बहुभागको द्वितीय पुञ्जमें मिला देनेसे दो इन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है ।

$$\text{विशेषार्थ—} = \frac{1}{4} \left[\left(६ \times ३ \times ३ \times ६३ \right) + \frac{1}{4} \left(८६ \times ४ \times ६६ \right) \right]$$

$$\text{या } = \frac{1}{4} \left[\frac{(८ \times ९ \times ८१) + (८ \times ४ \times ९)}{८१ \times ८१} \right]$$

$$\text{या } = \frac{1}{4} \frac{५८३२ + २८८}{८१ \times ८१} \text{ या } = \frac{1}{४} \frac{६१२०}{८१}$$

पर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुनो आवलियाए असंखेज्जविभागं विरलिट्ठण सेस-एय-खंडं सम-खंडं कादूण विण्णे तत्थ बहुभागं तविय-पुंजे पक्खित्ते पंचेदिय-पज्जत्ता होंति ॥

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर शेष खण्डके समान खण्ड करके देनेपर उसमेंसे बहुभागको तीसरे पुञ्जमें मिला देनेपर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है ॥

$$= \frac{1}{4} \left[\left(६ \times ३ \times ३ \times ६३ \right) + \left(८६ \times ८३ \times ४ \right) \right]$$

$$\text{या } = \frac{1}{४} \frac{(८ \times ९ \times ८१) + (८ \times ४)}{८१ \times ८१}$$

$$\text{या } = \frac{1}{४} \frac{५८३२ + ३२}{६५६१} \text{ या } = \frac{1}{४} \frac{५८६४}{६५६१}$$

पर्याप्त चार-इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुनो सेस - भागं सत्थ - पुंजे पक्खित्ते चउरिदिय - पज्जत्ता होंति । तस्स

ठवणा—

ती $\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6}$	वि $\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6}$	प $\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6}$	च $\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6}$

अर्थ—पुनः शेष एक भागको चतुर्थ पूञ्जमें मिला देनेपर चार इन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है । इसकी स्थापना इसप्रकार है—

$$\frac{1}{54} = \left[\left(\frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \right) + \frac{1}{54} \left(\frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \right) \right]$$

$$\text{या } \frac{1}{54} = \frac{1}{3} \frac{(5 \times 9 \times 51) + 4}{51 \times 51}$$

$$\text{या } \frac{1}{54} = \frac{1}{3} \frac{5032 + 4}{5151} \text{ या } \frac{1}{54} = \frac{1}{3} \frac{5036}{5151}$$

पर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण—

क्र०	नाम	समभाग +	देयभाग =	प्रमाण
१.	पर्याप्त तेन्द्रिय जीवों का प्रमाण	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} +$	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6}$	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6}$
२.	पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों का प्रमाण	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} +$	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} =$	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6}$
३.	पर्याप्त पञ्चेन्द्रियों का प्रमाण	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} +$	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} =$	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6}$
४.	पर्याप्त चतुरिन्द्रियों का प्रमाण	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} +$	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} =$	$\frac{1}{54} = \frac{1}{3} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6} \times \frac{1}{6}$

अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण—

पुणो 'पृथ्वस्त-बीड'दियादि-सामाण्य-रासिस्मि सग-सग-पज्जत्त-रासिमवणिदे
सग-सग-अपज्जत्त-रासि-पमाणं होदि । तं चेदं—

वि	ती	च	प
५।६१२०। =८४२४।रि। ४।४।६५६१।	५।८४२४ =६१२०।रि। ४।४।६५६१।	५।५८३६ =५८६४।रि। ४।४।६५६१।	५।५८६४। =५८३६।रि। ४।४।६५६१।

अर्थ—पुनः पूर्वोक्त दोइन्द्रियादि सामान्य राशिमेंसे अपनी-अपनी पर्याप्त राशिको घटा
देनेपर शेष अपनी-अपनी अपर्याप्त राशिका प्रमाण होता है । यथा—

अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण—

क्र०	नाम	सामान्य जीवराशि =	पर्याप्त जीवराशि =	अपर्याप्त जीव-राशि
१.	द्वीन्द्रिय जीव	$\frac{3}{5} \frac{6120}{8424} =$ रि	$\frac{3}{5} \frac{5836}{8424} =$ रि	$\frac{3}{5}$ ४।४।६५६१ [$\frac{3}{5} (8424) - 5 (6120)$] रि
२.	तेइन्द्रिय जीव	$\frac{3}{5} \frac{5836}{8424} =$ रि	$\frac{3}{5} \frac{6120}{8424} =$ रि	$\frac{3}{5}$ ४।४।६५६१ [$\frac{3}{5} (8424) - 5 (5836)$] रि
३.	चतुरिन्द्रिय	$\frac{3}{5} \frac{5836}{8424} =$ रि	$\frac{3}{5} \frac{5836}{8424} =$ रि	$\frac{3}{5}$ ४।४।६५६१ [$\frac{3}{5} (5836) - 5 (5836)$] रि
४.	पंचेन्द्रिय	$\frac{3}{5} \frac{5836}{8424} =$ रि	$\frac{3}{5} \frac{5836}{8424} =$ रि	$\frac{3}{5}$ ४।४।६५६१ [$\frac{3}{5} (5836) - 5 (5836)$] रि

तिर्यञ्च असंज्ञी पर्याप्त जीवोंका प्रमाण—

पुणो पंचेन्द्रिय - पञ्जत्तापञ्जत्त - रासीणं मज्झे देव-नोरइय-मणुस-देवरासि-
संखेज्जविभागमूद-तिरिक्ख-सण्णि-रासिमवणिदे अवसेसा तिरिक्ख - असण्णि - पञ्जत्ता-
पञ्जत्ता होंति । तं चेदं पञ्जत्त ।

$$= \frac{१}{४} \frac{५६६६}{४१६५५३६} \text{ रासि} = \frac{१}{४१६५५३६} \text{ । } —२ \text{ मू। } \frac{१}{११३ \text{ मू०}} = \frac{१}{४१६५५३६।७।७।५}$$

अर्थ—पुनः पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त राशियोंके मध्यमेंसे देव, नारकी, मनुष्य तथा देव-
राशिके संख्यातवें भाग प्रमाण तिर्यञ्च संज्ञी जीवोंकी राशिकी घटा देनेपर शेष तिर्यञ्च असंज्ञी
पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—सम्पूर्ण पंचेन्द्रिय पर्याप्त राशिका प्रमाण $\frac{१}{४१६५५३६}$ है । और देव
राशिका प्रमाण $\frac{१}{४१६५५३६}$ । नरक राशिका — २ मू । पर्याप्त मनुष्य राशि का $\frac{१}{११३ \text{ मू०}}$ तथा

तिर्यञ्च संज्ञी राशिका प्रमाण $\frac{१}{४१६५५३६।७।७।५}$ है । उपर्युक्त पंचेन्द्रिय पर्याप्त राशिमेंसे
देव, नारकी, पर्याप्त मनुष्य और संज्ञी तिर्यञ्च, इन चारों राशियों को घटा देनेपर जो शेष बचता है
वही असंज्ञी पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है । जो स्थापना मूलमें की गई है उसका स्पष्टीकरण
इसप्रकार है — = जगत्प्रतर और ४ प्रतरांगुलका प्रतीक है । — २ मू का अर्थ है, जगच्छ्रेणीका
दूसरा वर्गमूल । $\frac{१}{११३ \text{ मू०}}$ का अर्थ है, सूच्यांगुलके प्रथम एवं तृतीय मूल का परस्पर गुणा करने

पर जो लब्ध प्राप्त हो उससे जगच्छ्रेणीको भाजित कर १ घटा देना चाहिए । पश्चात् जो अवशेष
रहे वह पर्याप्त मनुष्यकी संख्याका प्रमाण होता है ।

तिर्यञ्च संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवराशिका प्रमाण—

पुणो पुब्बं अवणिद-तिरिक्ख-सण्णि-रासीणं तप्पाओग्ग-संखेज्ज-रुवेहि खंडिदे
तत्थ बहुभागा तिरिक्ख-सण्णि-पंचेन्द्रिय-पञ्जत्त-रासो होदि, सेसेगभागं सण्णि-पंचेन्द्रिय-
अपञ्जत्त-रासि-पभाणं होदि । तं चेदं $\frac{१}{४१६५५३६।७।७।५}$ । $\frac{१}{४१६५५३६।७।७।५}$ ।

एवं संखा-परुवणा समत्ता ॥७॥

अर्थ—पुनः पूर्वमें अपनीत तिर्यञ्च संज्ञी राशिकी अपने योग्य संख्यात रूपोंसे खण्डित करने
पर उसमेंसे बहुभाग तिर्यञ्च संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवराशि होती है और शेष एक भाग (तिर्यञ्च)
संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवराशिका प्रमाण होता है ॥

विशेषार्थ—तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त राशिका प्रमाण देवराशि (८ । ६५ = १७) के संख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् ८ । ६५ = १७ । ७ होता है । अथवा ८ । ६५५३६ । ७ । ७ होती है । यहाँ = जगत्प्रतर, ४ प्रतरांगुल, ६५ = पण्णट्टी अर्थात् ६५५३६ तथा ७ संख्यातका प्रतीक है । इसलिए इस राशि को तत्प्रायोग्य संख्यात (५) से खण्डित करनेपर बहुभाग मात्र संज्ञी और पर्याप्त तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय जीवराशि ८ । ६५५३६ । ७ । ७ प्रमाण होती है । तथा शेष एक भाग संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीव राशि ८ । ६५५३६ । ७ । ७ । ६ प्रमाण होती है ।

इसप्रकार संख्या-प्ररूपणा समाप्त हुई ॥७॥

स्थावर जीवोंकी उत्कृष्टायु—

सुद्ध-स्वर-भू-जलाणं, बारस बाबीस सत्त य सहस्सा ।

तेउ-तिय दिवस-तियं, बरिसं ति-सहस्स दस य जेट्ठाऊ ॥२८३॥

१२००० । २२००० । ७००० । दि ३ । व ३००० । व १०००० ।

अर्थ—शुद्ध पृथिवीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु बारह हजार (१२०००) वर्ष, स्वर पृथिवीकायिक की बाईस हजार (२२०००) वर्ष, जलकायिक की सात हजार (७०००) वर्ष, तेजस्कायिक की तीन दिन, वायुकायिककी तीन हजार (३०००) वर्ष और वनस्पतिकायिक जीवोंकी दस हजार (१००००) वर्ष प्रमाण है ॥२८३॥

विकलेन्द्रियों और सरीसृपोंकी उत्कृष्टायु—

वास-दिण-मास-बारसमुगुयण्णं छक्क वियल-जेट्ठाऊ ।

णव - पुब्बंग - पमाणं, उक्कस्साऊ सरिसवाणं^१ ॥२८४॥

व १२ । दि ४६ । मा ६ । पुब्बंग ६ ।

अर्थ—विकलेन्द्रियोंमें दोहन्द्रियोंकी उत्कृष्टायु बारह (१२) वर्ष, तीन इन्द्रियोंकी उनचास दिन और चारइन्द्रियोंकी छह (६) मास प्रमाण है । (पंचेन्द्रियोंमें) सरीसृपोंकी उत्कृष्टायु नौ पूर्वज्ज्ञप्रमाण होती है ॥२८४॥

पक्षियों, सर्पों और शेष तिर्यचोंकी उत्कृष्टायु—

बाहत्तरि बादालं, वास-सहस्साणि पक्खि-उरगाणं ।

अवसेसा - तिरियाणं, उक्कस्सं पुब्ब - कोडीओ ॥२८५॥

७२००० । ४२००० । पुब्बकोडि १ ।

अर्थ—पलियोंकी उत्कृष्ट आयु बहतर हजार (७२०००) वर्ष और सर्पोंकी बयालीस हजार (४२०००) वर्ष प्रमाण होती है । शेष तिर्यचोंकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण है ॥२८५॥

तिर्यञ्चोंके यह उत्कृष्ट आयु कहाँ-कहाँ और कब प्राप्त होती है—

एदे उक्कसाऊ, पुव्वावर-बिवेह-जाद^१-तिरियाणं ।
 कस्सावणि-यडिबद्धे, बाहिरभागे सर्वपह-गिरीदो^२ ॥२८६॥
 तत्थेव सव्वकालं, केई जीवाण भरह - एरबदे ।
 तुरिमस्स पढमभागे, एवाणं होवि उक्कस्सं ॥२८७॥

अर्थ—उपर्युक्त उत्कृष्ट आयु पूर्वापर विदेह क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुए तिर्यञ्चोंके तथा स्वयम्प्रभ पर्वतके बाह्य कर्मभूमि-भागमें उत्पन्न हुए तिर्यञ्चोंके ही सर्वकाल पायी जाती है । भरत और ऐरावत क्षेत्रके भीतर चतुर्थकालके प्रथम भागमें भी किन्हीं तिर्यचोंके उक्त उत्कृष्ट आयु पायी जाती है ॥ २८६-२८७ ॥

कर्मभूमिज तिर्यचोंकी जघन्य आयु—

उस्सासस्स - द्वारस - भागं एइ^१दिए जहण्णाऊ ।
 वियल - सयलिवियाणं, तत्तो संसेज्ज - संगुणिवे ॥२८८॥

अर्थ—एकेन्द्रिय जीवोंकी जघन्य आयु उच्छ्वासके अठारहवें भाग प्रमाण और विकलेन्द्रिय एवं सकलेन्द्रिय जीवोंकी क्रमशः इससे उत्तरोत्तर संख्यात-गुणी है ॥२८८॥

भोगभूमिज तिर्यचोंकी आयु—

वर-मज्झिमवर-भोगज-तिरियाणं तिय-बुगेवक-पल्लाऊ ।
 अवरे वरम्मि तत्तिय - मविणस्सर - भोगभूवाणं ॥२८९॥

प ३ । प २ । प १ ।

अर्थ—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भोगभूमिज तिर्यचोंकी आयु क्रमशः तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य प्रमाण है । अविनश्वर भोगभूमियोंमें जघन्य एवं उत्कृष्ट आयु उक्त तीन प्रकार ही है ॥ २८९ ॥

समय-जुद-पुण्ड-कोली, जहण्य-भोगज-जहण्य आऊ ।

उक्कस्समेक्क - पल्लं, मज्झिम - भेयं अण्येयविहं ॥२९०॥

अर्थ—जघन्य भोगभूमिजोंकी जघन्य आयु एक समय अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट आयु एक पल्य-प्रमाण है । मध्यम आयुके अनेक प्रकार हैं ॥२९०॥

समय-जुद-पल्लमेक्कं, जहण्यं मज्झिमस्मि अवराऊ ।

उक्कस्सं दो - पल्लं, मज्झिम - भेयं अण्येय - विहं ॥२९१॥

अर्थ—मध्यम भोगभूमिमें जघन्य आयु एक समय अधिक एक पल्य और उत्कृष्ट आयु दो पल्य प्रमाण है । मध्यम आयुके अनेक प्रकार हैं ॥२९१॥

समय-जुद-दोण्ण-पल्लं, जहण्यं तिण्ण-पल्लमुक्कस्सं ।

उक्कसिय - भोयभुए, मज्झिम - भेयं अण्येय - विहं ॥२९२॥

आऊ समत्ता ॥२९३॥

अर्थ—उत्कृष्ट भोगभूमिमें जघन्य आयु एक समय अधिक दो पल्य और उत्कृष्ट तीन पल्य—प्रमाण है । मध्यम आयुके अनेक भेद हैं ॥२९२॥

आयुका वर्णन समाप्त हुआ ॥२९३॥

तिर्यञ्च आयुके बन्धक भाव—

आउग-बंधण-काले^१, भू - भेदही -^२उरवभयस्सिगा ।

चक्क-मलो व्व कसाया, छल्लेस्सा - मज्झिमसेहि ॥२९४॥

जे जुत्ता णर-तिरिया, सग-सग-जोमेहि लेस्स-संजुत्ता ।

णारइ - वेवा केई, णिय-जोग-तिरिक्खमाउ बंधंति ॥२९५॥

आउग-बंधण-भावं समत्तं ॥२९६॥

अर्थ—आयुके बन्धकालमें भूरेखा, हड्डी, मेढ़के सींग और पहियेके मल (ओंगन) सहज क्रोधादि कषायोंसे संयुक्त जो मनुष्य और तिर्यञ्च जीव अपने-अपने योग्य छह लेश्याओंके मध्यम अंशों सहित होते हैं तथा अपने-अपने योग्य लेश्याओं सहित कोई-कोई नारकी एवं देव भी अपने-अपने योग्य तिर्यञ्च आयुका बन्ध करते हैं ॥२९३-२९४॥

आयु-बन्धक भावोंका कथन समाप्त हुआ ॥२९५॥

तिर्यचोंकी उत्पत्ति योग्य योनियाँ—

उष्पक्षी तिरियाणं, तत्सखल-समुच्छ्रितो स्ति तत्सेवकं ।

सच्चिन्न-सीद-संवद-सेदर-मिस्सा य जह - जोगं ॥२९५॥

अर्थ—तिर्यचोंकी उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे होती है । इनमेंसे प्रत्येक जन्मकी सचित्त, शीत, संवृत तथा इनसे विपरीत अचित्त, उष्ण, विवृत और मिश्र (सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत), ये यथायोग्य योनियाँ होती हैं ॥२९५॥

गडभुभद^१-जोवाणं, मिस्सं सच्चिन्न - णामधेयस्स ।

सीदं उण्हं मिस्सं, संवद - जोणिम्मि मिस्सा य ॥२९६॥

अर्थ—गर्भसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सचित्त नामक योनिमेंसे मिश्र (सचित्ताचित्त), शीत, उष्ण, मिश्र (शीतोष्ण) और संवृत योनिमेंसे मिश्र (संवृत-विवृत) योनि होती है ॥२९६॥

समुच्छ्रित-जोवाणं, सचित्ताचित्त-मिस्स-सीदुसिणा ।

मिस्सं संवद - विवुदं, णव-जोणीओ हु सामण्णा ॥२९७॥

अर्थ—सम्मूर्च्छन जीवोंके सचित्त, अचित्त, मिश्र, शीत, उष्ण, मिश्र, संवृत, विवृत और संवृत-विवृत, ये साधारणरूपसे नौ ही योनियाँ होती हैं ॥२९७॥

तिर्यचोंकी योनियोंका प्रमाण—

पुठवी-आइ^२-चउक्के, णिच्चिदिरे सत्त-लक्ख पत्तोक्कं ।

दस लक्खा रुक्खाणं, छल्ललक्खा वियल-जोवाणं ॥२९८॥

पंचक्खे चउ-लक्खा, एवं वासट्ठि-लक्ख-परिमाणं ।

णाणाविह - तिरियाणं, होति हु जोणी विसेसेणं ॥२९९॥

एवं जोणी समत्ता ॥१०॥

अर्थ—पृथिवी आदिक चार तथा नित्यनिगोद एवं इतरनिगोद इनमें प्रत्येकके सात लाख, वृक्षोंके दस लाख, विकल-जीवोंके छह लाख और पंचेन्द्रियोंके चार लाख, इसप्रकार विशेष रूपसे नाना प्रकारके तिर्यचोंके ये बासठ लाख प्रमाण योनियाँ होती हैं ॥२९८-२९९॥

इसप्रकार योनियोंका कथन समाप्त हुआ ॥१०॥

तिर्यचोंमें सुख-दुःखकी परिकल्पना—

सठ्वे भोगभुवाणं, संकप्पवसेण होइ सुहमेवकं ।
कम्मावणि-तिरियाणं, सोक्खं दुक्खं च संकप्पो ॥३००॥

सुह-दुक्खं समत्तं ॥११॥

अर्थ—सत्र भोगभूमिज तिर्यचोंके संकल्पवश केवल एक ही (मात्र) सुख होता है और कर्मभूमिज तिर्यच जीवोंके सुख एवं दुःख दोनोंकी कल्पना होती है ॥३००॥

सुख-दुःखका वर्णन समाप्त हुआ ॥११॥

तिर्यचोंके गुणस्थानोंका कथन—

तेत्तीस-भेद-संजुव-तिरिवल-जीवाण सठ्व-कालम्मि ।
मिच्छत्त - गुणट्ठाणं, वोच्छं सण्णीण तं भाणं ॥३०१॥

अर्थ—संज्ञी (पर्याप्त) जीवोंको छोड़कर शेष तैंतीस प्रकारके भेदोंसे युक्त तिर्यच जीवोंके सब कालमें एक मिथ्यात्व गुणस्थान रहता है । अब संज्ञी जीवोंके गुणस्थान-प्रमाणका कथन करते हैं ॥३०१॥

पण-पण अज्जाखंडे, भरहेरावदम्मि मिच्छ-गुणठाणं ।
अथरे थरम्मि पण गुणठाणाणि कयाइ वीसंति ॥३०२॥

अर्थ—भरत और ऐरावत क्षेत्र स्थित पाँच-पाँच आर्य-खण्डोंमें जघन्य रूपसे एक मिथ्यात्व गुणस्थान और उत्कृष्ट रूपसे कदाचित् पाँच गुणस्थान भी देखे जाते हैं ॥३०२॥

पंच-विदेहे सट्ठी, समण्णिणद-सद-अज्जखंडए तत्तो ।
विज्जाहर - सेट्ठीए, बाहिरभागे सयंपह - गिरीदो ॥३०३॥

सासण-मिस्स-विहीणा, ति-गुणट्ठाणाणि थोव-कालम्मि ।
अथरे थरम्मि पण गुणठाणाइ कयाइ वीसंति ॥३०४॥

अर्थ—पाँच विदेहक्षेत्रोंके एक सौ साठ आर्य-खण्डोंमें, विद्याधर थो गिरियोंमें और स्वयम्प्रभ-पर्वतके बाह्य भागमें सासादन एवं मिश्र गुणस्थानको छोड़ तीन गुणस्थान जघन्यरूपसे स्तोक कालके होते हैं । उत्कृष्टरूपसे पाँच गुणस्थान भी कदाचित् देखे जाते हैं ॥३०३-३०४॥

सध्वेसु वि भोगभुवे, दो गुणठाणाणि योवकालम्भि ।
वीसंति चउ-वियप्पं, सव्व-मिलिच्छम्मि^१ मिच्छत्तं ॥३०५॥

अर्थ—सर्व भोगभूमियोंमें दो (मिथ्यात्व और अविरत स०) गुणस्थान और स्तोक-कालके लिए चार गुणस्थान देखे जाते हैं । सब म्लेच्छ खण्डोंमें एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है ॥३०५॥

जीवसमास आदिका वर्णन—

पज्जसापज्जसा, जीवसमासाणि सयल-जीवाणं ।
पज्जत्ति - अपज्जत्तो, पाणाओ होंति निस्सेसा ॥३०६॥

अर्थ—सम्पूर्ण जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों जीव-समास, पर्याप्त एवं अपर्याप्त तथा सब ही प्राण होते हैं ॥३०६॥

चउ-सण्णा तिरिय-गवी, सयलाओ इंदियाओ छक्काया ।
एक्कारस जोगा तिय - वेदा कोहादिय - कसाया ॥३०७॥
छण्णाणा वो संजम, तिय-वंसण देव्व-भावदो लेस्सा ।
छच्चेव य भविय - दुगं छस्सम्मत्तेहि संजुत्ता ॥३०८॥
सण्णि-असण्णी होंति हु, ते आहारा तथा अणाहारा ।
णाणोवजोग - वंसण - उवजोग - जुदाणि ते सध्वे ॥३०९॥

एवं गुणठाणादि-समत्ता ॥१२॥

अर्थ—सब तिर्यंच जीवोंके चारों संज्ञाएँ, तिर्यंचगति, समस्त इन्द्रियाँ, छहों काय, ग्यारह योग (वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक और आहारक मिश्रको छोड़कर), तीनों वेद, क्रोधादिक चारों कषाय, छह ज्ञान (३ ज्ञान, ३ अज्ञान), दो संयम (असंयम एवं देससंयम), केवलदर्शनको छोड़कर शेष तीन दर्शन, द्रव्य और भावरूपसे छहों लेश्याएँ, भव्यत्व-अभव्यत्व और छहों सम्यक्त्व होते हैं । ये सब तिर्यंच संज्ञी एवं असंज्ञी, आहारक एवं अनाहारक तथा ज्ञान एवं दर्शनरूप दोनों उपयोगों सहित होते हैं ॥३०७-३०९॥

इसप्रकार गुणस्थानादिका कथन समाप्त हुआ ॥१२॥

तिर्यचोंमें सम्यक्त्व ग्रहणके कारण—

केइ पडिबोहणेण य, केइ सहावेण तासु भूमोसुं ।

बट्ठणं सुह - दुक्खं, केइ तिरिक्खा बहु-पयारा ॥३१०॥

जादि-भरणेण केइ, केइ जिणिदस्स महिम-वंसणदो ।

जिणबिब-वंसणेण य, पढमुवसमं^१ वेदगं च गेहंति ॥३११॥

सम्मच्च-गहणं गवं ॥३१२॥

अर्थ—उन भूमियोंमें कितने ही तिर्यच जीव प्रसिद्धोद्यते और कितने ही स्वभावसे भी प्रथमोपशम एवं वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करते हैं । इसके अतिरिक्त बहुत प्रकारके तिर्यचोंमेंसे कितने ही सुख-दुःखको देखकर, कितने ही जातिस्मरणसे, कितने ही जिनेन्द्र महिमाके दर्शनसे और कितने ही जिनबिम्बके दर्शनसे प्रथमोपशम एवं वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करते हैं ॥३१०-३११॥

इसप्रकार सम्यक्त्व ग्रहणका कथन समाप्त हुआ ॥३१२॥

तिर्यच जीवोंकी गति-आगति—

पुढवि-प्पहुवि-वणप्फवि-अंतं वियला य कम्म-णर-तिरिए ।

ण लहंति तेउ - वाउ, मणुवाउ अणंतरे जम्मे ॥३१२॥

अर्थ—पृथिवीको आदि लेकर वनस्पतिकायिक पर्यन्त स्थावर और विकलेन्द्रिय जीव कर्म-भूमिज मनुष्य एवं तिर्यचोंमें उत्पन्न होते हैं । परन्तु विशेष इतना है कि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव अनन्तर जन्ममें मनुष्यायु नहीं पाते हैं ॥३१२॥

बत्तीस-भेद-तिरिया, ण होंति कइयाइ भोग-सुर-णिरए ।

सेडिघणमेत्त - लोए, सव्वे अक्खेसु जायंति ॥३१३॥

अर्थ—बत्तीस प्रकारके तिर्यच जीव, भोगभूमिमें तथा देव और नारकियोंमें कदापि उत्पन्न नहीं होते । शेष जीव श्रेणीके घनप्रमाण लोकमें सर्वत्र (कहीं भी) उत्पन्न होते हैं ॥३१३॥

विशेषार्थ—गाथा २८२ में तिर्यच जीवोंके ३४ भेद कहे हैं इनमेंसे संज्ञी पर्याप्त और असंज्ञी पर्याप्त (जीवों) को छोड़कर शेष ३२ प्रकारके तिर्यच जीव भोगभूमिमें तथा देव और नारकियोंमें कदापि उत्पन्न नहीं होते ।

पदम-धरंतमतण्णी, भवणतिए सयल-कम्म-णार-तिरिए ।

सेद्धिघणमेत्त - लोए, सव्वे अवखेसु जायंति ॥३१४॥

अर्थ—असंजीजीव प्रथम पृथिवीके नरकोंमें, भवनत्रिकमें और ममस्त कर्मभूमियोंके मनुष्यों एवं तिर्यन्त्रोंमें उत्पन्न होते हैं । ये सब श्रीगोके घनप्रमाण लोकमें कहीं भी पैदा होते हैं ॥३१४॥

संखेज्जाउव-सण्णी, सदर-सहस्रारओ त्ति जायंति ।

णर-तिरिए णिएसु, वि संख्यातीदाउ जाव ईसाणं ॥३१५॥

अर्थ—संख्यातवर्षकी आयुवाले संजी तिर्यच जीव शतार-सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त (देवोंमें) तथा मनुष्य, तिर्यच और नारकियोंमें भी उत्पन्न होते हैं । परन्तु असंख्यातवर्ष की आयुवाले संजी जीव ईशान कल्प पर्यन्त ही उत्पन्न होते हैं ॥३१५॥

चोत्तीस-भेद-संजुव-तिरिया हु अणंतरम्मि जम्मम्मि ।

ण हुंति सत्ताग - णारा, भज्जणज्जा णिव्वुदि-पवेसे ॥३१६॥

एवं संकमणं गयं ॥१४॥

अर्थ—चौत्तीस भेदोंसे संयुक्त तिर्यच जीव निश्चय ही अनन्तर जन्ममें शलाका-पुरुष नहीं होते । परन्तु मुक्ति-प्रवेशमें ये भजनीय हैं । अर्थात् अनन्तर जन्ममें ये कदाचित् मुक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं ॥३१६॥

इसप्रकार संक्रमणका कथन समाप्त हुआ ॥१४॥

तिर्यच जीवोंके प्रमाणका चौत्तीस पदोंमें अल्पबहुत्व—

एतो चोत्तीस-पदमण्यबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—सव्वत्थोथा तेउकाइय-
दादर-पज्जत्ता । रि । पंचेदिय - तिरिक्ख - सण्णि - अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा
३ । ४ । ६५५३६ । ७ । ७ । ३ । सण्णि-पज्जत्ता संखेज्जगुणा ३ । ४ । ६५५३६ । ७ ।
७ । ३ । चउरिदिय-पज्जत्ता संखेज्जगुणा ३ ३ । ५६३६ । पंचेदिय-तिरिक्खा असण्णि-
पज्जत्ता विसेसाहिया ३ ३ । ५६३६ । रिण रासि ३ । ६५५३६ ।

— २ मू । १ । ३ । मू । ४ । ६५५३६ । ५ ।

बोइंदिय-पज्जत्ता विसेसाहिया ३ ३ । ६५३६ ।

सोइंदिय-पज्जत्ता विसेसाहि ३ ३ । ६५३६ ।

चउरिदिय-असण्णि-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा

$$\begin{array}{c} ५ । ५८६४ \\ \overline{\overline{४}} । ४ । ५८३९ । रि । रिण = \\ \overline{\overline{४}} । ६५५३६ । ७ । ७ । ५ । \end{array}$$

$$\begin{array}{c} ५ । ५८३६ । \\ \text{चउरिदिय-अपञ्जत्ता विसेसाहिया} = । ५८६४ । रि । \\ \overline{\overline{४}} । ४ । ६५६१ । \end{array}$$

$$\begin{array}{c} ५ । ८४२४ \\ \text{तीहृदिय-अपञ्जत्ता विसेसाहिया} = । ६१२० । रि । \\ \overline{\overline{४}} । ४ । ६५६१ । \end{array}$$

$$\begin{array}{c} ५ । ६१२० । \\ \text{बीहृदिय-अपञ्जत्ता विसेसाहिया} = । ८४२४ । रि । \\ \overline{\overline{४}} । ४ । ६५६१ । \end{array}$$

$$\begin{array}{c} \overline{\overline{४}} ९९९ । \\ \text{अपदिट्टिद-पञ्जत्ता असंखेज्जगुणा} \\ प \\ रि \end{array}$$

$$\begin{array}{c} \overline{\overline{४}} ९९ । \\ \text{पदिट्टिद-पञ्जत्ता असंखेज्जगुणा} \\ प \\ रि \end{array}$$

$$\begin{array}{c} \overline{\overline{४}} ६ । \\ \text{पुढवि-बादर-पञ्जत्ता-असंखेज्जगुणा} \\ प \\ रि \end{array}$$

$$\begin{array}{c} \overline{\overline{४}} । \\ \text{आउ-बादर-पञ्जत्ता असंखेज्जगुणा} \\ प \\ रि \end{array}$$

$$\text{आउ-बादर-पञ्जत्ता असंखेज्जगुणा} \equiv ७ ।$$

$$\begin{array}{c} \text{अपदिट्टिद-अपञ्जत्ता असंखेज्जगुणा} \equiv रि रिण \overline{\overline{४}} । ९ । ९ । ९ । \\ प \\ रि \end{array}$$

$$\begin{array}{c} \text{पदिट्टिद-अपञ्जत्ता असंखेज्जगुणा} \equiv रि \equiv रि रिण \overline{\overline{४}} । ९ । ९ । \\ प \\ रि \end{array}$$

तेज-बादर-अपञ्जता असंखेज्जगुणा $\equiv$ रि १ रिण ८ ।
रि

पुढवि-बादर-अपञ्जता विसेसाहिया $\equiv$ रि १० १ रिण ८ १ ६ ।
प
रि

आउ-बादर-अपञ्जता विसेसाहिया $\equiv$ रि १० १० १ रिण ८
प
रि

बाउ^१-बादर-अपञ्जता विसेसाहिया $\equiv$ रि १० १० १० १ रिण ८ ।

तेज-सुहुम-अपञ्जता असंखेज्जगुणा $\equiv$ रि ६ ५ ।

पुढवि-सुहुम-अपञ्जता विसेसाहिया $\equiv$ रि १० ६ ५ ।

आउ-सुहुम-अपञ्जता^२ विसेसाहिया $\equiv$ रि १० १० ६ ५ ।

बाउ-सुहुम-अपञ्जता विसेसाहिया $\equiv$ रि १० १० १० ६ ५ ।

तेजकाय-सुहुम-पञ्जता संखेज्जगुणा $\equiv$ रि ६ ५ ।

पुढवि-सुहुम-पञ्जता विसेसाहिया $\equiv$ रि १० ६ ५ ।

आउ-सुहुम-पञ्जता विसेसाहिया $\equiv$ रि १० १० ६ ५ ।

बाउ-सुहुम-पञ्जता विसेसाहिया $\equiv$ रि १० १० १० ६ ५ ।

साहारण-बादर-पञ्जता-अणंतगुणा १३ $\equiv$ १ ३ ।

साहारण-बादर-अपञ्जता असंखेज्जगुणा १३ $\equiv$ १ ३ ।

साहारण-सुहुम-अपञ्जता^३ असंखेज्जगुणा १३ $\equiv$ १ ५ ।

साहारण-सुहुम-पञ्जता असंखेज्जगुणा १३ $\equiv$ १ ५ ५ ।

एवमप्यबहुलं समत्तं ॥१५॥

अर्थ—अब यहाँसे आगे चौतीस प्रकारके तिर्यचोंमें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इसप्रकार है :—

- (१) बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव सबसे थोड़े हैं ।
- (२) इनसे असंख्यातगुणे पञ्चेन्द्रिय तिर्यच संज्ञी अपर्याप्त हैं ।
- (३) इनसे संख्यातगुणे संज्ञी पर्याप्त हैं ।
- (४) इनसे संख्यातगुणे चार इन्द्रिय पर्याप्त हैं ।
- (५) इनसे विशेष अधिक पञ्चेन्द्रिय तिर्यच असंज्ञी पर्याप्त हैं ।
- (६) इनसे विशेष अधिक दो इन्द्रिय पर्याप्त हैं ।
- (७) इनसे विशेष अधिक तीन इन्द्रिय पर्याप्त हैं ।
- (८) इनसे असंख्यात गुणे असंज्ञी अपर्याप्त हैं ।
- (९) इनमें विशेष अधिक चार इन्द्रिय अपर्याप्त हैं ।
- (१०) इनसे विशेष अधिक तीन इन्द्रिय अपर्याप्त हैं ।
- (११) इनसे विशेष अधिक दो इन्द्रिय अपर्याप्त हैं ।
- (१२) इससे असंख्यातगुणे अप्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येक हैं ।
- (१३) इनसे असंख्यातगुणे प्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येक जीव हैं ।
- (१४) इनसे असंख्यातगुणे पृथिवीकायिक बादर पर्याप्त जीव हैं ।
- (१५) इनसे असंख्यातगुणे बादर जलकायिक पर्याप्त जीव हैं ।
- (१६) इनसे असंख्यातगुणे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव हैं ।
- (१७) इनसे असंख्यातगुणे अप्रतिष्ठित अपर्याप्त हैं ।
- (१८) इनसे असंख्यातगुणे प्रतिष्ठित अपर्याप्त हैं ।
- (१९) इनसे असंख्यातगुणे तेजस्कायिक बादर अपर्याप्त हैं ।
- (२०) इनसे विशेष अधिक पृथिवीकायिक बादर अपर्याप्त जीव हैं ।
- (२१) इनसे विशेष अधिक जलकायिक बादर अपर्याप्त जीव हैं ।
- (२२) इनसे विशेष अधिक वायुकायिक बादर अपर्याप्त जीव हैं ।
- (२३) इनसे असंख्यातगुणे तेजस्कायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं ।
- (२४) इनसे विशेष अधिक पृथिवीकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं ।

- (२५) इनसे विशेष अधिक जलकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं ।
- (२६) इनसे विशेष अधिक वायुकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं ।
- (२७) इनसे संख्यातगुणे तेजस्कायिक सूक्ष्म पर्याप्त हैं ।
- (२८) इनसे विशेष अधिक पृथिवीकायिक सूक्ष्म पर्याप्त हैं ।
- (२९) इनसे विशेष अधिक जलकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं ।
- (३०) इनसे विशेष अधिक वायुकायिक सूक्ष्म पर्याप्त हैं ।
- (३१) इनसे अनन्तगुण साधारण बादर पर्याप्त हैं ।
- (३२) इनसे असंख्यात गुण साधारण बादर अपर्याप्त हैं ।
- (३३) इनसे असंख्यातगुणे साधारण सूक्ष्म अपर्याप्त हैं । और
- (३४) इनसे संख्यातगुणे साधारण सूक्ष्म पर्याप्त हैं ।

इसप्रकार अल्पबहुत्वका कथन समाप्त हुआ ॥१५॥

सर्व जघन्य अवगाहनाका स्वामी—

ओगाहणं तु अवरं, सुहृम-निगोदस्सपुण्ण-लद्धिस्स ।

अंगुल - असंखभाणं, जावस्स य तदिय-समयम्मि ॥३१७॥

अर्थ—सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य अवगाहना पायी जाती है ॥३१७॥

सर्वोत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण—

ततो पदेस-वड्ढो, जाव य दीहं तु जोयण-सहस्सं ।

तस्स वलं विक्खंभं, तस्सद्धं बहलमुक्कस्सं ॥३१८॥

अर्थ—तत्पश्चात् एक हजार योजन लम्बे, इससे आधे अर्थात् पचिसी योजन चौड़े और इससे आधे अर्थात् ढाईसी योजन मोटे शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त प्रदेश-वृद्धि होती गई है ॥३१८॥

एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यन्त उत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण—

जोयण-सहस्समहिंयं, बारस कोसूणमेवकमेवकं च ।

दोह-सहस्सं पम्मे, वियले सम्मुच्छिमे महामच्छे ॥३१९॥

१००० । १२ । ३ । १ । १००० ।

अर्थ—कुछ अधिक एक हजार (१०००) योजन, बारह योजन, एक कोस कम एक योजन, एक योजन और एक हजार (१०००) योजन यह क्रमशः पद्म, विकलेन्द्रिय जीव और सम्मुच्छेन महामत्स्यकी अवगाहनाका प्रमाण है ॥३१९॥

पर्याप्त त्रस जीवोंमें जघन्य अवगाहनाके स्वामी—

वि-ति-चउ-पुण्ण-जहण्णे, अणुद्धरी - कुंथु-काण-मच्छीसु ।

सिस्थय - मच्छोगाहं, विदंगुल-संख-संख-गुणिव-कमा ॥३२०॥

६ । ६ । ६ । ६ ।
७७७७ । ७७७ । ७७ । ७ ।

अर्थ—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें क्रमशः अनुद्धरी, कुंथु और कानमक्षिका तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सिक्थक-मत्स्यके जघन्य अवगाहना होती है । इनमेंसे अनुद्धरीकी अवगाहना घनांगुलके संख्यातवैभागप्रमाण और शेष तीनकी उत्तरोत्तर क्रमशः संख्यातगुणी है ॥३२०॥

विशेषार्थ—पर्याप्त दो इन्द्रिय अनुद्धरीकी जघन्य अवगाहना चार बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण अर्थात् ७७७७ है । पर्याप्त तीन इन्द्रिय कुंथुकी जघन्य अवगाहना तीन बार संख्यातसे भाजित घनांगुल (७७७) प्रमाण है । पर्याप्त चार इन्द्रिय कानमक्षिकाकी जघन्य अवगाहना दो बार संख्यातसे भाजित घनांगुल (७७) प्रमाण है और पर्याप्त पंचेन्द्रिय तन्दुल मत्स्यकी जघन्य अवगाहना एक बार संख्यातसे भाजित घनांगुल (७) प्रमाण है ।

नोट—सं दृष्टिमें ६ का अंक घनांगुलके ओर ७ का अंक संख्यातके स्थानीय हैं ।

अवगाहनाके विकल्पोंका क्रम—

एत्थ ओगाहण-वियप्पं वत्तइस्सामो । तं जहा—सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्त-
यस्य तदिय-समयत्तवभवत्थस्स एगमुस्सेह - घणंगुलं ठविय तप्पाओग्ग - पलिबोवभस्स
असंखेज्जविभागेण भागे हिदे वलद्धं एविस्से सव्व-जहण्णोगाहणा-पमाणं होदि ॥

अर्थ—अब यहाँ अवगाहनाके विकल्प कहते हैं। वे इसप्रकार हैं—उत्पद्य होनेके तीसरे समयमें उस भवमें स्थित सूक्ष्मनिगोदिया(१)-लब्ध्यपर्याप्त जीवकी सर्व जघन्य अवगाहनाका प्रमाण, एक उत्सेध-घनांगुल रखकर उसके योग्य पस्थोपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना है ॥

एवस्स उवरि एग-पदेसं वड्ढिदो सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स मज्झि-मोगाहण-वियप्पं होवि । तदो दु-पदेसुत्तार-ति-पदेसुत्तार-चदु-पदेसुत्तार-जाव सुहुम-णिगोद-लद्धि - अपज्जत्तयस्स सव्व - जहण्णोगाहणा - णुवरि जहण्णोगाहणा रुद्धणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तां वड्ढिदो^१ ति । तादे सुहुम-वाउकाइय-लद्धि-^२अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—इसके ऊपर एक प्रदेशकी वृद्धि होनेपर सूक्ष्म-निगोदिया-लब्ध्यपर्याप्तकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प होता है। इसके पश्चात् दो प्रदेशोत्तर, तीन प्रदेशोत्तर एवं चार प्रदेशोत्तर क्रमशः सूक्ष्मनिगोदिया-लब्ध्यपर्याप्तकी सर्व-जघन्य अवगाहनाके ऊपर, यह जघन्य अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो, उतनी बढ़ जाती है। उस समय सूक्ष्म वायुकायिक(२) लब्ध्यपर्याप्तकी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

एवमवि सुहुमणिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स मज्झिमोगाहियाण वियप्पं होवि । तदो इमा ओगाहणा पदेसुत्तार-कमेण वड्ढावेदव्वा । तदणंतरोगाहणा रुद्धणावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तां वड्ढिदो^३ ति । तादे सुहुम-तेउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—यह भी सूक्ष्म-निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प है। तत्पश्चात् इस अवगाहनाके ऊपर प्रदेशोत्तर क्रमसे वृद्धि करना चाहिए। इसप्रकार वृद्धिके होनेपर वह अन्तर अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र वृद्धिको प्राप्त हो जाती है। तब सूक्ष्म तेजस्कायिक(३) लब्ध्यपर्याप्तकी सर्वजघन्य अवगाहना स्थान प्राप्त होता है ॥

एवमवि पुड्वित्त-दोण्णं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं होदि । पुणो एवस्सु-वरिम-पदेसुत्तार-कमेण इमा ओगाहणा रुद्धणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तां वड्ढिदो^३ ति । तादे सुहुम - आउक्काइय - लद्धि^३-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—यह भी पूर्वोक्त दो जीवोंकी मध्यम अवगाहना का ही विकल्प होता है। पुनः इसके ऊपर प्रदेशोत्तर-क्रमसे वृद्धि होनेपर यह अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित मात्र वृद्धिको प्राप्त हो जाती है। तब सूक्ष्म जलकायिक(४)-लब्धपर्याप्तिककी सर्व जघन्य अवगाहना प्राप्त होती है ॥

एदमवि पृथिवल-तिण्हं जीवाण मज्झिमोगाहण-वियप्पं होवि । तदो पदेसुत्तर-कमेण चउण्हं जीवाण मज्झिमोगाहण-वियप्पं वट्टवि जाव इमा ओगाहणा रुवूणावलियाए असंखेज्जविभागेण गुणिवमेत्तं वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-पुढविकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दोसइ ॥

अर्थ—यह भी पूर्वोक्त तीन जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प है। पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे चार जीवोंकी मध्यम अवगाहना चालू रहती है। जब यह अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र वृद्धिको प्राप्त होती है, तब सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(५) लब्धपर्याप्तिककी सर्व जघन्य अवगाहना प्राप्त होती है ॥

तदो पहुवि पदेसुत्तर-कमेण पंचण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वट्टवि । इमा ओगाहणा रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जविभागेण गुणिवमेत्तं वड्ढिदो त्ति । तादे वादर-वाउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दोसइ ॥

अर्थ—यहाँसे लेकर प्रदेशोत्तर क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहना चालू रहती है। यह अवगाहना एक कम पर्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र वृद्धि प्राप्त हो जाती है। तब बादर वायुकायिक(६) लब्धपर्याप्तिककी सर्व-जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

ततो उवरि पदेसुत्तर-कमेण छण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वट्टवि जाव इमा ओगाहणा रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जवि-भागेण गुणिवमेत्तं वड्ढिदो त्ति । तादे वादर-तेउकाइय-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दोसइ ॥

अर्थ—इसके ऊपर प्रदेशोत्तर क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प प्रारम्भ रहता है। जब यह अवगाहना एक कम पर्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र वृद्धिको प्राप्त होती है, तब बादर तेजस्कायिक(७)-अपर्याप्तिककी सर्व-जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्ताण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहणा-वियप्पं वड्ढदि जाव इमा ओगाहणामुवरि 'रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिद-तदनंतरोगाहण-पमाणं वड्ढिदो ति । तादे बादर-आउ-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चालू रहता है जब इस अवगाहनाके ऊपर एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित उस अनन्तर अवगाहना का प्रमाण बढ़ चुकता है, तब बादर जलकायिक(८) लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वड्ढदि जाव तदनंतरोगाहणा रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-पुढवि-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चालू रहता है । जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है, तब बादर पृथिवीकायिक(९) लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण णवण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि जाव तदनंतरोगाहणा रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-जीव-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णोगाहणा होदि ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उपर्युक्त नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है । जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है, तब बादर निगोद(१०)-लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी सर्व जघन्य अवगाहना होती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि एविस्से ओगाहणाए उवरि इमा ओगाहणा रुऊण - पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं वड्ढिदो ति । तादे णिगोद-पदिद्विव-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे उक्त दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है, जब इस अवगाहनाके ऊपर यह अवगाहना एक कम पत्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित-मात्र वृद्धिको प्राप्त हो चुकती है, तब निगोदप्रतिष्ठित(११) लब्ध्यपर्याप्तिककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण एवकारस-जीवाण मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि जाव इमा ओगाहणा-मुवरि रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जविभागेण गुणिद-तदणंतरोगाहणमेत्तं वड्ढदो^१ ति । ताहे^२ बाहर-वणप्फविकाइय-पत्तेय-सरीर-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णो-गाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे उक्त ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है, जब इस अवगाहनाके ऊपर एक कम पत्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित तदनन्तर अवगाहना प्रमाण वृद्धि हो चुकती है, तब बाहर वनस्पतिकायिक(१२)-प्रत्येक शरीर लब्ध्यपर्याप्तिककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण बारसण्हं जीवाण मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि तदणं-तरोवगाहणा रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जविभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढदो^१ ति । तादे बीइ^२विय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उक्त बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पत्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (उस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त हो चुकती है, तब दो इन्द्रिय(१३) लब्ध्यपर्याप्तिककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पडुवि पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि जाव तदणंतरोगाहण-रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जविभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढदो^१ ति । तदो तोइ^२विय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् यहाँसे आगे प्रदेशोत्तर-क्रमसे उक्त तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है जब तदनन्तर अवगाहना-विकल्प एक कम पत्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (उस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त हो चुकती है, तब तीन इन्द्रिय(१४) लब्ध्यपर्याप्तिककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण चोदसण्हं जीवाण मज्झिमोगाहण - वियप्पं वड्ढदि तदणंतरोगाहणं रुऊण-पलिबोवमस्स असंखेज्जविभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे चत्तरिदिय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उक्त चौदह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पर्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (उस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त हो चुकती है, तब चार-इन्द्रिय(१५) लब्ध्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण पणारसण्हं जीवाण मज्झिमोगाहण - वियप्पं वड्ढदि तदणंतरोगाहणां रुऊण-पलिबोवमस्स असंखेज्जविभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे^१ पंचेदिय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे उक्त पन्द्रह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पर्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त कर लेती है, तब पंचेन्द्रिय(१६)-लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सोलसण्हं [जीवाण] मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेस-वड्ढिदो त्ति । तदो सुहुम-णिगोद-णिब्बत्ति-अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णा ओगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उक्त सोलह [जीवोंकी] मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है, जब तक इसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि प्राप्त होती है । पश्चात् सूक्ष्म-निगोद(१७) निर्वृत्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं होदि जाय तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्क-स्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर - क्रमसे उक्त सत्तरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प होता है जब इसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि हो जाती है । तब सूक्ष्मनिगोद(१८)-लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।

तदुवरि णत्थि^१ सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तायस्स ओगाहण-वियप्पं, सञ्चुक्क-
स्सोगाहणं^२ पत्तादो । तदुवरि सुहुम-वाउकाइय-लद्धि-अपज्जत्ताय-प्पहुदि सोलसण्हं
जोवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि, तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसणूण-पंचेदिय-लद्धि-
अपज्जत्ता-जहण्णोगाहणा रुऊणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तां तदुवरि वड्ढिदो
त्ति । तावे सुहुम-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तायस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—इसके ऊपर सूक्ष्म निगोद लब्धपर्याप्तककी अवगाहनाका विकल्प नहीं रहता, क्योंकि
वह उत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त हो चुका है, इसलिए इसके आगे सूक्ष्मवायुकायिक-लब्धपर्याप्तककी
आदि लेकर उक्त सोलह जीवोंकी ही मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है । जब इसके योग्य
असंख्यात प्रदेश कम पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें
भागसे गुणितमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है, तब सूक्ष्मनिगोद(१९) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी
जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पहुदि पदेसुत्तर-कमेण सत्तरसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढिदि तदण-
तरोगाहणावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदेगभागमेत्तां तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तावे
सुहुम-णिगोद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—फिर यहाँसे आगे प्रदेशोत्तर-क्रमसे तदनन्तर अवगाहनाके आवलीके असंख्यातवें
भागसे खण्डित एक भागमात्र (इस)के ऊपर बढ़ जाने तक उक्त सत्तरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका
विकल्प बढ़ता जाता है, तब सूक्ष्मनिगोद(२०) निर्वृत्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना
दिखती है ॥

तदो उवरि णत्थि तस्स ओगाहण-वियप्पा । तं कस्स होदि ? से काले
पज्जत्तो होदि त्ति ठिबस्स । तदो पहुदि पदेसुत्तर-कमेण सोलसण्हं मज्झिमोगाहणा-
वियप्पं वड्ढिदि जाव इमा ओगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडमेत्तां
तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तावे सुहुम-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तायस्स ओगाहण-वियप्पं थक्कदि,
सञ्च-उक्कस्सोगाहण^३-पत्तादो । तदो पदेसुत्तर - कमेण पण्णारसण्हं मज्झिमोगाहण-
वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तावे सुहुम-वाउकाइय-णिव्वत्ति-
अपज्जत्तायस्स सञ्च जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—इसके आगे उस सूक्ष्म निगोद निर्वृत्त्यपर्याप्तककी अवगाहनाके विकल्प नहीं रहते । यह अवगाहना किसके होती है ? अनन्तरकालमें पर्याप्त होनेवालेके उक्त अवगाहना होती है । यहाँसे आगे प्रदेशोत्तर-क्रमसे अवगाहनाके आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र (उस)के ऊपर बढ़ जाने तक उक्त सोलह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है । इस समय सूक्ष्म-निगोद(२१) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी अवगाहनाका विकल्प स्थगित हो जाता है, क्योंकि वह सर्वोत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त हो चुका है । पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होनेतक पन्द्रह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है । तदनन्तर सूक्ष्म-वायुकायिक(२२) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पवेसुत्तर-कमेण सोलसण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पवेस-वड्ढिदो ति । तादे सुहुम-वाउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स ओगाहण'-वियप्पं थक्कदि, समुक्कस्सोगाहण-पत्तात्तादो । तादे पदेसुत्तर - कमेण पण्णारसण्हं व मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि । केत्तियमेत्तेण ? सुहुम-निगोद-णिब्बत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं रुऊणायत्तियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तं हेट्ठिम तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पवेसेणूणं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे सुहुम-वाउकाइय-णिब्बत्ति - पज्जत्तयस्स जहण्णो गाहणा वोसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक सोलह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है । तब सूक्ष्मवायुकायिक(२३) लब्धपर्याप्तककी अवगाहनाका विकल्प स्थगित हो जाता है, क्योंकि वह उत्कृष्ट अवगाहनाको पा चुका है । तब प्रदेशोत्तर-क्रमसे पन्द्रह जीवोंके समान मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता रहता है । कितने मात्रसे ? सूक्ष्मनिगोद निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित-मात्र अधस्तन उसके योग्य असंख्यात प्रदेश कम उसके ऊपर वृद्धि होने तक । तब सूक्ष्म-वायुकायिक(२४) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।

तदो पवेसुत्तर - कमेण सोलसण्हं ओगाहण - वियप्पं वच्चदि इमा ओगाहणा आवत्तियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदेग - खंडं वड्ढिदो ति । तादे सुहुम - वाउकाइय-णिब्बत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा वोसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सोलह जीवोंकी अवगाहनाका विकल्प तब तक चालू रहता है, जब तक ये अवगाहनायें आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भाग प्रमाण वृद्धिको

प्राप्त न हो जायें । उस समय सूक्ष्म-वायुकायिक(२५) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण पण्णारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरो-
गाहणा आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तावे सुहुम-
वाउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा होदि । तदो पदेसुत्तर-कमेण चोदसण्हं
ओगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तावे सुहुम-तेउकाइय-
णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पन्द्रह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक कि तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक खण्ड-प्रमाण इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो चुके । उस समय सूक्ष्म-वायुकायिक(२६) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना होती है । तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक बढ़ता जाता है । उस समय सूक्ष्म तेजस्कायिक(२७) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण पण्णारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग-
असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तावे सुहुम-तेउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्य ओगाहण-वियप्पं
थक्कदि, स उक्कस्सोगाहणं पत्तसादो । तदो पदेसुत्तर-कमेण चोदसण्हं ओगाहण-वियप्पं
वच्चदि । केत्तिपमेत्तेण ? सुहुम-वाउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा
रुऊणावलियाए असंखेज्जदि - भागेण गुणिदं तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसेणूणं तदुवरि
वड्ढिदो त्ति । तावे सुहुम - तेउकाइय - णिव्वत्ति पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा
दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक पन्द्रह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है । उस समय सूक्ष्मतेजस्कायिक(२८)-लब्ध्यपर्याप्तककी अवगाहनाका विकल्प विश्रान्त हो जाता है, क्योंकि वह उत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त हो चुका है । तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी अवगाहनाका विकल्प चलता रहता है । कितने मात्रसे ? सूक्ष्मवायुकायिक-निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित इसके योग्य असंख्यात प्रदेश कम (उम)के ऊपर वृद्धिके होने तक । तब सूक्ष्मतेजस्कायिक(२९)-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण पण्णारसण्हं ओगाहण-वियप्पं गच्छदि तदनंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडं वडिढदो त्ति । तादे सुहुम-तेउकाइय-णिब्बत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पन्द्रह जीवोंकी अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागप्रमाण वृद्धिको प्राप्त न हो जावे । उस समय सूक्ष्म-तेजस्कायिक(३०) निर्वृत्यपर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण चौदसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदनंतरोगाहणं आवलियाए संखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वडिढदो त्ति । तादे सुहुम-तेउकाइय-णिब्बत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ । एतियमेत्ताणि चेव तेउकाइय जोवस्स ओगाहण-वियप्पा । कुदो ? समुक्कस्सोगाहण-वियप्पं पत्तं ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक कि तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो जावे, तब सूक्ष्म-तेजस्कायिक(३१) निर्वृत्ति पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । इतने मात्र ही तेजस्कायिक जीवकी अवगाहनाके विकल्प हैं, क्योंकि वह उत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त हो चुका है ।

तादे पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पा-ओगा असंखेज्ज-पदेसं वडिढदो त्ति । तादे सुहुम-आउकाइय - णिब्बत्ति - अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चालू रहता है जब तक कि उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि न हो चुके, तब फिर सूक्ष्म-जलकायिक(३२)-निर्वृत्यपर्याप्तिककी अवगम्य अवगाहना दिखती है ।

तदो पदेसुत्तर-कमेण चौदसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पा-ओगा-असंखेज्ज-पदेसं वडिढदो त्ति । ताहे सुहुम-आउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्क-स्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । इस समय सूक्ष्म-जलकायिक(३३) लब्ध-पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि । केत्तिय-मेत्तेण ? सुहुम-तेउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तुवकस्सोगाहणं रुऊणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तां पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-आउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता रहता है । कितने मात्रसे ? सूक्ष्मतेजस्कायिक निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहनाके एक कम आवलीके असंख्यातवें-भागसे गुणितमात्र पुनः उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंसे रहित इसके ऊपर वृद्धि होने तक । तब सूक्ष्मजलकायिक(३४)-निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण चोदसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा^१ आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडमेत्तां तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-आउकाइय-णिव्वत्ति-अप्पज्जत्तयस्स उवकस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक कि तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो चुके । तब सूक्ष्म-जलकायिक(३५)-निर्वृत्यपर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडमेत्तां तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-आउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उवकस्सोगाहणा होवि । एत्तियमेत्ता आउकाइय-जीवाणं ओगाहण-वियप्पा^२ । कुदो ? सव्वोवकस्सोगाहणं पत्तादा^३ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो चुके । उस समय सूक्ष्मजलकायिक(३६)-निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी उत्कृष्ट

अवगाहना होती है । इतने मात्र ही जलकायिक जीवोंकी अवगाहनाके विकल्प हैं, क्योंकि सर्वोत्कृष्ट अवगाहना प्राप्त हो चुकी है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण बारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णो-गाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह-जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चालू रहता है । तब सूक्ष्मपृथिवीकायिक(३७)-निर्वृत्त्य-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पहुदि पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-पुढवि-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—यहांसे आदि लेकर प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(३८)-लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो^१ पदेसुत्तर - कमेण बारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढिदि । केत्तिपमेत्तेण ? सुहुम-आउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं रुऊणावल्लियाए असंखेज्जदिभागेण गुणितमेत्तं पुणो तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसेणूणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता रहता है । कितने मात्रसे ? सूक्ष्म-जलकायिक-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाके एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र पुनः उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंसे कम इसके ऊपर वृद्धि होने तक । उस समय सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(३९) निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणं-तरोगाहणं आवल्लियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेय-खंडमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-पुढवि-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह-जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है, जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो जाए । तब सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(४०) निवृत्त्यपर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो^१ पदेसुत्तर-कमेण बारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदण-
तरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खण्डिय तत्थंग-भागं तदुवरि वड्ढिदो सि ।
तदो सुहुम-पुढवि-काइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणं दोसइ । तदोवरि सुहुम-
पुढविकाइयस्स ओगाहण-वियप्पं णत्थि ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाको आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धि होने तक चलता रहता है । तत्पश्चात् सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(४१)-निवृत्तिपर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । इसके आगे सूक्ष्म-पृथिवीकायिककी अवगाहनाका विकल्प नहीं है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण एक्कारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि
तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो सि । तादे बादर-वाउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तायस्स
जहण्णोगाहणं दोसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर-वायुकायिक(४२) निवृत्त्यपर्याप्तिककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण बारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढिदि तप्पा-
ओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो सि । तादे बाबर-वाउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तायस्स उक्क-
स्सोगाहणं दोसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक बढ़ता रहता है । उस समय बादर वायुकायिक(४३) लब्धपर्याप्तिक की उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण एक्कारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि । तं केत्तिप-
मेत्तेण ? इदि उत्तो सुहूम-पुढविकाइय-णिब्बत्ति-पज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणा रुऊण-
पलिदोवमसंखेज्जदि-भागेण गुणिदं पुणो तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि
वड्ढिदो ति । तादे बादर - वाउकाइय - णिब्बत्ति - पज्जत्तायस्स जहणिया ओगाहणा
दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता
रहता है । वह कितने मात्रसे ? इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि सूक्ष्म-पृथिवीकायिक निर्वृत्ति-
पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहनाके एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित पुनः उसके योग्य
असंख्यात प्रदेशोंसे हीन उसके ऊपर वृद्धि होने तक । उस समय बादर वायुकायिक(४४) निर्वृत्ति-
पर्याप्तिककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण बारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं
आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडियमेत्तां तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-वाउकाइय-
णिब्बत्ति-अपज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक
चलता है जब तक कि तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित मात्र इसके ऊपर
वृद्धिको प्राप्त होती है । तब बादर वायुकायिक(४५) निर्वृत्त्य पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना
दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण एक्कारसण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरो-
गाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-
वाउकाइय-पज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ । तदुवरि तस्स ओगाहण-वियप्पा णत्थि,
सध्वक्कस्सं पत्तत्तादो ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक
चालू रहता है, जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करनेपर एक भाग
प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है । तब बादर वायुकायिक(४६) निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी उत्कृष्ट
अवगाहना दिखती है ।

तदो पदेसुत्तर-कमेण वसण्हं जीवारा मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पा-
ओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो ति । तादे बादर - तेउकाइय - णिब्बत्ति - अपज्जत्तायस्स
जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर-तेजस्कायिक(४७)-निर्वृत्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-क्रमेण-एककारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्जदि-पदेसं वड्ढिदो' ति । तादे बादर-तेजकाइय-लद्धि-अपज्जत्तायस्स उक्कस्सो-गाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर-तेजस्कायिक(४८)-लब्ध्य-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-क्रमेण दसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि बादर-वाउकाइय-णिब्बत्ति-पज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणं रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिय पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-तेजकाइय-णिब्बत्ति-पज्जत्तायस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक बादर वायुकायिक-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम पत्थोपमके असंख्यातवें भागसे गुणा करके पुनः इसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंसे रहित उसके ऊपर वृद्धि होती है । तब बादर-तेजस्कायिक(४९) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-क्रमेण एककारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-तेजकाइय-णिब्बत्ति-अपज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहनाको आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धि न हो जावे । तब बादर-तेजस्कायिक(५०) निर्वृत्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तार-कमेण वसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तवणं-
तरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तदेगभाणं तदुवरि वडिढदो ति ।
तादे^१ बादर-तेउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ । [तदुवरि तस्स
ओगाहण-वियप्पं णत्थि, उक्कस्सोगाहणं पत्तातादो ।]

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता
रहता है जब तक तदनन्तर अवगाहनाको आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक
भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धि हो चुकती है । तब बादर-तेजस्कायिक(५१) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी
उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । [इसके आगे उसकी अवगाहनाके विकल्प नहीं हैं, क्योंकि वह उत्कृष्ट
अवगाहनाको प्राप्त कर चुका है ।]

तदो पदेसुत्तार - कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग-
असंखेज्ज-पदेस-वडिढदो ति । तादे बादर-आउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहणो-
गाहणं दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य
असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । इस समय बादर जलकायिक(५२)-निर्वृत्य-
पर्याप्तककी अधन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तार-कमेण वसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं गच्छदि तप्पा-
ओग-असंखेज्ज-पदेसं वडिढदो ति । तादे बादर-आउ-लद्धि-अपज्जत्तयस्स^२ उक्कस्सो-
गाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य
असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर-जलकायिक(५३) लब्धपर्याप्तककी
उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तार-कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं गच्छदि रुऊण-पलिवोव-
मस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिव-तेउकाइय-णिव्वत्ति पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं पुराणो
तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वडिढदो ति । तादे बादर-आउकाइय-
णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहणोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक एक कम पर्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित तेजस्कायिक निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना पुनः उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंसे हीन इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती । तब बादर जलकायिक(५४) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-क्रमेण दसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो सि । तादे बादर-आउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उवकस्सोगाहणं दोसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यात भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक खण्ड प्रमाण इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती । तब बादर जलकायिक(५५) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - क्रमेण एवण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरो-गाहणा आवलियाए असंखेज्जदि भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो सि । तादे बादर आउकाइय - णिव्वत्ति - पज्जत्तयस्स उवकस्सोगाहणं दोसइ । तदोवरि णत्थि एवस्स ओगाहण-वियप्पं ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भाग प्रमाण इसके ऊपर नहीं बढ़ जाती । तब बादर जलकायिक(५६) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । इसके आगे उसकी अवगाहनाके विकल्प नहीं हैं ॥

तदो पदेसुत्तर - क्रमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तत्पाओगा-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो' सि । तादे बादर-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहणो-गाहणा दोसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर-पृथिवीकायिक(५७) निर्वृत्त्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चवि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-पुढविकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सो-गाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नी जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प इसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर पृथिवीकायिक(५८) लब्ध्यपर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चवि । बादर आउकाइय-णिब्बत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं रुऊण-पत्तिदोवमस्स असंखेज्जदि भागेण गुणिदमेत्तं तप्पाओग्ग असंखेज्ज-पदेसं परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर पुढविकाइय-णिब्बत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक बादर जलकायिक-निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम पल्योपम के असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र उसके योग्य असंख्यातप्रदेशोंसे रहित उसके ऊपर वृद्धि होती है । तब बादर पृथिवीकायिक(५९) निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चवि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-पुढवि-णिब्बत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहण दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित कर एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो चुके । तब बादर-पृथिवीकायिक(६०)-निर्वृत्ति-अपर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चवि तदणंतरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण-खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-पुढवि काइय-णिब्बत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—तब प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक खण्ड प्रमाण

उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती । तब बादर-पृथिवीकायिक(६१) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर-निगोद(६२) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर निगोद(६३) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि रुऊण-पलिदोव-मस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिद-बादर-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर - णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक एक कम पत्योपम असंख्यातवें भागसे गुणित बादर-पृथिवीकायिक-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंसे हीन होकर इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती । तब बादर निगोद(६४)-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं गच्छदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि - भागेण खंडिदेग - खंडं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है । जब तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त हो जाती है तब बादर-निगोद(६५) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदनंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित कर उसमेंसे एक भाग प्रमाण इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो जावे । तब बादर-निगोद(६६) निर्वृत्ति-पर्याप्तकको उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर-निगोद(६७) प्रतिष्ठित-निर्वृत्त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सो-गाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चालू रहता है । तब बादर-निगोद (६८) प्रतिष्ठित लब्धपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि बादर-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्त-उक्कस्सोगाहणं रुऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि - भागेण गुणिय पुणो तप्पाओग-असंखेज्ज-पदेसेणूणं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चालू रहता है जब तक बादर-निगोद-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित होकर पुनः उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंसे रहित इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती है । तब बादर-निगोद(६९) प्रतिष्ठित-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं
आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-णिगोद-
पदिट्ठिद-णिग्गत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक
चलता रहता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवर्ग भागसे खण्डित करनेपर एक भाग
प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती । तब बादरनिगोद(७०) प्रतिष्ठित-निवृत्त्य-
पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं
आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो ति । तादे बादर-
णिगोद-पदिट्ठिद-णिग्गत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक
चालू रहता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवर्ग भागसे खण्डित कर उसमेंसे एक
भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती । तब बादरनिगोद(७१) प्रतिष्ठित-निवृत्ति-
पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण पंचण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तत्था-
ओग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो ति । तादे बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिग्गत्ति-
अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य
असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर-वनस्पतिकायिक(७२)-प्रत्येकशरीर-
निवृत्त्यपर्याप्तककी जगह अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तत्थाओग-असंखेज्ज-
पदेसं वड्ढिदो ति । तादे बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेय-सरीर-लद्धि-अपज्जत्तयस्स-उक्क-
स्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य
असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब बादर वनस्पतिकायिक (७३) प्रत्येकशरीर
लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण पंचण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि रुऊण-
पलिदोवमस्स असंखेज्जदि - भागेण गुणिव-बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-णिग्गत्ति-पज्जत्तयस्स

उक्कस्सोगाहणं पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तवुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिब्बत्ति-अपज्जत्तायस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक बादर-निगोद-प्रतिष्ठित-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम पत्थोपमके असंख्यातवें भागसे गुणा करके पुनः उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंसे रहित उसके ऊपर वृद्धि नहीं हो जाती । तब बादर-वनस्पतिकायिक(७४) प्रत्येकशरीर-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे बीइंदिय - लद्धि - अपज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब दो-इन्द्रिय(७५) लब्ध-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण पंचण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे तीइंदिय-लद्धि-अपज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब तीन-इन्द्रिय(७६) लब्ध-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण चउण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे चउरिंदिय-लद्धि-अपज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चार जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब चार-इन्द्रिय(७७) लब्ध-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण तिण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे पाँचविय - लद्धि - अपज्जत्तायस्स उक्कस्सोगाहणा

दीसइ । तदो एवमवि घणंगुलस्स असंखेज्जदि^१-भागो । एत्तो उवरि ओगाहणा घणंगुलस्स संखेज्ज - भागो कत्थ वि घणंगुलो, कत्थ वि संखेज्ज - घणंगुलो त्ति घेतब्बं ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तीन जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चालू रहता है । तब पंचेन्द्रिय(७८) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । तब यह भी घनांगुलके असंख्यातवें भागसे है । इससे आगे अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भाग, कहीं पर घनांगुल प्रमाण और कहींपर संख्यात घनांगुल-प्रमाण ग्रहण करनी चाहिए ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण दोण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तावे तीइंदिय - णिब्बत्ति - अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दो जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब तीनइन्द्रिय(७९) इन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण तिण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तावे चउरिदिय-णिब्बत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तीन जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता है । तब चार-इन्द्रिय(८०) निर्वृत्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण चउण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तावे बीइंदिय-णिब्बत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चार जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता है । तब दो इन्द्रिय(८१) निर्वृत्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण पंचण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे पंचेदिय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दोसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता है । तब पंचेन्द्रिय(५२) निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्णं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे दोइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दोसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता है । तब दो इन्द्रिय(५३) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

ताव एकाणं गुणगार-रूढं विचारेमो-बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहण-पहुवि दोइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्त-जहण्णोगाहणमवसाणं जाव एवमि अंतराले' जादाणं सव्वाणं मिलिदे कित्तिया इदि उत्ते बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं रुऊए-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तां तदुवरि वड्ढिदो त्ति घेत्तव्वं । तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्ताण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं तप्पाओग्ग-संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । तादे तीइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स सब्ब-जहण्णोगाहणा दोसइ ॥

अर्थ—अब इनकी गुणकार संख्याका विचार करते हैं—बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाको लेकर दोइन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना तक इनके अन्तरालमें उत्पन्न सबके सम्मिलित करनेपर 'कितनी है' इसप्रकार पूछने पर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाको एक कम पत्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो उतनी इसके ऊपर वृद्धि होती है, इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए । पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना उसके योग्य संख्यातगुणी प्राप्त न हो जावे । तब तीन इन्द्रिय (५४) निर्वृत्ति-पर्याप्तकको सब जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं ओगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहण - वियप्पं तप्पाओगा-संखेज्ज गुणं पत्तो^१ ति । तादे चउरिदिय - णिव्वत्ति - पज्जत्तयस्स जहण्णो-गाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना-विकल्प उसके योग्य संख्यात-गुणी प्राप्त न हो जावे । तब चार इन्द्रिय (८५) निवृत्ति-पर्याप्तिककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो ति । तादे पंचेदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है । तब पंचेन्द्रिय (८६) निवृत्ति-पर्याप्तिककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो ति । तादे तीइदिय - णिव्वत्ति - अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है । तब तीन इन्द्रिय (८७) निवृत्त्यपर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज - गुणं पत्तो ति । तादे चउरिदिय - णिव्वत्ति - अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता है । तब चार इन्द्रिय (८८) निवृत्त्यपर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज - गुणं पत्तो ति । तादे बीइदिय - णिव्वत्ति - अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है । तब दोइन्द्रिय(८९) निर्वृत्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सतण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । तादे बादर वराप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स^१ उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता है । तब बादर-वनस्पतिकायिक(९०) प्रत्येकशरीर निर्वृत्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । तादे पंचेदिय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी प्राप्त होने तक चलता है । तब पंचेन्द्रिय(९१) निर्वृत्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

त्रोन्द्रिय जीव (गोम्ही) की उत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तर-कमेण पंचण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चवि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । [तादे तीइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ।] तं^२ कस्स होदि त्ति भणिवे तीइंदियस्स-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा बट्टमाणस्स सयंपहाचल-परभाग-द्विय-खेत्ते उप्पण्ण-गोहोए उक्कस्सोगाहणं कस्सइ जीवस्स दीसइ । तं केत्तिथा इदि उत्ते उस्सेह-जोयणस्स तिण्णि-चउब्भगो आयासो^३ तदट्ट-भागो विवखंभो विवखंभद्^४-बहलं । एदे तिण्णि वि परोप्परं गुणिय पमाण-घणंगुले कदे^५ "एक्क-कोडि-उणवीस-लक्ख"^६ तेदाल-सहस्स-णव-सय-छत्तीस रुवेहि गुणिद - घणंगुला^७ होति । ६ । ११६४३६३६ ।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है । [तब तीनइन्द्रिय(९२) निर्वृत्ति-

१. द. व. पज्जत्तयस्स । २. द. व. क. ज. अंत-उक्कस्स । ३. द. व. क. ज. तदट्टभागे । ४. द. व. क. विवखंभद् । ५. द. क. एक्कक्कादीए, व. एक्केकोडीए, ज. एक्कोकोडी । ६. द. व. लक्खा ।

पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।] यह अवगाहना किस जीवके होती है ? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभाचलके बाह्य भागमें स्थित क्षेत्रमें उत्पन्न और उत्कृष्ट अवगाहनामें वर्तमान किसी गोम्हीके वह उत्कृष्ट अवगाहना होती है, यह उत्तर है । वह कितने प्रमाण है ? इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि उसका एक उत्सेध योजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग प्रमाण आयाम, इसके आठवें भाग प्रमाण विस्तार और विस्तारसे आधा बाह्य है । इन तीनोंका परस्पर गुणा करके प्रमाण घनांगुल करनेपर एक करोड़ उन्नीस लाख तैंतालीस हजार नौ सौ छत्तीस रूपोंसे गुणित घनांगुल होते हैं ।

विशेषार्थ—असंख्यात द्वीपोंमें स्वयम्भूरमाण अन्तिम द्वीप है, इस द्वीपके वलयव्यासके बीचों-बीच एक स्वयम्प्रभ नामक पर्वत है । इस पर्वतके बाह्य भागमें कर्मभूमिकी रचना है । उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय (त्रस) जीव वहीं पाये जाते हैं । यहाँ स्थित त्रीन्द्रिय जीव गोम्ही (चींटी) का व्यास उत्सेध (व्यवहार) योजनसे $\frac{3}{4}$ योजन (६ मील), सम्बाई $\frac{3}{4}$ योजन ($\frac{3}{4}$ मील) और ऊँचाई $\frac{3}{4}$ योजन ($\frac{3}{4}$ मील) है । जिसका घनफल ($\frac{3}{4}$ यो० $\times$ $\frac{3}{4}$ यो० $\times$ $\frac{3}{4}$ यो० =) $\frac{27}{64}$ उत्सेध घन योजन प्राप्त होता है ।

जबकि एक योजनके ७६८००० अंगुल होते हैं तब $\frac{27}{64}$ घन योजनके कितने अंगुल होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{27}{64} \times 768000 \times 768000 \times 768000$ घनांगुल होते हैं । ये उत्सेध घनांगुल हैं । ५०० उत्सेध घनांगुलोंका एक प्रमाणांगुल होता है अतः उपर्युक्त उत्सेधांगुलोंके प्रमाणांगुल बनाने हेतु उन्हें ५०० के घनसे भाजित करनेपर $\frac{768000 \times 768000 \times 768000}{500 \times 500 \times 500}$ $= 362353656$ होते हैं । इनका गोम्हीक शरीरके $\frac{27}{64}$ उत्सेध घन योजनोंमें गुणा कर देनेपर ($\frac{27}{64} \times 362353656 =$) संख्यात घनांगुल (६) प्राप्त होते हैं । यहाँ घनांगुलका चिन्ह ६ है ।

अथवा— $\frac{27}{64} \times 362353656 = 11983936$ प्रमाण घनांगुल गोम्हीकी अवगाहनाका घनफल है ।

चतुरिन्द्रिय जीव (भ्रमर) की उत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पवेसुत्तर-कमेण चदुण्हं भड्ढिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । तादे चउरिन्दिय-णिध्वत्ति-पज्जत्तयस्स-उक्कस्सोगाहणं दीसइ । तं कस्स होदि त्ति भणिदे सयंपहाचल-परभाग-ट्टिय-खेलो उप्पण्ण-भमरस्स उक्कस्सोगाहणं कस्सइ दीसइ । तं केसिया इदि उत्ते उत्सेह-जोयणायाभं अद्धं जोयणुस्सेहं जोयणद्ध-परिहि-विवखंभं ठविय विवखंभद्धमुस्सेह-गुणमायामेण गुणिदे उत्सेह - जोयणस्स तिणिण

अट्टभागा हवन्ति । तं चेवं ३ । ते पमाण-घणंगुला कीरमाणे एवकसय^१-पंचसीस-कोडोए उण्णउदि-लक्ख-चउवण्ण-सहस्स-चउ-सय-छण्णउदि-रुवेहि गुणिद - घणंगुलाणि हवन्ति । तं चेवं ४ । १३५८९५४४९६ ।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-कमसे चार जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी होने तक चलता रहता है । तब चारइन्द्रिय(१३) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । वह किस जीवके होती है, इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभाचलके बाह्य भागस्थ क्षेत्रमें उत्पन्न किसी भ्रमरके उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । वह कितने मात्र है, इसप्रकार कहने पर उत्तर देते हैं कि उत्सेध योजनसे एक योजन प्रमाण आयाम, आधा योजन ऊँचाई और अर्ध योजनकी परिधि प्रमाण विष्कम्भ को रखकर विष्कम्भके आधेको ऊँचाईसे गुणा करके फिर आयामसे गुणा करनेपर एक उत्सेध योजनके आठ भागोंमेंसे तीन भाग होते हैं । इनके प्रमाणांगुल करनेपर एक सौ पैंतीस करोड़ नवासी लाख चौपन हजार चारसौ छ्यानबं रूपोंसे गुणित घनांगुल होते हैं । वह इसप्रकार है । ६ । १३५८९५४४९६ ।

विशेषार्थ—चतुरिन्द्रिय जीव भ्रमरके शरीरकी अवगाहनाका प्रमाण उत्सेध योजनोंसे १ योजन लम्बा, १ योजन ऊँचा और $(\frac{1}{2} \times 2 =)$ १ योजन चौड़ा है । उपर्युक्त कथनानुसार अर्ध योजन ऊँचाईकी परिधि $(\frac{1}{2} \text{ यो०})$ के प्रमाण स्वरूप विष्कम्भके अर्धभाग $(\frac{1}{2} \div \frac{1}{2}) = १ \text{ यो०}$ को ऊँचाई और आयामसे गुणित करनेपर उत्सेध योजनोंमें $(\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} \times 2 =)$ १ घन यो० घनफल प्राप्त होता है । इसके प्रमाणांगुल बनानेके लिए $= (\frac{७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००}{५०० \times ५०० \times ५००} =) ३६२३८७८५६$ से गुणा करना चाहिए । यथा — $३ \times ३६२३८७८५६ =$ संख्यात घनांगुल (६) अथवा १३५८९५४४९६ घनांगुल भ्रमरकी अवगाहनाका घनफल है ।

द्वीन्द्रिय जीव (शंख) की उत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तर-कमेण तिण्हं मज्झिमोगाहण-विषप्पं वच्चवि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो ति । १ तादे बीइंदिय-णिब्बत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं होइ । तं कम्हि होइ ति भणिवे सयंपहाचल-परभाय-द्विय-खेत्ते उप्पण्ण - बीइंदियस्स (संखस्स) उक्कस्सोगाहणा कस्सइ दोसइ । तं केसिया इवि उत्ते बारस-जोयणायाम-चउ-जोयण-मुहस्स-खेत्तफलं—

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तीन जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है। तब दोइन्द्रिय(९४) निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना होती है। यह कहाँ होती है? इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभाचलके बाह्य भागमें स्थित क्षेत्रमें उत्पन्न किसी दोइन्द्रिय (शंख) की उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। वह कितने प्रमाण है? ऐसा कहनेपर उत्तर देते हैं कि बारह योजन लम्बे और चार योजन मुखवाले (शंखका) क्षेत्रफल—

व्यासं^१ तावत् कृत्वा, वदन-दलोनं मुखार्ध-वर्ग-युतम् ।

द्विगुणं चटुर्विभक्तं, सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः ॥३२१॥

एदेण सुत्तेण खेत्तफलमाणिदे^२ तेहत्तरि-उत्सेह-जोयणाणि हवन्ति ॥७३॥

अर्थ—विस्तारको उसनी बार करके अर्थात् विस्तारको विस्तारसे गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो उसमेंसे मुखके आधे प्रमाणको कम करके शेषमें मुखके आधे प्रमाणके वर्गको जोड़ देनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसे दूना करके चारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे शंखक्षेत्रका गणित कहते हैं ॥३२१॥

इस सूत्रसे क्षेत्रफलके जानेपर तिहत्तर (७३) उत्सेध वर्ग योजन होते हैं।

विशेषार्थ—शंखका आयाम १२ योजन और मुख ४ यो० प्रमाण है। क्षेत्रफल प्राप्त करने हेतु गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{शंखका क्षेत्र०} = \frac{२ \times [(\text{आयाम} \times \text{आ०}) - (\text{मुख व्यास} \div २) + (\text{अर्ध मुख व्यास}^२)]}{४}$$

यथा—

$$\begin{aligned} \text{शंखका क्षेत्रफल} &= \frac{२ \times [(१२ \times १२) - (४ \div २) + (२ \times २)]}{४} \\ &= \frac{२ [१४४ - २ + ४]}{४} = ७३ \text{ वर्ग योजन ।} \end{aligned}$$

शंखका बाहृत्य—

आयामे मुह-सोहिय, पुणरवि आयाम-सहिद-मुह-भजियं ।

बाहृत्यं णायब्बं, संखायारट्टिए खेत्ते ॥३२२॥

१. यह श्लोक संस्कृतमें है किन्तु इस पर भी गाथा नं० दिया गया है।

२ द. व. तेहत्तर।

एवेण सुत्तेण बाहल्ले आणिदे पंच-जोयण-यमाणं होदि । ५।

अर्थ—आयाममेंसे मुख कम करके जेधमें फिर आयामको मिलाकर मुखका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना शंखके आकारसे स्थित क्षेत्रका बाहल्य जानना चाहिए ॥३२२॥

इस सूक्ष्म बाहल्यको लानेपर उसका प्रमाण पांच योजन होता है ।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\begin{aligned} \text{शंखका बाहल्य} &= \frac{(\text{आयाम—मुख}) + \text{आयाम}}{\text{मुख}} \\ &= \frac{(१२-४)}{४} + १२ = ५ \text{ यो० बाहल्य ।} \end{aligned}$$

पुब्बमाणोद-तेहत्तरि-भूद-खेत्तफलं पंच-जोयण-बाहल्लेण गुणिदे घण-जोयणा तिण्णि-सय-पण्णट्ठी होंति । ३६५ । एवं घण-यमाणंगुलाणि कदे एक्क-लख-वत्तीस-सहस्स दोण्णि-सय-एक्कहत्तरी-कोडीओ सत्तावण्ण - लख णव-सहस्स-चउ-सय-चालीस-रुबेहि गुणिद-घणंगुलमेदं होदि । तं चेदं । ६ । १३२२७१५७०९४४० ॥

अर्थ—पूर्वमें लाये हुए तिहत्तर वर्ग योजन प्रमाण क्षेत्रफलको पांच योजन प्रमाण बाहल्यसे गुणा करनेपर तीनसौ पैसठ (३६५) घन योजन होते हैं । इसके घन-प्रमाणांगुल करनेपर एक लाख बत्तीस हजार दो सौ इकहत्तर करोड़ सत्तावन लाख नौ हजार चार सौ चालीस (१३२२७१५७०९४४०) रूपोंसे गुणित घनांगुलप्रमाण होता है ॥

विशेषार्थ—पूर्वोक्त ७३ उत्सेध वर्ग योजनोंको ५ योजन बाहल्यसे गुणित कर देनेपर (७३ × ५ =) ३६५ उत्सेध घन योजन प्राप्त होते हैं । इनके प्रमाणांगुल बनानेके लिए $\frac{७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००}{५०० \times ५०० \times ५००}$ का गुणा करना चाहिए यथा—

$३६५ \times ३६२३८७८६५६ = १३२२७१५७०९४४०$ घनांगुल शंखकी अवगाहनाका घनफल है ।

बादर वनस्पतिकाधिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्ति-पर्याप्तक (कमल) की
उत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तार - कमेण बोण्हं मज्झिमोगाहण-विग्रपं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं वत्तो सि । तादे बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तोय-सरीर-णिब्बत्ति-पज्जत्तयस्स

उक्कस्सोगाहणं बीसइ । कम्हि खेत्ते कस्स वि जीवस्स कम्म ओगाहणे वड्डमाणस्स होवि
 ति भणिदे सयंपहाचल-परभाग-द्विय-खेत्ता-उप्पण-पउमस्स उक्कस्सोगाहणा कस्सइ
 दीसइ । तं केत्तिया इदि उत्ते उस्सेह-जोयणेण कोसाहिय-एक्क-सहस्सं उस्सेहं एक्क-
 जोयण-बहलं समवट्ठं । तं पमाणं जोयण-फल ७५० । को १ । घणंगुले कदे दोणि-
 लक्ख-एक्कहत्तरि-सहस्स-अट्ठसय-अट्ठावण-कोडि-चउरासीदि-लक्ख-ऊणहत्तरि - सहस्स-वु-
 सय-अट्ठत्ताल-रुवेहि गुणिद-पमाणंगुलाणि होदि । तं चेदं ॥ १।६।२७१८५८८४६६२४८ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशांतर-क्रमस दो जावोंकी मध्यम-अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर
 अवगाहनाकं संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है । तब बादर-वनस्पतिकायिक (९५) प्रत्येक
 शरीर निवृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । किस क्षेत्र और कौनसी अवगाहनामें
 वर्तमान किस जीवके यह उत्कृष्ट अवगाहना होती है, इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि स्वयम्भ्रा-
 चलके बाह्य भागमें स्थित क्षेत्रमें उत्पन्न किसी पद्म (कमल) के उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । वह
 कितने प्रमाण है ? इसप्रकार पूछनेपर उत्तर देते हैं कि उत्सेध योजनसे एक कोस अधिक एक हजार
 योजन ऊँचा और एक योजन मोटा समवृत्त कमल है । उसकी इस अवगाहनाका घनफल योजनोंमें
 सातसौ पचास योजन और एक कोस प्रमाण है । इसके प्रमाण-घनांगुल करनेपर दो लाख इकहत्तर-
 हजार आठ सौ अट्ठावन करोड़ चौरासी लाख उनहत्तर हजार दो सौ अड़तालीस
 (२७१८५८८४६६२४८) रूपोंसे गुणित प्रमाण-घनांगुल होते हैं ॥

विशेषार्थ—कमलकी ऊँचाई १००० $\frac{३}{४}$ योजन और बाहुल्य १ योजन है ।

वासो तिमुरो परिही, वास-वउत्था-हदो वु खेत्ताफलं ।

खेत्ताफलं वेह - गुणं, खातफलं होइ सव्वत्थ ॥

इस गायानुसार घनफल प्राप्त करनेका सूत्र एवं घनफलका प्रमाण इसप्रकार है—

$$\text{कमलका घनफल} = \left(\text{व्यास} \times ३ \times \frac{\text{व्यास}}{४} \times \text{ऊँचाई} \right)$$

यथा—

$$= \frac{१ \times ३ \times १}{४} \times \frac{४००१}{४} = \frac{१२००३}{१६} \text{ या } ७५०\frac{३}{४} \text{ घन योजन ।}$$

इन ७५० $\frac{३}{४}$ उत्सेध घन योजनोंके प्रमाणांगुल बनानेके लिये इनमें
 $\frac{७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००}{५०० \times ५०० \times ५००}$ का गुणा करना चाहिए । यथा—

$७५० \frac{1}{2}$ या $१२००^3 \times ३६२३८७८६५६ = २७१८५८८४६९२४८$ घनांगुल कमल की अवगाहनाका घनफल है ।

पंचेन्द्रिय जीव (महामत्स्य) की सर्वोत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तर - कमेरा पंचेन्द्रिय-णिब्वत्ति-पज्जत्तयस्स मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चवि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । [तादे पंचेन्द्रिय-णिब्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ।] तं कम्मि खेत्ते कस्स जीवस्स होदि त्ति उत्तो सयंपहाचल-परभागट्टिए खेत्ते उप्पण्ण-संमुच्छिम-महामच्छस्स सब्बोक्कस्सोगाहणं कस्सइ दीसइ । तं केत्तिया इदि उत्ते उत्सेह-जोयणेण एक्क-सहस्सायामं पंच-सय-विक्खंभं तदइ-उत्सेहं । तं पमाणंगुले कीरमाणे चउ-सहस्स-पंच-सय-एऊणतीस-कोडीओ चूलसीवि-लक्ख-तेसीवि-सहस्स - दु - सय - कोडि - रुवेहि गुणिइ - पमाण - घणंगुलाणि हवन्ति । तं चेदं । ६ । ४५२६८४८३२०००००००००० ॥

। एवं ओगाहण-वियप्पं समत्तं ॥१६॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी मध्यम अवगाहनाका विकल्प-तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणो प्राप्त होने तक चलता है । [तब पंचेन्द्रिय(५६) निर्वृत्ति-पर्याप्तिककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।] यह अवगाहना किस क्षेत्रमें और किस जीवके होती है ? इसप्रकार पूछनेपर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभाचलके बाह्य-भाग स्थित क्षेत्रमें उत्पन्न किसी सम्मुच्छन्न महामत्स्यके सर्वोत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । वह कितने प्रमाण है ? इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि उसकी अवगाहना उत्सेध योजनसे एक हजार योजन लम्बी, पाँचसी योजन विस्तारवाली और इससे आधी अर्थात् ढाई सौ योजन प्रमाण ऊँचाई वाली है । इसके प्रमाणांगुल करनेपर चार हजार पाँच सौ उनतीस करोड़ चौरासी लाख तेरासी हजार दो सौ करोड़ रूपोंसे गुणित प्रमाण-घनांगुल होते हैं ।

विशेषार्थ—महामत्स्यकी लम्बाई १००० उत्सेध यो०, विस्तार ५०० उत्सेध यो० और ऊँचाई २५० उ० यो० है ।

मत्स्यका घनफल = लम्बाई × विस्तार × ऊँचाई

$$= १००० यो० \times ५०० यो० \times २५० यो० = १२५०००००० उत्सेध$$

घन योजन ।

इन उत्सेध घनयोजनोंके प्रमाणांगुल बनानेके लिए $\frac{७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००}{५०० \times ५०० \times ५००}$ का गुणा करना चाहिए ।

यथा— $१२५०००००० \times ३६२३८७८६५६ = ४५२९८४८३२०००००००००$ घनांगुल महामत्स्यके शरीरकी अवगाहनाका घनफल है ।

इसप्रकार अवगाहना-भेदोंका कथन समाप्त हुआ ॥१६॥

समस्त प्रकार के स्थावर एवं त्रस जीवोंकी

जघन्य अव० वाले सूक्ष्म लब्धपर्याप्त जीव स्थान-५		जघन्य अवगाहना वाले सूक्ष्म-निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव स्थान-५		जघन्य अवगा० वाले सूक्ष्म निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव स्थान-५		जघन्य-अव० वाले बादर लब्धपर्याप्त जीव स्थान-७	
१	निगोद	१७	निगोद	१९	निगोद	६	वायुकायिक
२	वायुकायिक	२२	वायुकायिक	२४	वायुकायिक	७	तेजस्कायिक
३	तेजस्कायिक	२७	तेजस्कायिक	२६	तेजस्कायिक	८	जलकायिक
४	जलकायिक	३२	जलकायिक	३४	जलकायिक	९	पृथिवीकायिक
५	पृथिवीकायिक	३७	पृथिवीकायिक	३९	पृथिवीकायिक	१०	निगोद
						११	निगोद प्रतिष्ठित
						१२	वनस्पति- प्रत्येक शरीर

जघन्य-उत्कृष्ट अवगाहनाका क्रम

जघन्य अवगाहना वाले बादर निवृत्त्य पर्याप्त जीव		जघन्य अव० वाले बादर निवृत्ति- पर्याप्तक जीव		जघन्य अव० वाले त्रस लब्धपर्याप्त जीव		जघन्य अव० वाले त्रस निवृत्ति- अपर्याप्तक जीव		जघन्य अव० वाले त्रस निवृत्ति पर्याप्तक जीव	
स्थान-७		स्थान-७		स्थान-४		स्थान-४		स्थान-४	
४२	वायुकायिक	४४	वायुकायिक	१३	द्वीन्द्रिय	७९	तेजन्द्रिय	८३	द्वीन्द्रिय
४७	तेजस्कायिक	४९	तेजस्कायिक	१४	तेजन्द्रिय	८०	चतुरिन्द्रिय	८४	तेजन्द्रिय
५२	जलकायिक	५४	जलकायिक	१५	चतुरिन्द्रिय	८१	द्वीन्द्रिय	८५	चतुरिन्द्रिय
५७	पृथिवी- कायिक	५९	पृथिवीकायिक	१६	पंचेन्द्रिय	८२	पंचेन्द्रिय	८६	पंचेन्द्रिय
६२	निगोद	६४	निगोद						
६७	निगोद प्रतिष्ठित	६९	निगोद प्रतिष्ठित						
७२	वनस्पति प्रत्येक शरीर	७४	वनस्पति प्रत्येक शरीर						

उत्कृष्ट अव० वाले सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक जीव स्थान-५		उत्कृष्ट अव० वाले सूक्ष्म निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव स्थान-५		उत्कृष्ट अव० वाले सूक्ष्म निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव स्थान-५		उत्कृष्ट अव० वाले बादर लब्ध्यपर्याप्तक जीव स्थान-७	
१८	निगोद	२०	निगोद	२१	निगोद	४३	वायुकायिक
२३	वायुकायिक	२५	वायुकायिक	२६	वायुकायिक	४८	तेजस्कायिक
२८	तेजस्कायिक	३०	तेजस्कायिक	३१	तेजस्कायिक	५३	जलकायिक
३३	जलकायिक	३५	जलकायिक	३६	जलकायिक	५८	पृथिवीकायिक
३८	पृथिवीकायिक	४०	पृथिवीकायिक	४१	पृथिवीकायिक	६३	निगोद
						६८	निगोद प्रति०
						७३	वनस्पति प्रत्येक शरीर

उत्कृष्ट अव० वाले बादर निर्वृत्ति- अपर्याप्तक जीव		उत्कृष्ट अव० वाले बादर निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव		उत्कृष्ट अव० वाले अस लब्धपर्याप्तक जीव		उत्कृष्ट अव० वाले निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव		उत्कृष्ट अव० वाले निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव	
स्थान-७		स्थान-७		स्थान-४		स्थान-४		स्थान-४	
४५	वायुकायिक	४६	वायुकायिक	७५	द्वीन्द्रिय	८७	तेइन्द्रिय	९२	तेइन्द्रिय
५०	तेजस्कायिक	५१	तेजस्कायिक	७६	तेइन्द्रिय	८८	चतुर्दिन्द्रिय	९३	चतुर्दिन्द्रिय
५५	जलकायिक	५६	जलकायिक	७७	चतुर्दिन्द्रिय	८९	द्वीन्द्रिय	९४	द्वीन्द्रिय
६०	पृथिवीकायिक	६१	पृथिवीकायिक	७८	पंचेन्द्रिय	९१	पंचेन्द्रिय	९६	पंचन्द्रिय
६५	निगोद	६६	निगोद						
७०	निगोद प्रति०	७१	निगोद प्रति०						
९०	वनस्पति प्रत्येक शरीर	९५	वनस्पति प्रत्येक शरीर						

अधिकारान्त मञ्जुल—

जं णाण^१-रघण-दीओ, लोयालोय-प्पयासण-समत्थो ।

पणमामि पुप्फयंतं, सुमइकरं भव्य - संघस्स ॥३२३॥

एवमाइरिय-परंपरागत-तिलोयपण्णत्तीए तिरिय-लोय-सरूव-णिरूवण-पण्णत्ती
एणम पंचमो महाहियारो समत्तो ॥५॥

अर्थ—जिनका ज्ञानरूपी रत्नदीपक लोक एवं अलोकको प्रकाशित करनेमें समर्थ है और
जो भव्य-समूहको सुमति प्रदान करनेवाले हैं ऐसे पुष्पदन्त जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३२३॥

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमें तिर्यंग्लोक स्वरूप

निरूपाए प्रशस्ति प्राप्त

पाँचवाँ महाधिकार

समाप्त हुआ ॥५॥





तिलोयपणत्ती

छठो महाहियारो

मङ्गलाचरण—

चोत्तीसादिसएहि^१, विम्हय-जणणं सुरिद-पट्टदीणं ।
णमिऊण सीदल - जिणं, वेंतरलोयं णिरुवेमो ॥१॥

अर्थ—चौत्तीस अतिशयोक्ती देवेन्द्र आदिको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले शीतल जिनेन्द्रको तमस्कार करके व्यन्तरलोकका निरूपण करता हूँ ॥१॥

अन्तराधिकारोंका निरूपण—

वेंतर-णिवासलेशं, भेदा एवाण विविह-चिण्हारिणं ।
कुलभेदो णामाहं, भेदविही दक्खिणुत्तरिबारिणं ॥२॥
आऊणि आहारो, उस्सासो ओहिणाण-सत्तीओ ।
उस्सेहो संत्ताणि, जम्मस-मरणणि एक-समयम्मि ॥३॥
आउग-बंधण-भावो, दंसण-गहणस्स कारणं विविहं ।
गुणठाणादि - विवप्पा, सत्तरस हवन्ति अहियारा ॥४॥

अर्थ—व्यन्तर देवोंका निवास-क्षेत्र १, उनके भेद २, विविध चिन्ह ३, कुलभेद ४, नाम ५, दक्षिण-उत्तर इन्द्रोंके भेद ६, आयु ७, आहार ८, उच्छ्वास ९, अवधिज्ञान १०, शक्ति ११, ऊँचाई १२, संख्या १३, एक समयमें जन्म-मरण १४, आयुके बन्धक भाव १५, सम्यक्त्वग्रहणके विविध कारण १६ और गुणस्थानादि-विकल्प १७, ये सत्तरह (अन्तर) अधिकार होते हैं ॥२-४॥

व्यन्तरदेवोंके निवासक्षेत्रका निरूपण—

रज्जु-कदो गुणिवद्धा, णवणउदि-सहस्स-अहिय-लवखेणं ।
तम्मज्जे ति - विद्यप्पा, वेंतरदेवाण होंति पुरा ॥५॥

ॐ । १९९००० ।

अर्थ—राजूके वर्गको एक लाख निन्यानबे हजार (१९९०००) योजनसे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उसके मध्यमें व्यन्तर देवोंके तीन प्रकारके पुर होते हैं ॥५॥

विशेषार्थ—“जगसेठि-सत्ता भागो रज्जू” इस गाथा-सूत्रानुसार जगच्छेणीके सातवें भाग को राजू कहते हैं । संहृष्टिके ॐ का अर्थ एक वर्ग राजू है । क्योंकि जगच्छेणी (—) के वर्ग (=) में ७ के वर्ग (४९) का भाग देने पर जो एक वर्ग राजू का प्रमाण प्राप्त होता है वही तिर्यग्लोकका विस्तार है अर्थात् तिर्यग्लोक एक राजू लम्बा और एक राजू चौड़ा ($१ \times १ = १$ वर्ग राजू) है ।

रत्नप्रभा पृथिवी १००००० हजार योजन मोटी है । इसके तीन भाग हैं । अन्तिम अब्बहुल-भाग ८०,००० योजन मोटा है, जिसमें नारकियोंका वास है । अवशेष एक लाख योजन रहा । सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है जिसमेंसे १००० यो० की उसकी नींव उपर्युक्त एक लाखमें गमित है अतः चित्रा पृथिवीके ऊपर मेरुकी ऊँचाई ९९ हजार योजन है । इसप्रकार पंकभागसे मेरुपर्वतकी पूर्ण ऊँचाई पर्यन्तका क्षेत्र ($१००००० + ९९००० =$) १९९००० यो० होता है । इसीलिए गाथामें राजूके वर्ग को एक लाख निन्यानबे हजार योजनसे गुणा करने को कहा गया है ।

व्यन्तर देवोंके निवास, भेद, उनके स्थान और प्रमाण आदिका निरूपण—

भवणं^१ भवणपुराणि, आवासा इय हवन्ति ति-विद्यप्पा^२ ।
जिण - मुहकमल - विणिगाव-वेंतर-पण्णत्ति णामाए ॥६॥
रयणप्पह-पुढवीए, भवणाणि^३ दीव-उवहि-उवरिम्मि ।
भवणपुराणि दह - गिरि - पढुवीणं उवरि आवासा ॥७॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान्‌के मुखरूपी कमलसे निकले हुए व्यन्तर-प्रजप्ति नामक महाधिकारमें भवन, भवनपुर और आवास इसप्रकार तीन प्रकारके निवास कहे गये हैं । इनमेंसे रत्नप्रभा पृथिवीमें भवन, द्वीप-समुद्रोंके ऊपर भवनपुर और द्रह (तालाब) एवं पर्वतादिकोंके ऊपर आवास होते हैं ॥६-७॥

बारस-सहस्र-जोयण-परिमाणं होदि जेदु-भवणारणं ।

पस्तेककं विक्खंभो, तिण्णि सयार्णि च बहलत्तं ॥८॥

१२००० । ब ३०० ।

अर्थ—उपेष्ठ भवनोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार बारह हजार (१२०००) योजन और बाह्य तीनसौ (३००) योजन प्रमाण है ॥८॥

पणुवीस जोयणारिण, रुंद-पमाणं जहण्ण-भवणारणं ।

पस्तेककं बहलत्तं, ति - चउउभाग - पमाणं च ॥९॥

अर्थ—जघन्य (लवु) भवनोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार पच्चीस योजन और बाह्य एक योजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग ($\frac{३}{४}$ यो०) प्रमाण है ॥९॥

अहवा रुंद-पमाणं, पुह-पुह कोसा जहण्ण-भवणारणं ।

तव्वेदी उच्छेहो, कोदडारिण पि पणुवीसं ॥१०॥

को १ । दं २५ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—अथवा जघन्य भवनोंके विस्तारका प्रमाण पृथक्-पृथक् एक कोस और उनकी वेदी की ऊँचाई पच्चीस (२५) धनुष प्रमाण है ॥१०॥

कूट एवं जिनेन्द्र भवनोंका निरूपण—

बहल-ति-भाग-पमाणा, कूडा भवणारणं होति बहुमज्जे ।

वेदी चउ - वण - तोरण - दुवार - पट्टवीहि रमणिज्जा ॥११॥

अर्थ—भवनोंके बहुमध्य भागमें वेदी, चार वन और तोरण-द्वारादिकोंसे रमणीय ऐसे बाह्यके तीसरे भाग [($३०० \times \frac{१}{३}$) अर्थात् १०० योजन] प्रमाण ऊँचे कूट होते हैं ॥११॥

कूडाण उवरि भागे, चेद्वंते जिणवरिद-पासादा ।

कणयमया रज्जमया, रयणमया विविह-विण्णासा ॥१२॥

अर्थ—इन कुटोंके उपरिम भागपर अनेक-प्रकारके विन्याससे संयुक्त सुवर्णमय, रजतमय और रत्नमय जिनेन्द्र-प्रासाद हैं ॥१२॥

भिगार-कलस-दण्पण-वय-चामर-विधरण-छत्त-सुपड्डा ।

इय अट्ठत्तर - सय-दर - मंगल - जुत्ता य पत्तेषकं ॥१३॥

अर्थ—प्रत्येक जिनेन्द्र प्रासाद भारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चंवर, बीजना, छत्र और ठोना, इन एक सौ आठ-एकसौ आठ उत्तम मंगल द्रव्योंसे संयुक्त है ॥१३॥

दुंदुहि-मयंग-मदल - जयघंटा - पडह - कंसतालाणं ।

वीणा - वंसादीणं, 'सद्देहि' णिच्च - हलबोला ॥१४॥

अर्थ—(वे) जिनेन्द्र प्रासाद दुन्दुभी, मृदङ्ग, मर्दल, जयघंटा, भेरी, भांभ, वीणा और बांसुरी आदि वादित्रोंके शब्दोंसे सदा मुखरित रहते हैं ॥१४॥

अकृत्रिम जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ एवं उनकी पूजा—

सिंहासनादि-सहिवा, चामर-कर-णाग-जवस-मिहुण-जुदा ।

तेसुं अकिट्ठिमाओ, जिणिद - पडिमाओ विजयंते ॥१५॥

अर्थ—उन जिनेन्द्र-भवनोंमें सिंहासनादि प्रातिहार्यों सहित और हाथमें चामर लिए हुए नागयक्ष देव-युगलोंसे संयुक्त अकृत्रिम जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ जयवन्त होती हैं ॥१५॥

कम्मक्षयण-णिमिसां, णिअभर-भत्तीय विविह-दव्वेहि ।

सम्माइट्टी देवा, जिणिद - पडिमाओ पूजंति ॥१६॥

अर्थ—सम्पद्दृष्टि देव कर्मक्षयके निमित्त गाढ़ भक्तिसे विविध द्रव्यों द्वारा उन जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥१६॥

एवे कुलदेवा इय, मण्णंता देव - बोहण - बलेण ।

मिच्छाइट्टी देवा, पूजंति जिणिद - पडिमाओ ॥१७॥

अर्थ—अन्य देवोंके उपदेशवश मिथ्यादृष्टि देव भी 'ये कुलदेवता हैं' ऐसा मानकर उन जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥१७॥

व्यन्तर प्रासादों (भवनों) की अवस्थिति एवं उनकी संख्या—

एवाणं कूडाणं, समंतदो वैतराण पासादा ।

सत्तट्ट-पहुवि-भूमी, विण्णास - विचित्त - संठाणा ॥१८॥

अर्थ—इन जिनेन्द्र कूटोंके चारों ओर व्यन्तरदेवोंके सात-आठ आदि भूमियोंके विन्यास और अद्भुत रचनाओं वाले प्रासाद हैं ॥१८॥

लम्बंत-रयणमाला, धर-तोरण-रइद-सुंदर-दुवारा ।

णिम्मल-विचित्त-मणिमय-सयणासण-णियह-परिपुण्णा ॥१९॥

अर्थ—ये प्रासाद लटकती हुई रत्नमालाओं सहित, उत्तम तोरणोंसे रचित सुन्दर द्वारों वाले हैं और निर्मल एवं अद्भुत मणिमय शय्याओं तथा आसनोके समूहमें परिपूर्ण हैं ॥१९॥

एवं विह-रूवाणि, तीस-सहस्साणि होति भवणाणि ।

पुट्ठोविद-भवणामर - भवण - समं वण्णणं सयलं ॥२०॥

भवणा समत्ता ॥१॥

अर्थ—इसप्रकारके स्वरूपवाले ये प्रासाद तीस हजार (३००००) प्रमाण हैं । इनका सम्पूर्ण वर्णन पूर्वमें कहे हुए भवनवासी देवोंके भवनोंके सदृश है ॥२०॥

भवनोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

भवनपुरोंका निरूपण—

वट्टादि^१ - सरूवाणं, भवण - पुराणं हवेदि जेट्ठाणं ।

जोयण - लक्खं रुंदो, जोयणमेवकं जहण्णाणं ॥२१॥

१००००० जो । १ ॥

अर्थ—वृत्तादि स्वरूपवाले उत्कृष्ट भवनपुरोंका विस्तार एक लाख (१०००००) योजन और जवन्य भवनपुरोंका विस्तार एक योजन प्रमाण है ॥२१॥

कूडा जिणिद-भवणा, पासादा वेदिया वण-पुहुदी ।

भवणा - सरिच्छं सव्वं, भवणापुरेसु^२ पि दट्ठव्वं ॥२२॥

भवणपुरं ।

अर्थ—कूट, जिनेन्द्र-भवन, प्रासाद, वेदिका और वन आदि सब (की स्थिति) भवनोंके सदृश ही भवनपुरोंमें भी जाननी चाहिए ॥२२॥

भवनपुरोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

आवासोंका निरूपण—

बारस-सहस्र-वे-सय-जोयण-वासा य जेदु-आवासा ।

होति जहण्णावासा, ति-कोस-परिमाण-वित्थारा ॥२३॥

जो १२२०० । को ३ ।

अर्थ—व्यन्तरदेवोंके ज्येष्ठ आवास बारह हजार दो सौ (१२२००) योजन प्रमाण और जघन्य आवास तीन (३) कोस प्रमाण विस्तारवाले हैं ॥२३॥

कूडा जिणिद-भवणा पासादा वेदिया धण-प्पहुदी^१ ।

भवण - पुराण सरिच्छं, आवासाणं पि णादव्वा ॥२४॥

आवास समत्ता ।

णिवास-खेत्तं समत्तं ॥१॥

अर्थ—कूट, जिनेन्द्र-भवन, प्रासाद, वेदिका और वन आदि भवनपुरोंके सदृश ही आवासों के भी जानने चाहिए ॥२४॥

आवासोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

इसप्रकार निवास क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ॥१॥

व्यन्तरदेवोंके (कुल—) भेद एवं (कुल) भेदोंकी अपेक्षा भवनोंके प्रमाणका निरूपण—

किणर-किंपुरुष-महोरगा य गंधव्व-जबल्ल-रक्खसया ।

भूद - पिसाच्चा एवं, अट्ट - विहा येतरा होति ॥२५॥

अर्थ—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच, इसप्रकार व्यन्तरदेव आठ प्रकारके होते हैं ॥२५॥

चोद्दस-सहस्र-मेत्ता, भवणा भूदाण रक्खसाणं पि ।

सोलस - सहस्र - संखा, सेसाणं णत्थि भवणाणि ॥२६॥

१४००० । १६००० ।

येतरमेवा समत्ता ॥२॥

अर्थ—भूतोंके चौदह हजार (१४०००) प्रमाण और राक्षसोंके सोलह हजार (१६०००) प्रमाण भवन हैं । शेष व्यन्तर देवोंके भवन नहीं होते हैं ॥२६॥

विशेषार्थ—रत्नप्रभा पृथिवीके खरभागमें भूत-व्यन्तरदेवोंके १४००० भवन हैं तथा पङ्क-भागमें राक्षसोंके १६००० भवन हैं । शेष कित्तरादि छह कुलोंके भवन नहीं होते हैं ।

व्यन्तरदेवोंके भेदोंका कथन समाप्त हुआ ॥२॥

चैत्य-वृक्षोंका निर्देश—

किणर-किपुरुसादिय-वैतर-देवाण अट्ट - भेयाणं ।

ति-वियप्प-णिलय-पुरवो, चेत-वुमा होंति एक्केवका ॥२७॥

अर्थ—किणर-किम्पुरुषादिक आठ प्रकारके व्यन्तर देवों सम्बन्धी तीनों प्रकारके (भवन, भवनपुर, आवास) भवनोंके सामने एक-एक चैत्य-वृक्ष है ॥२७॥

कमसो असोय-चंपय-णागद्धुम-तुम्बुरु य णम्मोधो ।

कंटय - रुक्खो तुलसी, कदंब विडओ ति ते अट्ट ॥२८॥

अर्थ—अशोक, चम्पक, नागद्रुम, तुम्बुरु, न्यग्रोध (बट) कण्टकवृक्ष, तुलसी और कदम्ब वृक्ष, इसप्रकार क्रमशः वे चैत्यवृक्ष आठ प्रकारके हैं ॥२८॥

ते सव्वे चेत-तरु, भावण-सुर-चेत-रुक्ख-सारिच्छा ।

जीवुप्पत्ति - लयाणं, हेव पुठवी - सरुवा य ॥२९॥

अर्थ—ये सब चैत्यवृक्ष भवनवासी देवोंके चैत्यवृक्षोंके सदृश (पृथिवीकायिक) जीवोंकी उत्पत्ति एवं विनाशके कारण हैं और पृथिवीस्वरूप हैं ॥२९॥

विशेषार्थ—चैत्यवृक्ष अनादि-निधन हैं अतः उनका कभी उत्पत्ति या विनाश नहीं होता है किन्तु उनके आश्रित रहने वाले पृथिवीकायिक जीवों का अपनी-अपनी आयु के अनुसार जन्म-मरण होता रहता है । इसीलिये चैत्यवृक्षोंको जीवोंकी उत्पत्ति और विनाश का कारण कहा है ।

जिनेन्द्र प्रतिमाओंका निरूपण—

मूलम्मि चउ-विसासु, चेत-तरुणं जिणिद-पडिमाओ ।

चत्तारो चत्तारो, चउ - तोरण - सोहमाणाओ ॥३०॥

अर्थ—चैत्यवृक्षोंके मूलमें चारों ओर चार तोरणोंसे शोभायमान चार-चार जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ विराजमान हैं ॥३०॥

पल्लंक-आसणाओ, सपाडिहेराओ रयण-मइयाओ ।
वंसणमेत्त - णिवारिद - दुरिताओ वेत्तु वो मोक्खं ॥३१॥

चिण्हाणि समत्ताणि ॥३॥

अर्थ—पल्लङ्कासनसे स्थित, प्रातिहार्यों सहित और दर्शनमात्रसे ही पापको दूर करनेवाली वे रत्नमयी जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ आप लोगोंको मोक्ष प्रदान करें ॥३१॥

इसप्रकार चिन्होंका कथन समाप्त हुआ ॥३॥

व्यन्तरदेवोंके कुल-भेद, उनके इन्द्र और देवियोंका निरूपण—

किणर-पहुवि-चउक्कं, दस-दस-भेदं हवेवि पत्तेक्कं ।
जक्खा जारु-भेदा, सत्त-विअप्पाणि दक्खसत्ता ॥३२॥
भूवाणि तेत्तिघाणि, पिसाच्च-णामा घउद्दस-विअप्पा ।
वो हो इंदा वो हो, वेवीओ दो-सहस्स-बल्लहिया ॥३३॥

कि १०, किपु १०, म १०, गं १०, ज १२, र ७, भू ७, पि १४ । २ । २ । २००० ।

कुल-भेदा समत्ता ॥४॥

अर्थ—किणर आदि चार प्रकारके व्यन्तर देवोंमेंसे प्रत्येकके दस-दस, यक्षोंके बारह, राक्षसों के सात, भूतोंके सात और पिशाचोंके चौदह भेद हैं । इनमें दो-दो इन्द्र और उनके दो-दो (अग्र) देवियाँ होती हैं । ये देवियाँ दो हजार बल्लभिकाओं सहित (अर्थात् प्रत्येक अग्रदेवीकी एक-एक हजार बल्लभिका देवियाँ) होती हैं ॥३२-३३॥

कुल-भेदोंका वर्णन समाप्त हुआ ॥४॥

किणर जातिके दस भेद, उनके इन्द्र और उनकी देवियोंके नाम—

ते किपुरिसा किणर-हिदयंगम-रूवपालि-किणरघा ।
किणरणिदिद णामा, मणरम्मा किणरुत्तमया ॥३४॥
रतिपिय-जेट्ठा तारणं, किपुरिसा किणरा दुवे इंदा ।
अवत्तंसा केवुमदी, रविसेणा-रदिपियाओ वेवीओ ॥३५॥

किणरा गदा ।

अर्थ—किम्पुरुष, किन्नर, हृदयङ्गम, रूपपाली, किन्नरकिन्नर, अनिन्दित, मनोरम, किन्नरोत्तम, रतिप्रिय और ज्येष्ठ, ये दस प्रकारके किन्नर जातिके देव होते हैं । इनके किम्पुरुष और किन्नर नामक दो इन्द्र तथा इन इन्द्रोंके अवतंसा, केतुमती, रतिसेना एवं रतिप्रिया नामक (दो-दो) देवियाँ होती हैं ॥३४-३५॥

किन्नरोंका कथन समाप्त हुआ ।

किम्पुरुषोंके भेद आदि—

पुरुसा पुरुसुत्तम-सत्पुरुस-महापुरुस-पुरुसप्रभ-णामा ।
अतिपुरुसा तह मरुओ^१, मरुदेव-मरुप्पहा जसोवंता ॥३६॥
इय किपुरुसा-इंदा^२, सत्पुरुसो ताण तह महापुरुसो ।
रोहिणी-नवमी हिरिया, पुष्पवतीओ वि देवीओ ॥३७॥

किपुरुसा गदा ।

अर्थ—पुरुष, पुरुषोत्तम, सत्पुरुष, महापुरुष, पुरुषप्रभ, अतिपुरुष, मरु, मरुदेव, मरुत्प्रभ और यशस्वान्, इसप्रकार ये किम्पुरुष जातिके (देवोंके) दस भेद हैं । इनके सत्पुरुष और महापुरुष नामक दो इन्द्र तथा इन इन्द्रोंके रोहिणी, नवमी, ह्री एवं पुष्पवती नामक (दो-दो) देवियाँ होती हैं ॥३६-३७॥

। किम्पुरुषोंका कथन समाप्त हुआ ।

महोरगदेवोंके भेद आदि—

भुजगा भुजंगशाली, महतणु-अतिकाय-खंधशाली य ।
मणहर-असणिज-महसर, गहिरं पियदंसणा महोरगया ॥३८॥
महकाओ अतिकाओ, इंदा एवाण होंति देवीओ ।
भोगा भोगवतीओ, अणिविदा पुष्पगंधीओ ॥३९॥

महोरगा गदा ।

अर्थ—भुजग, भुजंगशाली, महातनु, अतिकाय, स्कन्धशाली, मनोहर, असनिजव, महेश्वर, गम्भीर और प्रियदर्शन, ये महोरग जातिके देवोंके दस भेद हैं । इनके महाकाय और अतिकाय नामक

इन्द्र तथा इन इन्द्रोंके भोगा, भोगवती, अनिन्दिता और पुष्पगन्धी नामक (दो-दो) देवियाँ होती हैं ॥३८-३९॥

महोरग जातिके देवोंका कथन समाप्त हुआ ।

गन्धर्वदेवोंके भेद आदि—

हाहा-हूह-णारव-तुंबुर-वासव-कदंब - महसरया ।
गीदरदी - गीदयसा, बहरवती होंति गंधव्वा ॥४०॥
गीदरदी गीदयसा, इंदा ताणं पि होंति देवीओ ।
सरसइ-सरसेणाओ, णंदिणि-णियदंसेणाओ वि ॥४१॥

गंधव्वा गदा ।

अर्थ—हाहा, हूह, नारद, तुम्बुरु, वासव, कदम्ब, महास्वर, गीतरति, गीलयश और वज्रवान्, ये दस भेद गन्धर्वोंके हैं । इनके गीतरति और गीलयश नामक इन्द्र और इन इन्द्रोंके सरस्वती, स्वरसेना, नन्दिनी और प्रियदर्शना नामक (दो-दो) देवियाँ हैं ॥४०-४१॥

गन्धर्वजातिके देवोंका कथन समाप्त हुआ ।

यक्षदेवोंके भेद आदि—

अह माणि-पुण्ण-सेल-मणो-भद्दा भद्दा सुभद्दा य ।
तह सब्बभद्द-माणुस-धणपाल-सरूव - जक्खवखा ॥४२॥
जक्खुत्तम-मणहरणा, ताणं वे माणि-पुण्ण-भद्दिदा ।
कुंदा - बहुपुत्ताओ, तारा तह उत्तमाओ देवीओ ॥४३॥

जक्खवा गदा ।

अर्थ—माणिभद्र, पूर्णभद्र, शैलभद्र, मनोभद्र, भद्रक, सुभद्र, सर्वभद्र, मानुष, धनपाल, स्वरूपयक्ष, यक्षोत्तम और मनोहरणा, ये बारह भेद यक्षोंके हैं । इनके माणिभद्र और पूर्णभद्र नामक दो इन्द्र हैं और उन इन्द्रोंके कुन्दा, बहुपुत्रा, तारा तथा उत्तमा नामक (दो-दो) देवियाँ हैं ॥४२-४३॥

यक्षोंका कथन समाप्त हुआ ।

राक्षसोंके भेद आदि—

भीम-महभीम-विग्घा^१-विणायका उदक-रक्खसा तह य ।
रक्खस - रक्खस - णामा, सत्तमया बम्हरक्खसया ॥४४॥

रक्खस-इंदा भीमो, 'महभीमो ताण होंति देवीओ ।

पउमा - वसुमिक्खाओ, 'रयणाइहा - कंचणपहाओ ॥४५॥

रक्खसा गदा ।

अर्थ—भीम, महाभीम, विघ्न-विनायक, उदक, राक्षस, राक्षसराक्षस और सातवाँ ब्रह्म-राक्षस, इसप्रकार ये सात भेद राक्षस देवोंके हैं । इन राक्षसोंके भीम तथा महाभीम नामक इन्द्र और इन इन्द्रोंके पत्नी, वसुमित्रा, रत्नाड्या तथा कञ्चनप्रभा नामक (दो-दो) देवियाँ हैं ॥४४-४५॥

राक्षसोंका कथन समाप्त हुआ ।

भूतदेवोंके भेद आदि—

भूदा इमे सुरूवा, पडिरूवा भूदउत्तमा होंति ।

पडिभूद - महाभूदा, पडिछण्णाकासभूद ति ॥४६॥

भूविदा य सरूवो, पडिरूवो ताण होंति देवीओ ।

रूववदो बहुरूवा, सुमुहो णामा सुसीमा य ॥४७॥

भूदा गदा ।

अर्थ—स्वरूप, प्रतिरूप, भूतोत्तम, प्रतिभूत, महाभूत, प्रतिच्छन्न और आकाशभूत, इस-प्रकार ये सात भेद भूतदेवोंके हैं । उन भूतोंके इन्द्र स्वरूप एवं प्रतिरूप हैं और उन इन्द्रोंके रूपवती, बहुरूपा, सुमुखी तथा सुसीमा नामक देवियाँ हैं ॥४६-४७॥

भूतोंका कथन समाप्त हुआ ।

पिशाचदेवोंके भेद आदि—

कुंभंड-जवख-रक्खस-संमोहा तारआ अचोक्खवखा ।

काल-महकाल-चोवखा, सतालमा वेह - महदेहा ॥४८॥

तुण्हिअ-पवयण-णामा, पिसाच-इंदा य काल-महकाला ।

कमला - कमलपहुण्णल - सुवंसणा ताण देवीओ ॥४९॥

पिसाचा गदा ।

अर्थ—कुष्माण्ड, यक्ष, राक्षस, संमोह, तारक, अशुचि (नामक), काल, महाकाल, शुचि, सतालक, देह, महादेह, तूष्णीक और प्रवचन, इसप्रकार पिशाचोंके ये चौदह भेद हैं । काल एवं महा-

काल, ये पिशाचोंके इन्द्र हैं तथा इन इन्द्रोंके कमला, कमलप्रभा, उत्पला एवं सुदर्शना नामक (दो-दो) देवियाँ हैं ॥४८-४९॥

पिशाचोंका कथन समाप्त हुआ ।

गणिका महत्तरियोंका निरूपण—

सोलस- भोमिदाणं, किन्नर-पहुदीण होत्ति पत्तेक्कं ।

गणिका महद्धियाओ^१, दुवे दुवे रूपवत्तीओ ॥५०॥

अर्थ—किन्नर आदि सोलह व्यन्तरेन्द्रोंमेंसे प्रत्येक इन्द्रके दो-दो रूपवती गणिकामहत्तरी होती हैं ॥५०॥

मधुरा मधुरालावा, सुस्सर-मिदुभासिणीओ णामेहि ।

पुरिसपिय-पुरिसकंता, सोमाओ पुरिसदंसिणिया^२ ॥५१॥

भोगा - भोगवदीओ, भुजगा भुजगप्पिया य णामेणं ।

विमला सुघोस - णामा अणिबिवा सुस्सरक्खा य ॥५२॥

तह य सुभद्रा भद्राओ मालिणी पप्पमालिणीओ वि ।

सव्वसिरि - सव्वसेणा, रुद्रावइ रुद्र - णामा य ॥५३॥

भूदा य भूदकंता, महाबाहू भूवरत्त - णामा य ।

अम्बा य कला णामा, रस-सुलसा तह सुदरिसणया ॥५४॥

अर्थ—मधुरा, मधुरालापा, सुस्वरा, मृदुभाषिणी, पुरुषप्रिया, पुरुषकान्ता, सोम्या, पुरुष-दशिनी, भोगा, भोगवती, भुजगा, भुजगप्रिया, विमला, सुघोषा, अनिन्दिता, सुस्वरा, सुभद्रा, भद्रा, मालिनी, पप्पमालिनी, सर्वश्री, सर्वसेना, रुद्रा, रुद्रवती, भूता, भूतकान्ता, महाबाहू, सूतरक्ता, अम्बा, कला, रस-सुरसा और सुदर्शनिका, ये उन गणिका-महत्तरियोंके नाम हैं ॥५१-५४॥

व्यन्तरींके शरीर-वर्णका निर्देश—

किन्नरदेवा, सव्वे, पियंगु - सामेहि देह - वण्णेहि ।

उड्भासंते कंचण - सारिच्छेहि पि किपुरुसा ॥५५॥

अर्थ—सब किन्नर देव पियंगु सदृश देह वर्णसे और सब किम्पुरुषदेव सुवर्ण सदृश देह-वर्णसे शोभायमान होते हैं ॥५५॥

कालस्सामल-वण्णा, महोरया अच्च^३ कंचण-सवण्णा ।

गंधव्वा जक्खा तह, कालस्सामा विराजंति ॥५६॥

अर्थ—महोरगदेव काल-श्यामल वर्णवाले, गन्धर्वदेव शुद्ध सुवर्ण सदृश तथा यक्ष देव काल-श्यामल वर्णसे युक्त होकर शोभायमान होते हैं ॥५६॥

सुद्ध-स्सामा रक्खस-देवा भूवा वि कालसामलया ।

सव्वे पिशाचदेवा, कज्जल - इंगाल - कसण - तणू ॥५७॥

अर्थ—राक्षसदेव शुद्ध-श्यामवर्ण, भूत कालश्यामल और समस्त पिशाचदेव कज्जल एवं इंगाल अर्थात् कोयले सदृश कृष्ण शरीर वाले होते हैं ॥५७॥

किणर-पहुदी वेंतरदेवा सव्वे वि सुंदरा होति ।

सुभगा विलास - जुत्ता, सालंकारा महातेजा ॥५८॥

एवं णामा समत्ता ॥५९॥

अर्थ—किन्नर आदि सब ही व्यन्तरदेव सुन्दर, सुभग, विलासयुक्त, अलङ्कारों सहित और महान् तेजके धारक होते हैं ॥५८॥

इस प्रकार वागीश्वर कथन समाप्त हुआ ॥५९॥

दक्षिण-उत्तर इन्द्रोंका निर्देश—

पठमुच्चारिव-णामा, दक्खिण-इंदा ह्वंति एवेसुं ।

चरिमुच्चारिव-णामा, उत्तर - इंदा पभाव-जुदा ॥५६॥

अर्थ—इन इन्द्रोंमें प्रथम उच्चारणवाले दक्षिणेन्द्र और अन्तमें (पीछे) उच्चारण नामवाले उत्तरेन्द्र हैं । ये सब इन्द्र प्रभावशाली होते हैं ॥५९॥

क्र.	कुल-नाम	वैश्यवृक्ष	शरीरवर्ण	इन्द्रोके नाम	दक्षिणोत्तरेन्द्र	अग्र-देवियोंके नाम	इन्द्रोके नाम मल्लिका गा. ३३	गणिका- महत्तरी
१.	किन्नर	अशोक	प्रियंगु-सदृश	किम्पुरुष किन्नर	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	अवतंसा, केतुमती रतिसेना, रतिप्रिया	२००० २०००	मधुरा मधुरालापा सुस्वरा मृदुभाषिणी
२.	किम्पुरुष	चम्पक	स्वर्ण-सदृश	सत्पुरुष महापुरुष	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	रोहिणी, नवमी हो. पुष्पवती	२००० २०००	पुरुषप्रिया पुरुषकान्ता सौम्या पुरुषदर्शिनी
३.	महोरग	नागद्रुम	कालश्यामल	महाकाय अतिकाय	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	भोगा, भोगवती अनिदिता, पुष्पगं.	२००० २०००	भोगा भोगवती भुजगा भुजगप्रिया
४.	गन्धर्व	तुम्बरु	शुद्ध स्वर्ण	गीतरति गीतयशा	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	सरस्वती, स्वरसेना नंदिनी, प्रियदर्शना	२००० २०००	विमला सुघोषा अनिन्दिता सुस्वरा
५.	यक्ष	वट	कालश्यामल	मणिभद्र पूर्णभद्र	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	कुन्दा, बहुपुत्रा तारा, उत्तमा	२००० २०००	सुभद्रा भद्रा मालिनी पद्ममालिनी
६.	राक्षस	कण्टक- वृक्ष	श्यामवर्ण	भीम महाभीम	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	पद्मा, वसुमित्रा रत्नाढ्या कंचनप्रभा	२००० २०००	सर्वश्री सर्वसेना रुद्रा रुद्रवती
७.	भूत	तुलसी	कालश्यामल	स्वरूप प्रतिरूप	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	रूपवती, बहुरूपा सुमुखी, सुसीमा	२००० २०००	भूता भूतकान्ता महाबाहू भूतरक्ता
८.	पिशाच	कदम्ब	कडजल- सदृश	काल महाकाल	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र	कमला, कमलप्रभा उत्पला, सुदर्शना	२००० २०००	अम्बा कला रस-सुरसा सुदर्शिका

व्यन्तरदेवोंके नगरोंके आश्रयरूप द्वीपोंका निरूपण—

ताण णयरारिण अंजनक-वज्जधातुक-सुवर्ण-मणिसिलका ।

दीवे वज्जे रज्जदे, हिगुलके होति हरिदाते ॥६०॥

अर्थ—उन व्यन्तरदेवोंके नगर अंजनक, वज्जधातुक, सुवर्ण, मनःशिलक, वज्ज, रज्ज, हिगुलक और हरिताल द्वीपमें स्थित हैं ॥६०॥

नगरोंके नाम एवं उनका अवस्थान—

णिय-णामकं मज्झे, पद्द-कंतावत्त-मज्झ-णामारिण ।

पुब्बादिमु इंवाणं, सम-भागे पंच पंच णयरारिण ॥६१॥

अर्थ—सम-भागमें इन्द्रोंके पाँच-पाँच नगर होते हैं । उनमें अपने नामसे अंकित नगर मध्यमें और प्रभ, कान्त, आवर्त एवं मध्य, इन नामोंसे अंकित नगर पूर्वादिदिशाओंमें होते हैं ॥६१॥

विशेषार्थ—व्यन्तरदेवोंके नगर समतल भूमिपर बने हुए हैं; भूमिके नीचे या पर्वत आदिके ऊपर नहीं हैं । प्रत्येक इन्द्रके पाँच-पाँच नगर होते हैं । मध्यका नगर इन्द्रके नामवाला ही होता है तथा पूर्वादि दिशाओंके नगरोंके नाम इन्द्रके नामके आगे क्रमशः प्रभ, कान्त, आवर्त और मध्य जुड़कर बनते हैं । यथा—

क्र०	इन्द्र-नाम	मध्य-नगर	पूर्वदिशामें	दक्षिण दिशामें	पश्चिम दिशामें	उत्तर दिशामें
१.	किम्पुरुष	किम्पुरुषनगर	किम्पुरुषप्रभ	किम्पुरुषकान्त	किम्पुरुषावर्त	किम्पुरुषमध्य
२.	किन्नर	किन्नरनगर	किन्नरप्रभ	किन्नरकान्त	किन्नरावर्त	किन्नरमध्य
३.	सत्पुरुष	सत्पुरुषनगर	सत्पुरुषप्रभ	सत्पुरुषकान्त	सत्पुरुषावर्त	सत्पुरुषमध्य
४.	महापुरुष	महापुरुषनगर	महापुरुषप्रभ	महापुरुषकान्त	महापुरुषावर्त	महापुरुषमध्य

इसीप्रकार शेष बारह इन्द्रोंके नगर भी जानने चाहिए ।

आठों द्वीपोंमें इन्द्रोंका निवास-विभाग—

अंबूदीव-सरिच्छा, दक्खिण-इंदा य दक्खिणे भागे ।

उत्तर - भागे उत्तर - इंदा णं तेसु वीवेषु ॥६२॥

अर्थ—जम्बूद्वीप सदृश उन द्वीपोंमें दक्षिण-इन्द्र दक्षिण भागमें और उत्तर इन्द्र उत्तर भागमें निवास करते हैं ॥६२॥

विशेषार्थ—

अञ्जनकद्वीपकी दक्षिण दिशामें किम्पुरुष और उत्तर दिशामें किन्नर इन्द्र रहता है ।
वज्रघातुकद्वीपकी दक्षिणदिशामें सत्पुरुष और उत्तर दिशामें महापुरुष इन्द्र रहता है ।
सुवर्णद्वीपकी दक्षिण दिशामें महाकाय और उत्तरदिशामें अतिकाय इन्द्र रहता है ।
मनःशिलकद्वीपकी दक्षिण दिशामें गीतरति और उत्तरदिशामें गीतयश इन्द्र रहता है ।
वज्रद्वीपकी दक्षिण दिशामें माणिभद्र और उत्तर दिशामें पूर्णभद्र इन्द्र रहता है ।
रजतद्वीपकी दक्षिण दिशामें भीम और उत्तरदिशामें महाभीम इन्द्र रहता है ।
हिगुलकद्वीपकी दक्षिण दिशामें स्वरूप और उत्तर दिशामें प्रतिरूप इन्द्र रहता है ।
हरिताल द्वीपकी दक्षिण दिशामें काल और उत्तरदिशामें महाकाल इन्द्र रहता है ।

अन्तरदेवोंके नगरोंका वर्णन—

समचउरस्स ठिदीणं, पायारा तप्पुराण कणयमया ।

विजयसुर-णयर-वप्पिणव-पायार-चउत्थ-भाग-समा ॥६३॥

अर्थ—समचतुष्करूपसे स्थित उन पुरोंके स्वर्णमय कोट विजयदेवके नगरके वर्णनमें कहे गये कोटके चतुर्थ भाग प्रमाण है ॥६३॥

विशेषार्थ—अधिकार ५ गाथा १८३-१८४ में विजयदेवके नगर-कोटका प्रमाण ३७ $\frac{१}{२}$ योजन ऊँचा, $\frac{१}{२}$ योजन अवगाह, १२ $\frac{१}{२}$ योजन भूविस्तार और ६ $\frac{१}{२}$ योजन मुख विस्तार कहा गया है । यहाँ अन्तरदेवोंके नगर-कोटोंका प्रमाण इसका चतुर्थभाग है । अर्थात् ये कोट ९ $\frac{१}{२}$ यो० ऊँचे, $\frac{१}{२}$ योजन अवगाह, ३ $\frac{१}{२}$ यो० भूविस्तार और १ $\frac{१}{२}$ यो० मुख-विस्तारवाले हैं ।

ते णयरानं बाहिर, असोय-सप्तच्छवाण वणसंडा ।

चंपय - चूवाण^१ तथा, पुव्वादि - विसासु पत्तेवकं ॥६४॥

अर्थ—उन नगरोंके बाहर पूर्वादि दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें अशोक, सप्तच्छद, चम्पक तथा आम्र-वृक्षोंके वनसमूह स्थित हैं ॥६४॥

जोयण-लवखायामा, पण्णास-सहस्स-रुंद-संजुत्ता ।

ते वणसंडा बहुविह - विदव - विभूदीहि रेहंति ॥६५॥

अर्थ—एक लाख योजन लम्बे और पचास हजार योजन प्रमाण विस्तार युक्त वे वन-समूह बहुत प्रकारकी वृक्ष (वृक्ष) विभूतिसे सुशोभित होते हैं अर्थात् अनेकानेक प्रकारके वृक्ष वहाँ और भी हैं ॥६५॥

रणरेसु तेसु दिग्वा, पासाबा कणय-रजद-रयणमया ।
उच्छेहादिसु तेसु, उवएसो संपइ पणट्ठो ॥६६॥

अर्थ—उन नगरोंमें सुवर्ण, चाँदी एवं रत्नमय जो दिव्य प्रासाद हैं । उनकी ऊँचाई आदिका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ॥६६॥

व्यन्तरेन्द्रोंके परिवार देवोंकी प्ररूपणा—

एवेसु वेंतरिदा, कीडंते बहु - विभूदि - भंगोहि ।
णाणा-परिवार-जुदा, भणिमो परिवार-णामाद्दि ॥६७॥

अर्थ—इन नगरोंमें नाना परिवारसे संयुक्त व्यन्तरेन्द्र प्रचुर ऐश्वर्य पूर्वक क्रीड़ा करते हैं । (अब) उनके परिवारके नाम कहता हूँ ॥६७॥

पडिइंदा सामाणिय, तणुरक्खा होति तिण्णि परिसाओ ।
सत्ताणीय - पड्डणा, अभियोगा ताण पत्तेयं ॥६८॥

अर्थ—उन इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्ष, तीनों पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक और आभियोग्य, इसप्रकार ये परिवार देव होते हैं ॥६८॥

प्रतीन्द्र एवं सामानिकादि देवोंके प्रमाण—

एक्केवको पडिइंदो, एक्केवकाणं हवेदि इंदाणं ।
चत्तारि सहस्साणि, सामाणिय - णाम - देवाणं ॥६९॥

१ । सा ४००० ।

अर्थ—प्रत्येक इन्द्रके एक-एक प्रतीन्द्र और चार-चार हजार (४००० — ४०००) सामानिक देव होते हैं ॥६९॥

एक्केवकस्सि इंदे, तणुरक्खाणं पि सोलस-सहस्सा ।
अट्ठ-वह - बारस - कमा, तिप्परिसासुं सहस्साणि ॥७०॥

१६००० । ८००० । १०००० । १२००० ।

अर्थ—एक-एक इन्द्रके तनुरक्षकोंका प्रमाण सोलह हजार (१६०००) और तीनों पारिषद देवोंका प्रमाण क्रमशः आठ हजार (८०००), दस हजार (१००००) तथा बारह हजार (१२०००) है ॥७०॥

सप्त अनीक सेनाओंके नाम एवं प्रमाण—

करि-हय-पाइक्क तथा, गंधच्चा णट्टा रहा वसहा ।

इय सत्ताणीयाणि, पत्तेक्कं होंति इंदाणं ॥७१॥

अर्थ—हाथी, घोड़ा, पदाति, गन्धर्व, नर्तक, रथ और बैल, इसप्रकार प्रत्येक इन्द्रके ये सात-सात सेनाएँ होती हैं ॥७१॥

कुंजर-तुरयादीणं पुह पुह चेदुंति सत्त कक्खाओ ।

तेसुं पढमा कक्खा, अट्टावीसं सहस्साणि ॥७२॥

२८००० ।

अर्थ—हाथी और घोड़े आदिकी पृथक्-पृथक् सात कक्षाएँ स्थित हैं । इनमेंसे प्रथम कक्षाका प्रमाण अट्ठाईस हजार (२८०००) है ॥७२॥

विदिपादीणं कुगुणा, कुगुणा ते होंति कुंजर-प्पहुदी ।

एदाणं मिलिदाणं परिमाणाइं परुवेमो ॥७३॥

अर्थ—द्वितीयादिक कक्षाओंमें वे हाथी आदि दूने-दूने हैं । इनका सम्मिलित प्रमाण कहता है ॥७३॥

पंचसीसं लक्खा, छप्पण-सहस्स-संजुवा ताणं ।

एक्केक्कस्सि इंवे, हत्थीणं होंति परिमाणं ॥७४॥

३५५६००० ।

अर्थ—उनमेंसे प्रत्येक इन्द्रके हाथियोंका (हाथी, घोड़ा, पदाति आदि सातों सेनाओंका पृथक्-पृथक्) प्रमाण पैंतीस लाख और छप्पन हजार (३५५६०००) है ॥७४॥

बाणउदि-सहस्साणि, लक्खा अड्ढाल बेण्णि कोडीओ ।

इंदाणं पत्तेक्कं, सत्ताणीयाण परिमाणं ॥७५॥

२४८९२००० ।

अर्थ—प्रत्येक इन्द्रकी सात अनीकोंका प्रमाण दो करोड़ अड़तालीस लाख बानवै हजार (३५५६००० × ७ = २४८९२०००) है ॥७५॥

विशेषार्थ --पदका जितना प्रमाण हो उतने स्थानमें २ का अङ्क रखकर परस्पर गुणा करें । जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे एक घटाकर शेषमें एक कम गुणाकरा भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसका मुखमें गुणाकर देनेसे सङ्कलित धनका प्रमाण प्राप्त होता है । इस नियमानुसार सङ्कलित धन—यहाँ पद प्रमाण ७ और मुख प्रमाण २८००० है अतः —

$28000 \times \{ (2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2 \times 2) - 1 \} \div (2 - 1) =$
 3556000 एक अनीककी सात कक्षाओंका प्रमाण और $3556000 \times 7 = 24892000$ मातों
 अनीकोंका कुल एकत्रित प्रमाण है ।

अथवा—

कक्षाएँ	हाथी	घोड़ा	पदाति	रथ	गन्धर्व	नर्तक	बैल
प्रथम	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००
द्वितीय	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००
तृतीय	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००
चतुर्थ	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००
पञ्चम	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००
षष्ठ	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००
सप्तम	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००
योग	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० =
२४८९२०००							

कुल इन्द्र १६ हैं और सभी समान अनीक-धनके स्वामी हैं अतः $24892000 \times 16 =$
 398272000 सम्पूर्ण व्यन्तरदेवोंकी सेनाका सर्वधन है ।

प्रकीर्णकादि व्यन्तरदेवोंका प्रमाण —

भोमिदाण पद्मणय-अभिजोग-सुरा हवन्ति जे केई ।

तारणं प्रमाण - हेव उवएसो संपद पणद्वो ॥७६॥

अर्थ—व्यन्तरेन्द्रोंके जो कोई प्रकीर्णक और आभियोग्य आदि देव होते हैं, उनके प्रमाणका निरूपक उपदेश इस-समय नष्ट हो चुका है ॥७६॥

एवं विह - परिवारा, वेंतर - इंडा सुहाइ भुजंता ।
णंदंति णिय - पुरेसुं, बहुविह कीडाओ^१ कुडमाणा ॥७७॥

अर्थ—इसप्रकारके परिवारसे संयुक्त होकर सुखोंका उपभोग करनेवाले व्यन्तरेन्द्र अपने-अपने पुरोंमें बहुत प्रकारकी क्रीडाएँ करते हुए आनन्दको प्राप्त होते हैं ॥७७॥

गणिकामहत्तरियोंके नगरोंका अवस्थान एवं प्रमाण—
णिय-णिय-इंदपुरीणं, कीदु वि पत्तेतु हेंति लवदाणि ।
गणिकामहत्तिलयाणं, वर - वेदी - पट्टदि - जुत्ताणि ॥७८॥

अर्थ—अपने-अपने इन्द्रकी नगरियोंके दोनों पार्श्वभागोंमें उत्तम वेदी आदि सहित गणिका-महत्तरियोंके नगर होते हैं ॥७८॥

चुलसीवि-सहस्साणि, जोयणया तप्पुरीण वित्थारो ।
तेसियमेत्तं बीहं, पत्तेक्कं होदि णियमेत्ता ॥७९॥

८४००० ।

अर्थ—उन नगरियोंमेंसे प्रत्येक नगरीका विस्तार चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण और लम्बाई भी नियमसे इतनी (८४००० यो०) ही है ॥७९॥

नीचोपपाद व्यन्तरदेवोंके निवास-क्षेत्रका निरूपण—

णीचोववाद - देवा, हत्थ - पमाणे वसंति भूमीदो ।
विगुवासि-सुरा - अंतरणियासि - कुंभंड - उप्पणा ॥८०॥
अणुपणा अ पमाणय, गंध-महगंध-भुजंग-पीविकया ।
वारसमा आयासे, उववण्ण वि इंद - परिवारा ॥८१॥
उवरि उवरि वसंति, तिण्णि वि णीचोववाद-ठाणादो ।
दस हत्थ - सहस्साइ, सेसा विउणेहि पत्तेक्कं ॥८२॥
ताणं विण्णास रूव संदिट्ठी—

२००००
 २००००
 २००००
 २००००
 २००००
 २००००
 २००००
 २००००
 १००००
 १००००
 १००००
 १

दक्षिण-उत्तर-हंवाणं परूषणा समप्ता ॥६॥

अर्थ—नीचोपपाद देव पृथिवीसे एक हाथ प्रमाण ऊपर निवास करते हैं। उनके ऊपर दिग्वासी, अन्तरनिवासी, कृष्माण्ड, उत्पन्न, अनुत्पन्न, प्रमाणक, गन्ध, महागन्ध, भुजंग, प्रीतिक और बारहवें आकाशोत्पन्न, इन्द्रके ये परिवार-देव क्रमशः ऊपर-ऊपर निवास करते हैं। इनमेंसे प्रारम्भके तीन प्रकारके देव नीचोपपाद देवोंके स्थानसे उत्तरोत्तर दस-दस हजार हस्त प्रमाण अन्तरसे तथा शेष देव बीस-बीस हजार हस्तप्रमाण अन्तरसे निवास करते हैं ॥८०-८२॥

विशेषार्थ—चित्रा पृथिवीसे एक हाथ ऊपर नीचोपपादिक देव स्थित हैं। इनसे १०००० हाथ ऊपर दिग्वासी देव हैं। इनसे १०००० हाथ ऊपर अन्तरवासी और इनसे १०००० हाथ ऊपर कृष्माण्ड देव निवास करते हैं। इनसे २०००० हाथ ऊपर उत्पन्न इनसे २०००० हाथ ऊपर अनुत्पन्न, इनसे २०००० हाथ ऊपर प्रमाणक, इनसे २०००० हाथ ऊपर गन्ध, इनसे २०००० हाथ ऊपर महागन्ध, इनसे २०००० हाथ ऊपर भुजङ्ग, इनसे २०००० हाथ ऊपर प्रीतिक और इनसे २०००० हाथ ऊपर आकाशोत्पन्न व्यन्तरदेव निवास करते हैं।

यही इनकी विन्यासरूप संदृष्टि है।

इसप्रकार दक्षिण-उत्तर इन्द्रोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ॥६॥

व्यन्तरदेवोंकी आयुका निर्देश—

उक्कस्साऊ पल्लं, होदि असंखो य मज्झिमो आऊ ।

वस वास - सहस्साणि, भोम्म - सुराणं जहण्णाऊ ॥८३॥

प १ । रि । १०००० ।

अर्थ—व्यन्तरदेवोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण, मध्यम आयु असंख्यात वर्ष प्रमाण और जघन्यायु दस हजार (१००००) वर्ष प्रमाण है ॥८३॥

इंद-पडिइंद-सामाणियाण - पत्तेक्कमेक्क - पल्लाऊ ।

गणिका-महल्लियाणं, पल्लद्धं सेसयाण जह्-जोग्गं ॥८४॥

अर्थ—इन्द्र, प्रतीन्द्र एवं सामानिक देवोंमेंसे प्रत्येककी आयु क्रमशः एक-एक पत्य है ।
गणिकामहत्तरियोंकी आयु अर्धपत्य और शेष देवोंकी आयु यथायोग्य है ॥८४॥

इस वास-सहस्साणि, आऊ नीचोपपाद - देवाणं ।

तत्तो जाव असीवे, तेंत्तियमत्ताए थड्डीए ॥८५॥

अह् च्चुलसीवो पल्लद्धमंस - पादं^१ कमेण पल्लद्धं ।

दिग्वासि - प्पट्टदीणं, भणिवं आउस्स परिमाणं ॥८६॥

१०००० । २०००० । ३०००० । ४०००० । ५०००० । ६०००० ।

७००००	८००००	८४०००	५	५	५
			८	४	२

आऊ परुवणा समत्ता ॥७॥

अर्थ—नीचोपपाद देवोंकी आयु दस हजार वर्ष है । पश्चात् दिग्वासी आदि शेष (७) देवोंकी आयु क्रमशः दस-दस हजार वर्ष बढ़ाते हुए अस्सी हजार वर्ष पर्यन्त है । शेष चार देवोंकी आयु क्रमशः चौरासी हजार वर्ष पत्यका आठवां भाग, पत्यका एक पाद (चतुर्थ भाग) और अर्ध-पत्य प्रमाण कही गई है ॥८५-८६॥

विशेषार्थ—नीचोपपाद अन्तर देवोंकी आयुका प्रमाण १०००० वर्ष, दिग्वासीका २०००० वर्ष, अन्तरवासीका ३०००० वर्ष, कूष्माण्डका ४०००० वर्ष, उत्पन्न का ५०००० वर्ष, अनुत्पन्नका ६०००० वर्ष, प्रमाणकका ७०००० वर्ष, गन्धका ८०००० वर्ष, महागन्धका ८४००० वर्ष, भुजङ्ग देवोंका पत्यके आठवें भाग, प्रीतिकका पत्यके चतुर्थभाग और आकाशोत्पन्न देवोंकी आयु का प्रमाण पत्यके अर्धभाग प्रमाण है ।

। इसप्रकार आयु-परुवणा समाप्त हुई ॥७॥

अन्तर देवोंके आहारका निरूपण —

दिग्गं अन्नआहारं, मणेण भुज्जति किणर-प्पमुहा ।

देवा देवीओ तहा, तेसुं कवलासणं णत्थि ॥८७॥

अर्थ—किन्नर आदि व्यन्तर देव तथा देविथी दिव्य एवं अमृतमय आहारका उपभोग मनसे ही करते हैं, उनके कवलाहार नहीं होता ॥८७॥

पल्लाउ-जुदे देथे, कालो असणस्स पंच दिवसाणि ।
दोणि चिचय णावब्बो, दस-दास-सहस्स-आउम्मि ॥८८॥

आहार-परुवणा समत्ता ॥८८॥

अर्थ—पल्यप्रमाण आयुसे युक्त देवोंके आहारका काल पाँच दिन (बाद) और दस हजार वर्ष प्रमाण आयुवाले देवोंके आहारका काल दो दिन (बाद) जानना चाहिए ॥८८॥

आहार-परुवणा समाप्त हुई ॥८८॥

उच्छ्वास निरूपण—

पलिदोवमाउ-जुत्तो, पंच-मुहुत्तेहि एवि उस्सासो ।
सो अजुदाउ-जुदे वेत्तर - देवम्मि अ सत्त पाणेहि ॥८९॥

उस्सास-परुवणा समत्ता ॥८९॥

अर्थ—व्यन्तर देवोंमें जो पल्यप्रमाण आयुसे युक्त हैं वे पाँच मुहूर्तों (के बाद) में और जो दस हजार वर्ष प्रमाण आयुसे संयुक्त हैं वे सात प्राणों (उच्छ्वास-निश्वास परिमित काल विशेषके बाद) में ही उच्छ्वासको प्राप्त करते हैं ॥८९॥

। उच्छ्वास-परुवणा समाप्त हुई ॥८९॥

व्यन्तरदेवोंके अवधिज्ञानका क्षेत्र—

अवरा ओहि-धरित्ती, अजुदाउ-जुदस्स पंच-कोसाणि ।
उक्किट्ठा पण्णासा, हेट्ठोवरि पस्समाणस्स ॥९०॥

को ५ । को ५० ।

अर्थ—दस हजार वर्ष प्रमाण आयुवाले व्यन्तर देवोंके अवधिज्ञानका विषय ऊपर और नीचे जघन्य पाँच (५) कोस तथा उत्कृष्ट पचास (५०) कोस प्रमाण है ॥९०॥

पलिदोवमाउ-जुत्तो, वेत्तरदेवो तलम्मि उवरिम्मि ।
अवहीए ओयणाणि, एक्कं लक्खं पलोएवि ॥९१॥

१०००००

ओहि-णाणं समत्तं ॥९०॥

अर्थ—पत्योपम प्रमाण आयुवाले व्यन्तरदेव अवधिज्ञानसे नीचे और ऊपर एक-एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण देखते हैं ॥९१॥

अवधिज्ञानका कथन समाप्त हुआ ॥९०॥

व्यन्तरदेवोंकी शक्तिका निरूपण—

दस-वास-सहस्साऊ, एक-सयं माणुसाण मारेदुं ।

पोसेदुं पि समत्थो, एक्केक्को वेतरो देवो ॥९२॥

अर्थ—दस हजार वर्ष प्रमाण आयुवाला प्रत्येक व्यन्तरदेव एकसौ मनुष्योंको मारने एवं पालन करनेमें समर्थ होता है ॥९२॥

पण्णाधिय-सय-वडं, पमाण-विकखंभ-बहस-जुत्तं सो ।

खेत्तं निय-सत्तीए, उक्खणिबूणं 'ठवेदि अण्णत्थ ॥९३॥

अर्थ—वह देव अपनी शक्तिसे एकसौ पचास धनुषप्रमाण विस्तार एवं ग्राह्यसे युक्त क्षेत्र को उखाड़ (उठा) कर अन्यत्र रख सकता है ॥९३॥

पल्लट्टेवि^१ भुजेहि, 'छक्खंडाणि पि एक्क-पल्लाऊ ।

मारेदुं पोसेदुं, तेसु समत्थो ठिवं^२ सोयं ॥९४॥

अर्थ—एक पल्ल प्रमाण आयुवाला व्यन्तरदेव अपनी भुजाओंसे छहखण्डोंको उलटने में समर्थ है और उनमें स्थित मनुष्योंको मारने तथा पालनेमें भी समर्थ है ॥९४॥

उक्कस्से रुव - सव, देवो विकरेदि अजुवमेत्ताऊ ।

अवरे सग-रुवाणि, मज्झिमयं विविह - रुवाणि ॥९५॥

अर्थ—दस हजार वर्षकी आयुवाला व्यन्तरदेव उत्कृष्ट रूपसे सौ रूपोंकी, जघन्यरूपसे सात रूपोंकी और मध्यमरूपसे विविध रूपोंकी अर्थात् सातसे अधिक और सोसे कम रूपोंकी विक्रिया करता है ॥९५॥

सेसा वेतरवेवा, निय-निय-ओहोण जेत्तियं खेत्तं ।

पूरंति तेत्तियं पि ह, पत्तेक्कं विकरण-बलेणं ॥९६॥

अर्थ—शेष व्यन्तरदेवोंमेंसे प्रत्येक देव अपने-अपने अवधिज्ञानका जितना क्षेत्र है, उतने प्रमाण क्षेत्रको विक्रियान्बलसे पूर्ण करते हैं ॥९६॥

१. द. रवेदि । २. द. पल्लट्टेहि, ब. क. ज. पल्लट्टदि । ३. द. छक्खंडेण पि, क. छक्खंडं छि पि ।

४. द. ब. दिदं ।

संखेज्ज - जोयणाणि, संखेज्जाऊ य एक्क-समयेणं ।
जादि असंखेज्जाणि, ताणि असंखेज्ज - आऊ य ॥६७॥

। सत्ति-परुवणा समत्ता ॥११॥

अर्थ—संख्यात वर्ष प्रमाण आयुवाला व्यन्तरदेव एक समयमें संख्यात योजन और असंख्यात वर्ष प्रमाण आयुवाला वह देव असंख्यात योजन जाता है ॥६७॥

शक्ति-परुवणा समाप्त हुई ॥११॥

व्यन्तरदेवोंके उत्सेधका कथन—

अट्टाण वि पत्तेक्कं, किणर-पट्टदीण वेतर-सुराणं ।
उच्छेहो णादच्चो, वस - कोवडं पमाणेणं ॥६८॥

उच्छेह-परुवणा समत्ता ॥१२॥

अर्थ—किणर आदि आठों व्यन्तरदेवोंमेंसे प्रत्येककी ऊंचाई दस धनुष प्रमाण जाननी चाहिए ॥६८॥

उत्सेध-परुवणा समाप्त हुई ॥१२॥

व्यन्तरदेवोंकी संख्याका निरूपण—

चउ-लक्खाधिय-तेवीस-कोडि-अंगुलय-सूइ-वग्गेहि ।
भजिदाए सेढीए, वग्गे भोमाण परिमाणं ॥६९॥

ॐ । ५३०८४१६०००००००००० ।

संख्या समत्ता ॥१३॥

अर्थ—तेईस करोड़ चार लाख सूच्यंगुलोंके वर्गका जगच्छेणीके वर्गमें अर्थात् $६५५३६ \times ८१ \times १०$ शून्य रूप प्रतरांगुलोंका जगत्प्रतरमें (ॐ) भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना व्यन्तरदेवोंका प्रमाण है ॥६९॥

विशेषार्थ—जगच्छेणीका चिह्न और जगत्प्रतरका चिह्न = है तथा एक सूच्यंगुलका चिह्न २ और सूच्यंगुलके वर्गका चिह्न ($२ \times २ = ४$) होता है, अतः संदृष्टिके ॐ चिह्नका अर्थ है जगत्प्रतर में ५३०८४१६०००००००००० प्रतरांगुलोंका भाग देना ।

एक योजनमें ७६८००० अंगुल होते हैं अतः ३०० योजनोंमें ($७६८००० \times ३०० =$) २३०४००००० अंगुल हुए । इनका वर्ग करनेपर (२३०४०००००)^२ = ५३०८४१६०००००००००००

प्रतरांगुल प्राप्त होते हैं । जगत्प्रतरमें इन्हीं प्रतरांगुलोंका भाग देनेपर व्यन्तर देवोंका प्रमाण प्राप्त होता है ।

संख्याका कथन समाप्त हुआ ॥१३॥

एक समयमें जन्म-मरणका प्रमाण —

संखातीद-विभत्ते, बेतर-वासम्मि लद्ध-परिमाणा ।

उप्पज्जंता जीवा, मर - माणा होंति तम्मेत्ता ॥१००॥

१. उप्पज्जण-मरणा समत्ता ॥१४॥

अर्थ—व्यन्तरदेवोंके प्रमाणमें असंख्यातका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो वहाँ उतने जीव (प्रति समय) उत्पन्न होते हैं और उतने ही मरते हैं ॥१००॥

उत्पद्यमान और अियन्तए (व्यन्तर देवोंके) प्रमाणका कथन समाप्त हुआ ॥१४॥

आयु बन्धक भाव आदि —

आउस-बंधण-भायं, दंसण-ग्रहणाण कारणं विविहं ।

गुणठाण - प्पहुदीणि, भउमाणं भावण - समाणि ॥१०१॥

अर्थ—व्यन्तरोके आयु बन्धक परिणाम, सम्यग्दर्शन ग्रहणके विविध कारण और गुण-स्थानादिकोंका कथन भवलेवासियोंके सहस्र ही जानना चाहिए ॥१०१॥

आयुबंधके परिणाम, सम्यक्त्व-ग्रहणकी विधि और गुणस्थानादिकों का

कथन करने वाले तीन अधिकार पूर्ण हुए ॥१५-१६-१७॥

व्यन्तरदेव-सम्बन्धी जिनभवनोंका प्रमाण —

जोयण-सद-तिदय-कदी, भजिदे पवरस्स संखभागम्मि ।

जं लद्धं तं माणं, बेतर - लोए जिण - घराणं ॥१०२॥

२. ५३०८१६०००००००००० ।

अर्थ—जगत्प्रतरके संख्यात भागमें तीनसौ योजनोंके वर्गका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, जिनमन्दिरोका उतना प्रमाण व्यन्तरलोकमें है ॥१०२॥

विशेषाथ—व्यन्तरलोकके जिनभवन = $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{संख्यात} \times (३००)^२}$

अथवा = $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{संख्यात} \times ५३०८१६०००००००००००}$

अधिकारान्त मङ्गलाचरणा—

इदं-सद-रामिद-चलणं, अणंत-सुह-णाण-विरिय-दंसणया ।

भव्वंबुज - वण - भाणुं, सेयंस - जिणं 'णमंसामि ॥१०३॥

एवमाइरिय-परंपरागत-तिलोयपणत्तोए, तेंतरलोस-सकल-पणत्तो णाम छट्ठमो

महाहियारो समत्तो ॥६॥

अर्थ—सो इन्द्रोसे नमस्करणीय चरणोंवाले, अनन्त सुख, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य एवं अनन्तदर्शनवाले तथा भव्यजीवरूप कमलवनको विकसित करनेके लिए सूर्य-सदृश श्रेयांस जिनेन्द्रको (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥१०३॥

इसप्रकार आचार्य-परंपरागत त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें व्यन्तरलोक-स्वरूप-प्रज्ञप्ति नामक

छठा महाधिकार समाप्त हुआ ।





तिलोयपण्णत्ती

सत्तमो महाहियारो

मङ्गलाचरण—

अखलिय-एगण-दंसण-सहियं सिरि-वासुपुज्ज-जिणसामि ।
णमिऊणं वोच्छामो, जोइसिय - जगस्स पण्णत्ति ॥१॥

अर्थ—अखलित ज्ञान-दर्शनसे युक्त श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्रको नमस्कार करके ज्योतिर्लोककी प्राप्ति कहता हूँ ॥१॥

सत्तरह अन्तराधिकारोंका निर्देश—

जोइसिय-णिवासखिदी, भेवो संखा तहेव विण्णासो ।
परिमाणं चर - चारो, अचर - सरूवाणि आऊ य ॥२॥
आहारो उस्सासो, उच्छेहो ओहिणाण - सत्तीओ ।
जीवाणं उप्पत्ती - मरणाइं एक्क - समयम्मि ॥३॥
आउग-बन्धण-भावं, दंसण-गहणस्स कारणं विविहं ।
गुणठाणादि - पवण्णणमहियारा सत्तरसिमाए ॥४॥

। १७ ।

अर्थ—ज्योतिषी देवोंका १निवासक्षेत्र, २भेद, ३संख्या, ४विन्यास, ५परिमाण, ६चर ज्योतिषियोंका संचार, ७अचर ज्योतिषियोंका स्वरूप, ८आयु, ९आहार, १०उच्छ्वास, ११उत्सेध, १२अवधिज्ञान, १३शक्ति, १४एक समयमें जीवोंकी उत्पत्ति एवं मरण, १५आयुके बन्धक भाव, १६सम्य-

गदर्शन ग्रहणके विविध कारण और १७गुणस्थानादि वर्णन, इसप्रकार ये ज्योतिर्लोकके कथनमें सत्तरह अधिकार हैं ॥२-४॥

ज्योतिषदेवोंका निवासक्षेत्र—

रज्जु-कदी गणिदब्बं, एक-सय-दसुत्तरेहि जोयणए ।

तस्सि अगम्म - देसं^१, सोहिय सेसम्म जोइसया ॥५॥

१० । ११० ।

अर्थ—राज्जुके वर्गको एक सौ दस योजनोंसे गुणा (राज्जु^२ × ११०) करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे अगम्य देशको छोड़कर शेषमें ज्योतिषी देव रहते हैं ॥५॥

अगम्य क्षेत्रका प्रमाण—

तं पि य अगम्म - खेत्तं, समवट्टं जंबुदीप - बहुमज्जे ।

पण-एक-ख-पण-दुग-णव-दो-ति-ख-तिय-एक-जोयणं कमे ॥६॥

१३०३२९२५०१५ ।

निवास-खेत्तं समत्तं ॥१॥

अर्थ—यह अगम्य क्षेत्र भी समवृत्त जम्बूद्वीपके बहुमध्य-भागमें स्थित है । उसका प्रमाण पाँच, एक, शून्य, पाँच, दो, ती, दो, तीन, शून्य, तीन और एक इस अक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उसने योजन प्रमाण है ॥६॥

विशेषार्थ—त्रिलोकसार गाथा ३४५ में कहा गया है कि “ज्योतिर्गण सुमेरु पर्वतको ११२१ योजन छोड़कर गमन करते हैं” । ज्योतिर्देवोंके संचारसे रहित सुमेरुके दोनों पार्श्वभागोंका यह प्रमाण (११२१ × २) = २२४२ योजन होता है । भूमिपर सुमेरुका विस्तार १०००० योजन है । इन दोनों को जोड़ देनेपर ज्योतिर्देवों के अगम्य क्षेत्रका सूची-व्यास (१०००० + २२४२ =) १२२४२ योजन प्राप्त होता है ।

इसी ग्रन्थ के चतुर्थाधिकार की गाथा ९ के नियमानुसार उक्त सूची-व्यासका सूक्ष्म परिधि प्रमाण एवं क्षेत्रफल प्राप्त होता है । यथा— $\sqrt{१२२४२^२} \times १० = ३८७१३$ योजन परिधि । (वर्गमूल निकालने पर ३८७१२ यो० ही आते हैं । किन्तु शेष बची राशि आधे से अधिक है । अतः ३८७१३ योजन ग्रहण किये गये हैं ।) (परिधि ३८७१३) × (१३३४२ व्यास का चतुर्थांश) =

क्षेत्रफल प्राप्त हुआ । “क्षेत्रफलं वेह-गुणं खादफलं होइ सव्वत्थ” ॥१७॥ त्रि० सार के नियमानुसार क्षेत्रफलको ऊँचाईसे गुणित करनेपर अगम्य क्षेत्रका प्रमाण $(३६९१३ \times १३३४३ \times १३०) = १३०३२९२५०१५$ घन योजन प्राप्त होता है ।

गाथा ६ में घन-योजन न कहकर मात्र योजन कहे गये हैं, जो विचारणीय हैं ।

॥ त्रिकोशोऽयं कथं सदाप्ता दुःखः ॥१॥

ज्योतिषदेवोंके भेद एवं वातवलयसे उनका अन्तराल—

चंदा दिवायरा गह-णक्खत्ताणि पट्ठण-ताराओ ।

पंच - विहा जोदि - गणा, लोयंत घणोदहि पुट्ठा ॥७॥

॥ = प्र ७ ३, फ ७ २ । इ १६०० । ल १०८४ ॥

अर्थ—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा, इसप्रकार ज्योतिषी देवोंके समूह पाँच प्रकारके हैं । ये देव लोकके अन्तमें घनोदधि वातवलयकी स्पर्श करते हैं ॥७॥

विशेषार्थ—संक्षुष्टिका स्पष्ट विवरण—

= जगरप्रतर का चिह्न है ।

प्र प्रमाण है । यहाँ प्रमाण राशि ३३ रज्जू है ।

उ यह रज्जू शब्द का चिह्न है और ३ ये ३३ रज्जू हैं ।

फ फल है । यहाँ फल राशि ७ २ अर्थात् २ रज्जू है ।

इ इच्छा है । जो १९०० योजन है । अर्थात् चित्रा पृथिवी एक हजार योजन मोटी है और ज्योतिषी देवोंकी अधिकतम ऊँचाई चित्राके उपरिम तलसे ९०० योजन की ऊँचाई पर्यन्त है अतः $(१००० + ९००) = १९००$ योजन इच्छा है ।

ल लब्ध है । जो १०८४ योजन है ।

शंका—१०८४ योजन लब्ध कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोकके समीप एक राजू चौड़ा है और ३३ राजूकी ऊँचाई पर ब्रह्मलोकके समीप ५ राजू चौड़ा है । एक राजू चौड़ी त्रस नाली छोड़ देनेपर लोकके एक पार्श्वभागमें (३३ राजूपर) दो राजूका अन्तराल प्राप्त होता है । ज्योतिषी देव मध्यलोकसे प्रारम्भकर १९०० योजनकी ऊँचाई पर्यन्त ही हैं अतः जबकि ३ राजू की ऊँचाई पर (एक पार्श्वभागमें) २ राजू

अन्तराल है तब १९०० की ऊँचाई पर कितना अन्तराल प्राप्त होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर

$$\frac{\text{फल} \times \text{इच्छा}}{\text{प्रमाण}} = \text{लब्ध} \quad \text{अर्थात्} \quad \frac{२ \times १६०० \times २}{७} = ७६०० \text{ यो० अर्थात् } १०८५\frac{५}{६} \text{ यो० प्राप्त होता है। जो लब्धराशि } १०८४ \text{ से } १\frac{५}{६} \text{ यो० अधिक है।}$$

है। जो लब्धराशि १०८४ से १ $\frac{५}{६}$ यो० अधिक है।

सब ग्रहोंमें शनि ग्रह सर्वाधिक मन्दगतिवाला है, यदि इसकी तीन योजन ऊँचाई गीण करके मंगलग्रहकी ऊँचाई पर्यन्त इच्छा राशि (१००० + ७९० + १० + ८० + ४ + ४ + ३ + ३ + ३) = १८९७ यो० ग्रहण की जाय तो लब्धराशि ($\frac{२ \times ३ \times १६००}{७}$) = १०८४ योजन प्राप्त हो जाती है। (यह विषय विद्वानों द्वारा विचारणीय है)।

एवमरि विसेसौ पुंवावर-दक्षिण-उत्तरेसु भाषेसु ।

अंतरमत्थि सि ण ते, छिवंति जोइगणा वाऊ ॥८॥

अर्थ—विशेष इतना है कि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर भागोंमें अन्तर है। इसलिए ज्योतिषी देव उस घनोदधि वातवलयको नहीं छूते हैं ॥८॥

विशेषार्थ— गाथा ७ में कहा गया है कि ज्योतिषी देव लोकके अन्तमें घनोदधि वातवलय का स्पर्श करते हैं और गाथा ८ में स्पर्शका निवेध किया गया है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि लोक दक्षिण-उत्तर सर्वत्र ७ राजू चौड़ा है अतः इन दोनों दिशाओंमें तो इन देवों द्वारा वातवलयका स्पर्श हो ही नहीं सकता। इसका विवेचन गा० १० में किया जा रहा है। पूर्व-पश्चिम स्पर्शका विषय भी इसप्रकार है कि मध्यलोकमें लोककी पूर्व-पश्चिम चौड़ाई एक राजू है वहाँ ये देव घनोदधि वातवलयका स्पर्श करते हैं, क्योंकि गाथा ५ में इनका निवासक्षेत्र, अगम्यक्षेत्रसे रहित राजू × राजू × ११० घन योजन प्रमाण कहा गया है। किन्तु जो ज्योतिषी-देव चित्राके उपरिम तलसे ऊपर-ऊपर हैं वे पूर्व-पश्चिम दिशाओंमें भी वातवलयका स्पर्श नहीं करते। इसे ही गाथा ९ में दर्शाया जा रहा है।

पूर्व-पश्चिम दिशामें अन्तरालका प्रमाण—

पुंवावर-विचचालं, एवक-सहस्सं बिहत्तरम्भहिया ।

जोयणया पत्तेवकं, रुवस्सासंखभाग - परिहीणं ॥९॥

१०७२ । रिण १
रि ।

अर्थ—पूर्व-पश्चिम दिशाओंमें प्रत्येक ज्योतिषी-बिम्बका यह अन्तराल एक योजनके असंख्यातवें भाग हीन एक हजार बहत्तर (१०७२) योजन प्रमाण है ॥९॥

विशेषार्थ—मध्यलोक पूर्व-पश्चिम एक राजू है। यहाँ वातवलियोंका औसत-प्रमाण १२ योजन है। उपर्युक्त गाथा ८ में जो लब्धराशिरूप १०८४ योजन अन्तराल आया है। उसमेंसे वातवल्यके १२ योजन घटा देनेपर (१०८४ - १२) = १०७२ योजन शेष रहते हैं। यही वातवल्य क्रमशः वृद्धिगत होते हुए ब्रह्मलोकके समीप (७ + ५ + ४) = १६ योजन हैं। इसप्रकार ३३ राजूकी ऊँचाई पर वातवल्योंकी वृद्धि (१६ - १२) = ४ योजन है, यह १९०० यो० की ऊँचाई पर आकर बढ़त-बढ़ते असंख्यातवर्ग भाग प्रमाण हो जाएगी। अतएव ग्रन्थकारने संहृष्टिमें १०७२ योजनोंमेंसे रूप (एक अंक) का असंख्यातवर्ग भाग घटाया है।

दक्षिण-उत्तर दिशामें अन्तरालका प्रमाण—

तद्विखणुसरेसु, ख्वस्सासंख - भाग - अहियाओ ।

बारस - जोयण - हीणा, पसेक्क' तिणिण रज्जुओ ॥१०॥

७ ३ । रिण जो १२ । १ ।
रि

भेदो समसो ॥२॥

अर्थ—दक्षिण-उत्तर दिशाओंमें प्रत्येक ज्योतिषी-विम्बोंका यह अन्तराल रूपके असंख्यातवर्ग भागमें अधिक एवं १२ योजन कम तीन राजू प्रमाण है ॥१०॥

विशेषार्थ—लोक दक्षिणोत्तर ७ राजू विस्तृत (मोटा) है और इसके मध्यमें बस नाली मात्र एक राजू प्रमाण मोटी है, अतः इन दिशाओंमें ज्योतिषीदेवोंका स्पर्श वातवल्योंसे नहीं होता अर्थात् बस नालीसे वातवल्य ३ राजू दूर हैं। पूर्वोक्त गाथानुसार तीन राजूमेंसे वातवल्य सम्बन्धी १२ योजन और रूपका असंख्यातवर्ग भाग घटाया गया है। संहृष्टिमें ७ का यह चिह्न राजूका है और $\frac{१}{१२}$ एक बड़ा असंख्यातवर्ग भागका चिह्न है। अर्थात् ३ राजू — $(१२ + \frac{१}{अस०})$ अन्तर है।

भेदका कथन समाप्त हुआ ॥२॥

ज्योतिष देवोंकी संख्याका निर्देश—

भजिदम्मि सेद्धि-वग्गे, वे-सय-छप्पण-अंगुल-कवीए ।

जं लद्धं सो रासी, जोइसिय - सुराण सव्वाणं ॥११॥

६ । ६५५३६ ।

अर्थ—दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्ग ($२५६ \times २५६ = ६५५३६$ प्रतरांगुलों) का जगच्छ्रेणी के वर्ग (जगत्प्रतर) में भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतनी सम्पूर्ण ज्योतिषीदेवोंकी (जगच्छ्रेणी $\div ६५५३६$) राशि है ॥११॥

इन्द्र स्वरूप चन्द्र ज्योतिषो देवोंका प्रमाण—

अष्ट-चउ-दु-ति-ति-सत्ता सत्त य ठाणेषु णवसु सुण्णाणि ।

छत्तीस-सत्त-दु-एव-अष्ट-ति-धउक्का होति अंककन ॥१२॥

ॐ । ४३८९२७३६००००००००००७७३३२४८ ।

एवेहि गुणित-संखेज्ज-रूव-पदरंगुलेहि भजिदाए ।

सेदि - कदीए लद्धं, माणं चंदाण जोइसिदाणं ॥१३॥

अर्थ—आठ, चार, दो, तीन, तीन, सात, सात, नौ स्थानोंमें शून्य, छत्तीस, सात, दो, नौ, आठ, तीन और चार ये अंक क्रमशः होते हैं। चन्द्र ज्योतिषी देवोंके इन्द्र हैं और इनका प्रमाण उपर्युक्त अंकोंसे गुणित संख्यात रूप प्रतरांगुलोंका जगच्छ्रेणीके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना [जगच्छ्रेणी^२ ÷ { (संख्यात प्रतरांगुल) × (४३८९२७३६०००००००००७७३३२४८) }] है ॥१२-१३॥

प्रतीन्द्र स्वरूप सूर्य ज्योतिषी देवोंका प्रमाण—

तेत्तायमेत्ता रविणो, हवन्ति चंदाण ते पडिद सि ।

अष्टासीदि गहाणि, एक्केक्काणं मयकाणं ॥१४॥

ॐ । ४३८९२७३६००००००००००७७३३२४८ ।

अर्थ—सूर्य, चन्द्रोंके प्रतीन्द्र होते हैं। इन (सूर्यों) का प्रमाण भी उतना [जगच्छ्रेणी^२ ÷ { (संख्यात प्रतरांगुल) × (४३८९२७३६०००००००००७७३३२४८) }] ही है। प्रत्येक चन्द्रके अठासी ग्रह होते हैं ॥१४॥

अठासी ग्रहोंके नाम—

बुह-सुक्क-बिहप्पइणो, मंगल-सणि-काल-लोहिदा कणओ ।

णील - विकाला केसो, कवयवओ कणय - संठाणा ॥१५॥

। १३^१ ।

दुंदुभिगो रत्तणिभो, णीलवभासो असोय - संठाणो ।

कंसो रुवणिभवलो, ^२कंसयवणो य संखपरिणामा ॥१६॥

। ८ ।

तिलपुच्छ-संखवण्णोदय-वण्णो पंचवण्ण-णामवखा ।

उप्पाय - धूमकेतु, तिलो य णभ - छाररासी य ॥१७॥

। ११ ।

वीजण्णु-सरिस-संधी, कलेवर-अभिण्ण-गंधि-माणवया ।

कालक-कालककेतु, णियव-अणय-विज्जुजीहा य ॥१८॥

। १२ ।

सिंहालक-णिदुवखा, काल-महाकाल-रुद्ध-महरुद्धा ।

संताण - विडल - संभव - सव्वट्ठी खेम - चंडो य ॥१९॥

। १३ ।

णिम्मंत-जोइमंता, विससंठिय-विरद-वीतसोका य ।

णिच्चल-पलंब-भासुर-सयंपभा विजय-वद्धजयंते य ॥२०॥

। १४ ।

सोमंकरावराजिय^१-जयंत-विमलाभयंकरो विजयो^२ ।

कट्टी विजयो^३ कज्जलि, अग्गीजालो असोकयो केतु ॥२१॥

। १५ ।

खोरसघस्सवरण-उज्जलकेतु-केतु-अंतरय-एवकसंठाणा ।

अस्सो य कभावग्गह, चरिमा य महग्गहा णामा ॥२२॥

। १६ ।

अर्थ—१बुध, २शुक्र, ३बृहस्पति, ४मंगल, ५शनि, ६काल, ७लोहित, ८कनक, ९नील, १०विकाल, ११केण, १२कवयव, १३कनकसंस्थान, १४दुंदुभिक, १५रक्तनिभ, १६नीलाभास, १७अशोकसंस्थान, १८कंस, १९रूपनिभ, २०कंसकवर्ण, २१संखपरिणाम, २२तिलपुच्छ, २३संखवर्ण, २४उदकवर्ण, २५पंचवर्ण, २६उत्पात, २७धूमकेतु, २८तिल, २९नभ, ३०छारराशि, ३१विजिण्णु, ३२सहस्र, ३३संधि, ३४कलेवर, ३५अभिन्न, ३६गंधि, ३७मानवक, ३८कालक, ३९कालकेतु ४०निलय, ४१अनय, ४२विद्युज्जिह्व, ४३सिंह, ४४अलक, ४५निदुःख, ४६काल, ४७महाकाल, ४८रुद्ध, ४९महारुद्ध, ५०सन्तान, ५१विपुल, ५२सम्भव, ५३सर्वार्थी, ५४क्षेम, ५५चन्द्र, ५६निर्मन्त्र, ५७ज्योतिष्मान्,

१. द. व. १० । २. द. व. क. ज. १२ । ३. द. व. क. ज. १० । ४. द. व. क. ज. जय ।

५. द. व. क. ज. विमला । ६. द. व. क. ज. विमलो ।

५८दिससंस्थित, ५९विरत, ६०वीतशोक, ६१निश्चल, ६२प्रलम्ब, ६३भासुर, ६४स्वयंप्रभ, ६५विजय, ६६वैजयन्त, ६७सीमङ्कुर, ६८अपराजित, ६९जयन्त, ७०विमल, ७१अभयंकर, ७२विकस, ७३काष्ठी, ७४विकट, ७५कज्जली, ७६अग्निज्वाल, ७७अशोक, ७८केतु, ७९वीरस, ८०अघ, ८१श्रवण, ८२जलकेतु, ८३केतु, ८४अन्तरद, ८५एकसंस्थान, ८६अश्व, ८७भावग्रह और अन्तिम ८८महाग्रह, इसप्रकार ये अठासी ग्रह हैं ॥१५-२२॥

सम्पूर्ण ग्रहोंकी संख्याका प्रमाण—

छप्पण छक्कं छक्कं, छप्पणव सुण्णाणि होति^१ दस-ठाणा ।

दो - णव - पंचय - छक्कं, अट्ठ-चऊ-पंच-अंक-कमे ॥२३॥

एद्वेण गुणिद - संखेज्ज - खव - पदरंगुलेहि भजिद्वणं ।

सेदि-कदो एवकारस-हदम्मि सव्वग्गहाण परिमाणं ॥२४॥

ॐ ११ ५४८६५९२०००००००००००९६६६५६ ।

अर्थ—छह, पाँच, छह, छह, छह, नौ, दस स्थानोंमें शून्य, दो, नौ, पाँच, छह, आठ, चार और पाँच, इस अङ्क-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यातरूप प्रतरांगुलोंका जगच्छ्रेणीके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे ग्यारहसे गुणित करनेपर सम्पूर्ण ग्रहोंका प्रमाण $[\{ ज० श्रे० ०^२ \div (सं० प्रतरांगुल) \times (५४८६५९२०००००००००००९६६६५६) \} \times ११]$ होता है ॥२३-२४॥

नोट—गाथा ११ से १४ और २३-२४ में संदृष्टि रूपसे स्थापित चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिषी देवोंका यह प्रमाण कैसे प्राप्त किया गया है ? इसे जाननेका एक मात्र साधन त्रिलोकसार गा० ३६१ की टीका है, अतः वहाँसे जानना चाहिए ।

एक-एक चन्द्रके नक्षत्रोंका प्रमाण एवं उनके नाम—

एवकेक - ससंकाणं, अट्ठावीसा हुवंति णक्खत्ता ।

एदाणं णामाहं, कम - जुत्तीए परुवेमो ॥२५॥

अर्थ—एक-एक चन्द्रके अट्ठाईस-अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं । यहाँ उनके नाम क्रम-युक्तिसे अर्थात् क्रमशः कहते हैं ॥२५॥

कित्तिव-रोहिणि-मिगसिर^२-अद्दाओ^३ पुणव्वसु तहा पुस्सो ।

असिलेसादो मघओ, पुव्वाओ उत्तराओ हत्थो य ॥२६॥

चित्राओ सादीओ, होंति विसाहाणुराह - जेठ्ठाओ ।

मूलं पुब्बासाढा, तत्तो वि य उत्तरासाढा ॥२७॥

अभिजो-सवण-धणिट्ठा, सदभिस-णामाओ पुव्वभद्रपदा ।

उत्तरभद्रपदा रेवदीओ तह अस्सिणी भरणी ॥२८॥

अर्थ—१कृत्तिका, २रोहिणी, ३मृगशीर्षा, ४आर्द्रा, ५पुनर्वसु, ६पुष्य, ७आश्लेषा, ८मघा, ९पूर्वाफाल्गुनी, १०उत्तराफाल्गुनी, ११हस्त, १२चित्रा, १३स्वाति, १४विशाखा, १५अनुराधा, १६ज्येष्ठा, १७मूल, १८पूर्वाषाढा, १९उत्तराषाढा, २०अभिजित्, २१श्रवण, २२धनिष्ठा, २३शतभिषा, २४पूर्वभाद्रपदा, २५उत्तराभाद्रपदा, २६रेवती, २७अश्विनी और २८भरणी ये उन नक्षत्रोंके नाम हैं ॥२६-२८॥

समस्त नक्षत्रोंका प्रमाण—

दुग-इगि-तिय-ति-ति-णवया, एक्का ठाणेसु णवसु सुण्णाणि ।

चउ-अट्ठ-एक्क-तिथ-सत्त - णवय - गयणेक्क अंक - कमे ॥२९॥

एदेहि गुणिव - संखेज्ज - रुव - पदरंगुलेहि भजिदूणं ।

सेडि - कदो सत्त - हदे, परिसंखा सब्ब - रिक्खाणं ॥३०॥

३० । १०९७३१८४००००००००००१६३३३१२ ।

अर्थ—दो, एक, तीन, तीन, तीन, नौ, एक, नौ स्थानोंमें शून्य, चार, आठ, एक, तीन, सात, नौ, शून्य और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यात रूप प्रतरांगुलोंका जगच्छ्रेणीके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे सातसे गुणा करनेपर सब नक्षत्रोंकी संख्याका प्रमाण [{ जगच्छ्रेणी^२ ÷ (संख्यात प्रतरांगुल) × (१०९७३१८४०००००००००१६३३३१२) } × ७] होता है ॥२९-३०॥

एक चन्द्र सम्बन्धी ताराओंका प्रमाण—

एक्केक्क - सयंकाणं, हवन्ति ताराण कोडिकोडीओ ।

छावट्ठि-सहस्साणं, एव - सया पंचहत्तरि - जुदाणि ॥३१॥

६६९७५००००००००००००००० ।

अर्थ—एक एक चन्द्रके छायासठ हजार नौ सो पंचहत्तर-कोड़ाकोड़ी तारागण होते हैं ॥३१॥

ताराओंके नामोंके उपदेशका अभाव—

संपहि काल-वसेरां, तारा-णामारा नस्थि उवएसो ।

एदाणं सन्वाणं, परमाराणि परुवेमो ॥३२॥

अर्थ—इस समय कालके वशसे ताराओंके नामोंका उपदेश नहीं है । इन सबका प्रमाण कहता हूँ ॥३२॥

समस्त ताराओंका प्रमाण—

दुग-सत्त-चउक्काइं, एक्कारस - ठाणएसु सुण्णाइं ।

णव - सत्त - छद्दुगाइं, अंकाण कमेण एदेरां ॥३३॥

संणुमिदेहि संखेज्जक्ख - पदरंगुलेहि सज्जिववो ।

सेढी-वग्गो तत्तो, परा-सत्त - त्तिय - चउक्कट्ठा ॥३४॥

णव-अट्ठ-पंच-णव-दुग-अट्ठा-सत्तट्ठ-णह-चउक्कारिणि ।

अंक - कमे गुणिदव्वो, परिसंखा सव्व - ताराणं ॥३५॥

= ४०८७८२९५८९८४३७५

४ । ७ । २६७९००००००००००००४७२ ।

एवं संखा समत्ता ॥३॥

अर्थ—दो, सात, चार, ग्यारह स्थानोंमें शून्य, नौ, सात, छह और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यातरूप प्रतरांगुलोंका जगच्छ्रेणीके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसको पाँच, सात, तीन, चार, आठ, नौ, आठ, पाँच, नौ, दो, आठ, सात, आठ, शून्य और चार, इन अंकोंसे गुणा करनेपर समस्त ताराओंका प्रमाण [{ जगच्छ्रेणी^२ ÷ (संख्यात प्रतरांगुल) } × (२६७९००००००००००००४७२) } × (४०८७८२९५८९८४३७५)] होता है ॥३३-३५॥

इसप्रकार संख्याका कथन समाप्त हुआ ॥३॥

चन्द्र-मण्डलोंकी प्ररूपणा—

गंतूणं सीदि - जुवं, अट्ठसया जोयणाणि चित्ताए ।

उवरिम्मि मंडलाइं, चंडाणं होति गयणम्मि ॥३६॥

। ८८० ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीसे आठ सौ अस्सी (८८०) योजन ऊपर जाकर आकाशमें चन्द्रोंके मण्डल (विमान) हैं ॥३६॥

उत्ताणावट्टिद-गोलकद्व^१ सरिसाणि ससि-मणिमयाणि ।
ताणं पुह पुह बारस-सहस्स-सिसिरतर-मंद-किरणणि ॥३७॥

। १२००० ।

अर्थ—चन्द्रोंके मणिमय विमान उत्तानमुख अर्थात् ऊर्ध्वमुखरूपसे अवस्थित अर्ध-गोलक सदृश हैं । उनकी पृथक्-पृथक् बारह (१२०००) हजार प्रमाण किरणें अतिशय शीतल एवं मन्द हैं ॥३७॥

विशेषार्थ—जिसप्रकार एक गोले (गेंद) के दो खण्ड करके उन्हें ऊर्ध्वमुख रखा जावे तो चौड़ाईका भाग ऊपर और गोलाईवाला संकरा भाग नीचे रहता है । उसीप्रकार ऊर्ध्वमुख अर्ध-गोलेके सदृश चन्द्र विमान स्थित हैं । सभी ज्योतिषी देवोंके विमान इसीप्रकार उत्तानमुख अवस्थित हैं ॥

तेसु ठिद-पुढवि-जीवा, जुत्ता उज्जोव-कम्म-उदएणं ।
जम्हा तम्हा ताणि, फुरंत-सिसिरयर-मंद-किरणणि ॥३८॥

अर्थ—उन (चन्द्रविमानों) में विद्यमान पृथिवीकायिक जीव उद्योत नामकर्मके उदयसे संयुक्त हैं अतः वे प्रकाशमान् अतिशय शीतल और मन्द किरणोंसे संयुक्त होते हैं ॥३८॥

एक्कट्ठी-भाग-कदे, जोयणए ताण होदि छप्पणा ।
उपरिम-तलाण रुंद, तदद्व^२ - बहलं पि पत्तेक्कं ॥३९॥

। ५६ । ३६ ।

अर्थ :—एक योजनके इकसठ भाग करने पर उनमें से छप्पन भागोंका जितना प्रमाण है, उतना विस्तार उन चन्द्र-विमानोंमेंसे प्रत्येक चन्द्र विमानके उपरिम तलका है और बाह्य इससे आधा है ॥३९॥

एदाणं परिहीओ, पुह पुह वे जोयणाणि अदिरेको ।
ताणि अकिट्टिमाणि, अणाइणिहणाणि बिबाणि ॥४०॥

अर्थ :—इनकी परिधिर्वा पृथक्-पृथक् दो योजनसे कुछ अधिक हैं । वे चन्द्र बिम्ब अकृत्रिम एवं अनादिनिघन हैं ॥४०॥

विशेषार्थ :—प्रत्येक चन्द्र विमान का व्यास ५६ योजन और परिधि २ योजन ३ कोस, कुछ कम १२२५ धनुष प्रमाण है ।

चउ-गोउर-संजुत्ता, तड-वेदी तेसु होदि पत्तेवकं ।

तम्मज्जे वर - वेदी - सहिदं रायंगणं रम्मं ॥४१॥

अर्थ :—उनमेंसे प्रत्येक विमानकी तट-वेदी चार गोपुरोंसे संयुक्त होती है । उसके बीचमें उत्तम वेदी सहित रमणीय राजाङ्गण होता है ॥४१॥

रायंगण-बहु-मज्जे, वर-रयणमयाणि दिव्व-कूडाणि ।

कूडेसु जिण - घराणि, वेदी चउ - तोरण जुदाणि ॥४२॥

अर्थ :—राजाङ्गणके ठीक बीचमें उत्तम रत्नमय दिव्य कूट और उन कूटोंपर वेदी एवं चार तोरणोंसे संयुक्त जिन-मन्दिर अवस्थित हैं ॥४२॥

ते सध्वे जिण-णिलया, मुत्तावलि-कणय-दाम-कमणिज्जा ।

वर-वज्ज-कवाड-जुदा, दिव्व - विदाणेहि रेहंति ॥४३॥

अर्थ वे सब जिन-मन्दिर मोती एवं स्वर्णकी मालाओंसे रमणीक और उत्तम वज्रमय किवाड़ोंसे संयुक्त होते हुए दिव्य चन्दोर्वोंसे सुशोभित रहते हैं ॥४३॥

दिप्पंत-रयण-दीया, अट्ट-महामंगलेहि परिपुण्णा ।

वन्दनमाला-चामर - किक्किणिया - जाल - साहित्ता ॥४४॥

अर्थ—वे जिन-भवन वेदीप्यमान रत्नदीपकों एवं अष्ट महामंगल द्रव्योंसे परिपूर्ण और वन्दनमाला, चंवर तथा क्षुद्र घण्टिकाओंके समूहसे शोभायमान होते हैं ॥४४॥

एदेसुं णट्टसभा, अभिसेय - सभा विचित्त-रयणमई ।

कीडण - साला विविहा, ठाण - ट्ठाणेषु सोहंति ॥४५॥

अर्थ—इन जिन-भवनोंमें स्थान-स्थान पर विचित्र रत्नोंसे निर्मित नाट्य सभा, अभिषेक सभा और विविध क्रीड़ा-शालाएँ सुशोभित होती हैं ॥४५॥

मदल-मुदंग-पटह-प्पहुदीहि विविह दिव्व - तूरेहि ।

उदहि-सरिच्छ-रवेहि, जिण-गेहा णिच्च-हलबोला ॥४६॥

अर्थ—वे जिन-भवन सपुत्र सदृश गम्भीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग और पटह आदि विविध दिव्य वाद्योंसे नित्य शब्दायमान रहते हैं ॥४६॥

छत्त-त्तय - सिंहासण - भासंडल - चामरेहि जुत्ताइं ।

जिण - पडिमाओ तेसुं, रयणमईओ विराजंति ॥४७॥

अर्थ—उन जिन-भवनोंमें तीन छत्र, सिंहासन, मामण्डल और चामरोसे संयुक्त रत्नमयी जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं ॥४७॥

सिरिदेवी सुददेवी, सव्वाण सणक्कुमार-जक्खानं^१ ।

रुवाणि मण - हराणि, रेहंति जिणिब - पासेसुं ॥४८॥

अर्थ—जिनेन्द्र बिम्बके पार्श्वमें श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाण्हयक्ष और सनत्कुमार यक्षकी मनोहर मूर्तियाँ शोभायमान होती हैं ॥४८॥

जल-गंध-कुसुम-तंडुल-वर-भक्ष-पदीव-धूव-फल-पुष्पं ।

कुव्वंति ताण पुज्जं, णिबभर - भत्तीए सन्ध - सुरा ॥४९॥

अर्थ—सब चन्द्रदेव गाढ़ भक्तिसे उन जिनेन्द्र प्रतिमाओं की जल, गन्ध, तन्दुल, फूल, उत्तम नैवेद्य, दीप, धूप और फलोंसे पूजा करते हैं ॥४९॥

चन्द्र-प्रासादोंका वर्णन—

एवाणं कूडाणं, समंततो होंति चंद - पासादा ।

समचउरस्सा दीहा, णाणा - विण्णास - रमणिज्जा ॥५०॥

अर्थ—इन कूटोंके चारों ओर समचतुष्कोण लम्बे और अनेक प्रकारके विन्याससे रमणीय चन्द्रोंके प्रासाद होते हैं ॥५०॥

मरगय-वण्णा केई, केई कुब्बेंदु-हार-हिम-वण्णा ।

अण्णे सुवण्ण-वण्णा, अवरें वि पवाल-णिह-वण्णा ॥५१॥

अर्थ—इनमेंसे कितने ही प्रासाद मरकतवर्ण वाले, कितने ही कुन्दगुष्प. चन्द्र, हार एवं बर्फ जैसे वर्णवाले; कोई स्वर्ण सदृश वर्णवाले; और दूसरे (कोई) सुर्गे सदृश वर्णवाले हैं ॥५१॥

उपपाद-मंदिराई, अभिसेय-घराणि भूषण-गिहाणि ।

मेहुण-कीडण-सालाओ भंत - अत्थाण - सालाओ ॥५२॥

अर्थ—इन भवनोंमें उपपाद मन्दिर, अभिषेकपुर, भूषणगृह, मैथुनशाला, श्रीडाशाला, मन्त्रशाला और आस्थान-शालाएँ (सभाभवन) स्थित हैं ॥५२॥

ते सव्वे पासादा, वर-पाधारा विचित्त-गोउरया ।

मणि-तोरण-रमणिज्जा, जुत्ता बहुचित्त-भित्तीहिं^२ ॥५३॥

उपवण-पोखरणीहि, विराजमाणा विचित्र-रूपाहि ।

कणयमय-झिल्ल-थंभा, सयणासण-गुहृति-पुष्पाणि ॥५४॥

अर्थ—ये सब प्रासाद उत्तम कोटों तथा विचित्र गोपुरोंसे संयुक्त, मणिमय तोरणोंसे रमणीय, नाना प्रकारके चित्रोंवाली दीवारोंसे युक्त, विचित्र रूपवाली उपवन-वापिकाओंसे सुशोभित और स्वर्णमय विशाल खम्भोंमें युक्त हैं तथा शयनासनों आदिसे परिपूर्ण हैं ॥५३-५४॥

सद्-रस-रूप-गंधं, पासेहि गिरुधमेहि सोक्खाणि ।

देति विविहाणि दिव्वा, पासादा धूव - गंधड्ढा ॥५५॥

अर्थ—धूपकी गुग्गुलुसे व्याप्त ये दिव्य प्रासाद शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्शसे विविध अनुपम सुख प्रदान करते हैं ॥५५॥

सत्तट्ट - प्पहुदोओ, भूमीओ भूसिदाओ कूडेहि ।

विष्फुरिद-रयण-किरणावलीओ भवणेसु रेहंति ॥५६॥

अर्थ—(उन) भवनोंमें कूटोंसे विभूषित और प्रकाशमान रत्न-किरण-पंक्तियोंसे संयुक्त सात-आठ आदि भूमियाँ शोभायमान होती हैं ॥५६॥

चन्द्रके परिवार देव-देवियोंका निरूपण—

तम्मंदिर - मज्जेसुं, चंदा सिंहासणस्समारुढा ।

पत्तेवकं चंदाणं, चत्तारो अग - सहिसीओ ॥५७॥

। ४ ।

अर्थ—इन मन्दिरोंके बीचमें चन्द्रदेव सिंहासनोंपर विराजमान रहते हैं । उनमेंसे प्रत्येक चन्द्रके चार-अग्रमहिषियाँ (पट्टदेवियाँ) होती हैं ॥५७॥

चंदाभ-सुसीमाओ, पहंकरा^१ अच्चिमालिणी ताणं ।

पत्तेवकं परिवारा, चत्तारि - सहस्स - देवीओ ॥५८॥

णिय-णिय-परिवार-समं, विक्किरियं वरिसियंति देवीओ ।

चंदाणं परिवारा, अट्ट - वियप्पा य पत्तेवकं ॥५९॥

पडिइंदा सामाणिय-तणुरक्खा तह हवंति लिप्परिसा ।

सत्ताणीय - पडण्णय - अभियोगा किञ्चिसा देवा ॥६०॥

अर्थ—चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभङ्कुरा और अचिमालिनी, ये उन अग्र-देवियों के नाम हैं । इनमेंसे प्रत्येक की चार-चार हजार प्रमाण परिवार देवियाँ होती हैं । अग्रदेवियाँ अपनी-अपनी परिवार देवियोंके सदृश अर्थात् चार हजार रूपों प्रमाण विांकया दिखलाती हैं । प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्ष, तीनों पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, अभियोम्य और किल्बिष, इसप्रकार प्रत्येक चन्द्रके आठ प्रकारके परिवार देव होते हैं ॥५८-६०॥

सयलिदाण पडिदा, एक्केक्का होंति ते वि आइच्चा ।

सामाणिय - तणुरक्ख - एवहुदी संखेज्ज - परिमाणा ॥६१॥

अर्थ—सब चन्द्र इन्द्रोंके एक-एक प्रतीन्द्र होता है । वे (प्रतीन्द्र) सूर्य ही हैं । सामानिक और तनुरक्ष आदि देव संख्यात प्रमाण होते हैं ॥६१॥

रायंगण - बाहिरए, परिवाराणं हवन्ति पासादा ।

विविह-वर-रयण-रइदा, विचित्त-विण्णास-भूदीहि ॥६२॥

अर्थ—राजाङ्गणके बाहर विविध उत्तम रत्नोंसे रचित और अद्भुत् विन्यासरूप विभूति सहित परिवार-देवोंके प्रासाद होते हैं ॥६२॥

चन्द्र विमानके वाहक देवोंके आकार एवं उनकी संख्या—

सोलस-सहस्समेत्ता, अभिजोग-सुरा हवन्ति पत्तेक्कं ।

चंदाण घरतलाइं, विक्किरिया - साविणो णिच्चं ॥६३॥

। १६००० ।

अर्थ—प्रत्येक (चन्द्र) इन्द्रके सोलह हजार प्रमाण आभियोम्य देव होते हैं जो चन्द्रोंके ग्रहतलों (विमानों) को नित्य ही विक्रिया धारण करते हुए वहन करते हैं ॥६३॥

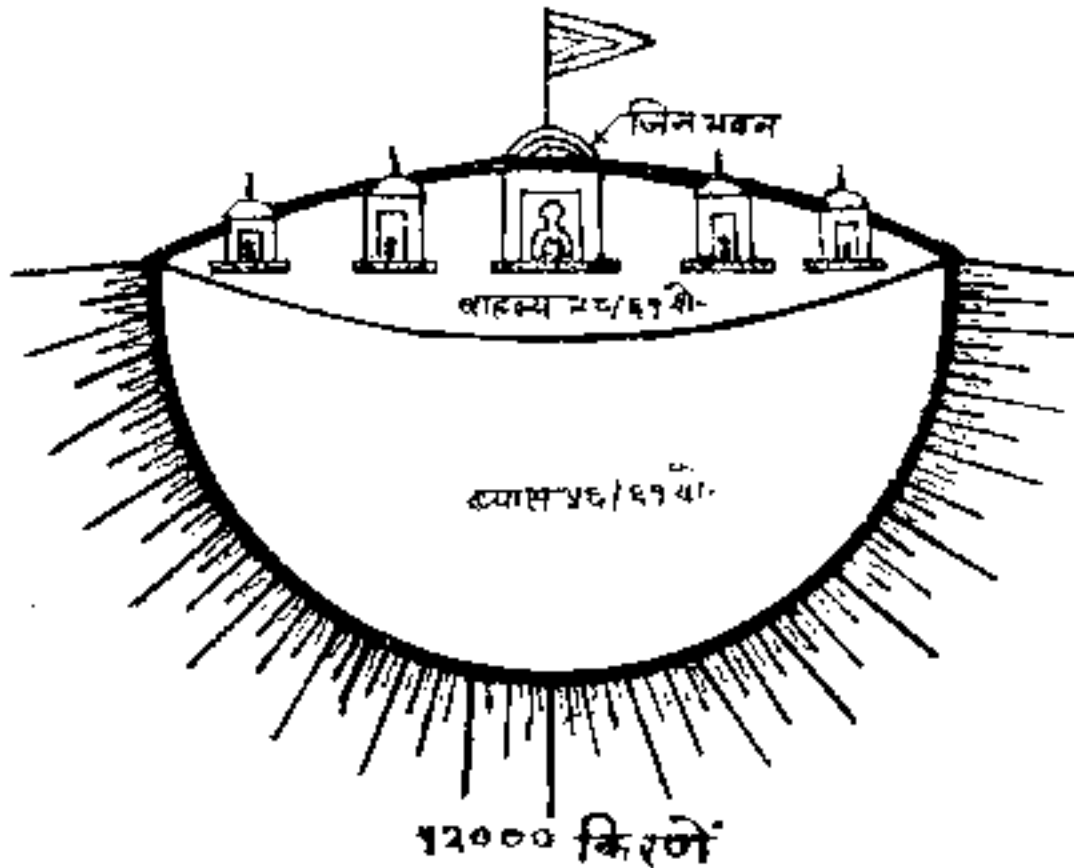
चउ-चउ-सहस्समेत्ता, पुव्वादि-दिसामु कुंद-संकासा ।

केसरि-करि-वसहाणं, जडिल - तुरंगाण रुवधरा ॥६४॥

अर्थ—सिंह, हाथी, बैल और जटा युक्त घोड़ोंको धारण करने वाले तथा कुन्द-पुष्प सदृश सफेद चार-चार हजार प्रमाण देव (क्रमशः) पूर्वदिक् दिशाओंमें (चन्द्र-विमानोंको वहन करते) हैं ॥६४॥

चन्द्र-विमान का चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये ।

—चन्द्र विमान—



• सूर्य-मण्डलोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलादो, उवरि गंतूण ओयणहु-सए ।
दिणयर-णयर-तलाहं, णिच्चं चेठ्ठंति गयणम्मि ॥६५॥

[८००]

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिमतलसे ऊपर आठ सौ (८००) योजन जाकर आकाशमें
नित्य (शाश्वत) नगरतल स्थित हैं ॥६५॥

उत्ताणावट्टिव-गोलकद्ध' सरिसाणि रवि-मणिमयाणि ।
ताणं पुह पुह बारस-सहस्स-उण्हयर-किरणाणि ॥६६॥

[१२०००]

अर्थ—सूर्योके मणिमय विमान ऊर्ध्व अवस्थित अर्ध-गोलक सदृश हैं । उनकी पृथक्-पृथक्
बारह हजार (१२०००) किरणें उष्णतर होती हैं ॥६६॥

तेसु ठिद-पुढवि-जीवा, जुत्ता आदाव-कम्म-उदएणं ।

जम्हा तम्हा ताणि, फुरंत उण्हयर - किरणाणि ॥६७॥

अर्थ—क्योंकि उन (सूर्य विमानों) में स्थित पृथिवीकायिक जीव आताप नामकर्मके उदयसे संयुक्त होते हैं अतः वे प्रकाशमान उष्णतर किरणोंसे युक्त होते हैं ॥६७॥

एवकट्टी-भाग-कदे, जोयणाए ताण होंति अडवालं ।

उवरिम - तलाण रुंदं, तदद्ध - बहलं पि पत्तेवकं ॥६८॥

। ६८ । ३४ ।

अर्थ—एक योजनके इकसठ (६१) भाग करनेपर उनमेंसे अड़तालीस (४८) भागोंका जितना प्रमाण है उतना विस्तार उन सूर्य विमानोंमेंसे प्रत्येक सूर्य बिम्बके उपरिमतलका है और बाह्य इससे आधा होता है ॥६८॥

एवाणं परिहीओ, पुह पुह वे जोयणाणि अदिरेगा ।

ताणि अकिट्टिमाणि, अणाइणिहणाणि बिबाणि ॥६९॥

अर्थ—इनकी परिधियाँ पृथक्-पृथक् दो योजनोंसे अधिक हैं । वे सूर्य-बिम्ब अकृत्रिम एवं अनादिनिघन हैं ॥६९॥

विशेषार्थ—प्रत्येक सूर्य विमानका व्यास ६६ योजन और परिधि २ योजन १ कोस, कुछ कम १६०७ घनुष प्रमाण है ।

पत्तेवकं तड - वेदी, चउ-गोउर-दार-सुंदरा ताणं ।

तम्मज्जे वर - वेदी - सहिवं रायंगणं होदि ॥७०॥

अर्थ—उनमेंसे प्रत्येक सूर्य-विमानकी तट-वेदी चार गोपुरद्वारों से सुन्दर होती है । उसके बीचमें उत्तम वेदीसे संयुक्त राजाङ्गरा होता है ॥७०॥

रायंगणस्स मज्जे, वर-रयणमयाणि दिव्व-कूडाणि ।

तेसुं जिण - पासादा, चेठ्ठते सूरकंतमया ॥७१॥

अर्थ—राजाङ्गराके मध्यमें जो उत्तम रत्नमय दिव्य कूट होते हैं उनमें सूर्यकान्त मणिमय जित-मवन स्थित हैं ॥७१॥

एवाणं मंदिराणं, मयंकपुर - कूड - भवण-सारिच्छं ।

सव्वं चिय वण्णणयं, णिउणेहि एत्थ वत्तव्वं ॥७२॥

अर्थ—निपुण पुरुषोंको इन मन्दिरोंका सम्पूर्ण वर्णन चन्द्रपुरोंके कूटोंपर स्थित जिन-भवनोंके सदृश यही भी करना चाहिए ॥७२॥

तेसु जिण-प्पडिमाओ, पुब्बोदिव-वण्णणा पयाराओ ।

विविहच्छणा - दब्बोहि, ताओ पूजंति सव्व - सुरा ॥७३॥

अर्थ—उनमें जो जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं उनके वर्णनका प्रकार पूर्वोक्त के ही सदृश है । समस्त देव अनेक प्रकारके पूजा-द्रव्योंसे उन प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥७३॥

एवाणं कूडाणं, होदि समंतेण सूर - पासादा ।

ताणं पि वण्णणाओ, ससि - पासादेहि सरिसाओ ॥७४॥

अर्थ—इन कूटोंके चारों ओर जो सूर्य-प्रासाद हैं उनका भी वर्णन चन्द्र-प्रासादोंके सदृश है ॥७४॥

तण्णिलयाणं मज्जे, दिवायरा दिव्व-सिह-पोडेसु ।

वर - छत्त - चमर - जुत्ता, चेट्ठ ते दिव्वयर - तेया ॥७५॥

अर्थ—उन भवनोंके मध्यमें उत्तम छत्र-चैवरोंसे संयुक्त और अतिशय दिव्य तेजको धारण करने वाले सूर्य देव दिव्य सिंहासनों पर स्थित होते हैं ॥७५॥

सूर्यके परिवार देव-देवियोंका निरूपण—

जुदिसुदि-पहंकराओ, सूरपहा-अचिच्चमालिणोओ वि ।

पत्तेक्कं चत्तारो, दु - मणीणं अग्ग - देवीओ ॥७६॥

अर्थ—प्रत्येक सूर्यकी श्रुतिश्रुति, प्रभङ्कुरा, सूर्यप्रभा और अचिच्चमालिनी, ये चार अग्र-देवियाँ होती हैं ॥७६॥

देवोणं परिवारा, पत्तेक्कं चउ - सहस्स - देवीओ ।

णिय-णिय-परिवार-समं, विविकरियं ताओ गेण्हंति ॥७७॥

अर्थ—इनमेंसे प्रत्येक अग्र-देवीकी चार हजार परिवार-देवियाँ होती हैं । वे अपने-अपने परिवार सदृश अर्थात् चार-चार हजार रूपोंकी विक्रिया ग्रहण करती हैं ॥७७॥

सामाणिय-तणुरक्खा, ति-प्परिसाओ पइण्णयाणीया ।

अभियोगा किम्बिसिया, सत्त-विहा सूर-परिवारा ॥७८॥

अर्थ—सामानिक, तनुरक्षक, तीनों पारिषद, प्रकीर्णक, अनीक, अभियोग्य और कित्वधिक, इसप्रकार सूर्य देवोंके सात प्रकारके परिवार देव होते हैं ॥७८॥

रायंगण बाहिरए, परिवाराणं हवन्ति पासादा ।

वर - रयण - भूसिद्धाणं, फुरंत - तेयाण सव्वाणं ॥७९॥

अर्थ—उत्तम रत्नोंसे विभूषित और प्रकाशमान तेज को धारण करने वाले समस्त परिवार-देवों के प्रासाद राजाङ्गणके बाहर होते हैं ॥७९॥

सूर्यविमानके वाहक देवोंके आकार एवं उनकी संख्या—

सोलस-सहस्समेत्ता, अभिजोग-सुरा हवन्ति पत्तेक्कं ।

दिणयर-णयर-तलाहं, विक्किरिया-हारिणो^१ णिच्चं ॥८०॥

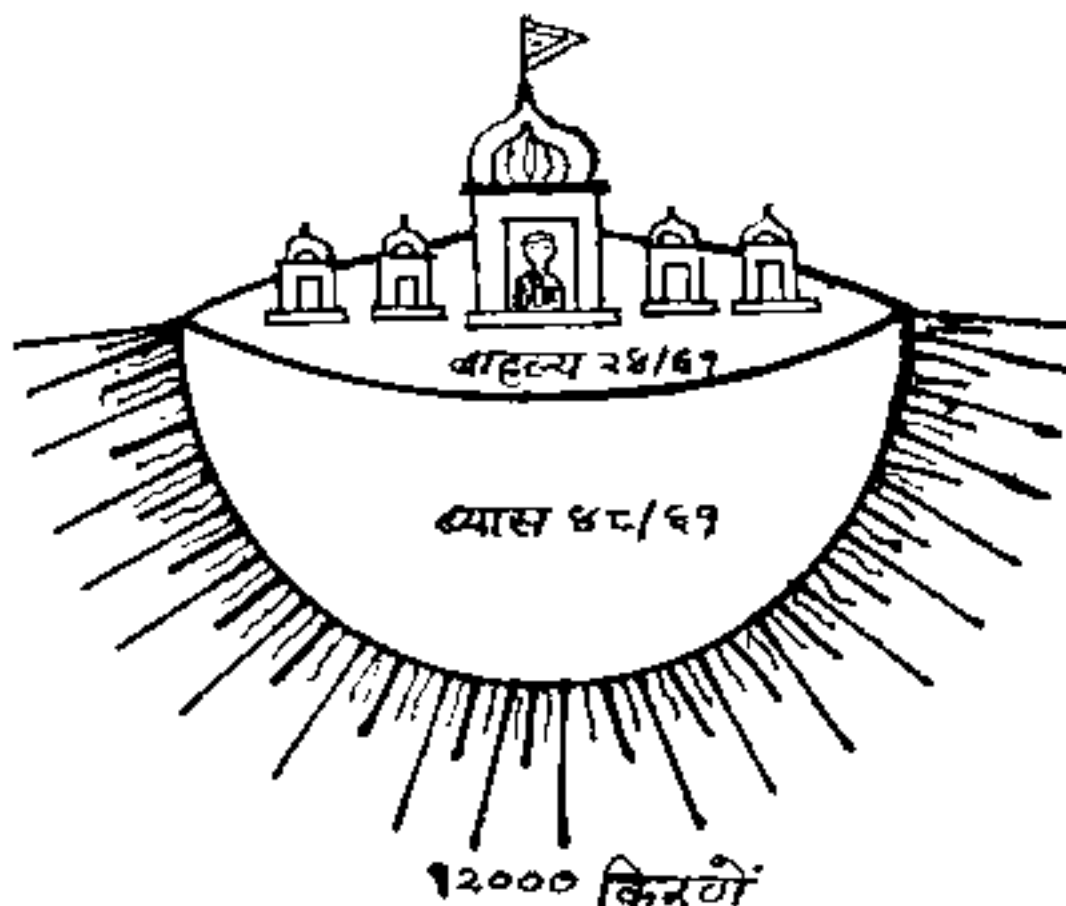
। १६००० ।

अर्थ—प्रत्येक सूर्यके सोलह (१६०००) हजार प्रमाण आभियोग्य देव होते हैं जो नित्य ही विक्रिया करके सूर्य-नगरतलोंको ले जाते हैं ॥८०॥

ते पुव्वादि-विसासुं, केसरि-करि-यसह-जडिल-हय-रुवा ।

चउ चउ - सहस्समेत्ता, कंचण - वण्णा विराजन्ते ॥८१॥

सूर्य विमान



अर्थ—सिंह, हाथी, बैल और जटा-युक्त घोड़ेके रूपको धारण करनेवाले तथा स्वर्ण सदृश वर्ण संयुक्त वे आभियोग्य देव क्रमशः पूर्वोक्त दिशाओंमें चार-चार हजार प्रमाण विराजमान होते हैं ॥८१॥

ग्रहोंका अवस्थान—

चित्तोवरिम - तलावो, गंतूणं जोयणाणि अट्ट-सए ।
अठ्ठासीदि-बुवे गह-गण-पुरीओ वो-गुणिद-छवक-बहलम्मि ॥८२॥

। ८८८ । १२ ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे आठ सौ अठासी (८८८) योजन ऊपर जाकर बारह (१२) योजन प्रमाण बाह्य में गह-समूह की नगरियाँ हैं ॥८२॥

बुध-नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलावो, पुव्वोदिद-जोयणाणि गंतूणं ।
तासुं बुह-णघरीओ, णिक्खं चेट्टंति गयणम्मि ॥८३॥

अर्थ—उनमें से चित्रा पृथिवीके उपरिम-तलसे पूर्वोक्त आठ सौ अठासी योजन ऊपर जाकर आकाश में बुधकी नगरियाँ नित्य स्थित हैं ॥८३॥

एवाओ सव्वाओ, कणयमईओ य मंद-किरणाओ ।
उत्ताणावट्टिद - गोलकद्ध - सरिसाओ णिच्चाओ ॥८४॥

अर्थ—ये सब नगरियाँ स्वर्णमयी, मन्द किरणोंसे संयुक्त, नित्य और ऊर्ध्व अवस्थित अर्ध-गोलक सदृश हैं ॥८४॥

उवरिम - तलाण रुंवो, कोसस्सद्धं तदद्ध-बहलत्तं ।
परिहो दिवद्ध - कोसो, सविसेसा ताण पत्तेक्कं ॥८५॥

अर्थ—उनमेंसे प्रत्येकके उपरिम तलका विस्तार अर्ध कोस, बाह्य इससे आधा और परिधि डेढ़ कोससे कुछ अधिक है ॥८५॥

एवकेवकाए पुरीए, तट-वेदी पुव्व-ववणणा होदि ।
तम्मज्जे वर - वेदी - जुत्तं रायंगणं रम्मं ॥८६॥

अर्थ—प्रत्येक पुरीकी तट-वेदी पूर्वोक्त वर्णनासे युक्त होती है । उसके बीचमें उत्तम वेदीसे संयुक्त समशीय राजाङ्गण स्थित रहता है ॥८६॥

तम्मज्जे वर-कूडा, हवन्ति तेसुं जिणिद - पासादा ।

कूडाण-समन्तेणं, बुह णिसया पुब्ब सरिस-वण्णणया ॥८७॥

अर्थ—राजाङ्गणके मध्यमें उत्तम कूट और उन कूटोंपर जिनेन्द्र-प्रासाद होते हैं । कूटोंके चारों ओर पूर्व भवनों सदृश वर्णन वाले बुध-ग्रहके भवन हैं ॥८७॥

दो-दो सहस्समेत्ता, अभियोगा-हरि-करिद-वसह-हया ।

पुठ्ठादिसु पत्तेक्कं, कणय-णिहा बुह-पुराणि धारन्ति ॥८८॥

अर्थ—सिंह, हाथी, बैल एवं घोड़ोंके रूपको धारण करनेवाले तथा स्वर्ण सदृश वर्ण संयुक्त दो-दो हजार प्रमाण आभियोग्य देव क्रमशः पूर्वादिक दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें बुधोंके पुरोंको धारण करते हैं ॥८८॥

शुक्रग्रहके नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलादो, णव-ऊणिय-णव-सयाणि जोयणया ।

गंतूण गहे उवरि, सुवकाणि पुराणि चेद्वुंते ॥८९॥

। ८९१ ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे नौ कम नौ सौ (८९१) योजन प्रमाण ऊपर जाकर आकाशमें शुक्रोंके नगर स्थित हैं ॥८९॥

ताणं णयर-तलाणं, पण-सय-दु-सहस्समेत्त-किरणाणि ।

उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि वर - रुप्य - मइयाणि ॥९०॥

। २५०० ।

अर्थ—ऊर्ध्व अवस्थित गोलकार्धके सदृश और उत्तम चांदीसे निमित्त उन शुक्र-नगरतलों मेंसे प्रत्येककी दो हजार पाँच सौ (२५००) किरणें होती हैं ॥९०॥

उवरिम-तल-विक्खंभो, कोस-पमाणं तदद्ध-बहलत्तं ।

ताणं अकिट्टिमाणं, खचिदाणं विविह - रयणेहि ॥९१॥

। को १ । को ३ ।

अर्थ—विविध रत्नोंसे खचित्त उन अकृत्रिम पुरोंके उपरिम तलका विस्तार एक कोस और बाह्य इससे आधा अर्थात् अर्ध कोस प्रमाण है ॥९१॥

पुह पुह ताणं परिही, ति-कोसमेत्ता हवेदि सविसेसा ।

सेसाओ वण्णणाओ, बुह - एयराणं सरिच्छाओ ॥९२॥

अर्थ—उनकी परिधि पृथक्-पृथक् तीन कोससे कुछ अधिक है । इन नगरोंका शेष सब वर्णन बुध नगरोंके सदृश है ॥९२॥

गुरु-ग्रहके नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलावो, छक्कोणिय-णव-सएण जोयणए ।

गंतूण णहे उवरि, चेहुंति गुरुण रायरणि ॥९३॥

। ८९४ ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे छह कम नी सौ (८९४) योजन ऊपर जाकर आकाशमें गुरु (बृहस्पति) ग्रहोंके नगर स्थित हैं ॥९३॥

तारिणि णयर-तलारिणि, फलिह-मयारिणि सुमंब-किरणारिणि ।

उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि निच्चं सहावारिणि ॥९४॥

अर्थ—स्फटिकमणिसे निर्मित, उन गुरु-ग्रहोंके नगर-तल सुन्दर मन्द किरणोंसे संयुक्त, ऊर्ध्वमुख स्थित गोलकार्धके सदृश और नित्य-स्वभाव वाले हैं ॥९४॥

उवरिम-तल-विक्खंभा तारिणि कांसस्स पारिम-भावा थ ।

सेसाओ वण्णणाओ, सुक्क - पुराणं सरिच्छाओ ॥९५॥

अर्थ—उनके उपरिम तलका विस्तार कोस के बहुभाग अर्थात् कुछ कम एक कोस प्रमाण है । उनका शेष वर्णन शुक्रपुरों के सदृश है ॥९५॥

मंगल ग्रहके नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलावो, तिय-ऊणिय-णव-सयारिणि जोयणए ।

गंतूण उवरि गयणे, मंगल - रायरणि चेहुंति ॥९६॥

। ८९७ ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे तीन कम नी सौ (८९७) योजन ऊपर जाकर आकाशमें मङ्गलनगर स्थित हैं ॥९६॥

तारिणि णयर-तलारिणि, रुहिरारुण-पउमराय-मइयारिणि ।

उत्ताण-गोलकद्धोवमाणि सव्वाणि मंब-किरणारिणि ॥९७॥

अर्थ—वे सब नगर-तल रुधिर सदृश लाल वर्णवाले पद्मराग-मणियोंसे निर्मित, ऊर्ध्वमुख स्थित गोलकार्ध सदृश और मन्द-किरणोंसे संयुक्त होते हैं ॥९७॥

उवरिम-तल-विक्खंभा, कोसस्सद्धं तवद्ध-बहलत्तं^१ ।

सेसाओ वण्णणाओ, ताणं पुव्वुत्त - सरिसाओ ॥९८॥

अर्थ—उनके उपरिम तलका विस्तार अर्ध कोस एवं बाह्य इससे आधा अर्थात् पाव कोस प्रमाण है । इनका शेष वर्णन पूर्वोक्त नगरोंके सदृश है ॥९८॥

शनि-ग्रहके नगरोंकी प्ररूपणा —

चित्तोवरिम-तलावो, गंतूणं णव-सयाणं जोयणए ।

उवरि सुवण्ण-मयाणि, सणि-णयराणि णहे होति ॥९९॥

। ९०० ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे नौ सौ (९००) योजन ऊपर जाकर आकाशमें शनि-ग्रहोंके स्वर्णमय नगर हैं ॥९९॥

उवरिम-तल-विक्खंभा^१, कोसद्धं होति ताण पत्तेक्कं ।

सेसाओ वण्णणाओ, पुव्व - पुराणं सरिक्खाओ ॥१००॥

अर्थ—उनमेंसे प्रत्येक शनि नगरके उपरिम तलका विस्तार अर्ध कोस प्रमाण है । इनका शेष वर्णन पूर्वोक्त नगरोंके सदृश ही है ॥१००॥

अवशेष ८३ ग्रहोंकी प्ररूपणा —

अवसेसाण गहाणं, णयरीओ उवरि चित्त-भूमीवो ।

गंतूण बुह - सणीणं, विक्खाले होति णिच्चाओ ॥१०१॥

अर्थ—अवशिष्ट (८३) ग्रहोंकी नित्य (शाश्वत) नगरियां चित्रा पृथिवीके ऊपर जाकर बुध ग्रहों और शनि ग्रहों के अन्तरालमें अवस्थित हैं ॥१०१॥

विशेषार्थ—गाथा १५ से २२ तक अर्थात् आठ गाथाओंमें बुधको आदि लेकर ८८ ग्रहोंके नाम दर्शाये गये हैं । इनमेंसे बुध, शुक्र, गुरु, मंगल और शनि ग्रहोंका वर्णन ऊपर किया जा चुका है । शेष ८३ ग्रहोंका अवस्थान चित्रा पृथिवीसे ऊपर जाकर बुध और शनि ग्रहोंके अन्तराल अर्थात् ८८८ योजनसे ९०० योजनके बीचमें है ।

ताणि णयर-तलाणि, जह जोगुहिट्ट-वास-बहलाणि ।

उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि बहु - रयण - मइयाणि ॥१०२॥

अर्थ—ये (८३) नगर तल यथा-योग्य कहे हुए विस्तार एवं बाहुल्यसे संयुक्त, ऊर्ध्वमुख गोलकार्ध सदृश और बहुत रत्नोंसे रचित हैं ॥१०२॥

सेसाओ वण्णणाओ, पुब्बिल्ल-पुराण होंति सरिसाओ ।

किं पारेमि' भणेदुं, जीहाए एकमेत्ताए ॥१०३॥

अर्थ—इन ग्रहोंका शेष वर्णन पूर्वोक्त पुरोके सदृश है । मात्र एक जिह्वासे इनका विशेष कथन करते हुए क्या पार पा सकता हूँ ? ॥१०३॥

नक्षत्र नगरियोंकी प्ररूपणा—

अट्ट-सय-जोयणाणि, षडसोवि-जुदाणि उवरि-चित्ताओ ।

गंतूण गयण - मग्गे, हवन्ति णक्खल - णयराणि ॥१०४॥

। ८८४ ।

अर्थ—विषा पृथिवीसे आठसौ चौरासौ (८८४) योजन ऊपर जाकर आकाश-मार्गमें नक्षत्रोंके नगर हैं ॥१०४॥

ताणि शयर-तलाणि, बहु-रयण-भयाणि मंद-किरणाणि ।

उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि रम्भाणि रेहन्ति ॥१०५॥

अर्थ—ये सब (नक्षत्रोंके) रमणीय नगरतल बहुत रत्नोंसे निर्मित, मन्द किरणोंसे युक्त और ऊर्ध्वमुख गोलकार्ध सदृश होते हुए विराजमान होते हैं ॥१०५॥

उवरिम-तल-वित्थारो, ताणं कोसो तवद्ध-बहलाणि ।

सेसाओ वण्णणाओ, दिणयर-णयराण सरिसाओ ॥१०६॥

अर्थ—उनके उपरिम तलका विस्तार एक कोस और बाहुल्य इससे आधा है । इनका शेष वर्णन सूर्य-नगरोंके सदृश है ॥१०६॥

णवरि विसेसो वेधा, अभियोगा सीह-हत्थि-वसहस्सा ।

ते एक्केक्क - सहस्सा, पुव्व-विसासु ताणि धारन्ति ॥१०७॥

अर्थ—इतना विशेष है कि सिंह, हाथी, बैल एवं घोड़ेके आकारको धारण करने वाले एक-एक हजार प्रमाण अभियोग्य देव क्रमशः पूर्वादिक दिशाओंमें उन नक्षत्र नगरोंको धारण किया करते हैं ॥१०७॥

तारा नगरियोंको प्ररूपणा—

एउदि-जुद सत्त-जोयण-सदाणि भंतूण उवरि चिन्ताये ।

मयण-तले ताराणं, पुराणि बहले दहत्तर-सदम्भ ॥१०८॥

अर्थ—चित्रा पृथिवीसे सात सौ नब्बे (७९०) योजन ऊपर जाकर आकाश तलमें एक सौ दस (११०) योजन प्रमाण बाहुल्यमें ताराओंके नगर हैं ॥१०८॥

ताणं पुराणि पाणा-वर-रयण-मयाणि मंद-किरणाणि ।

उत्ताण - गोलकद्वोवमाणि सासद - सरूवाणि ॥१०९॥

अर्थ—उन ताराओंके पुर नाना प्रकारके उत्तम रत्नोंसे निर्मित, मन्द किरणोंसे संयुक्त, ऊर्ध्वमुख स्थित गोलकाधं सदृश और नित्य-स्वभाव वाले हैं ॥१०९॥

ताराओंके भेद और उनके विस्तारका प्रमाण—

वर-श्रवर-मज्झिमाणि, ति-विषयाणि ह्वंति एवाणि ।

उवरिम - तल - विषखंभा, जेढ्ढाणं वो-सहस्स-वंडाणि ॥११०॥

। २००० ।

अर्थ—ये उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम तीन प्रकारके होते हैं । इनमेंसे उत्कृष्ट नगरोंके उपरिम तलका विस्तार दो हजार (२०००) धनुष प्रमाण है ॥११०॥

पंच - सयाणि धणूणि, तं विषखंभा हवेदि श्रवराणं ।

दु-ति-गुणिदावर-माणं, मज्झि - मयाणं दु-ठाणेसु ॥१११॥

। ५०० । १००० । १५०० ।

अर्थ—जघन्य नगरोंका (वह) विस्तार पांच सौ (५००) धनुष प्रमाण है । इस जघन्य प्रमाणको दो और तीनसे गुणा करनेपर क्रमशः दो स्थानोंमें मध्यम नगरोंका विस्तार क्रमशः ($५०० \times २ =$) १००० धनुष एवं ($५०० \times ३ =$) १५०० धनुष है ॥१११॥

ताराओंका अन्तराल एवं अन्य वर्णन—

तेरिच्छमंतरासं, जहण्ण - ताराण कोस - सत्तंसो ।

जोयणया पण्णासा, मज्झिमए सहस्समुक्कस्से ॥११२॥

को १ । जो ५० । १००० ।

अर्थ—जघन्य ताराओं का तिर्यग् अन्तराल एक कोस का सातवाँ भाग अथवा ३ कोस, मध्यम ताराओंका यही अन्तराल ५० योजन और उत्कृष्ट ताराओंका तिर्यग् अन्तराल एक हजार (१०००) योजन प्रमाण है ॥११२॥

सेसाओ वण्णणाओ, पुब्ब-पुराणं हवन्ति सरिसाणि ।

एतो गुरुवइट्ठं पुर - परिमाणं पल्लवेमो ॥११३॥

। एवं विण्णासं समत्तं^१ ॥४॥

अर्थ—इन ताराओंका शेष वर्णन पूर्व पुरोंके सदृश है । अब यहाँसे आगे गुरु द्वारा उपदिष्ट पुरों (सगरों) का प्रमाण कहते हैं ॥११३॥

॥ इसप्रकार विन्यासका कथन समाप्त हुआ ॥४॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

चन्द्रादि ग्रहोंके अवस्थान, विस्तार, बाह्य एवं वाहन देवोंका प्रमाण—

क्र.	ग्रह	चित्रा पृ० से ऊंचाई		विस्तार (मोटाई)		बाह्य (गहराई)		वाहन देवोंका आकार और प्रमाण				योग
		योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	पूर्व दिशा में सिंह	दक्षिण में हाथी	पश्चिम में बैल	उत्तर में घोड़ा	
१.	चन्द्र	८८०	३५२०००००	५६ यो०	३६७२६६	६६ यो०	१८३६६६	४०००+	४०००+	४०००+	४०००=	१६०००
२.	सूर्य	८००	३२००००००	४६ यो०	३१४७३३	४६ यो०	१५७३६६	४०००+	४०००+	४०००+	४०००=	१६०००
३.	बुध	८८८	३५५२००००	१ को०	५०० मी०	१ को०	२५०	२०००+	२०००+	२०००+	२०००=	८०००
४.	शुक्र	८६१	३५६४००००	१ को०	१००० मी०	१ को०	५००	२०००+	२०००+	२०००+	२०००=	८०००
५.	गुरु	८६४	३५७६००००	कुछ कम १ को०	कुछ कम १००० मी०	कुछ कम १ को०	कुछ कम ५००	२०००+	२०००+	२०००+	२०००=	८०००
६.	मंगल	८६७	३५८८००००	१ को०	५०० मी०	१ को०	२५०	२०००+	२०००+	२०००+	२०००=	८०००
७.	शनि	९००	३६००००००	१ को०	५०० मी०	१ को०	२५०	२०००+	२०००+	२०००+	२०००=	८०००
८.	नक्षत्र उ० तारा	८८४	३५३६००००	१ को०	१००० मी०	१ को०	५००	१०००+	१०००+	१०००+	१०००=	४०००
९.	म० तारा ब० तारा	७९०	३१६०००००	धनुष १५०० यो० १००० मी०	५०० मी० १००० मी० ५०० मी०	५०० मी० १००० मी० ५०० मी०	५००	५००+	५००+	५००+	५००=	२०००

चन्द्र आदि देवोंके नगरों आदिका प्रमाण—

णिय-णिय-रासि-पमाणं, 'एवाणं जं' मयंक-पहुदीणं ।

णिय-णिय-णयर-पमाणं, तेस्सियमेत्तं च कूड-जिएभवणं ॥११४॥

अर्थ—इन चन्द्र आदि देवोंकी निज-निज राशिका जो प्रमाण है, उतना ही प्रमाण अपने-अपने नगरों, कूटों और जिन-भवनोंका है ॥११४॥

विशेषार्थ—गाथा ११ सं ३५ पर्यन्त चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की निज-निज राशिका अलग-अलग जो प्रमाण कहा गया है, वही प्रमाण उनके नगरों, कूटों और जिन-भवनोंका है ।

लोकविभागानुसार ज्योतिष-नगरोंका बाहुल्य—

जोह्मण^१-णयरोंजं, सण्वाणं एद-माव सारिउछं ।

बहलत्तं मण्णंते, लोयविभायस्स आइरियाए ॥११५॥

पाठान्तरम् ।

॥ एवं परिमाणं समत्तं ॥५॥

अर्थ:—'लोकविभाग' के आचार्य समस्त ज्योतिर्गणोंकी नगरियों के विस्तार प्रमाण के सदृश ही उनके बाहुल्यको भी मानते हैं ॥११५॥

इसप्रकार परिमाणका कथन समाप्त हुआ ॥५॥

चन्द्र विमानोंकी संचार-भूमि—

चर-बिम्बा मणुवाणं, खेत्ते तस्सि च जंबु-दीवम्मि ।

दोणिण मियंका ताणं, एक्कं चिय होवि चारमही ॥११६॥

अर्थ—चर अर्थात् गमनशील ज्योतिष बिम्ब मनुष्य क्षेत्रमें ही हैं, मनुष्य क्षेत्रके मध्य स्थित जम्बूद्वीपमें जो दो चन्द्र हैं उनकी संचार-भूमि एक ही है ॥११६॥

पंच-सय-जोयणाणि, दसुत्तराहं हवेवि विक्खंभो ।

ससहर - चारमहीए, दिणयर - बिम्बाविरित्ताणि ॥११७॥

। ५१० । ६६ ।

१. द. ब. क. ज. पण्वाणं । २. द. क. ज. जम्हयंक, ब. जमयंक । ३. द. ब. क. ज. ओइदुठण ।

४. द. ब. क. ज. विक्खंभा ।

अर्थ—चन्द्रकी संचार-भूमिका विस्तार सूर्य-बिम्बके विस्तारसे अतिरिक्त अर्थात् ६६ योजनसे अधिक पाँच सौ दस (५१०) अर्थात् ५१०६६ योजन प्रमाण है ॥११७॥

बीसूण - बे - सयाणि, जंबूद्वीवे चरन्ति सीदकरा ।

रवि-मंडलाधियाणि, तीसुत्तर-तिय-सयाणि लवणम्मि ॥११८॥

। १८० । ३३० । ६६ ।

अर्थ—चन्द्रमा, गीत कन नी ली (१८०) योजन जम्बूद्वीपमें और सूर्यमण्डलसे अधिक तीन सौ तीस (३३०६६) योजन प्रमाण लवणसमुद्रमें संचार करते हैं ॥११८॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप सम्बन्धी दोनों चन्द्रोंके संचार क्षेत्र का प्रमाण ५१०६६ योजन प्रमाण है । इसमेंसे दोनों चन्द्र जम्बूद्वीपमें १८० योजन क्षेत्र में और अवशेष (५१०६६ — १८० =) ३३०६६ योजन लवणसमुद्रमें विचरण करते हैं ।

चन्द्र गलीके विस्तार आदिका प्रमाण—

पण्णरस - ससहराणं, वीहीओ होंति चारखेत्तम्मि ।

मंडल - सम - रुंदाओ, तदद्ध - बहुलाओ पत्तेक्कं ॥११९॥

। ६६ । ३६ ।

अर्थ—चन्द्र बिम्बोंके चार क्षेत्र (५१०६६ यो०) में पन्द्रह गलियाँ हैं । उनमेंसे प्रत्येक गलीका विस्तार चन्द्रमण्डलके बराबर ६६ योजन और बाह्य इससे आधा (३६ योजन) है ॥११९॥

सुमेरुपर्वतसे चन्द्र की अभ्यन्तर वीथीका अन्तर-प्रमाण —

सट्ठि-जुदं ति-सयाणि, मंदर-रुंदां च जंबु-विक्खंभे ।

सोहिय बलिसे लद्धं, चंदादि-महीहि-मंदरंतरयं ॥१२०॥

चउदाल-सहस्साणि, बीसुत्तर-अड-सयाणि मंदरदो ।

गच्छिय सव्वकभंतर - वीही इंदुरण परिमाणं ॥१२१॥

। ४४८२० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे तीन सौ साठ योजन और सुमेरुपर्वतका विस्तार कम करके शेषको आधा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना चन्द्रकी प्रथम (अभ्यन्तर) संचार पृथिवी (वीथी) से सुमेरुपर्वतका अन्तर है । (अर्थात्) सुमेरुपर्वतसे चबालीस हजार आठ सौ बीस (४४८२०) योजन प्रमाण आगे जाकर चन्द्रकी सर्वाभ्यन्तर (प्रथम) वीथी प्राप्त होती है ॥१२०-१२१॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। जम्बूद्वीपके दोनों पार्श्वभागोंमें चन्द्रके चार क्षेत्रका प्रमाण (१८०×२) = ३६० योजन है और सुमेरुपर्वतका भू-विस्तार १०००० योजन है। अतः $१००००० - ३६० = ९९६४०$ योजन जम्बूद्वीपको प्रथम (अभ्यन्तर) वीथी में स्थित दोनों चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर है और इसमेंसे सुमेरुका भू-विस्तार घटाकर शेषको आधा करने पर ($\frac{९९६४०}{२} = ४९८२०$) = ४९८२० योजन सुमेरुसे अभ्यन्तर (प्रथम) वीथीमें स्थित चन्द्रके अन्तरका प्रमाण प्राप्त होता है ॥

चन्द्रकी ध्रुवराशि का प्रमाण—

एक-सट्टीए गुणिदा, पंच-सया जोयणाणि दस-जुता ।

ते अड्दाल - विमिस्सा, ध्रुवरासी णाम चारमही ॥१२२॥

अर्थ—पांचसौ दस योजनको एकसठसे गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें वे अड़तालीस भाग और मिला देनेपर ध्रुवराशि नामक चारक्षेत्रका विस्तार होता है ॥१२२॥

विशेषार्थ—चन्द्रोंके संचार क्षेत्रका नाम चारक्षेत्र है। जिसका प्रमाण $५१०\frac{१६}{६१}$ योजन है। गाथामें इसी प्रमाण को समान छेद करने (भिन्न तोड़ने) पर जो राशि उत्पन्न हो उसे ध्रुवराशि स्वरूप चारक्षेत्र कहा है। यथा— $५१० \times ६१ = ३१११०$, $३१११० + ४८ = ३११५८$ अर्थात् $३११\frac{५८}{६१}$ यो० ध्रुवराशि स्वरूप चारमही का प्रमाण है। गाथा १२३ में इन्हीं $३११\frac{५८}{६१}$ को ६१ से भाजितकर प्राप्त राशि $५१०\frac{१६}{६१}$ को ध्रुवराशि कहा है।

एकत्तीस - सहस्सा, अट्ठावणुत्तरं सवं तह य ।

इगिसट्टीए भजिवे, ध्रुवरासि - पमाणमुद्दिहं ॥१२३॥

$३११\frac{५८}{६१}$ ।

अर्थ—इकतीस हजार एक सौ अट्ठावन (३११५८) में एकसठ (६१) का भाग देनेपर जो ($५१०\frac{१६}{६१}$ यो०) लब्ध आवे उतना ध्रुव राशिका प्रमाण कहा गया है ॥

चन्द्रकी सम्पूर्ण गलियोंके अन्तरालका प्रमाण—

पण्णरसेहि गुणिदं, हिमकर-बिंब-प्पमाणमवणेज्जं ।

ध्रुवरासीदो सेसं, विच्चालं सयल - वीहीणं ॥१२४॥

३०३१८ ।

अर्थ—चन्द्रबिम्बके प्रमाणको पन्द्रहसे गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे ध्रुवराशिमेंसे कम कर देनेपर जो अवशेष रहे वही सम्पूर्ण गलियोंका अन्तराल प्रमाण होता है ॥१२४॥

विशेषार्थ :—चन्द्रकी एक वीथीका विस्तार $\frac{१५}{१६}$ योजन है तो, १५ वीथियोंका विस्तार कितना होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $(\frac{१५}{१६} \times १५) = \frac{२२५}{१६}$ योजन गलियोंका विस्तार हुआ । इसे चार क्षेत्रके विस्तार $५१०\frac{३१}{६४}$ यो० में से घटा देनेपर $(५११\frac{५८}{६४} - \frac{२२५}{१६} =) ३०३\frac{१८}{६४}$ योजन १५ गलियोंका अन्तराल प्रमाण प्राप्त होना है ।

चन्द्रकी प्रत्येक वीथीका अन्तराल प्रमाण—

तं चोद्दस-पविहत्तं, हवेदि एककेवक-वीहि-विच्चालं ।

पणुतीस - जोयणाणि, अबिरेकं तस्स परिमाणं ॥१२५॥

अबिरेकस्स पमाणं, चोद्दसमद्विरिच-वेणि-सवमंसा ।

सत्तावीसवहिया, चत्तारि सया हवे हारो ॥१२६॥

३५ । ३३४ ।

अर्थ :—इस $(३०३\frac{१८}{६४})$ में चौदहका भाग देनेपर एक-एक वीथीके अन्तरालका प्रमाण होता है । जो पैंतीस योजनों से अधिक है । इस अधिकताका जो प्रमाण है उसमें दो सौ चौदह (२१४) अंश और चार सौ सत्ताईस (४२७) भागहार है ॥१२५-१२६॥

विशेषार्थ—चन्द्रमा की गलियाँ १५ हैं किन्तु १५ गलियोंके अन्तर १४ ही होंगे, अतः सम्पूर्ण गलियोंके अन्तराल प्रमाणमें १४ का भाग देनेपर प्रत्येक गलीके अन्तरालका प्रमाण $(३०३\frac{१८}{६४} \div १४) = २१\frac{३३४}{६४}$ योजन प्राप्त होता है ।

चन्द्रके प्रतिदिन गमन-क्षेत्रका प्रमाण—

पढम-पहादो चंबो, बाहिर-मग्गस्स गमण-कालम्मि ।

वीहि पडि मेलिज्जं, विच्चालं विव - संजुत्तं ॥१२७॥

३६ । १३४ ।

अर्थ—चन्द्रोंके प्रथम वीथीसे द्वितीयादि बाह्य वीथियोंकी ओर जाते समय प्रत्येक वीथीके प्रति, विम्ब संयुक्त अन्तराल मिलाना चाहिए ॥१२७॥

विशेषार्थ—चन्द्रकी प्रत्येक गलीका विस्तार $\frac{१५}{१६}$ योजन है और प्रत्येक गलीका अन्तर प्रमाण $२१\frac{३३४}{६४}$ योजन है । इस अन्तरप्रमाणमें गलीका विस्तार मिला देनेपर $(२१\frac{३३४}{६४} + \frac{१५}{१६} =) २६\frac{३३४}{६४}$ योजन प्राप्त होते हैं । चन्द्रको प्रतिदिन एक गली पारकर दूसरी गलीमें प्रवेश करते तक $२६\frac{३३४}{६४}$ यो० प्रमाण गमन करना पड़ता है ।

द्वितीयादि वीथियोंमें स्थित चन्द्रोंका सुमेरु पर्वतसे अन्तर—

चउदाल-सहस्सा अड-सयाणि छप्पण-जोयणा अहिया ।

उणसोदि-जुव-सयंसा, विदियद्ध-गदेंदु-मेरु - विच्छालं ॥१२८॥

४४८५६ । ११६ ।

अर्थ—द्वितीय अध्व (गली) को प्राप्त हुए चन्द्रमाका मेरु पर्वतसे चवालीस हजार आठ सौ छप्पन योजन और (एक योजनके चारसौ सत्ताईस भागोंमेंसे) एक सौ उन्यासी भाग-प्रमाण अन्तर है ॥१२८॥

विशेषार्थ :- मेरु पर्वतसे चन्द्रकी प्रथम वीथीका अन्तर गाथा १२१ में ४४८२० योजन कहा गया है । उसमें चन्द्रकी प्रतिदिनकी गति का प्रमाण जोड़ देनेपर सुमेरुसे द्वितीय वीथी स्थित चन्द्र का अन्तर (४४८२० + ३६३३६) = ४४८५६३३६ योजन प्रमाण है । यही प्रक्रिया आगे भी कही गई है ।

चउदाल-सहस्सा अड-सयाणि बाणउदि जोयणा भागा ।

अडवण्णुत्तर-ति-सिया, तगियद्ध-गदेंदु-मेरु-पमाणं ॥१२९॥

४४८९२ । ३३६ ।

अर्थ—तृतीय गलीको प्राप्त हुए चन्द्र और मेरु-पर्वतके बीचमें चवालीस हजार आठ सौ बानबे योजन और तीन सौ अट्ठावन भाग अधिक अन्तर-प्रमाण है ॥१२९॥

यथा—४४८५६३३६ यो० + ३६३३६ यो० = ४४८९२३३६ यो० ।

चउदाल-सहस्सा णव-सयाणि उणतीस जोयणा भागा ।

वस-जुत्त-सयं विच्छं, चउत्थ-पह-गव-हिमंसु-मेरुणं ॥१३०॥

४४९२९ । ११६ ।

अर्थ—चतुर्थ पथको प्राप्त हुए चन्द्रमा और मेरुके मध्य चवालीस हजार नौ सौ उनतीस योजन और एक सौ दस भाग प्रमाण अधिक अन्तर है ॥१३०॥

४४८९२३३६ + ३६३३६ = ४४९२९३३६ योजन ।

चउदाल-सहस्सा णव-सयाणि पण्णट्ठि जोयणा भागा ।

दोणि सया उणणउदी, पंचम-पह-इंदु-मंदर-पमाणं ॥१३१॥

४४९६५ । ३३६ ।

अर्थ—पंचम पथको प्राप्त चन्द्रका मेरु पर्वतसे चवालीस-हजार नौ सौ पैंसठ योजन और दो सौ नवासी भाग (४४९६५३६६ यो०) प्रमाण अन्तर है ॥१३१॥

$$४४९२९३३३ + ३६३३३ = ४४९६५३६६ यो० ।$$

पणवाल-सहस्सा बे-जोयण-जुत्ता कलाओ इगिवालं ।

छट्ठ-पह-ट्टिव-हिमकर-चामीयर - सेल - विच्चालं ॥१३२॥

$$४५००२ । ३३३ ।$$

अर्थ—छठे पथमें स्थित चन्द्र और मेरु पर्वतके मध्य पैंतालीस हजार दो योजन और इकतालीस कला (४५००२३३३ यो०) प्रमाण अन्तर है ॥१३२॥

$$४४९६५३६६ + ३६३३३ = ४५००२३३३ यो० ।$$

पणवाल-सहस्सा जोयणाणि अडतीस दु-सय-बीसंसा ।

सत्तम-बीहि-गवं सिद - मयूख - मेरुण विच्चालं ॥१३३॥

$$४५०३८ । ३३३ ।$$

अर्थ—सातवीं गली को प्राप्त चन्द्र और मेरुके मध्य पैंतालीस हजार अडतीस योजन और दो सौ बीस भाग—(४५०३८३३३ यो०) प्रमाण अन्तर है ॥१३३॥

$$४५००२३३३ + ३६३३३ = ४५०३८३३३ यो० ।$$

पणवाल-सहस्सा चउहत्तरि-अहिया कलाओ तिण्णि-सया ।

णयणववो विच्चालं, अट्ठम - बीहो - गदिदु - मेरुणं ॥१३४॥

$$४५०७४ । ३३३ ।$$

अर्थ—आठवीं गलीको प्राप्त चन्द्र और मेरुके बीच पैंतालीस-हजार चौहत्तर योजन और तीन सौ निन्यानवे कला (४५०७४३३३ यो०) प्रमाण अन्तर है ॥१३४॥

$$४५०३८३३३ + ३६३३३ = ४५०७४३३३ यो० ।$$

पणवाल-सहस्सा सयमेवकारस-जोयणाणि कलाण सयं ।

इगिवण्णा विच्चालं, णयम - पहे चंद - मेरुणं ॥१३५॥

$$४५१११ । ३३३ ।$$

अर्थ—नौवें पथमें चन्द्र और मेरुके मध्यमें पैंतालीस हजार एक सौ ग्यारह योजन और एक सौ इक्यावन कला (४५१११३३३ यो०) प्रमाण अन्तराल है ॥१३५॥

$$४५०७४३३३ + ३६३३३ = ४५१११३३३ यो० ।$$

पणदाल-सहस्सा सय, सत्तत्तालं कलाण तिण्णि सया ।

तीस - जुदा बसम-पहे, विच्चं हिमकिरण - मेळणं ॥१३६॥

४५१४७ । ३३० ।

अर्थ—दसवें पथमें स्थित चन्द्र और मेरुका अन्तराल पैंतालीस हजार एक सौ सैंतालीस योजन और तीन सौ तीस कला (४५१४७ $\frac{३३०}{१००}$ यो०) प्रमाण है ॥१३६॥

$४५१११\frac{१११}{१००} + ३६३\frac{३३}{१००} = ४५१४७\frac{३३०}{१००}$ यो० ।

पणदाल-सहस्साणि, खुलसीदो जोयणाणि एक्क-सयं ।

बासीदि-कला विच्चं, एक्करस - पहम्मि एदाणं ॥१३७॥

४५१८४ । ४३० ।

अर्थ—ग्यारहवें पथमें इन दोनोंका अन्तर पैंतालीस हजार एक सौ चौरासी योजन और बयासी कला (४५१८४ $\frac{४३०}{१००}$ यो०) प्रमाण है ॥१३७॥

$४५१४७\frac{३३०}{१००} + ३६३\frac{३३}{१००} = ४५१८४\frac{४३०}{१००}$ यो० ।

पणदाल-सहस्साणि, बीसुत्तर-बो-सयाणि जोयणाया ।

इगिसट्ठि-दु-सय-भागा, बारसम - पहम्मि तं विच्चं ॥१३८॥

४५२२० । ३३० ।

अर्थ—बारहवें पथमें वह अन्तराल पैंतालीस हजार दो सौ बीस योजन और दो सौ इकसठ भाग (४५२२० $\frac{३३०}{१००}$ यो०) प्रमाण है ॥१३८॥

$४५१८४\frac{४३०}{१००} + ३६३\frac{३३}{१००} = ४५२२०\frac{३३०}{१००}$ यो० ।

पणदाल-सहस्साणि, दोण्णि सया जोयणाणि सगवण्णा ।

तेरस - कलाओ तेरस - पहम्मि एदाण विच्चालं ॥१३९॥

४५२५७ । ४३० ।

अर्थ—तेरहवें पथमें इन दोनोंका अन्तराल पैंतालीस हजार दो सौ सत्तावन योजन और तेरह कला (४५२५७ $\frac{४३०}{१००}$ यो०) प्रमाण है ॥१३९॥

$४५२२०\frac{३३०}{१००} + ३६३\frac{३३}{१००} = ४५२५७\frac{४३०}{१००}$ यो० ।

पणदाल-सहस्सा बे, सयाणि ते-णउदि जोयणा अहिया ।

अट्ठोण-दु-सय-भागा, चौदसम - पहम्मि तं विच्चं ॥१४०॥

४५२९३ । ३३० ।

अर्थ—चौदहवें पथमें वह अन्तराल पैंतालीस हजार दो सौ तेरानबे योजन और आठ कम दो सौ भाग अविक अर्थात् (४५२९३ $\frac{३३०}{१००}$ यो०) है ॥

$४५२५७\frac{४३०}{१००} + ३६३\frac{३३}{१००} = ४५२९३\frac{३३०}{१००}$ यो० ।

पण्णदाल-सहस्साणि, तिण्णि सया जोयणाणि उणतीसं ।

इकिहत्तरि-ति-सय-कला, पण्णरस-पहम्मि तं विच्चं ॥१४१॥

४५३२९।३६३।

अर्थ—पन्द्रहवें पथमें वह अन्तराल पैंतालीस हजार तीन सौ उनतीस योजन और तीन सौ इकहत्तर कला (४५३२९३६३ यो०) प्रमाण है ॥१४१॥

विशेषार्थ— $४५२९३६३६ + ३६३६३ = ४५३२९३६३$ योजन ।

यह ४५३२९६३ योजन (१८१३१९४७५६३ मील) मेरु पर्वतसे बाह्य वीथी में स्थित चन्द्र का अन्तर है ।

बाहिर-पहादु ससिणो, आदिम-वीहीए आगमण-काले ।

पुव्वप-मेलिद-खेदं, 'फेलसु जा चोद्दसादि-पदम-पहं ॥१४२॥

अर्थ—बाह्य (पन्द्रहवें) पथसे चन्द्रके प्रथम वीथीकी और आगमनकालमें पहिले मिलाए हुए क्षेत्र (३६३६३ यो०) को उत्तरोत्तर कम करते जानेसे चौदहवीं गलीको आदि लेकर प्रथम गली तकका अन्तराल प्रमाण आता है ॥१४२॥

प्रथम वीथीमें स्थित दोनों चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर—

साट्ठ जुवं ति-सयाणि, सोहेज्जसु जंबुदीव-वासम्मि ।

जं सेसं आबाहं, अबभंतर - मंडलेंदूणं ॥१४३॥

णवणउदि-सहस्साणि, छस्सय-चालीस-जोयणाणि पि ।

खंवाणं विक्कवाल. अबभंतर - मंडल - ठिवाणं ॥१४४॥

९९६४० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे तीन सौ साठ योजन कम कर देनेपर जो शेष रहे उतना अभ्यन्तर मण्डलमें स्थित दोनों चन्द्रोंके आबाधा अर्थात् अन्तरालका प्रमाण है । अर्थात् अभ्यन्तर मण्डलमें स्थित दोनों चन्द्रोंका अन्तराल निम्नानवे हजार छह सौ चालीस (९९६४०) योजन प्रमाण है ॥१४३-१४४॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका व्यास एक लाख योजन है । जम्बूद्वीपके दोनों पार्श्वभागोंमें चन्द्रमाके चार क्षेत्रका प्रमाण (१८०×२) = ३६० योजन है । इसे जम्बूद्वीपके व्यासमेंसे घटा देने पर ($१००००० - ३६० =$) ९९६४० योजन शेष बचते हैं । यही ९९६४० योजन प्रथम वीथीमें स्थित दोनों चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर है ।

चन्द्रोंकी अन्तराल वृद्धिका प्रमाण—

ससहर-पह-सूचि-वड्ढी, दोहि गुणिबाए होवि जं लखं ।

सा आबाधा - वड्ढी, पडिमगं चंद - चंदाणं ॥१४५॥

७२ । ३५६ ।

अर्थ—चन्द्रकी पथ-सूचो वृद्धिका जो (३६३ $\frac{५६}{६६}$ यो०) प्रमाण है, उसे दो से गुणा करने पर जो (३६३ $\frac{५६}{६६}$ × २ = ७२६ $\frac{५६}{३३}$ यो०) लब्ध प्राप्त हो उतना प्रत्येक गलीमें दोनों चन्द्रोंके परस्पर एक दूसरेके बीचमें रहने वाले अन्तरालकी वृद्धिका प्रमाण होता है ॥१४५॥

प्रत्येक पथमें दोनों चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर—

बारस-जुव-सत्त-सया, णवणउवि-सहस्स जोयणाणं पि ।

अडवण्णा ति-सय-कला, विविय - पहे चंद - चंदस्स ॥१४६॥

९९७१२ । ५५६ ।

अर्थ—द्वितीय पथमें एक चन्द्र से दूसरे चन्द्रका अन्तराल नित्यानवे हजार सात सौ बारह योजन और तीन सौ अट्ठावन कला (९९७१२ $\frac{५५६}{६६}$ यो०) प्रमाण है ॥१४६॥

विशेषार्थ—गाथा १४३ में प्रथम वीथी स्थित दोनों चन्द्रोंके अन्तरका प्रमाण ९९६४० योजन कहा गया है । इसमें अन्तरालवृद्धिका (७२६ $\frac{५६}{३३}$ यो०) प्रमाण जोड़ देनेपर द्वितीय वीथी स्थित दोनों चन्द्रोंका अन्तराल प्रमाण (९९६४० + ७२६ $\frac{५६}{३३}$ =) ९९७१२ $\frac{५५६}{६६}$ योजन प्राप्त होता है । अन्य वीथियोंका अन्तराल भी इसी प्रकार निकाला गया है ।

णवणउवि-सहस्साणि, सत्त-सया जोयणाणि पणसीदी ।

उणणउदी - दु - सय - कला, तविए विच्चं सिद्धं सुणं ॥१४७॥

९९७८५ । ३६६ ।

अर्थ—तृतीय पथमें चन्द्रोंका (पारस्परिक) अन्तराल नित्यानवे हजार सात सौ पचासी योजन और दो सौ बीस कला (९९७८५ $\frac{३६६}{६६}$ यो०) प्रमाण है ॥१४७॥

९९७१२ $\frac{५५६}{६६}$ + ७२६ $\frac{५६}{३३}$ = ९९७८५ $\frac{३६६}{६६}$ यो० ।

अवणउवि-सहस्साणि, अट्ठ-सया जोयणाणि अडवण्णा ।

वीसुत्तर-दु-सय-कला, ससीण - विच्चं तुरिम - मग्गे ॥१४८॥

९९८५८ । ३३७ ।

अर्थ—चतुर्थ मार्गमें चन्द्रोंका अन्तराल निम्नानवे हजार आठ सौ अट्ठावन योजन और दो सौ बीस कला (९९८५८३३३ यो०) प्रमाण है ॥१४८॥

$$९९८५८३३३ + ७२३३३ = ९९८५८३३३ यो० ।$$

णवणउच्चि-सहस्सा-णव-सयाणि इगितीस जोयणाणं पि ।

इगि-सव-इगि-वण्ण-कला, विच्चालं पंचम - पहम्मि ॥१४९॥

$$९९९३११३३३ ।$$

अर्थ—पाँचवें पथमें चन्द्रोंका अन्तराल निम्नानवे हजार नौ सौ इकतीस योजन और एक सौ इक्कावन कला (९९९३१३३३ यो०) प्रमाण है ॥१४९॥

$$९९८५८३३३३ + ७२३३३ = ९९९३१३३३ यो० ।$$

एकं जोयण-लखं, चउ-अब्भहिं हवेवि सविसेसं ।

वासीवि - कला - छट्ठे, पहम्मि चंदाण विच्चालं ॥१५०॥

$$१००००४४३३३ ।$$

अर्थ—छठे पथमें चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख चार योजन और बयासी कला (१००००४४३३३ यो०) प्रमाण है ॥१५०॥

$$९९९३१३३३३ + ७२३३३ = ९९९३१३३३३ यो० ।$$

सत्तत्तरि-संजुत्तं, जोयण - लखं च तेरस कलाओ ।

सत्तम - मग्गे दोण्हं, तुसारकिरणण विच्चालं ॥१५१॥

$$१०००७७४३३३ ।$$

अर्थ—सातवें मार्गमें दोनों चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख सत्तर योजन और तेरह कला (१०००७७४३३३ यो०) प्रमाण है ॥१५१॥

$$१००००४४३३३ + ७२३३३ = १०००७७४३३३ यो० ।$$

उणवण्ण-जुवेक्क-सयं, जोयण-लखं कलाओ तिण्णि-सया ।

एकत्तरी ससीणं, अट्ठम - मग्गम्मि विच्चालं ॥१५२॥

$$१००१४९३३३३ ।$$

अर्थ—आठवें मार्गमें चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख एक सौ उनन्दास योजन और तीन सौ इकहत्तर कला (१००१४९३३३३ यो०) प्रमाण है ॥१५२॥

$$१०००७७४३३३ + ७२३३३ = १००१४९३३३३ यो० ।$$

एकं जोयण-लखं, बावीस-जुदाणि दोण्णि य सयाणि ।

दो-उत्तर-ति-सय-कला, णवस - पहे ताण विच्चालं ॥१५३॥

१००२२२ । ३३३ ।

अर्थ—तीवें मार्गमें उन चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख दो सौ बाईस योजन और तीन सौ दो कला (१००२२२ $\frac{३३३}{१०००}$ यो०) प्रमाण है ॥१५३॥

$१००१४९\frac{३३३}{१०००} + ७२\frac{३३३}{१०००} = १००२२२\frac{३३३}{१०००}$ यो० ।

एकं जोयण-लखं, पणणउदि-जुदाणि दोण्णि य सयाणि ।

वे - सय - तेत्तीस - कला, विच्चं दसमम्मि इंदुरां ॥१५४॥

१००२६५ । ३३३ ।

अर्थ—दसवें पथमें चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख दो सौ पंचानवे योजन और दो सौ तैंतीस कला (१००२६५ $\frac{३३३}{१०००}$ यो०) प्रमाण है ॥१५४॥

$१००२२२\frac{३३३}{१०००} + ७२\frac{३३३}{१०००} = १००२६५\frac{३३३}{१०००}$ यो० है ।

एकं जोयण-लखं, अट्टा-सट्ठी-जुदा य तिण्णि सया ।

चउ-सट्ठि-सय-कलाओ, एक्करस-पहम्मि तं विच्चं ॥१५५॥

१०००३६८ । ३३३ ।

अर्थ—ग्यारहवें मार्गमें यह अन्तराल एक लाख तीन सौ अड़सठ योजन और एक सौ चौसठ कला—(१००३६८ $\frac{३३३}{१०००}$ यो०) प्रमाण है ॥

$१००२६५\frac{३३३}{१०००} + ७२\frac{३३३}{१०००} = १००३६८\frac{३३३}{१०००}$ यो० ।

एकं लखं चउ-सय, इगिदाला जोयणाणि अविरेगे ।

पणणउदि - कला मग्गे, बारसमे अंतरं ताणं ॥१५६॥

१००४४१ । ४२७ ।

अर्थ—बारहवें मार्गमें उन चन्द्रोंका अन्तर एक लाख चार सौ इकतालीस योजन पंचानवे कला (१००४४१ $\frac{४२७}{१०००}$ यो०) प्रमाण है ॥१५६॥

$१००३६८\frac{३३३}{१०००} + ७२\frac{३३३}{१०००} = १००४४१\frac{४२७}{१०००}$ यो० ।

चउवस-जुव-पंच-सया, जोयण-लखं कलाओ छब्धीसं ।

तेरस - पहम्मि दोण्हं, विच्चालं सिसिरकिरणाणं ॥१५७॥

१००५१४ । ४२७ ।

अर्थ—तेरहवें पथमें दोनों चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख पाँच सौ चौदह योजन और छब्बीस कला (१००५१४^{३६}/_{१००} यो०) प्रमाण है ॥१५७॥

$$१००४४१२^{३६}/_{१००} + ७२^{३६}/_{१००} = १००५१४^{३६}/_{१००} यो० ।$$

लवखं पंच-सयार्णि, 'छासीबी जोयणा कला ति-सया ।

चउसीबी चोदसमे, पहम्मि थिच्चं सिदकराणं^१ ॥१५८॥

$$१००५८६ । ३६५ ।$$

अर्थ—चौदहवें पथमें चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख पाँच सौ छ्वासी योजन और तीन सौ चीरासी कला (१००५८६^{३६}/_{१००} यो०) प्रमाण है ॥१५८॥

$$१००५१४^{३६}/_{१००} + ७२^{३६}/_{१००} = १००५८६^{३६}/_{१००} यो० ।$$

लवखं छव्व सयार्णि, उणसट्ठी जोयणा कला ति-सया ।

पण्णरस - जुदा मग्गे, पण्णरसं अंतरं ताणं ॥१५९॥

$$१००६५९ । ३६५ ।$$

अर्थ—पन्द्रहवें मार्गमें उनका अन्तर एक लाख छह सौ उनसठ योजन और तीन सौ पन्द्रह कला (१००६५९^{३६}/_{१००} यो०) प्रमाण है ॥१५९॥

$$१००५८६^{३६}/_{१००} + ७२^{३६}/_{१००} = १००६५९^{३६}/_{१००} यो० ।$$

बाहिर-पहादु-ससिणो, आदिम-मग्गम्मि आगमण-काले ।

पुव्वप-मेलिद-सेत्तं, सोहसु जा चोदसादि-पढम-पहं ॥१६०॥

अर्थ—चन्द्रके बाह्य पथसे प्रथम पथकी ओर आते समय पूर्वमें मिलाए हुए क्षेत्रको उत्तरोत्तर कम करने पर चौदहवें पथसे प्रथम पथ तक दोनों चन्द्रोंका अन्तराल प्रमाण होता है ॥१६०॥

चन्द्रपथकी अभ्यन्तर वीथीकी परिधिका प्रमाण—

तिय-जोयण-लवखार्णि, पण्णरस-सहस्रयार्णि उणणउबी ।

अब्भंतर - वीहीए, परिरय - रासिस्स परिसंखा ॥१६१॥

$$३१५०८९ ।$$

अर्थ—अभ्यन्तर वीथीके परिरय अर्थात् परिधिकी राशिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार नवासी (३१५०८९) योजन है ॥१६१॥

विशेषार्थ : - गाथा १२१ में मेरु पर्वतसे चन्द्रकी अभ्यन्तर बीधीका जो अन्तर प्रमाण ४४८२० योजन कहा गया है वह एक पार्श्वभागका है । दोनों पार्श्वभागोंका अन्तर अर्थात् चन्द्रकी अभ्यन्तर बीधीका व्यास और सुमेरुका मूल वितरण $[(४४८२० \times २) + १००००] = ९९६४०$ योजन है । इसकी परिधिका प्रमाण $\sqrt{९९६४०^2 \times १०} = ३१५०८६$ योजन प्राप्त हुआ । जो शेष बचे वे छोड़ दिये गये हैं ।

परिधिके प्रक्षेपका प्रमाण—

सेसाणं बीहीणं, परिही-परिमाण-जाणण-णिमित्तं^१ ।

परिहि^२ खेवं भणिमो, गुरुवदेसाणुसारेणं ॥१६२॥

अर्थ :—शेष बीधियोंके परिधि-प्रमाणको जाननेके लिए गुरुके उपदेशानुसार परिधिका प्रक्षेप कहते हैं ॥१६२॥

चंद - पह - सूइ-वड्ढी - दुगुणं कादूण वणिदूणं च ।

दस - गुणिदे अं मूलं, ^३परिहि खेवो स एणदव्वो ॥१६३॥

७२ । ३५६ ।

अर्थ—चन्द्रपथोंकी सूची-वृद्धिको दुगुना करके उसका वर्ग करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसे दससे गुणा करके वर्गमूल निकालनेपर प्राप्त राशिके प्रमाण परिधिप्रक्षेप जानना चाहिए ॥१६३॥

तीसुत्तर-वे-सय-जोयणाणि तेदाल - जुत्त - सयमंसा ।

हारो चचारि सया, सत्तावीसेहि अब्भहिया ॥१६४॥

२३० । ३४३ ।

अर्थ—प्रक्षेपकका प्रमाण दो सौ तीस योजन और एक योजनके चार सौ सत्ताईस भागोंमेंसे एक सौ तैंतालीस भाग अधिक (२३० $\frac{३४३}{१००}$ यो०) है ॥१६४॥

विशेषार्थ—चन्द्रपथ सूची-वृद्धिके प्रमाण का दूना $(३६३ $\frac{५६}{१००}$ $\times २$) = ७२६ $\frac{११२}{१००}$ यो० होता है, अतः $\sqrt{(७२६ $\frac{११२}{१००}$)^2 \times १०} = २३० $\frac{३४३}{१००}$ योजन प्राप्त हुए और ५२४३१ अवशेष बचे जो छोड़ दिए गये हैं । इसप्रकार २३० $\frac{३४३}{१००}$ योजन परिधि प्रक्षेप का प्रमाण प्राप्त हुआ ।$$

चन्द्रको द्वितीय आदि पथोंकी परिधियोंका प्रमाण—

तिथ-जोयण-लक्खणिं, पण्णरस-सहस्स-ति-सय-उणधीसा ।

तेदाल - जुव - सयंसा, विद्विय - पहे परिहि - परिमाणं ॥१६५॥

३१५३१९ । ३४३ ।

अर्थ—द्वितीय पथमें परिधि का प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार तीन सौ उन्नीस योजन और एक सौ तैंतालीस भाग (३१५३१९३३३ यो०) प्रमाण है ॥१६५॥

विशेषार्थ—गाथा १६१ में प्रथम पथ की परिधि का प्रमाण ३१५०८६ योजन कहा गया है । इसमें परिधि प्रक्षेप का प्रमाण मिला देने पर (३१५०८६ + २३०३६३) = ३१५३१९३३३ यो० द्वितीय पथ की परिधि का प्रमाण होता है । यही प्रक्रिया सर्वत्र जाननी चाहिए ।

उणवण्णा पंच-सया, पण्णरस-सहस्स जोयण-ति-लक्खा ।

छासोदी दु-सय-कला, सा परिही तविय - वीहीए ॥१६६॥

३१५५४९ । ३६३ ।

अर्थ—तृतीय वीथी की वह परिधि तीन लाख पन्द्रह हजार पाँच सौ उनचास योजन और दो सौ छ्यासी भाग-प्रमाण है ॥१६६॥

$३१५३१९३३३ + २३०३६३ = ३१५५४९३६३$ यो० है ।

सीदी सत्त-सयाणि, पण्णरस-सहस्स जोयण-ति-लक्खा ।

वोण्ह कलाओ परिही, चंदस्स चउत्थ - वीहीए ॥१६७॥

३१५७८० । ४३७ ।

अर्थ—चन्द्र की चतुर्थ वीथी की परिधि तीन लाख पन्द्रह हजार सात सौ अस्सी योजन और दो कला है ॥१६७॥

$३१५५४९३६३ + २३०३६३ = ३१५७८०४३७$ यो० ।

तिय-जोयण-लक्खाणि, वहुत्तरा सह य सोलस-सहस्सा ।

पण्णदास - जुव - सयंसा, सा परिही पंचम - पहम्मि ॥१६८॥

३१६०१० । ३६३ ।

अर्थ—पाँचवें पथमें वह परिधि तीन लाख सोलह हजार दस योजन और एक सौ पैंतालीस भाग है ॥१६८॥

$३१५७८०४३७ + २३०३६३ = ३१६०१०३६३$ यो० ।

चालीस दु-सय सोलस-सहस्स तिय-लक्ख जोयणा अंसा ।

अट्ठासीदी दु - सया, छट्ठ - पहे होदि सा परिही ॥१६९॥

३१६२४० । ३६३ ।

अर्थ—छठे पथमें वह परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ चालीस योजन और दो सौ अठासी भाग प्रमाण है ॥१६९॥

$$३१६०१०३\frac{१६}{१००} + २३०३\frac{३३}{१००} = ३१६२४०३\frac{४९}{१००} \text{ यो० ।}$$

सोलस-सहस्र चउ-सय, एकत्तरि-अहिय-जोयण ति-लक्खा ।

चत्तारि कला सप्तम - पहम्मि परिही मयंकस्स ॥१७०॥

$$३१६४७१ । ४३० ।$$

अर्थ—चन्द्रके सातवें पथमें वह परिधि तीन लाख सोलह हजार चार सौ इकहत्तर योजन और चार कला अधिक है ॥१७०॥

$$३१६२४०३\frac{४९}{१००} + २३०३\frac{३३}{१००} = ३१६४७१४\frac{८२}{१००} \text{ यो० ।}$$

सोलस-सहस्र सय-सय, एककम्भहिया य जोयण-ति-लक्खा ।

इससन्नं समसाला, भागा अट्ठम - पहे परिही ॥१७१॥

$$३१६७०१ । ३४७ ।$$

अर्थ—आठवें पथमें उस परिधिका प्रमाण तीन लाख सोलह हजार सात सौ एक योजन और एक सौ सैंतालीस भाग अधिक है ॥१७१॥

$$३१६४७१४\frac{८२}{१००} + २३०३\frac{३३}{१००} = ३१६७०१४\frac{११५}{१००} \text{ यो० ।}$$

सोलस-सहस्र-णव-सय-एकत्तीसादिरित्त-तिय-लक्खा ।

णउवी-जुव-दु-सय-कला, ससिस्स परिही णवम - मग्गे ॥१७२॥

$$३१६९३१ । ३६७ ।$$

अर्थ—चन्द्रके नौवें मार्गमें वह परिधि तीन लाख सोलह हजार नौ सौ इकतीस योजन और दो सौ नब्बे कला प्रमाण है ॥१७२॥

$$३१६७०१४\frac{११५}{१००} + २३०३\frac{३३}{१००} = ३१६९३१४\frac{१४८}{१००} \text{ यो० ।}$$

वासट्ठि-जुस-इगि-सय-सत्तरस-सहस्र जोयण ति-लक्खा ।

ए च्चिय कलाओ परिही, हिंसुणो वसम - वोहीए ॥१७३॥

$$३१७१६२ । ४३० ।$$

अर्थ—चन्द्रकी दसवीं वीथीकी परिधि तीन लाख सत्तरह हजार एक सौ बासठ योजन और छह कला प्रमाण है ॥१७३॥

$$३१६९३१३३३ + २३०३३३ = ३१७१६२४६० \text{ यो० ।}$$

तिय-जोयण-लवणाणि, सत्तरस^१-सहस्स-ति-सय-बाणउदो ।

उजवण - जुव - सबसा, परिही एक्कारस - पहम्मि ॥१७४॥

$$३१७३९२ । ३३३ ।$$

अर्थ—ग्यारहवें पथमें वह परिधि तीन लाख सत्तरह हजार तीन सौ बानबं योजन और एक सौ उनचास भाग प्रमाण है ॥१७४॥

$$३१७१६२४६३ + २३०३३३ = ३१७३९२३३३ \text{ यो० ।}$$

बावीसुत्तर-छस्सय, ^२सत्तरस-सहस्स-जोयण-ति-लवणा ।

अट्ठोणिय-ति-सय-कला बारसम - पहम्मि सा परिही ॥१७५॥

$$३१७६२२ । ३३३ ।$$

अर्थ—बारहवें पथमें वह परिधि तीन लाख सत्तरह हजार छह सौ बाईस योजन और आठ कम तीन सौ अर्थात् दो सौ बानबं कला प्रमाण है ॥१७५॥

$$३१७३९२३३३ + २३०३३३ = ३१७६२२३३३ \text{ यो० ।}$$

तेवणुत्तर-अट्ठ-सय-सत्तरस^३-सहस्स-जोयण-ति-लवणा ।

अट्ठ-कलाओ परिही, तेरसम - पहम्मि सिद - रुचिणो ॥१७६॥

$$३१७८५३ । ४३३ ।$$

अर्थ—चन्द्रके तेरहवें पथमें वह परिधि तीन लाख सत्तरह हजार आठ सौ तिरेपन योजन और आठ कला प्रमाण है ॥१७६॥

$$३१७६२२३३३ + २३०३३३ = ३१७८५३३३३ \text{ यो० ।}$$

तिय-जोयण-लवणाणि, अट्ठरस-सहस्सयाणि तेसीवी ।

इगिवण-जुद-सयंसा, चोदसम - पहे इमा परिही ॥१७७॥

$$३१८०८३ । ३३३ ।$$

अर्थ—चौदहवें पथमें वह परिधि तीन लाख अठारह हजार तेरासी योजन और एक सौ इक्यावन भाग प्रमाण है ॥१७७॥

$$३१७८५३४\frac{१}{४} + २३०४\frac{३}{४} = ३१८०८३४\frac{५}{४} \text{ यो० ।}$$

तिय-जोयण-लख्खणिं, अट्टरस-सहस्स-ति-सय-तेरसया ।

वे-सय-चउणउदि-कला, बाहिर - मग्गम्मि सा परिहो ॥१७८॥

$$३१८३१३ । ३६४ ।$$

अर्थ—बाह्य (पन्द्रहवें) मार्गमें वह परिधि तीन लाख अठारह हजार तीन सौ तेरह योजन और दो सौ चौरानवे कला प्रमाण है ॥१७८॥

$$३१८०८३४\frac{५}{४} + २३०४\frac{३}{४} = ३१८३१३६\frac{३}{४} \text{ यो० ।}$$

समानकालमें असमान परिधियोंके परिभ्रमण कर सकनेका कारण—

चंदपुरा सिग्घगदी, णिग्गच्छंता हवंति पविसंता ।

मंदगदी असभाणा, परिहोमी भमंति सरिस-कालेणं ॥१७९॥

अर्थ—चन्द्र विमान बाहर निकलते हुए (बाह्यमार्गोंकी ओर जाते समय) शीघ्र-गतिवाले और (अभ्यन्तर मार्गोंकी ओर) प्रवेश करते हुए मन्दगतिवाले होते हैं, इसलिए वे समान कालमें ही असमान परिधियोंका भ्रमण करते हैं ॥१७९॥

चन्द्रके गगनखण्ड एवं उनका अतिक्रमण-काल—

एकं चेव य लखं, णवय सहस्सणि अड-सयाणं पि ।

परिहोणं हिमंसुणो, ते कादब्बा गयणखंडा ॥१८०॥

$$। १०९८०० ।$$

अर्थ—उन परिधियोंमें दो चन्द्रोंके कुल गगनखण्ड एक लाख नौ हजार आठ सौ (१०९८००) प्रमाण है ॥१८०॥

चन्द्रके बीथी-परिभ्रमणका काल—

गच्छदि 'मुहुत्तमेक्के, अडसट्ठि-जुल-सत्तरस-सयाणि ।

णभ-खंडाणि ससिणो, तम्मि हिदे सव्व-गयण-खंडाणि ॥१८१॥

$$१७६८ ।$$

वासट्वि - मुहुत्तानि, भागा तेवीस तस्स हाराहं ।
इगिदीसाहिय विसदं, लद्धं तं गयण - खंडादो ॥१८२॥

६२ । २३१ ।^१

अर्थ—चन्द्र एक मुहूर्तमें एक हजार सात सौ अड़सठ गगनखण्डों पर जाता है । इसलिए इस राशिका समस्त गगनखण्डोंमें भाग देने पर उन गगनखण्डोंको पार करने का प्रमाण वासठ मुहूर्त और तेईस भाग प्राप्त होता है । इस तेईस अंशका भागहार दो सौ इक्कीस है ॥१८१-१८२॥

विशेषार्थ :- एक परिधि को दो चन्द्र पूरा करते हैं । दोनों चन्द्र सम्बन्धी सम्पूर्ण गगनखण्ड १०९८०० हैं । दोनों चन्द्र एक मुहूर्त में १७६८ गगनखण्डों पर भ्रमण करते हैं, अतः १०९८०० गगनखण्डोंका भ्रमणकाल प्राप्त करने हेतु सम्पूर्ण गगनखण्डोंमें १७६८ का भाग देनेपर (१०९८०० ÷ १७६८) = ६२ $\frac{३३}{३९}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं ।

चन्द्रके वीथी-परिभ्रमणका काल—

अबभंतर-वीहीदी, बाहिर-पेरंत दोष्णि ससि-विद्या ।
कमसो परिबभमंते, वासट्वि - मुहुत्तएहि अहिएहि ॥१८३॥

६२ ।

अदिरेयस्स पमाणं, अंसा तेवीसया मुहुत्तस्स ।
हारो दोष्णि सयाणि, जुत्ताणि एक्कवीसेणं ॥१८४॥

२३१ ।^२

अर्थ—दोनों चन्द्रबिम्ब क्रमशः अभ्यन्तर वीथीसे बाह्य-वीथी पर्यन्त वासठ मुहूर्तसे कुछ अधिक कालमें परिभ्रमण (पूरा) करते हैं । इस अधिकता का प्रमाण एक मुहूर्तके तेईस भाग और दो सौ इक्कीस हार रूप अर्थात् $\frac{३३}{३९}$ मुहूर्त हैं ॥१८३-१८४॥

प्रत्येक वीथीमें चन्द्रके एक मुहूर्त-परिमित गमनक्षेत्रका प्रमाण—

सम्मेलिय वासट्वि, इच्छिय - परिहोए भागसवहरिदं ।
तस्सि तस्सि ससिणो, एक्क - मुहुत्तस्मि गविमाणं ॥१८५॥

१३३५ । ३१५०८९ । १ ।

अर्थ—समच्छेदरूपसे वासठको मिलाकर उसका इच्छित परिधिमें भाग देनेपर उस-उस वीथीमें चन्द्रका एक मुहूर्तमें गमन प्रमाण आता है ॥१८५॥

विशेषार्थ—६२२ $\frac{३}{४}$ मुहूर्तों को समच्छेद विधानसे मिलाने पर अर्थात् भिन्न तोड़नेपर १३३ $\frac{३}{४}$ मुहूर्त होते हैं। इसका चन्द्रको प्रथम वीथीकी परिधिके प्रमाणमें भाग देनेपर—

($\frac{३११०८६}{४} \div १३३\frac{३}{४}$) = ५०७२ $\frac{१३७४४}{५}$ योजन अर्थात् २०२९४२५६४ $\frac{६}{५}$ मील प्राप्त होते हैं।

चन्द्रका यह गमन क्षेत्र एक मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट का है। इसी गमन क्षेत्र में ४८ का भाग देने से चन्द्र का एक मिनट का गमन क्षेत्र ($\frac{२०२९४२५६४\frac{६}{५}}{४८}$) = ४२२७९७ $\frac{३३३}{५}$ मील होता है। अर्थात् प्रथम मार्गमें स्थित चन्द्र एक मिनटमें ४२२७९७ $\frac{३३३}{५}$ मील गमन करता है।

पंच-सहस्सं अहिया, तेहत्तरि-जोयणाणि तिय-कोसा ।

लखं मुहुरा - गमणं, पढम - पहे सोदकिरणस्स ॥१८६॥

५०७३ । को ३ ।

अर्थ—प्रथम पथमें चन्द्रके एक मुहूर्त (४८ मिनट) के गमन क्षेत्रका प्रमाण पाँच हजार तिहत्तर योजन और तीन कोस प्राप्त होता है ॥१८६॥

विशेषार्थ—चन्द्रका प्रथम वीथीका गमनक्षेत्र गाथामें जो ५०७३ यो० और ३ कोस कहा गया है। वह स्थूलतासे कहा है। यथार्थ में इसका प्रमाण [$\frac{३११०८६}{४} \div १३३\frac{३}{४}$] ५०७३ योजन, २ कोस, ५१३ धनुष, ३ हाथ और कुछ अधिक ५ अंगुल है।

सत्तत्तरि सविसेसा, पंच-सहस्साणि जोयणा कोसा ।

लखं मुहुरा - गमणं, चंदस्स दुइज्ज - बीहीए ॥१८७॥

५०७७ । को १ ।

अर्थ—द्वितीय वीथीमें चन्द्रका मुहूर्तकाल-परिमित गमनक्षेत्र पाँच हजार सत्तर (५०७७) योजन और एक कोस प्राप्त होता है ॥१८७॥

विशेषार्थ—द्वितीय वीथीमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र [$\frac{३१५३१९३\frac{३}{४}}{४} \div १३३\frac{३}{४}$] ५०७७ योजन, १ कोस, १८४ धनुष, २ हाथ और कुछ कम १३ अंगुल प्रमाण है।

जोयण-पंच-सहस्सा, सोदी-जुत्ता य तिणिण कोसाणि ।

लखं मुहुरा - गमणं, चंदस्स तइज्ज - बीहीए ॥१८८॥

५०८० । को ३ ।

अर्थ—तृतीय वीथीमें चन्द्रका मुहूर्त-परिमित गमनक्षेत्र पाँच हजार अस्सी (५०८०) योजन और तीन कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१८८॥

विशेषार्थ—तृतीय पथमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र [$३१५५४९३६३ \div ३१३३५$]
 ५०८० योजन, ३ कोस, १८५४ धनुष, ३ हाथ और कुछ अधिक १० अंगुल प्रमाण है ॥

पंच-सहस्सा जोयण, चूलसीदी तह दुवेहिया-कोसा ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, पंचस्स चतुर्थ - मग्गस्मि ॥१८६॥

५०८४ । को २ ।

अर्थ—चतुर्थ मार्गमें चन्द्रका मुहूर्त-परिमित गमन पाँच हजार चौरासी (५०८४) योजन तथा दो कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१८९॥

विशेषार्थ—चतुर्थ पथमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र [$३१५७८०३३३ \div ३१३३५$]
 ५०८४ योजन, २ कोस, १५२६ धनुष, १ हाथ और कुछ अधिक ३ अंगुल है ।

अट्ठासीदी अहिया, पंच-सहस्सा य जोयणा कोसो ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, पंचम - मग्गे मियंकस्स ॥१९०॥

५०८८ । को १ ।

अर्थ—पाँचवें मार्गमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार अठासी (५०८८) योजन और एक कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९०॥

विशेषार्थ—पाँचवें मार्गमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र [$३१६०१०३३३ \div ३१३३५$]
 ५०८८ योजन, १ कोस, ११९७ धनुष, ० हाथ और कुछ अधिक १० अंगुल प्रमाण प्राप्त होता है ।

बाणउद्धि-उत्तराणि, पंच-सहस्साणि जोयणाणि च ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं हिंसुणो छट्ठ - मग्गस्मि ॥१९१॥

५०९२ ।

अर्थ—छठे मार्गमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार बानवें (५०९२) योजन प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९१॥

विशेषार्थ—छठे मार्गमें गमन क्षेत्रका प्रमाण [$३१६२४०३३३ \div ३१३३५$] ५०९२ योजन, ० कोस, ३ हाथ और कुछ अधिक १८ अंगुल है ।

पंचेव सहस्साहं, पणणउद्धी जोयणा ति-कोसा य ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, सोवंसुणो सप्तम - पहम्मि ॥१९२॥

५०९५ । को ३ ।

अर्थ—सातवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार पंचानवें योजन और तीन कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९२॥

विशेषार्थ—सातवें पथमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र [$३१६४७१४३३ \div ३१३३५$]
 ५०९५ योजन, ३ कोस, ५३८ धनुष, ३ हाथ और कुछ अधिक १ अंगुल है ॥

पण-संख-सहस्साणि, णवणउदी जोयणा बुवे कोसा ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, अट्ठम - मग्गे हिमरुचिस्स ॥१९३॥

५-१९ । को २ ।

अर्थ—आठवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त गमन पाँच हजार नित्यानवं योजन और दो कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९३॥

विशेषार्थ—आठवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्त में [$३१६७०१\frac{१}{२}\frac{३}{४} \div ३१६३\frac{१}{२}$] ५०६६ योजन, २ कोस, २०९ धनुष, २ हाथ और कुछ कम ९ अंगुल गमन करता है ।

पंचेव सहस्साणि, ति-उत्तरं जोयणाणि एक-सयं ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, णवम - पहे तुहिणरासिस्स ॥१९४॥

। ५१०३ ।

अर्थ—नौवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ तीन योजन प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९४॥

विशेषार्थ—नौवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्त (४८ मिनट) में [$३१६९३१\frac{३}{४}\frac{३}{४} \div ३१६३\frac{१}{२}$] ५१०३ योजन, ० कोस, १८८० धनुष, १ हाथ और कुछ अधिक १६ अंगुल गमन करता है ।

पंच-सहस्सा छाहियमेक्क-सयं जोयणा ति-कोसा य ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, दसम - पहे हिममयूखाणं ॥१९५॥

५१०६ । को ३ ।

अर्थ—दसवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ छह योजन और तीन कोस प्रमाण पाया जाता है ॥१९५॥

विशेषार्थ—दसवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [$३१७१६२४\frac{३}{४} \div ३१६३\frac{१}{२}$] ५१०६ योजन, ३ कोस, १५५१ धनुष और कुछ कम १ हाथ गमन करता है ।

पंच-सहस्सा दस-जुव-एक्क-सया जोयणा बुवे कोसा ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, एक्करस - पहे ससंकस्स ॥१९६॥

५११० । को २ ।

अर्थ—ग्यारहवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ दस योजन और दो कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९६॥

विशेषार्थ—बारहवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१७३९२३३३३ ÷ ३३३३३] ५११० योजन, २ कोस, १२२२ धनुष, ० हाथ और कुछ कम ७ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।

जोयण-पंच-सहस्सा, एक्क-सयं चोदसुत्तरं कोसो ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, बारसम - पहे सिदंसुस्स ॥१९७॥

५११४ । को १ ।

अर्थ—बारहवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ चौदह योजन और एक कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९७॥

विशेषार्थ—बारहवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१७६२२३३३ ÷ ३३३३३] ५११४ योजन, १ कोस, ८९२ धनुष, ३ हाथ और कुछ अधिक १४ अंगुल प्रमाण गमन करता है ॥

अठ्ठारसुत्तर - सयं, पंच - सहस्साणि जोयणाणि च ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, तेरस - मग्गे हिमंसुस्स ॥१९८॥

५११८ ।

अर्थ—तेरहवें मार्गमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ अठ्ठारह योजन प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९८॥

विशेषार्थ—तेरहवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१७८५३३३३ ÷ ३३३३३] ५११८ योजन, ० कोस, ५६३ धनुष, २ हाथ और कुछ अधिक २१ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।

पंच-सहस्सा इगिसयमिगिवीस-जुदं च जोयण ति-कोसा ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, चोदसम - पहम्मि चंदस्स ॥१९९॥

५१२१ । को ३ ।

अर्थ—चौदहवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन क्षेत्र पाँच हजार एक सौ इक्कीस योजन और तीन कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९९॥

विशेषार्थ—चौदहवें मार्ग में चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१८०८३३३३ ÷ ३३३३३] ५१२१ योजन, ३ कोस, २३४ धनुष, २ हाथ और कुछ अधिक ४ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।

पंच-सहस्सेक्क-सया, पणुवीसं जोयणा दुवे कोसा ।

लद्धं मुहुत्त - गमणं, सीदंसुणो बाहिर - पहम्मि ॥२००॥

५१२५ । को २ ।

अर्थ—बाह्य पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ पच्चीस योजन और दो कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥२००॥

विशेषार्थ—बाह्य (पन्द्रहवें) मार्गमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१८३१३३३३ ÷ ३३३३३] ५१२५ योजन, १ कोस, १८९१ धनुष, २ हाथ और कुछ कम २२ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।

चन्द्रके अन्तर-प्रमाण आदिका विवरण—

वीथी संख्या	प्रत्येक वीथीमें		चन्द्रकी प्रत्येक वीथीकी परिधि का प्रमाण (योजनोंमें)	प्रत्येक वीथीमें चन्द्रका एक मूर्त (४८ मिनिट) का गमन-क्षेत्र				
	मेहसे चन्द्रका अन्तर (योजनोंमें)	चन्द्रका चन्द्रसे अन्तर (योजनोंमें)		फुट	मी.	चु. मि.	हाथ	अंगुल
१.	४४८२० यो०	९९६४० यो०	३१५०८९ यो०	५०७३	२	५१३	३	कुछ अ० ५
२.	४४८५६३ ^७ / _८ "	९९७१२३ ^७ / _८ "	३१५३१९३ ^७ / _८ "	५०७७	१	१८४	२	कुछ कम १२
३.	४४८९२३ ^५ / _८ "	९९७८५३ ^५ / _८ "	३१५५४९३ ^५ / _८ "	५०८०	३	१८५४	३	कुछ अ. १०
४.	४४९२९३ ^३ / _८ "	९९८५८३ ^३ / _८ "	३१५७८०३ ^३ / _८ "	५०८४	२	१५२६	१	कु० अ० ३
५.	४४९६५३ ^१ / _८ "	९९९३१३ ^१ / _८ "	३१६०१०३ ^१ / _८ "	५०८८	१	११६७	०	कु० अ० १०
६.	४५००२४ ^१ / _८ "	१००००४८ ^१ / _८ "	३१६२४०३ ^१ / _८ "	५०९२	०	०	३	कु० अ० १८
७.	४५०३८४ ^१ / _८ "	१०००७७४ ^१ / _८ "	३१६४७१४ ^१ / _८ "	५०९५	३	५३८	३	कु० अ० १
८.	४५०७४४ ^१ / _८ "	१००१४९३ ^१ / _८ "	३१६७०१३ ^१ / _८ "	५०९९	२	२०९	२	कुछ कम ९
९.	४५१११३ ^५ / _८ "	१००२२२३ ^५ / _८ "	३१६९३१३ ^५ / _८ "	५१०३	०	१८८०	१	कु० अ० १६
१०.	४५१४७३ ^३ / _८ "	१००२९५३ ^३ / _८ "	३१७१६२४ ^३ / _८ "	५१०६	३	१५५१	१	कु० कम ०
११.	४५१८४४ ^१ / _८ "	१००३६८३ ^१ / _८ "	३१७३९२३ ^१ / _८ "	५११०	२	१२२२	०	कु० कम ७
१२.	४५२२०३ ^५ / _८ "	१००४४१४ ^५ / _८ "	३१७६२२३ ^५ / _८ "	५११४	१	८९२	३	कु. अ. १४
१३.	४५२५७४ ^१ / _८ "	१००५१४४ ^१ / _८ "	३१७८५२४ ^१ / _८ "	५११८	०	५६३	२	कु. अ. २१
१४.	४५२९३३ ^१ / _८ "	१००५८६३ ^१ / _८ "	३१८०८३३ ^१ / _८ "	५१२१	३	२३४	२	कु. अ. ४
१५.	४५३२९३ ^१ / _८ "	१००६५९३ ^१ / _८ "	३१८३१३३ ^१ / _८ "	५१२५	१	१८९१	२	कु० कम २२

राहु विमानका वर्णन —

ससहर-णयर-तलावो, चत्तारि पमाण-अंगुलाणं पि ।

हेट्ठा गच्छिय होंति ह्नु, राहु विमाणस्स धवदंडा ॥२०१॥

अर्थ—चन्द्रके नगरतलसे चार प्रमाणांगुल नीचे जाकर राहु-विमानके ध्वज-दण्ड होते हैं ॥२०१॥

विशेषार्थ—एक प्रमाणांगुल ५०० उत्सेधांगुलों के बराबर होता है । (ति० प० प्रथम अ० गाथा १०७-१०८ के) इस नियमके अनुसार ४ प्रमाणांगुलोंके धनुष आदि बनाने पर (४×५००) = २० धनुष, ३ हाथ और ८ अंगुल प्राप्त होते हैं । चन्द्र-विमान तलसे राहु विमान का ध्वज दण्ड २० धनुष, ३ हाथ और ८ अंगुल नीचे है ।

ते राहुस्स विमाणा, अंजनवण्णा अरिद्ध-रयणमया ।

किच्चूणं जोयणयं, विक्खंभ - जुदा तदम्ब - वहलत्तं ॥२०२॥

अर्थ—अरिष्ट रत्नोंसे भिन्न अंजनवर्णवाले राहुके वे विमान कुछ कम एक योजन प्रमाण विस्तारसे संयुक्त और विस्तारसे अर्ध बाहुल्यवाले हैं ॥२०२॥

पण्णासाहिय-दु-सया, कोदंडा राहु-णयर-वहलत्तं ।

एवं सोय - विणिच्छय - कत्तायरिओ परुवेंति ॥२०३॥

पाठास्तरं ।

अर्थ—राहु-नगरका बाहुल्य दो सौ पचास धनुष-प्रमाण है; ऐसा लोकविनिश्चय-कर्ता आचार्य प्ररूपण करते हैं ॥२०३॥

पाठान्तर ।

चउ-गोउर-जुत्तेसु य, जिणमंदिर-मंडिदेसु णयरेसु ।

तेसुं बहु - परिवारा, राहु णामेण होंति सुरा ॥२०४॥

अर्थ—चार गोपुरोंसे संयुक्त और जिनमन्दिरोंसे सुशोभित उन नगरोंमें बहुत परिवार सहित राहु नामक देव होते हैं ॥२०४॥

राहुओंके भेद—

राहूण पुर-तलाणं, दु-विद्यप्पाणि हवन्ति गमणाणि ।

दिण-पव्व-विद्यप्पेहि, दिणराहु ससि-सरिच्छ-गई ॥२०५॥

अर्थ—दिन और पर्वके भेदसे राहुओंके पुरतलोंके गमन दो प्रकार होते हैं । इनमेंसे दिन-राहुकी गति चन्द्रके सदृश होती है ॥२०५॥

पूणिमाकी पहिचान—

जस्सि मग्ने ससहर-बिबं दिसेदि य तेसु परिपुणं ।

सो होदि पुणिमवखो, दिवसो इह माणुसे लोए ॥२०६॥

अर्थ—उत्तमेंसे जिस मार्गमें चन्द्र-बिम्ब परिपूर्ण दिखता है, वही मनुष्य लोकमें वह पूणिमा नामक दिवस होता है ॥२०६॥

कृष्ण-पक्ष होनेका कारण—

तव्वीहीदो लंघिय, वीवस्त मारुद-हुवास-दिसादो ।

तवणंतर - वीहीए, एंति हु विणराहु-ससि-बिबां ॥२०७॥

अर्थ—उस (अभ्यन्तर) वीथीको लांघकर दितराहु और चन्द्र-बिम्ब जम्बूद्वीपकी वायव्य और आग्नेय दिशासे तदनन्तर (द्वितीय) वीथीमें आते हैं ॥२०७॥

ताथे ससहर-मंडल-सोलस-भागसु एक - भागंसो ।

आवरमाणो दीसदि, राहु - लंघण - विसेसेणं ॥२०८॥

अर्थ—द्वितीय वीथीको प्राप्त होनेपर राहुके समान विशेषसे चन्द्रमण्डलके सोलह भागोंमेंसे एक भाग आच्छादित दिखता है ॥२०८॥

अणल-विसाए लंघिय, ससिबिबं एवि वीहि-अद्धंसो ।

सेसद्धं खु ण गच्छवि, अवर-ससि-भमिद-हेवूवो ॥२०९॥

अर्थ—पश्चात् चन्द्रबिम्ब आग्नेय दिशासे लांघकर वीथीके अर्ध भागमें जाता है, द्वितीय चन्द्रसे भ्रमित होनेके कारण शेष अर्ध-भागमें नहीं जाता है (क्योंकि दो चन्द्र मिलकर एक परिधि को पूरा करते हैं) ॥२०९॥

तवणंतर-मगाइं, रिचचं लंघंति राहु-ससि-बिबा ।

पवणगि - विसाहितो, एवं सेसासु वीहीसु ॥२१०॥

अर्थ—इसीप्रकार शेष वीथियोंमें भी राहु और चन्द्रबिम्ब वायव्य एवं आग्नेय दिशासे नित्य तदनन्तर मार्गोंको लांघते हैं ॥२१०॥

ससि-बिबस्स दिणं पडि, एक्केक्क-पहम्मि भागमेक्केक्कं ।

पच्छादेदि हु राहु, पणारस - कलाउ परियंतं ॥२११॥

अर्थ—राहु प्रतिदिन एक-एक पथमें पन्द्रह कला पर्यन्त चन्द्र-बिम्बके एक-एक भागको आच्छादित करता है ॥२११॥

अमावस्याकी पहिचान—

इध एक्केक्क-कलाए, आवरिबाए खु राहु - बिबेणं ।

चंदेक्क-कला भग्गे, जत्तिस्सि दिस्सेवि सो य अमवस्सा ॥२१२॥

अर्थ—इसप्रकार राहु-बिम्बके द्वारा एक-एक करके कलाओंके आच्छादित हो जानेपर जिस मार्गमें चन्द्रकी एक ही कला दिखती है वह अमावस्या दिवस होता है ॥२१२॥

चान्द्र-दिवसका प्रमाण—

एक्कत्तीस - मुहुत्ता, अदिरेगो चंद-वासर-पमाणं ।

सेवीसंसा हारो, चउ - सय - बादाल - मेत्ता य ॥२१३॥

३१ । ४३३ ।

अर्थ—चान्द्र दिवसका प्रमाण इकतीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के चार सौ बयालीस भागोंमेंसे तेईस भाग अधिक है ॥२१३॥

विशेषार्थ—चन्द्रकी अभ्यन्तर बीधीकी परिधि ३१५० = ६ योजन है, जिसे दो चन्द्र ६२३३ $\frac{१}{२}$ मुहूर्तमें पूर्ण करते हैं अतः एक चन्द्रका दिवस प्रमाण (६२३३ $\frac{१}{२}$ ÷ २ =) ३११६ $\frac{१}{२}$ मुहूर्त होता है ।

अथवा

एक चन्द्रके कुल गगनखण्ड ५४९०० हैं और चन्द्र एक मुहूर्तमें १७६८ गगनखण्डोंपर भ्रमण करता है अतः सम्पूर्ण गगनखण्डोंपर भ्रमण करनेमें उसे (५४९०० ÷ १७६८ =) ३११६ $\frac{१}{२}$ मुहूर्त लगेंगे । यही उसका दिवस प्रमाण है ।

१५ दिन पर्यन्त चन्द्र कलाकी प्रतिदिनकी हानिका प्रमाण—

पडिवाए वासरादो, धीहि पडि ससहरस्स सो राहु ।

एक्केक्क - कलं मुंचवि, पुण्णिमयं जाव लंघणदो ॥२१४॥

अर्थ—वह राहु प्रतिपद् दिनसे एक-एक बीधीमें गमन विशेष द्वारा पूर्णिमा पर्यन्त चन्द्रकी एक-एक कला को छोड़ता है ॥२१४॥

विशेषार्थ—चन्द्र विमानका विस्तार ३३ योजन है और उसके भाग १६ हैं, अतः जब १६ भागोंका विस्तार ३३ यो० है तब एक भागका विस्तार (३३ ÷ १६ =) २० $\frac{१}{२}$ योजन होता है अर्थात् राहु प्रतिदिन प्रत्येक परिधिमें २० $\frac{१}{२}$ यो० (२२९३ $\frac{१}{२}$ मील) व्यास वाली एक-एक कला को छोड़ता है ।

मतान्तरसे कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष होनेके कारण—

अहवा ससहर-बिम्बं, पण्णरस-विणाइ तस्सहावेणं ।
कसणाभं सुकलाभं, तेत्तियमेत्ताणि परिणमदि ॥२१५॥

अर्थ—अथवा, चन्द्र-बिम्ब अपने स्वभावसे ही पन्द्रह दिनोंतक कृष्ण कान्ति स्वरूप और इतने ही दिनों तक शुक्ल कान्ति स्वरूप परिणमता है ॥२१५॥

चन्द्र ग्रहणका कारण एवं काल—

पुह पुह ससि-बिम्बाणि, छम्मासेसु च पुण्णिमंतम्मि ।
छादंति पव्व - राहु, णियमेणं गदि - विसेसेहि ॥२१६॥

अर्थ—पर्व-राहु नियमसे गति-विशेषके कारण छह मासोंमें पूर्णिमाके अन्तमें पृथक्-पृथक् चन्द्र-बिम्बोंको आच्छादित करते हैं ॥२१६॥

विशेषार्थ—कुछ कम एक योजन विस्तारवाले राहु विमान चन्द्र विमानसे चार प्रमाणांगुल (२० धनुष, ३ हाथ और ८ अंगुल) नीचे हैं । इनमेंसे पर्वराहु अपनी गति विशेषके कारण पूर्णिमाके अन्तमें जो चन्द्र विमानोंको आच्छादित करते हैं तब चन्द्र ग्रहण होता है ।

सूर्यकी संचार भूमि का प्रमाण एवं अवस्थान—

जंबूद्वीपम्मि दुवे, विवायरा ताण एक्क - चारमही ।
रविबिबाहिय-पण-सय-वहुत्तरा जोयणाणि तव्वासो ॥२१७॥

५१० । ३६ ।

अर्थ—जम्बूद्वीपमें दो सूर्य हैं । उनकी चार-पृथिवी एक ही है । इस चार-पृथिवीका विस्तार सूर्य बिम्बके विस्तार (३६ यो०) से अधिक पाँच सौ दस (५१०३६) योजन प्रमाण है ॥२१७॥

सीदी - जुदमेषक - सयं, जंबूदीये चरंति मत्तंडा ।
तीसुत्तर-ति-सयाणि, विणयर-बिबाहियाणि लवणम्मि ॥२१८॥

१८० । ३३० । ३६ ।

अर्थ—सूर्य एक सौ अस्सी (१८०) योजन जम्बूद्वीपमें और दिनकर बिम्ब (के विस्तार ३६ यो०) से अधिक तीन सौ तीस (३३०) योजन लवणसमुद्रमें गमन करते हैं ॥२१८॥

सूर्य-वीथियोंका प्रमाण, विस्तार आदि और अन्तरालका वर्णन—

चउसीदी-अहिय-सयं, विणयर-भग्गाओ^१ होंति एवाणं ।

बिब - समाणा वासा, एक्केवकाणं तद्वद्ध - बहलत्तां ॥२१६॥

१८४ । ३६ । ३६ ।

अर्थ—सूर्यकी गलियाँ एक सौ चौरासी (१८४) हैं । इनमेंसे प्रत्येक गलीका विस्तार बिम्ब-विस्तार सदृश ३६ योजन और बाह्य इन्से आधा (३६ योजन) है ॥२१६॥

तेसीदी-अहिय-सयं, दिणस-वीहीण होदि विचचालं ।

एक्क-पहम्म चरंते, दोण्णि पि य भाणु-बिवाणि ॥२२०॥

अर्थ—सूर्यकी (१८४) गलियोंमें एक सौ तेरासी (१८३) अन्तराल होते हैं । दोनों ही सूर्य-बिम्ब एक पथमें गमन करते हैं ॥२२०॥

सूर्यकी प्रथम वीथीका और मेरुके बीच अन्तर-प्रमाण—

सट्ठि-जुदं ति-सय्याणि, मंदर-रुदं च जंबुदीवस्स ।

वासे सोहिय दलिदे, सूरविम-पह-सुरदि-विचचालं ॥२२१॥

३६० । ४४८२० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे तीन सौ साठ (३६०) योजन और मेरुके विस्तारको घटाकर शेषको आधा करनेपर सूर्यके प्रथम पथ एवं मेरुके मध्यका अन्तरालप्रमाण प्राप्त होता है ॥२२१॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका वि० १००००० यो० — (१८० × २) = ६६६४० यो० ।
६६६४० — १००००० मेरु वि० = ८९६४०; ८९६४० ÷ २ = ४४८२० यो० प्रथम पथ और मेरुके बीचका अन्तराल । विशेषके लिए इसी अ० की गाथा १२१ का विशेषार्थ द्रष्टव्य है ।

सूर्यकी ध्रुव राशिका प्रमाण—

एक्कत्तीस-सहस्सा, एक्क-सयं जोयणाणि अडवणा ।

इगिसट्ठीए भजिदे, ध्रुव - रासी होदि दुमणोणं ॥२२२॥

३११५६ ।

अर्थ—इकतीस हजार एक सौ अट्ठावन योजनोंमें एकसठका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना (३११५६ या ५१०६६ यो०) सूर्यकी ध्रुवराशिका प्रमाण होता है ॥२२२॥

सूर्य-पथोंके बीच अन्तरका प्रमाण—

त्रिषसथर - विब - रुवं, चत्तसीतीसमहिथ - सएणं ।

धुवरासिस्स य मज्झे, सोहेज्जसु तत्थ अवसेसं ॥२२३॥

तेसीवि-जुद-सदेणं, भजिदब्बं तम्मि होवि जं लद्धं ।

वीहि पडि णादब्बं, तरणीणं लंघण - पमाणं ॥२२४॥

२ ।

अर्थ—ध्रुवराशिमेंसे एक सौ चौरासी (१८४) से गुणित सूर्य-बिम्बका विस्तार घटा देनेपर जो शेष रहे उसमें एक सौ तेरासीका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो, उतना सूर्योका प्रत्येक वीथीके प्रति लंघनका प्रमाण अर्थात् एक वीथीसे दूसरी वीथीके बीचका अन्तराल जानना चाहिए ॥२२३-२२४॥

विशेषार्थ—ध्रुवराशिका प्रमाण $33\frac{1}{3}$ (५१०६६) योजन, सूर्य-बिम्बका विस्तार $\frac{1}{2}$ योजन, सूर्यकी वीथियाँ १८४ और वीथियोंके अन्तराल १८३ हैं । सूर्यकी एक वीथीका विस्तार $\frac{1}{2}$ यो० है तब १८४ वीथियोंका विस्तार कितना होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{1}{2} \times 33\frac{1}{3} = 16\frac{2}{3}$ योजन प्राप्त हुए । इसे ध्रुवराशि (चारक्षेत्र) के प्रमाणमेंसे घटा देनेपर $(33\frac{1}{3} - 16\frac{2}{3}) = 16\frac{2}{3}$ योजन १८४ गलियोंका अन्तराल प्राप्त होता है । १८४ गलियोंके अन्तराल १८३ ही होते हैं अतः सम्पूर्ण गलियोंके अन्तर-प्रमाणमें १८३ का भाग देनेपर एक गलीसे दूसरी गलीके बीचका अन्तर $(16\frac{2}{3} \div 183) = 2$ योजन प्राप्त होता है ।

सूर्यके प्रतिदिन गमनक्षेत्रका प्रमाण—

सम्मत्तां प्ह-विच्चं, तं माणं दोणिण जोयणा होंति ।

तस्सि रवि - विब - जुदे, प्ह - सूचीओ विणिबस्स ॥२२५॥

१७९ ।

अर्थ—प्रत्येक वीथीके उतने अन्तरालका प्रमाण दो योजन है । जिसमें सूर्यबिम्बका विस्तार ($\frac{1}{2}$ यो०) मिला देनेपर सूर्यके पथ-सूचीका प्रमाण २६६ योजन अथवा $17\frac{1}{2}$ योजन होता है अर्थात् सूर्यको प्रतिदिन एक गली पार कर दूसरी गलीमें प्रवेश करने तक २६६ योजन प्रमाण गमन करना पड़ता है ॥२२५॥

मेरुसे बीधियोंका अन्तर प्राप्त करनेका विधान—

पठम-पहादो रविणो, बाहिर-मग्गम्मि गमण-कालम्मि ।

पडि - मग्ग - मेत्तियं खिच - विच्चालं मंदरवकाणं ॥२२६॥

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथसे (द्वितीयादि) बाह्य बीधियोंकी ओर जाते समय प्रत्येक मार्ग (की परिधि के प्रमाण) में इतना ($1\frac{3}{4}^{\circ}$ यो०) मिलाते जाने पर मेरु और सूर्यके बीचका अन्तर प्राप्त होता है ॥२२६॥

अहवा—

रुऊणं इट्ठ - पहं, पह-सूचि-चएण गुणिय मेलज्जं ।

तवणादिम-पह-मंदर-विच्चाले होदि इट्ठ - विच्चालं ॥२२७॥

अथवा, एक कम इष्ट पथको पथसूची चयसे गुणा करके प्राप्त प्रमाणको सूर्यके आदि (प्रथम) पथ और मेरुके बीच जो अन्तराल है उसमें मिला देनेपर इष्ट अन्तरालका प्रमाण होता है ॥२२७॥

विशेषार्थ—यथा—मेरुसे पाँचवें पथका अन्तराल प्राप्त करनेके लिए—

इष्ट पथ ५ — $1 = 4$; (पथसूचीचय $1\frac{3}{4}^{\circ}$) $\times 4 = \frac{15}{4}^{\circ} = 1\frac{1}{4}^{\circ}$; $44520 + 1\frac{1}{4}^{\circ} = 44521\frac{1}{4}$ योजन अन्तर मेरुसे पाँचवीं बीधीका है ।

प्रथमादि पथोंमें मेरुसे सूर्यका अन्तर—

चउवाल-सहस्साणि, अट्ठ-सया जोयणाणि बीसं पि ।

एवं पठम-पह-ट्ठि-विणयर - कणयट्ठि - विच्चालं ॥२२८॥

४४८२० ।

अर्थ—प्रथम पथमें सूर्य और मेरुके बीच चवालीस हजार आठ सौ बीस (४४८२०) योजन प्रमाण अन्तराल है ॥२२८॥

चउवाल-सहस्सा अट्ठ-सयाणि बावीस भाणुबिब-जुवा ।

जोयणया विविय-पहे, तिच्चंसु सुमेरु - विच्चालं ॥२२९॥

४४८२२ । $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ—द्वितीय पथमें सूर्य और मेरुके बीच सूर्यबिम्ब सहित चवालीस हजार आठ सौ बाईस (४४८२२ $\frac{1}{2}$) योजन-प्रमाण अन्तराल है ॥२२९॥

चउदाल-सहस्सा अड-सयाणि पणुवीस जोयणाणि कला ।

पणुतीस तइज्ज - पहे, पतंग - हेमदि - विचचालं ॥२३०॥

४४८२५ । ३५ ।

एवमादि-मज्झिम-पह-परियंतं णेदब्बं ।

अर्थ—तृतीय पथमें सूर्य और सुवर्ण पर्वतके बीच चवालीस हजार आठ सौ पच्चीस योजन और पैंतीस कला (४४८२५.३५ यो०) प्रमाण अन्तराल है ॥२३०॥

इसप्रकार आदि (प्रथम पथ) से लेकर मध्यम (१६३) मार्ग पर्यन्त जानना चाहिए ।

मध्यम पथमें सूर्य और मेरुका अन्तर—

पंचचाल-सहस्सा, पणहत्तरि जोयणाणि अदिरेका ।

मज्झिम-पह-ठिद-दिक्खणि-चामीयर-सेल-विचचालं ॥२३१॥

४५०७५ ।

एवं दुच्चरिम-मगंतं णेदब्बं ।

अर्थ—मध्यम पथमें स्थित सूर्य और सुवर्णशैलके बीचका अन्तराल कुछ अधिक पैंतालीस हजार पचहत्तर योजन है ॥२३१॥

इसप्रकार द्विचरम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—मध्यम बीथीमें स्थित सूर्यका मेरु पर्वतसे अन्तर-प्रमाण $४४८२० + (१६३ \times ३६३) = ४५०७५$ योजन है ।

गाथामें अदिरेका पद क्यों दिया गया है, यह समझमें नहीं आया ।

बाह्य पथ स्थित सूर्यका मेरुसे अन्तर—

पणदाल-सहस्साणि, तिण्णि-सया तीस-जोयणायरिया ।

बाहिर-पह-ठिद-वासरकर - कंखण - सेल - विचचालं ॥२३२॥

४५३३० ।

अर्थ—बाह्य पथमें स्थित सूर्य और सुवर्णशैलके बीच पैंतालीस हजार तीन सौ तीस (४५३३०) योजन प्रमाण अन्तराल कहा गया है ॥२३२॥

यथा— $४४८२० + (१६३ \times १८३) = ४५३३०$ योजन ।

बाहिर-पहाडु आदिम-मग्गे तवणस्स आगमण-काले ।

पुब्बं खेवं सोहसु, दुच्चरिम-पह-पहुवि जाव पढम-पहं ॥२३३॥

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गसे प्रथम मार्गकी ओर आते समय पूर्व वृद्धिको कम करनेपर द्विचरम पथसे लेकर प्रथम पथ पर्यन्तका अन्तराल प्रमाण जानना चाहिए ॥२३३॥

दोनों सूर्योंका पारस्परिक अन्तर—

सट्ठि-जुदा ति-सयारिण, सोहज्जसु जंभुवीव-खं वम्मि ।

जं सेसं पढम - पहे, दोण्हं दुमणीण विच्चालं ॥२३४॥

अर्थ—जम्बूद्वीपके विस्तारसे तीनती सठ योजन कम करने पर जो शेष रहे उतना प्रथम पथ (स्थित) दोनों सूर्योंके बीच अन्तराल रहता है ॥२३४॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका विस्तार १००००० यो० — (१८० × २) = ९९६४० यो० अन्तराल ।

णवणउदि-सहस्सा छस्सयाणि चउदाल-जोयणाणि पि ।

तवणाणि आब्राहा, अब्भंतर - मंडल - ठिवाणं ॥२३५॥

९९६४० ।

अर्थ—अभ्यन्तर मण्डलमें स्थित दोनों सूर्योंका अन्तराल निम्नान्वं हजार छह सौ चालीस (९९६४०) योजन प्रमाण है ॥२३५॥

सूर्योंकी अन्तराल वृद्धिका प्रमाण—

विणवइ-पह-सूचि-चए, दोसुं गुणिवे हवेदि भाणूरं ।

आब्राहाए वड्ढी, जोयणया पंच पंचतीस - कला ॥२३६॥

५ । ३५ ।

अर्थ—सूर्यकी पथ-सूची-वृद्धिको दो से गुणित करने पर सूर्योंकी अन्तराल-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है जो पाँच योजन और पैंतीस कला अधिक है ॥२३६॥

विशेषार्थ—सूर्य-पथ-सूची $३\frac{१९}{८०} \times २ = ३\frac{४९}{४०}$ या $५\frac{३५}{४०}$ योजन अन्तराल वृद्धिका प्रमाण है ।

सूर्योंका अभीष्ट अन्तराल प्राप्त करनेका विधान—

रुयोणं इट्ठ - पहं, गुणिवूणं मग्ग - सूइ - वड्ढीए ।

पढमाब्राहामिलिबं, वासरणाहाण इट्ठ - विच्चालं ॥२३७॥

अर्थ—एक कम दृष्ट-पथको द्विगुणित मार्ग-सूची-वृद्धिसे गुणा करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसे प्रथम अन्तरालमें मिला देनेसे सूर्योका अभीष्ट अन्तराल प्रमाण प्राप्त होता है ॥२३७॥

द्वितीयादि पथोंमें सूर्योका पारस्परिक अन्तर प्रमाण—

णवणउदि-सहस्सः छस्सयाणि पणदाल जोयणाणि कला ।

पणतीस दुइज्ज - पहे, दोण्हं भाणूण विच्चालं ॥२३८॥

९९६४५ । ३९ ।

एवं सज्जिभम-मगगतं णेवठ्ठं ।

अर्थ—द्वितीय पथमें दोनों सूर्योका अन्तराल निम्नानुबं हजार छह सौ पैंतालीस योजन और पैंतीस भाग (९९६४५ $\frac{३९}{१०}$ यो०) प्रमाण है ॥२३८॥

इसप्रकार मध्यम मार्ग तक लेजाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ दृष्ट पथ २रा है । गा० २३७ के नियमानुसार २ — १ = १ ।
[(१ × ५ $\frac{३९}{१०}$) + ९९६४०] = ९९६४५ $\frac{३९}{१०}$ यो० अन्तराल है ।

एकं लवळं पणवभहिय-सयं जोयणाणि अदिरेगो ।

सज्जिभम-पहम्मि दोण्हं, सहस्स-किरणाण-विच्चालं ॥२३९॥

१००१५० ।

एवं दुच्चरिम-मगगतं णेवठ्ठं ।

अर्थ—मध्यम पथमें दोनों सूर्योका अन्तराल कुछ अधिक एक लाख एक सौ पचास (१००१५०) योजन प्रमाण होता है ॥२३९॥

विशेषार्थ—दृष्ट पथ ९३ वाँ है । इसमेंसे १ घटा देनेपर ९२ शेष रहते हैं यही ९२ वीं वीथी मध्यम पथ है ।

(द्विगुणित पथ सूची $\frac{१००}{१०} \times २) \times ९२ = ५१२०००$ यो० । (प्रथम पथमें सूर्योका अन्तराल ९९६४० यो०) + ५१२००० यो० = १००१२०० यो० मध्यम पथमें सूर्योका अन्तराल है । मूल संदृष्टिसे यह प्रमाण अधिक है । इसीलिए गाथा में 'अदिरेगो' पद आया है ।

इसीप्रकार द्विचरम अर्थात् १८२ वीथियों पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यकी गलियाँ १८४ हैं किन्तु प्रक्षेप केवल १८३ पथोंमें मिलाया जाता है, इसलिए द्विचरम पथ १८२ होगा ।

एकं जोयण-लक्षं, सट्ठी-जुत्ताणि छस्सयाणि पि ।

बाहिर - वहम्मि दोण्हं, सहस्सकिरणण विच्चात्तं ॥२४०॥

१००६६० ।

अर्थ—बाह्य पथमें दोनों सूर्योका (पारस्परिक) अन्तराल एक लाख छह सौ साठ (१००६६०) योजन प्रमाण है ॥२४०॥

विशेषार्थ—इष्ट पथ १८४ — १ = १८३ ।

$६६६४० + (\frac{३५०}{६६} \times १८३) = १००६६०$ योजन अन्तराल है ।

सूर्यका विस्तार प्राप्त करनेकी विधि—

इच्छंतो रवि-बिम्बं, सोहेज्जसु सयल बोहि विच्चात्तं ।

धुवरासिस्स य मज्जे, चुलसीदी-जुद-सवेण भजिदब्बं ॥२४१॥

४६ । ३११५८ । २२३२६ ।

अर्थ—यदि सूर्यबिम्बका विस्तार जाननेकी इच्छा हो तो ध्रुवराशिमेंसे समस्त मार्गन्ति-रालको घटाकर शेषमें एक सौ चौरासीका भाग देना चाहिए । इसका भागफल ही सूर्यबिम्ब के विस्तारका प्रमाण है ॥२४१॥

विशेषार्थ—ध्रुवराशिका प्रमाण $\frac{३११५८}{६६}$ यो० है और सर्व पथोंके अन्तरालका प्रमाण $\frac{२२३२६}{६६}$ योजन है ।

$\frac{३११५८}{६६} - \frac{२२३२६}{६६} = \frac{८८३२}{६६}$ यो० । $\frac{८८३२}{६६} \div १८४ = \frac{५६}{६६}$ योजन सूर्यबिम्बके विस्तार का प्रमाण ।

रविमग्गे इच्छंतो, वासरमणि-बिम्ब-बहल संखाए ।

तस्स य बीही बहलं, भजिदूणं ते वि आणयेदब्बं ॥२४२॥

अर्थ—यदि सूर्यके मार्गको जाननेकी इच्छा हो तो उसके बिम्बके बाह्य ($\frac{५६}{६६}$ विस्तार) का बीधी-विस्तार ($\frac{८८३२}{६६}$ यो०) में भाग देकर मार्गोंका प्रमाण ले आना चाहिए ॥२४२॥

अहवा—

सूर्य-मार्गोंका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

विणवह-पहंतारणि, सोहिय धुवरासियम्मि भजिदूणं ।

रवि - बिम्बेण आणसु, रविमग्गे विज्जणवाणउदी ॥२४३॥

४६ । ८६३२ । १८४ । १

अथवा—

अर्थ—ध्रुवराशिमेंसे सूर्यके मागन्तिरालोंको घटाकर शेषमें रविबिम्ब (विस्तार) का भाग देनेपर बानबैके दूने अर्थात् एक सौ चौरासी सूर्यमार्गोंका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२४३॥

विशेषार्थ—(ध्रुवराशि ३३३३८) — $\frac{३३३३८}{८६३२} = ३८६३$ ।

$८६३२ \div ४६ = १८४$ बीथियाँ (सूर्य की) हैं ।

चारक्षेत्रका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

विणवइ-पह-सूचि-चए^१, तिय-सीदो-जुव-सदेण संगुणिदे ।

होदि हु चारक्षेत्रं, बिबूणं तज्जुवं सयत्तं ॥२४४॥

१ । १९० । १८३ । लब्ध ५१० ।

अर्थ—सूर्यकी पथ-सूची-वृद्धिको एक सौ तेरासीसे गुणा करने पर जो (राशि) प्राप्त हो उतना बिम्ब विस्तारसे रहित सूर्यका चारक्षेत्र होता है । इसमें बिम्ब विस्तार मिला देनेपर समस्त चार क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२४४॥

विशेषार्थ—(सूर्य पथ सूची वृद्धि १९० यो०) $\times १८३ = ३४६३० = ५१०$ यो० बिम्ब रहित चारक्षेत्र; $५१० + ४६ = ५१०४६$ यो० समस्त चारक्षेत्रका प्रमाण ।

प्रतिज्ञा—

दिण-रयणि-आणणहुं, आवव-तिमिराण काल-परिमाणं ।

मंदर - परिहि - प्पहुदि, चउणवदि - सयं परुवेमो ॥२४५॥

१६४ ।

अर्थ—(अब) दिन और रात्रिको जाननेके लिए आतप और तिमिरके काल प्रमाणका एवं मेरु परिधि आदि एक सौ चौरानबे (१९४) परिधियोंका प्ररूपण करते हैं ॥२४५॥

मेरु-परिधिका प्रमाण—

एवकत्तीस-सहस्ता, जोयणया छस्सयाणि बाबोसं ।

मंदरगिरिद - परिरय - रात्तिस्स हवेदि परिमाणं ॥२४६॥

३१६२२ ।

अर्थ—सुमेरु पर्वतकी परिधि-राशि इकतीस हजार छह सौ बाईस (३१६२२) योजन प्रमाण है ॥२४६॥

विशेषार्थ—मेरु विष्कम्भ १०००० योजन है और इसकी परिधि ३१६२२ योजन है । वर्गमूल निकालने पर जो अवशेष बचे हैं वे छोड़ दिये गये हैं ।

क्षेमा और अवध्या के प्रणिधि भागोंकी परिधि—

गभ-छवक-सप्त-सत्ता, सत्तेक्कंक - वक्कमेण जोयणया ।

अट्ट-हिब^१-पंच-भागा, खेमावज्झाण पणिधि-परिहि ति ॥२४७॥

१७७७६० । २ ।

अर्थ—क्षेमा और अवध्या नगरीके प्रणिधिभागोंमें परिधि शून्य, छह, सात, सात, सात और एक, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् १७७७६० योजन और एक योजनके आठ भागोंमेंसे पांच भाग प्रमाण है ॥२४७॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप स्थित सुमेरु पर्वतका तल विस्तार १०००० यो०, सुमेरुके दोनों ओर स्थित भद्रशाल वनोंका विस्तार (२२००० × २) = ४४००० यो० और इसके आगे कच्छा, सुकच्छा आदि ३२ देशोंमेंसे प्रत्येक देशका विस्तार २२१२६ योजन है । गाथामें कच्छादेश स्थित क्षेमा नगरी और गन्धमालिनी देश स्थित अवध्या नगरीके प्रणिधिभाग पर्यन्तकी परिधि निकाली है; जो इसप्रकार है—

$$१०००० + ४४००० + २२१२६ यो० = १६६१२६ यो० ।$$

चतुर्थधिकार गाथा ६ के नियमानुसार इसकी परिधि—

$$\sqrt{(१६६१२६)^२ \times १०} = १४२३०८५ = १७७७६०६ योजन प्राप्त होती है ।$$

यहाँ एवं आगे भी सर्वत्र वर्गमूल निकालनेके उपरान्त जो राशि शेष रहती (बचती) है वह छोड़ दी गई है ।

क्षेमपुरी और अयोध्याके प्रणिधिभागमें परिधिका प्रमाण—

अट्टेक्क-एव-चउक्का एवक्क-अंक-वक्कमेण जोयणया ।

सि-कलाओ परिहि संखा, खेमपुरी-वज्झाण मज्झ-पणिधीए ॥२४८॥

१९४९१८ । ३ ।

अर्थ—क्षेमपुरी और अयोध्या नगरीके प्रणिधिभागमें परिधिका प्रमाण आठ, एक, नौ चार, नौ और एक इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् १९४९१८ योजन और तीन कला अधिक है ॥२४८॥

विशेषार्थ—क्षेमपुरी और अयोध्या नगरीके पूर्व ५००-५०० योजन विस्तार वाले चित्रकूट एवं देवमाल नामक दो वक्षार पर्वत हैं । पूर्व परिधिमें दो क्षेत्रों और इन दो पर्वतोंकी परिधि मिला देनेसे क्षेमपुरी एवं अयोध्याके प्रणिधिभागोंकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$१००० + ४४२५\frac{३}{४} \text{ यो०} = ५४२५\frac{३}{४} \text{ योजन ।}$$

$$\sqrt{(५४२५\frac{३}{४})^2 \times १०} = १७१५७\frac{३}{४} = १७१५७\frac{३}{४} \text{ योजन ।}$$

$$(\text{पूर्व परिधि } १७७७६०\frac{३}{४} \text{ यो०}) + १७१५७\frac{३}{४} = १९४९१८\frac{३}{४} \text{ योजन ।}$$

खड्गपुरी और अरिष्टाके प्रणिधिभागोंकी परिधि—

चउ-गयण-सत्त-णव-णह-दुगाण अंक-वक्रमेण जोयणया ।

ति-कलाओ खगरिट्टा पणिधीए परिहि - परिमाणं ॥२४९॥

$$२०९७०४ । ३ ।$$

अर्थ—खड्गपुरी और अरिष्टा नगरियोंके प्रणिधिभागमें परिधिका प्रमाण चार, शून्य, सात, नौ, शून्य और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २०९७०४ योजन और तीन कला अधिक है ॥२४९॥

विशेषार्थ—खड्गपुरी और अरिष्टाके पूर्वमें १२५-१२५ योजन विस्तार वाली उर्मिमालिनी और ब्रह्मवती विभंगा नदियाँ हैं । पूर्व परिधिमें दो क्षेत्रों और इन दो नदियों की परिधि मिला देने पर उपर्युक्त प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$४४२५\frac{३}{४} + २५० = ४६७५\frac{३}{४} = १६७०३ \text{ यो० ।}$$

$$\sqrt{(१६७०३)^2 \times १०} = १४७८६ \text{ योजन ।}$$

$$१६७८६ + १४७८६ = २०९७०४ \text{ योजन ।}$$

चक्रपुरी और अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागोंकी परिधि—

दुग-छक्क-अट्ट-छक्का, दुग-दुग-अंक-वक्रमेण जोयणया ।

एकक-कला परिमाणं, चक्कारिट्टाण पणिधि-परिहीए ॥२५०॥

$$२२६८६२ । ३ ।$$

अर्थ—चक्रपुरी और अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागमें परिधिका प्रमाण दो, छह, आठ, छह, दो और दो इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २२६८६२ योजन और एक कला अधिक है ॥२५०॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्रों और नागगिरि एवं नलिनकूटकी परिधि पूर्व परिधिमें मिला देनेपर उपर्युक्त परिधि प्राप्त होती है ।

$$\text{यथा—} २०९७०४\frac{३}{४} + १७१५७\frac{३}{४} = २२६८६२\frac{३}{४} \text{ यो० ।}$$

खड्गा और अपराजिताकी परिधि—

अट्ट-चउ-छक्क-एक्का, चउ-दुग-अंक-क्कमेण जोयणया ।

एक्क-कला खग्गापरजिबाण णयरीण मज्झ-परिही सा ॥२५१॥

$$२४१६४८ । १ ।$$

अर्थ—खड्गा और अपराजिता नगरियोंके मध्य उस परिधिका प्रमाण आठ, चार, छह, एक, चार और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २४१६४८ योजन और एक कला है ॥२५१॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्र और ग्राहवती एवं फेनमालिनी इन दो विभंगा नदियोंकी परिधि पूर्व परिधिमें मिला देनेपर $(२२६८६२\frac{३}{४} + १४७८६) = २४१६४८\frac{३}{४}$ योजन परिधि प्राप्त होती है ।

मंजूषा और जयन्ता पर्यन्त परिधि-प्रमाण—

पंच-गयणट्ट-अट्टा, पंच - दुगंक - क्कमेण जोयणया ।

सत्त - कलाओ मंजुस-जयंतपुर-मज्झ-परिही सा ॥२५२॥

$$२५८८०५ । १ ।$$

अर्थ—मंजूषा और जयन्तपुरोंके मध्यमें परिधि पांच, शून्य, आठ, आठ, पांच और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २५८८०५ योजन और सात कला प्रमाण है ॥२५२॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्रों और पद्मकूट एवं सूर्यगिरि वक्षार पर्वतोंकी परिधि, पूर्व प्रमाण में मिला देनेपर उपर्युक्त क्षेत्रोंकी $(२४१६४८\frac{३}{४} + १७१५७\frac{३}{४} \text{ यो० }) = २५८८०५\frac{३}{४}$ योजन परिधि प्राप्त होती है ।

ओषधिपुर और वैजयन्तीकी परिधि—

एक्क-णव-पंच-तिय-सत्त-दुगा अंक-क्कमेण जोयणया ।

सत्त - कलाओ परिही, ओसहिपुर - बहजयंतणं ॥२५३॥

$$२७३५९१ । १ ।$$

अर्थ—ओषधि और वैजयन्ती नगरीकी परिधि एक, नी, पांच, तीन, सात और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २७३५९१ योजन और सात कला प्रमाण है ॥२५३॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्रों एवं पंकवती और यभीरमालिनी नदियोंकी परिधि, पूर्व प्रमाणमें मिला देनेपर $(२५८८०५\frac{१}{२} + १४७८६ \text{ यो०}) = २७३५९१\frac{१}{२}$ योजन उपर्युक्त परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विजयपुरी और पुण्डरीकिणीकी परिधि—

पञ्च-चउ-सत्त-गहाई, पञ्चय-दुगा जोयणाणि अंक-कमे ।

पञ्च-कलाओ परिही, विजयपुरी-पुण्डरीकिणीणं वि ॥२५४॥

२९०७४६ । १ ।

अर्थ - विजयपुरी और पुण्डरीकिणी नगरियोंकी परिधि नौ, चार, सात, शून्य, नौ और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २९०७४६ योजन और पाँच कला प्रमाण है ॥२५४॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्रों और चन्द्रगिरि एवं एक शैल वक्षारोंकी परिधि, पूर्व परिधिके प्रमाणमें मिला देनेपर $(२७३५९१\frac{१}{२} + १७१५७\frac{३}{४}) = २९०७४९\frac{३}{४}$ योजन उपर्युक्त परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है ।

सूर्यकी अभ्यन्तर बीथीकी परिधि—

तिय-जोयण-लवखाणि, पण्णरस-सहस्सयाणि उण्णउदी ।

सव्वभन्तर - मग्गे, परिरय - रासिस्स परिमाणं ॥२५५॥

३१५०८९ ।

अर्थ—सूर्यके सब मार्गोंमेंसे अभ्यन्तर मार्गमें परिधि-राशिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार नवासी (३१५०८९) योजन है ॥२५५॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपमें सूर्यके चारक्षेत्रका प्रमाण १८० योजन है । दोनों पार्श्वभागोंका $(१८० \times २) = ३६०$ योजन ।

$(ज० का वि० १००००० यो०) - ३६० यो० = ९९६४०$ योजन सूर्यकी प्रथम बीथीका व्यास है और इसकी परिधि—

$\sqrt{(९९६४०)^2 \times १०} = ३१५०८९$ योजन है । जो शेष बचे वे छोड़ दिए गये हैं ।

सूर्यके परिधि प्रक्षेपका प्रमाण—

सेसाणं मग्गाणं, परिही-परिमाण-जाणण-णिमित्तं ।

परिहि खेवं वोच्छं, गुरुवदेसाणुसारेणं ॥२५६॥

अर्थ—शेष मार्गोंके परिधि-प्रमाणको जानने हेतु गुरु-उपदेशके अनुसार परिधि-प्रक्षेप कहते हैं ॥२५६॥

सूर-पह-सूइ-वड्डी, दुगुणं कावूण वगिगदूणं च ।

दस - गुणिवे जं मूलं, परिहिवलेको इमो होइ ॥२५७॥

अर्थ—सूर्य-पथोंकी सूची-वृद्धिको दुगुना करके उसका वर्ग करनेके पश्चात् जो प्रमाण प्राप्त हो उसे दससे गुणा करनेपर प्राप्त हुई राशिके वर्गमूल प्रमाण उपर्युक्त परिधि-प्रक्षेप (परिधि-वृद्धि) होता है ॥२५७॥

विशेषाथ—सूर्यपथ-सूचीवृद्धिका प्रमाण $२३६ = १३९$ यो० है ।

$\sqrt{(१३९ \times २)^२ \times १०} = १७३६$ यो० परिधि वृद्धि ।

सत्तरस-जोयणाणि, अदिरेगा तस्स होई परिमाणं ।

अट्ठत्तीसं अंसा, हारो तह एकसट्ठो य ॥२५८॥

१७ । ३६ ।

अर्थ—उक्त परिधि-प्रक्षेपका प्रमाण सत्तरह योजन और एक योजनके इकसठ भागोंमेंसे अड़तीस भाग अधिक (१७३६ यो०) है ॥२५८॥

द्वितीय आदि वीथियोंकी परिधि—

तिय-जोयण-लक्खाणि, पण्णरस-सहस्स एक-सय छक्का ।

अट्ठत्तीस कलाओ, सा परिही विदिय - मग्गम्मि ॥२५९॥

३१५१०६ । ३६ ।

अर्थ—द्वितीय मार्गमें वह परिधि तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ छह योजन और अड़तीस कला है ॥२५९॥

$३१५०८९ + १७३६ = ३१५१०६३६$ योजन ।

चउत्तीस-जुदेक-सयं, पण्णरस-सहस्स जोयण ति-लक्खा ।

पण्णरस - कला परिही, परिमाणं तविय - धीहीए ॥२६०॥

३१५१२४ । ३६ ।

अर्थ—तृतीय वीथीमें परिधिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ चौबीस और पन्द्रह कला (३१५१२४३६ यो०) है ॥२६०॥

$३१५१०६\frac{१}{२} + १७\frac{१}{२} = ३१५१२४\frac{१}{२}$ योजन ।

एकस्तालेखक-सयं, पण्णरस-सहस्स जोयण ति-लक्खा ।

तेवण्ण - कला तुरिमे, पहम्मि परिहीए परिमाणं ॥२६१॥

३१५१४१ । १६ ।

अर्थ—चतुर्थपथमें परिधिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ इकतालीस योजन और तिरेपन कला (३१५१४१ $\frac{१}{२}$ यो०) है ॥२६१॥

$३१५१२४\frac{१}{२} + १७\frac{१}{२} = ३१५१४१\frac{१}{२}$ योजन है ।

उणसठ्ठि-जुदेवक-सयं, पण्णरस-सहस्स जोयण ति-लक्खा ।

इगिसठ्ठी - पविहत्ता, तीस - कला पंचम - पहे सा ॥२६२॥

३१५१५९ । १६ ।

अर्थ—पंचम पथमें वह परिधि तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ उनसठ योजन और इकसठ से विभक्त तीस कला अधिक है ॥२६२॥

$३१५१४१\frac{१}{२} + १७\frac{१}{२} = ३१५१५९\frac{१}{२}$ योजन ।

एवं पुब्बुप्पण्णे, परिहि-खेव 'मेसिदूण उवरि-उवरि ।

परिहि-पमाणं जाव - वुवरिम - परिहि ति णेदब्बं^१ ॥२६३॥

अर्थ—इसप्रकार पूर्वोत्पन्न परिधि-प्रमाणमें परिधिसेप मिलाकर द्विचरम परिधि पर्यन्त आगे-आगे परिधि प्रमाण जानना चाहिए ॥२६३॥

सूर्यके बाह्य-पथका परिधि प्रमाण—

चोदस-जुव-ति-सयार्णि, अट्टरस-सहस्स जोयण ति-लक्खा ।

सूरस्स बाहिर - पहे, हवेदि परिहीए परिमाणं ॥२६४॥

३१८३१४ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें परिधिका प्रमाण तीन लाख अठारह हजार तीन सौ चौदह (३१८३१४) योजन है ॥२६४॥

विशेषार्थ—सूर्यकी अन्तिम (बाह्य) जीथीकी परिधिका प्रमाण $\{ ३१५०८९ + (१७\frac{१}{२} \times १८३) \} = ३१८३१४$ योजन है ॥

लवणसमुद्रके जलषष्ठ भागकी परिधिका प्रमाण—

सत्तावीस-सहस्रा, द्वावालं जोयणाणि पण-सवखा ।

परिही लवणमहणव - विक्खंभं छट्ठ - भागम्मि ॥२६५॥

५२७०४६ ।

अर्थ—लवण समुद्रके विस्तारके छठे भागमें परिधिका प्रमाण पाँच लाख सत्ताईस हजार छयालीस (५२७०४६) योजन है ॥२६५॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके सूर्य तम और तापके द्वारा लवण-समुद्रके छठे भाग पर्यन्त क्षेत्रको प्रभावित करते हैं ।

जिसका व्यास इसप्रकार है—

लवणसमुद्रका वलय व्यास दो लाख योजन है । इसके दोनों पार्श्वभागोंका छठा भाग $(\frac{300000 \times 3}{4}) = 225000$ योजन हुआ । इसमें जम्बूद्वीपका व्यास जोड़ देनेपर जलषष्ठ भागका व्यास $(100000 + 225000) = 325000$ योजन होता है । जिसकी परिधि—

$\sqrt{(325000)^2 \times 10} = 527046$ योजन प्राप्त होती है । यहाँ जो शेष बचे, वे छोड़ दिये गये हैं ।

समान कालमें विसदृश प्रमाणवाली परिधियोंका भ्रमण पूर्ण कर सकनेका कारण—

रवि-चिन्ता सिग्घ-गदी, णिग्घच्छंता हवंति पविसंता ।

मंद - गदी असमाणा, परिही साहंति सम - काले ॥२६६॥

अर्थ—सूर्यचिम्ब बाहर निकलते हुए शीघ्रगतिवाले और प्रवेश करते हुए मन्दगतिवाले होते हैं, इसलिए ये समान कालमें भी असमान परिधियोंको सिद्ध करते हैं ॥२६६॥

सूर्यके कुल गगनखण्डोंका प्रमाण—

एकं चैवय लवणं, णवय-सहस्राणि अड-सयाणं पि ।

परिहीणं पयंगका, कादब्बा^१ गयण - खंडाणि ॥२६७॥

१०९८०० ।

अर्थ—इन परिधियोंमें (दोनों) सूर्यके (सर्व) गगनखण्डोंका प्रमाण एक लाख नौ हजार आठ सौ (१०९८००) है ॥२६७॥

गगनखण्डोंका अतिक्रमण काल—

यच्छुदि मुहुत्तमेवके, तीसबभहियाणि अट्टुर - सयाणि ।

गभ-खंडाणि रविणो, तम्मि^१ हिदे सब्ब-गयण-खंडाणि ॥२६८॥

१८३० ।

अर्थ—सूर्य एक मुहूर्तमें अठारह सौ तीस (१८३०) गगनखण्डोंका अतिक्रमण करता है, इसलिये इस राशिका समस्त गगनखण्डोंमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतने मुहूर्त प्रमाण सम्पूर्ण गगनखण्डोंके अतिक्रमणका काल होगा ॥२६८॥

विशेषार्थ—सूर्य एक मुहूर्तमें १८३० गगनखण्डोंका अतिक्रमण करता है, तब १०६८०० गगनखण्डों पर भ्रमण करनेमें कितना समय लगेगा ? $१०६८०० \div १८३० = ६०$ मुहूर्त लगेंगे ।

अभंतर-वीहीदो, दु-ति-चवु-पट्टदीसु सब्ब-वीहीसु^१ ।

कमसो बे रविबिबा, भमंति सट्टो - मुहुत्तेहि ॥२६९॥

अर्थ—अभ्यन्तर वीथीसे प्रारम्भकर दो, तीन, चार इत्यादि सब वीथियोंमें क्रमसे (प्रत्येक वीथीमें आमने-सामने रहते हुए) दो सूर्य-बिम्ब साठ मुहूर्तोंमें भ्रमण करते हैं ॥२६९॥

सूर्यका प्रत्येक परिधिमें एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

इच्छिय-परिहि-पमाणं, सट्टि-मुहुत्तेहि भाजिदे लट्ठं ।

सेसं दिवसकराणं, मुहुत्त - गमणस्य परिमाणं ॥२७०॥

५२५१ । ३६ ।

अर्थ—इष्ट परिधिमें साठ (६०) मुहूर्तोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो और जो (३६ आदि) शेष बचे वह सूर्योंके एक मुहूर्त कालके गमन क्षेत्रका प्रमाण जानना चाहिए ॥२७०॥

विशेषार्थ—यथा—प्रथम परिधिका प्रमाण ३१५०८९ योजन है, अतः $३१५०८९ \div ६० = ५२५१\frac{३६}{१०}$ योजन प्रथम वीथीमें एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र है ।

पंच-सहस्ताणि दुवे, सयाणि इगिवण्ण जोयणा अहिया ।

उणतीस-कला पट्टम-प्पहम्मि दिणयर-मुहुत्त-गविमाणं ॥२७१॥

५२५१ । ३६ ।

एवं दुच्चरिम-मगंतं णेवव्वं ।

अर्थ—प्रथम पथमें सूर्यकी एक मुहूर्त (४८ मिनट) की गतिका प्रमाण पाँच हजार दो सौ इक्यावन योजन और एक योजनको साठ कलाओंमेंसे उनतीस कला अधिक (५२५१ $\frac{३६}{६०}$ योजन) है ॥२७१॥

इसप्रकार द्विचरम अर्थात् एक सौ तेरासीवें मार्ग तक ले जाना चाहिए ।

बाह्य वीथीमें एक मुहूर्तका प्रमाण क्षेत्र—

पंच-सहस्सा ति-सया, पंचच्चिय जोयणाणि अदिरेगो ।

चोदस-कलाओ बाहिर-पह्णिम विणवड्ढ-मुहुत्त-गदिमाणं ॥२७२॥

५३०५ । ३४ ।

अर्थ—बाह्य अर्थात् एक सौ चौरासीवें (१८४ वें) मार्गमें सूर्यकी एक मुहूर्त परिमित गतिका प्रमाण पाँच हजार तीन सौ पाँच योजन और चौदह कला अधिक है ॥२७२॥

विशेषार्थ—सूर्यकी बाह्य वीथीकी परिधि ३१८३१४ योजन है । $३१८३१४ \div ६० = ५३०५१\frac{३६}{६०}$ योजन बाह्यपथमें स्थित सूर्यकी एक मुहूर्तकी गतिका प्रमाण है ।

केतु विबोंका वर्णन—

विणयर-णयर-तलाओ, चत्तारि पमाण-अंगुलानि च ।

हेट्ठा गच्छिय होंति, अरिट्ट - विमाणान घय-वंडा ॥२७३॥

४ ।^१

अर्थ—सूर्यके नगरतलसे चार प्रमाणांगुल नीचे जाकर अरिष्ट (केतु) विमानोंके ध्वज-दण्ड होते हैं ॥२७३॥

विशेषार्थ—केतु विमानके ध्वजा-दण्डसे ४ प्रमाणांगुल अर्थात् (उत्सेधांगुलके अनुसार) $\frac{४ \times ५४००}{१००} = २०$ धनुष, ३ हाथ और ८ अंगुल ऊपर सूर्यका विमान है ।

रिट्ठाणं एयरतला, अंजणवण्णा अरिट्ट-रथणमया ।

किचूरणं जोयणमं, पत्तेक्कं वास - संजुत्तं ॥२७४॥

अर्थ—अरिष्ट रत्नोंसे निर्मित केतुओंके नगरतल अंजनवर्णवाले होते हैं । इनमेंसे प्रत्येक कुछ कम एक योजन प्रमाण विस्तारसे संयुक्त होता है ॥२७४॥

पण्णाधिय-दु-सयाणि, कोदंडाणं ह्वयंति पत्तेवकं ।
बहलत्तण - परिमाणं, तण्णयरानं^१ सुरम्माणं ॥२७५॥

२५० ।

अर्थ—उन सुरम्य नगरोंमेंसे प्रत्येकका बाह्य प्रमाण दो सौ पचास (२५०) धनुष होता है ॥२७५॥

नोट :—गाथा २०२ में राहु नगरका बाह्य कुछ कम अर्ध यो० कहा गया है तथा पाठान्तर गाथा में २५० धनुष प्रमाण कहा गया है । किन्तु गाथा २७५ में ग्रन्थकर्ता स्वयं केतु के विमान का व्यास कुछ कम एक योजन मानते हुए भी उसका बाह्य २५० धनुष स्वीकार कर रहे हैं । जो विचारणीय है, क्योंकि राहु और केतुका व्यास आदि अंतर ही होता है ।

घड-गोउर-जुसेसु^२, जिणभवन-भूसिदेसु रम्मेसु^३ ।
चेट्ठंते रिट्ठ - सुरा, बहु - परिवारेहि परियरिया ॥२७६॥

अर्थ—चार गोपुरोंसे संयुक्त और जिन भवनोंसे विभूषित उन रमणीय नगरतलोंमें बहुत परिवारोंसे घिरे हुए केतुदेव रहते हैं ॥२७६॥

छम्मासेसुं पुह पुह, रवि-बिबाणं अरिट्ठ - बिबाणि ।
अमवस्सा अवसाणे, छावंते गदि - विसेसेणं ॥२७७॥

अर्थ—गति विशेषके कारण अरिष्ट (केतु) विमान छह मासोंमें अमावस्याके अन्तमें पृथक्-पृथक् सूर्य-बिम्बोंको आच्छादित करते हैं ॥२७७॥

अभ्यन्तर और बाह्य बीधीमें दिन-रात्रिका प्रमाण—

मसंड-मंडलाणं, गमण - विसेसेण मणुव - लोयम्मि ।
जे^३दिण - रत्ति मेवा, जावा तेसि परुवेमो ॥२७८॥

अर्थ—मनुष्यलोक (अढ़ाई द्वीप) में सूर्य-मण्डलोंके गमन-विशेषसे जो दिन एवं रात्रिके विभाग हुए हैं उनका निरूपण करते हैं ॥२७८॥

पढम-पहे दिणवड्ढो, संठिब-कालम्मि सठव-परिहोसुं ।
अट्ठरस - मुहुत्ताणि, दिवसो वारस गिसा होवि ॥२७९॥

१८ । १२ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते समय सब परिधियोंमें अठारह (१८) मुहूर्तका दिन और बारह (१२) मुहूर्तकी रात्रि होती है ॥२७९॥

बाह्य-मार्गे रविणो, संठिब-कालम्मि सन्ध-परिहीसु ।

अद्वरस - मुहुत्ताणि, रत्ती बारस दिणं होदि ॥२८०॥

१८ । १२ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्यमार्गमें स्थित रहते समय सर्व परिधियोंमें अठारह (१८) मुहूर्तकी रात्रि और बारह (१२) मुहूर्तका दिन होता है ॥२८०॥

विशेषार्थ—श्रावणमासमें कर्क राशिपर स्थित सूर्य जब जम्बूद्वीप सम्बन्धी १८० योजन चार क्षेत्रकी प्रथम (अर्धन्तर) परिधिमें भ्रमण करता है तब सर्व (सूर्यकी १८४, क्षेमा-अवध्या नगरियोंसे पुण्डरीकिणी-विजया पर्यन्त क्षेत्रोंकी ८, मेरु सम्बन्धी १ और लवणसमुद्रगत जलधण्ड सम्बन्धी १, इसप्रकार $१८४ + ८ + १ + १ = १९४$) परिधियोंमें १८ मुहूर्त (१४ घण्टा २४ मिनिट) का दिन और १२ मुहूर्त (६ घण्टा ३६ मिनिट) की रात्रि होती है । किन्तु जब माघ मासमें मकर-राशि स्थित सूर्य लवणसमुद्र सम्बन्धी ३३० योजन चार क्षेत्रकी बाह्य परिधिमें भ्रमण करता है तब सर्व (१९४) परिधियोंमें १८ मुहूर्तकी रात्रि और १२ मुहूर्तका दिन होता है ।

रात्रि और दिनकी हानि-वृद्धिका चय प्राप्त करने की विधि एवं उसका प्रमाण—

भूमीए 'मुहं सोहिय, रुऊणेणं पहेण भजिवर्यं ।

सा रत्तीए दिणादो, बड्ढी दिवसस्स रत्तीदो' ॥२८१॥

तस्स पमाणं दोष्णि य, मुहुत्तया एक्क-सट्ठि-पचिहत्ता ।

दोण्हं विण - रत्तीणं, पड्डिविषसं हाणि - बड्ढीओ ॥२८२॥

२१ । १

अर्थ—भूमिमेंसे मुखको कम करके शेषमें एक कम पथ-प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी वृद्धि दिनसे रात्रिमें और रात्रिसे दिनमें होती है । उस वृद्धिका प्रमाण एकसठसे विभक्त दो (१६) मुहूर्त है । प्रतिदिन दिन-रात्रि दोनोंमें मिलकर उतनी हानि-वृद्धि हुआ करती है ॥२८१-२८२॥

विशेषार्थ—भूमिका प्रमाण १८ मुहूर्त, मुखका प्रमाण १२ मुहूर्त और पथका प्रमाण १८४ है ।

(१८ — १२) ÷ (१८४ — १) = १६३ या १६३ मुहूर्त । ४८ मिनट का १ मुहूर्त होता है अतः १६३ मुहूर्तमें १ मिनट ३४ $\frac{२}{३}$ सेकेण्ड की वृद्धि या हानि होती है ।

सूर्यके द्वितीयादि पथोंमें स्थित रहते दिन-रात्रिका प्रमाण —

विदिय-पह-द्विद-सूरे, सत्तरस-मुहुत्तयाणि होदि दिणं ।

उणसट्ठि - कलळभहियं, छक्कोणिय-कु-सय-परिहीसुं ॥२८३॥

१७ । ५६ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित रहनेपर छह कम दो सौ अर्थात् १६४ परिधियोंमें दिन का प्रमाण सत्तरह मुहूर्त और उनसठ कला अधिक (१७ $\frac{५६}{१००}$) होता है ॥२८३॥

बारस-मुहुत्तयाणि, दोण्ण कलाओ णिसाए परिमाणं ।

विदिय-पह-द्विद-सूरे, तेत्तिय - मेत्तासु परिहीसुं ॥२८४॥

१२ । ६१ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय मार्गमें स्थित रहनेपर उतनी (११४) ही परिधियोंमें रात्रिका प्रमाण बारह मुहूर्त और दो कला (१२ $\frac{६१}{१००}$ मुहूर्त) होता है ॥२८४॥

तदिय-पह-द्विद-तवणे, सत्तरस-मुहुत्तयाणि होदि दिणं ।

सत्तावण्ण कलाओ, तेत्तिय - मेत्तासु परिहीसुं ॥२८५॥

१७ । ५९ ।

अर्थ—सूर्यके तृतीयमार्गमें स्थित रहनेपर उतनी ही परिधियोंमें दिनका प्रमाण सत्तरह मुहूर्त और सत्तावन कला (१७ $\frac{५९}{१००}$ मुहूर्त) होता है ॥२८५॥

बारस-मुहुत्तयाणि, चत्तारि कलाओ रत्ति-परिमाणं ।

तप्परिहीसुं सूरे, अक्खट्ठदे 'तिदिय - मग्गम्मि ॥२८६॥

१२ । ६१ ।

अर्थ—सूर्यके तृतीय मार्गमें स्थित रहनेपर उन परिधियोंमें रात्रिका प्रमाण बारह मुहूर्त और चार कला अधिक (१२ $\frac{६१}{१००}$ मु०) होता है ॥२८६॥

सत्तरस-मुहुत्ताहं, पंचावण्णा कलाओ परिमाणं ।

दियसस्स तुरिम-मग्ग-ट्ठिदम्मि तिब्बंसु - विवम्मि ॥२८७॥

१७ । ५९ ।

अर्थ—तीव्रांशुबिम्ब (सूर्यमण्डल) के चतुर्थ मार्गमें स्थित रहनेपर दिनका प्रमाण सत्तरह मुहूर्त और पचपन कला अधिक (१७३ $\frac{१}{२}$ मु०) होता है ॥२८७॥

बारस मुहुत्तयाणि, छक्क-कलाओ वि रत्ति-परिमाणं ।

तुरिम-पह - द्विद - पंकयबंधव - बिबम्मि परिहीसुं ॥२८८॥

१२ । ६१ ।

एवं मज्झिम-पहंतं णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्य बिम्बके चतुर्थ पथमें स्थित रहने पर सब परिधियोंमें रात्रिका प्रमाण बारह मुहूर्त और छह कला (१२ $\frac{१}{२}$ मु०) होता है ॥२८८॥

इसप्रकार मध्यम पथ पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यके मध्यमपथमें रहनेपर दिन एवं रात्रि का प्रमाण—

पण्णरस - मुहुत्ताइं, पत्तेयं होति दिवस - रत्तीओ ।

पुव्वोदिद - परिहीसुं, मज्झिम-मग-दिठवे तवणे ॥२८९॥

। १५ ।

एवं दुच्चरिम-मगंतं णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्यके मध्यम पथमें स्थित रहनेपर पूर्वोक्त परिधियोंमें दिन और रात्रि दोनों पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त प्रमाणके होते हैं ॥२८९॥

विशेषार्थ—जब एक पथमें $\frac{१३}{२}$ मुहूर्त की हानि या वृद्धि होती है तब मध्यम पथ $\frac{१६३}{२}$ में कितनी हानि-वृद्धि होगी ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर ($\frac{१३}{२} \times \frac{१६३}{२}$) = ३ मुहूर्त प्राप्त हुए । इन्हें प्रथम पथके दिन प्रमाण १८ मु० में से घटाकर उसी पथके रात्रि प्रमाण १२ मुहूर्तमें जोड़ देनेपर मध्यम पथमें दिन और रात्रि का प्रमाण १५-१५ मुहूर्त प्राप्त होता है ।

इसप्रकार द्विचरम पथ तक ले जाना चाहिए ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते दिन-रात्रिका प्रमाण—

अट्ठरस-मुहुत्ताणि, रत्ती बारस दिणो व विणणाहे ।

बाहिर-मग-पवण्णे, पुव्वोदिद - सव्व - परिहीसुं ॥२९०॥

१८ । १२ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गको प्राप्त होनेपर पूर्वोक्त सब (१६४) परिधियोंमें अठारह (१८) मुहूर्त प्रमाण रात्रि और बारह (१२) मुहूर्त प्रमाण दिन होता है ॥२९०॥

बाहिर - पहाडु पत्ते, मग्गं अकभंतरं सहस्सकरे ।

पुब्बावणिग्गव - खेयं, पक्खेयसु दिग्ग - प्पमाणम्मि ॥२९१॥

३९ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथसे अन्धन्तर मार्गको प्राप्त होनेपर पूर्व-वर्णित क्रमसे दिन-प्रमाणमें उत्तरोत्तर इस वृद्धि-प्रमाणको मिलाना चाहिए ॥२९१॥

इय वासर-रत्तीओ, एकस्स रविस्स वदि-विसेसेण ।

एदाणं दुगुणाओ, हवन्ति दोण्हं विणिवाणं ॥२९२॥

। दिन-रत्तीणं भेदं समस्तं ।

अर्थ—इसप्रकार एक सूर्यकी गति-विशेषसे उपर्युक्त प्रकार दिन-रात हुआ करते हैं । इनको दुगुना करनेपर दोनों सूर्योंकी गति-विशेषसे होने वाले दिन-रात का प्रमाण प्राप्त होता है ॥२९२॥

दिन-रातके भेदका कथन समाप्त हुआ ।



प्रतिज्ञा—

एत्तो वासर-पहुण्ण, गमण-विसेसेण मणुब-लोयम्मि ।

जे आवव - तम - खेत्ता, जादा ताणि परूवेमो ॥२९३॥

अर्थ—अब यहाँसे आगे वासरप्रभु (सूर्य) के गमन विशेषसे जो मनुष्यलोकमें आतप एवं तम क्षेत्र हुए हैं उनका प्ररूपण करते हैं ॥२९३॥

आतप एवं तम क्षेत्रोंका स्वरूप—

मंवरगिरि-मण्भादो, लवणोदहि-छट्ठ-भाग-परियंतं ।

णियदायामा आदव - तम - खेत्तां सकट-उद्धि-णिहा ॥२६४॥

अर्थ—मन्दरपर्वतके मध्य भागसे लेकर लवणसमुद्रके छठे भाग पर्यन्त नियमित आयाम-वाले गाड़ीकी उद्धि (पहियेके आरे) के सदृश आतप एवं तम-क्षेत्र हैं ॥२६४॥

प्रत्येक आतप एवं तम क्षेत्रकी लम्बाई—

तेसीवि-सहस्सार्णि, तिण्णि-सया जोयणाणि तेत्तीसं ।

स-ति-भागा पत्तेवकं, आदव - तिमिराण आयामो ॥२६५॥

८३३३३ । ३ ।

अर्थ—प्रत्येक आतप एवं तिमिर क्षेत्रकी लम्बाई तेरासी हजार तीनसौ तैंतीस योजन और एक योजनके तृतीय भाग सहित है ॥२६५॥

विशेषार्थ—मेरुके मध्यसे लवणसमुद्रके छठे भाग पर्यन्तका क्षेत्र सूर्यके आतप एवं तमसे प्रभावित होता है । लवणसमुद्रका अभ्यन्तर सूची-व्यास ५ लाख योजन है । इसमें ६ का भाग देनेपर $(५००००० \div ६) = ८३३३३\frac{१}{३}$ योजन होता है । यही प्रत्येक आतप एवं तम क्षेत्रकी लम्बाईका प्रमाण है ॥

प्रथम पथ स्थित सूर्यकी परिधियोंमें ताप क्षेत्र निकालनेकी विधि—

इट्ठं परिरय-रासिं, ति-गुणिय दस-भाजिदम्मि अं लद्धं ।

सा घम्म - खेत्त - परिही, पडम - पहावट्ठवे सूरे ॥२६६॥

१० ।

अर्थ—इच्छित परिधि-राशिको तिगुना करके दसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर उस ताप क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण होता है ॥२६६॥

विशेषार्थ—दो सूर्य मिलकर प्रत्येक परिधिको ६० मुहूर्तमें पूरा करते हैं । सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते सब (१६४) परिधियोंमें १८ मुहूर्तका दिन होता है । विवक्षित परिधिमें १८ मुहूर्तोंका गुणा करके ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर ताप व्याप्त क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है । इसीलिए गाथामें $(३६ = \frac{१८}{१/२})$ ३ का गुणाकर दसका भाग देने को कहा गया है ।

प्रथम पथ स्थित सूर्यकी क्रमशः दस परिधियोंमें ताप परिधियोंका प्रमाण—

णव य सहस्सा चउसय, छासीदो जोयणाणि तिण्णि-कला ।

पंच-हिदा ताव-खिदी, मेरु-णगे पढम - पद्द - ट्ठिठवंकम्मि ॥२९७॥

९४८६ । ३ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर मेरु पर्वतके ऊपर नौ हजार चार सौ छयासी योजन और पाँचसे भाजित तीन कला प्रमाण ताप-क्षेत्र रहता है ॥२९७॥

विशेषार्थ—मेरु पर्वतकी परिधि ३ से गुणित कर १० का भाग देनेपर मेरु पर्वतके ऊपर ताप क्षेत्रका प्रमाण $(\frac{31680 \times 3}{10}) = ९४८६\frac{३}{१०}$ योजन प्राप्त होता है ।

खेमवल्हा-पणिधीए, तेनण सत्तम ति-सय-अडवीसा' ।

सोलस-हिदा तियंसा, ताव-खिदी पढम-पद्द-ट्ठिठवंकम्मि ॥२९८॥

५३३२८ । १३ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर खेमा नामक नगरीके प्रणिधिभागमें ताप क्षेत्रका प्रमाण तिरपन हजार तीन सौ अट्ठाईस योजन और एक योजनके सोलह भागोंमेंसे तीन भाग अधिक होता है ॥२९८॥

विशेषार्थ—खेमा नगरीके प्रणिधिभागकी परिधि १७७७६०३ यो० = $(1777603) \times \frac{3}{10} = ५३३२८०\frac{९}{१०}$ योजन ।

खेमपुरी-पणिधीए, अडवण-सहस्स चउसयाणं पि ।

पंचत्तरि जोयणया, इगिवाल-कलाओ सीदि-हिदा ॥२९९॥

५८४७५ । ४१ ।

अर्थ—वह तापक्षेत्र खेमपुरीके प्रणिधिभागमें अट्ठावन हजार चार सौ पचत्तर योजन और अस्सीसे भाजित इकतालीस कला प्रमाण रहता है ॥२९९॥

विशेषार्थ—खेमपुरीके प्रणिधिभागकी परिधि १६४६१८३ यो० = $(1646183) \times \frac{3}{10} = ५८४७५४\frac{९}{१०}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण ।

रिट्ठाए पणिधीए, बासट्ठि-सहस्स णव - सयाणं पि ।

एक्कारस जोयणया, सोलस-हिद-पण-कलाओ ताव-खिदी ॥३००॥

६२६११ । ५१ ।

अर्थ—यह तापक्षेत्र अरिष्टनगरीके प्रणिधिभागमें अठसठ हजार दो सौ ग्यारह योजन और सोलहसे भाजित पाँच कला प्रमाण है ॥३००॥

विशेषार्थ—अरिष्ट नगरीके प्रणिधिभागकी परिधि $२०६७०४\frac{३}{४} = (११७७५३५) \times \frac{३}{४} = ६२९११६\frac{३}{४}$ योजन तापक्षेत्र है ।

अट्ठासट्ठि-सहस्सा, अट्ठावण्णा य जोयणा होंति ।

एक्कावण्ण कस्साओ, रिट्ठपुरी-पणिधि-ताव-सिद्धी ॥३०१॥

६८०५८ । ५१ ।

अर्थ—यह तापक्षेत्र अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागमें अठसठ हजार अट्ठावन योजन और एक योजनके अस्सी भागोंमेंसे इक्यावन कला अधिक रहता है ॥३०१॥

विशेषार्थ—अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागमें परिधि $२२६८६२\frac{३}{४} = (१८१६६६७) \times \frac{३}{४} = ६८०५८\frac{३}{४}$ योजन तापक्षेत्र ।

बाहत्तरी सहस्सा, चउस्सया जोयणाणि चउणवदी ।

सोलस-हिद-सत्त-कला, खग्गपुरी-पणिधि-ताव-मही ॥३०२॥

७२४६४ । ५६ ।

अर्थ—खग्गपुरीके प्रणिधिभागमें ताप क्षेत्रका प्रमाण बहत्तर हजार चारसौ चौरानवे योजन और सोलहसे भाजित सात कला अधिक है ॥३०२॥

विशेषार्थ—खग्गपुरीके प्रणिधिभाग की परिधि $२४१६४८\frac{३}{४} = (१६३३३८५) \times \frac{३}{४} = ७२४९४६\frac{३}{४}$ योजन ताप क्षेत्र ।

सत्तसरी सहस्सा, छच्च सया जोयणाणि इगिवालं ।

सीदि-हिदा इगिसट्ठी, कलाओ मंजुसपुरम्म ताव-मही ॥३०३॥

७७६४१ । ६१ ।

अर्थ—मंजूषपुरमें ताप क्षेत्रका प्रमाण सत्तर हजार छह सौ इकतालीस योजन और अस्सीसे भाजित एकसठ कला अधिक है ॥३०३॥

विशेषार्थ— $२५८८०५\frac{३}{४} = ३०९७४३ \times \frac{३}{४} = ७७६४१\frac{३}{४}$ यो० मंजूषपुरमें तापक्षेत्र का प्रमाण ।

बासीदि-सहस्साणि, सत्तरि जोयणाणि णव अंसा ।

सोलस-भजिदा ताओ, 'ओसहि-णयरस्त पणियोए ॥३०४॥

८२०७७ । १/६ ।

अर्थ—औषधिपुरके परिधिभागमें तापक्षेत्र बयासी हजार सत्तर योजन और सोलहसे भाजित नौ भाग अधिक है ॥३०४॥

विशेषार्थ— $२७३५९१\frac{१}{६} = २१६६३५ \times \frac{३}{१०} = ८२०७७\frac{१}{६}$ योज औषधिपुरमें तापक्षेत्रका प्रमाण ।

सत्तासीदि-सहस्सा, बु-सया चउवीस जोयणा अंसा ।

एकत्तरि सीदि-हिदा, ताव-खिदो पुंडरीगिणी^१-णयरे ॥३०५॥

८७२२४ । १/११ ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी नगरमें तापक्षेत्र सत्तासी हजार दो सौ चौबीस योजन और अस्सीसे भाजित एकहत्तर भाग अधिक है ॥३०५॥

विशेषार्थ— $२९०७४९\frac{१}{११} = २३६६३६० \times \frac{३}{१०} = ८७२२४\frac{१}{११}$ योजन पुण्डरीकिणीपुरके ताप क्षेत्रका प्रमाण ।

चउणउदि-सहस्सा पणु-सयाणि छब्बीस जोयणा सत्ता ।

अंसा दसेहि भजिदा, पढम - पहे ताव-खिदि-परिही ॥३०६॥

६४५२६ । १/१० ।

अर्थ—प्रथम पथमें ताप क्षेत्रकी परिधि चौरानव हजार पाँच सौ छब्बीस योजन और दससे भाजित चार भाग अधिक है ॥३०६॥

विशेषार्थ—(प्रथम पथकी अभ्यन्तर परिधि ३१५०८६ योज) $\times \frac{३}{१०} = ६४५२६\frac{१}{१०}$ योज तापक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण ।

द्वितीय पथमें तापक्षेत्रकी परिधि—

चउणउदि-सहस्सा, पणु-सयाणि इगितीस जोयणा अंसा ।

अत्तारो पंच - हिदा, सिदिय - पहे ताव-खिदि-परिही ॥३०७॥

९४५३१ । ३ ।

एवं भङ्गिभ्रम-मग्गंतं रोदब्धं ।

अर्थ—द्वितीय पथमें ताप-क्षेत्रकी परिधि चौरानवें हजार पाँच सौ इकतीस योजन और पाँचसे भाजित चार भाग अधिक है ॥३०७॥

विशेषार्थ—द्वितीय पथमें परिधिका प्रमाण ३१५१०६ $\frac{१}{६}$ योजन प्रमाण है । इसमेंसे $\frac{१}{६}$ योजन छोड़कर $\frac{१}{६}$ का गुणा करनेपर तापक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—३१५१०६ $\times \frac{१}{६}$ = ९४५३१ $\frac{१}{६}$ योजन ।

इसप्रकार मध्यम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

मध्यम पथमें तापक्षेत्रकी परिधि—

पञ्चा-णउवि-सहसा, वसुसरा जोयणाणि तिप्पिण कला ।

पंच - विहत्ता मङ्गिभ्रम - पहम्मि तावस्स परिमाणं ॥३०८॥

९५०१० । ३ ।

एवं वृचरिम-मग्गंतं रोदब्धं ।

अर्थ—मध्यम पथमें तापका प्रमाण पञ्चानवें हजार दस योजन और पाँचसे विभक्त तीन कला अधिक (९५०१० $\frac{१}{३}$ योजन) है ॥३०८॥

इसप्रकार द्विचरम मार्ग तक ले जाना चाहिए ।

बाह्य पथमें तापक्षेत्रका प्रमाण—

पणणउवि-सहस्सा चउ-सयाणि चउणउवि जोयणा अंसा ।

पंच - हिवा बाहिरए, पढम - पहे संठिदे सूरै ॥३०९॥

९५४९४ । ३ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर बाह्य मार्गमें तापक्षेत्रका प्रमाण पञ्चानवें हजार चार सौ चौरानवें योजन और एक योजन के पाँचवें भागसे अधिक है ॥३०९॥

३१८३१४ $\times \frac{१}{५}$ = ९५४६२ $\frac{२}{५}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण—

लवणोदधिके छठे भागकी परिधिमें तापक्षेत्रका प्रमाण —

अट्ठावण सहस्रा, एकक - सयं तेरसुसारं ^१लखं ।

जोयणया चउ - अंसा, पविहत्ता पंच - रूपेहि ॥३१०॥

१५८११३ । ६ ।

एवं होदि पमाणं, लवणोदहि-वासा^२-छट्ठ-भागस्स ।

परिहोए ताव-खेत्तं, विवसयरे पठम - भग्ग - ठिदे ॥३११॥

अर्थ—सूर्यके प्रथम मार्गमें स्थित रहनेपर लवणोदधिके विस्तारके छठे भागकी परिधिमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण एक लाख अट्ठावन हजार एक सौ तेरह योजन और पाँच रूपोंसे विभक्त चार भाग अधिक है ॥३१०-३११॥

विशेषार्थ—लवण समुद्रके षष्ठ भागकी परिधि ५२७०४६ यो० है । $527046 \times 3 = 1581138$ योजन ताप क्षेत्रका प्रमाण ।

सूर्यके द्वितीय पथ स्थित होनेपर इच्छित परिधियोंमें

ताप-क्षेत्र निकालनेकी विधि—

इदं^३ परिरय - रासि, उणहत्तरि दो - सएहि गुणिदब्बं ।

णव-सय-पण्णरस-सहिदे, ताव-खिदे विदिय-पह-ठिदक्कस्स ॥३१२॥

२७४ ।

अर्थ—दृष्ट-परिधि-राशिको दो सौ चौहत्तरसे गुणा करके नौ सौ पन्द्रहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना द्वितीय पथमें स्थित सूर्यके ताप-क्षेत्रका प्रमाण होता है ॥३१२॥

विशेषार्थ—दो सूर्य मिलकर प्रत्येक परिधि को ६० मुहूर्तमें पूरा करते हैं । सूर्यके द्वितीय-पथमें स्थित रहते सर्व (१६४) परिधियोंमें १७ $\frac{२६}{६०}$ मुहूर्तका दिन होता है । विवक्षित परिधिमें १७ $\frac{२६}{६०}$ मुहूर्त का गुणाकर ६० मुहूर्तका भाग देनेपर ताप क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए गाथामें २७४ का गुणा कर ६१५ का भाग देनेको कहा गया है ।

सूर्यके द्वितीय पथ स्थित होनेपर मेरु आदि परिधियोंमें ताप क्षेत्रका प्रमाण—

णवय-सहसा चउ-सय, उणहत्तरि जोयणा दु-सय-अंसा ।

ते-णउदि जुदा ^३ताही मेरुणगे-विदिय-पह-ठिदे तपणे ॥३१३॥

६४६६ । ३६३ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित रहनेपर मेरु पर्वतके ऊपर ताप क्षेत्रका प्रमाण नौ हजार चार सौ उनहत्तर योजन और दो सौ तेरानवें भाग अधिक है ॥३१३॥

मेरु परिधि $31532 \times \frac{398}{8} = 9869.3832$ तापक्षेत्र ।

इगि-ति-बु-ति-पंच-कमसो, जोयणया तह कलाओ सग-तीसं ।

सग-सय-बत्तीस-हिवा, खेमा - पणिधीए ताव - खिदी ॥३१४॥

५३२३१ । ७७२ ।

अर्थ—खेमा नगरीके प्रणिधिभागमें एक, तीन, दो, तीन और पांच, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् तिरेपम हजार दो सौ इकतीस योजन और सातसौ बत्तीससे भाजित सैंतीस कला अधिक है ॥३१४॥

(खेमा-परिधि $177760\frac{1}{2} = 177760.5$) $\times \frac{398}{8} = 349.5532 = 53231.712$ ताप-क्षेत्रका प्रमाण ।

अट्ट-छ-ति-अट्ट-पंचा, अंक-कमे णव-पण-छ-तिय अंसा ।

णभ-छ-उच्छत्तिय-भजिदा, खेमपुरी-पणिधि-ताव-खिदी ॥३१५॥

५८३६८ । ३६५६ ।

अर्थ—खेमपुरीके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण आठ, छह, तीन, आठ और पांच, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् अट्ठावन हजार तीन सौ अड़सठ योजन और तीन हजार छह सौ साठसे भाजित तीन हजार छह सौ उनसठ भाग अधिक है ॥३१५॥

(खेमपुरीकी परिधि $184815\frac{1}{2} = 184815.5$) $\times \frac{398}{8} = 36.583053 = 5836.3533$ योजन ताप क्षेत्र ।

छण्णव-सग-बुग-छवका, अंक-कमे पंच-तिय-छ-दोणि कमे ।

णभ-छ-उच्छत्तिय-हरिदा, रिट्टा - पणिधीए ताव - खिदी ॥३१६॥

६२७६६ । ३६३५ ।

अर्थ—अरिष्टा नगरीके प्रणिधि-भागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण छह, नौ, सात, दो और छह इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् बासठ हजार सात सौ छ्यानवें योजन और तीन हजार छह सौ साठसे भाजित दो हजार छह सौ पैंतीस भाग अधिक है ॥३१६॥

(अरिष्टा की परिधि $209704\frac{1}{2} = 209704.5$) $\times \frac{398}{8} = 22.863489 = 6279.6348$ यो० ताप-क्षेत्र है ।

चउ-तिय-णव-सग-छक्का, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।

णव-चउ-चउक्क-दुगया, रिठ्ठपुरी-पणिधि-ताव-खिदी ॥३१७॥

६७६३४ । ३४४६ ।

अर्थ—अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण चार, तीन, नौ, सात और छह इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् सड़सठ हजार नौ सौ चौतीस योजन और दो हजार चार सौ उनचास भाग अधिक है ॥३१७॥

(अरिष्टपुरीकी परिधि — २२६८६२६ = १८३४८५७) × $\frac{३७४}{६५४}$ = $\frac{१४८३४४८८८८}{६५४}$ = ६७९३४३४६६ यो० तापक्षेत्र ।

दुग-छक्क-ति-दुग-सत्ता, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।

पंच-दु-चउक्क-एक्का, खड्गपुरं पणिधि-ताव-खिदी ॥३१८॥

७२३६२ । ३४३६ ।

अर्थ—खड्गपुरीके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण दो, छह, तीन, दो और सात इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् बहत्तर हजार तीन सौ बासठ योजन और एक हजार चार सौ पच्चीस भाग अधिक होता है ॥३१८॥

(खड्गपुरीकी परिधि २४१६४८६ = १६३३१८५) × $\frac{३७४}{६५४}$ = $\frac{२४४८४४३४५}{६५४}$ = ७२३६२३६६६ यो० ताप-क्षेत्र ।

णभ-गयण-पंच-सत्ता, सत्तंक-कमेण जोयणा अंसा ।

णव-तिय-दुगेक्कमेत्ता, मंजुसपुर-पणिधि-ताव-खिदी ॥३१९॥

७७५०० । ३३३६ ।

अर्थ—मंजुषपुरके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण शून्य, शून्य, पाँच, सात और सात, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् सत्तर हजार पाँच सौ योजन और एक हजार दो सौ उनतालीस भाग प्रमाण होता है ॥३१९॥

(मंजुषपुरकी परिधि — २५८८०५६ = २०७६४४०) × $\frac{३७४}{६५४}$ = $\frac{२८३४५५३३६}{६५४}$ = ७७५००३३३६ यो० ताप-क्षेत्रका प्रमाण ।

अट्ठ-दु-एक्केक्क-अट्ठा, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।

पंचेक्क-दुग-पमाणा, ओसहिपुर-पणिधि-ताव-खिदी ॥३२०॥

८१९२८ । ३३३६ ।

अर्थ—औषधिपुरके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण आठ, दो, ती, एक और आठ, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् इक्यासी हजार ती सौ अठ्ठाईस योजन और दो सौ पन्द्रह भाग अधिक होता है ॥३२०॥

(औषधिपुरकी परिधि — $२७३५९१\frac{१}{२} = २१६६७३५$) $\times \frac{३७४}{३१६} = २६४८५४५८५$
 $= ८१९२८३६६\frac{१}{२}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण है ।

छ-च्छक्क-गयण-सत्ता, अट्ठ-क-कमेण जोयणाणि कला ।

एक्कोणत्तीस - मेसा, ताव - खिदी पुंढरिणिणिए ॥३२१॥

८७०६६ । ३६६० ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी नगरीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण छह, छह, सून्य, सात और आठ, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् सत्तासी हजार छ्यासठ योजन और उनतीस कला प्रमाण होता है ॥३२१॥

(पुण्डरीकिणीपुरकी परिधि — $२९०७४९\frac{१}{२} = २३३६६४०$) $\times \frac{३७४}{३१६} = २१६६६९५८९$
 $= ८७०६६३६६\frac{१}{२}$ योजन ताप-क्षेत्रका प्रमाण है ।

सूर्यके द्वितीय पथ स्थित होनेपर अभ्यन्तर (प्रथम) वीथीमें ताप क्षेत्रका प्रमाण—

चउ-पंच-ति-चउ-णवया, अंक-कमे छक्क-सत्ता-चउ-अंसा ।

पंचेक्क-शाव-हिवाओ, विविद्य-पहक्कम्मि पढम-पह तावो ॥३२२॥

९४३५४ । ४९६ ।

अर्थ—द्वितीय पथ स्थित सूर्यका तापक्षेत्र प्रथम (अभ्यन्तर) वीथीमें चार, पाँच, तीन, चार और ती, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् चौरालबैं हजार तीन सौ चौवन योजन और ती सौ पन्द्रहसे भाजित चार सौ छ्यत्तर भाग अधिक होता है ॥३२२॥

(अभ्यन्तर वीथीकी परिधि— ३१५०८९) $\times \frac{३७४}{३१६} = ९४३५४४९६$ योजन ताप-क्षेत्रका प्रमाण ।

द्वितीय पथकी द्वितीय वीथीका तापक्षेत्र—

चउ-णउदि-सहस्सा तिय-सयाणि उणसट्ठि जोयणा अंसा ।

उणसट्ठो पंच-सया, विविद्य-पहक्कम्मि विविद्य-पह-तावो ॥३२३॥

९४३५९ । ४९६ ।

अर्थ—(सूर्यके) द्वितीय पथमें स्थित रहनेपर द्वितीय-वीथीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण चौरानबे हजार तीन सौ उनसठ योजन और पाँच सौ उनसठ भाग अधिक होता है ॥३२३॥

विशेषार्थ—द्वितीय पथकी परिधि प्रमाण ३१५१०६ $\frac{३६}{५}$ योजनमेंसे $\frac{३६}{५}$ यो० छोड़कर $\frac{३१५०६३६}{५}$ यो० का गुणा करनेपर यहाँ के तापक्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा :—

$$३१५१०६ \text{ यो०} \times \frac{३१५०६३६}{५} = ९८३६५९\frac{३६}{५} \text{ योजन परिधि है ।}$$

द्वितीय पथकी तृतीय वीथीका तापक्षेत्र—

चउणउवि-सहस्सा तिय-सयाणि पण्णट्ठि जोयणा अंसा ।

इगि-रूयं होंति तवो, विदिय-पहवकम्मि तविय-पह-ताओ ॥३२४॥

$$९८३६५ \text{ । } २१५ \text{ ।}$$

एवं मज्झिम-पहस्स याइस्स-पह-परियंतं णेवब्बं ।

अर्थ—(सूर्यके) द्वितीय पथमें स्थित रहने पर तृतीय वीथीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण चौरानबे हजार तीन सौ पैंसठ योजन और एक भाग प्रमाण अधिक ९८३६५ $\frac{१५}{५}$ यो० होता है ॥३२४॥

इसप्रकार मध्यम पथके आदि पथ पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

द्वितीय पथकी मध्यम वीथीका ताप-क्षेत्र—

सरा-तिय-अट्ठ-चउ-णव-अंक-वकमेण जोयणाणि अंसा ।

तेणउवो चारि-सया, विदिय-पहवकम्मि मज्झ-पह-ताओ ॥३२५॥

$$९८५३७ \text{ । } ४१३ \text{ ।}$$

एवं बाहिर-पह-हेट्ठिम-पहंतं णेवब्बं ।

अर्थ—(सूर्यके) द्वितीय मार्गमें स्थित रहनेपर मध्यम पथमें तापका प्रमाण सात, तीन, आठ, चार और नौ, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् चौरानबे हजार आठ सौ सैंतीस योजन और चार सौ तेरानबे भाग अधिक ९८५३७ $\frac{१३}{५}$ योजन होता है ॥३२५॥

इसप्रकार बाह्य पथके अधस्तन पथ तक ले जाना चाहिए ।

द्वितीय पथकी बाह्य बीचीका ताप-क्षेत्र—

पणणउदि सहस्सा तिय-सयाणि बीसुत्तराणि जोयणया ।

छत्तीस-दु-सय-अंसा, बिदिय-पहक्कम्मि अंत-पह-तायो ॥३२६॥

१५३२० । ३३६ ।

अर्थ—(सूर्यके) द्वितीय पथमें स्थित होनेपर अन्तिम पथमें तापका प्रमाण पंधानबै हजार तीन सौ बीस योजन और दो सौ छत्तीस भाग अधिक (१५३२० $\frac{३३६}{१०००}$ योजन) है ॥३२६॥

सूर्यके द्वितीय पथ में स्थित होनेपर लवणसमुद्रके छठे भागमें ताप-क्षेत्र—

पंच-दुग-अट्ठ-सत्ता, पंचेक्कंक - वक्कमैण जोयणया ।

अंसा णव-दुग-सत्ता, बिदिय-पहक्कम्मि लवण-छट्ठंसे ॥३२७॥

१५७८२५ । ३३६ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय-पथमें स्थित होनेपर लवणसमुद्रके छठे भागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण पाँच, दो, आठ, सात, पाँच और एक इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् एक लाख सत्तावन हजार आठ सौ पच्चीस योजन और सात सौ उनतीस भाग अधिक (१५७८२५ $\frac{३३६}{१०००}$ योजन) है ॥३२७॥

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित होनेपर परिधियोंमें ताप-क्षेत्र प्राप्त करनेकी विधि—

इट्ठं परिरय - रासिं, सगदासदभहिय-पंच-सय-गुणिदं ।

अभ-तिय-अट्ठेक्क-हिदे, तायो तवणम्मि तदिय-मग्ग-ठिदे ॥३२८॥

१७३० ।

अर्थ—इष्ट परिधिको पाँच सौ सैंतालीससे गुणित करके उसमें एक हजार आठ सौ तीसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहनेपर विवक्षित परिधिमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण रहता है ॥३२८॥

विशेषार्थ—यहाँ सूर्य तृतीय पथमें स्थित है और इस पथमें दिनका प्रमाण ($\frac{१६}{१०००}$ — $\frac{१६}{१०००}$) $\frac{१७३०}{१०००}$ = $\frac{१७३०}{१०००}$ मुहूर्त है । अतः विवक्षित परिधिके प्रमाणमें $\frac{१७३०}{१०००}$ मुहूर्तोंका गुणाकर ६० मुहूर्तों का भाग देनेपर अर्थात् ($\frac{१७३०}{१०००} \times \frac{६०}{१०००} = \frac{१०३८०}{१०००००}$) ५४७ का गुणाकर १८३० का भाग देनेपर ताप-क्षेत्र प्राप्त होता है ।

सूर्य के तृतीय पथमें स्थित होनेपर मेरु आदि परिधियोंमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण—

णवय-सहस्सा चउस्सयाणि वावण्य-जोयणाणि कला ।

चउहत्तरि-मेत्ताओ, तदिय - पहवकम्मि मंदरे ताओ ॥३२६॥

६४५२ । १२३० ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित होनेपर सुमेरु पर्वतके ऊपर ताप-क्षेत्रका प्रमाण नौ हजार चार सौ बावन योजन और चौहत्तर कला प्रमाण अधिक है ॥३२९॥

(मेरु परिधि — $31\frac{1}{2}$) $\times \frac{4}{5} = ६४५२\frac{२}{५}$ योजन तापक्षेत्र है ।

तिय-तिय-एक-ति-पंचा, अंक-कमे पंच-सप्त-छ-दुग-कला ।

अट्ट-दु-णव-दुग-भजिदा, ताओ खेमाए तदिय - पह - सूर ॥३३०॥

५३१३३ । ३६३५ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित होनेपर क्षेमा नगरी में तापका प्रमाण तीन, तीन, एक, तीन और पांच इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् तिरेपन हजार एक सौ तैंतीस योजन और दो हजार नौ सौ अट्ठाईससे भाजित दो हजार छह सौ पचहत्तर कला है ॥३३०॥

(क्षेमाकी परिधि $1777\frac{1}{2} = 1\frac{1}{2} \times 10^4$) $\times \frac{4}{5} = 1\frac{4}{5} \times 10^4 = ५३१३३\frac{२}{५}$ योजन सूर्यके तृतीय पथ स्थित क्षेमनगरीके ताप क्षेत्रका प्रमाण ।

दुग-छ-दुग-अट्ट-पंचा, अंक - कमे णव-दुगेक्क-सत्त-कला ।

ख-चउ-छ-चउ-इगि-भजिदा, तदिय-पहवकम्मि खेमपुर-ताओ ॥३३१॥

५८२६२ । १२३४० ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित रहते क्षेमपुरीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण दो, छह, दो, आठ और पांच, इन अंकोंके क्रमसे अट्ठावन हजार दो सौ बासठ योजन और चौदह हजार छह सौ चालीससे भाजित सात हजार एक सौ उनतीस कला है ॥३३१॥

(क्षेमपुरीकी परिधि $19491\frac{1}{2} = 1\frac{1}{2} \times 10^4$) $\times \frac{4}{5} = 1\frac{4}{5} \times 10^4 = ५८२६२\frac{३}{५}$ योजन ताप-क्षेत्र ।

दुग-अट्ट-छ-दुग-छवका, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।

पंचय-छ-अट्ट-एक्का, ताओ रिट्ठाअ तदिय-पह-सूर ॥३३२॥

६२६८२ । १२६५० ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित रहते अरिष्ठा नगरीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण दो, आठ, छह, दो और छह, इन अंकोंके क्रमसे बासठ हजार छह सौ बयालीस योजन और एक हजार आठ सौ पैंसठ भाग है ॥३३२॥

(अरिष्ठाकी परिधि $२०६७०४\frac{३}{४} = १६७७३३५$) $\times \frac{५४७}{१८३६} = १८३५३३३६ = ६२६८२६१६१\frac{५}{८}$ यो० तापक्षेत्र ।

गयणेषक-अट्ट-सत्ता, छ्षकं श्रंक-क्कमेण जोयणया ।

श्रंसा णव-पण-दु-ख-इगि, तदिय-पहक्कम्मि रिट्टपुरे ॥३३३॥

६७८१० । १७३५० ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होने पर अरिष्टपुरमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण शून्य, एक, आठ, सात और छह, इन अंकोंके क्रमसे सड़सठ हजार आठ सौ दस योजन और दस हजार दो सौ उनसठ भाग है ॥३३३॥

(अरिष्टपुरी की परिधि $२२६८६२\frac{३}{४} = १८१६६६७$) $\times \frac{५४७}{१८३६} = ६६३७६६५६ = ६७८१०१७३५०$ योजन तापक्षेत्र ।

णभ-तिय-दुग-दुग-सत्ता, श्रंक-कमे जोयणाणि श्रंसा य ।

पण-णव-णव-चउमेत्ता, तावो खग्गाए तदिय-पह-तवणे ॥३३४॥

७२२३० । १४६५० ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित रहने पर खड्गपुरीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण शून्य, तीन, दो, दो और सात इन अंकोंके क्रमसे बहत्तर हजार दो सौ तीस योजन और चार हजार नौ सौ पंचानव भाग है ॥३३४॥

(खड्गपुरीकी परिधि $२४१६४८\frac{३}{४} = १८३३१८५$) $\times \frac{५४७}{१८३६} = ५११४६०४३६ = ७२२३०१४६५०$ योजन ताप-क्षेत्रका प्रमाण है ।

अट्ट-पण-तिदय-सत्ता, सत्तंक-कमे णवट्ट-ति-ति-एक्का ।

होंति कलाओ तावो, तदिय-पहक्कम्मि मंजुसपुरीए ॥३३५॥

७७३५८ । १३३५० ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित होनेपर मंजूषापुरीमें तापक्षेत्रका प्रमाण आठ, पाँच, तीन, सात और सात इन अंकोंके क्रमसे सत्तर हजार तीन सौ अट्ठावन योजन और तेरह हजार तीन सौ नवासी कला अधिक है ॥३३५॥

(मंजूषपुरकी परिधि $२५८८०\frac{५}{८}$ = २५८८०.६२५) $\times \frac{५४७}{१८३०} = ७७३५८३३३३\frac{३}{४}$ योजन ताप-क्षेत्र है ।

अट्ट-सग-सत्त-एक्का, अट्ट-क-कमेण पंच-दुग-एक्का ।

अट्ट य अंसा तावो, तदिय-पहक्कम्मि ओसहपुरीए ॥३३६॥

८१७७८ । १६१२५ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होने पर औषधिपुरीमें तापक्षेत्रका प्रमाण आठ, सात, सात, एक और आठ, इन अंकोंके क्रमसे इक्यासी हजार सात सौ अठहत्तर योजन और आठ हजार एक सौ पच्चीस भाग है ॥३३६॥

(औषधिपुरीकी परिधि $२७३५९१\frac{१}{२}$ = २७३५९१.५) $\times \frac{५४७}{१८३०} = ८१७७८३३३३\frac{३}{४}$ यो० तापक्षेत्र ।

सत्त-णभ-णवय-एक्का, अट्ट-क-कमेण णव-सगट्टेक्का ।

अंसा होवि हु तावो, तदिय-पहक्कम्मि पुंडरिगिणिए ॥३३७॥

८६९०७ । १६६४६ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होनेपर पुंडरीकिणी नगरीमें तापक्षेत्र सात, शून्य, नौ, छह और आठ, इन अंकोंके क्रमसे छ्यासी हजार नौ सौ सात योजन और एक हजार आठ सौ उन्चासी भाग है ॥३३७॥

(पुण्डरीकिणीपुरीकी परिधि $२६०७४६\frac{१}{२}$ = २६०७४६.५) $\times \frac{५४७}{१८३०} = ८६९०७४६९\frac{१}{२}$ योजन तापक्षेत्र ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते अभ्यन्तर वीथी का तापक्षेत्र—

दुग-अट्ट-एक्क-चउ-णव, अंक-कमे ति-दुग-एक्क अंसा य ।

णभ-तिय-अट्ठेक्क-हिवा, तदिय-पहक्कम्मि पढम-पह-तावो ॥३३८॥

९४१८२ । १६३३० ।

अर्थ—(सूर्य के) तृतीय पथमें स्थित होनेपर प्रथम वीथी में ताप-क्षेत्र दो, आठ, एक, चार और नौ, इन अंकोंके क्रमसे चौरानव हजार एक सौ ब्यासी योजन और एक हजार आठ सौ तीस से भाजित छह सौ तेईस भाग प्रमाण है ॥३३८॥

(अभ्यन्तर वीथी की परिधि ३१५०८६) $\times \frac{५४७}{१८३०} = ९४१८२६३\frac{३}{४}$ योजन ताप-क्षेत्र ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते द्वितीय वीथी का ताप-क्षेत्र—

चउ-णउदि-सहस्सा इगि-सयं च सगसीदि जोयणा अंसा ।
बाहत्तरि सत्त-सया, तदिय-पहवकम्मि बिदिय-पह-तावो ॥३३६॥

९४१८७ । १७७२० ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित रहने पर द्वितीय वीथीमें ताप-क्षेत्र चौरानबे हजार एक सौ सतासी योजन और सात सौ बहत्तर भाग प्रमाण है ॥३३९॥

द्वितीय पथकी परिधि ३१५१०६ यो० $\times \frac{१६४३}{१०००} = ९४१८७ \frac{७७२}{१०००}$ यो० ताप क्षेत्र है ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते तृतीय वीथी का ताप-क्षेत्र—

चउणउदि-सहस्सा इगि-सयं च बाणउदि जोयणा अंसा ।
सोलस-सया तिरधिया, तदिय-पहवकम्मि तदिय-पह-तावो ॥३४०॥

९४१९२ । १७७३० ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होनेपर तृतीय वीथीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण चौरानबे हजार एक सौ बानबे योजन और सोलह सौ तीन भाग अधिक अर्थात् (९४१९२ $\frac{१७७३}{१०००}$ योजन) है ॥३४०॥

सूर्य के तृतीय पथमें स्थित रहते चतुर्थ वीथीका ताप-क्षेत्र—

खउ-णउदि-सहस्सा इगि-सयं च अउणउदि जोयणा अंसा ।
तेसट्ठी दोण्णि सया, तदिय-पहवकम्मि तुरिम-पह-तावो ॥३४१॥

९४१९८ । १७७३० ।

एवं मज्झिम-पह-आइल्ल-परिहि-परियंतं णेवव्वं ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होनेपर चतुर्थ वीथीमें तापक्षेत्र चौरानबे हजार एक सौ अठ्ठानबे योजन और दो सौ तिरसठ भाग (९४१९८ $\frac{१७७३}{१०००}$ योजन) प्रमाण है ॥३४१॥

इसप्रकार मध्यम पथकी आदि (प्रथम) परिधि पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते मध्यम पथका ताप-क्षेत्र—

चउणउदि सहस्सा छस्सयाणि खउसट्ठि जोयणा अंसा ।
चउहत्तरि अट्ठ-सया, तदिय-पहवकम्मि मज्झ-पह-तावो ॥३४२॥

६४६६४ । १८७४ ।

एवं दुच्चरिम-मगंतं णेदब्बं ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित रहते मध्यम पथमें ताप-क्षेत्र चौदानवै हजार छह सौ चौंसठ योजन और आठ सौ चौहत्तर भाग (६४६६४.१८७४ योजन) प्रमाण है ॥३४२॥

इसप्रकार द्विचरम मार्ग तक ले जाना चाहिए ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते बाह्य बीथीका तापक्षेत्र—

पणणउवि सहस्सा इमि-सयं च छादाल जोयणाणि कला ।

अट्ठत्तरि पंच-सया, तविय-पहक्कम्मि बहि-पहे-तावो ॥३४३॥

९५१४६ । १८७४ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होनेपर बाह्य पथमें ताप-क्षेत्र पंचानवै हजार एक सौ छप्यालीस योजन और पाँच सौ अठहत्तर कला (९५१४६.१८७४ योजन) प्रमाण है ॥३४३॥

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते लवणसमुद्रके छठे-भागमें ताप-क्षेत्र—

सम-तिय-पण-सग-पंचा, एक्कं कमसो वु-पंच-अउ-एक्का ।

अंसा हवेवि तावो, तविय-पहक्कम्मि लवण - छट्ठसे ॥३४४॥

१५७५३७ । १८७४ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित होनेपर लवण-समुद्रके छठे भागमें ताप-क्षेत्र सात, तीन, पाँच, सात, पाँच और एक इन अंकोंके क्रमसे एक लाख सत्तावन हजार पाँच सौ सैंतीस योजन और एक हजार चार सौ बावन भाग प्रमाण है ॥३४४॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके छठे भागकी परिधिका प्रमाण ५२७०४६ यो० है । सूर्य तृतीय बीथीमें स्थित है और उस समय दिन $१७\frac{१}{२} = १६\frac{१}{२}$ मुहूर्तोंका होता है । इन मुहूर्तोंका परिधिके प्रमाणमें गुणा कर ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर ताप-क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$५२७०४६ \times १६\frac{१}{२} \times \frac{१}{६०} = १४०३६०२० = १५७५३७३\frac{१}{२} \text{ योजन ।}$$

शेष बीथियोंमें तापक्षेत्रका प्रमाण—

धरिऊण विण-मुहत्तं, पडि-वीहि सेसएसु मग्गेसु ।

सव्व - परिहोण तावं, दुच्चरिम - मगंतं णेदब्बं ॥३४५॥

अर्थ—इसीप्रकार प्रत्येक वीथीमें दिनके मुहूर्तोंका आश्रय करके शेष मार्गमें द्विचरम मार्ग पर्यन्त सप्त-परिधियोंमें ताप-क्षेत्र ज्ञात कर लेना चाहिए ॥३४५॥

विशेषार्थ—प्रथम, द्वितीय और तृतीय पथ स्थित सूर्यके तापक्षेत्रका प्रमाण प्रत्येक वीथीके दिन मुहूर्तोंका आश्रय कर १९४ परिधियोंमेंसे कुछ परिधियोंमें कहा जा चुका है और बाह्य वीथी स्थित सूर्यके तापक्षेत्रका प्रमाण कुछ परिधियोंमें बागे कहा जा रहा है। शेष (१८४ — ४ =) १८० वीथियोंमें स्थित सूर्यके ताप क्षेत्रका प्रमाण प्रत्येक वीथीके दिन मुहूर्तोंका आश्रय कर पूर्वोक्त नियमानुसार ही सर्व परिधियोंमें ज्ञात कर लेना चाहिए ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होने पर इच्छित परिधिमें तापक्षेत्र
निकालनेकी विधि—

पंच - विहत्ते इच्छिय-परिरय-रासिम्मि होदि जं लद्धं ।
सा 'ताव-खेत्त-परिही, बाहिर-सग्गम्मि दुमणि-ठिव-समए ॥३४६॥

अर्थ—इच्छित परिधिकी राशिमें पाँचका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतनी सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित रहते समय ताप क्षेत्रकी परिधि होती है ॥३४६॥

विशेषार्थ—यहाँ सूर्य बाह्य (१८४ वीं) वीथीमें स्थित है और इस वीथी में दिनका प्रमाण केवल १२ मुहूर्तका है । विवक्षित परिधिके प्रमाणमें १२ मुहूर्तका गुणा कर ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर अर्थात् (३३) = ५ का भाग देनेपर तापक्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मेरु आदि की परिधियोंमें
ताप-क्षेत्रका प्रमाण—

छत्स सहस्सा ति-सया, चउवीसं जोयणाणि दोण्णि कला ।
पंच-हिदा मेरु - णगे, ताथो बाहिर-पह-ट्ठिवक्कम्मि ॥३४७॥

६३२४ । ६ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मेरु पर्वतके ऊपर ताप-क्षेत्रका प्रमाण छह हजार तीन सौ बीबीस योजन और पाँचसे भाजित दो कला रहता है ॥३४७॥

(मेरु परिधि ३१६२२) ÷ ५ = ६३२४ $\frac{२}{५}$ योजन तापक्षेत्र है ।

पंचत्तीस-सहस्सा, पण-सय बावण्ण जोयणा अंसा ।

अट्ठ-हिंसा खेमोवरि, तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३४८॥

३५५५२ । १ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहनेपर क्षेमा नगरीके ऊपर ताप-क्षेत्र पैंतीस हजार पाँच सौ बावन योजन और योजनके आठवें भाग प्रमाण रहता है ॥३४८॥

(क्षेमानगरी की परिधि $१७७७६०\frac{१}{२} = १४३३०८५$) $\times \frac{१}{२} = ७१६५०४२\frac{१}{२} = ३५५५२\frac{१}{२}$ योजन तापक्षेत्र है ।

तिय-अट्ठ-णवट्ठ-तिया, अंक-कमे सत्त दोण्णि अंसा य ।

खाल - विहसा तावो, खेमपुरी बाहि-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३४९॥

३८६८३ । ३७ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर क्षेमपुरीमें तापक्षेत्र तीन, आठ, नौ, आठ और तीन, इन अंकोंके क्रमसे अड़तीस हजार नौ सौ तेससी योजन और खालीससे विभक्त सत्ताईस भाग प्रमाण रहता है ॥३४९॥

(क्षेमपुरीकी परिधि $१६४६१८\frac{३}{४} = १५५३३४०$) $\times \frac{१}{४} = ३८८३३५० = ३८६८३\frac{३७}{४}$ योजन तापक्षेत्र है ।

एक्कत्ताल-सहस्सा, णव-सय-चालीस जोयणा भागा ।

पणत्तीसं रिट्ठाए, तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३५०॥

४१९४० । ३७ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्यपथमें स्थित होनेपर अरिष्टा नगरीमें तापक्षेत्र एकतालीस हजार नौ सौ चालीस योजन और पैंतीस भाग प्रमाण रहता है ॥३५०॥

(अरिष्टा नगरीकी परिधि $२०६७०४\frac{३}{४} = १६७७५३५$) $\times \frac{१}{४} = ४१९३८३\frac{३}{४} = ४१९४०\frac{३}{४}$ योजन तापक्षेत्र है ।

पंचत्ताल-सहस्सा, बाहत्तरि ति-सय जोयणा अंसा ।

सत्तरस अरिट्ठपुरे, तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३५१॥

४५३७२ । ३७ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर अरिष्टपुरमें तापक्षेत्र पैतालीस हजार तीन सौ बहत्तर योजन और सत्तरह भाग प्रमाण रहता है ॥३५१॥

(अरिष्टपुरी की परिधि $२२६८६२\frac{१}{२} = १८१५६३०$) $\times \frac{१}{२} = ९०७८३१५ = ४५३७२१\frac{१}{२}$ योजन तापक्षेत्र है ।

अट्ठत्ताल-सहस्सा, ति-सया उणत्तीस जोयणा अंसा ।

पणुवीसा खगोवरि, तावो बाहिर-पह-ट्ठिवक्कम्मि ॥३५२॥

४८३२६ । ५ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्यपथमें स्थित होनेपर खड्गानगरीमें ताप-क्षेत्र अड़तालीस हजार तीन सौ उनतीस योजन और पच्चीस भाग प्रमाण है ॥३५२॥

(खड्गानगरी की परिधि $२४१६४८\frac{१}{२} = १९३३१८५$) $\times \frac{१}{२} = ९६६५९३ = ४८३२९६$ योजन तापक्षेत्र है ।

एक्कावण-सहस्सा, सत्त-सया एक्कसट्ठि जोयणया ।

सत्तंसा बाहिर - पह - ठिब - सूरे मंजुसे तावो ॥३५३॥

५१७६१ । ४० ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मंजूषा नगरीमें तापक्षेत्र इक्कावन हजार सात सौ इकसठ योजन और सात भाग प्रमाण रहता है ॥३५३॥

(मंजूषापुरकी परिधि $२५८८०५\frac{१}{२} = २०७०४४०$) $\times \frac{१}{२} = १०३५२२० = ५१७६१४\frac{१}{२}$ योजन तापक्षेत्र है ।

अट्ठवण-सहस्सा, सग-सयाणि अट्ठरस जोयणा अंसा ।

पणारस ओसहिपुरे, तावो बाहिर-पह-ट्ठिवक्कम्मि ॥३५४॥

५४७१८ । ३५ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर औषधिपुरमें तापक्षेत्र चौवन हजार सात सौ अठारह योजन और पन्द्रह भाग प्रमाण रहता है ॥३५४॥

(औषधिपुरकी परिधि $२७३५९१\frac{१}{२} = २१६६९३५$) $\times \frac{१}{२} = १०८३४६७ = ५४७१८६\frac{१}{२}$ योजन तापक्षेत्र है ।

अट्ठावण-सहस्सा, इगि-सथ-उणवण जोयणा अंसा ।

सगतीस बहि-पह-ट्ठव-तवणे तावो पुरम्मि चरिमम्मि ॥३५५॥

५ = १४९ । ३७ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर अन्तिमपुर अर्थात् पुण्डरीकिणी नगरीमें ताप-क्षेत्र अट्ठावन हजार एक सौ उनचास योजन और सैंतीस भाग प्रमाण रहता है ॥३५५॥

(पुण्डरीकिणीपुरकी परिधि २९०७४९६ - २३३५६६७) $\times \frac{1}{2} = २३३५६६७ = ५८१४९३७$ योजन तापक्षेत्र है ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर प्रथम पथमें ताप-क्षेत्र—

तेसट्ठि - सहस्साणि, सत्तरसं जोयणाणि चउ-अंसा ।

पंच-हिवा बहि-मग्ग-ट्ठवम्मि कुमणिम्मि पढम-पह-तावो ॥३५६॥

६३०१७ । ६ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्यमार्गमें स्थित होनेपर प्रथम पथ (अभ्यन्तर वीथी) में ताप-क्षेत्र तिरेसठ हजार सत्तरह योजन और पाँचसे भाजित चार भाग प्रमाण रहता है ॥३५६॥

(प्रथम पथ की परिधि ३१५०८९) $\div ५ = ६३०१७\frac{६}{५}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण है ।

सूर्यके बाह्यपथ स्थित रहते द्वितीय वीथीमें तापक्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, जोयणा एक्कवीस एक्ककला ।

बिदिय-पह-ताव-परिही, बाहिर-मग्ग-ट्ठवे तवणे ॥३५७॥

६३०२१ । ३ ।

एवं मज्झिम-पहंत णेव्वं ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर द्वितीय वीथी की ताप-परिधिका प्रमाण तिरेसठ हजार इक्कीस योजन और एक भाग प्रमाण है ॥३५७॥

(द्वितीय पथ की परिधि ३१५१०६ यो०) $\times \frac{1}{2} = ६३०२१\frac{३}{२}$ योजन ताप-परिधि है ।

इसप्रकार मध्यम पथ पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यके बाह्यमार्गमें स्थित होनेपर मध्यम पथमें तापक्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, ति-सया चालीस जोयणा दु-कला ।

मज्झ-पह-ताव-सेसं, विरोचणे बाहि - मग्ग - ट्ठवे ॥३५८॥

६३३४० । ३ ।

एवं बुचरिम-मगंतं णेदध्वं ।

अर्थ—वेरोचन (सूर्य) के बाह्यभागमें स्थित होनेपर मध्यम पथमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण तिरेसठ हजार तीन सौ चालीस योजन और दो कला रहता है ॥३५८॥

(मध्यम पथकी परिधि ३१६७०२) $\div ५ = ६३३४०\frac{२}{५}$ योजन ताप-क्षेत्र है ।

इसप्रकार द्विचरित्त मार्ग पर्यन्त ले जाता चाहिए ।

सूर्यके बाह्य पथ स्थित होनेपर बाह्यपथमें तापक्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, छस्सय वासट्ठि जोयणाणि कला ।

सत्तारो बहि-मग-ट्ठिबस्मि तरणिस्मि बहि-पहे-ताओ ॥३५९॥

६३६६२ । ५ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर बाह्यमार्गमें ताप-क्षेत्र तिरेसठ हजार छह सौ बासठ योजन और चार कला प्रमाण रहता है ॥३५९॥

(बाह्य पथकी परिधि ३१८३१४) $\div ५ = ६३६६२\frac{४}{५}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण है ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते लवण-समुद्रके छठे भागमें

तापक्षेत्रका प्रमाण—

एकं लखं णव-जुव-चउवण-सयाणि जोयणा अंसा ।

बाहिर-पह-ट्ठिबस्मे, ताव - खिदी लवण - छट्ठंसे ॥३६०॥

१०५४०६ । ३ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर लवणसमुद्रके छठे भागमें ताप-क्षेत्र एक लाख पाँच हजार चार सौ नौ योजन और एक भाग प्रमाण है ॥३६०॥

(लवणसमुद्रके छठे भागकी परिधि ५२७०४६) $\div ५ = १०५४०६\frac{१}{५}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण है ।

सूर्यकी किरण-शक्तियोंका परिचय—

आदिम-पहावु बाहिर-पहस्मि भाणुस्स गमण-कालस्मि ।

हाएवि किरण - सत्ती, वहुदि आगमण - समयस्मि ॥३६१॥

अर्थ—प्रथम पथसे बाह्य पथकी ओर जाते समय सूर्यकी किरण-शक्ति होन होती है और बाह्य पथसे आदि पथकी ओर वापिस आते समय वह किरण-शक्ति वृद्धिगत होती है ॥३६१॥

दोनों सूर्योंका तापक्षेत्र—

ताव खिबो परिहोओ, एवाओ एक-कमलणाहम्मि ।
दुगुणिब-परिमाणाओ, सहस्स - किरणेसु दोण्हम्मि ॥३६२॥

ताव-खिबि-परिही समत्ता ।

अर्थ—एक सूर्यके रहते ताप-क्षेत्र-परिधिमें जितना ताप रहता है उससे दुगुने प्रमाण ताप दो सूर्योंके रहनेपर होता है ॥३६२॥

ताप-क्षेत्र परिधिका कथन समाप्त हुआ ।

सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते रात्रिका प्रमाण—

सब्वासुं परिहोसुं, पढम-पह-ट्ठिद-सहस्स-किरणम्मि ।
बारस - मुहुत्तमेत्ता, पुह पुह उप्पज्जवे रत्ती ॥३६३॥

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर पृथक्-पृथक् सब (१९४) परिधियोंमें बारह मुहूर्त प्रमाण रात्रि होती है ॥३६३॥

सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते इच्छित परिधिमें तिमिरक्षेत्र
प्राप्त करने की विधि—

इच्छिब-परिहि-पमाणं, पंच-विहत्तम्मि होवि जं लब्धं ।
सा तिमिर-खेत्त-परिही, पढम-पह-ट्ठिद-विणेसम्मि ॥३६४॥

३ ।

अर्थ—इच्छित परिधि-प्रमाणको पाँचसे विभक्त करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर तिमिर क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण होता है ॥३६४॥

विशेषार्थ—यहाँ सूर्य प्रथम बोधीमें स्थित है और इस बोधीमें रात्रिका प्रमाण १२ मुहूर्तका है । विवक्षित परिधिके प्रमाणमें १२ मुहूर्तका गुणाकर ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर अर्थात् $(\frac{12}{60}) = \frac{1}{5}$ अर्थात् ५ का भाग देनेपर तिमिर-क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है ।

सूर्यके प्रथम पथमें रहते मेरु आदि परिधियोंमें तिमिर क्षेत्रका प्रमाण—

छस्स सहस्सा ति-सया, चउवीसं जोयणाणि वोणिण कला ।

मेरुगिरि - तिमिर - खेत्तं, आविम - मग्गट्टिवे तवणे ॥३६५॥

६३२४ । ६ ।

अर्थ—सूर्यके आदि (प्रथम) मार्गमें स्थित होनेपर मेरु पर्वतके ऊपर तिमिरक्षेत्रका प्रमाण अठ्ठ हजार तीन सौ चौबीस योजन और दो भाग अधिक है ॥३६५॥

(मेरु परिधि 31532) $\times \frac{1}{2} = 6324\frac{1}{2}$ योजन तिमिरक्षेत्र ।

पणत्तीस-सहस्सा पण-सयाणि आवण्ण-जोयणा अंसा ।

अट्ट-हिवा खेमाए, तिमिर-खिवी पढम-पह-ठिद-पयंगे ॥३६६॥

३५५५२ । १ ।

अर्थ—पतंग (सूर्य) के प्रथम पथमें स्थित होनेपर खेमा नगरीमें तिमिरक्षेत्र पैंतीस हजार पाँच सौ बावन योजन और एक योजनके आठवें भाग-प्रमाण रहता है ॥३६६॥

(खेमाकी परिधि $177760\frac{1}{2} = 14332000$) $\times \frac{1}{2} = 7166000 = 35552\frac{1}{2}$ योजन तिमिरक्षेत्र ।

तिय-अट्ट-णवट्ट-तिया, अंक-कमे सग-दुगंस चाल-हिवा ।

खेमपुरी-तम-खेत्तं, विवायरे पढम - मग्ग - ठिदे ॥३६७॥

३८६८३ । ३७ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम मार्गमें स्थित होनेपर खेमपुरीमें तम-क्षेत्र तीन, आठ, नौ, आठ और तीन, इन अंकोंके क्रमसे अड़तीस हजार नौ सौ तेरासी योजन और सत्ताईस भाग-प्रमाण रहता है ॥३६७॥

(खेमपुरीकी परिधि $158512\frac{1}{2} = 14563300$) $\times \frac{1}{2} = 7281650 = 364082\frac{1}{2}$ योजन तिमिरक्षेत्र है ।

एकत्ताल-सहस्सा, णव-सय-चालीस जोयणाणि कला ।

पणत्तीस तिमिर-खेत्तं, रिट्ठाए पढम-पह-गद-दिणसे ॥३६८॥

४१९४० । ३७ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथको प्राप्त होनेपर अरिष्टा नगरीमें तिमिर-क्षेत्र इकतालीस हजार नौ सौ चालीस योजन और पैंतीस कला-प्रमाण रहता है ॥३६८॥

(अरिष्टानगरीकी परिधि $२०९७०४\frac{३}{४} = १६७७५३\frac{५}{८}$) $\times \frac{३}{४} = ३३५५२७ = ४१९४०७$
($\frac{३५}{४}$) योजन तिमिरक्षेत्र है ।

बावत्तरि ति-सयाणि, पणबाल-सहस्स जोयणा अंसा ।

सत्तरस अरिष्टपुरे, तम - क्षेत्रं पढम - पद्म - सूरै ॥३६९॥

४५३७२ । $\frac{३५}{४}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर अरिष्टपुरमें तम-क्षेत्र पैंतालीस हजार तीन सौ बहत्तर योजन और सत्तरह भाग-प्रमाण रहता है ॥३६९॥

(अरिष्टपुरीकी परिधि $२२६८६२\frac{३}{४} = १८१४६३७$) $\times \frac{३}{४} = १८१४६३७ = ४५३७२\frac{३}{४}$
योजन तिमिरक्षेत्र है ।

अट्ठत्ताल-सहस्सा, ति-सया उणतीस जोयणा अंसा ।

पणुवीसं खग्गाए, बहुमज्झम-पणिधि-तम-क्षेत्रं ॥३७०॥

४८३२९ । $\frac{३५}{४}$ ।

अर्थ—खड्गा नगरीके बहुमध्यम प्रणिधिभागमें तमक्षेत्र अड़तालीस हजार तीन सौ छनतीस योजन और पच्चीस भाग-प्रमाण रहता है ॥३७०॥

(खड्गा नगरीकी परिधि $२४१६४८\frac{३}{४} = १९३३१८५$) $\times \frac{३}{४} = ३६९६३७ = ४८३२९\frac{३}{४}$
($\frac{३५}{४}$) योजन तमक्षेत्र है ।

एक्कावण-सहस्सा, सप्त-सया एक्कसट्ठि जोयणया ।

सत्तंसा तम - क्षेत्रं, मंजुसपुर - मज्झ - पणिधीए ॥३७१॥

५१७६१ । $\frac{३५}{४}$ ।

अर्थ—मंजुषपुरकी मध्य-प्रणिधिमें तम-क्षेत्र इक्कावन हजार सात सौ इकसठ योजन और सात भाग-प्रमाण रहता है ॥३७१॥

(मंजुषापुरकी परिधि $२५८८०५\frac{३}{४} = १०७७४४७$) $\times \frac{३}{४} = १०७७४४७ = ५१७६१\frac{३}{४}$ योजन तम-क्षेत्र है ।

चउधण्ण-सहस्सा सग-सघाणि अट्ठरस-जोयणा अंसा ।

पण्णरस ओसहोपुर-बहुमज्झम-पणिधि-तिमिर-खिदी ॥३७२॥

५४७१८ । १/२ ।

अर्थ—ओषधिपुरकी बहुमध्यप्रणिधिमें तिमिरक्षेत्र चौवन हजार सात सौ अठारह योजन और पन्द्रह भाग-प्रमाण रहता है ॥३७२॥

(ओषधिपुरकी परिधि $२७३५६१\frac{१}{२} = २७६८७३५$) $\times \frac{१}{२} = १३८४३६७\frac{१}{२} = ५४७१८\frac{१}{२}$ ($\frac{१}{२}$) योजन तमक्षेत्र है ।

अट्ठावण्ण-सहस्सा, इगिसय उणवण्ण जोयणा अंसा ।

सगतीस पुंडरीगिणि-पुरीए बहु-मज्झम-पणिधि-तमं ॥३७३॥

५८१४६ । ३/४ ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी पुरीकी बहुमध्य-प्रणिधिमें तमका प्रमाण अट्ठावन हजार एकसौ उनचास योजन और सैंतीस भाग अधिक रहता है ॥३७३॥

(पुण्डरीकिणी नगरीकी परिधि $२६०७४६\frac{३}{४} = २६३५६७७$) $\times \frac{३}{४} = ५८१४९\frac{३}{४}$ योजन तमक्षेत्र है ।

सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते अभ्यन्तर वीथीमें तमक्षेत्रका प्रमाण—

तेसट्ठि-सहस्साणि, सत्तरसं जोयणा चउ-कलाओ ।

पंच-हिवा पढम-पहे, तम - परिही पह-ठिद-दिणेसे ॥३७४॥

६३०१७ । ५ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर प्रथम पथमें तमक्षेत्रकी परिधि तिरेसठ हजार सत्तरह योजन और चार भाग-प्रमाण होती है ॥३७४॥

(प्रथम पथकी परिधि ७१५०८०) $\times \frac{१}{२} = ६३०१७\frac{१}{२}$ योजन ।

द्वितीय पथमें तम-क्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, जोयणा एकवीस एक-कला

खिदिय-पह-तिमिर-खेरां, आदिम - सग - द्विसे सूर ॥३७५॥

६३०२१ । ५ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर द्वितीय वीथीमें तिमिर-क्षेत्र तिरैसठ हजार इक्कीस योजन और एक कला अधिक रहता है ॥३७५॥

(द्वितीय वीथीकी परिधि 31530°) $\times \frac{1}{2} = 63021\frac{1}{2}$ योजन ।

तृतीय पथमें तम-क्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, चउवीसं जोयणाणि चउ अंसा ।

तविय-पह-तिमिर-सूमी, मत्ताडे पढम - मग्ग - गवे ॥३७६॥

६३०२४ । ५ ।

एवं मज्झिम-मग्गंतं णेदब्बं ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम मार्गमें स्थित रहने पर तृतीय पथमें तिमिर क्षेत्र तिरैसठ हजार चौबीस योजन और चार भाग अधिक रहता है ॥३७६॥

(तृतीय पथकी परिधि 31532°) $\times \frac{1}{2} = 63024\frac{1}{2}$ योजन ।

इसप्रकार मध्यम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

मध्यम पथमें तम-क्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, ति-सया चालीस जोयणा दु-कला ।

मज्झिम-पह-तिमिर-खिदी, तिद्वकरे पढम-मग्ग-ठिदे ॥३७७॥

६३३४० । ५ ।

एवं दुचरिम-परियंतं णेदब्बं ।

अर्थ—सीधकर (सूर्य) के प्रथम पथमें स्थित होनेपर मध्यम पथमें तिमिर-क्षेत्र तिरैसठ हजार तीन सौ चालीस योजन और दो कला अधिक रहता है ॥३७७॥

(मध्यम पथकी परिधि $= 31340^{\circ}$) $\times \frac{1}{2} = 63340\frac{1}{2}$ योजन ।

इसप्रकार द्विचरम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

बाह्य पथमें तम-क्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, छस्सय-यासट्ठि-जोयणाणि कला ।

चत्तारो बहिमग्गे, तम - खेत्तं पढम-पह-ठिदे तवणे ॥३७८॥

६३६६२ । ५ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर बाह्य मार्गमें तम-क्षेत्र तिरैसठ हजार छह सौ बासठ योजन और चार कला अधिक रहता है ॥३७८॥

(बाह्य पथकी परिधि = 315312) $\times \frac{1}{2} = 630624$ योजन तमक्षेत्र ।

लवण समुद्रके छठे भागमें तम-क्षेत्र—

एकलं लवणं णव-जुव-सुवण्ण-सयाणि जोयणा अंसा ।

जल-छट्ठ-भाग-तिमिरं, उण्हयरे पढम - मग - ठिदे ॥३७९॥

१०५४०९ । ५ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम मार्गमें स्थित होनेपर लवणसमुद्र-सम्बन्धी जलके छठे भागमें तिमिर-क्षेत्र एक लाख पाँच हजार चार सौ नौ योजन और एक भाग अधिक रहता है ॥३७९॥

(लवणसमुद्रके छठे भागकी परिधि = 1264818) $\times \frac{1}{6} = 1054015$ योजन तिमिर-क्षेत्र है ।

(तालिका पृष्ठ ३४५ पर देखिये)

दोनों सूर्योंके प्रथम पथमें स्थित रहते ताप और तम-क्षेत्रका प्रमाण—

० क्र	विवक्षित परिधि-क्षेत्र	सूर्योंके प्रथम पथमें स्थित रहते		दो सूर्योंका सम्मिलित क्षेत्र	परिधियोंका प्रमाण गाथा— २४६-२६५
		ताप-क्षेत्रका प्रमाण (योजनों में) गाथा-२६७-३१०	तम-क्षेत्रका प्रमाण (योजनों में) गाथा-३६५-३७९		
१	मेरु पर	६४८६ $\frac{३}{४}$ +	६३२४ $\frac{३}{४}$ =	१५८११×२=	३१६२२योजन
२	क्षेमा पर	५३३२८ $\frac{३}{४}$ +	३५५५२ $\frac{३}{४}$ =	८८८८० $\frac{३}{४}$ ×२=	१७७७६० $\frac{३}{४}$ "
३	क्षेमपुरी पर	५८४७५ $\frac{३}{४}$ +	३८९८३ $\frac{३}{४}$ =	९७४५६ $\frac{३}{४}$ ×२=	१९४९१ $\frac{३}{४}$ "
४	अरिष्टा पर	६२६११ $\frac{३}{४}$ +	४१९४० $\frac{३}{४}$ =	१०४८५२ $\frac{३}{४}$ ×२=	२०९७०४ $\frac{३}{४}$ "
५	अरिष्टपुरी	६८०५८ $\frac{३}{४}$ +	४५३७२ $\frac{३}{४}$ =	११३४३१ $\frac{३}{४}$ ×२=	२२६८६२ $\frac{३}{४}$ "
६	खड्गपुरी	७२४६४ $\frac{३}{४}$ +	४८३२९ $\frac{३}{४}$ =	१२०८२४ $\frac{३}{४}$ ×२=	२४१६४ $\frac{३}{४}$ "
७	मंजूरापुरी	७७६४१ $\frac{३}{४}$ +	५१७६१ $\frac{३}{४}$ =	१२९४०२ $\frac{३}{४}$ ×२=	२५८८०५ $\frac{३}{४}$ "
८	औषधिपुरी	८२०७७ $\frac{३}{४}$ +	५४७१८ $\frac{३}{४}$ =	१३६७९५ $\frac{३}{४}$ ×२=	२७३५६१ $\frac{३}{४}$ "
९	पुण्डरीकिणी पुरीपर	८७२२४ $\frac{३}{४}$ +	५८१४६ $\frac{३}{४}$ =	१४५३७४ $\frac{३}{४}$ ×२=	२९०७४९ $\frac{३}{४}$ "
१०	प्रथम वीथी	९४५२६ $\frac{३}{४}$ +	६३०१७ $\frac{३}{४}$ =	१५७५४४ $\frac{३}{४}$ ×२=	३१५०८९ "
११	द्वितीय वीथी	९४५३१ $\frac{३}{४}$ +	६३०२१ $\frac{३}{४}$ =	१५७५५३×२=	३१५१०६ "
१२	तृतीय वीथी	९४५३७ $\frac{३}{४}$ +	६३०२४ $\frac{३}{४}$ =	१५७५६२×२=	३१५१२४ "
१३	मध्यम वीथी	९५०१० $\frac{३}{४}$ +	६३३४० $\frac{३}{४}$ =	१५८३५१×२=	३१६७०२ "
१४	बाह्य वीथी	९५४६४ $\frac{३}{४}$ +	६३६६२ $\frac{३}{४}$ =	१५९१५७×२=	३१८३१४ "
१५	लवणोदधि के छोटे भाग पर	१५८११३ $\frac{३}{४}$ +	१०५४०९ $\frac{३}{४}$ =	२६३५२३×२=	५२७०४६ "

नोट—ताप और तम क्षेत्रकी कुल ($१ + ८ + १८४ + १ =$) १९४ परिधियाँ हैं। इनमें से मेरु पर्वतकी १ + क्षेमा आदि नगरियोंकी ८ + लवण० की १ + और सूर्यकी (प्रारम्भिक ३ + मध्यम १ + और बाह्य १ =) ५ परिधियोंका अर्थात् १५ परिधियोंका विवेचन किया जा चुका है। इसीप्रकार शेष १७९ परिधियोंका भी जानना चाहिए।

सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित रहते इच्छित परिधिमें
तिमिर क्षेत्र प्राप्त करनेकी विधि—

इच्छित-परिरय-रासि, सगसद्गो-तिय-सएहि गुणिदूणं ।
राभ-तिय-अट्टेक्क-हिंवे, तम-लेत्तं बिदिय-पह-ठिदे-सूरे ॥३८०॥

३४७ ।
१८३० ।

अर्थ—इष्ट परिधि राशि को तीन सौ सड़सठसे गुणा करके प्राप्त गुणनफलमें अठारह सौ तीसका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित रहने पर विवक्षित परिधिमें तम-क्षेत्रका प्रमाण होता है ॥३८०॥

विशेषार्थ—यहाँ सूर्य द्वितीय पथमें स्थित है। इस वीथीमें रात्रिका प्रमाण ($१२ + १२$) $= १२१२ = १११$ मुहूर्तका है। विवक्षित परिधिके प्रमाणमें १११ मुहूर्तोंका गुणाकर ६० मुहूर्तों का भाग देनेपर अर्थात् $१११ \times ६० = ६६६०$ में से ३६७ का गुणाकर १८३० का भाग देनेपर तम-क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है।

सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर मेरु आदिकी परिधियोंमें
तम-क्षेत्रका प्रमाण—

एक्क-चउक्क-ति-छक्का, अंक-कमे दुग-दुग-ज्ज-अंसा य ।
पंचेक्क-णयय-भजिदा, मेरु-तमं बिदिय-पह-ठिदे सूरे ॥३८१॥

६३४१ । ६३३ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर मेरु पर्वतके ऊपर तम-क्षेत्र एक, चार, तीन और छह इन अंकोंके क्रमसे छह हजार तीन सौ इकतालीस भोजन और नौ सौ पन्द्रहसे भाजित छह सौ बाईस भाग अधिक रहता है ॥३८१॥

(मेरुकी परिधि $= ३१३२८$) $\times \frac{३६७}{६६६} = \frac{५८०९६३०}{६६६} = ६३४१\frac{५३३}{६६६}$ भोजन तम-क्षेत्र है।

राव-चउ-छ-पंच-तिया, अंक-कमे सत्त-छक्क-सत्तंसा ।

अट्ट-दु-णव-बुग-भजिदा, खेमाए मज्झ-पणिधि-तमं ॥३८२॥

३५६४६ । ३४६८० ।

अर्थ—खेमा नगरीके मध्य प्रणिधि भागमें तम-क्षेत्र नौ, चार, छह, पाँच और तीन, इन अंकोंके क्रमसे पैंतीस हजार छह सौ उनचास योजन और दो हजार नौ सौ अट्ठाईससे भाजित सात सौ सड़सठ भाग प्रमाण रहता है ॥३८२॥

(खेमा नगरीकी परिधि = १७७७६०६ = १४३३९८५) $\times \frac{३६७}{१८३०} = १०४३८१०३३ = ३५६४९३३३३$ योजन तम-क्षेत्र है ।

णम-णव-णभ-णवय-तिया, अंक-कमे णव-चउक्क-सग-दु-कला ।

णभ-चउ-छ-चउ-एक्क-हिदा, खेमपुरी - पणिधि - तम-खेत्तं ॥३८३॥

३६०६० । ३४६४० ।

अर्थ—खेमपुरीके प्रणिधिभागमें तम क्षेत्र शून्य, नौ, शून्य, नौ और तीन इन अंकोंके क्रमसे उनतालीस हजार नब्बे योजन और चौदह हजार छह सौ चालीससे भाजित दो हजार सात सौ उनचास कला प्रमाण रहता है ॥३८३॥

(खेमपुरीकी परिधि = १९४९१८३ = १५२३३४०) $\times \frac{३६७}{१८३०} = ३९०९०३३३३३$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

पंच-पण-गयण-दुग-चउ, अंक-कमे पण-चउक्क-अड-छक्का ।

अंसा तिमिरक्खेत्ते, मज्झिम - पणिधीए रिट्ठाए ॥३८४॥

४२०५५ । १८६४० ।

अर्थ—अरिष्टा नगरीके मध्यम प्रणिधिभागमें तिमिर क्षेत्र पाँच, पाँच, शून्य, दो और चार, इन अंकोंके क्रमसे बयालीस हजार पचपन योजन और छह हजार आठ सौ पैंतालीस भाग अधिक रहता है ॥३८४॥

(अरिष्टाकी परिधि २०६७०४३ = १४७७६३९) $\times \frac{३६७}{१८३०} = ४२०५५३३३३$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

छण्णव-चउक्क-पण चउ, अंक-कमे णवय-पंच-सग-पंचा ।

अंसा मज्झिम-पणिही - तम - खेत्तमरिद्ध - णयरीए ॥३८५॥

४५४९६ । १४६४० ।

अर्थ—अरिष्टपुरीके मध्यम प्रणिधिभागमें तम-क्षेत्र छह, नौ, चार, पाँच और चार, इन अंकोंके क्रमसे पैंतालीस हजार चार सौ छयात्तबे योजन और पाँच हजार सात सौ उनसठ भाग अधिक रहता है ॥३८५॥

(अरिष्टपुरीकी परिधि = २२६८६२३ = १८१४८७७) $\times \frac{३६७७}{१००००} = ६६५०४७७७७ = ४५४६६१४४४४०$ योजन तम-क्षेत्र है ।

एकं छहचउ-अट्ठा, चउ अंक-कमेण पंच - पंचट्ठा ।

णव य कलाओ खग्गा-मज्झिम-पण्णोए तिमिर-खिदी ॥३८६॥

४८४६१ । १४६५५० ।

अर्थ—खड्गापुरीके मध्यम प्रणधिभागमें तिमिर-क्षेत्र एक, छह, चार, आठ और चार, इन अंकोंके क्रमसे अड़तालीस हजार चार सौ इकसठ योजन और नौ हजार आठ सौ पचपन कला अधिक रहता है ॥३८६॥

(खड्गापुरीकी परिधि = २४१६४८३ = १८३३१८५) $\times \frac{३६७७}{१००००} = १४१८६५७७९ = ४८४६१४४४४०$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

दुग-णभ-णवेवक-पंचा, अंक-कमे एवय-छक्क-सत्तट्ठा ।

अंसा मंजुसणयरी - मज्झिम - पण्णोए तम - खेत्तं ॥३८७॥

५१६०२ । १७६६० ।

अर्थ—मंजूषा नगरीके मध्यम प्रणधिभागमें तम-क्षेत्र दो, शून्य, नौ, एक और पांच इन अंकोंके क्रमसे इक्यावन हजार नौ सौ दो योजन और आठ हजार सात सौ उनहत्तर भाग प्रमाण रहता है ॥३८७॥

(मंजूषा नगरीकी परिधि = २५८८०५३ = २०७०४४७) $\times \frac{३६७७}{१००००} = ७५९८५४७४८ = ५१६०२४४४४०$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

सत्त-छ-अट्ठ-चउक्का, पंचंक - कमेण जोयणा अंसा ।

पंच-छ-अट्ठ - दुगेक्का, ओसहिपुर-पणिधि-तम-खेत्तं ॥३८८॥

५४८६७ । १३६६५ ।

अर्थ—ओषधिपुरके प्रणधिभागमें तम-क्षेत्र सात, छह, आठ, चार और पांच इन अंकोंके क्रमसे चौवन हजार आठ सौ सड़सठ योजन और बारह हजार आठ सौ पैंसठ भाग प्रमाण रहता है ॥३८८॥

(ओषधिपुरकी परिधि = २७३५६१३ = २१८८७३५) $\times \frac{३६७७}{१००००} = १६६६३३१४८ = ५४८६७३६६६०$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

अट्ठ-ख-ति-अट्ठ-पंचा, अंक-कमेण जोयणाणि अंसा य ।

एव-सग-सग-एवकेक्का, तम-खेत्तं पुंडरिणिणी - णयरे ॥३८९॥

५८३०८ । १३६६० ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी नगरीमें तम-क्षेत्र आठ, षून्य, तीन, आठ और पाँच इन अंकोंके क्रमसे अट्ठावन हजार तीन सौ आठ योजन और ग्यारह हजार सात सौ उन्यासी भाग प्रमाण रहता है ॥३८६॥

(पुण्डरीकिणीपुरकी परिधि $= २९०७४६२ = २३३२५४०) \times \frac{३६०}{१६३३} = ५२३०८११\frac{१००}{१६३३}$ योजन तम-क्षेत्र ।

अभ्यन्तर पथमें तम-क्षेत्र—

णत-अट्ठेक-ति-छक्का, अंक - कमे ति-सुव-उस-एकसा ।

राभ-तिय-अट्ठेक-हिदा, विदिय-पहक्कम्मि पठम-पह-तिमिरं ॥३८७॥

६३१८९ । १२३३ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर प्रथम मार्गमें तमक्षेत्र नौ, आठ, एक, तीन और छह इन अंकोंके क्रमसे तिरेसठ हजार एक सौ नवासी योजन और एक हजार आठ सौ तीससे भाजित एक हजार सात सौ तेरानबे भाग अधिक रहता है ॥३९०॥

(प्रथम पथकी परिधि $= ३१५०८९) \times \frac{३६०}{१६३३} = ११५६३३५\frac{१३}{१६३३} = ६३१८९१\frac{२६३}{१६३३}$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण ।

द्वितीय पथमें तम-क्षेत्र—

तिय-राव-एक-ति-छक्का, अंकाण कमे दुगेक-सत्तंसा ।

पंचेक-णव-विहत्ता, विदिय-पहक्कम्मि विदिय-पह-तिमिरं ॥३८८॥

६३१९३ । ११३ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर द्वितीय बीथीमें तिमिर-क्षेत्र तीन, नौ, एक, तीन और छह, इन अंकोंके क्रमसे तिरेसठ हजार एक सौ तेरानबे योजन और नौ सौ पन्द्रहसे भाजित सात सौ बारह भाग प्रमाण रहता है ॥३९१॥

(द्वितीय पथकी परिधि ३१५१०६ यो०) $\times \frac{३६०}{१६३३} = ६३१९३१\frac{१३}{१६३३}$ यो० ।

तृतीय पथमें तम-क्षेत्र—

छणव-एक-ति-छक्का, अंक - कमे अड - दुगट्ठ एकसा ।

णय-तिय-अट्ठेक-हिदा, विदिय-पहक्कम्मि तदिय-मग्ग-तमं ॥३८९॥

६३१९६ । १६३० ।

एवं सज्जिभम-मग्गंतं णेव्वं ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर तृतीय मार्गमें तम-क्षेत्र छह, नौ, एक, तीन और छह, इन अंकोंके क्रमसे तिरेसठ हजार एक सौ छ्यानबे योजन और एक हजार आठ सौ तीससे भाजित एक हजार आठ सौ अट्ठाईस भाग प्रमाण रहता है ॥३९२॥

(तृतीय पथकी परिधि = $31\frac{1}{4} \times 10^8$) $\times \frac{360}{1000} = 1134000000 = 631961\frac{2}{3}$ योजन तम-क्षेत्र है ।

इसप्रकार मध्यम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

मध्यम पथमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

तेसट्ठि-सहस्सा पण-सयाणि तेरस य जोयणा अंता ।

अउदास-जुवट्ट-सया, बिदिय-पहवकम्मि मज्झ-मगा-तमं ॥३९३॥

६३५१३ । $\frac{2}{3}$ ।

एवं दुच्चरिम-मगांतं^१ णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर मध्यम मार्गमें तम-क्षेत्र तिरेसठ हजार पाँच सौ तेरह योजन और आठ सौ चबालीस भाग अधिक रहता है ॥३९३॥

(मध्यम पथकी परिधि = $31\frac{1}{4} \times 10^8$) $\times \frac{360}{1000} = 1134000000 = 635138\frac{2}{3}$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

इसप्रकार द्विचरममार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

बाह्य पथमें तम-क्षेत्र—

छ-सिय-अट्ट-ति-छक्का, अंक-कमे णवय-सत्त-छक्केसा ।

पंचेक्क-णव-विहत्ता, बिदिय-पहवकम्मि बाहिरे तिमिरं ॥३९४॥

६३८३६ । $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय मार्गमें स्थित होने पर बाह्य पथमें तिमिर-क्षेत्र छह, तीन, आठ, तीन और छह, इन अंकोंके क्रमसे तिरेसठ हजार आठ सौ छत्तीस योजन और नौ सौ पन्द्रहसे भाजित छह सौ उन्यासी भाग अधिक है ॥३९४॥

(बाह्य क्षेत्रकी परिधि = $31\frac{1}{4} \times 10^8$) $\times \frac{360}{1000} = 1134000000 = 63836\frac{1}{2}$ योजन तम-क्षेत्र का प्रमाण है ।

लवणोदधिके छठे भागमें तम-क्षेत्र—

सत्त-णव-छक्क-पण-णभ-एक्कंक-कमेण दुग-सग-तिरंसा ।

णभ-तिप-अट्टेक्क-हिवा, लवणोदहि - छट्ठ - भागंतं ॥३९५॥

१०५६९७ । $\frac{1}{2}$ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय मार्गमें स्थित होनेपर लवणोदधिके छठे भागमें तिमिरक्षेत्र सात, नौ, छह, पाँच, शून्य और एक, इन अंकोंके क्रमसे एक लाख पाँच हजार छह सौ सत्तानव योजन और एक हजार आठ सौ तीससे भाजित तीन सौ बहत्तर भाग अधिक है ॥३९५॥

(लवणसमुद्रके छठे भाग की परिधि = $\frac{420000}{4} \times \frac{350}{1000} = 36750$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

शेष परिधियोंमें तम-क्षेत्र —

एवं सेस - पहेसुं, बौहि पडि जामिणी - मुहुत्ताणि ।

ठविऊणाणेज्ज तमं, छक्कोणिय-दु-सय-परिहीसुं ॥३९६॥

१९४ ।

अर्थ—इसप्रकार शेष पथोंमेंसे प्रत्येक बीबीमें रात्रि-मुहूर्तोंको स्थापित करके छह कम दो सौ (१९४) परिधियोंमें तिमिर-क्षेत्र ज्ञात कर लेना चाहिए ॥३९६॥

नोट—विशेष के लिए गाथा ३४५ का विशेषार्थ द्रष्टव्य है ।

सूर्यके बाह्यपथमें स्थित होनेपर तम-क्षेत्रका प्रमाण—

सब्ब-परिहीसु रत्ति, अटुरस-मुहुत्तयाणि रविबिम्बे ।

बहि-पह-ठिदम्मि एवं, धरिऊण भणामि तम-खेसं ॥३९७॥

अर्थ—सूर्य-बिम्बके बाह्य पथमें स्थित होनेपर सब परिधियोंमें अटारह मुहूर्त-प्रमाण रात्रि है, इसका आश्रय करके तम-क्षेत्रका वर्णन करता हूँ ॥३९७॥

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते विवक्षित परिधिमें तम-क्षेत्र
प्राप्त करनेकी विधि—

इच्छिय-परिरय-रात्ति, तिगुणं कादूण दस-हिदे लद्धं ।

होदि तिमिरस्स खेत्तं, बाहिर - मग्ग - द्विदे सूरे ॥३९८॥

१९५ ।

अर्थ—इच्छित परिधि-राशिको तिगुणा करके दसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर विवक्षित परिधिमें तिमिर-क्षेत्र होता है ॥३९८॥

विशेषार्थ—बाह्य पथमें रात्रिका प्रमाण १८ मुहूर्त है इसमें ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर (१६) = ६० प्राप्त होते हैं । विवक्षित परिधिके प्रमाणमें ३ का गुणाकर १० का भाग देनेपर तम-क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मेरु आदि की परिधियोंमें

तम-क्षेत्रका प्रमाण—

णव य सहस्त्रा चउ-सय, छासोवी जोयणाणि तिणि कला ।

पंच - हिवा मेरु - तमं, बाहिर - मग्गे ठिबे तवणे ॥३९९॥

९४८६ । ६ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित रहनेपर मेरुके ऊपर तम-क्षेत्र नौ हजार चार सौ छयासी योजन और पाँचसे भाजित तीन कला (९४८६६ योजन) प्रमाण रहता है ॥३९९॥

तेवण्ण-सहस्त्राणि, ति-सया अउवीस-जोयणा ति-कला ।

सोलस-हिवा य खेमा - मज्झिम - पणधीए तम-खेत्तं ॥४००॥

५३३२८ । १६ ।

अर्थ—खेमा नगरीके मध्यम परिधिभागमें तम-क्षेत्र तिरेपन हजार तीन सौ अट्ठाईस योजन और सोलहसे भाजित तीन कला (५३३२८१६ योजन) प्रमाण रहता है ॥४००॥

अट्ठावण-सहस्त्रा, चउ-सय-पणहत्तरी य जोयणया ।

एककत्ताल - कलाओ, सीवि - हिवा खेम - णयरीए ॥४०१॥

५८४७५ । ५१ ।

अर्थ—खेमपुरीमें तम-क्षेत्र अट्ठावन हजार चार सौ पचहत्तर योजन और अस्सीसे भाजित एकतालीस कला (५८४७५६१ योजन) प्रमाण है ॥४०१॥

वासट्ठि-सहस्त्रा णव-सयाणि एक्करस जोयणा भागा ।

पणुवीस सीवि-भजिदा, रिट्ठाए मज्झ-पणिधि-तमं ॥४०२॥

६२९११ । ३५ ।

अर्थ—अरिष्ठा नगरीके मध्य परिधिभागमें तम-क्षेत्र वासठ हजार नौ सौ ग्यारह योजन और अस्सीसे भाजित पच्चीस भाग (६२९११३५ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०२॥

अट्टासट्ठि-सहस्सा, अट्ठावण्णा य जोयणा अंसा ।

एक्कावण्णं तिमिरं, रिट्ठपुरी - मज्झ - पणिधीए ॥४०३॥

६८०५८ । ११ ।

अर्थ—अरिष्टपुरीके मध्य-प्रणिधिभागमें तिमिरक्षेत्र अड़सठ हजार अट्ठावन योजन और इक्कावन भाग (६८०५८ $\frac{१}{११}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०३॥

बाहत्तरि सहस्सा, चउ-सय-चउणउवि जोयणा अंसा ।

पणुतीसं खगाए मज्झिम-पणिधीए तिमिर-खिदी ॥४०४॥

७२४६४ । ११ ।

अर्थ—खड्गा नगरीके मध्यम प्रणिधिभागमें तिमिर-क्षेत्र बहत्तर हजार चार सौ चौरानबे योजन और पैंतीस भाग (७२४६४ $\frac{१}{११}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०४॥

सत्तसरि सहस्सा, छस्सय इगिवाल जोयणाणि कला ।

एक्कासट्ठी मंजुस - णयरो - पणिहीए तम-खेत्तं ॥४०५॥

७७६४१ । ११ ।

अर्थ—मंजूषानगरीके प्रणिधिभागमें तम-क्षेत्र सत्तर हजार छह सौ इकतालीस योजन और इकसठ कला (७७६४१ $\frac{१}{११}$ योजन) रहता है ॥४०५॥

बासोदि-सहस्साणि, सत्तसरि - जोयणा कलाओ वि ।

पंचत्तारं ओसहि - पुरीए बाहिर-पह-दिठदक्कम्मि ॥४०६॥

८२०७७ । ११ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य भागमें स्थित होनेपर ओषधिपुरीमें तम-क्षेत्र बयासी हजार सत्तर योजन और पैंतालीस कला (८२०७७ $\frac{१}{११}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०६॥

सत्तासोदि-सहस्सा, वे-सय-चउवीस जोयणा अंसा ।

एक्कत्तरो य 'तमिस-प्पणिधीए पुंडरिगिणी-णयरे ॥४०७॥

८७२२४ । ११ ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी नगरीके प्रणिधिभागमें तिमिर-क्षेत्र सत्तासी हजार दो सौ चौबीस योजन और इकहत्तर भाग (८७२२४ $\frac{१}{११}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०७॥

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते प्रथम वीथीमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

चउणउदि-सहस्सा पण-सयाणि छब्बीस जोयणा अंसा ।
सस य वस-पविहत्ता, बहि-पह-तवणम्मि पढम-पह-तिमिरं ॥४०८॥

९४५२६ । १० ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर प्रथम पथमें तिमिर-क्षेत्र चौरानबै हजार पांच सौ छब्बीस योजन और दससे भाजित सात भाग (९४५२६ $\frac{१०}{१०}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०८॥

द्वितीय वीथीमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

चउणउदि-सहस्सा पण-सयाणि इगितोस जोयणा अंसा ।
चससारो पंच-विहा, बहि-पह^१-भाणुम्मि विदिय-पह-तिमिरं^२ ॥४०९॥

९४५३१ । ५ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर द्वितीय पथमें तिमिर क्षेत्र चौरानबै हजार पांच सौ इकतीस योजन और पांचसे भाजित चार भाग (९४५३१ । ५ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०९॥

तृतीय वीथीमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

चउणउदि-सहस्सा, पण-सयाणि सगतीस जोयणा अंसा ।
तदिय-पह-तिमिर-खेत्तं, बहि - मग्ग - ठिवे सहस्सकरे ॥४१०॥

९४५३७ । ३ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर तृतीय पथमें तिमिर-क्षेत्र चौरानबै हजार पांच सौ सैंतीस योजन और एक भाग (९४५३७ $\frac{३}{३}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४१०॥

चतुर्थ वीथीमें तम-क्षेत्र—

चउणउदि-सहस्सा पण-सयाणि बाबाल-जोयणा ति-कला ।
दस-पविहत्ता बहि-पह-ठिव-तवणे तुरिम - मग्ग - तमं ॥४११॥

९४५४२ । १० ।

एवं मज्झिम-मग्गाइल्ल-मग्गं ति जेवव्वं ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर चतुर्थवीथीमें तम-क्षेत्र चौरानबै हजार पांच सौ बयालीस योजन और दससे विभक्त तीन कला ($९४५४२\frac{३}{४}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४११॥

इसप्रकार मध्यम मार्गके आदिम पथ पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

मध्यम पथमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

पंचाणउवि-सहस्सा, दसुत्तरा जोयणाणि तिणि कला ।

पंच-हिवा मज्झ - पहे, तिमिरं बहि-पह-ठिवे तथणे ॥४१२॥

९५०१० । ३ ।

एवं दुचरिम-मार्गं ति नेवब्धं ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मध्यम पथमें तिमिर-क्षेत्र पंचानबै हजार दस योजन और पांचसे भाजित तीन कला ($९५०१० । ३$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४१२॥

इसप्रकार द्विचरम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते बाह्य पथमें तम-क्षेत्र—

पंचाणउवि-सहस्सा, चउसय-चउणाउवि जोयणा अंसा ।

बाहिर-पह-तम-खेत्तं, विचायरे बाहि - रद्ध - ठिवे ॥४१३॥

९५४९४ । ३ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य अष्टव (पथ) में स्थित होनेपर बाह्य वीथीमें तम-क्षेत्र पंचानबै हजार चार सौ चौरानबै योजन और एक भाग ($९५४९४\frac{१}{४}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४१३॥

लवणोदधिके छडे भागमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

तिय-एक्क-एक्क-अट्ठा, पंचेक्कं-क्कमेण चउ-अंसा ।

बहि-पह-ठिव-विबसयरे, लवणोदहि-छट्ठ-भाग-तमं ॥४१४॥

१५८११३ । ३ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर लवणोदधिके छठे भागमें तम-क्षेत्र तीन, एक, एक, आठ, पाँच और एक, इन अंकोंके क्रमसे एक लाख अष्टावन हजार एक सौ तेरह योजन और चार भाग (१५=११३६ योजन) प्रमाण रहता है ॥४१४॥

दोनों सूर्योंके तिमिर-क्षेत्रका प्रमाण—

एदाणं तिमिराणं, खेत्ताणि होति एवक-भाणुम्मि ।

दुगुणिद-परिमाणानि, दोसुं पि सहस्स-किरणेसुं ॥४१५॥

अर्थ—एक सूर्यके ये (इतने) तिमिर-क्षेत्र होते हैं । दोनों सूर्योंके होते हुए इन्हें द्विगुणित प्रमाण (दूने) जानना चाहिए ॥

तिमिर क्षेत्रकी हानि-वृद्धिका क्रम—

पदम-पहादो बाहिर-पहम्मि दिवसाहिवस्स गमणेसुं ।

वड्ढंति तिमिर - खेत्ता, आगमणेसुं च परिघंति ॥४१६॥

अर्थ—दिवसाधिप (सूर्य) के प्रथम पथसे बाह्य पथकी ओर गमन करनेपर तिमिरक्षेत्र वृद्धिको और आगमन कालमें हानिको प्राप्त होते हैं ॥४१६॥

आतप और तिमिर क्षेत्रोंका क्षेत्रफल—

एवं सव्व-पहेसुं, भणियं तिमिर-विस्सदीण परिमाणं ।

एत्तो आदव - तिमिर - वखेत्तां - फलाइ परूवेमो ॥४१७॥

अर्थ—इसप्रकार सब पथोंमें तिमिर-क्षेत्रोंका प्रमाण कह दिया है । अब यहाँसे आगे आतप और तिमिरका क्षेत्रफल कहते हैं ॥४१७॥

लवणंनु-रासि-वासच्छट्ठम-भागस्स परिहि-आरसमे ।

पण - लवखेहि गुणिदे, तिमिरावव-खेत्तफल-माणं ॥४१८॥

वड-ठाणेसुं सुण्णा, पंच-वु-णभ-एवक-णवय-एवक-दुगा ।

अंक - कमे जोयणया, तं खेत्तफलस्स परिमाणं ॥४१९॥

२१९६०२५०००० ।

अर्थ—लवण समुद्रके विस्तारके छठे भागकी परिधिके बारहवें भागको पाँच लाखसे गुणा करनेपर तिमिर और आतप-क्षेत्रका क्षेत्रफल निकल आता है । उस क्षेत्रफलका प्रमाण चार स्थानोंमें

शून्य, पाँच, दो, शून्य, छह, नौ, एक और दो, इन अंकोंके क्रमसे हवकीस सौ छयानवै करोड़ दो लाख पचास हजार योजन होता है ॥४१८-४१९॥

विशेषार्थ—लवणोदधिके छडे भागकी (परिधि निकालनेकी प्रक्रिया मा० २६५ के विशेषार्थमें द्रष्टव्य है) परिधि ५२७०४६ योजन है । इसको दोनों पार्श्व भागोंके छडे भागसे अर्थात् १२ से भाजित कर प्राप्त लब्धमें लवणोदधिके सूची-व्यास ५ लाखका गुणा करनेपर आतप एवं तिमिर क्षेत्रोंका क्षेत्रफल प्राप्त होता है ।

यथा—(परिधि ५२७०४६) $\div १२ = ४३९२०३ = ८७६३१, ८७६३१ \times ५०००० = २१९६०२५००००$ वर्ग योजन आतप एवं तिमिर क्षेत्र का क्षेत्रफल है ।

एक आतपक्षेत्र और एक तिमिर क्षेत्रका क्षेत्रफल—

एदे ति-गुणिय भजिवं, दसेहि एक्कादव-विलदीए फलं ।

सेत्तिय दु-ति-भाग-हवं, होदि फलं एक्क-तम-खेत्तं ॥४२०॥

६५८८०७५००० । ति ४३९२०५०००० ।

अर्थ—इस (क्षेत्रफलके प्रमाण) को तिगुना कर दसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना एक आतप क्षेत्रका क्षेत्रफल होता है । इस आतप-क्षेत्रफल प्रमाणके तीन भागोंमेंसे दो भाग प्रमाण एक तमक्षेत्रका क्षेत्रफल होता है ॥४२०॥

विशेषार्थ—एक आतप और एक तिमिर क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त करनेके लिए सूत्र एवं उनकी प्रक्रिया इसप्रकार है—

$$(१) \text{ एक आतप क्षेत्रका क्षेत्रफल} = \frac{\text{तिमिर और आतप क्षेत्रका क्षेत्रफल}}{१} \times \frac{३}{१०}$$

$$= \frac{२१९६०२५००००}{१} \times \frac{३}{१०} = ६५८८०७५००० \text{ योजन ।}$$

$$(२) \text{ एक तम क्षेत्रका क्षेत्रफल} = \frac{\text{एक आतप क्षेत्रका क्षेत्रफल}}{१} \times \frac{२}{३}$$

$$= \frac{६५८८०७५०००}{१} \times \frac{२}{३} = ४३९२०५०००० \text{ योजन ।}$$

दोनों सूर्य सम्बन्धी आतप एवं तम का क्षेत्रफल—

एवं आदव-तिमिर-वखेत्तफलं एक्क-तिव्वकिरसम्मि ।

दोसुं विरोचणेषुं, णादव्वं दुगुण - पुव्व - परिमाणं ॥४२१॥

अर्थ—यह उपर्युक्त आतप तथा तिमिरक्षेत्रफल एक सूर्यके निमित्तसे है । दोनों सूर्योंके रहने पर इसे पूर्व-प्रमाणसे दुगुना जानना चाहिए ॥४२१॥

ऊर्ध्व और अधःस्थानोंमें सूर्योंके आतप क्षेत्रका प्रमाण—

अट्टारस चेव सया, ताव - वखेतं तु हेट्टदो तववि ।
सब्बेसि सूरानं, सयमेवकं उवरि तावं तु ॥४२२॥

१८०० । १०० ।

अर्थ—सब सूर्योंके नीचे एक हजार आठ सौ योजन प्रमाण और ऊपर एक सौ योजन प्रमाण ताप-क्षेत्र तपता है ॥४२२॥

विशेषार्थ—सब सूर्य-बिम्बोंसे चित्रा पृथिवी ८०० योजन नीचे है और चित्रा पृथिवीकी मोटाई १००० योजन है अतः सूर्योंका आतप नीचेकी ओर (१००० + ८००) १८०० योजन पर्यन्त फैलता है ।

सूर्य बिम्बोंसे ऊपर १०० योजन पर्यन्त ज्योति-लोक है अतः सूर्योंका आतप ऊपरकी ओर १०० योजन पर्यन्त फैलता है ।

सूर्योंके उदय-अस्तके दिवेचनका निर्देश—

एत्तो विवायराणं, उदयत्थमणोसु जाणि रुवाणि ।
ताहं परम - गुरुणं, उवएसेणं परुवेमो ॥४२३॥

अर्थ—अब सूर्योंके उदय एवं अस्त होनेमें जो स्वरूप होते हैं । परम गुरुओंके उपदेशानुसार उनका प्ररूपण करता हूँ ॥४२३॥

जीवा और धनुषकी कृति प्राप्त करनेकी विधि—

बाण-विहीणे वासे, चउगुण-सर-ताडिदम्मि जीव-कदो ।
इसु - वग्गो छगुणिदो, तीय जुदो होवि चाव - कदो ॥४२४॥

अर्थ—बाण रहित विस्तारको चौगुणे बाण-प्रमाणसे गुणा करनेपर जीवकी कृति होती है । बाणके वर्गको छहसे गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो उसे उपर्युक्त जीवाकी कृतिमें मिला देनेसे धनुषकी कृति होती है ॥४२४॥

हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण—

तिय-जोयण-लवखार्णि, वस य सहस्साणि ऊण-वोसेहि ।

अवहरिदाई भणिवं, हरिवरिस - सरस्स परिमाणं ॥४२५॥

३१०००० ।

अर्थ—हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण उन्नीससे भाजित तीन लाख दस हजार (३१००००) योजन कहा गया है ॥४२५॥

विशेषार्थ—ति० प० चतुर्थाधिकार गाथा १७६१ के अनुसार भरतक्षेत्रके बाण (१००००) को ३१ से गुणित करने पर लवणोदधिके तटसे हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण (१०००० × ३१) = ३१०००० योजन प्राप्त होता है ।

सूर्यके प्रथमपथसे हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण—

तस्मज्भे सोहेज्जसु, सोदी-समहिय-सयं च जं सेसं ।

सो आदिम-सग्गादो, बाणो हरिवरिस - विजयस्स ॥४२६॥

१८० ।

अर्थ—इस (बाण) में से एक सौ अस्सी (जम्बूद्वीपके चारक्षेत्रका प्रमाण १८०) योजन कम कर देनेपर जो शेष रहे उतना प्रथम मार्गसे हरिवर्ष क्षेत्रका बाण होता है ॥४२६॥

विशेषार्थ—(हरिक्षेत्रका बाण = ३१००००) — $\frac{३१००००}{१८०}$ (१८० यो० ज० द्वी० का चार-क्षेत्र) = ३०५५५५ योजन अभ्यन्तर पथसे हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण ।

तिय-जोयण-लवखार्णि, छुख सहस्साणि पण-सयार्णि पि ।

सोदि - जुवाणि आदिम - मग्गादो तस्स परिमाणं ॥४२७॥

३०५५५५ ।

अर्थ—आदिम मार्गसे उस हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण उन्नीससे भाजित तीन लाख छह हजार पाँचसौ अस्सी (३०५५५५) योजन होता है ॥४२७॥

प्रथम पथका सूची-व्यास—

णवणउदि-सहस्साणि, छस्सय-चत्ताल-जोयणार्णि च ।

परिमाणं णादब्बं, आदिम - मग्गास्स सूईए ॥४२८॥

९९६४० ।

अर्थ—(सूर्यकी) प्रथम वीथीका सूची (व्यास) तिन्यानत्रै हजार छह सौ चालीस (६६६४०) योजन प्रमाण जानना चाहिए ॥४२८॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन और ज० द्वीपमें सूर्यादिके चारक्षेत्रका प्रमाण १८० योजन है । ज० द्वीपके व्यास में से दोनों पार्श्वभागोंके चार क्षेत्रोंका प्रमाण घटा देनेपर १००००० — (१८० × २) = ६६६४० योजन शेष बचते हैं । यही प्रथम वीथी का सूची व्यास है ।

प्रथम पथसे हरिवर्ष क्षेत्रके धनुषकी कृतिका प्रमाण—

तिय-ठाणेषु सुण्णा, चउ-छ-एपंच-दु-ख-छ-णव-सुण्णा ।

पंच-दुगंक-कमेणं, एकं छ-त्ति-भजिवा अ धणु-वग्गो ॥४२९॥

२५०८६०२५६४००० ।
३६९

अर्थ—तीन स्थानोंमें शून्य, चार, छह, पाँच, दो, शून्य, छह, नौ, शून्य, पाँच और दो, इन अंकोंके क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उसमें तीन सौ इकसठका भाग देनेपर लब्ध-राशि-प्रमाण हरिवर्ष क्षेत्रके धनुषका वर्ग होता है ॥४२९॥

विशेषार्थ—अभ्यन्तर (आदिम) पथका वृत्त विष्कम्भ ९९६४० योजन है और प्रथम वीथीसे हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण ३०६५८० योजन है । 'बाणसे हीन वृत्त विष्कम्भको चौगुने बाणसे गुणित करने पर जीवाकी कृति होती है ।' (त्रिलोकसार गा० ७६०) के इस करणसूत्रानुसार प्रथम पथके वृत्तविष्कम्भमेंसे बाणका प्रमाण घटाकर शेष राशिको चौगुने बाणसे गुणित करनेपर जीवाकी कृति प्राप्त होती है । यथा—

$$(६६६४० - ३०६५८०) \times (३०६५८० \times ४)$$

$$= १६४५२५४४०००००० योजन जीवाकी कृति ।$$

'छह गुणी बाण-कृतिको जीवा-कृतिमें मिलानेसे धनुष-कृति होती है' (त्रिलोकसार गा० ७६०) के इस करणसूत्रानुसार धनुषकी कृति इसप्रकार है—

$$\{ (३०६५८०)^२ \times ६ = ५६३८४७७८४०० \} + (१६४५२५४४०००००)$$

$$= २५०८६०२५६४०००० योजन धनुषके वर्गका प्रमाण है ।$$

प्रथम पथसे हरिवर्ष क्षेत्रके धनुःपृष्ठका प्रमाण—

तेसोवि-सहस्सा तिय-सयाणि सत्तत्तरो य जोयणया ।

णव य कलाओ आदिम-पहावु हरिवरिस-धणु-पुट्ठं ॥४३०॥

८३३७७ । १६ ।

कारण यह है कि जब अक्ष्यन्तर वीथी स्थित सूर्य अपने भ्रमण द्वारा उस परिधिको ६० मुहूर्तमें पूरा करता है, तब वीथीके ठीक मध्यक्षेत्रमें स्थित अयोध्या पर्यन्तकी परिधिको पूर्ण करनेमें कितना समय लगेगा ? इस प्रकार दैराशिक करनेपर $६० = ६०$ अर्थात् $३१५०६३ \times ३ = ९४५१८९ = ४७२६३३०$ योजन चक्षु-स्पर्शका उत्कृष्ट क्षेत्र प्राप्त होता है ।

भरतक्षेत्रके चक्रवर्ती द्वारा सूर्यबिम्बमें स्थित
जिनबिम्बका दर्शन—

पंच-सहस्रा [तह] पण-सयाणि चउहत्तरी य जोयणया ।
बे-सय-तेत्तीसंसा, हारो सीवी - जुवा ति-सया ॥४३४॥

५५७४ । ३३३ ।

उवरिम्मि निसह-गिरिणो, एसिय-माणेण पढम-मग्ग-ठिवं ।
पेक्खंति तवणि - बिबं, भरहक्खेत्तम्मि चक्कहरा ॥४३५॥

अर्थ—उपर्युक्त प्रकारसे चक्षुके उत्कृष्ट विषय-क्षेत्रमेंसे हरि-वर्षके अर्ध धनुःपृष्ठको निकाल देनेपर निषधपर्वतकी उपरिम पृथिवीका प्रमाण पाँच हजार पाँच सौ चौहत्तर योजन और एक योजन के तीन सौ अस्सी भागोंमेंसे दो सौ तैंतीस भाग अधिक आता है । इतने योजन प्रमाण निषधपर्वतके ऊपर प्रथम वीथीमें स्थित सूर्यबिम्ब (के मध्य विराजमान जिन बिम्ब) को भरतक्षेत्रके चक्रवर्ती देखते हैं ॥४३४-४३५॥

विशेषार्थ—त्रिलोकसार गाथा ३८९-३९१ में कहा गया है कि निषधाचलके धनुष-प्रमाणके अर्धभागमेंसे चक्षु-स्पर्श क्षेत्र घटा देनेपर ($६१८८४१० - ४७२६३३०$) = १४६२१४८० योजन शेष रहते हैं । प्रथम वीथी स्थित सूर्य निषधाचलके ऊपर जब १४६२१४८० यो० ऊपर आता है तब चक्रवर्ती द्वारा देखा जाता है और यहाँ कहा गया है कि निषधाचल पर जब सूर्य ५५७४३३३ योजन ऊपर आता है तब चक्रवर्ती द्वारा देखा जाता है । इन दोनों कथनोंमें विरोध नहीं है । क्योंकि निषधाचलके धनुषका प्रमाण १२३७६८१६ योजन और हरिवर्षके धनुषका प्रमाण ८३३१७३६ योजन है । निषधके धनुष-प्रमाणमेंसे हरिवर्षका धनुष प्रमाण घटाकर शेषको आधा करनेपर निषधाचल की पार्श्वभुजाका प्रमाण { ($१२३७६८१६ - ८३३१७३६$) $\div २$ } = २०१९५२६ प्राप्त होता है । (दक्षिण तटसे उत्तरतट पर्यन्त आपका जो प्रमाण है उसे पार्श्वभुजा कहते हैं) । त्रिलोकसारके मतानुसार १४६२१४८० यो० ऊपर आनेपर सूर्य दिखाई देता है । निषधाचलकी पार्श्वभुजा मेंसे यह प्रमाण घटा देनेपर ($२०१९५२६ - १४६२१४८०$) = ५५७४३३३ योजन अवशेष रहते हैं । तिलोयपण्णत्तीमें सूर्य दर्शनका यही प्रमाण कहा गया है ।

मेरी समझसे इन दोनोंमें कथन भेद है, भाव या विषय भेद नहीं है, फिर भी विद्वानों द्वारा विचारणीय है ।

ऐरावत क्षेत्रके चक्रवर्ती द्वारा सूर्य स्थित जिनविम्ब दर्शन—

उवरिम्मि नील-गिरिणो, तेत्तियमाणेण पढम-मग-गदो ।

ऐरावदम्मि विजए, चक्की देक्खंति इदर - रवि^१ ॥४३६॥

अर्थ—ऐरावत क्षेत्रके चक्रवर्ती उतने ही योजन प्रमाण (५५७४^३/_{१६३} यो०) नील पर्वतके ऊपर प्रथम मार्ग स्थित पूर्वविम्बको देखते हैं ॥४३६॥

प्रथम पथमें स्थित सूर्यके भरतक्षेत्रमें उदित होनेपर क्षेमा आदि सोलह क्षेत्रोंमें रात्रि दिनका विभाग—

ति-दुगेक्क-मुहुत्ताणि, खेमादी-तिय-पुरम्मि अहियाणि ।

किचूण - एक्क^२ - णाली, रत्तो य अरिट्ट - णयरम्मि ॥४३७॥

मु ३ । २ । १ । णालि १ ।

अर्थ—(प्रथम पथ स्थित सूर्यके भरतक्षेत्रमें उदित होते समय) क्षेमा, क्षेमपुरी और अरिष्टा इन तीन पुरोंमें क्रमशः कुछ अधिक तीन मुहूर्त, दो मुहूर्त और एक मुहूर्त तथा अरिष्टपुरीमें कुछ कम एक नाली (घड़ी) प्रमाण रात्रि होती है ॥४३७॥

विशेषार्थ—प्रथम वीथीमें स्थित सूर्य निषधकुलाचलके ऊपर आता हुआ जब भरतक्षेत्रमें उदित होता है उस समय पूर्व-विदेहमें सीता महानदीके उत्तर तट स्थित क्षेमा नगरीमें कुछ अधिक ३ मुहूर्त (कुछ अधिक २ घंटे, २४ मिनट) रात्रि हो जाती है । उसी समय क्षेमपुरीमें कुछ अधिक २ मुहूर्त (१ घंटा, ३६ मि० से कुछ अधिक), अरिष्टामें कुछ अधिक १ मुहूर्त (४८ मि० से कुछ अधिक) और अरिष्टपुरीमें कुछ कम एक नाली (२४ मिनटसे कुछ कम) रात्रि हो जाती है ।

ताहे खगपुरीए, अत्थमणं होदि मंजुस - पुरम्मि ।

अयरण्हमधिय-घलियं^३, ओसहिय-णयरम्मि साहिय-मुहुत्तं ॥४३८॥

अर्थ—उसी समय खड्गपुरीमें सूर्यास्त, मंजुषपुरमें एक नालीसे कुछ अधिक अपराह्न और औषधिपुरमें वह (अपराह्न) मुहूर्तसे अधिक होता है ॥४३८॥

१. व. क. ज. दुक्खंति तियरवि, ब. देक्खंति रयररवि । २. ब. किचूणं एक्का णाली ।

३. द. ब. क. ज. मुलिया ।

विशेषार्थ—जिस समय सूर्य भरतक्षेत्रमें उदित होता है उसी समय खड्गपुरीमें सूर्यास्त हो जाता है और मंजूषपुरमें एक घड़ीसे कुछ अधिक अपराह्न (कुछ अधिक २४ मिनिट दिन) तथा औषधिपुरमें कुछ अधिक एक मुहूर्त अपराह्न (४८ मिनिटसे कुछ अधिक दिन) रहता है ।

ताहे मुहुचमधियं, अवरण्हं पुंडरिगिणी - णयरे ।
तप्पणिधो सुररण्णे^१, दोणिण मुहुत्ताणि अदिरेगो ॥४३६॥

अर्थ—उसी समय पुण्डरीकिणी नगरमें वह अपराह्न एक मुहूर्तसे अधिक और इसके समीप देवारण्यवनमें दो मुहूर्तसे अधिक होता है ॥४३६॥

विशेषार्थ—उसी समय पुण्डरीकिणी नगरीमें एक मुहूर्त (४८ मिनिट) से अधिक और देवारण्यवनमें दो मुहूर्त (१ घंटा, ३६ मिनिट) से अधिक दिन रहता है ।

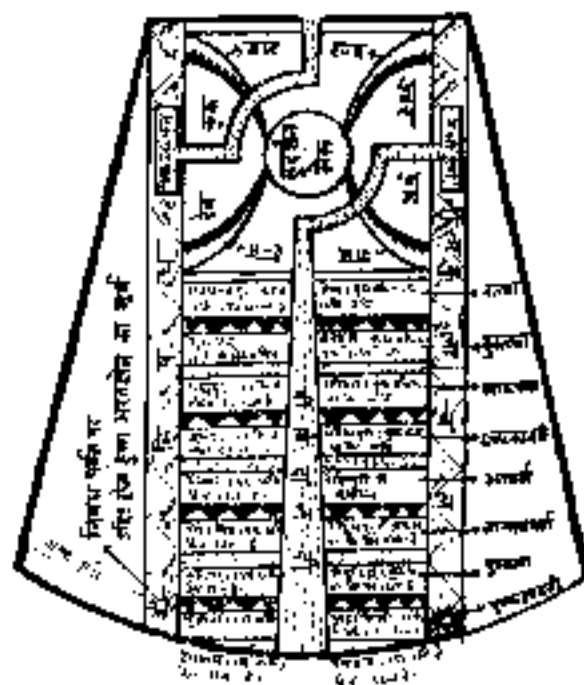
तत्कालम्मि सुसीम-प्पणधोए सुरवणम्मि पढम-पहे ।
होवि अवरण्ह - कालो, तिणिण मुहुत्ताणि अदिरेगो ॥४४०॥
तिय-तिय मुहुत्तमहिया^२, सुसीम-कुण्डलपुरम्मि दो दो य ।
एक्केक्क-साहियाणं, अवराजिद - पहंकरं - पडमपुरे ॥४४१॥
सुभ-णयरे अवरण्हं, साहिय-णालोए होदि परिमाणं ।
णालि-ति-भागं रत्तो, किच्चूणं रयणसंचय - पुरम्मि ॥४४२॥

अर्थ—उसी समय प्रथम पथमें सुसीमा नगरीके समीप देवारण्यमें तीन मुहूर्तसे अधिक अपराह्न काल रहता है । सुसीमा एवं कुण्डलपुरमें तीन-तीन मुहूर्तसे अधिक, अपराजित एवं प्रभंकर-पुरमें दो-दो मुहूर्तसे अधिक, अङ्कपुर तथा पद्मपुरमें एक-एक मुहूर्तसे अधिक और शुभनगरमें एक नालीसे अधिक अपराह्नकाल होता है । तथा रत्नसंचयपुरमें उस समय कुछ कम नालीके तीसरे-भाग-प्रमाण रात्रि होती है ॥४४०-४४२॥

विशेषार्थ—उसी समय सीतामहानदीके दक्षिण तट स्थित सुसीमा नगरीके समीप देवारण्य वन में तीन मुहूर्त (२ घंटे २४ मिनिट) से कुछ अधिक दिन रहता है । सुसीमा और कुण्डलपुरमें तीन-तीन मुहूर्त (२ घण्टा २४ मि०) से अधिक, अपराजित और प्रभङ्करपुरमें दो-दो मुहूर्त (१ घंटा ३६ मिनिट) से अधिक, अङ्कपुर और पद्मपुरमें एक-एक मुहूर्त (४८-४८ मिनिट) से अधिक तथा

शुभनगरमें एक नालो (२४ मिनिट) से अधिक दिन रहता है । इसके अतिरिक्त रत्नसंचयपुरमें उस समय कुछ कम एक नालीके तीसरे भाग (करीब ७ मिनिट) प्रमाण रात्रि हो जाती है ।

इसका चित्रण इसप्रकार है—



प्रथम-पथमें स्थित सूर्यके ऐरावत क्षेत्रमें उदित होनेपर अवध्या आदि सोलह नगरियोंमें रात्रि-दिनका विभाग—

ऐरावदग्नि उदयो, जं काले होदि कमलबंधुस ।
ताहे विण - रत्तीओ, अवर - विवेहेसु साहेमि ॥४४३॥

अर्थ—जिस समय ऐरावत क्षेत्रमें सूर्यका उदय होता है उस समय अपर (पश्चिम) विदेहोंमें होनेवाले दिन-रात्रि-विभागोंका कथन करता है ॥४४३॥

क्षेमादि-सुरवणंतं, हवति जे पुठ्व-रसि-अवरण्हं ।
कमसो ते णादव्वा, अस्सपुरी-पट्टदि णयय-ठाणेसु ॥४४४॥

अर्थ—क्षेमा आदि नगरीसे देवारण्य पर्यन्त जो पूर्व-रात्रि एवं अपराह्न काल होते हैं, वे ही क्रमशः अश्वपुरी आदिक नौ स्थानोंमें भी जानने चाहिए ॥४४४॥

होति अवज्झादी णव-ठाणेसुं पुव्व-रस्सि-अवरण्हं ।

पुव्वत्त - रयणसंचय, पुरादि-णव-ठाण-सारिक्ख्हा ॥४४५॥

अर्थ—अवध्य आदिक ती स्थानोंमें पूर्वोक्त रत्नसंचय पुरादिक ती स्थानोंके सदृश ही पूर्व रात्रि एवं अपराह्निकाल होते हैं ॥४४५॥

भरत-ऐरावतमें मध्याह्न होनेपर विदेहमें रात्रिका प्रमाण—

किचूण-छम्मुहुत्ता, रत्ती जा पुंडरिमिणी - रायरे ।

तह होवि वीदसोके, भरहेरावद-खिदीसु मज्झण्णे ॥४४६॥

अर्थ—भरत और ऐरावत क्षेत्रमें मध्याह्न होनेपर जिसप्रकार पुण्डरीकिणी नगरमें कुछ कम छह भुहूर्त रात्रि होती है, उसीप्रकार वीतखीका नगरीमें भी कुछ कम छह भुहूर्त प्रमाण रात्रि होती है ॥४४६॥

नीलपर्वत पर सूर्यका उदय अस्त—

ताहे निसह-गिरिदे, उदयत्थमणाणि होति भाणुस्स ।

णील - गिरिदेसु तहा, एक्क - खणे दोसु पासेसुं ॥४४७॥

अर्थ—उत्तसमय जिसप्रकार निषधपर्वत पर सूर्यका उदय एवं अस्तगमन होता है, उसीप्रकार एक ही क्षणमें नील-पर्वतके ऊपर भी दोनों पार्श्वभागोंमें (द्वितीय) सूर्यका उदय एवं अस्तगमन होता है ॥४४७॥

भरत-ऐरावत क्षेत्र स्थित चक्रवर्तियों द्वारा अदृश्यमान सूर्यका प्रमाण—

पच्च-सहस्सा [तह] पण-सयाणि चउहस्सरो य अदिरेगो ।

तेत्तीस - बे - सयंसा, हारो सीबी - जुदा ति-सया ॥४४८॥

५५७४ । ३३३ ।

एत्तियमेत्तादु परं उवरि निसहस्स पदम - मग्गम्मि ।

भरहक्खेत्ते चक्की, विणयर - बिबं ण देक्खंति ॥४४९॥

अर्थ—भरतक्षेत्रमें चक्रवर्ती पाँच हजार पाँच सौ चौहत्तर योजन और एक योजनके तीन सौ अस्सी भागोंमेंसे दो सौ तैंतीस भाग अधिक, इतने (५५७४३३३ यो०) से आगे निषधपर्वतके ऊपर प्रथम भागमें सूर्य-बिम्बको नहीं देखते हैं ॥४४८-४४९॥

उवरिम्मि नीलगिरिणो, ते परिमाणावु पवम-मग्गम्मि ।

एराववम्मि चवकी, इवर - दिणेतं ण देवसंति ॥४५०॥

अर्थ—ऐरावतक्षेत्रमें स्थित चक्रवर्ती नीलपर्वतके ऊपर इस प्रमाण (५५७४^३/_३ यो०) से अधिक-दूर प्रथम मार्ग स्थित दूसरे सूर्यको नहीं देखते हैं ॥४५०॥

दोनों सूर्योंके प्रथम मार्गसे द्वितीयमार्गमें प्रविष्ट होनेकी दिशाएँ—

सिहि-पवण-विसाहितो, जम्बूदीवस्स दोणि रवि-विवा ।

दो जोयणाणि पुह-पुह, आदिम-मग्गावु विदिय-पहे ॥४५१॥

अर्थ—जम्बूद्वीपके दोनों सूर्य-बिम्ब आग्नेय तथा वायव्य दिशासे पृथक्-पृथक् दो-दो योजन लांचकर प्रथम मार्गसे द्वितीय मार्ग (पथ) में प्रवेश करते हैं ॥४५१॥

सूर्यके प्रथम और बाह्य मार्गमें स्थित रहते दिन-

रात्रिका प्रमाण—

लघंता' आवाणं, भरहेरावद - खिवीसु पयिसंति ।

ताधो पुण्डुसाइं, रत्ती - दिवसाणि जायंते ॥४५२॥

अर्थ—जिस समय दोनों सूर्य प्रथममार्गमें प्रवेश करते हुए क्रमशः भरत और ऐरावत क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं, उसी समय पूर्वोक्त (१८ मुहूर्तका दिन और १२ मुहूर्तकी रात्रि) दिन-रात्रियाँ होती हैं ॥४५२॥

एवं सव्व - पहेसुं, उदयत्थमयाणि ताणि णावूणं ।

पडि-वीहि दिवस-णिसा, बाहिर-'मग्गंतमाणेज्जं ॥४५३॥

अर्थ—इसप्रकार सर्व पथोंमें उदय एवं अस्तगमनोंको जानकर सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित प्रत्येक वीथीमें दिन और रात्रिका प्रमाण ज्ञात कर लेना चाहिए ॥४५३॥

सव्व-परिहोसु बाहिर-मग्ग-ठिदे विवहणाह-विबम्मि ।

दिण - रत्तीओ बारस, अट्टरस - मुहुत्तमेत्ताओ ॥४५४॥

अर्थ—सूर्य-बिम्बके बाह्य पथमें स्थित होनेपर सर्व परिधियोंमें बारह मुहूर्त प्रमाण दिन और अठारह मुहूर्त प्रमाण रात्रि होती है ॥४५४॥

बाहिर-पहाडु आदिम-पहम्मि दुमणिस्स आगमण-काले ।

पुव्वत्त - दिण - णिसाओ, हवन्ति अहियाओ ऊणाओ ॥४५५॥

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथसे आदि पथकी ओर आते समय पूर्वोक्त दिन एवं रात्रि क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक और कम अर्थात् उत्तरोत्तर दिन अधिक तथा रात्रि कम होती है ॥४५५॥

सूर्यके उदय-स्थानोंका निरूपण—

मत्तंड-दिण-गदीए, एक्कं चिय लब्भदे उदय-ठाणं ।

एवं दीवे वेदी - लवणसमुद्देसु आणेज्ज ॥४५६॥

१७० । १ । १७६ । १७० । १ । ४ । १७० । १ । २३१७८ ।

अर्थ—सूर्यकी दिनगतिमें एक ही उदयस्थान लब्ध होता है । इसप्रकार द्वीप, वेदी और लवण समुद्रमें उदय-स्थानोंके प्रमाणको ले आना चाहिए ॥४५६॥

ते दीवे तेसद्धी, छव्वोसंसा ख - सस - एक्क-हिदा ।

एक्का चिय वेदीए, कलाओ चउहत्तरी होंति ॥४५७॥

६३ । १७० । १ । १७० । १

अर्थ—वे उदय स्थान एक सी सत्तरसे भाजित छव्वीस भाग अधिक तिरेसठ (६३१७०) जम्बूद्वीपमें और चौहत्तरकला अधिक केवल एक (११७०) उदयस्थान उसकी वेदीके ऊपर है ॥४५७॥

अट्टारसुत्तर-सदं, लवणसमुद्दम्मि तेत्तिय-कलाओ ।

एदे मिलिदा उदया, तेसीदि-सदाणि अट्टताल-कला ॥४५८॥

११८ । १७० ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें उत्तरी (११८) ही कलाओंसे अधिक एक सी अठारह (११८) उदयस्थान हैं । ये सब उदयस्थान मिलकर अट्टतालीस कलाओंसे अधिक एक सी तेरासी (१८३) हैं ॥४५८॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपमें सूर्यके चार क्षेत्रका प्रमाण १८० योजन है । जम्बूद्वीपकी वेदीका व्यास ४ योजन है और लवण-समुद्रके चार क्षेत्रका प्रमाण ३३० ई६ = २३१°० योजन है । सूर्यवीथीका प्रमाण १६ योजन है और एक वीथीसे दूसरी वीथीके अन्तरालका प्रमाण २ योजन है । यह २ + १६ अर्थात् १८° योजन सूर्यके प्रतिदिनका गमनक्षेत्र है ।

गाथा ४५६ की संदृष्टिके प्रारम्भमें जो $१\frac{१}{२}$ । १ । १७६ दिये गये हैं उनका अर्थ यह है—

जबकि $१\frac{१}{२}$ योजन दिनगतिमें १ उदयस्थान होता है तब वेदिकाके व्याससे रहित जम्बू-द्वीपके ($१८० - ४$) १७६ योजनमें कितने उदय स्थान प्राप्त होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१७६ \times ६०}{१००} = \frac{१०५६०}{१००} = ६३६\frac{६०}{१००}$ उदय अंश प्राप्त हुए। जिनकी संदृष्टि गाथा ४५७ के नीचे है। गा० ४५६ की संदृष्टिका दूसरा अंश $१\frac{१}{२}$ । १ । ४ । है। अर्थात् जबकि $१\frac{१}{२}$ योजन क्षेत्रमें एक उदय स्थान प्राप्त होता है, तब वेदी-व्यास के ४ योजनोंमें कितने उदय स्थान होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{६३६\frac{६०}{१००} \times ४}{१००} = \frac{२५४६\frac{४०}{१००}}{१००}$ अर्थात् $११८६\frac{४०}{१००}$ उदय अंश प्राप्त होते हैं; जिनकी संदृष्टि भी गाथा ४५७ के नीचे है।

गाथा ४५६ की संदृष्टिका अन्तिम अंश $१\frac{१}{२}$ । १ । $३१३\frac{०८}{१००}$ । है। अर्थात् जबकि $१\frac{१}{२}$ योजन क्षेत्रका १ उदय स्थान है तब लवणसमुद्रके चारक्षेत्र $\frac{३१३\frac{०८}{१००}}{१००}$ ($३३०\frac{६६}{१००}$) योजन क्षेत्रमें कितने उदयस्थान होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{६३६\frac{६०}{१००} \times ३३०\frac{६६}{१००}}{१००} = \frac{२१८६\frac{४०}{१००}}{१००}$ अर्थात् $११८६\frac{४०}{१००}$ उदय अंश प्राप्त हुए; जिनकी संदृष्टि गाथा ४५८ के नीचे दी गई है।

उपर्युक्त तीनों राशियोंको जोड़नेपर ($६३६\frac{६०}{१००} + ११८६\frac{४०}{१००} + ११८६\frac{४०}{१००}$) = १८२ उदयस्थान और ३३६ उदय अंश प्राप्त होते हैं। जबकि १ उदय स्थानका $१\frac{१}{२}$ योजन क्षेत्र होता है तब ३३६ उदय अंशोंका कितना क्षेत्र होगा ? इसप्रकार ($\frac{३३६ \times ६०}{१००} = २०१\frac{६०}{१००}$) योजन क्षेत्र प्राप्त होता है। इस क्षेत्रके उदय स्थान निकालने पर ($\frac{२०१\frac{६०}{१००} \times ६०}{१००} = ३३६$) अर्थात् $११८६\frac{४०}{१००}$ उदयस्थान प्राप्त होते हैं। इन्हें उपर्युक्त उदय-स्थानोंमें जोड़ देनेपर ($१८२ + ११८६\frac{४०}{१००}$) = $१८३६\frac{४०}{१००}$ अर्थात् ४८ कला अधिक १८३ उदय स्थान प्राप्त होते हैं।

उदय स्थानोंका विशद विवेचन त्रिलोकसार गाथा ३६६ की टीकासे ज्ञातव्य है।

ग्रहोंका निरूपण—

अट्टासीवि-गहाणं, एक्कं चिय होवि एत्थ चारखिदी ।

तज्जोगो वीहीओ, पडिबीहि होति परिहीओ ॥४५६॥

अर्थ—यहाँ अठ्ठासी ग्रहोंका एक ही चारक्षेत्र है, जहाँ प्रत्येक वीथीमें उसके योग्य वीथियाँ और परिधिियाँ हैं ॥४५६॥

परिहीसु ते चरंते, ताणं कणयाचलस्स विचचालं ।

अण्णं पि पुब्ब-भणिदं, काल-वसावो पणट्ठमुवएसं ॥४६०॥

गहाणं परवणा समत्ता ।

अर्थ—वे ग्रह इन परिधियोंमें संचार करते हैं । इनका मेघ-पर्वतसे अन्तराल तथा और भी जो पूर्वमें कहा जा चुका है उसका उपदेश कालवश नष्ट हो चुका है ॥४६०॥

ग्रहोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

चन्द्रके पन्द्रह पथोंमेंसे किस-किस पथमें कौन-कौन नक्षत्र संचार करते हैं ?

उनका विवेचन—

ससिणो पण्णरसाणं, वीहीणं ताण होंति मज्झम्मि ।

अट्ठं चिय वीहीणो, अट्ठावीसाण रिक्खाणं ॥४६१॥

अर्थ—चन्द्रकी पन्द्रह गलियोंके मध्यमें अट्ठाईस नक्षत्रोंको आठ ही गलियाँ होती हैं ॥४६१॥

णव अभिजिप्पहुदीणं, सावी पुट्ठाओ उत्तराओ वि ।

इय बारस रिक्खाणि, चंदस्स चरंति पढम - पहे ॥४६२॥

अर्थ—अभिजित् आदि नौ, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी ये बारह नक्षत्र चन्द्रके प्रथम पथमें संचार करते हैं ॥४६२॥

तदिए पुणव्वसू मघ, सत्तमए रोहणी य चित्ताओ ।

छट्ठम्मि कित्तिआओ, तह य विसाहाओ अट्ठमओ ॥४६३॥

अर्थ—चन्द्रके तृतीय पथमें पुनर्वसु और मघा, सातवेंमें रोहिणी और चित्रा, छठेमें कृतिका तथा आठवें पथमें विशाखा नक्षत्र संचार करता है ॥४६३॥

दसमे अणुराहाओ, जेट्ठा एक्कारसम्मि पण्णरसे ।

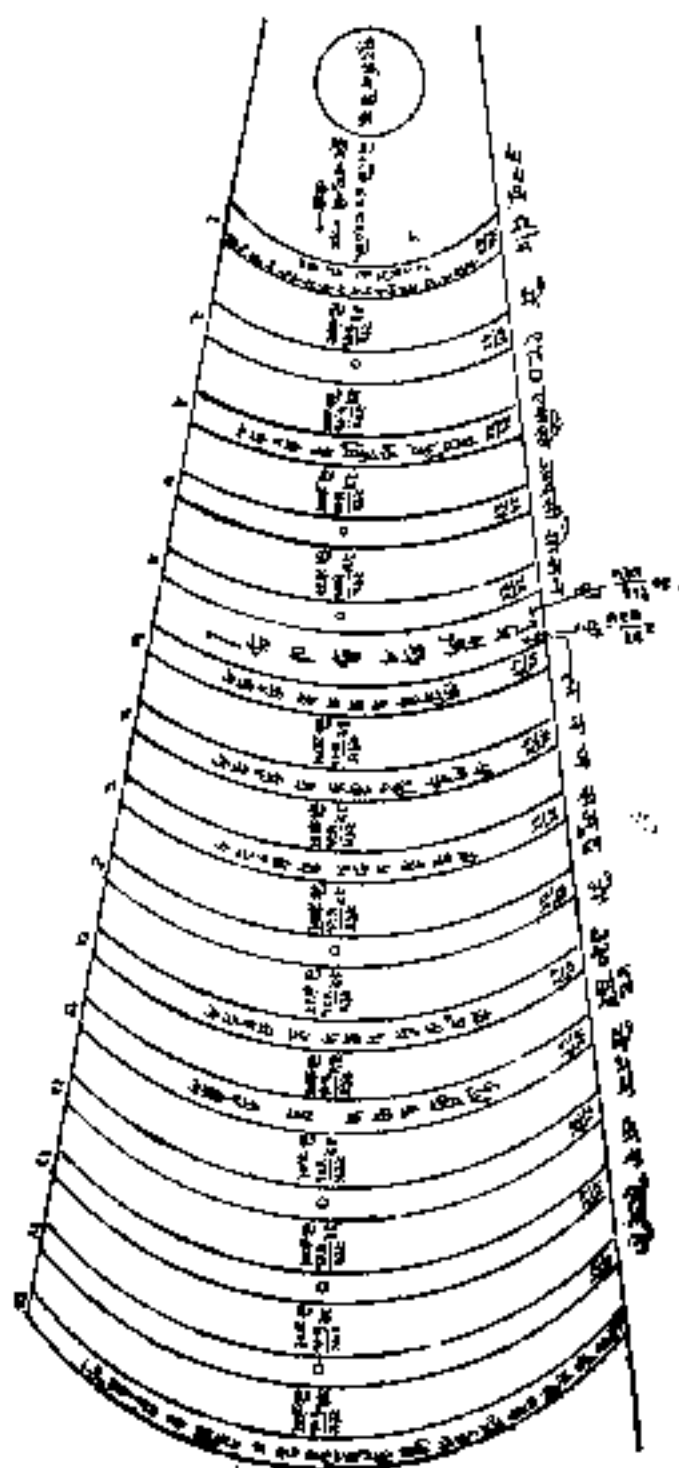
हत्थो भूलादि - तियं, मिगसिर-वुग-पुस्स-असिलेसा ॥४६४॥

अर्थ—दसवें पथमें अनुराधा, ग्यारहवेंमें ज्येष्ठा तथा पन्द्रहवें मार्गमें हस्त, भूलादि तीन (मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा), मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य और आश्लेषा ये आठ नक्षत्र संचार करते हैं ॥४६४॥

विशेषार्थ—चन्द्रकी १५ गलियाँ हैं । उनमेंसे ८ गलियोंमें २८ नक्षत्र संचार करते हैं । यथा—

(१) चन्द्रकी प्रथम वीथीमें—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा-भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी । (२) तृतीय वीथीमें—

पुनर्वसु और मघा । (३) छठी बीधीमें—कृतिका । (४) सातवीं बीधीमें—रोहिणी और चित्रा । (५) आठवींमें—विशाखा । (६) दसवींमें अनुराधा । (७) ग्यारहवींमें—ज्येष्ठा तथा (८) पन्द्रहवीं (अन्तिम) बीधीमें—हस्त, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य और आश्लेषा ये आठ नक्षत्र संचार करते हैं । यथा—



प्रत्येक नक्षत्रके ताराओंकी संख्या—

ताराओ कित्तियादिसु, छह-पंच-ति-गुक्क-छक्क-तिय-छक्का ।

चउ-दुग-दुग - पंचेक्का, एक्क-चउ-छ-ति-णव-चउक्का य ॥४६५॥

चउ-तिय-तिय-पंचा तह, एक्करस-जुदं सयं दुग - दुगाणि ।

बत्तीस पंच तिणिण य, कमेण णिट्ठ - संखाओ ॥४६६॥

६।५।३।१।६।३।६।४।२।२।५।१।१।४।६।३।

।९।४।४।३।३।५।१११।२।२।३२।५।३।

अर्थ—छह, पांच, तीन, एक, छह, तीन, छह, चार, दो, दो, पांच, एक, एक, चार, छह, तीन, नौ, चार, चार, तीन, तीन, पांच, एक सौ ग्यारह, दो, दो, बत्तीस, पांच और तीन, यह क्रमशः उन कृत्तिकादिक नक्षत्रोंके ताराओंकी संख्या कही गई है ॥४६५-४६६॥

प्रत्येक ताराका आकार—

बीजणय-सयलउड्ढो, कुरंगसिर-दीव-सोरणाणं च ।

आदववारण - वम्मिय - गोमुत्तं सरदुगाणं च ॥४६७॥

हत्थुप्पल-दीवाणं, अधियरणं हार-वीण-सिंगा य ।

विच्छुव-दुक्कयवावी, केसरि - गयसीस आयारा ॥४६८॥

मुरयं पसंतपक्खी, सेणा गय-पुठव-अवर-गत्ता य ।

णावा हयसिर-सरिसा, णं चुल्ली कित्तियादीणं ॥४६९॥

अर्थ—कृत्तिका आदि नक्षत्रों (ताराओं) के आकार क्रमशः १बीजना, २गाड़ीकी उद्धिका, ३हिरण्यका सिर, ४दीप, ५तोरण, ६आतपवारण (छत्र), ७वल्मीक, ८गोमूत्र, ९सरयुग, १०हस्त, ११उत्पल, १२दीप, १३अधिकरण, १४हार, १५वीणा, १६सींग, १७बिच्छू, १८दुष्कृतवापी, १९सिंहका सिर, २०हाथीका सिर, २१मुरज, २२पतत्पक्षी, २३सेना, २४हाथीका पूर्व शरीर, २५हाथीका अपर शरीर, २६नौका, २७घोड़ेका सिर और २८चूल्हाके सदृश हैं ॥४६७-४६९॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

नक्षत्रोंके नाम, ताराओंकी संख्या एवं आकार—

क्रमिक	नक्षत्र	ताराओं की संख्या	ताराओं के आकार	क्रमिक	नक्षत्र	ताराओं की संख्या	ताराओं के आकार
१.	कृतिका	६	बीजना सदृश	१५.	अनुराधा	६	बीणा सदृश
२.	रोहिणी	५	गाड़ीकी उद्धिका	१६.	ज्येष्ठा	३	सींग सदृश
३.	मृगशीर्षा	३	हिरण्यके सिर सदृश	१७.	मूल	६	बिच्छू सदृश
४.	आर्द्रा	१	दीप सदृश	१८.	पूर्वाषाढ़ा	४	दुष्कृत बापी सदृश
५.	पुनर्वसु	६	तोरण सदृश	१९.	उत्तराषाढ़ा	४	सिंहके सिर सदृश
६.	पुष्य	३	छत्र सदृश	२०.	अभिजित्	३	हाथोंके सिर सदृश
७.	आश्लेषा	६	वल्मीक (बांबी) ,,	२१.	श्रवण	३	मुरज (मृदङ्ग) ,,
८.	मघा	४	गोमूत्र सदृश	२२.	धनिष्ठा	५	गिरते हुए पक्षी ,,
९.	पूर्वा फाल्गुनी	२	सरयुग ,,	२३.	शतभिषा	१११	सेना सदृश
१०.	उत्तरा ,,	२	हाथ ,,	२४.	पूर्वाभाद्रपद	२	हाथोंके पूर्व शरीर ,,
११.	हस्त	५	उत्पल (नीलकमल) ,,	२५.	उत्तराभाद्रपद	२	हाथोंके अपर शरीर ,,
१२.	चित्रा	१	दीप सदृश	२६.	रेवती	३२	नौका सदृश
१३.	स्वाति	१	अधिकरण ,,	२७.	अश्विनी	५	घोड़ेके सिर सदृश
१४.	विशाखा	४	हार ,,	२८.	भरणी	३	चूल्हेके सदृश

कृतिका आदि नक्षत्रोंकी परिवार ताराएँ और सकल ताराएँ—

णिय गिय तारा-संख्या, सव्वायें ठाविदूण रिक्खाणं ।

पत्तेवकं गुणिदध्वं, एक्करस - सदेहि एक्करसे ॥४७०॥

होति परिवार-तारा, मूलं मिस्ताओ सयल-ताराओ ।
तिविहाइं रिक्खाइं, मज्झिम - वर - अवर-मेवेहि ॥४७१॥

६६६६ । ५५५५ । ३३३३ । ११११ । ६६६६ । ३३३३ । ६६६६ । ४४४४ ।

२२२२ । २२२२ । ५५५५ । ११११ । ११११ । ४४४४ । ६६६६ ।

३३३३ । ९९९९ । ४४४४ । ४४४४ । ३३३३ । ३३३३ ।

५५५५ । १२३३२१ । २२२२ । २२२२ ।

३५५५२ । ५५५५ । ३३३३ ।

६६७२ । ५५६० । ३३३६ । १११२ । ६६७२ । ३३३६ । ६६७२ । ४४४८ ।

२२२४ । २२२४ । ५५६० । १११२ । १११२ । ४४४८ । ६६७२ ।

३३३६ । १०००८ । ४४४८ । ४४४८ । ३३३६ । ३३३६ ।

५५६० । १२३४३२ । २२२४ । २२२४ ।

३५५८४ । ५५६० । ३३३६ ।

अर्थ—अपने-अपने सब ताराओंकी संख्या को रखकर उसे ग्यारह सौ ग्यारह (११११) से गुणा करनेपर प्रत्येक नक्षत्रके परिवार-ताराओंका प्रमाण प्राप्त होता है। इसमें मूल ताराओंका प्रमाण मिला देनेपर समस्त ताराओंका प्रमाण होता है। मध्यम, उत्कृष्ट और अधम्यके भेदसे नक्षत्र तीन प्रकारके होते हैं ॥४७०-४७१॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

ताराओं का प्रमाण—

क्र.सं.	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	प्रत्येक नक्षत्र की सम्पूर्ण ताराएँ	क्र.सं.	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	मूल ताराओं की संख्या	प्रत्येक नक्षत्र की सम्पूर्ण ताराएँ
१.	कृत्तिका	११११ × ६ = ६६६६ +	६६७२	१५.	अनुराधा	११११ × ६ = ६६६६ +	६ =	६६७२
२.	रोहिणी	११११ × ५ = ५५५५ +	५५६०	१६.	ज्येष्ठा	११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६
३.	मृगं	११११ × ३ = ३३३३ +	३३३६	१७.	मूल	११११ × ९ = ९९९९ +	९ =	१०००८
४.	आर्द्रा	११११ × १ = ११११ +	१११२	१८.	पूर्वाषाढ़ा	११११ × ४ = ४४४४ +	४ =	४४४८
५.	पुनर्वसु	११११ × ६ = ६६६६ +	६६७२	१९.	उ० षाढ़ा	११११ × ४ = ४४४४ +	४ =	४४४८
६.	पुष्य	११११ × ३ = ३३३३ +	३३३६	२०.	अभि०	११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६
७.	आश्लेषा	११११ × ६ = ६६६६ +	६६७२	२१.	श्रवण	११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६
८.	मघा	११११ × ४ = ४४४४ +	४४४८	२२.	बनिष्ठा	११११ × ५ = ५५५५ +	५ =	५५६०
९.	पूर्व फा०	११११ × २ = २२२२ +	२२२४	२३.	शतभि०	११११ × ११११ = १२३३२१ +	१११ =	१२३४३२
१०.	उ० फा०	११११ × २ = २२२२ +	२२२४	२४.	पूर्व भा०	११११ × २ = २२२२ +	२ =	२२२४
११.	हस्त	११११ × ५ = ५५५५ +	५५६०	२५.	उ० भा०	११११ × २ = २२२२ +	२ =	२२२४
१२.	चित्रा	११११ × १ = ११११ +	१११२	२६.	रेवती	११११ × ३२ = ३५५५२ +	३२ =	३५५८४
१३.	स्वाति	११११ × १ = ११११ +	१११२	२७.	अश्विनी	११११ × ५ = ५५५५ +	५ =	५५६०
१४.	विशाखा	११११ × ४ = ४४४४ +	४४४८	२८.	भरणी	११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६

जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम नक्षत्रोंके नाम तथा इन तीनोंके
गगन-खण्डोंका प्रमाण—

अवरात्रो जेट्ठद्वा, सदभिस-भरणीओ सावि-असिलेस्सा ।
होति वराओ पुणव्वस्सु ति-उत्तरा रोहिणि-विसाहाओ ॥४७२॥
सेसाओ मज्झिमाओ, जहण्ण-भे पंच-उत्तर-सहस्सं ।
सं चिय दुगुणं तिगुणं, मज्झिम-वर-भेसु णभ-खण्डा ॥४७३॥

१००५ । २०१० । ३०१५ ।

अर्थ—ज्येष्ठा, आर्द्रा, शतभिषक्, भरणी, स्वाति और आश्लेषा, ये छह जघन्य; पुनर्वसु, तीन उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरा भाद्रपद), रोहिणी और विशाखा ये उत्कृष्ट; एवं शेष (अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्षा, पुष्य, मघा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वा फा०, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपद, मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती ये) नक्षत्र मध्यम हैं । इनमेंसे (प्रत्येक) जघन्य नक्षत्रके एक हजार पाँच (१००५), (प्रत्येक) मध्यम नक्षत्रके इससे दुगुने ($१००५ \times २ = २०१०$) और प्रत्येक उत्कृष्ट नक्षत्रके इससे तिगुने ($१००५ \times ३ = ३०१५$) गगनखण्ड होते हैं ॥४७२-४७३॥

अभिजित् नक्षत्रके गगनखण्ड—

अभिजिस्स छस्सयाणि, तीस-जुवाणि हुवन्ति णभ-खंडा ।
एवं णव्वत्ताणं, सीम - विभागं वियाणेहि ॥४७४॥

६३० ।

अर्थ—अभिजित् नक्षत्रके छह सौ तीस (६३०) गगनखण्ड होते हैं । इसप्रकार नभ-खण्डोंसे इन नक्षत्रोंकी सीमाका विभाग जानना चाहिए ॥४७४॥

एक मुहूर्तके गगनखण्ड—

पत्तेक्कं रिक्खाणि, सव्वाणि मुहुत्तमेत्त - कालेणं ।
लंघन्ति गयणखंडे, पणसीसत्तारस - सयाणि ॥४७५॥

१८३५ ।

अर्थ—(सब नक्षत्रोंमेंसे) प्रत्येक नक्षत्र एक मुहूर्त कालमें अठारह सौ पैंतीस (१८३५) गगनखण्ड लांघता है ॥४७५॥

सर्व गगनखण्डोंका प्रमाण और उनका आकार—

बो-ससि-णवखत्ताणं, परिमाणं भणमि गयणखंडेसु ।

लखं णव य सहस्सा, अट्ठ - सया काहलायारा ॥४७६॥

अर्थ—दो चन्द्रों सम्बन्धी नक्षत्रोंके गगनखण्डोंका प्रमाण कहता हूँ । य गगनखण्ड काहला (वाद्यविशेष) के आकारवाले हैं । इनका कुल प्रमाण एक लाख नौ हजार आठ सौ है ॥४७६॥

विशेषार्थ—जवन्य नक्षत्र ६ और प्रत्येकके गगनखण्ड १००५ हैं अतः $१००५ \times ६ = ६०३०$ । मध्यम नक्षत्र १५ और प्रत्येक के गगनखण्ड २०१० हैं अतः $२०१० \times १५ = ३०१५०$ । उत्तम नक्षत्र ६ और प्रत्येकके गगनखण्ड ३०१५ हैं अतः $३०१५ \times ६ = १८०९०$ । अभिजित् नक्षत्रके ग० खं० ६३० हैं । इसप्रकार एक चन्द्र सम्बन्धी सर्व गगनखण्ड ($६०३० + ३०१५० + १८०९० + ६३०$) = ५४९०० है । तथा दो चन्द्रों सम्बन्धी सर्व गगनखण्डोंका प्रमाण (५४९००×२) = १०९८०० है ।

सर्व गगनखण्डोंका अतिक्रमण काल—

रिक्खाण मूहुत्त-गदी, होदि पमाणं फलं मूहुत्तं च ।

इच्छा रिस्सेसाइ, मिलिदाइ गयणखंडाणि ॥४७७॥

१८३५ । १०६८००० ।

तेरासियम्मि लद्धं, णिय णिय परिहीसु सो भमण-कालो ।

तम्माणं उणसट्ठी, होंति मूहुत्ताणि अविरेणो ॥४७८॥

५९ ।

अविरेगस्स पमाणं, तिण्णि सयाणि हवन्ति सत्त-कला ।

तिसएहि सत्तसट्ठी - संजुसोहि विभत्ताणि ॥४७९॥

३०७ ।

अर्थ—[जबकि नक्षत्रोंको १८३५ गगनखण्डोंके भ्रमणमें एक मुहूर्त लगता है, तब १०६८०० ग० खं० के भ्रमणमें कितना काल लगेगा ? इसप्रकार करनेपर] नक्षत्रोंकी मुहूर्त काल-परिमित गति (१८३५) प्रमाण-राशि, एक मुहूर्त फल-राशि और सब मिलकर (१०९८००) गगन-खण्ड इच्छाराशि होती है । इसप्रकार त्रैराशिक करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना अपनी-अपनी परिधियों का भ्रमण-काल है । उसका प्रमाण यहाँ कुछ अधिक उनसठ (५९) मुहूर्त है । इस अधिक का प्रमाण तीन सौ सड़सठसे विभक्त तीन सौ सात कला (३०७) है ॥४७७-४७९॥

विशेषार्थ—प्रत्येक परिधिमें १०९८०० गगनखण्डों पर घ्रमण करनेमें नक्षत्रों को $(\frac{1098000 \times 1}{29383} =) ५२३६३$ मुहूर्तें लगते हैं ।

चन्द्रकी प्रथम वीथी में स्थित १२ नक्षत्रोंका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र —

सयणादि-श्रद्ध-भार्णि, अभिजिस्तादीश्रो उत्तरा-पुष्या ।

वच्चंति मुहुत्तेणं, बावण-सयाणि अहिय-पणसद्वो ॥४८०॥

५२६५ ।

अहिय-प्यमाणमंसा, श्रद्धरस-सहस्स-वु-सय-सेसद्वो ।

इगिबीस-सहस्साणि, णव - सय - सद्वो हरे हारो ॥४८१॥

३९३६३ ।

अर्थ—श्रवणादिक आठ, अभिजित्, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार दो सौ पैंसठ योजन से अधिक गमन करते हैं । यहाँ अधिकता का प्रमाण इक्कीस हजार नी सौ साठ भागोंमेंसे अठारह हजार दो सौ तिरेसठ भाग प्रमाण है ॥४८०-४८१॥

विशेषार्थ—चन्द्रकी प्रथम वीथीमें श्रवण, बनिष्ठा, शतभिषा, पू० भा०, उ० भा०, रेवती, अश्विनी, भरणी, अभिजित्, स्वाति, पू० फा० और उ० फा० ये १२ नक्षत्र संचार करते हैं । प्रथम वीथी की परिधि का प्रमाण ३१५०८९ योजन है । जबकि नक्षत्र $५६३६३ = २३६६०$ मुहूर्तोंमें ३१५०८९ योजन संचार करते हैं, तब एक मुहूर्तमें कितने योजन गमन करेंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $(\frac{315089 \times 1}{29383} =) ५२६५३६३६३$ योजन प्राप्त होते हैं । यही चन्द्र की प्रथम वीथी में नक्षत्रों के एक मुहूर्त के गमन क्षेत्र का प्रमाण है ।

चन्द्र की तीसरी वीथी स्थित नक्षत्रों का गमन क्षेत्र—

वच्चंति मुहुत्तेणं, पुणव्वसु'-मघा ति-सत्त-दुग-पंचा ।

अंक-क्रमे जीयणया, तिय-णभ-चउ-एक्क-एक्क-कला ॥४८२॥

५२७३ । ३९४६३ ।

अर्थ—पुनर्वसु और मघा नक्षत्र अंक-क्रमसे तीन, सात, दो और पाँच अर्थात् पाँच हजार दो सौ तिहत्तर योजन और ग्यारह हजार चार सौ तीन भाग अधिक एक मुहूर्तमें गमन करते हैं ॥४८२॥

विशेषार्थ—पुनर्वसु और मघा नक्षत्र चन्द्रकी तृतीय वीथीमें भ्रमण करते हैं । इस वीथीकी परिधिका प्रमाण ३१५५४६३६६६ योजन है । किन्तु पुनर्वसु और मघाका एक मुहूर्त का गमन क्षेत्र निकालते समय अधिकका प्रमाण (३६६६) छोड़कर त्रैराशिक किया गया है ।

जिसका प्रमाण ($3155463666 \div 86400$) = ५२७३३३३३३ योजन प्राप्त होता है ।

नोट—आगे शेष छह गलियोंकी परिधिके प्रमाणमें से भी अधिक का प्रमाण छोड़ कर गमन क्षेत्र प्राप्त किया गया है ।

कृत्तिका नक्षत्रका एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

बावण्य - सया पणसीबि - उत्तरा सत्ततीस अंसा य ।

चउणउबि'पण-सय-हिवा, जादि मुहुत्तेण किच्चिया रिक्खा ॥४८३॥

५२८५ । ५३९ ।

अर्थ—कृत्तिका नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार दो सौ पचासी योजन और पाँच सौ चौरानबैसे भाजित सैंतीस भाग अधिक गमन करता है ॥४८३॥

विशेषार्थ—कृत्तिका नक्षत्र चन्द्रकी छठी वीथीमें भ्रमण करता है । इस वीथीकी परिधि का प्रमाण ३१६२४०३६६६ योजन है । इसमें कृत्तिका का एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र ($3162403666 \div 60480$) = ५२८५६६६ योजन प्राप्त होता है ।

चित्रा और रोहिणीका एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

पंच-सहस्सा दु - सया, अट्ठासीदी य जोयणा अहिया ।

चिस्ताओ रोहिणीओ, जसि मुहुत्तेण पत्तेक्कं ॥४८४॥

अदिरेगस्स पमाणं, कलाओ सग-सत्त-ति-णह-दुगमेत्ता ।

अंक - कमे तह हारो, ल-छक्क-णव-एक्क-दुग-माणो ॥४८५॥

५२८८ । ३९३७७ ।

अर्थ—चित्रा और रोहिणीमेंसे प्रत्येक नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार दो सौ अठासी योजनसे अधिक जाता है । यहाँ अधिकताका प्रमाण अंक-क्रमसे शून्य, छह, नौ, एक और दो अर्थात् इक्कीस हजार नौ सौ साठसे भाजित बीस हजार तीन सौ सत्तर कला है ॥४८४-४८५॥

विशेषार्थ—चित्रा और रोहिणी नक्षत्र चन्द्रके सातवें पथमें भ्रमण करते हैं। इस पथ की परिधिका प्रमाण $३१६४७१\frac{५}{८}$ योजन है। इसमें प्रत्येकका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र $(\frac{३१६४७१ \times ३५७}{२२५००}) = ५२८८३\frac{५}{८}$ योजन प्राप्त होता है।

विशाखा नक्षत्रका एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

वावण-सया वाणउदि जोयणा वच्चदे विसाहा य ।

सोलस-सहस्स-णथ-सथ - सगवाल - कला मुहुत्तेणं ॥४८६॥

५२९२ । ३१६४७१ ।

अर्थ—विशाखा नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार दो सौ बानवें योजन और सोलह हजार नौ सौ सैंतालीस कला अधिक गमन करता है ॥४८६॥

विशेषार्थ—विशाखा नक्षत्र चन्द्रके आठवें पथमें भ्रमण करता है। इस पथकी परिधिका प्रमाण $३१६७०१\frac{५}{८}$ योजन है। इस परिधिमें विशाखाके एक मुहूर्तके गमन-क्षेत्रका प्रमाण $(\frac{३१६७०१ \times ३५७}{२२५००}) = ५२९२३\frac{५}{८}$ योजन प्राप्त होता है।

अनुराधा नक्षत्रका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र—

तेवण-सयाणि जोयणाणि वच्चदि मुहुत्तेत्ताणि ।

चउवण चउ-सया वस-सहस्स अंसा य अनुराहा ॥४८७॥

५३०० । ३१६५४ ।

अर्थ—अनुराधा नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार तीन सौ योजन और दस हजार चार सौ चौवन भाग अधिक गमन करता है ॥४८७॥

विशेषार्थ—अनुराधा नक्षत्र चन्द्रके दसवें पथमें भ्रमण करता है। इस पथकी परिधिका प्रमाण $३१७१६२\frac{५}{८}$ योजन है। इस परिधिमें अनुराधाके एक मुहूर्तके गमन-क्षेत्रका प्रमाण $(\frac{३१७१६२ \times ३५७}{२२५००}) = ५३००३\frac{५}{८}$ योजन प्राप्त होता है।

ज्येष्ठा नक्षत्रका एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

तेवण-सयाणि जोयणाणि चत्तारि वच्चदि जेट्ठा ।

अंसा सत्त - सहस्सा, चउवीस - जुवा मुहुत्तेणं ॥४८८॥

५३०४ । ३१६५४ ।

अर्थ—ज्येष्ठा नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार तीन सौ चारयोजन और सात हजार चौबीस भाग अधिक गमन करता है ॥४८८॥

विशेषार्थ—ज्येष्ठा नक्षत्र चन्द्रके स्वारहवें पथमें भ्रमण करता है। इस पथकी परिधिका प्रमाण $३१७३९२\frac{१}{२}\frac{१}{४}$ योजन है। इस परिधिमें ज्येष्ठाके एक मुहूर्तके गमन-क्षेत्रका प्रमाण $(\frac{३१७३९२ \times ३६०}{२४ \times ६०}) = ५३०४६६\frac{१}{२}\frac{१}{४}$ योजन प्राप्त होता है।

पुष्यादि ८ नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येकके गमन-क्षेत्रका प्रमाण—

पुस्तो असिलेसाश्रो, पुवसासाढाश्रो उत्तरासाढा ।
हृत्थो मिगसिर - मूला, अद्दाश्रो अद्दु पत्तेक्कं ॥४८६॥
सेवण्ण-सया उण्णोस^१-जोयणा जंति इगि-मुहुत्तेणं ।
अद्दाणउवो एव-सय, पण्णरस - सहस्स अंसा य ॥४८७॥

५३१९ । ३५६६६ ।

अर्थ—पुष्य, आश्लेषा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, मृगशीर्षा, मूल और आर्द्रा, इन आठ नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येक एक मुहूर्तमें पाँच हजार तीन सौ उन्नीस योजन और पन्द्रह हजार नौ सौ अठ्ठावनें भाग अधिक गमन करते हैं ॥४८६-४८७॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त आठों नक्षत्र चन्द्रके पन्द्रहवें (अन्तिम) पथमें भ्रमण करते हैं। इस बाह्य पथकी परिधिका प्रमाण $३१८३१३\frac{१}{२}\frac{१}{४}$ योजन है। इस परिधिमें पुष्य आदि प्रत्येक नक्षत्रके एक मुहूर्तके गमन-क्षेत्रका प्रमाण $(\frac{३१८३१३ \times ३६०}{२४ \times ६०}) = ५३१९३५\frac{१}{२}\frac{१}{४}$ योजन है, किन्तु गाथामें $५३१९३५\frac{१}{२}\frac{१}{४}$ योजन दर्शाया गया है।

नक्षत्रोंके मण्डल क्षेत्रोंका प्रमाण—

मंडल-खेत्त-पमाणं, जहण्ण-भे तीस जोयणा होंति ।
तं चिय दुगुणं तिगुणं, मज्झिम-वर-भेसु पत्तेक्कं ॥४८८॥

३० । ६० । ९० ।

अर्थ—जघन्य नक्षत्रोंके मण्डलक्षेत्रका प्रमाण तीस (३०) योजन और इससे दूना एवं तिगुना वही प्रमाण क्रमशः मध्यम (नक्षत्रोंका ६०) और उत्कृष्ट (का ९० योजन) नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येकका है ॥४८८॥

अद्दारस जोयणया, हवेवि अभिजिस्स मंडलं खेत्तं ।
सङ्खिय-णह-मेत्ताओ, णिय-णिय-ताराण मंडल-खिदीश्रो ॥४८९॥

१८ ।

अर्थ—अभिजित् नक्षत्रका मण्डल क्षेत्र अठारह योजन प्रमाण है और अपने-अपने ताराओं का मण्डलक्षेत्र स्व-स्थित आकाश प्रमाण ही है ॥४९२॥

स्वाति आदि पाँच नक्षत्रोंकी अवस्थिति—

उद्धाओ दक्षिणाए, उत्तर-मञ्जुसु सादि-भरणीश्रो ।

मूलं अभिजी-कित्ति-रिक्खाओ चरंति निय-मग्ने ॥४९३॥

अर्थ—स्वाति, भरणी, मूल, अभिजित् और कृत्तिका, ये पाँच नक्षत्र अपने मार्गमें क्रमशः ऊर्ध्व, अधः, दक्षिण, उत्तर और मध्यमें सञ्चार करते हैं ॥४९३॥

विशेषार्थ—चन्द्रके प्रथम पथमें स्थित स्वाति एवं भरणी नक्षत्र क्रमशः अपनी बीथीके ऊर्ध्व और अधोभागमें, पन्द्रहवें पथमें स्थित मूल नक्षत्र दक्षिण दिशामें प्रथम पथमें स्थित अभिजित् नक्षत्र उत्तर दिशामें और छठे पथमें स्थित कृत्तिका नक्षत्र अपने पथके मध्यभागमें संचार करते हैं ।

एदार्णि रिक्खाणि, निय-निय-मग्नेसु पुन्व-भणिदेसु ।

णिच्चं चरंति मंदर - सेलस्स पदाहिण - कमेणं ॥४९४॥

अर्थ—ये नक्षत्र मन्दर-पर्वतके प्रदक्षिण क्रमसे अपने-अपने पूर्वोक्त मार्गोंमें नित्य ही संचार करते हैं ॥४९४॥

कृत्तिका आदि नक्षत्रोंके अस्त एवं उदय आदिकी स्थिति—

एवि मघा मञ्जुण्हे, कित्ति-रिक्खस्स अत्थमण-समए ।

उवए अणुराहाओ, एवं जाणेज्ज सेसाणि ॥४९५॥

एवं णक्खत्ताणं परूवणा समत्ता ।

अर्थ—कृत्तिका नक्षत्रके अस्तमन कालमें मघा मध्याह्नको और अनुराधा उदयको प्राप्त होता है । इसीप्रकार शेष नक्षत्रोंके उदयादिकको भी जानना चाहिए ॥४९५॥

विशेषार्थ—गाथामें कृत्तिकाके अस्त होते मघाका मध्याह्न और अनुराधाका उदय होना कहा है । कृत्तिकासे मघा ८ वाँ नक्षत्र है और मघासे अनुराधा ८ वाँ है । इससे यह ध्वनित होता है कि जिस समय कोई विवक्षित नक्षत्र अस्त होगा, उस समय उससे आठवाँ नक्षत्र मध्य को और उससे भी ८ वाँ नक्षत्र उदयको प्राप्त होगा । शेष नक्षत्रोंके उदय-अस्तादि की व्यवस्था भी इसीप्रकार जानने को कही गयी है । जो इसप्रकार है—

जब कृत्तिकाका अस्त तब मघा का मध्याह्न श्रीर अनु० का उदय ।

॥ रोहिणीका	॥	॥ पू० फा०	॥	॥ ज्येष्ठा	॥	।
॥ मृगशिराका	॥	॥ उ० फा०	॥	॥ मूल	॥	।
॥ आर्द्राका	॥	॥ हस्त	॥	॥ पू० षा०	॥	।
॥ पुनर्वसुका	॥	॥ चित्रा	॥	॥ उ० षा०	॥	।
॥ पुष्यका	॥	॥ स्वाति	॥	॥ अभिजित्	॥	।
॥ आश्लेषाका	॥	॥ विशाखा	॥	॥ श्रवण	॥	।
॥ मघाका	॥	॥ अनुराधा	॥	॥ धनिष्ठा	॥	।
॥ पू० फा०का	॥	॥ ज्येष्ठा	॥	॥ शत०	॥	।
॥ उ० फा०का	॥	॥ मूल	॥	॥ पू० भा०	॥	।
॥ हस्तका	॥	॥ पू० षा०	॥	॥ उ० भा०	॥	।
॥ चित्राका	॥	॥ उ० षा०	॥	॥ रेवती	॥	।
॥ स्वातिका	॥	॥ अभिजित्	॥	॥ अश्विनी	॥	।
॥ विशाखाका	॥	॥ श्रवण	॥	॥ भरणी	॥	।

इत्यादि—

इसप्रकार नक्षत्रोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

जम्बूद्वीपस्थ चर एवं अचर (ध्रुव) ताराओंका निरूपण—

दुविहा चरयचराओ, पइण्ण-ताराओ ताण चर-संखा ।

कोडाकोडी - लवणं, तेत्तीस-सहस्स-णव-सथा पण्णं ॥४९६॥

१३३९५०००००००००००००००० ।

अर्थ—प्रकीर्णक तारे चर और अचर रूपसे दो प्रकारके होते हैं । इनमें चर ताराओंकी संख्या एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ पचास (१३३९५०) कोड़ाकोड़ी है ॥४९६॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्र-कुलाचलादिकी कुल शलाकाएँ (१, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, ३२, १६, ८, ४, २, १ =) १६० हैं । जम्बूद्वीपस्थ दो चन्द्रोंसे सम्बन्धित १३३९५० कोड़ाकोड़ी ताराओंमें १६० का भाग देनेपर ($\frac{१३३९५० \text{ कोड़ाकोड़ी}}{१६०}$) = ७०५ कोड़ाकोड़ी लब्ध प्राप्त होता है । इसको अपनी-अपनी शलाकाओंसे गुणा करनेपर तत् तत् क्षेत्र एवं पर्वत सम्बन्धी ताराओंका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

क्र०	क्षेत्र और पर्वत के नाम	दोनों चन्द्र सम्बन्धी ताराओंकी संख्या	क्र०	क्षेत्र और पर्वत के नाम	दोनों चन्द्र सम्बन्धी ताराओंकी संख्या
१.	भरतक्षेत्र	७०५ कोड़ाकोड़ी	८.	नील पर्वत	२२५६० कोड़ाकोड़ी
२.	हिमवन् पर्वत	१४१० „	९.	रम्यक क्षेत्र	११२८० „
३.	हैमवत क्षेत्र	२८२० „	१०.	रुक्मि पर्वत	५६४० „
४.	महाहिमवन् प०	५६४० „	११.	हैरण्यवत क्षेत्र	२८२० „
५.	हरिक्षेत्र	११२८० „	१२.	शिखरिन् प०	१४१० „
६.	निषध पर्वत	२२५६० „	१३.	ऐरावत क्षेत्र	७०५ „
७.	विदेह क्षेत्र	४५१२० „			

छत्तीस अक्षर - तारा, जम्बूद्वीपस्त चउ-दिसा-भाए ।

एवाओ दो - ससिणो, परिवारा अद्धमेक्कम्मि ॥४९७॥

३६ । ६६९७५०००००००००००००००० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपके चारों दिशा-भागोंमें छत्तीस अक्षर (ध्रुव) तारा स्थित हैं । ये (१३३९५० कोड़ाकोड़ी) दो चन्द्रोंके परिवार-तारे हैं । इनसे आधे (६६९७५ कोड़ाकोड़ी) एक चन्द्रके परिवार-तारे समझना चाहिए ॥४९७॥

चन्द्रसे तारा पर्यंत ज्योतिषी देवोंके गमन-विशेष—

रिक्ख-गमणादु अहियं, गमणं जाणेज्ज सयल-ताराणं ।

ताणं णाम - प्पहुविसु, उवएसो संपद्द पणहुओ ॥४९८॥

अर्थ—सब ताराओंका गमन नक्षत्रोंके गमनसे अधिक जानना चाहिए । इनके नामादिकका उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है ॥४९८॥

चंदाओ मत्तंडो, मत्तंडाओ गहा गहाहितो ।

रिक्खा रिक्खाहितो, ताराओ होंति सिग्घ - गवी ॥४९९॥

। एवं ताराणं परूवणं समत्तं ।

अर्थ—चन्द्रसे सूर्य, सूर्यसे ग्रह, ग्रहोंसे नक्षत्र और नक्षत्रोंसे भी तारा शीघ्र गमन करनेवाले होते हैं ॥४९९॥

इस प्रकार ताराओंका कथन समाप्त हुआ ।

सूर्य एवं चन्द्रके अयन और उनमें दिन-रात्रियोंकी संख्या—

अयणाणि स रवि-सप्तमिह, सम^१ सप्त-लेह्ये गृह्यते जे^२ चारी ।

णत्थि अयणाणि भगणे, नियमा ताराण एमेव ॥५००॥

अर्थ—सूर्य, चन्द्र और जो अपने-अपने क्षेत्रमें संचार करने वाले ग्रह हैं उनके अयन होते हैं । नक्षत्र-समूह और ताराओं के इसप्रकार अयनोंका नियम नहीं है ॥५००॥

रवि-अयणे एकेकं, तेसोदि-सया हवंति दिण-रसी ।

तेरस विद्या वि चंदे, सत्तट्ठी - भाग - चउच्चालं ॥५०१॥

१८३ । १३ । ३६ ।

अर्थ—सूर्यके प्रत्येक अयनमें एक सौ तेरासी (१८३) दिन-रात्रियाँ और चन्द्रके अयनमें सड़सठ भागोंमेंसे चवालीस भाग अधिक तेरह (१३६६) दिन (और रात्रियाँ) होते हैं ॥५०१॥

दक्षिण-अयणं आसी, पञ्जवसाणं तु उत्तरं अयणं ।

सर्वेसि सूरानं, विवरीवं होवि चंदाणं ॥५०२॥

अर्थ—सब सूर्योंका दक्षिण अयन आदिमें और उत्तर अयन अन्तमें होता है । चन्द्रोंके अयनोंका क्रम इससे विपरीत है ॥५०२॥

अभिजित् नक्षत्रके गगनखण्ड—

छुचवेव सया तीसं, भागाणं अभिजि-रिक्ख-विक्खंभा ।

विट्ठा सव्वं दरिसिंहि, सव्वेहि अणंत - णाणेणं ॥५०३॥

६३० ।

अर्थ—अभिजित् नक्षत्रके विस्तार स्वरूप उसके गगन-खण्डोंका प्रमाण छह सौ तीस (६३०) है । उसे सभी सर्व-दर्शियोंने अनन्त ज्ञानसे देखा है ॥५०३॥

सदभिस-भरणी अद्वा, सादी तह अस्सिलेस-जेढा य ।

पंचुत्तरं सहस्सा, भगणाणं सीम - विक्खंभा ॥५०४॥

१००५ ।

अर्थ—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा और ज्येष्ठा इन नक्षत्र-गणोंके सीमा-विष्कम्भ अर्थात् गगनखण्ड एक हजार पाँच (१००५) हैं ॥५०४॥

एवं चेव य त्रिगुणं, पुनर्वसू रोहिणी विसाहा य ।

तिण्णेव उत्तराश्रो, अयसेसाणं हवे विगुणं ॥५०५॥

अर्थ—पुनर्वसु, रोहिणी, विशाखा और तीनों उत्तरा (उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद), इनके गगनखण्ड इससे त्रिगुने ($१००५ \times ३ = ३०१५$) हैं तथा शेष (१५) नक्षत्रोंके दूने ($१००५ \times २ = २०१०$) हैं ॥५०५॥

अपद्वयं च सहस्सा, अथ य सया होंति सव्व-रिक्खाणं ।

विगुणिय - गयणक्खंडा, दो - चंदाणं पि णादव्वं ॥५०६॥

५४९०० ।

अर्थ—सब नक्षत्रोंके गगनखण्ड चौवन हजार नौ सौ (५४९००) हैं । दोनों चन्द्रोंके गगनखण्ड इससे दूने समझने चाहिए ॥५०६॥

एयं च सय-सहस्सा, अट्ठाणडवी-सया य पडिपुण्णा ।

एसो मंडल - छेवी, भगणाणं सीम - विक्खंभा ॥५०७॥

१०९८०० ।

अर्थ—इसप्रकार एक लाख नौ हजार आठ सौ (१०९८००) गगनखण्डोंसे परिपूर्ण यह मण्डल-विभाग नक्षत्रोंकी सीमाके विस्तार स्वरूप है ॥५०७॥

नक्षत्र, चन्द्र एवं सूर्य द्वारा एक मुहूर्तमें लांघने योग्य

गगनखण्डोंका प्रमाण—

अट्ठारस - भाग - सया, पणत्तीसं गच्छवे मुहुत्तेण ।

अंदो अडसट्ठी सय, सत्तरसं सीम - खेत्तस्स ॥५०८॥

१८३५ । १ । १७६८ ।

अर्थ—नक्षत्र एक मुहूर्तमें अठारह सौ पैंतीस (१८३५) गगनखण्ड रूप सीमा क्षेत्रमें जाता है और चन्द्र (उसी एक मुहूर्तमें) सत्तरह सौ अड़सठ (१७६८) नभखण्ड रूप सीमा क्षेत्रमें जाता है ॥५०८॥

अट्टारस-भाग-सया, तोसं गच्छवि रवी^१ मुहुत्तेण^२ ।

गवत्त - सीम - छेदो, ते चरइ^३ इमेण बोद्धव्वा ॥५०९॥

१८३० ।

अर्थ—सूर्य एक मुहूर्तमें अठारह सौ तीस (१८३०) नभखण्डरूप सीमा क्षेत्रमें जाता है । नक्षत्रोंके सीमा क्षेत्रसे सूर्य और चन्द्रका गमन इसी प्रकार जानना चाहिए ॥५०९॥

सूर्यकी अपेक्षा चन्द्र एवं नक्षत्रके अधिक गगनखण्ड—

सत्तरसट्ठोणि तु, चंदे सूर्ये^३ विसट्ठि-अहिं च ।

सत्तट्ठी वि य भगणा, चरइ मुहुत्तेण भागणां ॥५१०॥

१७६८ । १८३० । १८३५ ।

अर्थ—चन्द्र एक मुहूर्तमें सत्तरह सौ अड़सठ गगनखण्ड लांघता है । इसकी अपेक्षा सूर्य बासठ गगनखण्ड अधिक और नक्षत्रगण सड़सठ गगनखण्ड अधिक लांघते हैं ॥५१०॥

विशेषार्थ—एक मुहूर्तके गमनकी अपेक्षा चन्द्रके नभखण्ड १७६८, सूर्यके १८३० और नक्षत्रके १८३५ हैं । चन्द्रके गगनखण्डोंसे सूर्यके गगनखण्ड (१८३० — १७६८) = ६२ और नक्षत्रके (१८३५ — १७६८) = ६७ गगनखण्ड अधिक हैं । एक ही साथ चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र ने गमन करना प्रारम्भ किया और तीनोंने अपने-अपने गगनखण्डोंको समाप्त कर दिया । अर्थात् एक मुहूर्तमें चन्द्रने १७६८ गगनखण्डोंका घ्रमण किया, जबकि सूर्यने १८३० और नक्षत्रने १८३५ का किया, अतः चन्द्र सूर्यसे ६२ और नक्षत्रसे ६७ गगनखण्ड पोछे रहा ।

सूर्यके तीस मुहूर्तोंके गगनखण्डोंका प्रमाण—

चंद-रवि-गवणखडे, अण्णोण्ण-विसुद्ध-सेस-वासट्ठी ।

एय-मुहुत्त - पमाणं, वासट्ठि - फलिच्छया तीसा ॥५११॥

१ । ६२ । ३० ।

अर्थ—चन्द्र और सूर्यके गगनखण्डोंको परस्पर घटाने पर बासठ खण्ड रहते हैं । जब सूर्य एक मुहूर्तमें (चन्द्रकी अपेक्षा) बासठ गगनखण्ड अधिक जाता है तब वह तीस मुहूर्तमें कितने गगनखण्ड अधिक जावेगा ? इसप्रकार लैराशिक करने पर यहाँ एक मुहूर्त प्रमाण राशि, बासठ फलराशि और तीस मुहूर्त इच्छा-राशि ($५३\frac{३०}{६०}$) होती है ॥५११॥

लैराशिक द्वारा प्राप्त १८६० नभखण्डोंके गगन-मुहूर्तका काल—

एयट्ट-तिण्णि-सुण्णं, गयणखण्डेण लब्भवि मुहुत्तं ।
अट्टरसट्ठी य तहा, गयणखण्डेण कि लद्धं ॥५१२॥

१८३० । १८६० । १ ।

चंदावो सिग्घ-गवी, दिवस-मुहुत्तेण चरदि खलु सूरौ ।
एक्कं चेव मुहुत्तं, एक्कं एयट्ठि - भागं च ॥५१३॥

१ । ११ ।

अर्थ—जब एक, आठ, तीन और शून्य अर्थात् १८३० गगनखण्डोंके अतिक्रमणमें एक मुहूर्त प्राप्त होता है, तब अठारह सौ साठ (१८६०) नभखण्डोंके अतिक्रमणमें क्या प्राप्त होगा ? सूर्य, चन्द्रकी अपेक्षा दिनमुहूर्त अर्थात् तीस मुहूर्तोंमें एक मुहूर्त और एक मुहूर्तके एकसठवें भाग अधिक शीघ्र गगन करता है । अर्थात् १८६० नभखण्डोंके अतिक्रमणका काल ($१८६० \times \frac{१३}{१३०} = १८३०$) १८३० मुहूर्त प्राप्त होगा ॥५१२-५१३॥

नक्षत्रके तीस मुहूर्तोंके अधिक नभखण्ड—

रवि-रिक्ख-गगणखण्डे, अण्णोण्णं सोहिऊण जं सेसं ।
एय - मुहुत्त - पमाणं, फल पण इच्छा तहा तीसं ॥५१४॥

१ । ५ । ३० ।

अर्थ—सूर्य और नक्षत्रोंके गगनखण्डोंको परस्पर घटाकर जो शेष रहे उसे ग्रहण करनेपर यहाँ एक मुहूर्त प्रमाण राशि, पाँच (नक्षत्र) फलराशि और तीस मुहूर्त इच्छाराशि है ॥५१४॥

विशेषार्थ—नक्षत्रके ग० खं० १८३५ — १८३० सूर्यके ग० खं० = ५ अवशेष । जब नक्षत्र (सूर्य की अपेक्षा) एक मुहूर्तमें ५ खण्ड अधिक जाता है, तब तीस मुहूर्तमें कितने खण्ड जावेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (३०×५) = १५० गगनखण्ड प्राप्त होते हैं ।

द्वैरा० द्वारा प्राप्त १५० नक्षत्रण्डोंका अतिक्रमण काल—

तीसद्वारसया खलु, मुहुत्त-कालेण कमइ जइ सूरौ ।
तो केसिय - कालेणं, सय - पंचासं कमे इत्ति ॥५१५॥

१८३० । १ । १५० ।

सूरावो णक्खसं, दिवस - मुहुत्तेण जइणतरमाहु ।
एक्कस्स मुहुत्तस्स य, भागं एक्कट्ठिमे पंच ॥५१६॥

६१ ।

अर्थ—जब सूर्य अठारह सौ तीस गगनखण्डोंको एक मुहूर्तमें लांघता है, तब वह एक सौ पचास (१५०) गगनखण्डोंको कितने समयमें लांघेगा ? सूर्यकी अपेक्षा नक्षत्र एक दिन मुहूर्तों (३० मुहूर्तों) में एक मुहूर्तके इकसठ भागोंमेंसे पाँच भाग अधिक जविनतर अर्थात् अतिशय वेग वाला है। अर्थात् १५० नक्षत्रण्डोंके अतिक्रमणका काल $(\frac{1830}{36}) = 51$ मुहूर्त प्राप्त होता है ॥५१५-५१६॥

सूर्य और चन्द्रकी नक्षत्र भुक्तिका विधान—

णक्खत्त-सीम-भागं, भजिदे दिवसस्स जइण-भागोहि ।
लब्धं तु होइ रवि - ससि - णक्खत्ताणं तु संजोगा ॥५१७॥

अर्थ—सूर्य और चन्द्र एक दिनमें नक्षत्रोंकी अपेक्षा जितने गगनखण्ड पीछे रहते हैं, उनका नक्षत्रोंके गगनखण्डोंमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतने समय तक सूर्य एवं चन्द्रका नक्षत्रोंके साथ संयोग रहता है ॥५१७॥

सूर्यके साथ अभिजित् नक्षत्रका भुक्तिकाल—

ति-सय-वल-गगणखंडे, कमेइ जइ बिणधरो दिणिक्केणं ।
तउ रिक्खाणं णिय-णिय, एण्णखंड-गमण को कासो ? ॥५१८॥

१५० । १ । ६३० ।

अभिजी-छच्च मुहुत्ते, तारि य केवलो अहोरत्ते ।
सूरेण समं गच्छहि, एत्तो सेसाणि वोच्छामि ॥५१९॥

दि ४ मु ६ ।

अर्थ—यदि सूर्य एक दिनमें तीन सौ के आधे (१५०) नभखण्ड पीछे रहता है तो नक्षत्रोंके अपने-अपने गगनखण्डोंके गमनमें कितना काल लगेगा ? इसप्रकार अभिजित् नक्षत्र चार अहोरात्र और छह मुहूर्त काल तक सूर्यके साथ गमन करता है । शेष नक्षत्रोंका कथन यहाँसे आगे करता हूँ ॥५१८-५१९॥

विशेषार्थ—अभिजित् नक्षत्रके ६३० नभखण्ड हैं । सूर्य अभिजित् नक्षत्रके ऊपर है । जब १५० नभखण्ड छोड़नेमें सूर्यको एक दिन लगता है तब ६३० खण्ड छोड़नेमें कितना समय लगेगा ? इस क्षैराशिकसे सूर्य द्वारा अभिजित्की भुक्तिका काल $(\frac{630}{150}) = 4$ दिन ६ मुहूर्त प्राप्त होता है ।

सूर्यके साथ जघन्य नक्षत्रोंका भुक्तिकाल—

सदभिस-भरणी-अर्द्रा, सादो तह अस्सिलेस जेट्ठा य ।

छत्तेव अहोरत्ते, एक्कावीसा मुहुत्तेण ॥५२०॥

दि ६ । मु २१ ।

अर्थ—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा और ज्येष्ठा ये छह नक्षत्र छह अहोरात्र और इक्कीस मुहूर्त तक सूर्य के साथ रहते हैं ॥५२०॥

विशेषार्थ—जघन्य नक्षत्र ६ हैं और प्रत्येकके गगनखण्ड १००५ हैं । सूर्य इनके ऊपर है । जब १५० खण्ड छोड़नेमें सूर्यको १ दिन लगता है तब १००५ गगनखण्ड छोड़नेमें कितना समय लगेगा ? इसप्रकार क्षैराशिक करने पर $(\frac{1005}{150}) = 6$ दिन २१ मुहूर्त प्राप्त होते हैं । एक ज० न० को भोगनेमें ६ दिन २१ मु० लगते हैं तब ६ नक्षत्रोंको भोगनेमें कितना समय लगेगा ? इस प्रकार क्षैरा० करनेपर $(6 \text{ दिन } २१ \text{ मु०} \times ६) = ४० \text{ दिन } ६ \text{ मु०}$ होते हैं । अर्थात् सूर्यको ६ ज० नक्षत्रों को भोगनेमें कुल समय ४० दिन ६ मुहूर्त लगता है ।

सूर्यके साथ उत्कृष्ट नक्षत्रोंका भुक्तिकाल—

तिण्णेव उत्तराओ, पुणवसू रोहिणी विसाहा य ।

वीसं च अहोरत्ते तिण्णेव य होति सूरस्स ॥५२१॥

दि २० । मु ३ ।

अर्थ—तीनों उत्तरा, पुनर्वसू, रोहिणी और विशाखा, ये छह उत्कृष्ट नक्षत्र बीस अहोरात्र और तीन मुहूर्त काल तक सूर्यके साथ गमन करते हैं ॥५२१॥

विशेषार्थ—उत्कृष्ट नक्षत्र ६ हैं। प्रत्येकके नभखण्ड ३०१५ हैं। सूर्य इनके ऊपर है। सूर्य को जब १५० ग० ख० छोड़नेमें १ दिन लगता है तब ३०१५ नक्षत्र छोड़नेमें कितना समय लगेगा ? इसप्रकार लैरा० करनेपर $(\frac{3015 \times 1}{15}) = 20$ दिन ३ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। एक उत्कृष्ट न० को भोगनेमें $\frac{301}{15}$ दिन लगते हैं तब ६ उत्कृष्ट नक्षत्रों को भोगनेमें कितना समय लगेगा ? इसप्रकार लैरा० करने पर $(\frac{201 \times 6}{15}) = 80$ दिन १८ मुहूर्तका समय लगेगा।

सूर्यके साथ मध्यम नक्षत्रोंका भुक्तिकाल—

अवसेसा पण्डिता, पण्डितस्य च सुर-सह-गवा ह्येति ।

बारस चैव मुहुता, तेरस य समे अहोरत्ते ॥५२२॥

दि १३। मु १२।

अर्थ—शेष पन्द्रह ही मध्यम नक्षत्र तेरह अहोरात्र और बारह मुहूर्त काल तक सूर्यके साथ गमन करते रहते हैं ॥५२२॥

विशेषार्थ—मध्यम न० १५ हैं और प्रत्येकके नभखण्ड २०१० हैं। सूर्य इनके ऊपर है। पूर्वोक्त प्रकार लैराशिक करनेपर प्रत्येक नक्षत्रका भुक्ति काल $(\frac{2010 \times 1}{15}) = \frac{201}{15} = 13$ दिन १२ मु० प्राप्त होता है। एक मध्यम न० का भोग $\frac{201}{15}$ दिनमें होता है तब १५ नक्षत्रोंका कितने दिनमें होगा ? इसप्रकार लैरा० करनेपर $(\frac{13 \times 15}{1}) = 201$ दिन सर्व मध्यम नक्षत्रोंका भुक्ति काल है।

दक्षिण और उत्तरके भेदसे सूर्यके दो अयन होते हैं। प्रत्येक अयनमें सूर्य १८३-१८३ दिन भ्रमण करता है। इस भ्रमणमें सूर्य अभिजित् न० को ४ दिन ६ मुहूर्त, ६ अधन्य नक्षत्रों को ४० दिन ६ मुहूर्त, १५ मध्यम नक्षत्रोंको २०१ दिन और ६ उत्कृष्ट नक्षत्रोंको १२० दिन १८ मु० भोगता है। इन २८ नक्षत्रोंका सर्व-काल $(4 \text{ दि० } ६ \text{ मु०} + 40 \text{ दि० } ६ \text{ मु०} + 201 \text{ दिन} + 120 \text{ दिन } १८ \text{ मु०}) = 366$ दिन होता है। इसीलिए दोनों अयनोंके $(183 \times 2) = 366$ दिन होते हैं।

चन्द्रके साथ अभिजित्का भुक्तिकाल—

सप्तद्वि - गगणखंडे, मुहुत्तमेवकेण कमइ जइ चंडो ।

भगणाण गगणखंडे, को कालो होदि गमणम्मि ॥५२३॥

६७।१।६३०।

अभिजिस्स चंद - जोगो^१, सचट्ठी खंडिदे मुहुत्तेगे ।

भागो य सत्तवीसा, ते पुण अहिया णव - मुहुत्ते ॥५२४॥

९ । ३७ ।^२

अर्थ—जब चन्द्र एक मुहूर्तमें नक्षत्रके गगनखण्डसे ($१८३५ - १७६८ =$) सड़सठ (६७) गगनखण्ड पीछे रह जाता है तब उस (नक्षत्रों) के गगनखण्डों तक साथ गमन करनेमें कितना समय लगेगा ? अभिजित् नक्षत्रके (६३०) गगनखण्डोंमें सड़सठका भाग देनेपर एक मुहूर्तके सड़सठ भागोंमेंसे सत्ताईस भाग अधिक नौ मुहूर्त ($\frac{६३०}{६७} = ९\frac{३७}{६७}$ मु०) लब्ध आता है । अर्थात् चन्द्रका अभिजित् नक्षत्रके साथ गमन करनेका काल $९\frac{३७}{६७}$ मुहूर्त प्रमाण है ॥५२३-५२४॥

चन्द्रके साथ जषण्य नक्षत्रोंका भुक्ति काल—

सदभिस-भरणी-अर्द्रा, सादी तह अस्सलेस-जेट्टा य ।

एदे छण्णवसंता, पण्णरस - मुहुत्त - संजुत्ता ॥५२५॥

१५ ।

अर्थ—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा और ज्येष्ठा, ये छह नक्षत्र चन्द्रके साथ पन्द्रह मुहूर्त पर्यन्त रहते हैं ॥५२५॥

विशेषार्थ—पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार प्रत्येक ज० न० के साथ चन्द्रका योग ($१००५ \div ६७$) $= १५$ मुहूर्त और सर्व ज० नक्षत्रोंके साथ (१५ मु० $\times ६$) $= ३$ दिन पर्यन्त रहता है ।

चन्द्रके साथ मध्यम नक्षत्रोंका योग—

अवसेसा णक्खत्ता, पण्णरसाए तिसदि मुहुत्ता य ।

चंदम्मि एस जोगो, णक्खत्ताणं समवखादं ॥५२६॥

३० ।

अर्थ—अवशेष पन्द्रह (मध्यम) नक्षत्रा चन्द्रमाके साथ तीस मुहूर्त तक रहते हैं । यह उन नक्षत्रोंका योग कहा है ॥५२६॥

विशेषार्थ—पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार प्रत्येक म० न० के साथ चन्द्रका योग ($२०१० \div ६७$) $= ३०$ मुहूर्त और सर्व म० नक्षत्रोंके साथ (३० मु० $\times १५$) $= १५$ दिन पर्यन्त रहता है ।

चन्द्रके साथ उत्कृष्ट नक्षत्रोंका योग—

तिण्णेष उत्तराओ, पुणव्वसु रोहिणी विसाहा य ।

एवे छण्णव्वत्ता, पणवाल - मुहुत्ता - संजुत्ता ॥५२७॥

४५ ।

अर्थ—तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा, ये छह (उत्कृष्ट) नक्षत्र पैंतालीस (४५) मुहूर्त तक चन्द्रके साथ संयुक्त रहते हैं ॥५२७॥

विशेषार्थ—पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार प्रत्येक उत्कृष्ट न० के साथ चन्द्रका योग $(३० \times १५ \div ६७) = ४५$ मुहूर्त और सर्व उ० नक्षत्रोंके साथ $(४५ \text{ मु० } \times ६) = ९$ दिन पर्यन्त रहता है ।

दक्षिण और उत्तरके भेदसे चन्द्रके भी दो अयन होते हैं । इन अयनोंके भ्रमणमें चन्द्र अभिजित् नक्षत्रको ९३½ मुहूर्त + ज० नक्षत्रोंको ३ दिन + मध्यम न० को १५ दिन + और उत्कृष्ट नक्षत्रोंको ९ दिन = २७ दिन ६½ मुहूर्तोंमें २८ नक्षत्रोंका भोग करता है ।

सूर्य सम्बन्धी अयन—

दुमणिएस्स एक्क-अयणे, विवसा तेसीवि-अहिय-एक्क-सयं ।

दक्षिण - अयणं आदी, उत्तर - अयणं च अवसानं ॥५२८॥

१८३ ।

अर्थ—सूर्यके एक अयनमें एक सौ तेरासी दिन होते हैं । इन अयनोंमेंसे दक्षिण अयन आदि (प्रारम्भ) में और उत्तर अयन अन्तमें होता है ॥५२८॥

विशेषार्थ—सूर्य भ्रमणकी १८४ वीथियाँ हैं । इनमेंसे जब सूर्य प्रथम वीथीमें स्थित होता है तब दक्षिणायनका और जब अन्तिम वीथीमें स्थित होता है तब उत्तरायणका प्रारम्भ होता है ।

दक्षिण एवं उत्तर अयनोंमें आवृत्ति-संख्या—

एक्कावि-दु-उत्तरियं, दक्षिण-आउट्टियाए पंच पवा ।

दो-आदि-दु-उत्तरयं, उत्तर-आउट्टियाए पंच पवा ॥५२९॥

अर्थ—(सूर्यकी) दक्षिणावृत्ति एकको आदि लेकर दो-दो की वृद्धि प्रमाण (१, ३, ५, ७, ९) होती है । इसमें गच्छ पाँच हैं । उत्तरावृत्ति भी दो को आदि लेकर दो-दो की वृद्धि प्रमाण (२, ४, ६, ८, १०) होती है । इसमें भी गच्छ पाँच हैं ॥५२९॥

विशेषार्थ—पूर्व अयनकी समाप्ति और नवीन अयनके प्रारम्भको आवृत्ति कहते हैं। पंच-वर्षात्मक एक युगमें ये आवृत्तियाँ दस बार होती हैं, इसीलिए इनका गच्छ पाँच-पाँच कहा गया है। इनमें १, ३, ५, ७ और ९ वीं आवृत्ति दक्षिणायन सम्बन्धी और २, ४, ६, ८ तथा १० वीं आवृत्ति उत्तरायण-सम्बन्धी है।

एक युगके विषुवोंकी संख्या—

तिग्भव-दु-खेत्तारयं, दस-पद-परित-वो हि अवहरिवं ।

उसुपस्स य होवि पदं, वोच्चं आउट्टि-उसुपदिण-रिक्खं ॥५३०॥

अर्थ—एक वर्षमें दो अयन होते हैं। प्रत्येक अयनके तीन माह व्यतीत होनेपर एक विषुव होता है। इसप्रकार एक युगमें दस विषुव होते हैं। इन्हें दो से भाजित करनेपर एक-एक युगमें विभिन्न अयन सम्बन्धी पाँच-पाँच विषुव होते हैं। अब यहाँ आवृत्ति और विषुव सम्बन्धी दिनके नक्षत्र निकालनेकी विधि कहूँगा ॥५३०॥

तिथि, पक्ष और पर्व निकालनेकी विधि—

रुऊणकं छरगुणमेग-जुवं उसुपो ति तिथि - माणं ।

तब्बार - गुणं पव्वं, सम-विसम-किण्ह-सुवकं च ॥५३१॥

अर्थ—एक कम आवृत्तिके पदको छहसे गुणित कर उसमें एक जोड़नेपर आवृत्तिकी तिथि और उसी लब्धमें तीन जोड़नेपर विषुवकी तिथिका प्रमाण प्राप्त होता है। तिथि संख्याके विषम होनेपर कृष्णपक्ष और सम होनेपर शुक्ल पक्ष होता है। तथा तिथि संख्याको द्विगुणित करनेपर पर्वका प्रमाण प्राप्त होता है ॥५३१॥

विशेषार्थ—जो आवृत्ति विवक्षित हो उसमेंसे एक घटाकर लब्धको छहसे गुणा करके एकका अंक जोड़नेसे आवृत्तिकी तिथि और उसी लब्धमें तीनका अंक जोड़नेसे विषुवकी तिथि संख्या प्राप्त होती है। यथा—

तृतीय आवृत्ति विवक्षित है अतः $(३ - १) \times ६ = १२।१२ + १ = १३$ तिथि। तृतीय आवृत्ति कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको होगी। इसीप्रकार $(३ - १) \times ६ = १२।१२ + ३ = १५$ तिथि। यहाँ भी तृतीय विषुव कृष्णपक्षकी अमावस्याको होगा। दोनों तिथियोंके अंक विषम हैं अतः कृष्णपक्ष ग्रहण किया गया है। दूसरा विषुव ९ वीं तिथिको होता है। इसे दुगुना (९×२) करनेपर दूसरे विषुवके १८ पर्व प्राप्त होते हैं।

आवृत्ति और विषुवके नक्षत्र प्राप्त करनेकी विधि—

सत्त-गुणे ऊर्णकं, दस-हिद-सेसेसु भयणदिवस-गुणं ।

सत्तदिठ - हिदे लद्धं, अभिजादीदे हवे रिषखं ॥५३२॥

अर्थ—एक कम विवक्षित आवृत्तिको सातसे गुणित करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे दससे भाजित कर शेषको भयन-दिवस (१८४) से गुणित कर सड़सठ (६७) का भाग देना चाहिए । जो लब्ध प्राप्त हो उसे अभिजित् नक्षत्रसे गिननेपर गत नक्षत्र प्राप्त होता है, अतः उससे आगेका नक्षत्र आवृत्तिका नक्षत्र होता है ॥५३२॥

विशेषार्थ—यहाँ ८ वीं आवृत्ति विवक्षित है । इसका मूल नक्षत्र है । $(८ - १) \times ७ = ४९$ । $४९ \div १० = ४$, शेष रहे ९ । $(९ \times १८४) \div ६७ = २४$, यहाँ शेष आधेसे अधिक है अतः $(२४ + १) = २५$ प्राप्त हुए । अभिजित् नक्षत्रसे गिननेपर २५ वां ज्येष्ठा नक्षत्र गत और उससे आगेका मूल न० ८ वीं आवृत्तिका नक्षत्र प्राप्त होता है ।

युगकी पूर्णता एवं उसके प्रारम्भकी तिथि और दिन आदि—

आसाढ-पुण्णमीए, जुग-णिप्पत्ती दु सावणे किण्हे ।

अभिजिम्मि चंद-जोगे, पाडिव-दिवसम्मि पारंभो ॥५३३॥

अर्थ—आषाढ मासकी पूर्णिमाके दिन (अपराह्ण में) पञ्चवर्षात्मक युगकी समाप्ति होती है और श्रावण कृष्णा प्रतिपदके दिन अभिजित् नक्षत्रके साथ चन्द्रका योग होनेपर उस युगका प्रारम्भ होता है । (दक्षिणायन सूर्यकी प्रथम आवृत्तिका प्रारम्भ भी यही है) ॥५३३॥

दक्षिणायन सूर्यकी द्वितीय और तृतीय-आवृत्ति—

सावण-किण्हे तेरसि, मियसिर-रिक्खम्मि बिदिय-आउट्टी ।

तदिया घिसाह - रिषखे, दसमीए सुक्कलम्मि तम्मासे ॥५३४॥

अर्थ—श्रावण कृष्णा त्रयोदशीके दिन मृगशीर्षा नक्षत्रका योग होनेपर द्वितीय और इसी मासमें शुक्लपक्षकी दसमीके दिन विशाखा नक्षत्रका योग होनेपर तृतीय आवृत्ति होती है ॥५३४॥

चतुर्थ और पंचम आवृत्ति—

सावण-किण्हे सत्तमि, रेववि रिक्खे चउट्टियावित्ती ।

चोत्तीए पंचमिया, सुक्के रिक्खाए पुव्वकग्गुणिए ॥५३५॥

अर्थ—श्रावण कृष्ण सप्तमीको रेवती नक्षत्रका योग होनेपर चतुर्थ और श्रावण शुक्ल चतुर्थीको पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके योगमें पंचम आवृत्ति होती है ॥५३५॥

पंचसु वरिसे एवे, सावण - मासम्मि उत्तरे कट्ठे ।

आवित्ती दुमणीणं, पंचेव य होति णियमेणं ॥५३६॥

अर्थ—सूर्यके उत्तर दिशाको प्राप्त होनेपर पांच वर्षोंके भीतर श्रावण मासमें नियमसे ये पांच ही आवृत्तियां होती हैं ॥५३६॥

विशेषार्थ—एक युग पांच वर्षका होता है । प्रत्येक श्रावण मासमें सूर्य उत्तर दिशामें ही स्थित रहता है तथा उपर्युक्त तिथि-नक्षत्रोंके योगमें दक्षिणकी ओर प्रस्थान करता है, इसलिए पांच वर्षों तक प्रत्येक श्रावण मासमें दक्षिणायन सम्बन्धी एक-एक आवृत्ति होती है । इसप्रकार पांच वर्षोंमें पांच आवृत्तियां होती हैं ।

सूर्य सम्बन्धी पांच उत्तरावृत्तियां—

माघस्स किण्ह - पक्खे, सत्तम्मिण् रुद्ध-णाम-मुहत्ते ।

हत्थम्मि ट्ठिव-दुमणी, दक्खिणदो एवि उत्तराभिमुखो ॥५३७॥

अर्थ—हस्त नक्षत्रपर स्थित सूर्य माघ मासके कृष्ण-पक्षमें सप्तमीके दिन रुद्र नामक मुहूर्तके होते दक्षिणसे उत्तराभिमुख होता है ॥५३७॥

चोत्तीए सदभिसए, सुक्के बिदिया तद्दुज्जयं किण्हे ।

पक्खे पुस्से रिक्खे, पडिवाए होवि तम्मासे ॥५३८॥

अर्थ—इसी मासमें जतभिषक् नक्षत्रके रहते शुक्ल पक्षकी चतुर्थीके दिन द्वितीय और इसी मासके कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाको पुष्य-नक्षत्रके रहते तृतीय आवृत्ति होती है ॥५३८॥

किण्हे तयोदसीए, मूले रिक्खम्मि तुरिम-आवित्ती ।

सुक्के पक्खे दसमी, कित्तिर-रिक्खम्मि पंचमिया ॥५३९॥

अर्थ—कृष्ण पक्षकी त्रयोदशीके दिन मूल नक्षत्रके योगमें चतुर्थ और इसी मासके शुक्ल पक्षकी दसमी तिथिको कृतिका नक्षत्रके रहते पंचम आवृत्ति होती है ॥५३९॥

पंचसु वरिसे एवे, माघे मासम्मि दक्खिणे कट्ठे ।

आवित्ती दुमणीणं, पंचेव य होति णियमेणं ॥५४०॥

अर्थ—पाँच वर्षोंके भीतर माघ मासमें दक्षिण अयनके होनेपर सूर्यकी ये पाँच आवृत्तियाँ नियमसे होती हैं ॥५४०॥

विशेषार्थ—प्रत्येक माघ मासमें पूर्व दक्षिण दिशामें स्थित रहता है और उपर्युक्त तिथि-नक्षत्रोंके योगमें उत्तरकी ओर प्रस्थान करता है, इसलिए पाँच वर्षोंतक प्रत्येक माघ मासमें उत्तरायण सम्बन्धी एक आवृत्ति होती है । इसप्रकार पाँच वर्षोंमें पाँच आवृत्तियाँ होती हैं । यथा—

दक्षिणायन-सूर्य						उत्तरायण-सूर्य					
क्र.सं.	वर्ष	मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र	क्र.सं.	वर्ष	मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र
१ सी	प्रथम	श्रावण	कृष्ण	प्रतिपदा	अभिजित्	२ री	प्रथम	माघ	कृ०	सप्तमी	हस्त
३ री	द्वितीय	श्रावण	कृष्ण	त्रयोदशी	मृग०	४ थी	द्वितीय	माघ	शु०	चतुर्थी	शत०
५ वीं	तृतीय	श्रावण	शुक्ल	दसमी	विशाखा	६ ठी	तृतीय	माघ	कृ०	प्रतिपदा	पुष्य
७ वीं	चतुर्थ	श्रावण	कृष्ण	सप्तमी	रेवती	८ वीं	चतुर्थ	माघ	कृ०	त्रयोदशी	मूल
९ वीं	पंचम	श्रावण	शुक्ल	चतुर्थी	पूर्वाषाढा	१० वीं	पंचम	माघ	शु०	दसमी	कृत्तिका

उपर्युक्त पाँच वर्षोंमें युग समाप्त हो जाता है । छोटे वर्षसे पूर्वोक्त व्यवस्था पुनः प्रारम्भ हो जाती है । दक्षिणायनका प्रारम्भ सदा प्रथम वीथीसे और उत्तरायणका प्रारम्भ अन्तिम वीथीसे ही होता है ।

युगके दस अयनोंमें विषुवोंके पर्व, तिथि और नक्षत्र—

होदि हु पढमं विसुपं, 'कत्तिय-मासम्मि किण्ह-तदियाए ।

छस्सु पव्वमदीदेसु, वि रोहिणी - णामम्मि रिक्खम्मि ॥५४१॥

अर्थ—यह प्रथम विषुव छह पर्वोंके (पूर्णमासी और अमावस्या) भीतनेपर कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी तृतीया तिथिमें रोहिणी नक्षत्रके रहते होता है ॥५४१॥

विशेषार्थ—शुक्ल और कृष्ण पक्षके पूर्ण होनेपर जो पूर्णिमा और अमावस्या होती है । उसका नाम पर्व है । सूर्यका एक अयन छह मासका होता है । एक अयनके अर्धभागको प्राप्त होनेपर जिस कालमें दिन और रात्रिका प्रमाण बराबर होता है उस कालको विषुव कहते हैं । अर्थात् दिन-

राशिके प्रमाणका बराबर होना विषुप है । पाँच विषुप दक्षिणायनके अर्धकालमें और पाँच उत्तरायणके अर्धकालमें इसप्रकार एक युगमें दस विषुप होते हैं । युगके प्रारम्भमें दक्षिणायन सम्बन्धी प्रथम विषुप प्रारम्भके ६ पर्व (३ माह) व्यतीत होनेपर कातिक मासके कृष्ण पक्षकी तृतीया तिथिको चन्द्र द्वारा, रोहिणी नक्षत्रके भुक्तिकालमें होता है ।

वइसाह^१-किण्ह-पक्खे, णवमीए धणिट्ठ-गाम-णक्खत्ते ।

आदीवो अट्टारस, पञ्चमदीवे बुइज्जयं उसुपं ॥५४२॥

अर्थ—दूसरा विषुप आदिसे अठारह पर्व बीतनेपर वैशाख मासके कृष्ण पक्षकी नवमीको धनिष्ठा नक्षत्रके रहते होता है ॥५४२॥

कत्तिय-मासे पुण्णिमि-दिवसे इगितीस-पञ्चमादीवो ।

तीदाए सादीए, रिक्खे होवि हु तइज्जयं विसुपं ॥५४३॥

अर्थ—आदिसे इकतीस पर्व बीत जानेपर कातिक मासकी पूर्णिमाके दिन स्वाति नक्षत्रके रहते तीसरा विषुप होता है ॥५४३॥

वइसाह-सुक्क-पक्खे, छट्ठीए पुणव्वसुम्मि णक्खत्ते ।

तेदाल - गदे पञ्चमदीवेसु चउत्थयं विसुपं ॥५४४॥

अर्थ—आदिसे तैंतालीस पर्वोंके व्यतीत हो जानेपर वैशाख मासमें शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रके रहते चौथा विषुप होता है ॥५४४॥

कत्तिय-मासे सुक्किल-बारसिए पंच-वण्ण-परिसंखे ।

पञ्चमदीवे उसुपं, उत्तरभइपदे पंचमं होदि ॥५४५॥

अर्थ—आदिसे पचपन पर्व व्यतीत होनेपर कातिक मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उत्तरा-भाद्रपदा नक्षत्रके रहते पाँचवाँ विषुप होता है ॥५४५॥

वइसाह-किण्ह-तइए, अणुराहे अट्ठसट्ठि - परिसंखे ।

पञ्चमदीवे उसुपं, छट्ठमयं होवि णियमेणं ॥५४६॥

अर्थ—आदिसे अड़सठ पर्व व्यतीत हो जानेपर वैशाख मासमें कृष्ण पक्षकी तृतीयाके दिन अनुराधा नक्षत्रके रहते छठा विषुप होता है ॥५४६॥

कत्तिय-मासे किण्हे, णवमी-दिवसे महाए णक्खत्ते ।

सीदी - पञ्चमदीवे, होवि पुढं सत्तमं उसुपं ॥५४७॥

अर्थ—आदिसे अस्सी पर्व व्यतीत हो जानेपर कार्तिक मासमें कृष्ण पक्षकी नवमीके दिन मघा नक्षत्रके रहते सातवाँ विषुप होता है ॥५४७॥

वइसाय-पुणिमोए, अस्तिणि-रिक्खे जुगस्स पढमावो ।

तेणाउदी पव्वेसु वि, होदि पुढं अट्ठमं उसुयं ॥५४८॥

अर्थ—युगकी आदिसे तेरानव पर्व व्यतीत हो जानेपर वैशाखमासकी पूर्णिमाके दिन अश्विनी नक्षत्रके रहते आठवाँ विषुप होता है ॥५४८॥

कत्तिय - मासे सुक्किल, छट्ठीए तह य उत्तरासाढे ।

पंचुत्तर - एक्क - सयं, पव्वमदीदेसु णवमयं उसुयं ॥५४९॥

अर्थ—(युगकी आदिसे) एक सौ पाँच पर्वोंके व्यतीत हो जानेपर कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी षष्ठीके दिन उत्तराषाढा नक्षत्रके रहते नौवाँ विषुप होता है ॥५४९॥

वइसाय-सुक्क-बारसि, उत्तरपुव्वमिह फग्गुणी-रिक्खे ।

सत्तारस-एक्क-सयं, पव्वमदीदेसु दसमयं उसुयं ॥५५०॥

अर्थ—(युगकी आदिसे) एक सौ सत्तरह (११७) पर्व व्यतीत हो जानेपर वैशाखमासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन 'उत्तरा' पद जिसके पूर्वमें है ऐसे फाल्गुनी (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्रके रहते दसवाँ विषुप होता है ॥५५०॥

उत्सप्पिणी-अवसप्पिणी कालोंके दोनों अयनों का एवं विषुपोंका प्रमाण—

पण - वरिसे दुमणीणं, दक्खिणुत्तरायणं उसुयं ।

चय आणेज्जो उत्सप्पिणि-पढम-आदि - चरिमंतं ॥५५१॥

अर्थ—इस प्रकार उत्सप्पिणीके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त पाँच वर्ष परिमित युगोंमें सूर्योके दक्षिण और उत्तर अयन तथा विषुप जानकर लाने चाहिए ॥५५१॥

पल्लस्स-संख-भागं, दक्खिण-अयणस्स होदि परिमाणं ।

तेत्तियमेत्तं उत्तर - अयणं उसुयं च तद्दुगुणं ॥५५२॥

दक्खि प १ । उत्त प १ । उसुप प २ ।

अर्थ—संख्यात पल्यके (एक-एक वर्ष रूप) जितने भाग होते हैं उतना प्रमाण उत्सप्पिणीगत दक्षिणायनका है और उतना ही प्रमाण उत्तरायणका है, तथा विषुपोंका प्रमाण (दो में से) किसी एक अयनके समस्त प्रमाणसे दुगुना होता है ॥५५२॥

विशेषार्थ—एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणीकाल १० कोड़ाकोड़ी सागरका होता है और एक सागर १० कोड़ाकोड़ी पल्यका होता है । जबकि एक सागरमें १० कोड़ाकोड़ी पल्य होते हैं तब १० कोड़ाकोड़ी सागरमें कितने पल्य होंगे ? ऐसा श्रैशिक करनेपर एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी कालके $(१०)^{२०}$ अर्थात् एकके अंकके आगे २० शून्य रखनेपर जो २९ अंक प्रमाण संख्या प्राप्त होती है वही एक कोड़ाकोड़ी सागरके पल्योंका प्रमाण है ।

कालका प्रमाण अद्धापल्य द्वारा मापा जाता है । जबकि एक अद्धा पल्यमें असंख्यात वर्ष होते हैं तब $(१०)^{२०}$ अद्धापल्योंमें कितने वर्ष होंगे ? इसप्रकार श्रैशिक करनेपर वर्षोंका जो प्रमाण प्राप्त होता है उससे दुगुना प्रमाण अयनोंका होता है, इसीलिए संहृष्टिमें दक्षिणायन अथवा उत्तरायण अयनोंका प्रमाण संख्यात पल्य दिया है । दक्षिणायन अथवा उत्तरायणके अयन प्रमाणसे दुगुना प्रमाण विषुवोंका होता है । अर्थात् एक अयनमें एक विषुप होता है इसलिए अयनोंके प्रमाण बराबर ही विषुवोंका प्रमाण होता है ।

गाथामें जो दुगुण शब्द आया है वह दक्षिणायन अथवा उत्तरायण का जितना प्रमाण है उससे दुगुने विषुवोंके लिए आया है । संहृष्टिमें संख्यात पल्यका द्विगुणित शब्द भी इसी अर्थका द्योतक है ।

अवसर्पिणीए एवं, वत्तव्वा ताओ रहड-घडिएण ।

होति अणंताणंता पुब्बं वा दुमणि - परिवत्तं ॥५५३॥

अर्थ—इसीप्रकार (उत्सर्पिणीके सदृश) अवसर्पिणीकालमें भी रहंड की घटिकाओं सदृश दक्षिण-उत्तर अयन और विषुप कहने चाहिए । सूर्यके परिवर्तन पूर्ववत् अनन्तानन्त होते हैं ॥५५३॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

विषुप सम्बन्धी विशेष विवरण इसप्रकार है—

वर्ष संख्या	विषुप संख्या	मत-पर्व-संख्या	मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र
प्रथम वर्ष	१ ला	६ पर्व व्यतीत होनेपर	कार्तिक	कृष्ण	तृतीया	रोहिणी के योग में
	२ रा	१८ " "	वैशाख	कृष्ण	नवमी	धनिष्ठा " "
द्वितीय वर्ष	३ रा	३१ " "	कार्तिक	शुक्ल	पूर्णिमा	स्वाति " "
	४ था	४३ " "	वैशाख	शुक्ल	षष्ठी	पुनर्वसु " "
तृतीय वर्ष	५ वां	५५ " "	कार्तिक	शुक्ल	द्वादशी	उ० भाद्र० " "
	६ ठा	६८ " "	वैशाख	कृष्ण	तृतीया	जनुराधा " "
चतुर्थ वर्ष	७ वां	८० " "	कार्तिक	कृष्ण	नवमी	मघा " "
	८ वां	९३ " "	वैशाख	शुक्ल	पूर्णिमा	अश्विनी " "
पञ्चम वर्ष	९ वां	१०५ " "	कार्तिक	शुक्ल	षष्ठी	उ०षाढ़ा " "
	१०वां	११७ " "	वैशाख	शुक्ल	द्वादशी	उ० फा० " "

लवणसमुद्रसे पुष्करार्ध पर्यन्तके चन्द्र-बिम्बों का विवेचन—

चत्वारो लवण-जले, धावइ-बोवम्मि बारस मियंका ।

बाबाल काल - सलिले, बाहत्तरि पोक्खरद्धम्मि ॥५५४॥

४।१२।४२।७२।

अर्थ—लवणसमुद्रमें चार, धातकीखण्डमें बारह, कालोदसमुद्रमें बयालीस और पुष्करार्ध द्वीपमें बहत्तर चन्द्र हैं ॥५५४॥

णिय-णिय-ससीण अद्धं, बीव-समुद्दाण एवक-भागम्मि ।

अवरे भागं अद्धं, चरंति पंति - वकमेणं च ॥५५५॥

अर्थ—द्वीप एवं समुद्रोंके अपने-अपने चन्द्रोंमेंसे आधे एक भागमें और (शेष) आधे दूसरे भागमें पंक्तिक्रमसे सञ्चार करते हैं ॥५५५॥

एकैक-चारखेत्ता, दो-दो-चंदाण होवि तन्वासो ।

पंच-सया दस-सहिदा, दिणयर-बिबादि - रिता य ॥५५६॥

अर्थ—दो-दो चन्द्रोंका एक-एक चारक्षेत्र है और उसका विस्तार सूर्यबिम्ब (५६ यो०) से अधिक पांच सौ दस (५१०५६) योजन प्रमाण है ॥५५६॥

पुह-पुह चारखेत्ते, पण्णरस हवन्ति चंद-वीहीओ ।

तन्वासो छप्पणा, जोयणया एक-सट्ठि-हिदा ॥५५७॥

१५ । ५९ ।

अर्थ—पृथक्-पृथक् चारक्षेत्रमें जो पन्द्रह-पन्द्रह चन्द्र-वीथियाँ होती हैं । उनका विस्तार इकसठसे भाजित छप्पन (५९) योजन प्रमाण है ॥५५७॥

चन्द्रके अभ्यन्तर पथमें स्थित होनेपर प्रथम पथ व द्वीप-समुद्रजगतीके बीच अन्तराल—

णिय-णिय-चंद-पमाणं, भजिदूणं एक-सट्ठि-खेहि ।

अडवीसेहि गुणिदं, सोहिय निय-उवहि-दीव-वासम्मि ॥५५८॥

ससि-संखाए विहणं, लवणसमुद्र-वीहि-विजिदूणं ।

दीवानं उवहीणं, आदिम-पह-जगदि-विच्चासं ॥५५९॥

अर्थ—अपने-अपने चन्द्रोंके प्रमाणमें इकसठ (६१) रूपोंका भाग देकर अट्ठाईस (२८) से गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे अपने द्वीप या समुद्रके विस्तारमेंसे घटाकर चन्द्र संख्यासे विभक्त करे । जो लब्ध प्राप्त हो उतना सर्व-अभ्यन्तर वीथीमें स्थित चन्द्रोंके आदिम पथ और द्वीप अथवा समुद्रकी जगतीके बीच अन्तराल होता है ॥५५८-५५९॥

लवणसमुद्रमें अभ्यन्तर वीथी और जगतीके अन्तरालका प्रमाण—

उणवण्ण-सहस्सा णव-सय-णवणउदि-जोयणा य तेचीसा ।

अंसा लवणसमुद्रे, अब्भंतर - वीहि - जगदि - विच्चासं ॥५६०॥

४९९९९ । ६१ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें अभ्यन्तर वीथी और जगतीके बीच उनचास हजार नौ सौ निन्यानवे योजन और एक योजनके इकसठ भागोंमेंसे तैंतीस भाग प्रमाण अन्तराल है ॥५६०॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रका विस्तार दो लाख योजन है और इसमें चन्द्र ४ हैं । उपर्युक्त विधिके अनुसार प्रथम वीथी स्थित चन्द्र और लवणसमुद्रकी जगतीके मध्यका अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$$(४ \div ६१) \times २८ = १\frac{१३}{६१}$$

$$(५००००० - १\frac{१३}{६१}) \div ४ = १२५०००००$$

$$= ३०५००००० = ४६६६६६\frac{२}{३} \text{ योजन अन्तराल ।}$$

धातकीखण्ड द्वीपमें जगतीसे प्रथम वीथीका अन्तराल—

बुग-तिग-तिय-तिय-तिणि य, विच्छालं धावद्दम्मि वीवम्मि ।

णभ - छक्क - एक्क - अंसा, तेसोदि - सदेहि अवहरिवा ॥५६१॥

$$३३३३२ । ३६३ ।$$

अर्थ—धातकीखण्ड द्वीपमें यह अन्तराल दो, तीन, तीन, तीन और तीन अर्थात् सैंतीस हजार तीन सौ बत्तीस योजन और एक सौ तेरासीसे भाजित एक सौ साठ भाग प्रमाण है ॥५६१॥

$$\text{विशेषार्थ—}(१२ \div ६१) \times २८ = ३\frac{३६}{६१}$$

$$(५०००००० - ३\frac{३६}{६१}) \div १२ = ४१६६६६६६$$

$$= ३३३३३३३३\frac{३३}{६१} \text{ योजन अन्तराल ।}$$

कालोदक्षिमें जगतीसे प्रथम वीथीगत चन्द्रका अन्तराल—

सग-चउ-णह-णव-एक्का, अंक-कमे पण-ख-वोणि अंसा य ।

इमि-अट्ट-दु-एक्क-हिवा, कालोदय - जगदि - विच्छालं ॥५६२॥

$$१६०४७ । १२२१ ।$$

अर्थ—कालोदधिसमुद्रकी जगती और (प्रथम) वीथीके मध्यका अन्तराल सात, चार, शून्य, नौ और एक इन अंकोंके क्रमसे उन्नीस हजार सैंतालीस योजन और बारह सौ इक्कासीसे भाजित दो सौ पांच भाग अधिक है ॥५६२॥

$$\text{विशेषार्थ—}(४२ \div ६१) \times २८ = ११\frac{७६}{६१}$$

$$(५०००००० - ११\frac{७६}{६१}) \div ४२ = ४६७१६६६६$$

$$= ३४३६६६६६ = १६०४७१२२१ \text{ योजन अन्तराल ।}$$

पुष्करार्धद्वीपमें जगतीसे प्रथम वीथीगत चन्द्रका अन्तराल—

सुण्णं चउ-ठाणेक्का, अंक-कमे अट्ट-पंच-तिणि कला ।

णव - चउ - पंच - विहत्ता, विच्छालं पुष्करद्धम्मि ॥५६३॥

$$११११० । ३७६ ।$$

($\frac{3 \times 3}{4} \div 2 = \frac{9}{8}$ यो०) घटाकर शेषमें अर्ध चन्द्र संख्या ($4 \div 2 = 2$) का भाग देनेपर दो चन्द्रों का पारस्परिक अन्तर प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$\left(\frac{200000}{1} - \frac{112}{1} \right) \div 2 = \frac{199888}{2}$$

$= ६६६६६, ५$; योजन दोनों चन्द्रोंका अन्तराल ।

धातकीखण्डस्थ चन्द्रोका पारस्परिक अन्तर प्रमाण—

पंच जउ-ठाण-छक्का, अंक-कमे सग-ति-एक्क अंसा य ।

तिय - अट्टेवक - विहृता, अंतरिमिदूण धादईसंडे ॥५६८॥

44444 | 938 |

अर्थ—धातकीखण्डद्वीपमें चन्द्रोके बीच पाँच और चार स्थानोंमें छह इन अंकोंके क्रमसे छधासठ हजार छह सौ पैंसठ योजन और एक सौ तेरासीसे विभक्त एक सौ सैंतीस कला प्रमाण अन्तर है ॥५६८॥

विशेषार्थ—धातकीखण्डका विस्तार ४ लाख यो०, चन्द्र संख्या १२ और इनका बिम्ब विस्तार $(\frac{5}{4} \times \frac{1}{4}) = \frac{5}{16}$ योजन है। उपर्युक्त नियमानुसार दो चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$$\left(\frac{400000}{1.1} - \frac{100}{1.1 \times 2} \right) \div \frac{1}{2} = 92986.32$$

= ६६६६५११५५५ योजन अन्तराल है ।

कालोदधि-स्थित चन्द्रोका अन्तर-प्रमाण—

चउशाथ-गयणहू-तिया, अंक कमे सुण-एक-खारि कला ।

इगि - अरु - दुर - इगि - भजिवा, अंतरमिदूष कालोदे ॥५६६॥

35084 | 490 |

अर्थ—कालोदधि समुद्रमें चन्द्रोंके बीच चार, नौ, शून्य, आठ और तीन इन अंकोंके क्रमसे अड़तीस हजार चौरानव योजन और बारह सौ इक्कासीसे भाजित चार सौ दस कला अधिक अन्तर है ॥५६६॥

विशेषार्थ—कालोदधिका वि० = लाख यो०, चन्द्र संख्या ४२ और इनका बिम्ब विस्तार $(\frac{5}{4} \times \frac{4}{3}) = \frac{5}{3}$ योजन है। उपर्युक्त नियमानुसार यहाँके दो चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$$(८७०००० - \frac{११५२}{६६ \times ३}) \div ४३ = \frac{४८७६८८३४}{६६ \times ३}$$

= ३८०९४६६६९ योजन अन्तराल है ।

पुष्करार्ध-स्थित चन्द्रोंका अन्तर-प्रमाण—

एक-चउ-ट्टाण-दुगा, अंक-कमे सत्त-छक्क-एक्क कला ।

णव-सउ-पंच - विहसा, अंतराभिदूण पोक्खरद्धम्मि ॥५७०॥

२२२२१ । ५६१ ।

अर्थ—पुष्करार्ध द्वीपमें चन्द्रोंके मध्य एक और चार स्थानोंमें दो इन अंकोंके क्रमसे बाईस हजार दो सौ इक्कीस योजन और पांच सौ उनचाससे विभक्त एक सौ सड़सठ कला अधिक अन्तर है ॥५७०॥

विशेषार्थ—पुष्करार्धद्वीपका विस्तार ८ लाख यो० है । चन्द्र संख्या ७२ और इनका बिम्ब विस्तार ($\frac{११}{६६} \times \frac{७२}{३}$) = $\frac{४८७६८८३४}{६६ \times ३}$ योजन है । उपर्युक्त नियमानुसार यहाँके दो चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$$(८००००० - \frac{४०३३}{६६ \times ३}) \div ४३ = \frac{१२१६६४८४}{६६ \times ३}$$

= २२२२१६६६९ योजन अन्तराल है ।

चन्द्रकिरणोंकी गति—

णिय-णिय-पढम-पहाणं, जगदीणं अंतर-प्पमाण-समं ।

णिय-णिय-लेस्सगदीओ, सव्व - मियंकाण पत्तेक्कं ॥५७१॥

अर्थ—अपने-अपने प्रथम पथ और जगतियोंके अन्तर-प्रमाणके बराबर सब चन्द्रोंमेंसे प्रत्येकको अपनी-अपनी किरणोंकी गतियाँ होती हैं ॥५७१॥

लवणसमुद्रादिमें चन्द्र-वीथियोंका प्रमाण—

तीसं णउदी ति-सया, पण्णरस-जुवा य चाल पंच-सया ।

सव्वण - प्पहुवि - सउक्के, चंवाणं होंति वीहीओ ॥५७२॥

३० । ९० । ३१५ । ५४० ।

अर्थ—लवणसमुद्रादि चारमें चन्द्रोंकी क्रमशः तीस, नब्बे, तीन सौ पन्द्रह और पांच सौ चालीस वीथियाँ हैं ॥५७२॥

विशेषार्थ—५१०६६ योजन प्रमाणवाली एक संचार भूमिमें १५ वीथियाँ होती हैं, जिसे दो चन्द्र पूरा करते हैं। लवणोदधि आदिमें क्रमशः ४, १२, ४२ और ७२ चन्द्र हैं। जब दो चन्द्रोंके प्रति १५ वीथियाँ हैं, तब ४, १२, ४२ और ७२ चन्द्रोंके प्रति कितनी वीथियाँ होंगी? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर वीथियोंका क्रमशः पृथक्-पृथक् प्रमाण लवणोदधिमें ($1^{\circ}2^{\circ}3^{\circ}$) = ३०, घा० खण्डमें ($1^{\circ}2^{\circ}3^{\circ}1^{\circ}$) = ९०, कालोदधिमें ($1^{\circ}2^{\circ}3^{\circ}4^{\circ}$) = ३१५ और पुष्करार्धद्वीपमें ($1^{\circ}2^{\circ}3^{\circ}4^{\circ}5^{\circ}$) = ५४० प्राप्त होता है।

लवणोदधि आदिमें चन्द्रकी मुहूर्त-परिमित गतिका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

णिय-पह-परिहि-पमाणे, पुह-पुह दु-सएक-बीस-संगुणिवे ।

तेरस-सहस्र-सग-सय-पणुबीस-हिदे मुहुत्त^१ - गविमाणं ॥५७३॥

१३३३५ ।

अर्थ—अपने-अपने पथोंकी परिधिके प्रमाणको पृथक्-पृथक् दो सौ इक्कीस (२२१) से गुणाकर लब्धमें तेरह हजार सात सौ पच्चीसका भाग देनेपर मुहूर्तकाल परिमित गतिका प्रमाण आता है ॥५७३॥

लवणसमुद्रादिमें चन्द्रोंकी शेष प्ररूपणा—

सेसाओ वणणाओ, जंबूदीयम्मि जाओ चंदाणं ।

ताओ लवणे धादईसंडे कालोद - पुक्खरद्धेसुं ॥५७४॥

एवं चंदाणं परुवणा समत्ता ।

अर्थ—लवणोदधि, घातकीखण्ड, कालोदधि और पुष्करार्ध द्वीपमें स्थित चन्द्रोंका शेष वर्णन जम्बूद्वीपके चन्द्रोंके वर्णन सदृश जानना चाहिए ॥५७४॥

इसप्रकार चन्द्रोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

लवणसमुद्रादिमें सूर्योंका प्रमाण—

चत्तारि होति लवणे, बारस सूराय धादईसंडे ।

बादाला कालोदे, बावत्तरि पुक्खरद्धम्मि ॥५७५॥

४ । १२ । ४२ । ७२ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें चार, घातकीखण्डमें बारह, कालोदधिमें बयालीस और पुष्करार्ध-द्वीपमें बहसर सूर्य स्थित हैं ॥५७५॥

उपर्युक्त सूर्योंका अवस्थान, प्रत्येकका चारक्षेत्र और
चारक्षेत्रका विस्तार—

णिय-णिय-रवीण अद्धं, दीव-समुद्धान् एक-भागम्मि ।
अवरे भावे अद्धं, चरेदि पत्ति - वकमेणेव ॥५७६॥

अर्थ—अपने-अपने सूर्योंका अर्ध भाग द्वीप-समुद्रोंके एक भागमें और अर्धभाग दूसरे भागमें पंक्ति क्रमसे संचार करता है ॥५७६॥

एककेवक-चारखेत्तं, दो-दो दुमणीण होवि तब्बासो ।
पंच-सया दस - सहिवा, विणवद्द - विवाविरिस्ता य ॥५७७॥

५१० । ५६ ।

अर्थ—दो-दो सूर्योंका एक-एक चारक्षेत्र होता है । इस चारक्षेत्रका विस्तार सूर्यबिम्बके विस्तारसे अधिक पाँच सौ दस (५१०५६) योजन-प्रमाण है ॥५७७॥

वीथियोंका प्रमाण एवं विस्तार—

एककेवक-चारखेत्ते, चउसोवि-जुव-सदेवक-वीहीओ ।
तब्बासो अड्ढालं, जोयणया एक - सट्ठि - हिवा ॥५७८॥

१८४ । ५६ ।

अर्थ—एक-एक चारक्षेत्रमें एक सौ चौरासी (१८४) वीथियाँ होती हैं । इनका विस्तार एकसठसे भाजित अड़तालीस (५६) योजन है ॥५७८॥

लवणसमुद्रादिमें प्रत्येक सूर्यके बीच तथा प्रथम पथ एवं जगतीके मध्यका
अन्तर प्राप्त करनेकी विधि—

लवणादि-चउवकारणं, वास-पमाणम्मि णिय-रवि-दलारणं ।
विवाणि फेलिस्ता, तसो णिय—
अजिदूणं जं लद्धं, तं पत्तेवकं रवीण विण्चालं ।
तस्स य अद्ध - पमाणं, जगवी-आसण्ण-मभाणं ॥५८०॥

अर्थ—लवणोदधि आदि चारोंके विस्तार-प्रमाणमेंसे अपने आधे सूर्य-बिम्बोंको घटाकर शेषमें अर्ध-सूर्य-संख्याका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना प्रत्येक सूर्यका और इससे आधा जगती एवं आसन्न (प्रथम) मार्गके बीचका अन्तराल प्रमाण होता है ॥ ५७६-५८० ॥

लवणसमुद्रमें प्रत्येक सूर्यका और जगतीसे प्रथम पथका अन्तराल—

णवणउवि-सहस्साणि, णव-सय-णवणउवि जोयणाणि पि ।

तेरसमेत्त - कलाओं, भजिदव्वा एकसट्ठीए ॥५८१॥

६६६६६ । ३३ ।

एत्तिथमेत्त - पमाणं, पत्तेक्कं विणयराण विच्चालं ।

लवणोदे तस्सद्धं, जगदीणं णियय - पढम - मग्गाणं^१ ॥५८२॥

अर्थ—नित्यानर्बे हजार ती सौ नित्यानर्बे योजन और इकसठसे भाजित तेरह कला, इतना लवणसमुद्रमें प्रत्येक सूर्यके अन्तरालका प्रमाण है और इससे आधा जगती एवं निज प्रथम मार्गके बीच अन्तर है ॥५८१-५८२॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रका विस्तार दो लाख योजन, सूर्य संख्या ४ और इनका बिम्ब विस्तार $(\frac{1}{4} \times \frac{1}{4}) = \frac{1}{16}$ यो० है । उपर्युक्त नियमानुसार दो सूर्योंका पारस्परिक अन्तर इसप्रकार है— $\frac{200000}{16} = (\frac{1}{4} \times \frac{1}{4}) \div \frac{1}{16} = \frac{200000 \times 16}{16} = 200000$ योजन है । तथा प्रथम पथसे जगतीका अन्तर $\frac{200000}{16} = \frac{200000}{16} = 12500$ योजन प्रमाण है ।

धातकीखण्डस्थ सूर्य आदिके अन्तर प्रमाण—

छावट्टि-सहस्साणि, छस्सय-पणट्टि जोयणाणि कला ।

इगिसट्ठी - जुत्त - सयं, तेसोदि - जुव - सयं हारो ॥५८३॥

६६६६५ । ३३३ ।

एवं अंतरमाणं, एक्केक्क - रवीण धावईसंडे ।

तेस्सागदी तवद्धं, तस्सरिसा उव्हि - आवाहा ॥५८४॥

अर्थ—छयासठ हजार छह सौ पैंसठ योजन और एक सौ तेरासीसे भाजित एक सौ इकसठ कला, इतना धातकीखण्डमें प्रत्येक सूर्यका अन्तराल प्रमाण है । इससे आधी किरणोंकी गति और उसके सदृश ही समुद्रका अन्तराल भी है ॥५८४॥

विशेषार्थ—धा० खण्ड का विस्तार ४ लाख योजन, सूर्य १२ और इनका बिम्ब विस्तार $(\frac{४६}{१६} \times \frac{१३}{१६}) = \frac{१६६}{१६}$ योजन है। यहाँ दो सूर्योंका पारस्परिक अन्तर $\frac{४०००००}{१६} - (\frac{४६}{१६} \times \frac{१३}{१६}) \div \frac{१३}{१६} = \frac{१२१००००}{१६} = ६६६६२१\frac{१३}{१६}$ योजन है।

किरणोंकी गति $(\frac{१३१६६६६६६}{१६}) = ३३३३२१\frac{१३}{१६}$ योजन और प्रथम पथसे द्वीपकी जगती का अन्तर भी $३३३३२१\frac{१३}{१६}$ योजन ही है।

कालोदधिमें स्थित सूर्य आदिके अन्तर प्रमाण—

अट्ठसीस-सहस्सा, चउसाउदो ओयणाणि पंच सया ।

अट्ठाहसरि हारो, बारसय - सयाणि इगिसीवी ॥५८५॥

३८०९४ । १३८१ ।

एवं अंतरमाणं, एक्केवक-रवीण काल-सलिलम्मि ।

लेस्सागदी तवद्धं, तस्सरिसं उवहि - आवाहा ॥५८६॥

अर्थ—अट्ठसीस हजार चौरान्व योजन और बारह सौ इक्कासीसे भाजित पाँच सौ अठत्तर भाग, यह कालोदसमुद्रमें एक-एक सूर्यका अन्तराल प्रमाण है। इससे आधी किरणोंकी गति और उसके ही बराबर समुद्रका अन्तर भी है ॥५८५-५८६॥

विशेषार्थ—कालोदधिका विस्तार ८ लाख योजन, सूर्य ४२ और इनका बिम्ब विस्तार $(\frac{४६}{१६} \times \frac{४२}{१६}) = \frac{३०६}{१६}$ योजन है। $(\frac{४०००००}{१६} - \frac{३०६}{१६}) \div \frac{४२}{१६} = \frac{४०००००}{१६} - \frac{३०६}{१६} \div \frac{४२}{१६} = ३८०९४\frac{१३}{१६}$ योजन दो सूर्योंका पारस्परिक अन्तर है।

किरणोंकी गति $\frac{४०००००}{१६} = १९०४७६६६\frac{१३}{१६}$ योजन और प्रथम पथसे समुद्रकी जगतीका अन्तर भी $१९०४७६६६\frac{१३}{१६}$ योजन है।

पुष्करार्धगत सूर्यादिके अन्तर-प्रमाण—

आधीस-सहस्साणि, वे-सय-इगिवीस जोयणा अंसा ।

द्वोण्ह-सया उणवालं, हारो उणवण्ण-पंच-सया ॥५८७॥

२२२२१ । १३११ ।

एवं अंतरमाणं, एक्केवक - रवीण पोवखरद्धम्मि ।

लेस्सागदी तवद्धं, तस्सरिसा उवहि - आवाहा ॥५८८॥

अर्थ—बाईस हजार दो सौ इक्कीस योजन और पाँच सौ उनचाससे भाजित दो सौ उनतालीस भाग, यह पुष्करार्धद्वीपमें एक-एक सूर्यका अन्तराल-प्रमाण है। इससे आधी किरणोंकी गति और उसके बराबर ही समुद्रका अन्तर भी है ॥५८७-५८८॥

विशेषार्थ—पुष्करार्धद्वीपका विस्तार ८ लाख यो०, सूर्य संख्या ७२ और इनका बिम्ब विस्तार $(\frac{५६}{४} \times \frac{७२}{२}) = १०१६$ योजन है। पूर्व नियमानुसार यहाँके दो सूर्योंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$$(४००००० - १०१६) \div \frac{७२}{२} = १२१५५५५६$$

= २२२२१३३३ योजन अन्तराल है। किरणोंकी गति = $१२१५५५५६ \times \frac{७२}{२} = ११११०३६६$ योजन प्रमाण है और प्रथम पथसे द्वीपकी जगतीका अन्तर भी इतना ही है।

तःप्रो अःअहो, तिसुं पासेसु संठिव - रवीणं ।

चारक्षेत्रसम्भ्रिया, अबभंतरए बाहि ऊणा ॥५८९॥

अर्थ—दो पार्श्वभागोंमें स्थित सूर्योंके ये अन्तर अभ्यन्तरमें चारक्षेत्रसे अधिक और बाह्यमें चारक्षेत्रसे रहित हैं ॥५८९॥

जम्बूद्वीपमें अन्तिम मार्गसे अभ्यन्तरमें किरणोंकी गतिका प्रमाण—

जंबूयंके दोण्हं, लेस्ता वचचंति चरिम - मग्गावो ।

अबभंतरए णभ-तिय-तिय-सुण्णा पंच जोयणया ॥५९०॥

५०३३० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपमें अन्तिम मार्गसे अभ्यन्तरमें दोनों चन्द्र-सूर्योंकी किरणें शून्य, तीन, तीन, शून्य और पाँच इस अंक क्रमसे पचास हजार तीन सौ तीस (५०३३०) योजन प्रमाण जाती हैं ॥५९०॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका मेरु पर्वत पर्यन्त व्यास ५० हजार योजन है। गाथा ५८६ के नियमानुसार इसमें लवणसमुद्र सम्बन्धी ३३० योजन चारक्षेत्रका प्रमाण जोड़ देनेपर जम्बूद्वीपमें अन्तिम मार्गसे अभ्यन्तरमें किरणोंका प्रसार $(५०००० + ३३०) = ५०३३०$ योजन पर्यन्त होता है।

लवणसमुद्रमें जम्बूद्वीपस्थ चन्द्रादिकी किरणोंकी गतिका प्रमाण—

चरिम-पहावो बाहि, लवणे वो-णभ-स-ति-तिय-जोयणया ।

वचचइ लेस्ता अंसा, सयं च हारा तिसीदि-अहिय-सया ॥५९१॥

३३००२ । १९३ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें अन्तिम पथसे बाह्यमें दो, शून्य, शून्य, तीन और तीन, इस अंक क्रमसे तैंतीस हजार दो योजन और एक सौ तेरासी भागोंमेंसे सौ भाग प्रमाण किरणें जाती हैं ॥५६१॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके छठे भागका प्रमाण (२२००००) = $३३३३३\frac{१}{३}$ यो० है । गाथा ५६१ के नियमानुसार इसमेंसे लवणसमुद्र सम्बन्धी चारक्षेत्रका प्रमाण घटा देनेपर ($३३३३३\frac{१}{३}$ — ३३०४६) = $३३००२१\frac{२}{३}$ योजन शेष रहते हैं । अर्थात् लवणसमुद्रमें अन्तिम पथसे बाह्यमें किरणोंकी गति $३३००२१\frac{२}{३}$ यो० पर्यन्त होती है ।

जम्बूद्वीपस्थ अभ्यन्तर और बाह्य पथ स्थित सूर्यकी
किरणोंकी गतिका प्रमाण—

पद्म-पह-संठियाणं, लेस्स-गद्दी णम-दु-अद्द-णव-चउरो ।

अंक - कमे जोयणया, अद्दभंतरए समुद्दिट्ठं ॥५६२॥

४९८२० ।

अर्थ—प्रथम पथ स्थित सूर्यकी किरणोंकी गति अभ्यन्तर पथमें शून्य, दो, आठ, नौ और चार, इन अंकोंके क्रमसे उनंचास हजार आठ सौ बीस योजन पर्यन्त फैलती है । ऐसा जिनेन्द्र-देवने कहा है ॥५६२॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके अर्ध व्यासमेंसे द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्रका प्रमाण १८० योजन घटा देनेपर (५०००० — १८०) = ४९८२० योजन शेष रहा । यही मेरु पर्वतके मध्यभागसे लगाकर अभ्यन्तर कीथी पर्यन्त सूर्यकी किरणोंकी गतिका प्रमाण है ।

बाहिर-भागे लेस्सा, वच्चंति ति-एवक-पण-ति-तिय-कमसो ।

जोयणया तिय - भागं, सेस - पहे हाणि - वड्ढीओ ॥५६३॥

३३५१३ । १ ।

अर्थ—बाह्यभागमें सूर्यकी किरणें तीन, एक, पाँच, तीन और तीन इस अंक क्रमसे तैंतीस हजार पाँच सौ तेरह योजन और एक योजनके तीन भागोंमेंसे एक भाग पर्यन्त फैलती हैं । शेष पथोंमें किरणोंकी क्रमशः हानि और वृद्धि होती है ॥५६३॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके व्यासका छठा भाग (१०००००) = $३३३३३\frac{१}{३}$ योजन होता है । इसमें द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्रका प्रमाण १८० योजन मिलानेपर ($३३३३३\frac{१}{३}$ + १८०) = $३३५१३\frac{१}{३}$ योजन होता है । अर्थात् अभ्यन्तर पथमें स्थित सूर्यकी किरणें लवणसमुद्रके छठे भाग ($३३५१३\frac{१}{३}$ योजन) पर्यन्त फैलती हैं ।

लवणसमुद्रादिमें किरणोंका फैलाव—

लवण-प्पहुदि-चउक्के, णिय-णिय-खेसेसु दिणयर-मयंका ।

वच्चंति ताण लेस्सा, अण्णक्खेत्तं ण कइया वि ॥५६४॥

अर्थ—लवणसमुद्र आदि चारमें जो सूर्य एवं चन्द्र हैं उनकी किरणें अपने-अपने क्षेत्रोंमें ही जाती हैं, अन्य क्षेत्रमें कदापि नहीं जाती ॥५६४॥

लवणसमुद्रादिमें सूर्य-वीथियोंकी संख्या—

अट्ठासट्ठी ति-सया, लवणम्मि हवन्ति भाणु-वीहीओ ।

चउरुत्तर - एक्कारस - सयमेत्ता धावईसंडे ॥५६५॥

३६८ । ११०४ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें सूर्य-वीथियाँ तीन सौ अड़सठ हैं और घातकीखण्डमें ग्यारह सौ चार हैं ॥५६५॥

चउसट्ठी अट्ठ-सया, तिण्णि सहस्साणि कालसलिलम्मि ।

चउवीसुत्तर-छ-सया, छच्च सहस्साणि पोक्खरद्धम्मि ॥५६६॥

३८६४ । ६६२४ ।

अर्थ—कालोदधिमें सूर्य-वीथियाँ तीन हजार आठ सौ चौसठ और पुष्करार्ध द्वीपमें छह हजार छह सौ चौबीस हैं ॥५६६॥

विशेषार्थ—दो सूर्य सम्बन्धी १८४ वीथियाँ होती हैं अतः लवण—समुद्रगत ४ सूर्योंकी (184×4) = ३६८, घातकीखण्डगत १२ सूर्योंकी (184×12) = ११०४, कालोदधिगत (184×22) = ३८६४ और पुष्करार्धद्वीपगत (184×36) = ६६२४ वीथियाँ हैं ।

प्रत्येक सूर्यकी मुहूर्त-परिमित गतिका प्रमाण—

णिय-णिय-परिहि-पमाणे, सट्ठि-मुहुसेहि अवहिदे लद्ध' ।

पत्तेक्कं भाणूणं, मुहुत्त - गमणस्स परिमाणं ॥५६७॥

अर्थ—अपने-अपने परिधि-प्रमाणमें साठ मुहूर्तोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना प्रत्येक सूर्यकी मुहूर्तगतिका प्रमाण होता है ॥५६७॥

लवणसमुद्रादिमें सूर्योकी शेष प्ररूपणा—

सेसाओ वण्णणाओ, जंबूदीवम्मि जाओ वुमणीणं ।

ताओ लवणे धावईसंडे कालोद - पुक्खरद्धेसुं ॥५९८॥

सूर्य्यरूपणा ।

अर्थ—जम्बूद्वीप स्थित सूर्योका जो शेष वर्णन है, वही लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कालोद और पुष्करार्धके सूर्योका भी समझना चाहिए ॥५९८॥

इसप्रकार सूर्य-प्ररूपणा समाप्त हुई ।

लवणसमुद्रादिमें ग्रह संख्या—

बावण्णा तिण्णि-सया, होंति गहाणं च लवणजलहिम्मि ।

छप्पण्णा अब्भहियं, सहस्समेक्कं च धावईसंडे ॥५९९॥

३५२ । १०५६ ।

तिण्णि सहस्सा छस्सय, छण्णउदी होंति कालउवहिम्मि ।

छसोस्सव्वभहियाणि, तेसट्ठि - सयाणि पुक्खरद्धम्मि ॥६००॥

३६९६ । ६३३६ ।

एवं गहाण परूवणा समत्ता ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें तीन सौ बावन और धातकीखण्डमें एक हजार छप्पन ग्रह हैं । कालोदधिमें तीन हजार छह सौ छधानबै और पुष्करार्धद्वीपमें छह हजार तीन सौ छत्तीस ग्रह हैं ॥५९९-६००॥

विशेषार्थ—एक चन्द्र सम्बन्धी ८८ ग्रह हैं, अतः लवणसमुद्रमें (८८ × ४) = ३५२, धा० खण्डमें (८८ × १२) = १०५६, कालोदधिमें (८८ × ४२) = ३६९६ और पुष्करार्धद्वीपमें (८८ × ७२) = ६३३६ ग्रह हैं ।

इसप्रकार ग्रहोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

लवणसमुद्रादिमें नक्षत्र संख्या—

लवणम्मि वारसुत्तर-सयमेत्ताणि हवन्ति रिक्खाणि ।

छत्तीसेहि अहिया, तिण्णि - सया धावईसंडे ॥६०१॥

११२ । ३३६ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें एक सौ बारह और घातकीखण्डमें तीन सौ छत्तीस नक्षत्र हैं ॥६०१॥

छाहत्तरि-जुचाइं, एक्करस-सयाणि कालसलिलम्भि ।

सोलुत्तर - दो - सहस्सा, दीव - वरे पोक्खरद्धम्भि ॥६०२॥

११७६ । २०१६ ।

अर्थ—कालोद समुद्रमें ग्यारह सौ छिहत्तर और पुष्करार्धद्वीपमें दो हजार सोलह नक्षत्र हैं ॥६०२॥

विशेषार्थ—एक चन्द्र सम्बन्धी २८ नक्षत्र हैं, इसलिए ४, १२, ४२ और ७२ चन्द्र सम्बन्धी नक्षत्र क्रमशः ११२, ३३६, ११७६ और २०१६ हैं ।

नक्षत्रोंका शेष कथन—

सेसाओ वण्णणाओ, जंबूदीवम्भि जाओ रिक्खाणं ।

ताओ लवणे धावइसंडे कालोव - पोक्खरद्धेसुं ॥६०३॥

एवं एक्खत्ताण परूवणा समत्ता ।

अर्थ—नक्षत्रोंका शेष वर्णन जैसा जम्बूद्वीपमें किया गया है उसी प्रकार लवणसमुद्र, घातकीखण्ड द्वीप, कालोद समुद्र और पुष्करार्धद्वीपमें समझना चाहिए ॥६०३॥

इसप्रकार नक्षत्रोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

लवणसमुद्रादि चारोंकी ताराओंका प्रमाण—

दोण्ह च्चिवय लक्खाणि, सत्तदूठी-सहस्स णव-सयाणि च ।

होति ह लवणसमुद्रे, ताराणं कोडिकोडीओ ॥६०४॥

२६७६०००००००००००००००००० ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ कोड़ाकोड़ी तारे हैं ॥६०४॥

अट्ठ च्चिवय लक्खाणि, तिण्णि सहस्साणि सग-सयाणि पि ।

होति ह धावइसंडे, ताराणं कोडिकोडीओ ॥६०५॥

८०३७०००००००००००००००००० ।

अर्थ—धातकीखण्ड द्वीपमें आठ लाख तीन हजार सात सौ कोड़ाकोड़ी तारे हैं ॥६०५॥

अट्ठावीसं लक्खा, कोडीकोडीण बारस-सहस्ता ।

पण्णासुत्तर - णव - सय - जुत्ता ताराणि कालोदे ॥६०६॥

२३१२९५०००००००००००००००० ।

अर्थ—कालोद समुद्रमें अट्ठाईस लाख बारह हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी तारे हैं ॥६०६॥

अट्ठत्तालं लक्खा, बावोस - सहस्स बे-सयानि च ।

होति हु पोक्खरवीवे, ताराणं कोडकीडीमो ॥६०७॥

४८२२२००००००००००००००००००० ।

अर्थ—पुष्करार्ध द्वीपमें अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ कोड़ाकोड़ी तारे हैं ॥६०७॥

विशेषार्थ—एक चन्द्र सम्बन्धी ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण हैं इसलिए लवणसमुद्र आदि चारोंमें ४, १२, ४२ और ७२ चन्द्र सम्बन्धी ताराओंका प्रमाण क्रमशः (६६९७५ कोड़ाकोड़ी $\times ४ =$) २६७९०० कोड़ाकोड़ी, ८०३७०० कोड़ाकोड़ी, २८१२९५० कोड़ाकोड़ी और ४८२२२०० कोड़ाकोड़ी है ।

ताराओंका शेष निरूपण—

सेसाग्रे वण्णणाग्रे, जम्बूवीवस्स वण्णण - समाग्रे ।

णवरि विसेसो संखा, अण्णणा खोल - ताराणं ॥६०८॥

अर्थ—इनका शेष वर्णन जम्बूद्वीपके वर्णन सदृश है । विशेषता केवल यह है कि स्थिर ताराओंकी संख्या भिन्न-भिन्न है ॥६०८॥

लवणसमुद्रादि चारोंकी स्थिर ताराओंका प्रमाण—

एक्क-सयं उणादालं, लवणसमुद्दम्मि खोल-ताराग्रे ।

वस - उत्तरं सहस्सा, बीवम्मि य चावईसंडे ॥६०९॥

१३६ । १०१० ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें एक सौ उनतालीस और धातकीखण्डमें एक हजार दस स्थिर तारे हैं ॥६०९॥

एककत्ताल-सहस्सा, बीसुत्तरमिणि-सयं च कालोदे ।
तेवण्ण-सहस्सा वे - सयाणि तीसं च पुक्खरद्धम्मि ॥६१०॥

४११२० । ५३२३० ।

अर्थ—कालोद समुद्रमें एकतालीस हजार एक सौ बीस और पुक्करार्द्धद्वीपमें तिरैपन हजार दो सौ तीस स्थिर तारे हैं ॥६१०॥

मनुष्यलोक स्थित सूर्य-चन्द्रोंका विभाग—

माणसखेत्ते सतिणो, छासट्ठी होंति एक-पासम्मि ।
दो - पासेसु' दुगुणा, तेत्तियमेत्ताणि सत्तंडा ॥६११॥

६६ । १३२ ।

अर्थ—मनुष्य लोक के भीतर एक पार्श्व भागमें छायासठ और दोनों पार्श्वभागोंमें इससे दूने चन्द्र तथा इतने प्रमाण ही सूर्य हैं ॥६११॥

विशेषार्थ—साम्बूदीपरे पुक्करार्द्धद्वीप पर्यन्त दमयः $२ + ४ + १२ + ४२ + ७२ = (१३२)$ चन्द्र एवं इतने ही सूर्य हैं । इनका अर्धभाग अर्थात् $(१३२ \div २ =) ६६$ चन्द्र तथा ६६ सूर्य एक पार्श्वभागमें और इतने ही दूसरे पार्श्वभागमें संचार करते हैं ।

मनुष्यलोक स्थित सर्व ग्रह, नक्षत्र और अस्थिर-स्थिर
ताराओंका प्रमाण—

एककरस-सहस्साणि, होंति गहा सोलसुत्तरा छ-सया ।
रिक्खा तिणिा सहस्सा, छस्सय-छण्णउदि-अविरित्ता ॥६१२॥

११६१६ । ३६६६ ।

अर्थ—मनुष्य लोकमें ग्यारह हजार छह सौ सोलह (११६१६) ग्रह और तीन हजार छह सौ छ्यानबे (३६९६) नक्षत्र हैं ॥६१२॥

अट्ठासीवी लक्खा, चालीस-सहस्स-सग-सयाणि पि ।
होंति हु माणुसखेत्ते, ताराणं कोडकोडीओ ॥६१३॥

८८४०७००००००००००००००००० ।

अर्थ—मनुष्य क्षेत्रमें अठासी लाख चालीस हजार सात सौ कोड़ाकोड़ी अस्थिर तारे हैं ॥६१३॥

पंचाणउदि-सहस्सा, पंच-सया पंचतीस-अवभहिया ।

खेतम्मि माणुसाणं, चेदुत्ते खोल - ताराओ ॥६१४॥

९५५३५ ।

अर्थ—मनुष्य क्षेत्रमें पंचानब हजार पांच सौ पैंतीस स्थिर तारा स्थित हैं ॥६१४॥

मनुष्यलोकके ज्योतिषीदेवोंका एकत्रित प्रमाण—							
	द्वीप-समुद्रों के नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारा	
						अस्थिर तारा	स्थिर तारा
१.	जम्बूद्वीप	२	२	१७६	५६	१३३९५० कोड़ाकोड़ी	३६
२.	लवणसमुद्र	४	४	३५२	११२	२६७९०० "	१३६
३.	धातकीखण्ड	१२	१२	१०५६	३३६	८०३७०० "	१०१०
४.	कालोदसमुद्र	४२	४२	३६९६	११७६	२८१२९५० "	४११२०
५.	पुष्कराध्वद्वीप	७२	७२	६३३६	२०१६	४८२२२०० "	५३२३०
योग		१३२	१३२	११६१६	३६६६	८८४०७०० कोड़ा- कोड़ी	९५५३५

ग्रहों की संचरण विधि—

सब्बे ससिणो सूरा, णक्खत्ताणि गहा य ताराणि ।

णिय-णिय-पह-पणिघीसुं पंतीए चरंति णभखंडे ॥६१५॥

अर्थ—चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और तारा, ये सब अपने-अपने पथोंकी प्रणिधियोंके तब-
खण्डोंपर पंक्तिरूपसे संचार करते हैं ॥६१५॥

ज्योतिष देवोंकी मेरु प्रदक्षिणाका निरूपण—

सब्बे कुणंति मेरुं, पवाहिणं जंबुदीय-जोदि-गणा ।

अद्द - पमाणा धादइसंडे तह पोक्खरद्धम्मि ॥६१६॥

एवं चर-गिहाणं चारो समत्तो ।

अर्थ—जम्बूद्वीपमें सब ज्योतिषी देवोंके समूह मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं, तथा धातकीखण्ड और पुष्करार्धद्वीपमें आये ज्योतिषी देव मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥६१६॥

इसप्रकार चर ग्रहोंका चार समाप्त हुआ ।

अढ़ाई द्वीपके बाहर अचर ज्योतिषोंकी प्ररूपणा—

मणुसुत्तरादु परदो, सयंभूरमणो त्ति दीव-उवहीणं ।

अचर - सरुव - ठिवाणं, जोइ - गणाणं परुवेमो ॥६१७॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतसे आगे स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त द्वीप-समुद्रोंमें अचर स्वरूपसे स्थित ज्योतिषी देवोंके समूहोंका निरूपण करता हूँ ॥६१७॥

मानुषोत्तरसे स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त स्थित चन्द्र-सूर्योकी
विन्यास विधि—

एत्तो मणुसुत्तर-गिरिद-प्पहुदि जाव सयंभूरमण-समुद्रो त्ति संठिद-संदाइच्चाणं
विण्णास-विहि वत्तइस्सामो ।

अर्थ—यहांसे आगे मानुषोत्तर पर्वतसे लेकर स्वयंभूरमण-समुद्र पर्यन्त स्थित चन्द्र-सूर्योकी
विन्यास-विधि कहता हूँ—

तं जहा—माणुसुत्तर-गिरिवादो पण्णास-सहस्स-जोयणाणि गंतूण पढम-वत्तयं^१
होदि । तत्तो परं पत्तेवकमेवक-लक्ख-जोयणाणि गंतूण बिदियावि-वत्तयाणि होति जाव
सयंभूरमण-समुद्रो त्ति । एवदि सयंभूरमण-समुद्रस्स वेदीए पण्णास-सहस्स-जोयणाणिम-
पायिय तस्मि पदेसे^२ चरिम-वत्तयं होदि । एवं सव्व-वत्तयाणि केत्तिवा होति त्ति उस्से
चोद्दस-लक्ख-जोयणोहिं भजिद-जगसेढो पुणो तेवीस-वत्तएहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा
१४००००० रि २३ ।

अर्थ—वह इसप्रकार है—मानुषोत्तर पर्वतसे पचास हजार योजन आगे जाकर प्रथम
वलय है । इसके आगे स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त प्रत्येक एक लाख योजन आगे जाकर द्वितीयादिक
वलय हैं । विशेष इतना है कि स्वयंभूरमण समुद्रकी वेदीसे पचास हजार योजनोंको न पाकर अर्थात्
स्वयंभूरमण समुद्रकी वेदीसे पचास हजार योजन इधर ही उस प्रदेशमें अन्तिम वलय है । इसप्रकार सर्व

बलय कितने होते हैं ? ऐसा कहनेपर उत्तर देते हैं कि जगच्छ्रेणीमें चौदह लाख योजनोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे तेईस कम करनेपर समस्त बलयोंका प्रमाण होता है । उसकी स्थापना—
(जगच्छ्रेणी $\div$ १४०००००)—२३ है ।

उपर्युक्त बलयोंमें स्थित चन्द्र-सूर्योका प्रमाण—

एदाणं बलयाणं संठिव-चंदाइच्च-पमाणं वत्तइस्सामो - पोक्खरवर - दीवद्धस्स
पढम-बलए संठिव-चंदाइच्चा पत्तेक्कं अउबालब्भहिय - एक्क - सयं होवि । १४४।१४४।
पुक्खरवर-णीररासिस्स पढम-बलए संठिव-चंदाइच्चा पत्तेक्कं अट्ठासीदि-अब्भहिय-दीणि-
सयमेत्तं होवि ।

हेट्ठिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा पढम-बलए संठिव-चंदाइच्चादो तदणंतरो-
वरिम-दीवस्स वा णीररासिस्स वा पढम - बलए संठिव - चंदाइच्चा पत्तेक्कं दुगुण-दुगुणं
होऊण गच्छइ जाय सयंभूरमण-समुदो त्ति । तत्थ अन्तिम-विषयं वत्तइस्सामो—

अर्थ—इन बलयोंमें स्थित चन्द्र-सूर्योका प्रमाण कहते हैं—पुष्करार्धद्वीपके प्रथम बलयमें स्थित चन्द्र तथा सूर्य प्रत्येक एक सी चवालीस (१४४ — १४४) हैं । पुष्करवर समुद्रके प्रथम बलयमें स्थित चन्द्र एवं सूर्य प्रत्येक दो सी अठासी (२८८ — २८८) प्रमाण हैं । इसप्रकार अधस्तन द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम बलयमें स्थित चन्द्र-सूर्योकी अपेक्षा तदनन्तर उपरिम द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम बलयमें स्थित चन्द्र और सूर्य प्रत्येक स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त दुगुने-दुगुने होते चले गये हैं । उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—

अन्तिम समुद्रके प्रथम-बलय स्थित चन्द्र-
सूर्योका प्रमाण—

सयंभूरमणसमुदस्स पढम-बलए संठिव - चंदाइच्चा अट्ठावीस-लक्खेण भजिव-
णव-सेट्ठोओ पुणो चउ-रुव-हिव-सत्तावीस-रुवेहि अब्भहियं होइ । तच्चेदं । १८००००० ।
९७ ।

अर्थ—स्वयंभूरमण समुद्रके प्रथम बलयमें स्थित चन्द्र और सूर्य प्रत्येक अट्ठाईस लाखसे भाजित तो जगच्छ्रेणी और चार रूपोंसे भाजित सत्ताईस रूपोंसे अधिक हैं । वह यह है—
(जगच्छ्रेणी $\div$ १८ लाख) + ९७ ।

प्रत्येक द्वीप-समुद्रके प्रथम-वलयके चन्द्र-सूर्य प्राप्त
करनेकी विधि—

पोवस्सरवरदीवद्व-पहुवि जाव सयंभूरमणसमुद्रो
त्ति पत्तोक्क-दीवस्स वा उवहिस्स वा पढम-वलय-
संठिद-धंदाइच्चाराणं आणयण-हेदु इमा सुत-गाहा—
पोवस्सरवरद्वहि-पहुवि, उवरिम-दीओवहीण विषलंभं ।
लवस्स-हिदं णव-गुणिदं, सग-सग-दीउवहि-पढम-वलय-फलं ॥६१८॥

अर्थ—पुष्करार्धद्वीपसे लेकर स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त प्रत्येक द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम-वलयमें स्थित चन्द्र-सूर्योका प्रमाण लानेके लिए यह गाथा-सूत्र है—

पुष्करवर समुद्र आदि उपरिम द्वीप समुद्रोंके विस्तारमें एक लाखका भाग देकर जो लब्ध प्राप्त हो उसे नौसे गुणा करनेपर अपने-अपने द्वीप-समुद्रोंके प्रथम-वलयमें स्थित चन्द्र-सूर्योका प्रमाण प्राप्त होता है ॥६१८॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त नियमानुसार तीसरे समुद्र, चतुर्थ द्वीप एवं स्वयंभूरमणसमुद्रके प्रथम वलय स्थित चन्द्र-सूर्योका प्रमाण इसप्रकार है—

(१) तृतीय पुष्करवरसमुद्रका विस्तार ३२ लाख योजन है । इसके प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्योका प्रमाण $(\frac{320000000}{1000000}) = ३२० — ३२०$ है ।

(२) वारुणीवर नामक चतुर्थ द्वीपका विस्तार ६४ लाख योजन है । इसके प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्योका प्रमाण $(\frac{640000000}{1000000}) = ६४० — ६४०$ है ।

(३) स्वयंभूरमण समुद्रका विस्तार = जगच्छेणी + ७५००० है । इसके प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्योका पृथक्-पृथक् प्रमाण $[\frac{\text{जगच्छेणी}}{1000000} + ७५०००] \times १०००००$ ।

$$= \frac{९ \text{ जगच्छेणी}}{२८००००००} + \frac{७५००० \times ९}{१०००००} = \frac{९ \text{ जगच्छेणी}}{२८००००००} + \frac{२७}{४} \text{ है ।}$$

प्रत्येक वलयमें जयका प्रमाण—

विचयं पुण पडिबलयं पडि पत्तेक्कं चउत्तर - कमेण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्रं ति । णवरि दीवस्स वा उवहिस्स वा दुगुण-जाव-पढम-वलय-द्वानं मोत्तूण सव्वत्थ चउत्तर-कमं वसत्थं ।

अर्थ—यहाँ पर चय प्रत्येक बलयके प्रत्येक स्थानमें चार-चार उत्तर क्रमसे स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त चला गया है। विशेष इतना है कि द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम बलय पर जहाँ राशि दुगुनी होती है, उसे छोड़कर सर्वत्र वृद्धिका क्रम चार-चार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जैसे—मानुषोत्तर पर्वतसे बाहर जो पुष्करार्ध द्वीप है, उसके प्रथम बलयमें चन्द्र-सूर्यकी संख्या १४४-१४४ है। इनके दूसरे, तीसरे आदि बलयोंमें चार-चारकी वृद्धि होते हुए क्रमशः १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२, १७६, १८० हैं। इसप्रकार यह वृद्धि पुष्करार्ध द्वीपके अन्तिम बलय पर्यन्त होगी और इस द्वीपके आगे पुष्करवरसमुद्रके प्रथम बलयमें राशि दुगुनी अर्थात् (१४४ × २ =) २८८ हो जायगी। यह राशि प्रत्येक द्वीप-समुद्रके प्रथम बलयमें दुगुनी होती है इसीलिए चय-वृद्धिके क्रममें इस प्रथम बलयको छोड़ दिया गया है।

मानुषोत्तर पर्वतके आगे प्रथम बलयमें चन्द्र-सूर्योंके अन्तरालका प्रमाण—

माणुसुत्तरगिरिदादौ पण्णास-सहस्र-जोयणाणि गंतूरा पढम-बलयस्मि ठिद-
चंदाइच्छाणं विक्कचालं सत्तेताल-सहस्र-णव-सय-चोइस-जोयणाणि पुणो छहत्तरि-जाव-
सवंसा तेसीदि-जुव-एक्क-सय-रुवेहि भजिवमेत्तं होदि । तं वेदं ४७९१४ । ११३ ।

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतसे आगे पचास हजार योजन जाकर प्रथम-बलयमें चन्द्र-सूर्योंका अन्तराल सैंतालीस हजार नौ सौ चौदह योजन और एक सौ तेरासीसे भाजित एक सौ छयत्तर भाग प्रमाण अधिक है। वह यह है—४७९१४ $\frac{११३}{१००}$ ।

विशेषार्थ—मानुषोत्तरपर्वतसे ५० हजार योजन आगे जाकर प्रथम-बलय है। जिसमें १४४ चन्द्र और १४४ सूर्य स्थित हैं। मानुषोत्तर पर्वतका सूची-व्यास ४५ लाख योजन है। इसमें दोनों पार्श्वभागोंका ५०-५० हजार (१ लाख) योजन बलय-व्यास मिला देनेपर (४५ लाख + १ लाख) = ४६ लाख योजन सूची-व्यास होता है। इसकी बादर परिधि (४६००००० × ३) = १३८००००० लाख है। इसमें बलय-व्यास सम्बन्धी चन्द्र-सूर्योंके प्रमाण (१४४ + १४४) = २८८ का भाग देकर दोनोंके बिम्ब विस्तारका प्रमाण घटा देनेपर चन्द्रसे चन्द्रका और सूर्यसे सूर्यका अन्तर प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

$$१३८००००० - १०४ = १३८००००० = ४७९१४\frac{११३}{१००} \text{ योजन अन्तर प्रमाण है।}$$

विद्वानों द्वारा विचारणीय—

ग्रन्थकारसे चन्द्र-सूर्योंके बिम्ब व्यास को एक साथ जोड़कर ($\frac{५६}{१००} + \frac{५६}{१००}$) = $\frac{११२}{१००}$ योजन घटाकर अन्तर-प्रमाण निकाला है किन्तु चन्द्र एवं सूर्य बिम्बोंका व्यास एक सदृश नहीं है, अतः जितना अन्तर चन्द्रका चन्द्रसे है उतना ही सूर्यका सूर्यसे नहीं हो सकता है। यथा—

($134800000 = 100000000$) — $148 = 92528$ योजन प्रथम बलयमें चन्द्रसे चन्द्रका अन्तर है और $100000000 - 148 = 9252828$ योजन वहाँके एक सूर्यसे दूसरे सूर्यका अन्तर प्रमाण है ।

मानुषोत्तरके आगे द्वितीय बलय स्थित चन्द्र-सूर्योके
अन्तरका प्रमाण—

विदिय - बलए चंदाइचचाणमंतरं अट्टेताल-सहस्स-छ-सय-छावाला जोयणाणि पुणो इगि-सय-तीस-जुदाणं दोण्णि सहस्सा कलाओ होदि दोण्णि-सय-सत्तावण-रुवेणभ-हिय-दोण्णि-सहस्सेण हरिदमेत्तं होदि । तं चेदं । ४८६४६ । ३३३३ । एवं णेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुदो त्ति ।

अर्थ—द्वितीय बलयमें चन्द्र-सूर्योका अन्तर अड़तालीस हजार छह सौ छयालीस योजन और दो हजार दो सौ सत्तावनसे भाजित दो हजार एक सौ तीस कला अधिक है । वह यह है—४८६४६३३३३३ । इसप्रकार स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—प्रत्येक बलयमें चन्द्र-सूर्योका वृद्धि-चय ४ — ४ है, अतः द्वितीय बलयमें इनका प्रमाण ($148 + 148$) = २९६ है । प्रथम बलयसे यह दूसरा बलय एक लाख योजन आगे जाकर है । वहाँ प्रत्येक पार्श्वभागका बलय व्यास एक-एक लाख योजन है अतः दूसरे बलयका सूची-व्यास ($46 \text{ लाख} + 2 \text{ लाख}$) = ४८ लाख योजन है । पूर्वोक्त नियमानुसार यहाँ चन्द्र-सूर्यके अन्तरका प्रमाण इसप्रकार है—

$$(400000000 \times 3 = 1200000000) - 148 = 1000000000 - 148 = 486463333 \text{ योजन ।}$$

स्वयंभूरमणसमुद्रके प्रथम बलयमें चन्द्र-सूर्यके अन्तरका प्रमाण—

तत्थ अन्तिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंभूरमण-समुदस्स-पढम-बलए एक्केवक-चंदाइचचाणमंतरं तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-इगितीस-जोयणाणि अंसा पुण पण्णारस-जुदेवक-सयं हारो तेत्तीदि-जुदेवक-सय-रुवमेत्तेणभहियं होदि, पुणो रुवस्स असंखेज्जभागेणभहियं होदि । तं चेदं ३३३३१ । भा ११३ । एवं सयंभूरमणसमुदस्स विदिय - पह - प्पहुदि - बुच्चरिम-पहंतं विसेसाहिय परुवेण जाणिय वत्तव्वं ।

अर्थ—उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयंभूरमण—समुद्रके प्रथम बलयमें प्रत्येक चन्द्र-सूर्यका अन्तर तैत्तीस हजार तीन सौ इकतीस योजन और एक सौ तेरासीसे भाजित एक सौ पन्द्रह भाग अधिक तथा असंख्यातसे भाजित एक रूप अधिक है । वह यह है—३३३३११३३ ।

इसप्रकार स्वयंभूरमणसमुद्रके द्वितीय पक्षसे लेकर द्विचरम पथ पर्यन्त विशेष अधिक रूपसे होता गया है जिसे जानकर कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—स्वयंभूरमणसमुद्रके प्रथम बलयका सूचीव्यास ($\frac{ज}{१४} - १५००००$) है और इस बलयकी स्थूल-परिधिका प्रमाण $३ \left(\frac{ज}{१४} - १५०००० + १००००० \right)$ है । इस बलयके चन्द्रोंका प्रमाण $\left(\frac{ज ९}{२८ लाख} + \frac{२७}{४} \right)$ है । सूर्योंका प्रमाण भी इतना ही है अतः इसे दुगुना करने पर $२ \left(\frac{ज ९}{२८ लाख} + \frac{२७}{४} \right)$ प्राप्त होता है । चन्द्र-सूर्यके बिम्ब विस्तारका प्रमाण $\left(\frac{५६}{१६} + \frac{६६}{१६} \right) = \frac{१०४}{१६}$ योजन है । यहाँ पूर्वोक्त नियमानुसार चन्द्र-सूर्यके अन्तरका प्रमाण इसप्रकार है—

$$\frac{३ \left(\frac{ज}{१४} - १५०००० + १००००० \right)}{२ \left(\frac{ज ९}{२८०००००} + \frac{२७}{४} \right)} = \frac{१०४}{१६}$$

$$\text{या } \left(\frac{३ ज}{१४} \times \frac{१४ लाख}{९ ज} \right) = \frac{१०४}{१६}$$

$$\text{या } \left(\frac{३}{९} \times १५००००० \right) = \frac{१०४}{१६} = ३३३३१\frac{१३}{१६} \text{ योजन ।}$$

यहाँ ज से ज का, ३ से ६ का और २ से २८ लाखका अपवर्तन हुआ है । असंख्यात संख्या रूप जगच्छ्रेणीकी तुलनामें १५००००, १ लाख और $\frac{३७}{४}$ नगण्य हैं अतः छोड़ दिए गये हैं ।

स्वयंभूरमणसमुद्रके अन्तिम बलयमें चन्द्र-सूर्यके

अन्तरका प्रमाण—

एवं सयंभूरमणसमुद्रस्स चरिम - बलयम्मि चंवाइच्चाणं विच्चालं भणमाणे
छावाल-सहस्स-एक्क-सय-बाधण-जोयण-पमाणं होदि पुणो बारसाहिय-एक्क-सय-कलाओ-
हारो तेणउदि—रुवेणअहिय-सत्त-सयमेत्तं होदि । तं चेदं ४६१५२ धण अंसा ३१३ ।

एवं अचर-जोइगण-परुवणा समत्ता ।

अर्थ—इसप्रकार स्वयंभूरमणसमुद्रके अन्तिम बलयमें चन्द्र-सूर्योंका अन्तराल कहनेपर छद्मालीस हजार एक सौ बावन योजन प्रमाण और सातसौ तेरानबैसे भाजित एक सौ बारह कला अधिक है । वह यह है—४६१५२ $\frac{३१३}{१६}$ ।

विशेषार्थ—स्वयंभूरमणसमुद्रका बाह्य सूचीव्यास एक राजू अर्थात् $\frac{ज}{६}$ है। इसमें १ लाख जोड़कर ३ से गुणित करनेपर वहाँकी स्थूल परिधिका प्रमाण होता है। यथा—

$३ (\frac{ज}{६} + १०००००)$ । असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें चन्द्र-सूर्योके समस्त वलयोंका प्रमाण $(\frac{ज}{१४ लाख} - २३)$ है और इन समस्त वलयोंका ३ भाग अर्थात् $(\frac{ज}{२८ लाख} - २३)$ प्रमाण स्वयंभूरमण समुद्रके वलयोंका है। यहाँके चन्द्र-सूर्योमें प्रत्येकका प्रमाण $२ (\frac{ज}{२८ लाख} + ३७)$ है।

यहाँके अन्तिम वलयमें चन्द्र-सूर्योका प्रमाण प्राप्त करनेका सूत्र है—आदि + (वलय-संख्या — १) × अक्ष ।

$$\text{अर्थात् } २ (\frac{ज}{२८००००००} + \frac{३७}{४}) + (\frac{ज}{२८००००००} - \frac{२३}{२} - \frac{१}{१}) \times ४$$

$$\text{या } २ (\frac{९ ज}{२८ लाख} + \frac{३७}{४}) + (\frac{ज}{२८ लाख} - \frac{२४}{२}) \times ४$$

$$\text{या } २ (\frac{९ ज}{२८ लाख} + \frac{३७}{४}) + (\frac{४ ज}{२८ लाख} - ५०)$$

$$\text{या } (\frac{९ ज}{१४००००००} + \frac{३७}{४}) + (\frac{४ ज}{१४००००००} - ५०)$$

या $\frac{१३ ज}{१४००००००}$ यह अन्तिम वलयके समस्त चन्द्र-सूर्योका प्रत्येकका प्रमाण है। इस प्रमाण का स्वयंभूरमणसमुद्रकी स्थूल परिधिमें भाग देकर $\frac{१०४}{६१}$ यो० घटा देनेसे अन्तिम वलयमें चन्द्र-सूर्योके अन्तरका प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यथा—

$$\frac{३ (\frac{ज}{६} + १०००००) - \frac{१०४}{६१} \text{ या } \frac{३ ज}{७} \times \frac{१४०००००}{१३ ज} - \frac{१०४}{६१} \text{ यो०}}{\frac{१३ ज}{१४००००००}}$$

$$\text{या } \frac{३}{१} \times \frac{२ लाख}{१३} - \frac{१०४}{६१} \text{ या } \frac{६०००००००}{१३} - \frac{१०४}{६१} \text{ यो०}$$

$$= \frac{३९५०००००००}{१३} - \frac{१०४}{६१} = ४६१५२३३३ \text{ योजन अन्तराल प्रमाण है।}$$

इसप्रकार अक्षर ज्योतिर्गणकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

विशेष द्रष्टव्य

सपरिवार चन्द्रोंके प्राप्त करनेकी प्रक्रियाका दिग्दर्शन—

असंख्यात द्वीप-समुद्रमें चन्द्रादि ज्योतिष बिम्ब राशियोंको प्राप्त करने हेतु सर्व प्रथम असंख्यात द्वीप-समुद्रोंकी संख्या निकाली जाती है। यह संख्या गच्छका प्रमाण प्राप्त करनेमें कारण भूत है और गच्छ चन्द्रादिक राशियोंका प्रमाण निकालनेके लिए उपयोगी है।

असंख्यात द्वीप-समुद्रोंकी संख्याका प्रमाण—

द्वीप-समुद्रोंकी संख्या निकालनेके लिए रज्जुके अर्धच्छेद प्राप्त करना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि ६ अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे हीन रज्जुके अर्धच्छेदोंका जितना प्रमाण है उतना ही प्रमाण द्वीप-समुद्रोंका है।

राजूके अर्धच्छेद निकालनेकी प्रक्रिया—

सुमेरु पर्वतके मध्यसे प्रारम्भकर स्वयंभूरमण समुद्रके एक पार्श्वभाग पर्यन्तका क्षेत्र अर्ध-राजू प्रमाण है, इसलिए राजूका प्रथमबार आधा करनेपर प्रथम अर्धच्छेद जम्बूद्वीपके मध्य (केन्द्र) में मेरु पर पड़ता है। इस अर्ध राजूका भी अर्धभाग अर्थात् दूसरी बार आधा किया हुआ राजू स्वयंभूरमण द्वीपकी परिधिसे ७५००० योजन आगे जाकर स्वयंभूरमण समुद्रमें पड़ता है। तीसरी बार आधा किये हुए राजूका प्रमाण स्वयंभूरमण द्वीपमें अभ्यन्तर परिधिसे मेरुकी दिशामें कुछ विशेष आगे जाकर प्राप्त होता है। इसप्रकार उत्तरोत्तर अर्धच्छेद क्रमशः मेरुकी ओर द्वीप-समुद्रोंमें अर्ध-अर्धरूपसे पतित होता हुआ लवणसमुद्र पर्यन्त पहुँचता है। जहाँ राजूके दो अर्धच्छेद पड़ते हैं।

(देखिए त्रिलोकसार गा० ३५८)

जम्बूद्वीपकी वेदीसे मेरुके मध्य पर्यन्त ५०००० योजन और उसी वेदीसे लवणसमुद्रमें द्वितीय अर्धच्छेद तक ५० हजार योजन अर्थात् जम्बूद्वीपसे अभ्यन्तरकी ओर के ५० हजार योजन और बाह्यके ५० हजार योजन ये दोनों मिलकर १ लाख योजन होते हैं जिनको उत्तरोत्तर १७ बार अर्ध-अर्ध करनेके पश्चात् एक योजन अवशेष रहता है। इस १ योजनके ७६८००० अंगुल होते हैं। जिन्हें उत्तरोत्तर १७ बार अर्ध-अर्ध करनेपर एक अंगुल प्राप्त होता है। एक अंगुलके अर्धच्छेद पत्यके अर्धच्छेदोंके वर्गके बराबर होते हैं। इसप्रकार जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद $(१७ + १६ + १) = ३४$ अधिक पत्यके अर्धच्छेदोंके वर्ग अथवा संख्यात अधिक पत्यके अर्धच्छेदोंके वर्गके सदृश होते हैं।

(त्रिलोकसार गाथा ६८)

तिलोयपष्णत्ती गाथा १ : १३१ तथा त्रिलोकसार गाथा १०८ की टीकानुसार जगच्छेणी (७ राजू) के अर्धच्छेदोंकी संख्या इसप्रकार है—

$$\frac{\text{पल्यके अर्ध०}}{\text{असंख्यात}} \times \text{साधिक पल्यके अर्धच्छेद} \times \text{पल्यके अर्धच्छेद} \times ३ :$$

जगच्छेणी ७ राजू लम्बी है जिसमें समस्त द्वीप-समुद्रोंको अपने गर्भमें धारण करने वाले तिर्यग्लोकका आयाम एक राजू है । ७ राजूका उत्तरोत्तर तीन बार अर्ध-अर्ध करनेपर एक राजू प्राप्त होता है अतः जगच्छेणीके उपर्युक्त अर्धच्छेदोंमेंसे ये ३ अर्धच्छेद घटा देनेपर एक रज्जुके अर्धच्छेदोंका प्रमाण इसप्रकार प्राप्त होता है—

$$\left\{ \frac{\text{पल्यक अर्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}} \times (\text{पल्यके अर्धच्छेद})^२ \times ३ \right\} - ३ :$$

द्वीप-समुद्रोंकी संख्याका प्रमाण—

एक राजूके उपर्युक्त अर्धच्छेदोंके प्रमाणमेंसे अम्बुद्वीपके अर्धच्छेद (अर्थात् संख्यात अधिक पल्यके अर्धच्छेदोंका वर्ग) कम कर देनेपर द्वीप-समुद्रोंकी संख्या प्राप्त हो जाती है । यथा—

$$\left(\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}} \times \text{प० छे०}^२ \times ३ - ३ \right) - \text{संख्यात (अर्थात् ६) अधिक प० छे०}^२ = \text{द्वीप और सागरोंका प्रमाण—}$$

गच्छका प्रमाण—

उपर्युक्त संख्यावाले द्वीप-समुद्रोंमें ज्योतिष्कोंका विन्यास ज्ञातकर उन ज्योतिषी देवोंकी संख्या प्राप्त की जाती है, इसलिए जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंमें ६ अर्धच्छेद मिलानेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे रज्जुके अर्धच्छेदोंमेंसे घटा देनेपर जो शेष रहता है वही प्रमाण ज्योतिषी-विम्बोंकी संख्या निकालने हेतु गच्छका प्रमाण कहलाता है ।

तृतीय समुद्रको आदि लेकर स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त गच्छ-प्रमाण—

एत्तो चंवाण सपरिवाराणमाणयण - विहाणं वत्तइस्साभो । तं जहा—जंबू-दीवादि-पंच-दीव-समुद्रं सोत्तूण तदिय-समुद्रादि काट्ठण जाव—सयंभूरमण-समुद्रो त्ति एवाण-माणयण किरियं ताव उच्चयदे—तदिय-समुद्रम्मि गच्छो वत्तीस, चउत्थ-दीवे गच्छो चउसट्ठी, उवरिम-समुद्रे गच्छो अट्ठावीसुत्तर-सयं । एवं कुण्ण-कुण्ण-कमेण गच्छा गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्रो त्ति ।

अर्थ—यहाँसे आगे चन्द्रोंको सपरिवार लानेका विधान कहता हूँ । वह इसप्रकार है—जम्बूद्वीपादिक पाँच द्वीप-समुद्रोंको छोड़कर तीसरे समुद्रको आदि करके स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त इनके लानेकी प्रक्रिया कहते हैं—तृतीय समुद्रमें बत्तीस गच्छ, चतुर्थ द्वीपमें चौसठ गच्छ, और इससे आगेके समुद्रमें एकसी अट्ठाईस गच्छ, इसप्रकार स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त गच्छ दूने-दूने क्रमसे चले जाते हैं ।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपादि तीन द्वीप और लवणसमुद्रादि दो समुद्र इन पाँच द्वीप-समुद्रोंके चन्द्र प्रमाणका निरूपण किया जा चुका है अतः इनको छोड़कर शेष द्वीप-समुद्रोंका गच्छ इसप्रकार है—

क्रमांक	समुद्र एवं द्वीप	गच्छ प्रमाण
३ रा	पुष्करवर समुद्र	३२
४ था	वारुणिवर द्वीप	६४
५ वाँ	वारुणिवर समुद्र	१२८
६ ठा	क्षीरवर द्वीप	२५६
७ वाँ	क्षीरवर समुद्र	५१२

तदनुसार गच्छकी संख्या दूने-दूने क्रमसे स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त वृद्धिगत होती जाती है ।

तृतीय समुद्रसे अन्तिम समुद्र पर्यन्तकी गुण्यमान राशियाँ—

संपहि एवेहि गच्छेहि पुध-पुध गुणिज्जमाण-रासि-परुवणा कीरदे—तदिय-समुद्दे वे-सयमट्ठासीदि-उवरिम-दीवे तत्तो दुगुणं, एवं दुगुण-दुगुण-कमेण गुणिज्जमाण-रासीओ गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं पत्ताओ त्ति । संपहि अट्ठासीदि-विसवेहि^१ गुणिज्जमाण-रासीओ ओवट्ठिय^२ लद्धेण सग-सग-गच्छे गुणिय अट्ठासीदि-वे-सवमेव सव-गच्छाणं गुणिज्जमाणं कावच्चं । एवं कवे सव-गच्छा अण्णोण्णं पेक्खिदूण चउगुण-कमेण आवट्ठी जावा । संपह चत्तारि-रुवमादि कादूण^३ चदुरसर-कमेण गव-संकलणाए आणयणे कीरमाणे पुब्बिल्ल-गच्छेहितो संपहिय-गच्छा रुऊणा होति, दुगुण-जाव-ट्ठाणे चत्तारि-रुव-

बड़ोए अभावावो । एदेहि गच्छेहि गुणिज्जमाण-मज्झिम-घणाणि चउसट्ठि — रुयमारि
कादूण दुगुण-दुगुण-कसेण गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुदो ति ।

अर्थ—अब इन गच्छोंसे पृथक्-पृथक् गुण्यमान राशियोंकी प्ररूपणा की जाती है । इनमेंसे तृतीय समुद्रमें दो सौ अठासी और आगेके द्वीपमें इससे दुगुनी गुण्यमान राशि है, इसप्रकार स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त गुण्यमान राशियाँ दुगुने-दुगुने क्रमसे चली जाती हैं । अब दो सौ अठासीसे गुण्यमान राशियोंका अपवर्तन करके लब्ध राशिसे अपने-अपने गच्छोंको गुणा करके सब गच्छोंकी दो सौ अठासी ही गुण्यमान राशि करना चाहिए । इसप्रकार करनेपर सब गच्छ परस्परकी अपेक्षा चौगुने क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं । इस समय चारको आदि करके चार-चार उत्तर क्रमसे गत संकलनाके लाते समय पूर्वोक्त गच्छोंसे सांप्रतिक गच्छ एक कम होते हैं, क्योंकि दुगुने हुए स्थानमें चार रूपोंकी वृद्धिका अभाव है । इन गच्छोंसे गुण्यमान मध्यम धन चौसठ रूपको आदि करके स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त दुगुने-दुगुने होते गये हैं ।

विशेषार्थ—पद या स्थानको गच्छ कहते हैं । जिस द्वीप या समुद्रमें चन्द्र-सूर्यके जितने बलय होते हैं, वही उनकी गच्छ-राशि होती है । आदि, मुख या प्रभव ये एकार्थ बाचो हैं । यही मुख (प्रत्येक द्वीप या समुद्रके प्रथम बलयके चन्द्र प्रमाण) को ही गुण्यमान राशि कहा गया है । जैसे तृतीय (पुष्करवर) समुद्रमें ३२ बलय हैं अतः वहाँका गच्छ ३२ है । इस समुद्रके प्रथम बलयमें २८८ चन्द्र हैं अतः यही गुण्यमान राशि २८८ है । इसीप्रकार चतुर्थ द्वीपमें बलय ६४ और प्रथमबलयमें चन्द्र प्रमाण ५७६ है अतः वहाँका गच्छ ६४ और गुण्यमान राशि ५७६ है । तृतीय समुद्रके गच्छ और गुण्यमान राशिसे चतुर्थ द्वीपकी गच्छ राशि एवं गुण्यमान राशिका प्रमाण दूना है । यही क्रम अन्तिम समुद्र पर्यन्त जानना चाहिए ।

अब आचार्य सभी गच्छोंको परस्परकी अपेक्षासे चतुर्गुण क्रमसे स्थापित करना चाहते हैं । इसके लिए सभी गुण्यमान राशियोंको २८८ से ही अपवर्तित कर जो लब्ध प्राप्त हो उससे अपने-अपने गच्छोंको गुणित करने पर सब गच्छ परस्परकी अपेक्षा चौगुने क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं । जैसे चतुर्थ द्वीपकी गुण्यमान राशि ५७६ है । इसे २८८ से अपवर्तित करनेपर $(\frac{576}{288}) = 2$ लब्ध प्राप्त हुआ । इससे इसी द्वीपके गच्छको गुणित करनेपर $(64 \times 2) = 128$ प्राप्त हुए जो तृतीय समुद्रके गच्छसे चौगुना $(32 \times 4 = 128)$ है ।

इसीप्रकार अन्त-पर्यन्त जानना चाहिए । यथा—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्र०	समुद्र एवं द्वीप	गुण्यमानराशि ÷ भाजक- राशि =	लब्ध	लब्धराशि × गच्छ =	परस्परमें चौगुना गच्छ
३ रा	पुष्करवर स०	$२८८ ÷ २८८ =$	१	$१ × ३२ =$	३२
४ था	वारुणिवर-द्वीप	$५७६ ÷ २८८ =$	२	$२ × ६४ =$	१२८
५ वाँ	वारुणि० समुद्र	$११५२ ÷ २८८ =$	४	$४ × १२८ =$	५१२
६ ठा	क्षीरवर द्वीप	$२३०४ ÷ २८८ =$	८	$८ × २५६ =$	२०४८
७ वाँ	क्षीरवर समुद्र	$४६०८ ÷ २८८ =$	१६	$१६ × ५१२ =$	८१९२

पदोंमें होनेवाली समान वृद्धि या हानिको प्रचय कहते हैं। यथा—तृतीय समुद्रमें ३२ बलय हैं और उसके प्रथम बलयमें २८८ चंद्र हैं। चय वृद्धि द्वारा दूसरे बलयमें २९२, तीसरे में २९६ इत्यादि, वृद्धि होते-होते अन्तिम बलयमें चन्द्र संख्या ५७२ प्राप्त होगी और चतुर्थ द्वीपके प्रथम बलयमें यह संख्या (२८८ की दूनी) ५७६ हो जायगी। किन्तु इससमय यहाँ गच्छ ३२ न होकर ३१ ही होगा। क्योंकि दुगुने हुए स्थानमें प्रचय वृद्धिका अभाव है।

मध्यमघन—संकलन सम्बन्धी गच्छकी मध्य संख्यापर वृद्धिका जो प्रमाण आता है वह मध्यमघन कहलाता है। गच्छोंके उत्तरोत्तर दुगुने रूपसे बढ़ते जानेपर यह मध्यमघन भी द्विगुणित होता जाता है। यथा—

तृतीय समुद्रका गच्छ ३२ होनेसे उसका मध्यमघन सोलहवें स्थान (पद) पर रहता है क्योंकि प्रथममें कोई वृद्धि नहीं है, अतएव ३१ पद बचते हैं। इनमें १६ वाँ मध्य पद हो जानेसे उसकी वृद्धि ($१६ × ४$) = ६४ होती है। जिसकी सारणी इसप्रकार है—

[सारणी अगले पृष्ठ पर देखिए]

गच्छ पद संख्या	—	गच्छका मान	पद संख्या	—	मान
१		४	१७		६८
२		८	१८		७२
३		१२	१९		७६
४		१६	२०		८०
५		२०	२१		८४
६		२४	२२		८८
७		२८	२३		९२
८		३२	२४		९६
९		३६	२५		१००
१०		४०	२६		१०४
११		४४	२७		१०८
१२		४८	२८		११२
१३		५२	२९		११६
१४		५६	३०		१२०
१५		६०	३१		१२४

१६

६४

मध्यमघन—१६ वें पदपर वृद्धिका प्रमाण

उपयुक्त जदाहरणसे स्पष्ट है कि तृतीय समुद्रमें गच्छ ३२ होनेपर मध्यम घन ६४ होता है । चतुर्थ द्वीपमें गच्छ ६४ है अतः वहाँ ३२ वें पद पर मध्यमघन स्वरूप यह वृद्धिका प्रमाण १२८ होता है । यह १२८ मध्यमघन, पूर्ववर्ती ६४ मध्यम घनसे दुगुना है । इसीप्रकार परवर्ती प्रत्येक समुद्र-द्वीपादिके मध्यमघन उत्तरोत्तर द्विगुणित प्रमाणसे वृद्धिगत होते जाते हैं ।

ऋणराशि—

पुणो गच्छ-समीकरणद्वं सव्व-गच्छेसु एगेग - रुव - पक्खेवो^१ कायव्वो । एवं कादूण चउसद्धि-रुवेहि मज्झिम-यणाणिमोवट्टिय^२ लद्धेण सग-सग-गच्छे गुणिय सव्व-गच्छाणि चउसद्धि-रुवाणि गुणिउजमाणत्तणेण ठवेदव्वारिण । एवं कवे सव्व-गच्छा संपहि

रिण-रासिस्स पमाणं उच्चहु—एग-रुवमादि कावूण गच्छं पडि दुगुण-दुगुण-कमेण जाव सयंभूरमणसमुदो ति गद-रिण-रासि होदि ।

अर्थ—पुनः गच्छोंके समीकरणके लिए सब गच्छोंमें एक-एक रूपका प्रक्षेप करना चाहिए । ऐसा करनेके पश्चात् मध्यमधनोंका चौसठसे अवर्तन करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उससे अपने-अपने गच्छोंको गुणा करके सब गच्छोंकी गुण्यमान राशिके रूपमें चौसठ रूपोंको रखना चाहिए । ऐसा करनेपर अब सर्व गच्छोंकी ऋण-राशिका प्रमाण कहता हूँ—

एक रूपको आदि करके गच्छके प्रति (प्रत्येक गच्छमें) दूने-दूने कमसे स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त ऋण राशि गई है ।

विशेषार्थ— समीकरण—समीकरणका तात्पर्य है दो या दो से अधिक राशियोंमें सम्बन्ध दर्शानेवाला पद अथवा सूत्र—

यहाँ गच्छोंके समीकरणके लिए सब गच्छोंमें एक-एक रूपका प्रक्षेप करना है । उसका अर्थ इसप्रकार है—पुष्करार्ध द्वीपके प्रथम वलयमें १४४ चन्द्र हैं और इससे दूने (१४४×२) चन्द्र तृतीय समुद्रके प्रथम वलयमें, इससे दूने ($१४४ \times २ \times २$) चन्द्र चतुर्थद्वीपके प्रथम वलयमें हैं ।

विवक्षित द्वीप-समुद्रके प्रथम वलयकी चन्द्र संख्या प्राप्त करनेके लिए विवक्षित द्वीप-समुद्रकी संख्याका मान 'क' मान लिया गया है अतः इसका सूत्र इसप्रकार होगा—

$$\text{विवक्षित द्वीप-समुद्रके प्रथम वलयकी चन्द्र संख्या} = १४४ \times २ \text{ (क-२)}$$

$$\text{यथा—१० वीं द्वीप विवक्षित है—क=१०}$$

$$\begin{aligned} \text{१० वें द्वीपके प्रथम वलयमें चन्द्र संख्या} &= १४४ \times २ \text{ (१० - २)} \\ &= १४४ \times २^८ \end{aligned}$$

गच्छ, प्रचय एवं आदिधन आदिके लक्षण—

गच्छ—श्रेणीके पदोंकी संख्याको अथवा जितने स्थानोंमें अधिक-अधिक होता जाय उन सब स्थानोंको पद या गच्छ कहते हैं । जैसे—तृतीय समुद्रकी गच्छ संख्या ३२ है ।

प्रचय—श्रेणीके अनुगामी पदोंमें होनेवाली वृद्धि या हानिको अथवा प्रत्येक स्थानमें जितना-जितना अधिक होता है उस अधिकके प्रमाणको प्रचय कहते हैं । जैसे—तृतीय समुद्रके प्रत्येक वलयमें ४-४ की वृद्धि हुई है ।

आदिधन—वृद्धिके प्रमाणके बिना आदि स्थानके प्रमाणके सदृश जो धन सर्व स्थानमें होता है, उसके जोड़को आदिधन कहते हैं। जैसे—तृतीय समुद्रके प्रत्येक बलयमें वृद्धिके बिना चन्द्रोंकी संख्या २८८ है, अतः $(२८८ \times ३२) = ९२१६$ आदिधन है।

उत्तरधन—आदि धनके बिना सर्व स्थानोंमें वृद्धिका जो प्रमाण है, उसके योगको उत्तरधन कहते हैं। जैसे—तृतीयसमुद्रका उत्तरधन $(३१ \times ६४) = १९४८$ है।

सर्वधन—आदिधन और उत्तरके योगको सर्वधन या उभयधन कहते हैं। जैसे— $९२१६ + १९४८ = ११२००$ है।

ऋणराशि—तृतीय समुद्रकी ऋणराशि ६४ मानी गई है। यहाँके उत्तर धन (१९४८) में यदि ६४ जोड़ दिए जाएँ और ६४ ही घटा दिये जाएँ तो उत्तर धन ज्योंका त्यों रहेगा। किन्तु ऋणराशि बना लेनेसे आगामी द्वीप-समुद्रोंके चन्द्रोंका प्रमाण प्राप्त करनेमें सुविधा हो जायगी। यह ऋणराशि भी उत्तरोत्तर दुगुनी-दुगुनी होती जाती है।

प्रत्येक द्वीप-समुद्रके सर्व चन्द्र-बिम्बोंका प्रमाण निकालनेके लिये सूत्र—

सर्वधन = आदिधन + उत्तरधन

$(\text{मुख} \times \text{गच्छ}) + (\frac{\text{गच्छ}-१}{२}) \times \text{चय} \times \text{गच्छ} ।$

बाह्य पुष्करार्धद्वीपके आदि बलयमें १४४ चन्द्र हैं और उससे दुगुने (१४४×२) चन्द्र पुष्करद्वय नामक तृतीय समुद्रके आदि बलयमें हैं। इस समुद्रका व्यास ३२ लाख योजन है अतः इसमें ३२ बलय (गच्छ) हैं। प्रत्येक बलयमें चार-चार चन्द्र-बिम्बोंकी वृद्धि होती है। इसप्रकार मुख १४४×२ और गच्छ ३२ का परस्पर गुणा करनेसे तृतीय समुद्रके ३२ बलयोंका आदिधन $(१४४ \times २ \times ३२)$ या $(१४४ \times ६४) = ९२१६$ प्राप्त होता है।

एक कम गच्छ $(३२ - १ = ३१)$ का आधा कर $(\frac{३१}{२})$ चयके प्रमाण (४) से गुणित करे, जो $(\frac{३१}{२} \times ४ = ३१ \times २)$ प्राप्त हो उसका गच्छ (३२) से गुणा करनेपर $(३१ \times २ \times ३२ = ३१ \times ६४)$ उत्तरधन प्राप्त हो जाता है। यदि उत्तरधन (३१×६४) में ६४ जोड़ दिये जायें और ६४ ही घटा दिए जायें तो उत्तरधन ज्यों का त्यों रहेगा, किन्तु आगामी द्वीप-समुद्रोंके चन्द्रोंका प्रमाण प्राप्त करनेमें सुविधा हो जायगी।

$३१ \times ६४ + १ \times ६४ = ६४$ या $३२ \times ६४ = ६४$ यह उत्तरधनका प्रमाण है। इसे आदिधन (१४४×६४) में जोड़ देनेसे तृतीय समुद्रके उभय या सर्वधनका प्रमाण $१४४ \times ६४ + ३२ \times ६४ = (६४)$ अथवा $१७६ \times ६४ = (६४)$ अथवा ११२०० होता है। अर्थात् तृतीय समुद्रमें कुल चन्द्र ११२०० हैं। इसीप्रकार बारुणीवर नामक चतुर्थद्वीपके—

आदिधन $१४४ \times ६४ \times ४ +$ उत्तरधन ($३२ \times ६४ \times ४$ ऋण ६४×२) को जोड़नेसे $१७६ \times ६४ \times ४$ ऋण ६४×२ होता है; जो पुष्करवर समुद्रके धन १७६×६४ से चौगुना और ऋण ६४ से दुगुना है।

इसीप्रकार आगे-आगे प्रत्येक द्वीप-समुद्रमें धनराशि चौगुनी और ऋणराशि दुगुनी होती गई है।

गच्छ प्राप्त करनेके लिए परम्परा-सूत्रका औचित्य—

संपहि एवं रासीणं ठिद-संकलणमाणयण उच्चदे-छ-रूवाहिय-जंबूदीयं छेदणएहि परिहीण-रज्जुं छेदणाओ गच्छं कादूण जदि संकलणा आणिज्जदि तो जोदि-सिय-जीव-रासी ण उत्पज्जदि, जगपदरस्स वे-छप्पणंगुल-सद-वग्गभाग-हाराणुववत्तीदो । तेण रज्जुं छेदणासु अण्णोसि पि तप्पाओग्गाणं संसेज्ज - रूवाणं हारिण काऊण गच्छा ठवेयथा । एवं कदे तदिथ - समुदो आदी ण होवि ति णासंकणिज्जं; सो वेव आदी होदि, सयंभूरमणसमुदस्स परभाग - समुज्जग्ग - रज्जु - छेदणथ - सलागाणमाणयण-कारणादो ।

अर्थ—अब इसप्रकार अवस्थित राशिके संकलन निकालनेका प्रकार कहते हैं—यह रूप अधिक जम्बूद्वीपक अर्धच्छेदोंसे परिहीन राजूके अर्धच्छेदोंको गच्छ राशि बनाकर यदि संकलन राशि निकाली जाती है तो ज्योतिष्क-जीवराशि उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि (ऐसा करनेपर) जगत्प्रतरका दो सौ छप्पन अंगुलों (सूच्यांगुलों) के वर्ग-प्रमाण भागहार उत्पन्न नहीं होता है। अतएव राजूके अर्धच्छेदोंमेंसे तत् प्रायोग्य अन्य भी संख्यात रूपोंकी हानि (कमी) करके गच्छ स्थापित करना चाहिए।

ऐसा करनेपर तृतीय समुद्र आदि नहीं होता है, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह तृतीय-समुद्र ही आदि होता है। इसका कारण स्वयंभूरमण-समुद्रके परभागमें उत्पन्न होनेवाली राजूकी अर्धच्छेद-शलाकाओंका आना है।

सयंभूरमणसमुदस्स परवो रज्जुच्छेदणया अत्थि सि कुवो णव्वदे ? वे-छप्पणंगुल-सद-वग्ग-सुत्तादो ।

अर्थ—(शंका)—स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें राजूके अर्धच्छेद होते हैं, यह कैसे जाना ?

(समाधान) :—ज्योतिषीदेवोंका प्रमाण निकालनेके लिए दो सौ छप्पन सूच्यांगुल के वर्गप्रमाण जगत्प्रतरका भागहार बतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है।

‘जत्तियाणि दीव - सायर - रुखाणि जंबूद्वीव - च्छेदणाणि छ - रुखाहियाणि तत्तियाणि रज्जु-च्छेदणाणि’ त्ति परियम्मणेण एवं वक्खाणं किं ण विरुज्झदे ? एदेण सह विरुज्झवे, किंतु सुत्तेण सह एण विरुज्झदि । तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायत्वं, ण परियम्मसुत्तस्स; सुत्त-विरुद्धत्तादो । ण सुत्त-विरुद्धं वक्खाणं होदि, अविप्पसंगादो । तत्थ जोइसिया णत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? एवम्हादो चेव सुत्तादो ।

अर्थ—शंका—‘जितनी द्वीप और समुद्रोंकी संख्या है, तथा जितने जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद होते हैं, छह अधिक उतने ही राजूके अर्धच्छेद होते हैं’ इसप्रकारके परिकर्म-सूत्रके साथ यह व्याख्यान क्यों न विरोधको प्राप्त होगा ?

समाधान—यह व्याख्यान परिकर्मसूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होगा, किंतु (प्रस्तुत) सूत्रके साथ तो विरोधको प्राप्त नहीं होता है । इसलिए इस व्याख्यानको ग्रहण करना चाहिए, परिकर्मके सूत्रको नहीं । क्योंकि वह सूत्रके विरुद्ध है, और जो सूत्र-विरुद्ध हो, वह व्याख्यान नहीं माना जा सकता है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त होता है ।

शंका—तही (स्वयंभूरमणसपुत्रके वरभागमें) ज्योतिषी देव नहीं है, यह कैसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

एसा तप्पाओग्ग-संखेज्ज-रुखाहिय ‘जंबूद्वीव-च्छेदणय-सहिद-दीव-सायर-रुखमेस-रज्जुच्छेद-पमाण-परिक्खा-विही’ ण अण्णाहरिय’ - उव्वेस - परंपराणुसारिणी, केवलं तु तिलोयपण्णत्ति-सुत्ताणुसारिणी’, जोविसियदेव-भागहार-पदुप्पाइय-सुत्तावलंबि-जुत्ति-बलेण पयव-गच्छ-साहणदुमेसा परूवणा परूविदा । तदो एण एत्थ ‘इवमित्थमेवेत्ति एयंत-परिग्गहेण’ असग्गहो कायव्वो, परमगुरु-परंपरागओवएसस्स जुत्ति - बलेण ‘विह्वावेदुम-सविकयत्तादो, अविदिएसु पदत्थेसु छदुमत्थ-वियप्पाणमविसंवाद-णियमाभावादो । ‘तम्हा पुव्वाहरिय-वक्खाणापरिच्चाएण’ एसा वि दिसा’^१ हेदु-वावाणुसारि-उप्पण-सिस्साणु-रोहेण अउप्पण-जण-उप्पायणद्वं च वरिसेवव्वा । तदो ण एत्थ ‘संपदाय - विरोहासंका कायव्वा त्ति ।

१. द. व. दीवतोदणय । २. द. व. क. वीही । ३. द. व. क. अण्णाहरियाववदेसपरंपराणुसारिणे । ४. द. व. सुत्ताणुसारि । ५. द. व. क. ज. इदमेत्थमेवेत्ति । ६. द. व. क. ज. परिग्गहो ण । ७. द. व. क. ज. विह्वावेदु । ८. द. व. क. तहा । ९. द. व. क. ज. वक्खाणपरिच्चाएण । १०. द. क. ज. विधीसा । ११. द. व. क. ज. संपदाए विरोधो ।

अर्थ—तत्प्रायोग्य संख्यात रूपाधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदों सहित द्वीप-सागरोंकी संख्या प्रमाण राजू सम्बन्धी अर्धच्छेदोंके प्रमाणकी परीक्षा-विधि अन्य आचार्योंके उपदेशकी परम्पराका अनुसरण करनेवाली नहीं है। यह तो केवल त्रिलोकप्रज्ञप्तिके सूत्रका अनुसरण करनेवाली है। ज्योतिषी देवोंके भागहारका प्रत्युत्पादन (उत्पन्न) करनेवाले सूत्रका आलम्बन करनेवाली युक्तिके बलसे प्रकृत-गच्छको सिद्ध करनेके लिए यह प्ररूपणा की गई है। अतएव यहाँ 'यह ऐसा ही है' इस-प्रकारके एकान्तको ग्रहण करके कदाग्रह नहीं करना चाहिए। क्योंकि परमगुरुओंकी परम्परासे आये हुए उपदेशको इसप्रकार युक्तिके बलसे विधटित करना अशक्य है। इसके अतिरिक्त अतीन्द्रिय पदार्थोंके विषयमें अल्पज्ञोंके द्वारा किय गये विकल्पोंके अविसंवादी होनेका नियम भी नहीं है। इसलिए पूर्वाचार्योंके व्याख्यानका परित्याग न कर हेतुवाद (तर्कवाद) का अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अव्युत्पन्न शिष्य-जनोंके व्युत्पादनके लिए इस दिशाका दिखाना योग्य ही है, अतएव यहाँ पर सम्प्रदायके विरोधकी आशंका नहीं करनी चाहिए।

विशेषार्थ—ज्योतिषी देवोंकी संख्या निकालनेके लिए द्वीप-सागरोंकी संख्या निकालना आवश्यक है। परिकर्मके सूत्रानुसार द्वीप-समुद्रोंकी संख्या उतनी है जितने छह अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद कम राजूके अर्धच्छेद होत हैं। (मेरु एवं जम्बूद्वीपादि पाँच द्वीप-समुद्रोंमें जो राजूके अर्धच्छेद पड़ते हैं वे यहाँ सम्मिलित नहीं किये गये हैं, क्योंकि इन द्वीप-समुद्रोंकी चन्द्र संख्या पूर्वमें कही जा चुकी है)। किन्तु तिलोयपण्णत्तीके सूत्रकारका कहना है कि (२५६)^२ के भागहारसे ज्योतिषी देवोंका जो प्रमाण प्राप्त होता है यदि वही प्रमाण दृष्ट है तो राजूके अर्धच्छेदोंमेंसे जम्बू-द्वीपके अर्धच्छेदोंके अतिरिक्त छह ही नहीं किन्तु छहसे अधिक संख्यात अंक और कम करना चाहिए। इतना कम करनेके बाद ही द्वीप-सागरोंकी वह संख्या प्राप्त हो सकेगी जिसके द्वारा ज्योतिषी देवोंका प्रमाण (२५६)^२ भागहारके बराबर होगा।

छह अर्धच्छेदोंके अतिरिक्त संख्यात अंक और कम करनेका कारण यह दर्शाया गया है कि स्वयंभूरमणसमुद्रकी बाह्य वेदीके आगे भी पृथिवीका अस्तित्व है; वहाँ राजूके अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु वहाँ ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं।

इसप्रकार युक्तिबलसे सिद्ध कर देनेके पश्चात् भी ग्रन्थकारकी परम निरपेक्षता एवं पूर्ववर्ती आचार्योंके प्रति दृढ़ श्रद्धा दर्शनीय है। वे लिखते हैं कि—'यह ऐसा ही है' इसप्रकार एकान्त हठ पकड़कर यह दिशा भी दिखानी चाहिए।

एकेण विहाणेण परुषिद-गच्छं विरलिय रुवं पडि चत्तारि रुवाणि दावूण
अण्णोण्णढभत्थे^१ कदे कित्तिया जादा इदि युत्ते संखेज्ज-रुव-गुणिय^२- जोधण - लक्खस्स

वर्गं पुणो सत्ता-रुवस्स कविण्ण गुणिय चउसट्ठि-रुव-वग्गेहि पुणो वि गुणिय जगपदरे भागे
हिदे तत्थ लद्धमेत्तां होवि । ७ । ७ । ६४ । ६४ । १०° । ७ ।

अर्थ—इस उपर्युक्त विधानके अनुसार पूर्वोक्त गच्छका विरलन कर एक-एक रूपके प्रति चार-चार रूपोंको देकर परस्पर गुणा करनेपर कितने हुए ? इसप्रकार पूछनेपर एक लाख योजनके वर्गको संख्यात-रूपोंसे गुणित करके पुनः सात रूपोंकी कृति से गुणा करके पुनरपि चौंसठ रूपोंके वर्गसे गुणा करके जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो, तत्प्रमाण होते हैं ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त विधानानुसार स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्तके सभी द्वीप-समुद्रोंमें स्थित बलयोंके चन्द्र-बिम्बोंकी राशि प्राप्त करने हेतु धन-राशि तथा ऋणराशि अलग-अलग स्थापितकी जाती है और राजूके अर्धच्छेदोंकी सहायतासे प्राप्त राजनूत-मण्डुद्र पर्यन्तकी समस्त बलय-संख्या गच्छ रूपमें स्थापित की जाती है ।

यहाँ सर्व प्रथम धन रूप राशि प्राप्त करना है । इसके लिए तीन संकलन आवश्यक हैं । जो इसप्रकार हैं—(१) आदि १७६ × ६४ (२) गुणकार प्रचय ४ और (३) गच्छ । यहाँ गच्छका प्रमाण (१ राजूके अर्धच्छेद)—(६ अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद) हैं । अथवा—(जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेद)—(३)—(६)—(जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद) हैं । इस गच्छमेंसे ऋण राशि (—३—६—जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद) को अलग स्थापित कर देनेपर गच्छ जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेद प्रमाण रह जाता है ।

‘सठव-गच्छा अण्णोणं वेक्खिदूण चउग्गुण-कमेण अथद्विदा’ अर्थात् सठ गच्छ परस्परकी अपेक्षा चौगुने क्रमसे अवस्थित हैं । पूर्व कथित इस नियमके अनुसार गुणकार ४ अर्थात् २ × २ है ।

यहाँ धनरूप जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेद गच्छ है । इसका विरलनकर प्रत्येक एक-एकके प्रति २ को देय देकर परस्पर गुणा करनेपर जगच्छ्रेणी प्राप्त होती है और इन्हीं जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेदों का विरलनकर प्रत्येकके प्रति ४ अर्थात् २ × २ देय देकर परस्पर गुणित करनेपर जगत्प्रतर प्राप्त होता है । यह राशि घनात्मक होनेसे अंश रूप रहेगी ।

अब यहाँ पृथक् स्थापित ऋणरूप गच्छका विश्लेषण किया जाता है—

—(३)—(६) और जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद रूपसे ऋण राशियाँ तीन हैं । इनमेंसे सर्वप्रथम जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद कहते हैं—

जम्बूद्वीप १ लाख योजन विस्तारवाला है । इस एकलाखको उत्तरोत्तर अर्ध-अर्ध करनेपर १७ अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं और एक योजन शेष रहता है ।

इन १७ अर्धच्छेदोंका विरलन कर प्रत्येक पर २ × २ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे १ लाख × १ लाख प्राप्त होते हैं । अवशेष रहे एक योजनके ७६८००० अंगुल होते हैं । इन्हें उत्तरोत्तर अर्ध-अर्ध करनेपर १९ अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं और १ अंगुल शेष रहता है । इन १९ अर्धच्छेदोंका विरलनकर प्रत्येक अंक पर २ × २ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे ७६८००० × ७६८००० होते हैं । शेष एक अंगुलके अर्धच्छेद प्रमाण २ × २ को परस्पर गुणित करनेपर अंगुल × अंगुल अर्थात् प्रतरांगुल प्राप्त होता है । इसप्रकार ऋणात्मक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदों की राशिका प्रमाण १ लाख × १ लाख × ७६८००० × ७६८००० × प्रतरांगुल है ।

६ के अर्धच्छेद—जम्बूद्वीपादि पाँच द्वीप और समुद्रोंके पाँच और एक मेरु पर्वत का । इसप्रकार ये ६ अर्धच्छेद अनुपयोगी होनेसे घटा दिये गये हैं । इन ६ का विरलन कर प्रत्येकके प्रति २ × २ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे ६४ × ६४ प्राप्त होते हैं ।

—३ के अर्धच्छेद—जगच्छ्रेणी ७ राजू प्रमाण है । इन ७ राजुओंका उत्तरोत्तर अर्ध-अर्ध करनेपर ३ अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं । इन ३ अर्धच्छेदोंका विरलनकर प्रत्येकके प्रति २ × २ देय देकर आपसमें गुणा करनेसे ७ × ७ प्राप्त होते हैं ।

इसप्रकार ऋणराशिका संकलित प्रमाण—

१ लाख × १ लाख × ७६८००० × ७६८००० × प्रतरांगुल × ६४ × ६४ × ७ × ७ है । यह राशि ऋणात्मक होनेसे भागहार रूप रहेगी पूर्वोक्त अंश रूप जगत्प्रतरमें भागहार रूप इस राशिका भाग देनेपर लब्ध इसप्रकार प्राप्त होता है—

जगत्प्रतर

१ लाख × १ लाख × ७६८००० × ७६८००० × प्रत० × ६४ × ६४ × ७ × ७

उपर्युक्त गद्यमें आचार्यश्री ने यही कहा है कि—गच्छका विरलनकर प्रत्येक रूप पर ४-४ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे १ लाख योजनके वर्ग (१ ला० × १ ला०) को संख्यात रूपों (७६८००० × ७६८००० × प्रतरांगुल) से गुणित करनेपर पुनः सात रूपोंकी कृति (७ × ७) से गुणा करके पुनरपि चौंसठ रूपोंके वर्ग (६४ × ६४) से गुणाकर जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे तत्प्रमाण है ।

मूलमें जो संदृष्टि दी गई है, उसका अर्थ इसप्रकार है—

= जगत्प्रतर, ७। ७ का अर्थ है ७ × ७। आगे ६४ × ६४। १०° का अर्थ है १००००० × १००००० और ७ का अर्थ संख्यात है।

पुणो एवं कुट्टाणे ठविय एक्क-रासि बे-सय-अट्टासीदि-रुवेहि गुणिदे सव्व-आदि-धन-पमाणं होदि । २८८ । ७ । ७ । ६४ । ६४ । १०° । ७ । अवर-रासि चउसट्ठि-रुवेहि गुणिदे सव्व-पच्चय-धनं होवि । ६४ । ७ । ७ । ६४ । ६४ । १०° । ७ । एदे दो रासीओ मेलिय^१ रिण-रासिमवणिय गुणगार^२-भागहार-रुवाणिमोवट्ठाविय-भागहार-भूद-संखेज्ज-रुव-गुणिद-जोयण-लक्ख-वगं पवरंगुले कवे संखेज्ज - रुवेहि गुणिद - पण्णट्ठि-सहस्स पंच-सय-छत्तीस-रुवमेत्त-पवरंगुलेहि जगपवरमवहरिदमेत्तं सव्व-जोइसिय-बिब-पमाणं होदि । तं चेदं— ६५५३६ । ७ ।

पुणो एक्कम्मि बिबम्मि तप्पाउग्ग-संखेज्ज-जीवा अत्थि त्ति तं संखेज्ज-रुवेहि गुणिदेसि सव्व-जोइसिय-जीव-रासि-परिमाणं होदि । तं चेदं— ६५५३६ ।

अर्थ—पुनः इसे दो स्थानोंमें रखकर एक राशिको दो सौ अठासी से गुणा करनेपर सब आदि-धन होता है; और इतर-राशिको चौसठ रूपोंसे गुणा करनेपर सर्व प्रचय-धनका प्रमाण होता है। इन दो राशियोंको मिलाकर ऋण-राशिको कम करते हुए गुणकार एवं भागहार रूपोंको अपवर्तित करके भागहार-भूत संख्यात-रूपोंसे गुणित एक लाख योजनके वर्गके प्रतरांगुल करनेपर संख्यातरूपोंसे गुणित पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस रूपमात्र प्रतरांगुलोंसे भाजित जगत्प्रतर-प्रमाण सब ज्योतिषी बिम्बोंका प्रमाण होता है। वह यह है— ६५५३६ । ७ ।

पुनः एक बिम्बमें तत्प्रायोग्य संख्यात जीव विद्यमान रहते हैं, इसलिए उसे संख्यात-रूपोंसे गुणा करनेपर सर्व ज्योतिषी जीव-राशिका प्रमाण होता है। वह यह है— ६५५३६ ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त मन्त्रमें प्राप्त राशिको दो स्थानों पर स्थापित कर पृथक्-पृथक् २८८ और ६४ से गुणित कर प्राप्त हुए आदिधन और प्रचयधन को सम्मिलित करने के लिए कहा गया है। जो इसप्रकार है :—

$$\text{प्राप्त राशि} = \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १ \text{ लाख} \times १ \text{ लाख} \times \text{संख्यात} \times ६४ \times ६४ \times ७ \times ७}$$

$$\text{आदिधन} = \frac{२८८ \text{ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १ \text{ लाख} \times १ \text{ लाख} \times \text{संख्यात} \times ६४ \times ६४ \times ७ \times ७}$$

$$\text{प्रचयधन} = \frac{६४ \text{ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १ \text{ ला०} \times १ \text{ ला०} \times \text{संख्यात} \times ६४ \times ६४ \times ७ \times ७}$$

$$\left[\frac{२८८ \text{ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १ \text{ ला०} \times १ \text{ ला०} \times \text{सं०} \times ६४ \times ६४ \times ७ \times ७} \right]^+$$

$$\left[\frac{६४ \text{ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १ \text{ ला०} \times १ \text{ ला०} \times \text{संख्यात} \times ६४ \times ६४ \times ७ \times ७} \right]$$

$$\text{आदिधन} + \text{प्रचयधन} = \left[\frac{३५२ \text{ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १ \text{ ला०} \times १ \text{ ला०} \times \text{संख्यात} \times ६४ \times ६४ \times ७ \times ७} \right]$$

इस आदिधन और प्रचयधनकी सम्मिलित राशिमेंसे ऋणराशि घटानेको कहा गया है।
जो इसप्रकार है—

यही ऋणराशिका संकलन करने हेतु आदि ६४ है, प्रचय २ है और गच्छ—जगच्छेणीके अर्धच्छेदोंमेंसे साधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद घटा देनेपर जो अवशेष रहे वह है।

तदनुसार इसका संकलन $\frac{६४ \text{ जगच्छेणी}}{\text{सूच्यंगुल} \times \text{संख्यात} \times ६४ \times ७ \times १ \text{ ला०}}$ होता है। इसे पूर्वोक्त आदि एवं प्रचयधनकी सम्मिलित राशिमेंसे घटाना है। यथा :—

$$\frac{३५२ \text{ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १ \text{ ला०} \times १ \text{ ला०} \times \text{सं०} \times ६४ \times ६४ \times ७ \times ७}$$

$$\frac{६४ \text{ जगच्छेणी}}{\text{सूच्य०} \times \text{संख्यात} \times ६४ \times ७ \times १ \text{ ला०}}$$

$$= \frac{३५२ \text{ जगत्प्रतर} - ६४ \text{ जगच्छेणी} \left(\frac{\text{सूच्य०} \times \text{संख्यात} \times ६४ \times ७ \times १ \text{ ला०}}{\text{प्रतरांगुल} \times १ \text{ ला०} \times १ \text{ ला०} \times \text{संख्यात} \times १६ \times ७ \times ७ \times ६४ \times ६४} \right)}{१६}$$

$= \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times ६५५३६ \times ७}$ या $\frac{१}{६५५३६}$ । ७ यह सर्व ज्योतिषी बिम्बोंका प्रमाण प्राप्त हुआ।

एक ज्योतिषी बिम्बमें संख्यात जीव रहते हैं अतः उपर्युक्त प्राप्त हुए ज्योतिष-बिम्बोंके प्रमाणमें संख्यात (७) का गुणा करनेसे सर्व ज्योतिषी देवोंका प्रमाण प्राप्त होता है।
यथा—

$\frac{\text{जगत्प्रतर} \times \text{संख्यात (७)}}{\text{प्रतरांगुल} \times ६५५३६ \times ७} = \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्र०} \times ६५५३६}$ या $\frac{१}{६५५३६}$ सर्व ज्योतिषीदेवोंका प्रमाण है ।

नोट—ज्योतिषी देवोंके बिम्बोंका प्रमाण निकालते समय आचार्य देवने संक्षिप्त करने हेतु यहाँ कुछ संख्याओंका अन्तर्भाव संख्यातमें कर दिया है । इसका विशेष विवरण सन् १९७६ में प्रकाशित त्रिलोकसार गाथा ३६१ की टीकामें द्रष्टव्य है ।

ज्योतिषी देवोंकी आयुका निरूपण—

चंदस्स सव - सहस्सं, रविणो सवं च सुक्कस्स ।
 वासाधिएहि पल्लं, तं पुण्णं धिसण - णामस्स ॥६१९॥
 सेसाणं तु गहाणं, पल्लद्धं आउगं मुणेदब्बं ।
 साराणं तु जहण्णं, पावद्धं पावमुक्कस्सं ॥६२०॥

प १ । व १००००० । प १ । १००० । प १ व १०० । प २ । ५३ । प ३ । ५३ ।

आऊ समत्ता ॥६१॥

अर्थ—चन्द्रकी उत्कृष्टायु एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य (१ पल्य + १००००० वर्ष), सूर्यकी एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य (१ पल्य + १०००), शुक ग्रहकी १०० वर्ष अधिक एक पल्य (१ पल्य + १०० वर्ष) और गुरुकी उत्कृष्टायु एक पल्य-प्रमाण है । शेष ग्रहोंकी—उत्कृष्टायु अर्ध-पल्य प्रमाण है और ताराओंकी उत्कृष्टायु पल्यके चतुर्थभाग ($\frac{१}{४}$ पल्य) प्रमाण है तथा सर्व ज्योतिषी देवोंकी जघन्यायुका प्रमाण पल्यके आठवें भाग ($\frac{१}{८}$ पल्य) है ॥६१९-६२०॥

इसप्रकार आयुका कथन समाप्त हुआ ॥६१॥

आहार आदि प्ररूपणाओंका दिग्दर्शन—

आहारो उत्सासो, उच्छेहो ओहिणारा - सत्तीओ ।
 जीवाणं उप्पत्ती - मरणाइं एक्क - ससयम्मि ॥६२१॥
 आऊ-बंधण-भावं, वंसण - गहणस्स कारणं विविहं ।
 गुणठाणादि - पधण्णण, भावणलोओ व्व वसब्बं ॥६२२॥

अर्थ—आहार, उच्छ्वास, उत्सेध, अवधिज्ञान, शक्ति, एक समयमें जीवोंकी उत्पत्ति एवं मरण, आयुके बन्धक भाव, सम्पददर्शन ग्रहणके विविध कारण और गुणस्थानादिका वर्णन भावन-लोकके सदृश कहना चाहिए ॥६२१-६२२॥

शरीरके उत्सेध आदिका निर्देश—

णवरि य जोइसियाणं, उच्छेहो सत्त-बंध-परिमाणं ।
ओहो असंख-गुणिदं, सेताओ होति जह - जोगं ॥६२३॥

अर्थ—विशेष यह है कि ज्योतिषी देवोंके शरीरकी ऊँचाई सात धनुष प्रमाण और अवधि-ज्ञानका विषय असंख्यातगुणा है ॥६२३॥

अधिकारान्त मंगलाचरण—

इंद-सत्त-गस्सिद-गज्जणं, अणंत-सुह-णाण-धिरिय-वंसरथं ।
भव - कुमुदेवक - चंदं, विमल - जिणिदं नमस्सामि ॥६२४॥

एवमादिरिय-परंपरा-गय-तिलोयपण्णत्तीए
जोइसिय-लोय-सरुव-णिरुवण-पण्णत्ती राम
सत्तमो महाहियारो समत्तो ॥

अर्थ—जिनके चरणोंमें सहस्रों इन्द्रोंने नमस्कार किया है और जो अनन्त सुख, ज्ञान, वीर्य एवं दर्शनसे संयुक्त तथा भव्यजनरूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिए अद्वितीय चन्द्रस्वरूप हैं ऐसे विमलनाथ जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६२४॥

इसप्रकार आचार्य-परम्परासे प्राप्त हुई त्रिलोक प्रज्ञप्तिमें
ज्योतिर्लोक-स्वरूप-निरूपण-प्रज्ञप्ति नामक
सातवाँ महाधिकार समाप्त हुआ ।





तिलोयपण्णत्ती

अट्ठमो महाहियारो

मङ्गलाचरण—

कम्म-कलंक-विमुक्कं, केवलणाणे हि दिट्ठ-सयलट्ठं ।

एमिक्कण अणंत-जिरां, भणामि सुरलोय-पण्णत्ति ॥१॥

अर्थ—कर्मरूपी कलङ्कसे रहित, केवलज्ञानमें सम्पूर्ण पदार्थोंको देखने वाले अनन्तनाथ
जिमको नमस्कार कर मैं सुरलोक-प्रज्ञप्तिका कथन करता हूँ ॥१॥

इक्कीस अन्तराधिकारोंका निर्देश—

सुरलोय-णिवास-खिदि, विण्णासो भेद-णाम-सीमाओ ।

संखा इंदविभूवो, आऊ उत्पत्ति - मरण - अंतरयं ॥२॥

आहारो उस्सासो, उच्छेहो तह य देव - लोयम्मि ।

आउग - बंधण - भावो, देवा लोयंतियाण तहा ॥३॥

गुणठाणादि-सरुबं, दंसण - गहणस्स कारणं विविहं ।

आगमणमोहिणाणं, सुराण' संखं च सत्तीओ ॥४॥

जोणो इदि इगिवीसं, अहियारा विमल-बोह-जणणीए ।

जिए-मुहकमल-विणिगय-सुर-जग-पण्णत्ति-णामाए ॥५॥

अर्थ—सुरलोक निवास क्षेत्र १, विन्यास २, भेद ३, नाम ४, सीमा ५, संख्या ६, इन्द्र-विभूति ७, आयु ८, उत्पत्ति एवं मरणका अन्तर ९, आहार १०, उच्छ्वास ११, उत्सेध १२, देवलोक सम्बन्धी आयुके बन्धक भाव १३, लोकान्तिक देवोंका स्वरूप १४, गुणस्थानादिकका स्वरूप १५, दर्शन-ग्रहणके विविध कारण १६, आगमन १७, अवधिज्ञान १८, देवोंकी संख्या १९, शक्ति २० और योनि २१ इसप्रकार निर्मल बोधको उत्पन्न करनेवाले जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए सुरलोक-प्रज्ञप्ति नामक महाधिकारमें ये इक्कीस अधिकार हैं ॥२-५॥

देवोंका निवासक्षेत्र—

उत्तरकुरु-मणुवाणं, ^१एककेणूणेण तह य बालेण ।

पणवीसुत्तर - चउ - सय - कोवंडेहि विहीणेश ॥६॥

इगिसड्डी - अहिएणं, लवखेणं जोयणेण ऊणाओ ।

रज्जुओ सत्त गयणे, ^२उड्डुड्डु^३ णाक - पडलाणि ॥७॥

१७ रिणं १०००६१ रिणस्स रिणं घरां ४२५ रिण । वा १ ।

। निवासखेत्तं गवं ॥१॥

अर्थ—उत्तरकुरुमें स्थित मनुष्योंके एक बाल, चार सौ पच्चीस धनुष और एक लाख इकसठ योजनोंसे रहित सात राजू प्रमाण आकाशमें ऊर्ध्व-ऊर्ध्व (ऊपर-ऊपर) स्वर्ग-पटल स्थित हैं ॥६-७॥

विशेषार्थ—ऊर्ध्वलोक मेरुतलसे सिद्धलोक पर्यन्त है, जिसका प्रमाण ७ राजू है । इसमेंसे मेरुप्रमाण अर्थात् १०००४० योजनका मध्यलोक है । मेरुकी घूलिकासे उत्तम भोगभूमिज मनुष्यके एक बाल ऊपर स्वर्गका प्रारम्भ है । लोकके अन्तमें १५७५ धनुष प्रमाण तनुवातवलय, १ कोस प्रमाण घनवातवलय और २ कोस प्रमाण धनोदधिवातवलय है । अर्थात् ४२५ धनुष कम १ योजन क्षेत्रमें उपरिम वातवलय है । इसके नीचे सिद्धशिला है जो मध्यभागमें ८ योजन मोटी है और सिद्ध-शिलासे १२ योजन नीचे सर्वार्थसिद्धि विमानका ध्वजदण्ड है । इसप्रकार लोकान्तसे [(१२ + ८) + (१ यो० — ४२५ धनुष =)] ४२५ धनुष कम २१ योजन नीचे और मेरुतलसे १०००४० यो० + १ बाल ऊपर अर्थात्—

७ राजू— [(१०००४० + १ बाल) + (२१ योजन — ४२५ धनुष)] बराबर क्षेत्रमें स्वर्गलोककी अवस्थिति कही गई है ।

निवास क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ॥१॥

स्वर्ग पटलोंकी स्थिति एवं इन्द्रक विमानोंका पारस्परिक अन्तराल—

कणयद्दि-चूलि-उर्वारि, उत्तरकुह-मणुष-एक-बालस्स ।

परिमाणे - णंतरिदो, चेद्देवि ह् इंदमो पढमो ॥८॥

अर्थ—कनकाद्रि अर्थात् मेरुकी चूलिकाके ऊपर उत्तरकुहवर्ती मनुष्यके एक बाल प्रमाणके अन्तरसे (ऋजु नामक) प्रथम इन्द्रक स्थित है ॥८॥

लोय-सिहरादु हेड्ढा, चउ-सय-पणवीस चाव-होणाणि ।

इगिबीस - जोयणाणि, गंतूणं इंदमो चरिमो ॥९॥

यो २१ । रुण वंडा ४२५ ।

अर्थ—लोकशिखरके नीचे चारसौ पच्चीस (४२५) धनुष कम इक्कीस योजन प्रमाण जाकर अन्तिम इन्द्रक स्थित है ॥९॥

सेसा य एकसट्ठो, एदाणं इंदयाण विञ्चाले ।

सज्जे अणाइ-णिहणा, रयण - मया इंदया होति ॥१०॥

अर्थ—शेष इकसठ इन्द्रक इन दोनों इन्द्रकोंके बीचमें हैं । ये सब रत्नमय इन्द्रक विमान अनादि-निधन हैं ॥१०॥

एककेक-इंदयस्स य, विञ्चालमसंख-जोयणाण-पमा ।

एदाणं णामाणि, योक्खामो आणुपुठ्वीए ॥११॥

अर्थ—एक-एक इन्द्रकका अन्तराल असंख्यात योजन प्रमाण है । अब इनके नाम अनुक्रमसे कहते हैं ॥११॥

६३ इन्द्रक विमानोंके नाम—

उड्डु-विमल-चंद-णामा, वग्गू वीरारुणा य णंदणया ।

णल्लिणं कंचण - रहिरं, चंदं मरुदं च रिद्धिसयं ॥१२॥

१३ ।

वेरुलिय-रुचक-रुच्चिरं-क-फलिह-तवणीय-मेध-अम्भाहं ।

हारिद् - पडम - णामा, लोहिब - सज्जाभिहाणेणं ॥१३॥

१४ ।

गंदावत्त-पहंकर-पिङ्गक-गज-मिस-पह य अंजणए^१ ।
वणमाल-गाग-गरुडा, लंगल-बलभद्र^२-चक्करिङ्गणि ॥१४॥

१४ ।

सुरसमिदी-बम्हाई, बम्हुत्तर-बम्हुहिवय-संतवया ।
महसुक्क-सहस्सारा, आणव-पाणव य-पुप्फकया ॥१५॥

१० ।

सायंकरारणच्चुव - सुवंसणामोघ - सुप्पबुद्धा य ।
जसहर-सुभद्र-सुविशाल-सुमणसा तह य सोमणसो ॥१६॥

११ ।

पीडिकर-आइच्चं, चरिमो सव्वदु-सिद्धि-णामो ति ।
सेसट्ठी समवट्ठा, णाणावर - रयण - णियर - मया ॥१७॥

३^३ ।

अर्थ—ऋतु १, विमल २, चन्द्र ३, बल्लू ४, वीर ५, अरुण ६, नन्दन ७, नलिन ८, कंचन ९, रुधिर १० (रोहित), चंचत् ११, मरुत् १२, ऋद्धोश १३, वैडूर्य १४, रुक्क १५, रुचिर १६, अंक १७, स्फटिक १८, तपनीय १९, मेष २०, अश्र २१, हारिद्र २२, पद्म २३, लोहित २४, वज्र २५, तंदावत्त २६, प्रभंकर २७, पृष्ठक २८, गज २९, मित्र ३०, प्रभ ३१, अंजन ३२, वनमाल ३३, नाग ३४, गरुड ३५, लंगल ३६, बलभद्र ३७, चक्र ३८, अरिष्ट ३९, सुरसमिति ४०, ब्रह्म ४१, ब्रह्मोत्तर ४२, ब्रह्महृदय ४३, लांतव ४४, महाशुक ४५, सहस्रार ४६, आनत ४७, प्राणत ४८, पुष्पक ४९, शांतकर ५०, आरण ५१, अच्युत ५२, सुदर्शन ५३, अमोघ ५४, सुप्रबुद्ध ५५, यशोधर ५६, सुभद्र ५७, सुविशाल ५८, सुमनस ५९, सोमनस ६०, प्रीतिकर ६१, आदित्य ६२ और अन्तिम सर्वार्थसिद्धि ६३, इसप्रकार ये समान गोल और नाना उत्तम रत्नसमूहोंसे रचे गये तिरेसठ (६३) इन्द्रक विमान हैं ॥१२-१७॥

प्रथम और अन्तिम इन्द्रक विमानोंके विस्तारका प्रमाण—

पंचत्तालं लक्खं, जोयणया इंवओ उड्ढु^३ पढमो ।
एक्कं जोयण - लक्खं, चरिमो सव्वदुसिद्धी य ॥१८॥

४५००००० । १००००० ।

१. द. व. ज. ठ. अंजणमो, क. अंजणमणामो । २. द. व. क. ज. ठ. भद्र । ३. व. ब. क. ज. ठ. ६३ ।

अर्थ—प्रथम ऋतु नामक इन्द्रक विमान पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन और अन्तिम सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण विस्तार युक्त हैं ॥१५॥

इन्द्रक विमानोंकी हानि-वृद्धिका प्रमाण एवं उसके प्राप्त करनेकी विधि—

पठमे चरिमं सोहिय, रूवो णिय-इं वय-प्पमाणेणं ।

भजिदूणं जं लद्धं, ताओ इह हारिण - वड्ढीओ ॥१६॥

ते रासि ६२ । ४४०००००० । १ ।

अर्थ—प्रथम इन्द्रकके विस्तारमेंसे अन्तिम इन्द्रकके विस्तारको घटाकर शेषमें एक कम इन्द्रक-प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसना यहाँ हानि-वृद्धिका प्रमाण समझता चाहिए ॥१६॥

सत्तरि-सहस्स-णव-सय-सगसट्ठी-जोयणाणि तेवीसं ।

अंसा इगितीस-हिवा, हाणो पठमादु चरिमवो^१ वड्ढो ॥२०॥

७०९६७ । ३३ ।

अर्थ—सत्तर हजार नौ सौ सहस्रठ योजन और एक योजनके इकतीस भागोंमेंसे तेईस भाग अधिक (७०९६७^{३३} यो०) प्रथम इन्द्रककी अपेक्षा उत्तरोत्तर हानि और इतनी ही अन्तिम इन्द्रककी अपेक्षा उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है ॥२०॥

विशेषार्थ—प्रथम पटलके प्रथम ऋतु विमानका विस्तार मनुष्यक्षेत्र सदृश ४५ लाख योजन प्रमाण है और अन्तिम पटलके सर्वार्थसिद्धि नामक अन्तिम विमानका विस्तार जम्बूद्वीप सदृश एक लाख योजन प्रमाण है । इन दोनोंका शोधन करनेपर (४५००००० — १०००००) = ४४००००० योजन अवशेष रहे । इनमें एक कम इन्द्रकों (६३ — १ = ६२) का भाग देनेपर (४४००००० ÷ ६२) = ७०९६७^{३३} योजन हानि और वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ।

इन्द्रक विमानोंका पृथक्-पृथक् विस्तार—

चउवाल-लक्ख-जोयण, उणतीस-सहस्सयाणि वत्तीसं ।

इगितीस-हिवा अट्ठ य, कलाओ विमलिवयस्स वित्थारो ॥२१॥

४४२९०३२ । ३६ ।

अर्थ—चवालीस लाख उनतीस हजार बत्तीस योजन और इकतीससे भाजित आठ कला अधिक (४४२९०३२^{३६} योजन) विमल इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण कहा गया है ॥२१॥

तेवाल-लक्ख-जोयण-अट्ठावण्णा-सहस्स - चउसट्ठी ।

सोलस - कलाओ सहिवा, चंदिवय-रुंद-परिमाणं ॥२२॥

४३५८०६४ । ३१ ।

अर्थ—तेतालीस लाख अट्ठावन हजार चौंसठ योजन और सोलह कलाओं सहित (४३५८०६४^{३१} योजन) चन्द्र इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण है ॥२२॥

आवाल-लक्ख-जोयण, सगसीदि-सहस्सयाणि छण्णउदी ।

सउदीर - कण्ण इंदो, वग्गु - विमाणस्स णादब्बं ॥२३॥

४२८७०९६ । ३१ ।

अर्थ—बियालीस लाख सतासी हजार छयानवें योजन और चौबीस कला अधिक (४२८७०९६^{३१} योजन) वल्लु विमानका विस्तार जानना चाहिए ॥२३॥

आवाल-लक्ख-सोलस-सहस्स-एक्कसय-जोयणाणि च ।

उणत्तीसवभहियाणि, एक्क-कला वीर-इंदए रुंदो ॥२४॥

४२१६१२९ । ३१ ।

अर्थ—वीर इन्द्रकका विस्तार बयालीस लाख सोलह हजार एक सौ उनतीस योजन और एक कला अधिक (४२१६१२९^{३१} यो०) है ॥२४॥

एक्कत्तालं लक्खं, पणवाल-सहस्स-जोयणएक्क-सया ।

इगिसट्ठी अबभहिया, णव अंसा अरुण^१ - इंदम्मि ॥२५॥

४१४५१६१ । ३१ ।

अर्थ—अरुण इन्द्रकका विस्तार इकतालीस लाख पैंतालीस हजार एक सौ इकसठ योजन और नौ भाग अधिक (४१४५१६१^{३१} यो०) है ॥२५॥

चउहत्तरि सहस्सा, तेणउदि-समधियं च एक्क-सयं ।

वालं जोयण-लक्खा, सत्तरस कलाओ णंदणे वासो ॥२६॥

४०७४१९३ । ३१ ।

अर्थ—नन्दन इन्द्रकका विस्तार चालीस लाख शौहत्तर हजार एक सौ तेरानवें योजन और सत्तरह कला अधिक (४०७४१९३^{३१} योजन) है ॥२६॥

चासं जोयण-लवखं, ति-सहस्सा बो सयाणि पणुवीसं ।

पणवीस-कला^१-एसा, ^२वित्थारो ^३णलिण - इ^४वस्स ॥२७॥

४००३२२५ । ३५ ।

अर्थ—नलिन इन्द्रकका विस्तार चालीस लाख तीन हजार दो सौ पच्चीस योजन और पच्चीस कला अधिक (४००३२२५^{३५} योजन) जानना चाहिए ॥२७॥

उणताल-लवख-ओयण-वत्तीस-सहस्स-दो-सयाणि पि ।

अट्ठावण्णा दु - कला, कंचण - णामस्स वित्थारो ॥२८॥

३६३२२५८ । ३६ ।

अर्थ—कञ्चन नामक इन्द्रकका विस्तार उणतालीस लाख वत्तीस हजार दो सौ अट्ठावन योजन और दो कला (३६३२२५८^{३६} योजन) प्रमाण है ॥२८॥

अड्ढतीस-आपख-ओयण, इणिसिद्धि-सहस्स-दो-सयाणि पि ।

णउडि - जुवाणि वसंसा, रोहिद - णामस्स वित्थारो ॥२९॥

३८६१२९० । ३७ ।

अर्थ—रोहित नामक इन्द्रकका विस्तार अड्ढतीस लाख इकसठ हजार दो सौ नब्बे योजन और दस भाग अधिक (३८६१२९०^{३७} योजन) है ॥२९॥

सगतीस-लवख-ओयण, णउडि-सहस्साणि ति-सय-वावीसा ।

अट्ठारसा कलाओ, ^५धंचा - णामस्स विक्खंभो ॥३०॥

३७९०३२२ । ३८ ।

अर्थ—चंचत् नामक इन्द्रकका विस्तार सैंतीस लाख नब्बे हजार तीन सौ धार्ईस योजन और अठारह कला अधिक (३७९०३२२^{३८} योजन) है ॥३०॥

सत्तत्तीसं लवखा, उणवीस-सहस्स-ति-सय-जोयणया ।

अउवण्णा छुब्बीसा, कलाओ मरुवस्स विक्खंभो ॥३१॥

३७१९३५४ । ३९ ।

१. व. ब. क. कलाए साधिय, ज. ठ. कलाए सा । २. व. ज. क. वित्थारे । ३. द. व. क. ज. ठ. णलिणं इवस्स विण्णोवो । ४. द. व. क. ज. ठ. चंदा ।

अर्थ—महत् इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण सैंतीस लाख उन्नीस हजार तीन सौ चौवन योजन और छब्बीस कला अधिक (३७१६३५४^३/_४ योजन) है ॥३१॥

छत्तीसं लक्खाणि, अञ्जदाल-सहस्स-ति-सय-जोयणया ।

सगसीदी तिण्णि-कला, रिद्धिस^१-ह^२दस्स परिसंखा ॥३२॥

३६४८३८७ । ३^३/_४ ।

अर्थ—कृद्धीश इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण छत्तीस लाख अञ्जतालीस हजार तीन सौ सत्तासी योजन और तीन कला अधिक (३६४८३८७^३/_४ योजन) है ॥३२॥

सत्तत्तिरि सहस्सा, चउस्सया पंचत्तीस - लक्खाणि ।

उणवीस-जोयणाणि, एक्करस-कलाओ वेरुलिय-ह^२दं ॥३३॥

३५७७४१६ । ३^३/_४ ।

अर्थ—वैडूर्य इन्द्रकका विस्तार पैंतीस लाख सत्तर हजार चार सौ उन्नीस योजन और ग्यारह कला अधिक (३५७७४१६^३/_४ योजन) है ॥३३॥

पंचत्तीसं लक्खा, छ-सहस्सा चउ-सयाणि इगिवण्णा ।

जोयणया उणवीसा, कलाओ रुजगस्स वित्थारो ॥३४॥

३५०६४५१ । ३^३/_४ ।

अर्थ—रुचक इन्द्रकका विस्तार पैंतीस लाख छह हजार चार सौ इक्कावन योजन और उन्नीस कला अधिक (३५०६४५१^३/_४ योजन) है ॥३४॥

चउत्तीसं लक्खाणि, पणत्तीस-सहस्स-चउसयाणि पि ।

तेसीवि जोयणाणि, सगवीस-कलाओ रुचिर-वित्थारो ॥३५॥

३४३५४८३ । ३^३/_४ ।

अर्थ—रुचिर इन्द्रकका विस्तार चौत्तीस लाख पैंतीस हजार चार सौ तेरासी योजन और सत्ताईस कला अधिक (३४३५४८३^३/_४ योजन) है ॥३५॥

तेसीसं लक्खाणि, चउसट्ठि-सहस्स-पण-सयाणि पि ।

सोलस य जोयणाणि, चत्तारि कलाओ अंक-वित्थारो ॥३६॥

३३६४५१६ । ३^३/_४ ।

अर्थ—अंक इन्द्रकका विस्तार तैंतीस लाख चौंसठ हजार पाँच सौ सोलह योजन और चार कला अधिक (३३६४५१६३ $\frac{१}{२}$ योजन) है ॥३६॥

बत्तीसं चिय लक्खा, तेराउदि-सहस्स-पण-सयार्णि पि ।

अठ्ठदाल-जोयणाणि, बारस-भागा फलिह - रुंदो ॥३७॥

३२९३५४८३ $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—स्फटिक इन्द्रकका विस्तार बत्तीस लाख तेरानवै हजार पाँच सौ अठ्ठतालीस योजन और बारह भाग अधिक (३२९३५४८३ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥३७॥

बत्तीस-लक्ख-जोयण, बाधीस-सहस्स-पण-सया सीवी ।

अंसा य बीसमेत्ता, रुंदो तवणिज्ज - णामस्स ॥३८॥

३२२२५८० । ३९ ।

अर्थ—तपनीय नामक इन्द्रकका विस्तार बत्तीस लाख बाईस हजार पाँच सौ अस्सी योजन और बीस भाग प्रमाण अधिक (३२२२५८० $\frac{३९}{४}$ योजन) है ॥३८॥

इगितीस-लक्ख-जोयण, इगिषण्ण-सहस्स-छ-सय-बारं च ।

अंसा 'अट्ठावीसं, वित्थारो मेघ - णामस्स ॥३९॥

३१५१६१२ । ३९ ।

अर्थ—मेघ नामक इन्द्रकका विस्तार इकतीस लाख इक्यावन हजार छह सौ बारह योजन और अट्ठाईस भाग अधिक (३१५१६१२ $\frac{३९}{४}$ योजन) है ॥३९॥

तीसं चिय लक्खाणि, सोदि-सहस्साणि छस्सयार्णि च ।

पणवाल-जोयणाणि, पंच कला अठ्ठ - इंवए वासो ॥४०॥

३०८०६४५ । ३९ ।

अर्थ—अभ्र इन्द्रकका विस्तार तीस लाख अस्सी हजार छह सौ पैंतालीस योजन और पाँच कला अधिक (३०८०६४५ $\frac{३९}{४}$ योजन) है ॥४०॥

सससरि-जुव-छ-सया, एव य सहस्साणि तीस-लक्खाणि ।

जोयणया तह तेरस, कलाओ हारिद् - विक्खंभो ॥४१॥

३००९६७७ । ३९ ।

अर्थ—हारिद्र नामक इन्द्रकका विस्तार तीस लाख नौ हजार छह सौ सत्तर योजन और तेरह कला अधिक (३००९६७७ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥४१॥

एककोणतीस-लक्खा, अड़तीस-सहस्स-सग-सयाणि च ।

णव जोयणाणि अंसा, इगिबीसं पञ्चम - वित्थारो ॥४२॥

२६३८७०९ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—पञ्च इन्द्रकका विस्तार उनतीस लाख अड़तीस हजार सात सौ नौ योजन और इक्कीस भाग अधिक (२६३८७०९ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥४२॥

अट्ठावीसं लक्खा, सगसट्ठी-सहस्स-सग-सयाणि पि ।

इगिवाल-जोयणाणि, कलाओ उणतीस लोहिवे वासो ॥४३॥

२८६७७४१ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—लोहित इन्द्रकका विस्तार अट्ठावीस लाख सबसठ हजार सात सौ इकतालीस योजन और उनतीस कला अधिक (२८६७७४१ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥४३॥

सत्तावीसं लक्खा, छण्णड्वि-सहस्स-सग-सयाणि पि ।

चउहत्तरि-जोयणाया, छ-कलाओ वज्ज - विक्खंभो ॥४४॥

२७९६७७४ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—वज्ज इन्द्रकका विस्तार सत्ताईस लाख छयानबे हजार सात सौ चौहत्तर योजन और छह कला अधिक (२७९६७७४ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥४४॥

सगवीस-लक्ख-जोयण, पणुवीस-सहस्स अडसयं छक्का ।

चोइस कलाओ कहिवा, णंदावट्टस्स विक्खंभो ॥४५॥

२७२५८०६ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—नन्दावट्ट इन्द्रकका विस्तार सत्ताईस लाख पच्चीस हजार आठ सौ छह योजन और चौदह कला अधिक (२७२५८०६ $\frac{३}{४}$ योजन) कहा गया है ॥४५॥

छब्बीसं चिय लक्खा, चउवण-सहस्स-अड-सयाणि पि ।

अडतीस - जोयणाणि, बावीस - कला पहंकरे रुवं ॥४६॥

२६५४८३८ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—प्रभंकर इन्द्रकका विस्तार छब्बीस लाख चौवन हजार आठ सौ अड़तीस योजन और बाईस कला प्रमाण (२६५४८३८ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥४६॥

पणुवीसं लक्खाणि, तेसीवि-सहस्स-अड-सयाणि पि ।
सत्तरि य 'जोयणाणि, तीस - कला पिट्टके वासो ॥४७॥

२५८३८७० । ३९ ।

अर्थ—पृष्ठक इन्द्रकका विस्तार पच्चीस लाख तेरासी हजार आठ सौ सत्तर योजन और तीस कला प्रमाण (२५८३८७० $\frac{३९}{१०००००}$ योजन) है ॥४७॥

बारस-सहस्स-णव-सय-ति-उत्तरा पंचवीस-लक्खाणि ।
जोयणए सत्तंसा, गजाभिषाणस्स विक्खंभो ॥४८॥

२५१२६०३ । ३९ ।

अर्थ—गज नामक इन्द्रकका विस्तार पच्चीस लाख बारह हजार नौ सौ तीन योजन और सात भाग अधिक (२५१२६०३ $\frac{३९}{१०००००}$ योजन) है ॥४८॥

चउवीसं लक्खाणि, इगिवाल-सहस्स-णव-सयाणि पि ।
पणतीस-जोयणाणि, पणरस-कलाओ 'मित्त-वित्थारो ॥४९॥

२४४१९३५ । ३९ ।

अर्थ—मित्र इन्द्रकका विस्तार चौबीस लाख इकतालीस हजार नौ सौ पैंतीस योजन और पन्द्रह कला अधिक (२४४१९३५ $\frac{३९}{१०००००}$ योजन) है ॥४९॥

तेवीसं लक्खाणि, णव-सय-जुत्ताणि सत्तरि-सहस्सा ।
सत्तट्ठि-जोयणाणि, तेवीस-कलाओ पहव-वित्थारो ॥५०॥

२३७०९६७ । ३९ ।

अर्थ—प्रभ इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख सत्तर हजार नौ सौ सड़सठ योजन और तेईस कला अधिक (२३७०९६७ $\frac{३९}{१०००००}$) है ॥५०॥

तेवीस-लक्ख रुंदो, अंजणए जोयणाणि वणमाले ।
दुग-तिथ-णह-णव-दुग-दुग-दुगंक-कमसो^१ कला अट्ठ ॥५१॥

२३००००० । २२२९०३२ । ३९ ।

अर्थ—अञ्जन इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख (२३०००००) योजन और वनमाल इन्द्रकका विस्तार दो, तीन, धून्य, नी, दो, दो और दो इस अंक क्रमसे बाईस लाख उनतीस हजार बत्तीस योजन तथा आठ कला अधिक (२२२९०३२ $\frac{३९}{१०००००}$ योजन) है ॥५१॥

इगिषीसं लवखाणि, अट्टावण्णा सहस्स जोयणया ।
चउसट्ठी-संजुत्ता, सोलस अंसा य णाग-वित्थारो ॥५२॥

२१५८०६४ । ३९ ।

अर्थ—नाग इन्द्रकका विस्तार इक्कीस लाख अट्टावन हजार चौसठ योजन और सोलह भाग अधिक (२१५८०६४ $\frac{१}{३९}$ योजन) है ॥५२॥

जोयणया छण्णउदी, सगसीदि-सहस्स-वीस-लवखाणि ।
चउवीस - कला एदं, गरुडिदय - रुं व - परिमाणं ॥५३॥

२०८७०९६ । ३९ ।

अर्थ—गरुड इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण बीस लाख सत्तासी हजार छयानवें योजन और चौबीस कला अधिक (२०८७०९६ $\frac{१}{३९}$ योजन) है ॥५३॥

सोलस-सहस्स-इगिसय-उणवीसं वीस-लवख-जोयणया ।
एक्क - कला विक्खंभो, लंगल - णामस्स णावध्वो ॥५४॥

२०१६१२६ । ३९ ।

अर्थ—लंगल नामक इन्द्रकका विस्तार बीस लाख सोलह हजार एक सौ उनतीस योजन और एक कला अधिक (२०१६१२६ $\frac{१}{३९}$ योजन) जानना चाहिए ॥५४॥

एक्कोणवीस-लवखा, पणवाल-सहस्स इगिसयाणि च ।
इगिसट्ठि-जोयणा णव, कलाओ बलभद्द - वित्थारो ॥५५॥

१९४५१६१ । ३९ ।

अर्थ—बलभद्र इन्द्रकका विस्तार उन्नीस लाख पैंतालीस हजार एक सौ इकसठ योजन और नौ कला अधिक (१९४५१६१ $\frac{१}{३९}$ योजन) है ॥५५॥

अउहत्तरि सहस्सा, इगिसय-तेणउवि अट्टरस-लवखा ।
जोयणया सत्तरसं, कलाओ चक्कस्स वित्थारो ॥५६॥

१८७४१९३ । ३९ ।

अर्थ—चक्र इन्द्रकका विस्तार अठारह लाख चौहत्तर हजार एक सौ तेरानवें योजन और सत्तरह कला अधिक (१८७४१९३ $\frac{१}{३९}$ योजन) है ॥५६॥

अट्टारस-लवखाणि, ति-सहस्सा पंचवीस-जुव-वु-सया ।
जोयणया पणुवीसा, कलाओ रिट्ठस्स विक्खंभो ॥५७॥

१८०३२२५ । ३९ ।

अर्थ—अरिष्ट इन्द्रकका विस्तार अठारह लाख तीन हजार दो सौ पच्चीस योजन और पच्चीस कला अधिक (१८०३२२५ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥५७॥

अट्टावण्णा दु-सया, बत्तीस-सहस्स सत्तरस-लक्खा ।

जोयणया दोण्णि कला, वासो सुरसमिदि-णामस्स ॥५८॥

१७३२२५८ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—सुरसमिति नामक इन्द्रकका विस्तार सत्तरह लाख बत्तीस हजार दो सौ अट्ठावन योजन और दो कला अधिक (१७३२२५८ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥५८॥

सोलस-जोयण-लक्खा, इगिसट्ठि-सहस्स दु-सय-णउदीओ ।

दस - मेत्ताओ कलाओ, बम्हिदय - रुंढ - परिमाणं ॥५९॥

१६६१२९० । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—अह्वा इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण सोलह लाख इकसठ हजार दो सौ नब्बे योजन और दस कला अधिक (१६६१२९० $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥५९॥

बावीस-ति-सय-जोयण, णउदि-सहस्साणि पण्णरस-लक्खा ।

अट्टारसा कलाओ, बम्हुत्तर - इंवए वासो ॥६०॥

१५९०३२२ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—ब्रह्मोत्तर इन्द्रकका विस्तार पन्द्रह लाख नब्बे हजार तीन सौबाईस योजन और अठारह कला अधिक (१५९०३२२ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥६०॥

चउवण्ण-ति-सय-जोयण, उणवीस-सहस्स पण्णरस-लक्खा ।

छव्वीसं च कलाओ, वित्थारो बम्पहिदयस्स ॥६१॥

१५१९३५४ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—ब्रह्महृदय इन्द्रकका विस्तार पन्द्रह लाख उन्नीस हजार तीन सौ चौवन योजन और छव्वीस कला अधिक (१५१९३५४ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥६१॥

चोद्दस-जोयण-लक्खं, अड्ढाल-सहस्स-ति-सय-सगसीदी ।

तिण्णि कलाओ लंतव - इंवस्स रुंवस्स परिमाणं ॥६२॥

१४४८३८७ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—लान्तव इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण चौदह लाख अड़तालीस हजार तीन सौ सत्तासी योजन और तीन कला अधिक (१४४८३८७ $\frac{३}{४}$ योजन) है ॥६२॥

तेरस-जोयण-लक्खा, चउ-सय सत्तत्तरी-सहस्साणि ।

उणवीसं एक्कारस, कलाओ महसुक्क - विक्खंभो ॥६३॥

१३७७४१९ । ३१ ।

अर्थ - महाशुक इन्द्रकका विस्तार तेरह लाख सत्तर हजार चार सौ उन्नीस योजन और ग्यारह कला अधिक (१३७७४१९ $\frac{३१}{१०}$ यो०) है ॥६३॥

तेरस-जोयण-लक्खा, चउसट्ठि-सयाणि एक्कवण्णा य ।

एक्कोणवीस - अंसा, होवि सहस्सार - वित्थारो ॥६४॥

१३०६४५१ । ३१ ।

अर्थ—सहस्रार इन्द्रकका विस्तार तेरह लाख छह हजार चार सौ इक्कावन योजन और उन्नीस भाग अधिक (१३०६४५१ $\frac{३१}{१०}$ यो०) है ॥६४॥

लक्खाणि बारसं चिय, पण्णत्तीस-सहस्स-चउ-सयाणि पि ।

तेसोवि जोयणाहं, सगवीस - कलाओ आणवे रुंवं ॥६५॥

१२३५४८३ । ३१ ।

अर्थ—आनत इन्द्रकका विस्तार बारह लाख पैंतीस हजार चार सौ तेरासी योजन और सत्ताईस कला अधिक (१२३५४८३ $\frac{३१}{१०}$ योजन) है ॥६५॥

एक्कारस-लक्खाणि, चउसट्ठि-सहस्स पणुसयाणि पि ।

सोलस य जोयणाणि, चत्तारि कलाओ पाणवे रुंवं ॥६६॥

११६४५१६ । ३१ ।

अर्थ—प्राणत इन्द्रकका विस्तार ग्यारह लाख चौंसठ हजार पाँच सौ सोलह योजन और चार कला अधिक (११६४५१६ $\frac{३१}{१०}$ योजन) है ॥६६॥

लक्खं वस-प्पमाणां, तेणउवि-सहस्स पण-सयाणि च ।

अड्ढाल - जोयणाहं, बारस - अंसा य पुप्फगे रुंदं ॥६७॥

१०६३५४८ । ३१ ।

अर्थ—पुष्पक इन्द्रकका विस्तार दस लाख तेरानवे हजार पाँच सौ अड़तालीस योजन और बारह भाग अधिक (१०६३५४८ $\frac{३१}{१०}$ योजन) है ॥६७॥

दस-जोयण-लक्खाणि, बावीस-सहस्स पणुसया सीदी ।
वीस-कलाओ रुंदं, सार्यंकर^१- इंदयस्स एादब्धं ॥६८॥

१०२२५८० । ३९ ।

अर्थ—शांतकर इन्द्रकका विस्तार दस लाख बाईस हजार पांच सौ अस्सी योजन और बीस कला अधिक (१०२२५८०^{३९} योजन) जानना चाहिए ॥६८॥

णव-जोयण-लक्खाणि, इगिवण्ण-सहस्स छ-सय बारसया ।
अट्ठावीस कलाओ, आरण - धाअस्स विथारो ॥६९॥

९५१६१२ । ३९ ।

अर्थ—आरण इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण अंक-क्रमसे नौ लाख इक्कावन हजार छह सौ बारह योजन और अट्ठाईस कला (९५१६१२^{३९} योजन) जानना चाहिए ॥६९॥

अट्ठं चिय लक्खाणि, सीदि-सहस्साणि छस्सयाणि च ।
पणवाल - जोयणाणि, पंच - कला अच्चुदे रुंदं ॥७०॥

८८०६४५ । ३९ ।

अर्थ—अच्युत इन्द्रकका विस्तार आठ लाख अस्सी हजार छह सौ पैंतालीस योजन और पांच कला अधिक (८८०६४५^{३९} योजन) है ॥७०॥

अट्ठं चिय लक्खाणि, णव य सहस्साणि छस्सयाणि च ।
सत्तत्तरि जोयणया, तेरस - अंसा सुदंसणे रुंदं ॥७१॥

८०९६७७ । ३९ ।

अर्थ—सुदर्शन इन्द्रकका विस्तार आठ लाख नौ हजार छह सौ सत्तर योजन और तेरह भाग अधिक (८०९६७७^{३९} योजन) है ॥७१॥

णव-जोयण सत्त-सया, अड्ढतीस-सहस्स सत्त-लक्खाणि ।
इगिवीस कला रुंदं, अमोघ - णामम्मि इंदए होदि ॥७२॥

७३८७०६ । ३९ ।

अर्थ—अमोघ नामक इन्द्रकका विस्तार सात लाख अड़तीस हजार सात सौ नौ योजन और इक्कीस कला अधिक (७३८७०६^{३९} योजन) है ॥७२॥

इगिवालुत्तर-सग-सय, सत्तट्टि-सहस्स-जोयण छ-लक्खा ।

उणतीस - कला कहिबो, विस्थारो सुप्पबुद्धस्स ॥७३॥

६६७७४१ । ३६ ।

अर्थ—सुप्रबुद्ध इन्द्रकका विस्तार छह लाख सड़सठ हजार सात सौ इकतालीस योजन और उनतीस कला अधिक (६६७७४१३६ यो०) कहा गया है ॥७३॥

चउहत्तरि-जुव-सग-सय, छण्णउदि-सहस्स पंच-लक्खाणि ।

जोयणया छक्क कला, जसहर - णामस्स विक्खंभो ॥७४॥

५९६७७४ । ३६ ।

अर्थ—यशोधर नामक इन्द्रकका विस्तार पांच लाख छयानबे हजार सात सौ चौहत्तर योजन और छह कला अधिक (५९६७७४३६ योजन) है ॥७४॥

छउजोयण अट्ट-सया, पणुवीस-सहस्स पंच-लक्खाणि ।

चोदह-कलाओ वासो, सुभद - णामस्स परिमाणं ॥७५॥

५२५८०६ । ३४ ।

अर्थ—सुभद्र नामक इन्द्रकका विस्तार पांच लाख पच्चीस हजार आठ सौ छह योजन और चौदह कला अधिक (५२५८०६३४ यो०) है ॥७५॥

अट्ट-सया अउतीसा, लक्खा चउरो सहस्स चउवण्णा ।

जोयणया बावीसं, अंसा सुविशाल विक्खंभो ॥७६॥

४५४८३८ । ३३ ।

अर्थ—सुविशाल इन्द्रकका विस्तार चार लाख चौवन हजार आठ सौ अड़तीस योजन और बाईस भाग (४५४८३८३३ यो०) प्रमाण है ॥७६॥

सत्तरि-जुव-अट्ट-सया, तेसोदि-सहस्स जोयण-ति-लक्खा ।

तीस - कलाओ सुमणस - णामस्स हवेवि विस्थारो ॥७७॥

३८३८७० । ३९ ।

अर्थ—सुमन्तस नामक इन्द्रकका विस्तार तीन लाख तेरासी हजार आठ सौ सत्तर योजन और तीस कला (३८३८७०३९ यो०) प्रमाण है ॥७७॥

बारस-सहस्स णव-सय, ति-उत्तरा जोयणाणि तिय-लक्खा ।

सत्त - कलाओ वासो, सोमणसे इंवए भणिवो ॥७८॥

३१२९०३ । ३१ ।

अर्थ—सौमनस इन्द्रकका विस्तार तीन लाख बारह हजार नौ सौ तीन योजन और सात कला (३१२९०३ $\frac{३}{४}$ योजन) प्रमाण कहा गया है ॥७८॥

पणतीसुत्तर-णव-सय, इगिवाल-सहस्स जोयण-दु-लक्खा ।

पण्णरस - कला रुवं, पीविकर - इंवए कहिवो ॥७९॥

२४१९३५ । ३१ ।

अर्थ—प्रीतिष्कुर इन्द्रकका विस्तार दो लाख इकतालीस हजार नौ सौ पैंतीस योजन और पन्द्रह कला (२४१९३५ $\frac{३}{४}$ यो०) प्रमाण कहा गया है ॥७९॥

सत्तरि-सहस्स णव-सय, सत्तट्ठी-जोयणाणि इगि-लक्खा ।

तेवीसंसा वासो, आइक्खे इंवए होवी ॥८०॥

१७०९६७ । ३१ ।

अर्थ—आदित्य इन्द्रकका विस्तार एक लाख सत्तर हजार नौ सौ सड़सठ योजन और तेईस कला (१७०९६७ $\frac{३}{४}$ योजन) प्रमाण है ॥८०॥

एकं जोयण - लक्खं, वासो सम्बट्ठसिद्धि-णामस्स ।

एवं तेसट्ठीणं, वासो सिट्ठो सिसूण बोहट्ठं ॥८१॥

१००००० । ६३ ।

अर्थ—सर्वासिद्धि नामक इन्द्रकका विस्तार एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण है । इसप्रकार तिरेसठ (६३) इन्द्रकोंका विस्तार शिष्योंके बोधनार्थ कहा गया है ॥८१॥

समस्त इन्द्रक विमानोंका एकत्रित विस्तार इस प्रकार है—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

इन्द्रक विमानोंका विस्तार—

क्र.	इन्द्रकीके नाम	इन्द्रक विमानोंका विस्तार	क्र.	इन्द्रकीके नाम	इन्द्रक विमानोंका विस्तार	क्र.	इन्द्रकीके नाम	इन्द्रक विमानोंका विस्तार
१.	ऋतु	४५००००० यो०	२२.	हारिद्र	३००९६७७३३ यो०	४३.	ब्रह्महृदय	१५१९३५४३ यो०
२.	विमल	४४२६-३२३६	२३.	पद्म	२६३८७०६३६	४४.	लान्तव	१४४८३८७३६
३.	चन्द्र	४३५८०६४३६	२४.	लोहित	२८६७७४१३६	४५.	महाशुक	१३७७४१९३६
४.	वल्गु	४२८७०९६३६	२५.	वज्र	२७९६७७४३६	४६.	सहस्रार	१३०६४५१३६
५.	वीर	४२१६१२९३६	२६.	नन्द्या	२७२५८०६३६	४७.	आनत	१२३५४८३३६
६.	अरुण	४१४५१६१३६	२७.	प्रभाङ्कुर	२६५४३३८३६	४८.	प्राणत	११६४५१६३६
७.	नन्दन	४०७४१९३३६	२८.	पृष्ठक	२५८३८७०३६	४९.	पुष्पक	१०९३५४८३६
८.	नलिन	४००३२२५३६	२९.	गज	२५१२९०३३६	५०.	शातंकर	१०२२५८०३६
९.	कञ्चन	३९३२२५८३६	३०.	मित्र	२४४१६३५३६	५१.	आरुण	६५१६१२३६
१०.	रोहित	३८६१२९०३६	३१.	प्रभ	२३७०६६७३६	५२.	अच्युत	८८०६४५३६
११.	चञ्चत्	३७९०३२२३६	३२.	अञ्जन	२३००००० यो०	५३.	सुदर्शन	८०६६७७३६
१२.	मरुत्	३७१९३५४३६	३३.	वनमाल	२२२९०३२३६	५४.	अमोघ	७३८७०६३६
१३.	ऋद्धीश	३६४८३८७३६	३४.	नाग	२१५८०६४३६	५५.	सुप्रबुद्ध	६६७७४१३६
१४.	वैद्य	३५७७४१९३६	३५.	गरुड	२०८७०६६३६	५६.	यशोधर	५९६७७४३६
१५.	रुचक	३५०६४५१३६	३६.	लांगल	२०१६१२९३६	५७.	सुभद्र	५२५८०६३६
१६.	रुचिर	३४३५४८३३६	३७.	बलभद्र	१६४५१६१३६	५८.	सुविशाल	४५४८३८३६
१७.	अङ्क	३३६४५१६३६	३८.	चक्र	१८७४१६३३६	५९.	सुमनस्	३८३८७०३६
१८.	स्फटिक	३२९३५४८३६	३९.	अरिष्ट	१८०३२२५३६	६०.	सौमनस्	३१२९०३३६
१९.	तपनीय	३२२२५८०३६	४०.	सुरसमिति	१७३२२५८३६	६१.	प्रीतिङ्कुर	२४१९३५३६
२०.	मेघ	३१५१६१२३६	४१.	ब्रह्म	१६६१२६०३६	६२.	आदित्य	१७०९६७३६
२१.	अभ्र	३०८०६४५३६	४२.	ब्रह्मोत्तर	१५९०३२२३६	६३.	सर्वार्थसिद्धि	१००००० यो०

ऋतु इन्द्रकादिके श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम एवं उनका विन्यास क्रम—

सठ्वाण इंवयाणं, चउसु विसासुं पि सेढि-बद्धाणि ।

चत्तारि वि विदिसासुं, होवि पहण्णय-विमाणाओ ॥८२॥

अर्थ—सब इन्द्रक विमानोंकी चारों दिशाओंमें श्रेणीबद्ध और चारों ही विदिशाओंमें प्रकीर्णक विमान होते हैं ॥८२॥

उड्डु-णामे पत्तेक्कं, सेढि-गवा चउ-दिसासु बासट्टी ।

एक्केक्कूणा सेसे, पडिदिसमाइच्च' - परियंतं ॥८३॥

अर्थ—ऋतु नामक विमानकी चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें बासठ श्रेणीबद्ध हैं । इसके आगे आदित्य इन्द्रक पर्यन्त शेष इन्द्रकोंकी प्रत्येक दिशामें एक-एक कम होता गया है ॥८३॥

उड्डु-णामे सेढिगवा, एक्केक्क-विसाए होदि तेसट्टी ।

एक्केक्कूणा सेसे, जाव य सव्वहुसिद्धि ति ॥८४॥

(पाठान्तरम्)

अर्थ—ऋतु नामक इन्द्रक विमानके आश्रित एक-एक दिशामें तिरसठ श्रेणीबद्ध विमान हैं । इसके आगे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त शेष विमानोंमें एक-एक कम होता गया है ॥८४॥

(पाठान्तर)

बासट्टी सेढिगवा, पभासिदा जेहि ताण उवएसे ।

सव्वट्टे वि चउदिसमेक्केक्कं सेढि - बद्धा य ॥८५॥

अर्थ—जिन आचार्योंने (ऋतु विमानके आश्रित प्रत्येक दिशामें) बासठ श्रेणीबद्ध विमानोंका निरूपण किया है उनके उपदेशानुसार सर्वार्थसिद्धि विमानके आश्रित भी चारों दिशाओंमें एक-एक श्रेणीबद्ध विमान है ॥८५॥

पढमिदय-पहुदीदो, पीदिंकर - णाम - इंवयं जाव ।

तेसुं चउसु विसासुं, सेढि - गवाणं इमे णामा ॥८६॥

अर्थ—प्रथम इन्द्रकसे लेकर प्रीतिङ्कर नामक (६१ वें) इन्द्रक पर्यन्त चारों दिशाओंमें उनके आश्रित रहनेवाले श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम ये हैं ॥८६॥

उडुपह-उडुमज्झिम-उडु-आवत्तय-उडु-विसिद्ध-णामेहि ।

उडु - इंदयस्स एवे, पुब्बादि - पदाहिणा^१ होवि ॥८७॥

अर्थ—ऋतुप्रभ, ऋतुमध्यम, ऋतु-आवर्त और ऋतु-विशिष्ट, ये चार श्रेणीबद्ध विमान ऋतु इन्द्रकके समीप पूर्वादिक दिशाओंमें प्रदक्षिण-क्रमसे हैं ॥८७॥

विमलपह-विमल-मज्झिम, विमलावत्तं खु विमल-णामम्मि ।

विमल - विसिद्धो तुरिमो, पुब्बादि - पदाहिणा^२ होदि ॥८८॥

अर्थ—विमलप्रभ, विमलमध्यम, विमलावर्त और चतुर्थ विमलविशिष्ट, ये चार श्रेणीबद्ध विमान विमल नामक (दूसरे) इन्द्रकके आश्रित पूर्वादिक प्रदक्षिण-क्रमसे हैं ॥८८॥

एवं चंदादीणं, णिय-णिय-णामाणि सेट्ठिबद्धेसु^३ ।

पठमेसुं पह - मज्झिम - आवत्त-विसिद्ध-जुत्ताणि ॥८९॥

अर्थ—इसीप्रकार चन्द्रादिक इन्द्रकोंके आश्रित रहनेवाले प्रथम श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम प्रभ, मध्यम, आवर्त और विशिष्ट इन पदोंसे युक्त अपने-अपने नामोंके अनुसार ही हैं ॥८९॥

उडु - इंदय - पुब्बादी, सेट्ठिगया जे हवन्ति वासट्ठी ।

ताण बिबियावीणं, एक्क-विसाए भणामो णामाद्दं ॥९०॥

अर्थ—ऋतु इन्द्रककी पूर्वादिक दिशाओंमें जो वासठ श्रेणीबद्ध हैं उनके द्वितीयादिकोंके एक दिशाके नाम कहते हैं ॥९०॥

संठिय-णामा सिरिवक्ख-वट्ट-णामा य कुसुम-जावाणि ।

छत्तंजण - कलसा^४ वसह-सीह-सुर-असुर-मणहरया ॥९१॥

१३ ।

भद्दं सव्वदोभद्दं, दिवसोत्तिय अंबिसाभिघारं च ।

दिगु-वड्ढमाण-मुरजं, अरुभय - इंदो महिवो य ॥९२॥

९ ।

तह य उवड्ढं कमलं, कोकणदं चक्कमुप्पलं कुमुदं ।

पुंडरिय-सोमयाणि, तिमिसंक - सरंत पासं च ॥९३॥

१२ ।

१-२. द. ब. क. ज. ठ. पदाहिणो । ३. द. ब. क. ज. ठ. चउदादीणं । ४. द. ब. क. ज. ठ. कलसा । ५. द. ब. क. ज. ठ. अम ।

गगणं सुज्जं सोमं, कंचण-नक्षत्र-चंदणा अमलं ।
विमलं गंदरा-सोमनस-सागरा उदिय-समुदिया नामा ॥९४॥

१३ ।

धम्मवरं वेसनणं, कण्णं कणयं तथा य मूदहिदं ।
णामेण लोयकंतं, गंदीसरयं अमोघपासं च ॥९५॥

५ ।

जलकंतं रोहिदयं, अमवडभासं तहेव सिद्धंतं ।
कुण्डल - सोमा एवं, इगिसट्ठी सेडि - बड्ढाणि ॥९६॥

६ ।

अर्थ—संस्थित नामक १, श्रीवत्स २, वृत्त ३, कुसुम ४, चाप ५, छत्र ६, अञ्जन ७, कलश ८, वृषभ ९, सिंह १०, सुर ११, असुर १२, मनोहर १३, भद्र १४, सर्वतोभद्र १५, दिक्स्वस्तिक १६, अंदिश १७, दिगु १८, वर्धमान १९, मुरज २०, अभयेन्द्र २१, माहेन्द्र २२, उपार्ध २३, कमल २४, कोकनद २५, चक्र २६, उत्पल २७, कुमुद २८, पुण्डरीक २९, सोमक ३०, तिमिला ३१, अंक ३२, स्वरान्त ३३, पास ३४, गगन ३५, सूर्य ३६, सोम ३७, कंचन ३८, नक्षत्र ३९, चन्दन ४०, अमल ४१, विमल ४२, नन्दन ४३, सोमनस ४४, सागर ४५, उदित ४६, समुदित ४७, धर्मवर ४८, वैश्रवण ४९, कर्ण ५०, कनक ५१ तथा भूतहित ५२, लोककान्त ५३, सरय ५४, अमोघस्पर्श ५५, जलकान्त ५६, रोहितक ५७, अमितभास ५८ तथा सिद्धान्त ५९, कुण्डल ६० और सोम्य ६१ इसप्रकार (ऋतु इन्द्रककी पूर्व दिशा सम्बन्धी) ये इकसठ श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥९१-९६॥

ऋतु इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम—

पुरिमावली-पवणिणव - संठिय-पहुवीसु तेसु पत्तेक्कं ।
णिय-णामेसुं मज्झिम-आवत्त-विसिट्ठ-आइ जोएज्ज ॥९७॥

अर्थ—पूर्व पंक्तिमें वर्णित उन संस्थित आदि श्रेणीबद्ध विमानोंमेंसे प्रत्येकके अपने-अपने नाममें मध्यम, आवर्त और विशिष्ट आदि जोड़ना चाहिए ॥९७॥

विशेषार्थ—ऋतु इन्द्रक विमान मध्यमें है । इसकी पूर्वादि दिशाओंमें ६२-६२ श्रेणीबद्ध विमान हैं । जिनके क्रमशः नाम इसप्रकार हैं—

श्रेणीबद्ध विमानोंकी क्रम संख्या	ऋतु इन्द्रक विमान की—			
	पूर्व दिशामें	दक्षिण में	पश्चिम में	उत्तरमें
१	ऋतुप्रभ	ऋतुमध्यम	ऋतु आवर्त	ऋतुविशिष्ट
२	संस्थितप्रभ	संस्थितमध्यम	संस्थितावर्त	संस्थितविशिष्ट
३	श्रीवत्सप्रभ	श्रीवत्समध्यम	श्रीवत्सावर्त	श्रीवत्सविशिष्ट
४	वृत्तप्रभ	वृत्तमध्यम	वृत्तावर्त	वृत्तविशिष्ट
५	कुसुमप्रभ	कुसुममध्यम	कुसुमावर्त	कुसुमविशिष्ट
६	चापप्रभ	चापमध्यम	चापावर्त	चापविशिष्ट
७	छत्रप्रभ	छत्रमध्यम	छत्रावर्त	छत्रविशिष्ट
८	अंजनप्रभ	अंजनमध्यम	अंजनावर्त	अंजनविशिष्ट
९	कलशप्रभ	कलशमध्यम	कलशावर्त	कलशविशिष्ट
१०	वृषभप्रभ	वृषभमध्यम	वृषभावर्त	वृषभविशिष्ट इत्यादि

प्रत्येक इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम—

एवं चउसु विसासुं, णामेसुं दक्खिणादिय-विसासुं ।

सेट्ठिगदाणं एणामा, पीदिकर - इंदयं जाव ॥६८॥

अर्थ—इसप्रकार दक्षिणादिक चारों दिशाओंमें प्रीतिङ्कर नामक (६१ वें) इन्द्रक पर्यन्त श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम हैं ॥६८॥

नोट:—इसी अधिकार की गाथा ८९ द्रष्टव्य है ।

आइउच्च-इंदयस्स य, पुब्बाविसु लच्छि-लच्छिमालिणिया ।

वहरा - वहरावणिया, चत्तारो वर - विमाणानि ॥६९॥

अर्थ—आदित्य इन्द्रककी पूर्वादिक दिशाओंमें लक्ष्मी, लक्ष्मीमालिनी, वष्प श्रीर वष्पावनि, ये चार उत्तम विमान हैं ॥६९॥

विजयंत - वइजयंतं, जयंतमपराजिदं च चत्तारो ।

पुठ्ठादि - विमानाणि, 'ठिवाणि सव्वट्ठसिद्धिस्स ॥१००॥

अर्थ—विजयन्त, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित, ये चार विमान सर्वार्थसिद्धि की पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित हैं ॥१००॥

श्रेणीबद्ध विमानोंकी अवस्थिति—

उड्डु-सेढीबद्धं, सयंभुरमणं बु-रासि-परिधि गवं ।

सेसा^१ आइल्लेसुं, तिसु दीवेसुं तिसुं समुद्देसुं ॥१०१॥

११ । १५ । ५ । ४ । २ । १ । १ ।

अर्थ—ऋतु इन्द्रकके अर्ध श्रेणीबद्ध स्वयम्भूरमण समुद्रके परिधि भागमें स्थित हैं । शेष श्रेणीबद्ध विमान आदिके अर्थात् स्वयम्भूरमण समुद्रसे पूर्वके तीन द्वीप और तीन समुद्रोंपर स्थित हैं ॥१०१॥

एवं मिसिदंतं, विण्णासो होवि सेढिबद्धाणं ।

कमसो आइल्लेसुं, तिसु दीवेसुं ति - जलहोसुं ॥१०२॥

अर्थ—इसप्रकार मित्र इन्द्रक पर्यन्त श्रेणीबद्धोंका विन्यास कमसः आदिके तीन द्वीपों और तीन समुद्रोंके ऊपर है ॥१०२॥

प्रभ-पत्थलादि-परदो, जाव सहस्सार-पत्थलंतो ति ।

आइल्ल - तिण्णि - दीवे, दोण्णि-समुद्दम्मि सेसाओ ॥१०३॥

अर्थ—प्रभ प्रस्तारसे आगे सहस्सार प्रस्तार पर्यन्त शेष, आदिके तीन द्वीपों और दो समुद्रों पर स्थित हैं ॥१०३॥

तसो आणद-पट्टदी, जाव अमोघो ति सेढिबद्धाणं ।

आइल्ल-दोण्णि-दीवे, दोण्णि - समुद्दम्मि सेसाओ ॥१०४॥

अर्थ—इसके आगे आनत पटलसे लेकर अमोघ पटल पर्यन्त शेष श्रेणीबद्धोंका विन्यास आदिके दो द्वीपों और दो समुद्रोंके ऊपर है ॥१०४॥

तह सुण्णबुद्ध-पट्टदी, जाव य सुविसालओ ति सेढिगद्धा ।

आइल्ल - एक्क - दीवे, दोण्णि समुद्दम्मि सेसाओ ॥१०५॥

अर्थ—तथा सुप्रबुद्ध पटलसे लेकर सुविशाल पटल पर्यन्त शेष श्रेणीबद्ध, आदिके एक द्वीप और दो समुद्रोंके ऊपर स्थित हैं ॥१०५॥

सुमनस सोमनसाए, आइल्लय-एवक-दीव-उवहिम्मि ।

पीदिकराए दिव्वं आइच्चे चरिम - दीवम्मि ॥१०६॥

अर्थ—सुमनस और सोमनस पटलके श्रेणीबद्ध विमान आदिके एक द्वीप तथा एक समुद्रके ऊपर स्थित हैं । इसीप्रकार दिव्य प्रीतिङ्कुर पटलके भी श्रेणीबद्धोंका विन्यास समझना चाहिए । अन्तिम आदित्य पटलके श्रेणीबद्ध द्वीपके ऊपर स्थित हैं ॥१०६॥

विशेषार्थ :—ऋतु इन्द्रक सम्बन्धी ६२ श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास—

स्वयम्भूरमण समुद्रके ऊपर—ऋतुप्रभसे सोमक पर्यन्त ३१ श्रेणीबद्ध विमान स्थित हैं ।

स्वयम्भूरमणद्वीपके ऊपर—तिमिस्रासे सागर पर्यन्त १५ विमान ।

अर्हान्द्रवर समुद्रके ऊपर—उदितसे लोककान्ता तक ८ विमान ।

अर्हान्द्रवर द्वीपके ऊपर—सरयसे रोहितक पर्यन्त ४ विमान ।

देववर समुद्रके ऊपर—अमितभास और सिद्धान्त २ विमान ।

देववर द्वीपके ऊपर—कुण्डल नामक १ विमान और

यक्षवर समुद्रके ऊपर—सीम्य नामक (६२ वाँ) १ विमान है ।

विमल इन्द्रकसे मित्र इन्द्रक पर्यन्तके २९ इन्द्रक विमानोंसे सम्बन्धित सर्व श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास क्रमशः यक्षवर द्वीप, भूतवर समुद्र, भूतवर द्वीप, नागवर समुद्र, नागवर द्वीप और वैडूर्यवर समुद्र, इन तीन द्वीपों और तीन समुद्रोंके ऊपर है ।

प्रभ इन्द्रकसे सहस्रार इन्द्रक पर्यन्तके १६ इन्द्रक विमानोंसे सम्बन्धित सर्व श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास क्रमशः वैडूर्यवर द्वीप, वज्रवर समुद्र, वज्रवर द्वीप, काञ्चनवर समुद्र और काञ्चनवर द्वीप, इन तीन द्वीपों और दो समुद्रोंके ऊपर है ।

आनत इन्द्रकसे अमोघ इन्द्रक पर्यन्तके ८ इन्द्रक विमानोंसे सम्बन्धित सर्व श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास क्रमशः रूप्यवर समुद्र, रूप्यवर द्वीप, हिंगुलवर-समुद्र और हिंगुलवर द्वीप, इन दो समुद्रों और दो द्वीपोंके ऊपर है ।

सुप्रबुद्ध इन्द्रकसे सुविशाल इन्द्रक पर्यन्त ४ इन्द्रक सम्बन्धित श्रेणीबद्ध विमानों का विन्यास क्रमशः अञ्जनवर समुद्र, अञ्जनवर द्वीप और श्यामवर समुद्र, इन दो समुद्रों और एक द्वीप पर हैं ।

सुमनस और सोमनस इन २ इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास क्रमशः श्यामवर द्वीप और सिन्दूरवर समुद्रके ऊपर है ।

प्रोतिच्छर इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानों का विन्यास सिन्दूरवर द्वीप और हरिसिन्दूर समुद्रके ऊपर है ।

६२ वें आदित्य इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास हरिसिन्दूर द्वीप पर है ।

श्रेणीबद्ध विमानोंके तिर्यग् अन्तराल और विस्तारका प्रमाण—

होदि असंखेज्जाणि, एवाणं जोयणाणि विच्चालं ।

तिरिएणं सव्वाणं, तेत्तियमेत्तं च वित्थारं ॥१०७॥

अर्थ—इन सब विमानोंका तिर्यग्रूपसे असंख्यात योजनप्रमाण अन्तराल है और इनका विस्तार भी इतना (असंख्यात योजन प्रमाण) ही है ॥१०७॥

शेष द्वीप-समुद्रोंपर श्रेणीबद्धोंके विन्यासका नियम—

एवं चउच्चिहेसु, सेढोबद्धाण होदि उत्त - कमे ।

अवसेस - बोध - उवहीसु एत्थि सेढोण विण्णासो ॥१०८॥

अर्थ—इसप्रकार उक्त क्रमसे श्रेणीबद्धोंका विन्यास चतुर्विध (चतुर्दिग्) रूपमें (१) है । अवशेष द्वीप-समुद्रोंमें श्रेणीबद्धोंका विन्यास नहीं है ॥१०८॥

विशेषार्थ—प्रथम ऋतु इन्द्रकसे आदित्य पर्यन्त ६२ इन्द्रक सम्बन्धी सब श्रेणीबद्ध विमानों का विन्यास अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्रसे प्रारम्भ होकर पूर्वके हरिसिन्दूर द्वीप पर्यन्त अर्थात् १५ समुद्र और १४ द्वीपों (२९ द्वीप-समुद्रों) के ऊपर चारों दिशाओं में है ।

श्रेणीबद्ध विमानोंकी आकृति आदि—

सेढोबद्धे सव्वे, समवट्ठा विविह-दिठ्ठ-रयणमया ।

उल्लसिद-धय-वदाया, णिरुवमरूवा विराजंति ॥१०९॥

अर्थ—सर्व श्रेणीबद्ध विमान समान गोल, विविध दिव्य रत्नोंसे निर्मित, छत्रा-पताकाओं से उल्लसित और अनुपम रूपसे युक्त होते हुए शोभित हैं ॥१०९॥

प्रकीर्णक विमानोंका अवस्थान आदि—

एवाणं विच्चाले, पइण्ण-कुसुमोवयार-संठाणा^१ ।

होदि पइण्णय-णामा, रयणमया विविसे वर-विमाणा ॥११०॥

१. व. ब. क. ज. ठ. असंखेज्जाणि । २. घ. चउच्चिहेसु । ३. अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ । ४. द. व. क. ज. ठ. विमानाणि ।

अर्थ—इनके (श्रीणीबद्धोंके) अन्तरालमें विदिशाओंमें प्रकीर्णक अर्थात् बिखरे हुए पुष्पोंके सदृश स्थित, रत्नमय, प्रकीर्णक नामक उत्तम विमान हैं ॥११०॥

संखेज्जासंखेज्जं, सरुव-जोयण-पमाण-विक्खंभो ।

सखे पइण्णयाणं, विक्खालं तेत्तियं तेसुं ॥१११॥

अर्थ—सब प्रकीर्णकोंका विस्तार संख्यात एवं असंख्यात योजन प्रमाण है और इतना ही उनमें अन्तराल भी है ॥१११॥

तटवेदी—

इंवय-सेढीबद्ध-प्पइण्णयाणं पि वर - विमाणारणं^१ ।

उवरिम-तलेषु रम्मा, एक्केक्का होदि तट-वेदी ॥११२॥

अर्थ—इन्द्रक, श्रीणीबद्ध और प्रकीर्णक, इन उत्तम विमानोंके उपरिम एवं तल भागोंमें एक-एक रमणीय तट-वेदी है ॥११२॥

वरियट्टालिय-चारु, वर-गोउरदार-तोरणाभरणा ।

धुव्वंत-धय-ववाया, अक्खरिय - विसेसकर - रुवा ॥११३॥

विण्णासो समत्तो ॥२॥

अर्थ—यह वेदी मार्गी एवं अट्टालिकाओंसे सुन्दर, उत्तम गोपुरदारों तथा तोरणोंसे सुशोभित, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे युक्त और आश्चर्य-विशेषको करनेवाले रूपसे संयुक्त है ॥११३॥

विन्यास समाप्त हुआ ॥२॥

कल्प और कल्पातीतका विभाग—

कप्पा-कप्पादीवा, इवि बुविहा होवि^२ णाक-पटला ते ।

आवण्ण - कप्प - पटला, कप्पातीदा य^३ एक्करसं ॥११४॥

५२ । ११ ।

अर्थ—स्वर्गमें कल्प और कल्पातीतके भेदसे पटल दो प्रकारके हैं । इनमेंसे आवन कल्प पटल और ग्यारह कल्पातीत (कुल ५२+११=६३) पटल हैं ॥११४॥

बारस कप्पा केई, केई सोलस वदति आइरिया ।
तिविहाणि भासिदाणि, कल्पातीदाणि पडलाणि ॥११५॥

अर्थ—कोई आचार्य कल्पोंकी संख्या बारह और कोई सोलह बतलाते हैं । कल्पातीत पटल तीन प्रकारसे कहे गये हैं ॥११५॥

हेट्टिम मज्झे उवरि, पत्तेक्कं ताण होंति चत्तारि ।
एवं बारस - कप्पा, सोलस उड्डुक्कुमट्ट जुगलाणि ॥११६॥

अर्थ—जो (आचार्य) बारह कल्प स्वीकार करते हैं उनके मतानुसार अधोभाग, मध्य-भाग और उपरिम भागमेंसे प्रत्येकमें चार-चार कल्प हैं । इसप्रकार सब बारह कल्प होते हैं । सोलह कल्पोंकी मान्यतानुसार ऊपर-ऊपर आठ युगलोंमें सोलह कल्प हैं ॥११६॥

गेवेज्जमणुहिसयं, अणुत्तरं इय हवन्ति तिवियप्पा ।
कप्पातीदा पडला, गेवेज्जं णव - विहं तेसु ॥११७॥

अर्थ—त्रैवेयक, अनुदिश और अनुसर, इसप्रकार कल्पातीत पटल तीन प्रकारके हैं । इनमेंसे त्रैवेयक पटल दो प्रकारके हैं ॥११७॥

कल्प और कल्पातीत विमानोंका अवस्थान—

मेरु-तलावो उवरि, दिवड्ढ-रज्जूए आबिमं जुगलं ।
तसो हवेवि विवियं, तेत्तियमेत्ताए रज्जूए ॥११८॥
तसो छज्जुगलाणि, पत्तेक्कं अट्ठ - अट्ठ - रज्जूए ।
एवं कप्पा कमसो, कप्पातीदा य ऊण - रज्जूए ॥११९॥

—३ | —३ | —३ | —३ | —३ | —३ | —३ | —३ | —३ |
१४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | ७ |

एवं भेद-परूपणा समत्ता ॥३॥

अर्थ—मेरुतलसे ऊपर डेढ़ राजूमें प्रथम युगल और इसके आगे इतने ही राजूमें अर्थात् डेढ़ राजूमें द्वितीय युगल है । इसके आगे छह युगलोंमेंसे प्रत्येक अर्ध-अर्ध राजूमें है । इसप्रकार कल्पोंकी स्थिति बतलाई गई है । कल्पातीत विमान ऊन अर्थात् कुछ कम एक राजूमें हैं ॥११८-११९॥

इसप्रकार भेद-परूपणा समाप्त हुई ॥३॥

बारह कल्प एवं कल्पातीत विमानोंके नाम—

सोहम्मीसाण-सणक्कुमार-माहिब - बम्ह - संतवया ।

महसुक्क-सहस्सारा, आणत्त-आणत्त-आणत्त-आणत्त ॥१२०॥

एवं बारस कप्पा, कप्पातीवेसु एव य गेवेज्जा ।

हेट्ठिम-हेट्ठिम-णामो, हेट्ठिम-मज्झिमल्ल हेट्ठिमोवरिमो ॥१२१॥

मज्झिम-हेट्ठिम-णामो, मज्झिम-मज्झिम य मज्झिमोवरिमो ।

उवरिम-हेट्ठिम-णामो, उवरिम-मज्झिम य उवरिमोवरिमो ॥१२२॥

अर्थ—सोधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मा, लान्तव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इसप्रकार ये बारह कल्प हैं । कल्पातीतोंमें अधस्तन-अधस्तन, अधस्तन-मध्यम, अधस्तन-उपरिम, मध्यम-अधस्तन, मध्यम-मध्यम, मध्यम-उपरिम, उपरिम-अधस्तन, उपरिम-मध्यम और उपरिम-उपरिम, ये नौ अवेयक विमान हैं ॥१२०-१२२॥

आदित्य इन्द्रके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकोंके नाम—

आइच्च-इंदयस्स य, पुग्वाविसु लच्छि-लच्छिमालिणिया ।

वहरो वहरोवणिया, चत्तारो वर - विमाणार्णि ॥१२३॥

अण्ण - दिसा - विदिसासुं, सोमक्खं सोमरुव-अंकाइं ।

पडिहं पडण्णयाणि य, चत्तारो तस्स णादव्वा ॥१२४॥

अर्थ—आदित्य (६२ वें) इन्द्रक विमानकी पूर्वादिक दिशाओंमें लक्ष्मी, लक्ष्मीमालिनी, वज्र और वैरोचिनी, ये चार उत्तम श्रेणीबद्ध विमान तथा अन्य दिशा-विदिशाओंमें सोमार्य, सोमरूप, अंक और स्फटिक, ये चार उसके प्रकीर्णक विमान जानने चाहिए ॥१२३-१२४॥



सर्वार्थसिद्धि इन्द्रकके श्रीसीवद्ध विमानोंके नाम—

विजयंत - बहुजयंतं, जयंत-अपराजितं विमाणानि ।

सर्ववृद्ध-सिद्धि-नामा, पुष्पावर-दक्षिणोत्तर-दिसासं ॥१२५॥

अर्थ—सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रककी पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशामें विजयन्त, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक विमान हैं ॥१२५॥

सर्ववृद्ध-सिद्धि-नामे, पुष्पावि-पद्माहिणेण विजयादी ।

ते ह्येति वर - विमाणा, एवं केई परुषेति ॥१२६॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रकको पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिण रूप वे विजयादिक उत्तम विमान हैं । कोई आचार्य इसप्रकार भी प्ररूपण करते हैं ॥१२६॥

पाठान्तर ।

सोहम्नो ईशानो, सणवकुमारो तद्देव माहिबो ।

बम्हो बम्हुत्तरयं, लंतव-कापिद्ध - सुवक - महसुवका ॥१२७॥

सदर-सहस्राराणव-पाणव-आरणय'-अच्युदा नामा ।

इय सोलस कप्पाणि, मण्णते केइ आइरिया ॥१२८॥

पाठान्तरम् ।

एवं नाम-परुषणा समत्ता ॥४॥

अर्थ—सोधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिण्ड, शुक्र, महा-शुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक ये सोलह कल्प हैं । कोई आचार्य ऐसा भी मानते हैं ॥१२७-१२८॥

इसप्रकार नाम प्ररूपणा समाप्त हुई ॥४॥

कल्प एवं कल्पातीत विमानोंकी स्थिति और उनकी सीमाका निर्देश—

कणयद्धि-चूल-उवर्णि, किचूणा-दिवद्ध-रज्जु-बहलम्मि ।

सोहम्नोसारवखं, कप्प - दुगं होवि रमणिज्जं ॥१२९॥

—३—
१४

अर्थ—कनकाद्रि (मेरु) पर्वतकी चूलिकाके ऊपर कुछ कम डेढ़ राजूके बाह्यमें रमणीय सौधर्म-ईशान नामक कल्प-युगल है ॥१२६॥

ऊणस्स य परिमाणं, बाल-जुदं जोयणाणि इगि-लक्खं ।

उत्तरकुरु - मणुवाणं, बालगेणादिरित्तेणं ॥१३०॥

१०००४० ।

अर्थ—इस कुछ कमका प्रमाण उत्तरकुरुके मनुष्योंके बालाग्रसे अधिक एक लाख चालीस (१०००४०) योजन है ॥१३०॥

सोहम्मीसाणाणं, चरमिदय - केदुदंड - सिहरादो ।

उड्डु असंख-कोडी-जोयण-विरहिद-विबड्ड-रज्जुए ॥१३१॥

चिट्ठेदि कप्प-जुगलं, णामेहि सणक्कुमार-माहिवा ।

तच्चरिमिदय - केदण - बंडाद असंख - जोयणूणेणं ॥१३२॥

रज्जुए अड्डेणं, कप्पो चेट्ठेदि तत्थ बम्हक्खो ।

तम्मेत्ते पत्तेक्कं, संतव - महसुक्कया' सहस्सारो ॥१३३॥

आणव-पाणव-आरण-अच्छुअ-कप्पा ह्वंति उवरुवरि ।

तत्तो असंख - जोयण - कोडीओ उवरि अंतरिवा ॥१३४॥

कप्पातीदा पडसा, एक्करसा ह्वंति ऊण - रज्जुए ।

पडमाए अंतरादो, उवरुवरि ह्वंति अधियाओ ॥१३५॥

अर्थ—सौधर्म-ईशान सम्बन्धी अन्तिम इन्द्रकके ध्वज-दण्डके शिखरसे ऊपर असंख्यात करोड़ योजनोंसे रहित डढ़ (१३) राजूमें सनत्कुमार-माहेन्द्र नामक कल्प-युगल स्थित है । इसके अन्तिम इन्द्रक सम्बन्धी ध्वज-दण्डके ऊपर असंख्यात योजनोंसे कम अर्धराजूमें ब्रह्म नामक कल्प स्थित है । इसके आगे इतने मात्र अर्थात् अर्ध-अर्ध राजूमें ऊपर-ऊपर लान्तव, महाशुक, सहस्रार, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पोंमेंसे प्रत्येक है । इसके आगे असंख्यात-करोड़ योजनोंके अन्तरसे ऊपर कुछ कम एक राजूमें शेष ग्यारह कल्पातीत पटल हैं । इनमें प्रथमके अन्तरसे ऊपर-ऊपरका अन्तर अधिक है ॥१३१-१३५॥

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

कप्पाणं सोमाओ, णिय-णिय-चरिम्मिदयाण धय-वंडा ।

किञ्चूणय - लोयंतो, कप्पातीदाण अवसाणं ॥१३६॥

एवं सोमा-पख्खणा समत्ता ॥१३७॥

अर्थ—कल्पोंकी सोमाएँ अपने-अपने अन्तिम इन्द्रकोंके ध्वज-दण्ड हैं और कुछ कम लोकका अन्त कल्पातीतोंका अन्त है ॥१३६॥

इसप्रकार सोमाकी प्रकृति का वर्णन हुई ॥१३७॥

सौधर्म आदि कल्पोंके आश्रित श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक विमानोंका निर्देश—

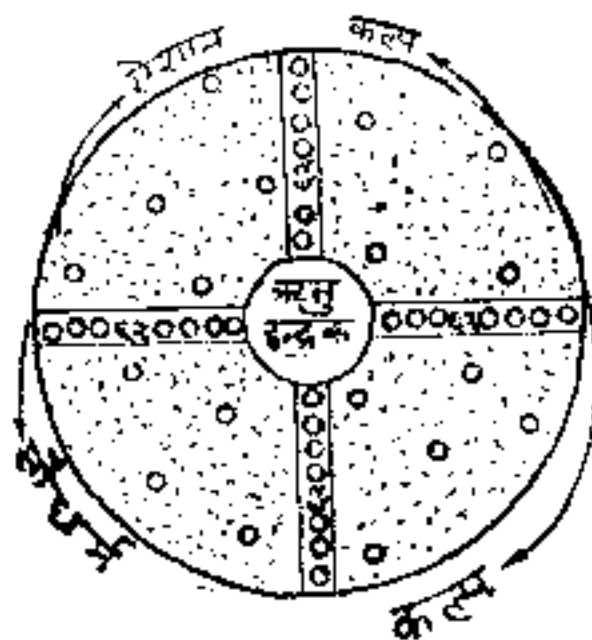
उडु-पहुवि-एकतीसं, एवेसुं पुख्ख-अवर-दक्खिणदो ।

सेढीबद्धा णइरवि-अणल-विसा-ठिव - पइण्णा य ॥१३७॥

सोहम्मकप्प-णामा, तेसुं उत्तर - विसाए सेढिगया ।

मरु - ईसाण - विस - द्विव - पइण्णया होंति ईसाणे ॥१३८॥

अर्थ—ऋतु आदि एकतीस इन्द्रक एवं उनमें पूर्व, पश्चिम और दक्षिणके श्रेणीबद्ध; तथा नैऋत्य एवं आग्नेय दिशामें स्थित प्रकीर्णक, इन्हींका नाम सौधर्मकल्प है । उपर्युक्त (उन) विमानों की उत्तर दिशामें स्थित श्रेणीबद्ध और वायव्य एवं ईशान दिशामें स्थित प्रकीर्णक, ये ईशान कल्पमें हैं ॥१३७-१३८॥



अंजण-पहुवी सत्त य, एवेसि पुख्ख-अवर-दक्खिणदो ।

सेढीबद्धा णइरवि - अणल^१-विस - द्विव-पइण्णा य ॥१३९॥

णामे सनत्कुमारो, तेसुं उत्तर - बिसाए सेढिगया ।

पवणीसाणे^१ संठिद - पइण्णया होति माहिबे ॥१४०॥

अर्थ—अञ्जन आदि सात इन्द्रक एवं उनके पूर्व, दक्षिण और पश्चिमके श्रेणीबद्ध तथा नैऋत्य एवं आग्नेय दिशामें स्थित प्रकीर्णक, इनका नाम सनत्कुमार कल्प है । इन्हींकी उत्तर दिशामें स्थित श्रेणीबद्ध और पवन एवं ईशान दिशामें स्थित प्रकीर्णक, ये माहेन्द्र कल्पमें हैं ॥१३९-१४०॥

रिद्धादी चत्तारो, एवाणं चउ - बिसासु सेढिगया ।

विदिसा-पइण्णयाणि^२, ते कप्पा बम्ह - णामेणं ॥१४१॥

अर्थ—अरिष्टादिक चार इन्द्रकों तथा इनकी चारों दिशाओंके श्रेणीबद्ध और विदिशाओंके प्रकीर्णकोंका नाम ब्रह्म कल्प है ॥१४१॥

बम्हहिवयादिदुवयं, एवाणं चउ - बिसासु सेढिगया ।

विदिसा - पइण्णयाइं, णामेणं संतवो कप्पो ॥१४२॥

अर्थ—ब्रह्महृदयादिक दो इन्द्रकों और इनकी चारों दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध तथा विदिशाओंके प्रकीर्णकोंका नाम लान्तव कल्प है ॥१४२॥

महसुक्क-इंदओ तह, एवस्स य चउ-बिसासु सेढिगया ।

विदिसा - पइण्णयाइं, कप्पो महसुक्क - णामेणं ॥१४३॥

अर्थ—महाशुक्र इन्द्रक तथा इसकी चारों दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध और विदिशाओंके प्रकीर्णकोंका नाम महाशुक्र कल्प है ॥१४३॥

इंदय-सहस्सयारो, एवस्स चउ - बिसासु सेढिगया ।

विदिसा - पइण्णयाइं, होवि सहस्सार - णामेणं ॥१४४॥

अर्थ—सहस्रार इन्द्रक और उसकी चारों दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध एवं विदिशाओंके प्रकीर्णकोंका नाम सहस्रार कल्प है ॥१४४॥

आणव-पहुदो छक्कं, एवस्स य पुब्ब-अवर-वक्खिणदो ।

सेढीबद्धा णइरदि-अणल^३-बिस - द्विव - पइण्णयाणि ॥१४५॥

आणव-आरण-णामा, दो कप्पा होति पाणवच्चुबया ।

उत्तर-बिस-सेढिगया, समीरणीसाण-बिस-पइण्णा य ॥१४६॥

१. द. ब. पवणीसाणं सट्ठिद, क. ब. ठ. पवणीसाण सट्ठिद । २. द. ब. पइण्णयाणं, ब. ठ. पइण्णयाइं । ३. द. ब. क. ज. ठ. अणिल ।

अर्थ—आनत आदि छह इन्द्रकों और इनकी पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण दिशामें स्थित श्रेणीबद्ध तथा नैऋत्य एवं आग्नेय दिशामें स्थित प्रकीर्णकोंका नाम आनत और आरण दो कल्परूप है । इन्हीं इन्द्रकोंकी उत्तर-दिशामें स्थित श्रेणीबद्ध तथा वायव्य एवं ईशान दिशाके प्रकीर्णकोंका नाम प्राणत और अच्युत कल्प है ॥१४५-१४६॥

हेट्टिम-हेट्टिम-पमुहे, एक्केक्क सुदंसणाओ पडलारिण ।

होति ह् एव कमसो, कप्पातीदा ठिवा सव्वे ॥१४७॥

अर्थ—अघस्तन-अघस्तन आदि एक-एकमें सुदर्शनादिक पटल हैं । इसप्रकार क्रमशः सब कल्पातीत स्थित हैं ॥१४७॥

जे सोलस कप्पाणि, केई इच्छंति ताण उवएसे ।

बम्हादि - चउ - दुगेसुं, सोहम्म-दुयं व 'विठ्ठमेदो ॥१४८॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—जो कोई आचार्य सोलह कल्प मानते हैं, उनके उपदेशानुसार ब्रह्मादिक चार युगलों में सौधर्म-युगलके सदृश दिशा-भेद है ॥१४८॥

पाठान्तर ।

सौधर्मादि कल्पोंमें एवं कल्पातीतोंमें स्थित समस्त विमानोंकी संख्याका निर्देश—

बत्तीसट्ठाबीसं, बारस अट्ठं कमेण लक्खारिण ।

सोहम्मादि अउक्के, होति विमाणानि विविहारिण ॥१४९॥

३२००००० । २८००००० । १२००००० । ८००००० ।

अर्थ—सौधर्मादि चार कल्पोंमें तीनों प्रकारके विमान क्रमशः बत्तीस लाख (३२०००००), अट्ठाईसलाख (२८०००००), बारह लाख (१२०००००) और आठ लाख (८०००००) हैं ॥१४९॥

अउ-लक्खारिण बम्हे, पण्णास-सहस्सयाणि लंतवए ।

चात्तीस - सहस्सारिण, कप्पे महसुक्क - णामम्मि ॥१५०॥

४००००० । ५०००० । ४०००० ।

अर्थ—इन्द्रकादिक तीनों प्रकारके विमान ब्रह्म कल्पमें चार लाख (४०००००), आन्तव-कल्पमें पचास हजार (५००००) और महाशुक नामक कल्पमें चालीस हजार (४००००) हैं ॥१५०॥

छस्सेव सहस्राणि, होति सहस्रार-कल्प-नामम् ।
सप्त-सयाणि विमाणा, कल्प-चउवकम्मि आणव-प्पमुहे ॥१५१॥

६००० । ७०० ।

अर्थ—उक्त विमान सहस्रार नामक कल्पमें छह हजार (६०००) और आन्तव प्रमुख चार कल्पोंमें सात सौ (७००) हैं ॥१५१॥

खं-गयण-सत्त-छण्णव-चउ-अट्ठं-क-कमेण इंदयावि-तिए ।
परिसंखा णादव्वा, बावणा - कप्प - पडसेसुं ॥१५२॥

८४९६७०० ।

अर्थ—शून्य, शून्य, सात, छह, नौ, चार और आठ, इस अष्टक क्रमसे अर्थात् चौरासी लाख अधानवै हजार सात सौ (८४९६७००), यह बावन (५२) कल्प-पटलोंमें इन्द्रादिक तीन प्रकारके विमानोंकी (कुल) संख्या है ॥१५२॥

एककारसुत्तर-सयं, हेट्ठिम-गेवेज्ज-तिज-विमाणार्णि ।
मज्झिम - गेवेज्ज - तिए, सत्तव्वहियं सयं होवि ॥१५३॥

१११ । १०७ ।

अर्थ—अधस्तत तीन ग्रंथेयकोंके विमान एक सौ ग्यारह (१११) और मध्यम तीन ग्रंथेयकोंमें एक सौ सात (१०७) विमान हैं ॥१५३॥

एकववहिया णउव्वी, उवरिम-गेवेज्ज-तिय-विमाणार्णि ।
णव - पंच - विमाणार्णि, अणुदिसाणुत्तरेसु कमा ॥१५४॥

९१ । ९ । ५ ।

अर्थ—उवरिम तीन ग्रंथेयकोंके विमान इक्यानवै (९१) और अनुदिश एवं अनुत्तरोंमें क्रमशः नौ और पाँच ही विमान हैं ॥१५४॥

विशेषार्थ—कल्प पटलोंमें स्थित इन्द्रक, अरेणीवद्ध और प्रकीर्णक विमानोंकी कुल संख्या ८४९६७०० है । इसमें नव-ग्रंथेयकोंके (१११ + १०७ + ९१ =) ३०९ विमान तथा अनुदिशोंके ९ और अनुत्तरोंके ५ विमान और मिला देने पर विमानोंका कुल प्रमाण ८४९७०२३ होता है । जिसकी तालिका इसप्रकार है—

क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या	क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों का संख्या
१	सौधर्म कल्प	३२००००० लाख	९	आनत, प्राणत	७००
२	ऐशान ,,	२८००००० ,,		आरण, अच्युत	
३	सानत्कुमार ,,	१२००००० ,,	१०	अधस्तन ग्रंथे०	१११
४	माहेन्द्र ,,	८००००० ,,	११	मध्यम ,,	१०७
५	ब्रह्मा ,,	४००००० ,,	१२	उपरिम ,,	६१
६	लान्तव ,,	५०००० हजार	१३	अनुदिश	६
७	सहाशुक ,,	४०००० ,,		अनुत्तर	५
८	सहस्राय ,,	६००० ,,	योग = ८४६७०२३		

सौधर्मादि कल्प स्थित अश्लीबद्ध विमानों की संख्या प्राप्त करने हेतु मुख
एवं गच्छका प्रमाण—

छासीबी-अधिय-सयं, बासठ्ठी सत्त-विरहिदेवक-सयं ।
इगितीसं छप्पणउवी, सीवी बाहत्तरी य अडसठ्ठी ॥१५५॥
अडसठ्ठी चालीसं, अडवीसं सोलसं च अउ अउरो ।
सोहम्मावी - अट्टसु, आणव - पट्टवीसु अउसु कमा ॥१५६॥
हेट्ठिम-मज्झिम-उपरिम-नेवेज्जेसुं अणुहिसादि-कुणे ।
सेढीबद्ध - पमाण - प्यास - णट्ठं इमे पभवा ॥१५७॥

१८६ । ६२ । ९३ । ३१ । ९६ । ८० । ७२ । ६८ । ६४ । ४० । २८ । १६ । ४ । ४ ।

अर्थ—सौधर्मादिक आठ, आनत आदि चार तथा अधस्तन, मध्यम एवं उपरिम ग्रंथेयक
और अनुदिशादिक दो में अश्लीबद्धोंका प्रमाण लानेके लिए क्रमशः एक सौ छिप्पासी, बासठ, सात कम
एक सौ (९३), इकतीस, छप्पानबै, अस्सी, बहत्तर, अडसठ, चौंसठ, चालीस, अट्ठाईस, सोलह, चार
और चार, यह प्रभव (मुख) का प्रमाण है ॥१५५-१५७॥

सोहम्मावि-चउवके, तिय-एक्क-तियेक्कयाणि रिणप-चओ ।

तेहेसुं कम्पेसुं, चउ - जल - रुवाणि णावग्वा ॥१५८॥

३ । १ । ३ । १ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

अर्थ—सौधर्मादिक चार कल्पोंमें तीन, एक, तीन और एक हानि चय है । शेष कल्पोंमें चार-चार रूप जानना चाहिए ॥१५८॥

इगितीस-सत्त-चउ-वुग-एक्केक्क-छ-ति-ति-तिय-एक्केक्का ।

ताणं कमेण गच्छा, बारस - ठाणेसु ठविवग्वा ॥१५९॥

३१ । ७ । ४ । २ । १ । १ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ ।

अर्थ—इकतीस, सात, चार, दो, एक, एक, छह, तीन, तीन, तीन, एक और एक, इन बारह स्थानोंमें गच्छ रखना चाहिए ॥१५९॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथा १५९ में जो गच्छ संख्या दर्शाई गई है वही प्रत्येक युगलके पटलोंकी अर्थात् इन्द्रक विमानोंकी संख्या है । यथा—सौधर्म युगलमें ३१ इन्द्रक, सानत्कुमार युगलमें ७, ब्रह्म कल्प में ४, लान्तव कल्पमें २, महाशुक कल्पमें १, सहस्रार कल्पमें १, आनतादि चार कल्पोंमें ६, अधस्तन तीन ग्रैवेयकोंमें ३, मध्यम तीन ग्रैवेयकोंमें ३, उपरिम तीन ग्रैवेयकोंमें ३, नौ अनुदिशोंमें १ तथा पाँच अनुत्तरोमें १ इन्द्रक विमान हैं । अपने-अपने युगलके गच्छका भी यही प्रमाण है ।

सौधर्म कल्पमें एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंका प्रमाण ६२ है, इनमेंसे स्व-गच्छ (३१) घटा देनेपर (६२ — ३१) = ३१ शेष रहे । यही सानत्कुमार युगलके प्रथम पटलमें एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंका प्रमाण है । इसीप्रकार पूर्व-पूर्व युगलके प्रथम पटलके एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंके प्रमाणमेंसे अपने-अपने पटल प्रमाण गच्छ घटानेपर उत्तरोत्तर कल्पोंके प्रथम पटलके एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंका प्रमाण प्राप्त होता है ।

यथा—सौधर्मेशानमें ६२, सानत्कुमार - माहेन्द्रमें (६२ — ३१) = ३१, ब्रह्मकल्पमें (३१ — ७) = २४, लान्तव कल्पमें (२४ — ४) = २०, महाशुकमें (२० — २) = १८, सहस्रारमें (१८ — १) = १७, आनतादि चार कल्पोंमें (१७ — १) = १६, अधोग्रैवेयकमें (१६ — ६) = १०, मध्यम ग्रैवेयकमें (१० — ३) = ७, उपरिम ग्रैवेयकमें (७ — ३) = ४ और अनुदिशोंमें (४ — ३) = १ श्रेणीबद्ध विमान एक दिशा सम्बन्धी है ।

पूर्व, पश्चिम और दक्षिण, इन तीन दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध दक्षिणेन्द्रके और उत्तर दिशा स्थित श्रेणीबद्ध उत्तरेन्द्रके आधीन होते हैं अतः उपर्युक्त श्रेणीबद्ध विमानोंके प्रमाणकी

दक्षिणेन्द्र अपेक्षा ३ से और उत्तरेन्द्र अपेक्षा एकसे गुणा करनेपर तथा अहाँ दक्षिणेन्द्र-उत्तरेन्द्रकी कल्पना नहीं है वहाँ चारसे गुणा करनेपर गाथा १५५-१५७ में कहे हुए आदिघन (मुख) का प्रमाण प्राप्त होता है। यही ३, १ और ४ उत्तरधन है। इन्हींको हानिचय भी कहते हैं (गाथा १५८), क्योंकि प्रत्येक पटलमें उपर्युक्त क्रमसे ही श्रेणीबद्ध घटते हैं।

गा० १५५ — १५७ में कहे हुए आदिघन (मुख) का प्रमाण—

सौधर्मकल्पमें ($६२ \times ३ =$) १८६, ईशानकल्पमें ($६२ \times १ =$) ६२, सानत्कुमारमें ($३१ \times ३ =$) ९३, माहेन्द्रमें ($३१ \times १ =$) ३१, ब्रह्मकल्पमें ($२४ \times ४ =$) ९६, सान्तव कल्पमें ($२० \times ४ =$) ८०, महाशुक्रमें ($१८ \times ४ =$) ७२, सह० में ($१७ \times ४ =$) ६८, आनतादि चारमें ($१६ \times ४ =$) ६४, अधोग्रैवे० में ($१० \times ४ =$) ४०, मध्यम ग्रैवे० में ($७ \times ४ =$) २८, उपरिम ग्रैवेयक में ($४ \times ४ =$) १६ और नव अनुदिशोंमें ($१ \times ४ =$) ४ आदिघनों (मुखों) का प्रमाण है।

गाथा १५९ में कहे हुए गच्छका प्रमाण अपने-अपने पटल (३१, ७, ४, २, १, १, ६, ३, ३ और १) प्रमाण होता है।

इसप्रकार आदिघन (हानिचय), उत्तरधन और गच्छका ज्ञान हो जानेपर दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्रके श्रेणीबद्धोंका सर्व-संकलित धन प्राप्त करनेकी विधि बताते हैं।

संकलित धन प्राप्त करनेकी विधि—

गच्छं चएण गुणितं, दुगुणित-भुह-मेलितं चय-विहीणं ।

गच्छद्वेणप्य - हवे, संकलितं एत्थ वादब्बं ॥१६०॥

अर्थ—दुगुणित मुखमें चय जोड़कर उसमेंसे चय गुणित गच्छ घटा देनेपर जो शेष रहे उसे गच्छके अर्धभागसे गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो वह यहाँ संकलित धन जानना चाहिए ॥१६०॥

विशेषार्थ—दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्रके श्रेणीबद्धोंका सर्व संकलित धन प्राप्त करनेके लिए गाथा सूत्र इसप्रकार है—

प्रत्येक कल्पके श्रेणीबद्ध = $[(\text{मुख} \times २ + \text{चय}) - (\text{गच्छ} \times \text{चय})] \times \frac{\text{गच्छ}}{२}$
सभी कल्पाकरूपोंके अपने-अपने श्रेणीबद्ध विमान इसी सूत्रानुसार प्राप्त होंगे।

सभी कल्पाकल्पोंके पृथक्-पृथक् श्रेणीबद्ध और इन्द्रक विमानोंका प्रमाण—

तेवालीस-सयाणि, इगिहत्तरि - उत्तराणि सेडिगया ।

सोहम्म - णाम - कप्पे, इगितीसं इंदया होंति ॥१६१॥

४३७१ । ३१ ।

अर्थ—सौधर्मनामक कल्पमें तैंतालीस सौ इकहत्तर श्रेणीबद्ध विमान और इकतीस (३१) इन्द्रक विमान हैं ॥१६१॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथा-सूत्रानुसार सौधर्मकल्पके श्रेणीबद्ध = [(१८६ × २ + ३) — (३१ × ३)] × ३१ = ४३७१ हैं ।

सप्तावण्णा चोदहस - सयाणि सेडिगवाणि ईसाणे ।

पंच - सया अडसीदी, सेडिगया सत्त इंदया तदिए ॥१६२॥

१४५७ । ५८८ । ७ ।

अर्थ—ईशानकल्पमें चौदह सौ सप्तावन श्रेणीबद्ध हैं । तृतीय (सानत्कुमार) कल्पमें पाँचसौ अठासी श्रेणीबद्ध और सात (७) इन्द्रक विमान हैं ॥१६२॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त ३१ इन्द्रक विमानोंके केवल उत्तर दिशागत श्रेणीबद्ध विमान ही इस कल्पके आधीन हैं, अतएव यहाँके मुख्यका प्रमाण ६२, चय १ और गच्छ ३१ है । गा० १६० के सूत्रानुसार ईशानकल्पके श्रेणीबद्ध = [(६२ × २ + १) — (३१ × १)] × ३१ = १४५७ हैं ।

सानत्कुमारके श्रेणीबद्ध = [(९३ × २ + ३) — (७ × ३)] × ७ = ५८८ हैं ।

माहिंदे सेडिगया, छण्णउदी - जुद-सयं च बम्हम्मि ।

सट्ठी - जुद - ति - सयाइं, सेडिगया इंदय - चउक्कं ॥१६३॥

१९६ । ३६० । ४ ।

अर्थ—माहेन्द्रकल्पमें एक सौ छयात्रबैं श्रेणीबद्ध हैं । ब्रह्मकल्पमें तीन सौ साठ श्रेणीबद्ध और चार इन्द्रक विमान हैं ॥१६३॥

माहेन्द्रके श्रेणीबद्ध = [(३१ × २ + १) — (७ × १)] × ३ = १९६

ब्रह्मकल्पके श्रेणी० = [(९६ × २ + ४) — (४ × ४)] × ३ = ३६०

छण्णवभहिय - सयं, सेडिगया इंदया बुवे छट्ठे ।

महसुक्के बाहत्तरि, सेडिगया इंदयो एक्को ॥१६४॥

१५६ । २ । ७२ । १ ।

अर्थ—छठे (लान्तव) कल्पमें एक सौ छप्पन श्रेणीबद्ध और दो इन्द्रक हैं तथा महाशुक्र-कल्पमें बहत्तर श्रेणीबद्ध और एक इन्द्रक है ॥१६४॥

लान्तवकल्पमें श्रेणीबद्ध = $[(८० \times २ + ४) - (२ \times ४)] \times ३ = १५६$ हैं ।

महाशुक्रकल्पमें श्रेणीबद्ध = $[(७२ \times २ + ४) - (१ \times ४)] \times ३ = ७२$ हैं ।

अडसट्टी सेढिगया, एक्को चिचय इंदयं सहस्सारे ।

चउवीसुत्तर-ति-सया, छ-इंदया आणवानिय-जज्जके ॥१६५॥

६८ । १ । ३२४ । ६ ।

अर्थ—सहस्रारमें अडसठ श्रेणीबद्ध और एक इन्द्रक है तथा आनतादिक चारमें तीन सौ चौबीस श्रेणीबद्ध और छह इन्द्रक हैं ॥१६५॥

सह० कल्पमें श्रेणीबद्ध = $[(६८ \times २ + ४) - (१ \times ४)] \times ३ = ६८$ हैं ।

आनतादि चारमें श्रेणीबद्ध = $[(६४ \times २ + ४) - (६ \times ४)] \times ३ = ३२४$ हैं ।

हेट्ठिम-मज्झिम-उपरिम-गेवेज्जाणं च सेढिगय-संखा ।

अणुभहि-एक्क-सयं, कमसो बाहत्तरो य छत्तीसं ॥१६६॥

१०८ । ७२ । ३६ ।

अर्थ—अधस्तन, मध्यम और उपरिम श्रेणियोंके श्रेणीबद्ध विमानोंकी संख्या क्रमशः एक, सौ आठ, बहत्तर और छत्तीस है ॥१६६॥

अधस्तन श्रे० के श्रेणीबद्ध = $[(४० \times २ + ४) - (३ \times ४)] \times ३ = १०८$ हैं ।

मध्यम श्रे० के श्रेणीबद्ध = $[(२८ \times २ + ४) - (३ \times ४)] \times ३ = ७२$ हैं ।

उपरिम श्रे० के श्रेणीबद्ध = $[(१६ \times २ + ४) - (३ \times ४)] \times ३ = ३६$ हैं ।

ताणं गेवेज्जाणं, पत्तेक्कं तिण्णि इंदया चउरो ।

सेढिगयाण अणुदिस - अणुत्तरे इंदया हु एक्केक्का ॥१६७॥

अर्थ—उन श्रेणियोंमेंसे प्रत्येकमें तीन इन्द्रक विमान हैं । अनुदिश और अनुत्तरमें चार (चार) श्रेणीबद्ध और एक-एक इन्द्रक विमान हैं ॥१६७॥

अनुदिशोंमें श्रेणीबद्ध = $[(४ \times २ + ४) - (१ \times ४)] \times ३ = ४$ हैं ।

प्रकीर्णक विमानोंका अवस्थान और उनकी पृथक्-पृथक् संख्या—

सेढीणं विचचारं, पइण्णय - कुसुमोवभाणं^१ - संठाणा ।

होति पइण्णय - एणामा, सेढिवय-हीण-रासि-समा ॥१६८॥

अर्थ—श्रेणीबद्ध विमानोंके बीचमें बिखरे हुए कुसुमोंके सदृश आकारवाले प्रकीर्णक नामक विमान होते हैं । इनकी संख्या श्रेणीबद्ध और इन्द्रकोसे हीन अपनी-अपनी राशिके समान है ॥१६८॥

इगितोसं लक्खाणि, पणणउवि-सहस्स पण-सयाणि पि ।

अट्टाणउवि - जुवाणि, पइण्णया होति सोहम्मे ॥१६९॥

३१९५५६८ ।

अर्थ—सौधर्मकल्पमें इकतीस लाख पंचानवें हजार पाँच सौ अट्टानवें (३१९५५६८) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१६९॥

सत्तावीसं लक्खा, अट्टणउवि-सहस्स पण-सयाणि पि ।

तेवाल - उत्तराई^२, पइण्णया होति ईसाणे ॥१७०॥

२७९८५४३ ।

अर्थ—ईशानकल्पमें सत्ताईस लाख अट्टानवें हजार पाँच सौ तैंतालीस (२७९८५४३) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७०॥

एक्कारस-लक्खाणि, णवणउवि-सहस्स चउ-सयाणि पि ।

पंचुत्तराइ कप्पे, सणक्कुमारे पइण्णया होति ॥१७१॥

११९९४०५ ।

अर्थ—सानत्कुमार कल्पमें ग्यारह लाख निन्यानवें हजार चार सौ पाँच (११९९४०५) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७१॥

सप्त त्रिचय लक्खाणि, णवणउवि-सहस्स अट्टसयाणं पि ।

चउहत्तराइ^३ कप्पे, पइण्णया होति माहिदे ॥१७२॥

७९९८०४ ।

अर्थ—माहेन्द्रकल्पमें सात लाख निन्यानवें हजार आठ सौ चार (७९९८०४) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७२॥

छत्तीसुत्तर-छ-सया, णवणउवि-सहस्सयाणि तिय-लक्खा ।

एवाणि बम्ह - कप्पे, होति पइण्णय - विमाणाणि ॥१७३॥

३९९६३६ ।

अर्थ—ब्रह्मकल्पमें तीन लाख नित्यानवी हजार छह सौ छत्तीस (३९९६३६) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७३॥

उणवण्ण-सहस्सा अड-सयाणि बावाल ताणि लंतवए ।

उणवण्ण - सहस्सा अड-सयाणि सगवीस महसुक्के ॥१७४॥

४९८४२ । ३९९२७ ।

अर्थ—लान्तव कल्पमें उनंचास हजार आठ सौ बयालीस (४९८४२) और महाशुक्रमें उनतालीस हजार नौ सौ सत्ताईस (३९९२७) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७४॥

उणसट्ठि-सया इगितीस-उत्तरा होति ते सहस्सारे ।

सत्तरि-जुव-ति-सयाणि, कप्प-चउवके पइण्णया सेसे ॥१७५॥

५९३१ । ३७० ।

अर्थ—वे प्रकीर्णक विमान सहस्रार कल्पमें पांच हजार नौ सौ इकतीस (५९३१) और शेष चार कल्पोंमें तीन सौ सत्तर (३७०) हैं ॥१७५॥

अह हेट्ठिम-गेवेज्जे, ण होति तेसि पइण्णय-विमाणा ।

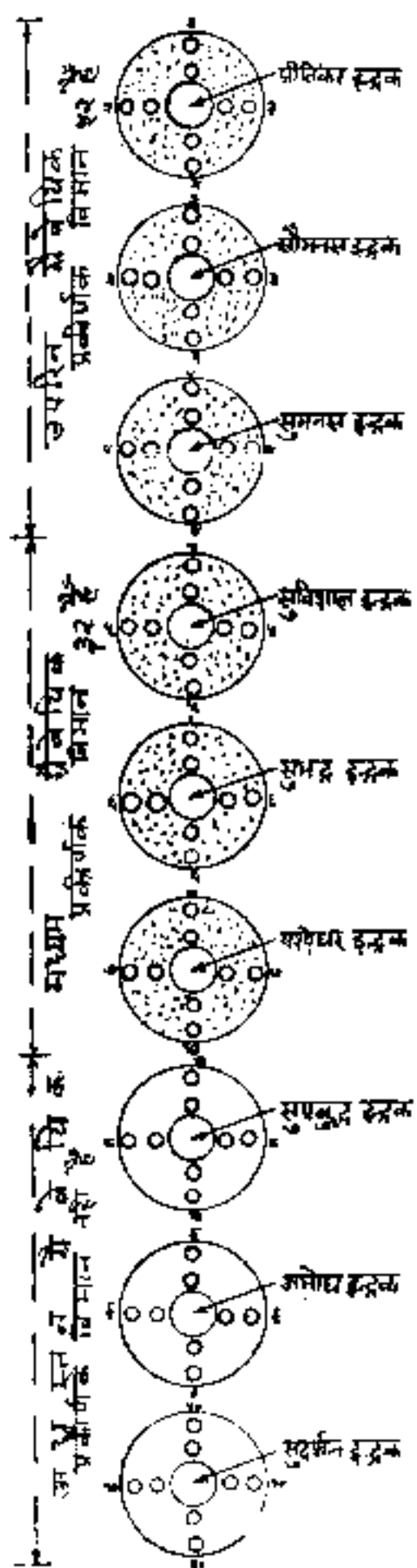
बत्तीसं मज्झिक्खले, उवरिमए होति बावणा ॥१७६॥

० । ३२ । ५२ ।

अर्थ—अवस्तन ग्रंथेयकमें उनके प्रकीर्णक विमान नहीं हैं । मध्यम ग्रंथेयकमें बत्तीस (३२) और उपरिम ग्रंथेयकमें बावन (५२) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७६॥

(गाथा १६६ और १७६ से सम्बन्धित चित्र इसप्रकार है)

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]



ततो अणुहिसाए, चत्तारि पइण्णया वर - विमाणा ।

तेसद्धि - अहिण्पाए, पइण्णया णत्थि अत्थि सेद्धिगया ॥१७७॥

अर्थ—इसके आगे अनुदिशोंमें चार उत्तम प्रकीर्णक विमान हैं । तिसठवें पदलमें प्रकीर्णक नहीं हैं । श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥१७७॥

विशेषार्थ—श्रेणीबद्ध विमानोंके अन्तरालमें पंक्ति हीन, बिखरे हुए पुष्पोंके सदृश यत्र तत्र स्थित विमानोंको प्रकीर्णक विमान कहते हैं । प्रत्येक स्वर्गमें विमानों की जो सम्पूर्ण संख्या है, उसमेंसे अपने-अपने पदलोंके इन्द्रक और श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या कम करने पर जो अवशेष रहे वही प्रकीर्णकोंका प्रमाण है । यथा—

कल्प-नाम	सर्व विमान संख्या—	इन्द्रक + श्रेणीबद्ध =	प्रकीर्णक
सौधमं कल्प	३२०००००—	(३१ + ४३७१) =	३१९५५८८
ऐशान ,	२८०००००—	(० + १४५७) =	२७९८५४३
सानत्कुमार	१२०००००—	(७ + ५८८) =	११९९४०५
माहेन्द्रकल्प	८०००००—	(० + १९६) =	७९९८०४
ब्रह्म-कल्प	४०००००—	(४ + ३६०) =	३९९६३६
लान्तव कल्प	५००००—	(२ + १५६) =	४९८४२
महाशुक	४००००—	(१ + ७२) =	३९९२७
सहस्रार	६०००—	(१ + ६८) =	५९३९
आनतादि ४	७००—	(६ + ३२४) =	३३०
अधोग्रं वेयक	१११—	(३ + १०८) =	०
मध्यम ,	१०७—	(३ + ७२) =	३२
उपरिम ,	६१—	(३ + ३६) =	५२
अनुदिश	६—	(१ + ४) =	४
अनुत्तर	५—	(१ + ४) =	०

प्रकारान्तरसे विमान संख्या—

जे सोलस - कप्पाइ, केई इच्छंति ताण उवएसे ।

तस्सि तस्सि ओच्छं, परिमाणणि विमाणाणं ॥१७८॥

अर्थ—जो कोई सोलह कल्प मानते हैं उनके उपदेशानुसार उन-उन कल्पोंमें विमानोंका प्रमाण कहते हैं ॥१७८॥

बत्तीसट्ठावीस^१, बारस अट्ठ^२ कमेण लक्खाणि ।

सोहम्मावि - चउक्के, होति विमाणाणि विविहाणि ॥१७९॥

३२००००० । २८००००० । १२००००० । ८००००० ।

अर्थ—सोधमदि चार कल्पोंमें क्रमशः बत्तीस लाख (३२०००००), अट्ठाईस लाख (२८०००००), बारह लाख (१२०००००) और आठ लाख (८०००००) प्रमाण विविध प्रकारके विमान हैं ॥१७९॥

छण्णउवि - उत्तराणि, दो-लक्खाणि हवन्ति बम्हम्मि ।

बम्हुत्तरम्मि लक्खा, दो वि य छण्णउवि-परिहीणा ॥१८०॥

२०००९६ । १९९९०४ ।

अर्थ—ब्रह्मकल्पमें दो लाख छयासब (२०००९६) और ब्रह्मोत्तर कल्पमें छयासब कम दो लाख (१९९९०४) विमान हैं ॥१८०॥

पणुवीस-सहस्साइ, बादाल-जुदा य होति लंतघए ।

चउवीस-सहस्साणि, एव - सय - अडवण्ण कापिट्ठे ॥१८१॥

२५०४२ । २४९५८ ।

अर्थ—लान्तव कल्पमें पच्चीस हजार बयालीस (२५०४२) और कापिष्ठ कल्पमें चौबीस हजार नौ सौ अट्ठावन (२४९५८) विमान हैं ॥१८१॥

वीसुत्तराणि होति ठु, बीस-सहस्साणि सुक्क-कप्पम्मि ।

ताइ चिय महसुक्के, बीसूणाणि विमाणाणि ॥१८२॥

२००२० । १९९८० ।

अर्थ—शुक कल्पमें बीस अधिक बीस हजार (२००२०) और महाशुक कल्पमें बीस कम बीस हजार (१९९८०) विमान हैं ॥१८२॥

उणवीस-उत्तराणि, तिष्णि-सहस्राणि सदर-कप्पम्मि ।
कप्पम्मि सहससारे, उणतीस - सयाणि इगिसीदी ॥१८३॥

३०१९।२९८१।

अर्थ—शतार कल्पमें तीन हजार उन्नीस (३०१९) और सहस्रार कल्पमें दो हजार नौ सौ इक्कासी (२९८१) विमान हैं ॥१८३॥

आणव-पाणव-कप्पे, पंच-सया सट्ठि-विरहिवा होंति ।
आरण-अरुचुद-कप्पे, कु - सयाणि सट्ठि - जुत्ताणि ॥१८४॥

४४०।२६०।

अर्थ—आनत-प्राणत कल्पमें साठ कम पाँच सौ (४४०) और आरण-अच्युत कल्पमें दो सौ साठ (२६०) विमान हैं ॥१८४॥

अहवा आणव-जुगले, चत्तारि सयाणि वर-विमाणाणि ।
आरण - अरुचुद - कप्पे, सयाणि तिष्णि य हवन्ति ॥१८५॥

पाठान्तरम् ।

४००।३००।

अर्थ—अथवा, आनत युगलमें चार सौ (४००) और आरण-अच्युत कल्पमें तीन सौ (३००) उत्तम विमान हैं ॥१८५॥

संख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंकी संख्या—

कप्पेसुं संखेज्जो, विक्खंभो रासि-पंचम-विभागो ।
णिय-णिय-संखेज्जूणा, निय-णिय-रासी असंखेज्जो ॥१८६॥

अर्थ—कल्पोंमें राशिके पाँचवें भाग प्रमाण विमान संख्यात योजन विस्तारवाले हैं और अपने-अपने संख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंकी राशिसे कम अपनी-अपनी राशि प्रमाण असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥१८६॥

संखेज्जो विक्खंभो, चालीस-सहस्सयाणि छल्लक्खा ।
सोहम्मो ईसाणे, चाल - सहस्सूण - छल्लक्खा ॥१८७॥

६४००००।५६००००।

अर्थ—सौधर्म कल्पमें संख्यात योजन विस्तार वाले विमान छह लाख चालीस हजार (६४००००) और ईशान कल्पमें चालीस हजार कम छह लाख (५६००००) हैं ॥१८७॥

चालीस-सहस्राणि, दो-लक्षाणि सणवकुमारम्भि ।

सट्ठि - सहस्सभहियं, माहिंवे एक - लक्षाणि ॥१८८॥

६४०००० । ५६०००० ।

अर्थ—सानत्कुमार कल्पमें संख्यात योजन विस्तार वाले विमान दो लाख चालीस हजार (२४००००) हैं और माहेन्द्रकल्पमें एक लाख साठ हजार (१६०००० विमान) हैं ॥१८८॥

बम्हे' सीदि-सहस्सा, लंतव-कप्पम्भि दस-सहस्राणि ।

अट्ठ सहस्सा बारस - सयाणि महसुक्कए सहस्सारे ॥१८९॥

८०००० । १००००० । ८०००० । १२००० ।

अर्थ—ब्रह्म कल्पमें संख्यात योजन विस्तार वाले विमान अस्सी हजार (८००००), लान्तव कल्पमें दस हजार (१००००), महाशुक्रमें आठ हजार (८०००) और सहस्राह कल्पमें बारह सौ (१२००) हैं ॥१८९॥

आणव-पाणव-आरण-अच्युव-धामेसु चउसु कप्पेसु' ।

संखेज्ज - रुंद - संखा, चालभहियं सयं होवि ॥१९०॥

१४० ।

अर्थ—आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक चार कल्पोंमें संख्यात योजन विस्तार वाले विमानोंकी संख्या एक सौ चालीस (१४०) है ॥१९०॥

तिय-अट्ठारस-सत्तरस-एक-एककाणि तस्स परिमाणं ।

हेट्ठिम-भज्जिम-उवरिम-गेवेज्जेसु' अणुदिसादि-जुगे ॥१९१॥

३ । १८ । १७ । १ । १ ।

अर्थ—अधस्तन, मध्यम और उपरिम संवेयक तथा अनुदिशादि युगलमें संख्यात योजन विस्तार वाले विमानोंका प्रमाण क्रमशः तीन, अठारह, सत्तरह एक और एक है ॥१९१॥

असंख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंका प्रमाण—

पणुवीसं लवखाणि, सट्ठि-सहस्साणि सो असंखेज्जो ।
सोहम्मे ईसाणे, लवखा बावीस चालय - सहस्सा ॥१९२॥
२५६०००० । २२४०००० ।

अर्थ—असंख्यात योजन विस्तारवाले वे विमान सौधर्म कल्पमें पच्चीस लाख साठ हजार (२५६००००) और ईशान कल्पमें बाईस लाख चालीस हजार (२२४००००) हैं ॥१९२॥

सट्ठि-सहस्स-जुवाणि, णव-लवखाणि सणक्कुमारम्मि ।
चालीस - सहस्साणि, माहिंवे छच्च लवखाणि ॥१९३॥
९६०००० । ६४०००० ।

अर्थ—असंख्यात योजन विस्तार वाले वे विमान सनत्कुमार कल्पमें नौ लाख साठ हजार (९६००००) और माहेन्द्रकल्पमें छह लाख चालीस हजार (६४००००) हैं ॥१९३॥

वीस-सहस्स ति-लवखा, चाल-सहस्साणि बम्ह-संतवए ।
बत्तीस - सहस्साणि, महसुक्के^१ सो असंखेज्जो ॥१९४॥
३२०००० । ४००००० । ३२०००० ।

अर्थ—वे असंख्यात योजन विस्तारवाले विमान ब्रह्म कल्पमें तीन लाख बीस हजार (३२००००), सान्तव कल्पमें चालीस हजार (४०००००) और महाशुक्रमें बत्तीस हजार (३२००००) हैं ॥१९४॥

चत्तारि सहस्साणि, अट्ठ-सयाणि तथा सहस्सारे ।
आणव-पहुवि-चउक्के, पंच - सया सट्ठि - संजुत्ता ॥१९५॥
४८०० । ५६० ।

अर्थ—वे विमान सहस्सार कल्पमें चार हजार आठ सौ (४८००) तथा आनतादि चार कल्पोंमें पाँच सौ साठ (५६०) हैं ॥१९५॥

अट्ठत्तरमेक्क-सयं, उणणउवी सत्तरो य चउ-अहिया ।
हेट्ठिम - मज्झिम - उयरिम - गेवेज्जेसु^२ असंखेज्जो ॥१९६॥
१०८ । ८९ । ७४ ।

अर्थ—असंख्यात योजन विस्तारवाले विमान अष्टस्तन, मध्यम और उपरिम श्रेयकमें क्रमशः एक सौ आठ, नवासी और चौहत्तर हैं ॥१९६॥

अट्ट अणुदिस-णामे, बहु-रयणमयाणि अर-विमानाणि ।

चत्वारि अणुत्तरए, होंति, असंखेज्ज - विस्थारा ॥१९७॥

८ । ४ ।

अर्थ—असंख्यात विस्तारवाले बहुत रत्नमय उत्तम विमान अनुदिश नामक पटलमें आठ और अनुत्तरोमें चार हैं ॥१९७॥

विमान तलोके बाहृत्यका प्रमाण—

एककरस-सया इगिबीस-उत्तरा जोयणाणि पत्तोक्कं ।

सोहम्मीसाणेषु, विमाण - तल - बहुल - परिमाणं ॥१९८॥

११२१ ।

अर्थ—सौधर्म और ईशानकल्पमेंसे प्रत्येकमें विमानतलके बाहृत्यका प्रमाण ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजन है ॥१९८॥

बावीस - जुव - सहस्सं^१, माहिव-सणक्कुमार-कप्पेसुं ।

तेवीस - उत्तराणि, सयाणि णव बम्ह - कप्पम्मि ॥१९९॥

१०२२ । ६२३ ।

अर्थ—विमानतल-बाहृत्यका प्रमाण सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पमें एक हजार बाईस (१०२२) और ब्रह्म कल्पमें ती सौ तेईस (९२३) योजन है ॥१९९॥

चउवीस-जुवट्ट-सया, लंतवए पंचवीस सत्त - सया ।

महसुवके छब्बीसं, छच्च - सयाणि सहस्तारे ॥२००॥

८२४ । ७२५ । ६२६ ।

अर्थ—विमानतल बाहृत्य लान्तव कल्पमें आठ सौ चौबीस (८२४), महाशुक्रमें सात सौ पञ्चीस (७२५) और सहस्रारमें छह सौ छब्बीस (६२६) योजन है ॥२००॥

आणव-पहुदि-^२चउवके, पंच-सया सचवीस-अभहिया ।

अउवीस चउ - सयाणि, हेड्डिम - गेवेज्जए होंति ॥२०१॥

५२७ । ४२८ ।

अर्थ—विमानतल-बाह्य आनतादि चार कल्पोंमें पाँच सौ सत्ताईस (५२७) और अधस्तन ग्रैवेयकमें चार सौ अट्ठाईस (४२८) योजन है ॥२०१॥

उणतीसं तिण्णि-सया, मज्झिमए तीस-अहिय-कु-सयाणि ।

उपरिमए एक - सयं, इगितीस अणुद्विसादि - बुगे ॥२०२॥

३२९ । २३० । १३१ ।

अर्थ—विमानतल बाह्य मध्यम ग्रैवेयकमें तीन सौ उनतीस (३२९), उपरिम ग्रैवेयकमें दो सौ तीस (२३०) और अनुदिशादि दो (अनुदिश और अनुत्तर) में एक सौ इकतीस (१३१) योजन है ॥२०२॥

उपयुक्त विमानोंका प्रमाण और तल-भागके बाह्य प्रमाण की तालिका इसप्रकार है—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्र.सं.	नाम	संख्यात यो० विस्तार वालों का प्रमाण + गा० १८७-१९१	असंख्यात यो० वि० वालों का प्रमाण = गा० १९२-१९७	विमानोंका कुल प्रमाण गा० १४९-१५४	विमान तल का बाहुल्य गा० १९८-२०२
१	सौधर्म कल्प	६४०००० +	२५६०००० =	३२०००००	११२१ यो०
२	ऐशान कल्प	५६०००० +	२२४०००० =	२८०००००	११२१ यो०
३	सनत्कुमार कल्प	२४०००० +	९६०००० =	१२०००००	१०२२ यो०
४	माहेन्द्र कल्प	१६०००० +	६४०००० =	८०००००	१०२२ यो०
५	ब्रह्म कल्प	८०००० +	३२०००० =	४०००००	९२३ यो०
६	लाग्तव कल्प	१०००० +	४०००० =	५००००	८२४ यो०
७	महाशुक्र कल्प	८००० +	३२००० =	४००००	७२५ यो०
८	सहस्रार कल्प	१२०० +	४८०० =	६०००	६२६ यो०
९	आनतादि ४	१४० +	५६० =	७००	५२७ यो०
१०	अधो प्रेवे०	३ +	१०८ =	१११	४२८ यो०
११	मध्यम ,,	१८ +	८६ =	१०७	३२६ यो०
१२	उपरिम ,,	१७ +	७४ =	९१	२३० यो०
१३	अनुदिश	१ +	८ =	६	१३१ यो०
१४	अनुत्तर	१ +	४ =	५	१३१ यो०

स्वर्ग विमानोंका वर्ण—

सोहम्मीसाणानं, सव्व - विमाणेसु पंच - वण्णाणि ।

कसणेण वज्जिवाणि, सणक्कुमारादि - जुगलम्मि ॥२०३॥

अर्थ—सौधर्म और ईशान कल्पके सब विमान पाँचों वर्ण वाले तथा सनत्कुमारादि युगलमें कृष्ण वर्णसे रहित शेष चार वर्णवाले हैं ॥२०३॥

णीलेण वज्जिवाणि, बम्हे संतवए णाम कप्पेसु ।

रसेण विरहिवाणि, महसुक्के तह सहस्रारे ॥२०४॥

अर्थ—ब्रह्म और लान्तव नामक कल्पोंमें कृष्ण एवं नीलसे रहित तीन वर्णवाले तथा महाशुक्र और सहस्रारकल्पमें रक्त वर्णसे भी रहित शेष दो वर्ण वाले विमान हैं ॥२०४॥

आणद-पाणद-आरण-अच्युद-गेवेज्जयादिय-विमाणा ।

ते सव्वे मुत्ताहल - मयंक - कुंदुज्जला होंति ॥२०५॥

अर्थ—आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और गेवेयकादिके वे सब विमान मुक्ताफल, मृगांक अथवा कुन्द पुष्प सदृश उज्ज्वल हैं ॥२०५॥

विशेषार्थ—सौधर्मेशान कल्पोंके विमान पाँच वर्णवाले हैं । सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंके विमान कृष्ण बिना शेष चार वर्ण वाले हैं । ब्रह्म और लान्तव कल्पोंके विमान कृष्ण एवं नील बिना तीन वर्ण वाले हैं । महाशुक्र और सहस्रार कल्पोंके विमान कृष्ण, नील एवं रक्त वर्णसे रहित दो वर्णवाले हैं और आनतादिसे लेकर अनुत्तर पर्यन्तके सभी विमान कृष्ण, नील, लाल एवं पीत वर्णसे रहित मात्र शुक्ल वर्णके होते हैं ।

विमानोंके आधारका कथन—

सोहम्म-दुग-विमाणा, घणस्स-रुवस्स उवरि सलिलस्स ।

चेट्ठते पवणोवरि, माहिब - सणक्कुमारणि ॥२०६॥

अर्थ—सौधर्म युगलके विमान घनस्वरूप जलके ऊपर तथा माहेन्द्र एवं सनत्कुमार कल्पके विमान पवनके ऊपर स्थित हैं ॥२०६॥

बम्हादी चत्तारो, कप्पा चेट्ठति सलिल - वावूढं ।

आणद - पाणद - पडुदी, सेसा सुद्धम्मि गयणयले ॥२०७॥

अर्थ—ब्रह्मादिक चार कल्पोंके विमान जल एवं वायु दोनोंके ऊपर तथा आनत-प्राणतादि शेष विमान शुद्ध आकाशतलमें स्थित हैं ॥२०७॥

इन्द्रकादि विमानोंके ऊपर स्थित प्रासाद—

उवरिम्मि इंदयाणं, सेट्ठिगयाणं पड्ढणयाणं च ।

समच्चउरस्सा बीहा, चेट्ठते विविह - पासावा ॥२०८॥

अर्थ—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंके ऊपर समचतुष्कोण एवं दीर्घ विविध प्रासाद स्थित हैं ॥२०८॥

कणयमया फलिहमया, मरगय-माणिवक-इंदणीलमया ।

विबुदुममया विचित्ता, वर - तोरण - सुवर-बुवारा ॥२०९॥

सत्तट्ट-णव-वसाविय-विचित्र-भूमीहि भूसिदा सव्वे ।
 वर - रयण - भूसवेहि, बहुविह - जंतेहि रमणिज्जा ॥२१०॥
 विप्पंत - रयण - बोधा, कालागर-पहुदि-धूष-गंधड्ढा ।
 आसण-णाडय-कीडण - साला - पहुदीहि कयसोहा ॥२११॥
 सीह-करि-मयर-सिहि-सुक-यवाल-गरुडासणावि-परिपुण्णा ।
 बहुविह-विचित्र-मणिमय-सेज्जा - विण्णास - कमणिज्जा ॥२१२॥
 निचवं विमल-सरुवा, पड्डण-वर-दीव-कुसुम-कंतिल्ला ।
 सव्वे अणाहिणिहणा, अकट्टिमा ते विरायंति ॥२१३॥

एवं संख्या-परूपणा-समप्ता ॥६॥

अर्थ—(ये सब प्रासाद) सुवर्णमय, स्फटिकमणिमय, मरकत-माणिक्य एवं इन्द्रनील मणियोंसे निर्मित, मूंगासे निर्मित, विचित्र, उत्तम तोरणोंसे सुन्दर द्वारवाले, सात-आठ-नौ-दस इत्यादि विचित्र भूमियोंसे भूषित, उत्तर रत्नोंसे भूषित, बहुत प्रकारके यन्त्रोंसे रमणीय, चमकते हुए रत्न-दीपकों सहित, कालागर आदि धूपोंके गन्धसे व्याप्त; आसनशाला, नाट्यशाला एवं क्रीडनशाला आदिकोंसे शोभायमान; सिंहासन, गजासन, मकरासन, मयूरासन, शुकासन, व्यालासन एवं गरुडासनादिसे परिपूर्ण; बहुत प्रकारकी विचित्र मणिमय शय्याओंके विन्याससे कमनीय, निर्य, विमल-स्वरूपवाले, विपुल उत्तम दीपों एवं कुसुमोंसे कान्तिमान्, अनादि-निधन और अकृत्रिम विराजमान हैं ॥२०६-२१३॥

इसप्रकार संख्या परूपणा समाप्त हुई ॥६॥

इन्द्रोंके दस-विध परिवार देवोंके नाम और पद—

बारस-विह-कप्पाणं, बारस इंदा हवन्ति वर - रुवा ।
 दस-विह-परिवार-जुवा, पुव्वज्जिव-पुण्ण - पाकादो ॥२१४॥

अर्थ—बारह प्रकारके कल्पोंके बारह इन्द्र पूर्वोपाजित पुण्यके परिपाकसे उत्तम रूपके धारक होते हैं और दस प्रकारके परिवारसे युक्त होते हैं ॥२१४॥

पडिइंदा सामाणिय-सेत्तीस-सुरा विगिद - तणुरक्खा ।
 परिसाणीय-पड्डणय-अभियोगा होंति किन्विसिया ॥२१५॥

अर्थ—प्रतीन्द्र, सामानिक, आयस्त्रिशदेव, दिगिन्द्र, तनुरक्ष, पारिषद, अनीक, प्रकीर्णक, अभियोग्य और कित्विषिक, ये दस प्रकारके परिवार देव हैं ॥२१५॥

जुवराय - कलसाणं, पुत्ताणं तह य तंतरायाणं ।

वपु-रक्खा - कीवाणं, वर-मज्झिम-अवर-तइल्लाणं ॥२१६॥

सेणाण पुरजणाणं, परिचाराणं तहेव पाणाणं ।

कमसो ते सारिचछा, 'पडिहं' - प्पहुविणो होति ॥२१७॥

अर्थ—वे प्रतीन्द्र आदि क्रमशः युवराज, कलत्र, पुत्र तथा तन्त्रराय, कृपाणधारी घरीर रक्षक, उत्तम, मध्यम एवं अधम्य परिवर्द्धमें बैठने योग्य (सभासद), सेना, पुरजन, परिचारक और चाण्डालके सदृश होते हैं ॥२१६-२१७॥

प्रतीन्द्र—

एक्केवका पडिहंवा, एक्केक्काणं हवन्ति हंवाणं ।

ते जुवराय - रिधोए, वड्ढंते आउ - परियंसं ॥२१८॥

अर्थ—एक-एक इन्द्रके जो एक-एक प्रतीन्द्र होते हैं वे आयु पर्यन्त युवराजकी श्रद्धिसे युक्त रहते हैं ॥२१८॥

सामानिक देवोंका प्रमाण—

चउसीवि-सहस्साणि, सोहम्मिबस्स होति सुर-पवरा ।

सामाणिघा सहस्सा, सीवी ईसाण - इंवस्स ॥२१९॥

८४००० । ८०००० ।

अर्थ—सामानिक जातिके उत्कृष्ट देव सीधमें इन्द्रके चौरासी हजार (८४०००) और ईशान इन्द्रके अस्सी हजार (८००००) होते हैं ॥२१९॥

बाहत्तरी - सहस्सा, ते चेदुंते सणवकुमारिदे ।

सवरि - सहस्स - मेत्ता, तहेव माहिं' - इंवस्स ॥२२०॥

७२००० । ७०००० ।

अर्थ—वे सामानिक देव सनत्कुमार इन्द्रके बहत्तर हजार (७२०००) और माहेन्द्र इन्द्रके सत्तर हजार (७००००) प्रमाण होते हैं ॥२२०॥

बहिं'वम्मि सहस्सा, सट्ठी पण्णास संतविं'वम्मि ।

चालं महसुक्किदे, तीस सहस्सार - इंवम्मि ॥२२१॥

६०००० । ५०००० । ४०००० । ३०००० ।

अर्थ—सामानिक देव ब्रह्मेन्द्रके साठ हजार (६००००), लान्तवेन्द्रके पचास हजार (५००००), महाशुक्र इन्द्रके चालीस हजार (४००००) और सहस्रार इन्द्रके तीस हजार (३००००) होते हैं ॥२२१॥

आणद-पाणद-इंदे, बीसं सामाणिया सहस्साणि ।
बीस सहस्साणि पुढं, पत्तेक्कं आरणच्चुविदेसु ॥२२२॥

२०००० । २०००० । २०००० । २०००० ।

अर्थ—सामानिकदेव आनत-प्राणत इन्द्रके बीस हजार (२००००) और आरण-अच्युत इन्द्रके पृथक्-पृथक् बीस हजार (२००००) होते हैं ॥२२२॥

त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देव—

तेसीस सुरप्पवरा, एक्केक्काणं हवन्ति इंवाणं ।
चत्तारि लोयपाला, सोम-जमा - वरुण - धणवा य ॥२२३॥

अर्थ—एक-एक इन्द्रके तैंतीस त्रायस्त्रिंश देव और सोम, यम, वरुण तथा धनद, ये चार लोकपाल होते हैं ॥२२३॥

तनुरक्षक देव—

तिणिण चिच्चय लक्खाणि, छत्तीस-सहस्सयाणि तणुरक्खा ।
सोहम्मिदे विविए, 'ताणि सोलस - सहस्स - हीणाणि ॥२२४॥

३३६००० । ३२०००० ।

अर्थ—तनुरक्षक देव सौधर्म इन्द्रके तीन लाख छत्तीस हजार (३३६०००) और द्वितीय इन्द्रके इतसे सोलह हजार कम (३२००००) होते हैं ॥२२४॥

अट्ठासोवि - सहस्सा, दो-लक्खाणि सणक्कुमारिदे ।
माहिंदिदे लक्खा, दोणिण य सीदी - सहस्साणि ॥२२५॥

२८८००० । २८०००० ।

अर्थ—तनुरक्षक देव सतत्कुमार इन्द्रके दो लाख अठासी हजार (२८८०००) और माहेन्द्र इन्द्रके दो लाख अस्सी हजार (२८००००) होते हैं ॥२२५॥

बम्हिदे चालीसं, सहस्स-अब्भहियं हुवे दुवे लक्खा ।
लंतवए दो-लक्खं, वि-गुणिय-सीदो-सहस्स-महसुक्के ॥२२६॥

२४०००० । २००००० । १६०००० ।

अर्थ—तनुरक्षक देव ब्रह्मेन्द्रके दो लाख चालीस हजार (२४००००), लान्तव इन्द्रके दो लाख (२०००००) और महाशुक्र इन्द्रके द्विगुणित अस्सी हजार अर्थात् एक लाख साठ हजार (१६००००) होते हैं ॥२२६॥

वि-गुणिय-सट्ठि-सहस्सं, सहस्सयारिदयम्मि पत्तेवकं ।
सीदि - सहस्स - पमाणं, उवरिम-चत्तारि-इंदम्मि ॥२२७॥

१२०००० । ८०००० । ८०००० । ८०००० । ८०००० ।

अर्थ—तनुरक्षक देव सहस्रार इन्द्रके द्विगुणित साठ हजार (१२००००) और उपरितन चार इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके अस्सी हजार (८००००) प्रमाण होते हैं ॥२२७॥

अभ्यन्तर-मध्यम और बाह्य परिषदके देव—

अब्भन्तर-परिसाए, सोहम्मिदाणं बारस - सहस्सा ।
चेट्ठसे सुर - पवरा, ईसाणिदस्स वस - सहस्साणि ॥२२८॥

१२००० । १०००० ।

अर्थ—सौवर्म इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषदमें बारह हजार (१२०००) और ईशान इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषदमें दस हजार (१००००) देव स्थित होते हैं ॥२२८॥

तविए अट्ठ - सहस्सा, माहिंविदस्स छस्सहस्साणि ।
बम्हिदम्मि सहस्सा, चत्तारो दोण्णि लंतविदम्मि ॥२२९॥

८००० । ६००० । ४००० । २००० ।

अर्थ—तृतीय (सनत्कुमार इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद) में आठ हजार (८०००), माहेन्द्रकी (अभ्यन्तर परिषद) में छह हजार (६०००), ब्रह्मेन्द्र की (अभ्यन्तर परिषद) में चार हजार (४०००) और लान्तव (इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद) में दो हजार (२०००) देव होते हैं ॥२२९॥

सत्तमयस्स सहस्सं, पंच - सयाणि सहस्सयारिदे ।
आणव-इंवादि-दुगे, पत्तेवकं दो - सयाणि पण्णासा ॥२३०॥

१००० । ५०० । २५० । २५० ।

अर्थ—सप्तम (महाशुक्र इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद्) में एक हजार (१०००), सहस्रार (इन्द्रकी अ० परिषद्) में पाँच सौ (५००) और आनतादि (आनत-प्राणत) दो इन्द्रोंकी (अभ्यन्तर परिषद्) में दो सौ पचास-दो सौ पचास (२५० — २५०) देव होते हैं ॥२३०॥

अब्भन्तर - परिसाए, आरण - इंदस्स अश्चुबिदस्स ।

पत्तेक्कं सुर - पवरा, एक्क - सयं पंचवीस - जुवं ॥२३१॥

१२५ । १२५ ।

अर्थ—आरण इन्द्र और अच्युत इन्द्रमेंसे प्रत्येक (की अभ्यन्तर परिषद्) में एक सौ पच्चीस-एक सौ पच्चीस (१२५-१२५) उत्तम देव होते हैं ॥२३१॥

मज्झिम-परिसाय सुरा, चौदस-बारस-दसह-छ-चउ-बुगा ।

होति सहस्सा कमसो, सोहम्मिवादिएसु सत्तेसु ॥२३२॥

१४००० । १२००० । १०००० । ८००० । ६००० । ४००० । २००० ।

अर्थ—सौधर्मादिक सात इन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी मध्यम परिषद्में क्रमशः चौदह हजार, बारह हजार, दस हजार, आठ हजार, छह हजार, चार हजार और दो हजार देव होते हैं ॥२३२॥

एक्क-सहस्स-पमाणं, सहस्सयारिदयम्मि पंच - सया ।

उवरिम - चउ - इंदेसुं, पत्तेक्कं मज्झिमा परिसा ॥२३३॥

१००० । ५०० । ५०० । ५०० । ५००

अर्थ—सहस्रार इन्द्रकी मध्यम परिषद्में एक हजार (१०००) प्रमाण और उपरितन चार इन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी मध्यम परिषद्में पाँच सौ (५००) देव होते हैं ॥२३३॥

सोलस-चौदस-बारस-दसह-छ-चउ-बुगेषक य सहस्सा ।

बाहिर-परिसा कमसो, समिवा चंदा य 'जउ-सामा ॥२३४॥

परिसा समत्ता ॥

अर्थ—उपर्युक्त इन्द्रोंके बाह्य परिषद् देव क्रमशः सोलह, चौदह, बारह, दस, आठ, छह, चार, दो और एक हजार प्रमाण होते हैं । इन तीनों परिषदोंका नाम क्रमशः समित्, चन्द्रा और जतु है ॥२३४॥

परिषद्का कथन समाप्त हुआ ।

अनीक देवोंका प्रमाण—

वसह-तुरंगम-रह-गज-पदाति-गन्धर्व-णट्टयाणीया ।

एवं सत्ताणीया, एक्केक्कं हवन्ति इंदाणं ॥२३५॥

अर्थ—वृषभ, तुरङ्ग, रथ, गज, पदाति, गन्धर्व और नर्तक अनीक, इसप्रकार एक-एक इन्द्रकी सात सेनायें होती हैं ॥२३५॥

एवे सत्ताणीया, पत्तेक्कं सत्त-सत्त-कक्ख-जुवा ।

तेसुं पढमाणीया, णिय-णिय - सामाणियाण' समा ॥२३६॥

अर्थ—इन सात सेनाओंमेंसे प्रत्येक सात-सात कक्षाओंसे युक्त होती हैं । इनमेंसे प्रथम अनीकका प्रमाण अपने-अपने सामानिकोंके बराबर होता है ॥२३६॥

तत्तो दुगुणं दुगुणं, कावळ्यं जाव सत्तमाणीयं ।

परिमाण - जाणणट्टं, ताणं संखं पखवेमो ॥२३७॥

अर्थ—इसके आगे सप्तम अनीक पर्यन्त उससे दूना-दूना करना चाहिए । इस प्रमाणको जाननेके लिए उनकी संख्या कहते हैं ॥२३७॥

इगि-कोडी छल्लक्खा, अट्ठासट्ठी - सहस्सया वसहा ।

सोहम्मिदे होति ह, तुरयावी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२३८॥

१०६६८००० । पिंड ७४६७६००० ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके एक करोड़ छह लाख अड़सठ हजार (१०६६८०००) वृषभ होते हैं और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२३८॥

विशेषार्थ—सौधर्म इन्द्रकी प्रथम कक्षमें वृषभ संख्या सामानिक देवोंके सहस्र ८४००० प्रमाण है । इस प्रथम कक्षकी संख्यासे सातों कक्षाओंकी संख्या १२७ गुणी होती है अतः प्रथम अनीक की सातों कक्षाओंमें कुल संख्या (८४००० × १२७) = १०६६८००० है । प्रथम अनीककी संख्या १०६६८००० है अतः सातों अनीकोंकी पिण्ड रूप संख्या (१०६६८००० × ७) = ७४६७६००० है । इसीप्रकार सर्वत्र जानना चाहिए ।

एक्का कोडी एक्कं, लक्खं सट्ठी सहस्स वसहाणि ।

ईसाणिदे होति ह, तुरयावी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२३९॥

१०१६०००० । पिंड ७११२०००० ।

अर्थ—ईशान इन्द्रके एक करोड़ एक लाख साठ हजार वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२३९॥

विशेषार्थ—प्रथम अनीककी प्रथम कक्षमें ८०००० वृषभ हैं अतः $८०००० \times १२७ = १०१६००००$ । $१०१६०००० \times ७ = ७११२००००$ ।

लवखाणि एकणउवी, चउवाल-सहस्सयाणि वसह्राणि ।
होंति हु तविए इवे, तुरयावी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२४०॥

६१४४००० । पिड ६४००८००० ।

अर्थ—तृतीय (सनत्कुमार) इन्द्रके इक्यानव लाख चवालीस हजार ($७२००० \times १२७ = ६१४४०००$) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४०॥

$६१४४००० \times ७ = ६४००८०००$ ।

अट्ठासीवी-लवखा, णउवि-सहस्साणि होंति वसह्राणि ।
माहिंविवे तेत्तियमेत्ता तुरयाविणो वि पत्तेक्कं ॥२४१॥

८८९०००० । पिड ६२२३०००० ।

अर्थ—माहेन्द्र इन्द्रके अठासी लाख नव्वे हजार ($७०००० \times १२७ = ८८९००००$) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४१॥

$८८९०००० \times ७ = ६२२३००००$ ।

छाहत्तरि-लवखाणि, बीस-सहस्साणि होंति वसह्राणि ।
बग्गिह्वे पत्तेक्कं, तुरय - प्पहुवी वि तम्मेसं ॥२४२॥

७६२०००० । पिड ५३३४०००० ।

अर्थ—ब्रह्मिन्द्रके छिहत्तर लाख बीस हजार ($६०००० \times १२७ = ७६२००००$) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४२॥

$७६२०००० \times ७ = ५३३४००००$ ।

तेसट्ठी-लवखाणि, पण्णास - सहस्सयाणि वसह्राणि ।
लंतव - इवे होंति हु, तुरयावी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२४३॥

६३५०००० । पिड ४४४५०००० ।

अर्थ—सान्तव इन्द्रके तिरेसठ लाख पचास हजार ($५०००० \times १२७ = ६३५००००$) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४३॥

$$६३५०००० \times ७ = ४४४५०००० ।$$

पण्णासं लवणाणि, सोवि-सहस्साणि होंति वसह्राणि ।

महसुक्किकवे होंति हु, तुरयादी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२४४॥

$$५०५०००० । पिंड ३५५६०००० ।$$

अर्थ—महाशुक इन्द्रके पचास लाख अस्सी हजार ($४०००० \times १२७ = ५०८००००$) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४४॥

$$५०८०००० \times ७ = ३५५६०००० ।$$

अट्ठसीसं लवणं, वस य सहस्साणि होंति वसह्राणि ।

तुरयादी तम्मेत्ता, होंति सहस्सार - इंवम्मि ॥२४५॥

$$३८१०००० । पिंड २६६७०००० ।$$

अर्थ—सहस्रार इन्द्रके अट्ठसीस लाख वस हजार ($३०००० \times १२७ = ३८१००००$) वृषभ और तुरगादिक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४५॥

$$३८१०००० \times ७ = २६६७०००० ।$$

पणुवीसं लवणाणि, चालीस-सहस्सयाणि वसह्राणि ।

आरण-इंवावि-दुगे, तुरयादी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२४६॥

$$२५४०००० । पिंड १७७५०००० ।$$

अर्थ—आरण इन्द्रादिक दोके पञ्चीस लाख चालीस हजार ($२०००० \times १२७ = २५४००००$) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४६॥

$$२५४०००० \times ७ = १७७५०००० ।$$

नोट—गाथामें आनतादि चारोंके अतीकों का प्रमाण कहा जाना चाहिए था किन्तु आरण आदि दो का ही कहा गया है, दो का नहीं । क्यों ?

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्र.सं.	चन्द्र नाम	प्रतिमा	सामानिक वर्षको म०	आयुर्विषय	लोकपाल	तनुरक्षक	पारिवर्तिका प्रमाणा			अनीक सेनाभोका प्रमाणा		
							अभ्यन्तर परिषद्	मध्यम परि०	बाह्य परि०	प्रथम कक्ष	एक अनीककी सम्पूर्ण संख्या	सातौं अनीकको सम्पूर्ण संख्या
१	सौधमेन्द्र	१	८४०००	३३	५	३३६०००	१२०००	१४०००	१६०००	८४०००	१०६६८०००	७४६७६०००
२	ऐशानेन्द्र	१	८००००	३३	५	३२००००	१००००	१२०००	१४०००	८००००	१०१६००००	७११२००००
३	सनत्कुमारेंद्र	१	७२०००	३३	५	२८८०००	८०००	१००००	१२०००	७२०००	६१४४०००	६४००८०००
४	माहेन्द्र	१	७००००	३३	५	२८००००	६०००	८०००	१००००	७००००	८८६००००	६२२३००००
५	अहोन्द्र	१	६००००	३३	५	२४००००	४०००	६०००	८०००	६००००	७६२००००	५३३३००००
६	लान्तवेन्द्र	१	५००००	३३	५	२०००००	२०००	४०००	६०००	४००००	६३५००००	४४४४००००
७	महाशुकेन्द्र	१	४००००	३३	५	१६००००	१०००	२०००	४०००	४००००	५०८००००	३५५६००००
८	सहसारेन्द्र	१	३००००	३३	५	१२००००	५००	१०००	२०००	३००००	३८१००००	२६६७००००
९	आनतादि ५	१	२००००	३३	५	८००००	२५०	५००	१०००	२००००	२५४००००	१७७८००००

सातों अनीकोंकी अपनी-अपनी प्रथमादि कक्षाओंमें स्थित वृषभादिकोंके वर्णका वर्णन—

जलहर-पडल-समुत्थिद-सरय-मयंक-सुजाल-संकासा ।

वसह-तुरंगावीया, गिय-गिय-कक्खासु पढम-कक्ख-ठिदी ॥२४७॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे प्रथम कक्षामें स्थित वृषभ-तुरंगादिक मेघ-पटलसे उत्पन्न शरत्कालीन चन्द्रमाके किरण-समूहके सदृश (वर्ण वाले) होते हैं ॥२४७॥

उदयंत-दुमणि-मंडल-समाण-वण्णा हयंति वसहादी ।

ते गिय-गिय-कक्खासु, चेदुंते विदिय - कक्खासु ॥२४८॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे द्वितीय कक्षामें स्थित वे वृषभादिक उदित होते हुए सूर्य-मण्डलके सदृश वर्णवाले होते हैं ॥२४८॥

फुल्लंत-णीलकुवलय-सरिच्छ^१-वण्णा तद्वज्ज-कक्ख-ठिदा ।

ते गिय - गिय - कक्खासु, वसहस्स रहादिणो होंति ॥२४९॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे तृतीय कक्षामें स्थित वे वृषभ, अश्व और रथादिक फूलते हुए नीलकमलके सदृश निर्मल वर्णवाले होते हैं ॥२४९॥

सरगय-मणि-सरिस-तणू, ^२वर-विद्विह-विभूसणेहि सोहिल्ला ।

ते गिय-गिय-कक्खासु, वसहावी तुरिम - कक्ख - ठिदा ॥२५०॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे चतुर्थ कक्षामें स्थित वे वृषभादिक मरकत मणिके सदृश शरीरवाले और अनेक प्रकारके उत्तम आभूषणोंसे शोभायमान होते हैं ॥२५०॥

पारावय - मोराणं, कंठ - सरिच्छेहि देह - वण्णेहि ।

ते गिय-गिय-कक्खासु, पंचम-कक्खासु वसह-पहुदीओ ॥२५१॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे पंचम कक्षामें स्थित वे वृषभादिक कबूतर एवं मयूरके कण्ठके सदृश देह-वर्णसे युक्त होते हैं ॥२५१॥

वर-पउमराय-बंधूय-कुसुम-संकास - देह - सोहिल्ला ।

ते गिय-गिय-कक्खासु, वसहाइं छट्ठ-कक्ख-जुवा ॥२५२॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे छठी कक्षामें स्थित वृषभादिक उत्तम पसरान मणि अथवा बन्धूक पुष्पके वर्ण सदृश शरीरसे शोभायमान होते हैं ॥२५२॥

भिणिणदणील-वण्णा, सत्तम-कक्ख-ट्ठिदा वसह-पहुदी ।

ते णिय-णिय-कक्खासुं, वर - मंडण - मंडिदायारा ॥२५३॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे सप्तम कक्षामें स्थित वृषभादिक भिन्न इन्द्रनीलमणिके सदृश वर्ण वाले और उत्तम आभूषणोंसे मण्डित आकारसे युक्त होते हैं ॥२५३॥

प्रत्येक कक्षाके अन्तरालमें बजने वाले वादित्र—

सत्ताण^१ अणीयाणं, णिय-णिय-कक्खाण होंति विञ्चाले ।

वर-पट्टह - संख - मद्दल - काहल - पहुदीण पत्तेवकं ॥२५४॥

अर्थ—सातों अनीकोंकी अपनी-अपनी कक्षाओंके अन्तरालमें उत्तम पट्टह, शङ्ख, मर्दल और काहल आदिमेंसे प्रत्येक होते हैं ॥२५४॥

वृषभादि सेनाओंकी शोभाका वर्णन—

संबंत-रयण-किंकिणि-सुहदा-मणि-कुसुम-दान-रमणिज्जा ।

धुव्वंत - धय - वडाय्या, वर - चासर - छत्त-कंतिल्ला ॥२५५॥

रयणमया पल्लाणा, वसह - तुरंगा रहा य इंदाणं ।

बहुविह - विगुव्वणाणं, वाहिज्जंताण सुर - कुमारोहि ॥२५६॥

अर्थ—बहुविध विक्रिया करने वाले तथा सुर-कुमारों द्वारा उद्दामान इन्द्रोंके वृषभ, तुरंग और रथादिक लटकती हुई रत्नमय क्षुद्र-घण्टिकाओं, मणियों एवं पुष्पोंकी मालाओंसे रमणीय; फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे युक्त, उत्तम चेंवर एवं छत्रसे कान्तिमान् और रत्नमय तथा सुखप्रद साजसे संयुक्त होते हैं ॥२५५-२५६॥

असि-भुसल-कणय-तोमर-कोदंड-प्पहुदि-विविह-सत्यकरा ।

ते सत्तसु कक्खासुं, पदातिणो दिव्व - रुवधरा ॥२५७॥

अर्थ—जो असि, भूसल, कनक, तोमर और धनुष आदि विविध शस्त्रोंको हाथमें धारण करने वाले हैं, वे सात कक्षाओंमें दिव्य रूपके धारक पदाति होते हैं ॥२५७॥

सज्जं^२ रिसहं गंधार - मज्झिमा पंच-पंच-महुर-सरं ।

अइवइ - जुवं णिसावं, पुह पुह गायंति गंधवा ॥२५८॥

अर्थ—गन्धर्वदेव षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धंशत और निषाद, इन मधुर स्वरोंको पृथक्-पृथक् गाते हैं ॥२५८॥

वीणा-वेणु-पुमुहं, एाणाविह-ताल-करण-लय-जुसं ।

बाहुजदि वादितो, गंधर्वेहि मधुर - सह ॥२५९॥

अर्थ—गन्धर्व देव नाना प्रकारकी ताल-क्रिया एवं लयसे संयुक्त (होकर) मधुर स्वरसे वीणा एवं बांसुरी आदि वादित्रोंको बजाते हैं ॥२५९॥

प्रत्येक कक्षाके नर्तक-देवोंके कार्य—

कंदप्प-राज - राजाहिराज-विज्जाहराण चरियाणं ।

णञ्चंति एट्टय - सुरा, णिच्चं पठमाए कक्खाए ॥२६०॥

अर्थ—प्रथम कक्षाके नर्तक देव नित्य ही कन्दर्प, (कामदेव) राजा, राजाधिराज और विद्याधरोंके चरित्रोंका अभिनय करते हैं ॥२६०॥

पुठवीसारां चरियं, सयलद्ध-महादि-मंडलीयाणं ।

विदियाए कक्खाए, णञ्चंते एण्णवणा देवा ॥२६१॥

अर्थ—द्वितीय कक्षाके नर्तक देव अर्धमण्डलीक और महामण्डलीकादि पृथिवीपालकोंके चरित्रका अभिनय करते हैं ॥२६१॥

बलदेवाण हरीणं, पडिसत्तूणं विचित्त - चरियाणि ।

तदियाए कक्खाए, वर - रस - भावेहि णञ्चंति ॥२६२॥

अर्थ—तृतीय कक्षाके नर्तक देव उत्तम रस एवं भावोंके साथ बलदेव, नारायण और प्रति-नारायणोंके अद्भुत चरित्रोंका अभिनय करते हैं ॥२६२॥

चोदस-रयण-वईणं, णव-णिहि-सामीण चक्कवट्टीणं ।

अच्चरिय - चरियाणि, णञ्चंति अउत्थ - कक्खाए ॥२६३॥

अर्थ—चतुर्थ कक्षाके नर्तक देव चौदह रत्नोंके अधिपति और नव निधियोंके स्वामी ऐसे चक्रवर्तियोंके आश्चर्य-जनक चरित्रोंका अभिनय करते हैं ॥२६३॥

सठ्वाण सुदिदाणं, सलोयपालाण चारु - चरियाइं ।

ते पंचम - कक्खाए, णञ्चंति विचित्त - भंगीहि ॥२६४॥

अर्थ—पंचम कक्षाके नर्तक देव लोकपालों सहित समस्त इन्द्रोंके सुन्दर चरित्रोंका विचित्र भंगिमाओंसे अभिनय करते हैं ॥२६४॥

गणहर-देवादीणं, विमल-मुणिदाणं विविह-रिद्धीणं ।

चरियाइ^१ विचित्ताइं, णच्चंते छट्ठ - कक्खाए ॥२६५॥

अर्थ—छठी कक्षाके नर्तकदेव विविध ऋद्धियोंके धारक गणघर आदि निर्मल पुनीन्द्रोंके अद्भुत चरित्रोंका अभिनय करते हैं ॥२६५॥

चोत्तीसाइ - सयाणं, बहुविह-कल्लाण-पाडिहेराणं ।

जिण - एणाहाण चरित्तं, सत्तम - कक्खाए णच्चंति ॥२६६॥

अर्थ—सप्तम कक्षाके नर्तक देव चौतीस अतिशयोक्ति युक्त और बहुत प्रकारके मंगलमय प्रातिहायोंसे संयुक्त जिननाथोंके चरित्रका अभिनय करते हैं ॥२६६॥

दिण्व-वर-वेह-जुत्ता, वर-रयण-विभूसणेहि कयसोहा ।

ते णच्चंते रिणच्चं, णिय - णिय - इंवाण अग्गेसुं ॥२६७॥

अर्थ—दिव्य एवं उत्तम देह सहित और उत्तम रत्न-विभूषणोंसे शोभायमान वे नर्तक देव निरर्थ ही अपने-अपने इन्द्रोंके आगे नाचते हैं ॥२६७॥

सत्तपदाणाणीया, एवे इंवाण होति पत्तेक्कं ।

अण्णा वि छत्त-चामर, पीठाणि य बहुविहा होति ॥२६८॥

अर्थ—इसप्रकार प्रत्येक इन्द्रके सात-सात कक्षाओं वाली सेनाएँ होती हैं । इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत प्रकार छत्र, चँवर और पीठ (सिंहासन) होते हैं ॥२६८॥

सब्बाणि अणीयाणि, वसहाणीयस्स होति सरिसाणि ।

वर - विविह - भूसणेहि, विभूसिबंगाणि पत्तेक्कं ॥२६९॥

अर्थ—सब अनीकोंमेंसे प्रत्येक उत्तम विविध भूषणोंसे विभूषित शरीरवाले होते हुए वृषभानीकके सदृश हैं ॥२६९॥

सब्बाणि अणीयाणि, कक्खं पडि छस्सअं सहावेणं ।

पुक्खं च विक्कुव्वए, लोयविणिच्छय-मुणो^२ भणइ ॥२७०॥

अर्थ—प्रत्येक कक्षाकी सब अनीकों स्वभावसे छह सौ (६००) और विक्रियाकी अपेक्षा पूर्वोक्त (६०० × ७ = ४२००) संख्याके समान हैं, ऐसा लोक विनिश्चय मुनि कहते हैं ॥२७०॥
पाठान्तर ।

वसहाणीयादीणं, पुह पुह चुलसीदि-लक्ख-परिमाणं ।
पढमाए कक्खाए, सेसासुं दुगुण - दुगुण - कमा ॥२७१॥
एवं सत्त - विहाणं, सत्ताणीयाण^१ होंति पत्तेवकं ।
संगायणि^२ - आहरिया, एवं एयमा परुव्वेति ॥२७२॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—प्रथम कक्षामें वृषभादिक अनीकोंका प्रमाण पृथक्-पृथक् चौरासी लाख है । शेष कक्षाओंमें क्रमशः इससे दूना-दूना है । इसप्रकार सातों अनीकोंमें प्रत्येकके सात-सात प्रकार हैं । ऐसा संगायणि-आचार्य नियमसे निरूपण करते हैं ॥२७१-२७२॥

सप्त अनीकोंके अधिपति देव—

सत्ताणीयाहिबई, जे देवा होंति वक्खिणिदाणं ।
उत्तर^३ - इंदाण तहा, ताणं णामाणि वोच्छामि ॥२७३॥

अर्थ—दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रोंकी सात अनीकोंके जो अधिपति देव हैं उनके नाम कहते हैं ॥२७३॥

वसहेसु वामयट्ठी, तुरंगमेसुं हवेदि हरिवामो ।
तह मावली^४ रहेसुं, गजेसु एरावदो णाम ॥२७४॥
वाऊ पवाति - संघे, गंधब्बेसुं अरिदुसंका य ।
नीलजण^५ ति वेदी, विक्खावा णट्टयाणीया ॥२७५॥

अर्थ—वृषभोंमें वामयष्टि, तुरगोंमें हरिवाम, रथोंमें मातलि, गजोंमें ऐरावत, पदाति संघमें वायु, गन्धर्वोंमें अरिष्टशंका (अरिष्टशशस्क) और नर्तक अनीकमें नीलजसा (नीलांजना) देवी, इसप्रकार सात अनीकोंमें ये महत्तर (प्रधान) देव विख्यात हैं ॥२७४-२७५॥

पीढाणीए दोण्हं, अहिबइ - वेओ हवेदि हरिणामो ।
सेसाणीयवईणं, णामेसुं णत्थि उवएसो ॥२७६॥^६

१. द. व. क. ज. ठ. सच्चविदाण सत्ताणीयाणि । २. द. संघादणि । ३. द. व. क. ज. ठ. उत्तरिम । ४. द. व. क. ज. ठ. भरदली । ५. द. व. क. नीलजसो, ज. ठ. णलजसो । ६. यह गाथा पाठान्तर प्राप्त होती है ।

अर्थ—दोनों (दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र) की पीठानीक (अश्वसेना) का अधिपति हरि नामक देव होता है । शेष अतीकोंके अधिपतियोंके नामोंका उपदेश नहीं है ॥२७६॥

अभियोगाणं अहिबद्ध - देवो चेद्वे वि दक्षिणिदेसु ।

बालक - एगामो उत्तर - ईदेसु पुष्पदन्तो य ॥२७७॥

अर्थ—दक्षिणेन्द्रोंमें अभियोग देवोंका अधिपति बालक नामक देव और उत्तरेन्द्रोंमें इनका अधिपति पुष्पदन्त नामक देव होता है ॥२७७॥

वाहन देवगत ऐरावत हाथीका विवेचन—

सक-दुगम्भि य वाहण-देवा ऐरावत-नाम हत्थीणं ।

कुम्बन्ति विकिरिघाओ, लखल उच्छेह-जोयणा दीहं ॥२७८॥

१०००००

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रके वाहन देव विक्रियासे एक लाख (१०००००) उत्सेध योजन प्रमाण दीर्घ ऐरावत नामक हाथीकी रचना करते हैं ॥२७८॥

एवणं बत्तीस, होंति पुह पियव-रयण-दान-जुदा ।

पुह पुह णंत किकिणि-कोलाहल-सह-कयसोहा ॥२७९॥

अर्थ—इनके दिव्य रत्न-मालाओंसे युक्त बत्तीस मुख होते हैं, जो घण्टिकाओंके कोलाहल शब्दसे शोभायमान होते हुए पृथक्-पृथक् शब्द करते हैं ॥२७९॥

एक्केक्क - मुहे चंचल-चंदुजल-चमर-चार-रुवम्भि ।

चत्तारि होंति दंता, धवला धर-रयण-भर-खचिवा ॥२८०॥

अर्थ—चञ्चल एवं चन्द्रके सदृश उज्ज्वल चामरोंसे सुन्दर रूपवाले एक-एक मुखमें रत्नोंके समूहसे खचित धवल चार-चार दाँत होते हैं ॥२८०॥

एक्केक्कम्भि विसाणे, एक्केक्क-सरोवरे विमल-वारी ।

एक्केक्क - सरवरम्भि य, एक्केक्क कमल-धर-संडा ॥२८१॥

अर्थ—एक-एक विषाण (हाथी दाँत) पर निर्मल जलसे युक्त एक-एक सरोवर होता है । एक-एक सरोवरमें एक-एक उत्तम कमल-खण्ड (कमल उत्पन्न होनेका क्षेत्र) होता है ॥२८१॥

एक्केक्क-कमल-संडे, बत्तीस-विकस्सरा महापउमा ।

एक्केक्क - महापउमं, एक्केक्क - जोयण - पमाणेण ॥२८२॥

अर्थ—एक-एक कमल-खण्डमें विकसित बत्तीस महापद्म होते हैं और एक-एक महापद्म एक-एक योजन प्रमाण होता है ॥२८२॥

वर-कंचण-कयसोहा, वर-पञ्चमा सुर-विकुब्धण-बलेणं ।

एककेवका - महापञ्चमे, पाञ्च - साला य एककेवका ॥२८३॥

अर्थ—देवोंके विक्रिया-बलसे वे उत्तम पञ्च उत्तम स्वर्णसे शोभायमान होते हैं । एक-एक महापञ्चपर एक-एक नाट्यशाला होती है ॥२८३॥

एककेवकाए तीए, बत्तीस वरच्छरा पणञ्चति ।

एवं सत्ताणीया, निहिट्टा वारसिदाणं ॥२८४॥

अर्थ—उस एक-एक नाट्यशालामें उत्तम बत्तीस अप्सरायें नृत्य करती हैं । इसप्रकार बारह इन्द्रोंकी सात अनीकें (सेनाएं) कही गयी हैं ॥२८४॥

इन्द्रके परिवार देवोंके परिवार देवोंका प्रमाण—

पुह-पुह पइण्णयाणं, अभियोग-सुराण किञ्चिदाणं च ।

संखातीव - पमाणां, भणिवं सञ्जेसु इंदाणं ॥२८५॥

अर्थ—सभी (स्वर्गों) में इन्द्रोंके प्रकीर्णक, आभियोग्य और किञ्चिद्विषिक देवोंका पृथक्-पृथक् असंख्यात प्रमाण कहा गया है ॥२८५॥

पडिइंदाणं^१ सामाणियाण तेत्तीस - सुर-वराणं च ।

दस-भेदा परिवारा, णिय - इंद - समाण पत्तेवकं ॥२८६॥

अर्थ—प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रयस्त्रिंश देवोंमेंसे प्रत्येकके दस प्रकारके परिवार अपने इन्द्रके सदृश होते हैं ॥२८६॥

लोकपालोंके सामन्त देवोंका प्रमाण—

चत्तारि सहस्साणि, सक्कादि - दुगे दिगिव-सामंता ।

एवकं चेव सहस्सं, सणक्कुमारादि - दोण्हं पि ॥२८७॥

४००० । १००० ।

अर्थ—सीधर्म और ईशान इन्द्रके लोकपालोंके चार हजार सामन्त (४०००) और सनत्कुमारादि दो के सामन्त देव एक-एक हजार ही होते हैं ॥२८७॥

१. प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रयस्त्रिंश देवोंके दस-दस भेद कैसे सम्भव हो सकते हैं ?

पंच-चउ-तिथ-बुगाणं, सयाणि ^१बम्हिदयादिय-चउक्के ।

आणद^२ - पहुदि - चउक्के, पत्तेक्कं एक्क-एक्क-सयं ॥२८८॥

५०० । ४०० । ३०० । २०० । १०० ।

अर्थ—ब्रह्मेन्द्रादिक चारके सामन्त देव क्रमशः पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ तथा आनतादिक चार इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके एक-एक सौ होते हैं ॥२८८॥

दक्षिणेन्द्रोंके लोकपालोंके पारिषद देवोंका प्रमाण—

पण्णास चउ-सयाणि, पंच-सयवभंतरादि-परिसाओ ।

सोम-जमाणं भणिदा, पत्तेक्कं सयल-दक्खिणिदेसुं ॥२८९॥

५० । ४०० । ५०० ।

अर्थ—समस्त दक्षिणेन्द्रोंमें प्रत्येकके सोम एवं यम लोकपालके अभ्यन्तर पारिषद देव पचास (५०), मध्यम पारिषद देव चारसौ (४००) और बाह्य पारिषद देव पाँच सौ (५००) कहे गये हैं ॥२८९॥

सट्ठी पंच-सयाणि, छच्च सया ताओ तिण्णि-परिसाओ ।

वरुणस्स कुबेरस्स य, सत्तरिया छस्सयाणि सत्त-सया ॥२९०॥

६० । ५०० । ६०० । ७० । ६०० । ७००

अर्थ—वे तीनों पारिषद देव वरुणके साठ (६०), पाँच सौ (५००) और छह सौ (६००) तथा कुबेरके सत्तर (७०), छह सौ (६००) और सात सौ (७००) होते हैं ॥२९०॥

उत्तरेन्द्रोंके लोकपालोंके पारिषद देवोंका प्रमाण—

जा दक्खिण-इंदाणं, कुबेर-वरुणस्स उत्थ तिप्परिसा ।

कादक्व विवज्जासं, उत्तर - इंदाण सेस पुब्बं वा ॥२९१॥

५० । ४०० । ५०० ॥ वरु ७० । ६०० । ७०० ॥ कुबे ६० । ५०० । ६००

अर्थ—उन दक्षिणेन्द्रोंके कुबेर और वरुणके तीनों पारिषदोंका जो प्रमाण कहा है उससे उत्तरेन्द्रों (के कुबेर और वरुणके पारिषद देवोंके प्रमाण) का क्रम विपरीत है । शेष पूर्व के समान समझना चाहिए ॥२९१॥

लोकपालोंके सामन्त देवोंके तीनों पारिषदोंका प्रमाण—

सब्बेसु दिगिंदाणं, सामन्त-सुराण तिण्णि परिसाओ ।

णिय-णिय-दिगिंद-परिसा-सरिसाओ हवन्ति पत्तेक्कं ॥२९२॥

अर्थ—सब लोकपालोंके सामन्त देवोंके तीनों पारिषदोंमेंसे प्रत्येक अपने-अपने लोकपालके पारिषदोंके (प्रमाण) बराबर हैं ॥२९२॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

लोकपालों के सामन्तों का और दोनों के पारिवर्द्ध देहों का प्रमाण—गा० २८७ से २९२											
क्र.सं.	कल्पों के नाम	लोकपालों के सामन्तों का प्रमाण गा० २८७-२८८	सोम लोकपाल एवं सोम के सामन्तों के			यम लोकपाल एवं यम के सामन्तों के			वरुण लोकपाल एवं वरुण के सामन्तों के		
			अभ्यन्तर पारिवर्द्ध	मध्यम	बाह्य	अभ्यन्तर	मध्यम	बाह्य	अभ्यन्तर	मध्यम	बाह्य
१	सौधर्म कल्प	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००
२	ईशान कल्प	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००
३	सन्तकुमार कल्प	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००
४	माहेन्द्र कल्प	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००
५	अज्ञ कल्प	५००	५००	५००	५००	५००	५००	५००	५००	५००	५००
६	सामन्त कल्प	४००	४००	४००	४००	४००	४००	४००	४००	४००	४००
७	महाशुक्र कल्प	३००	३००	३००	३००	३००	३००	३००	३००	३००	३००
८	सहस्रार कल्प	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००
९	आनत कल्प	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००
१०	प्राणत कल्प	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००
११	आरणी कल्प	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००
१२	अभ्युत कल्प	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००

दक्षिणोन्म उत्तरेन्द्रके सोम लोकपालके और सोमके सामन्त देहों के
ये पारिवर्द्ध देह ४०-४० होते हैं ।

दक्षिणोन्म उत्तरेन्द्रके सोम लोकपालके और सोमके सामन्त देहों के
ये पारिवर्द्ध देह ४००-४०० होते हैं ।

दक्षिणोन्म उत्तरेन्द्रके यम लोकपालके और यमके सामन्त देहों के
ये पारिवर्द्ध देह ४०-४० होते हैं ।

दक्षिणोन्म उत्तरेन्द्रके यम लोकपालके और यमके सामन्त देहों के
ये पारिवर्द्ध देह ४००-४०० होते हैं ।

दक्षिणोन्म उत्तरेन्द्रके वरुण लोकपालके और वरुणके सामन्त देहों के
ये पारिवर्द्ध देह ४००-४०० होते हैं ।

लोकपालोंके अनीकादि परिवार देव—

सोमादि-दिगिदाणं, सत्ताणीयाणि होंति पत्तेक्कं ।

अट्ठावीस - सहस्सा, पढमे सेसेसु दुगुण - कमा ॥२९३॥

अर्थ—सोमादि लोकपालोंकी जो सात सेनाएँ होती हैं उनमें से प्रत्येक (सेनाकी) प्रथम कक्षामें अट्ठाईस हजार (वृषभादि) हैं और शेष कक्षाओंमें द्विगुणित क्रम है ॥२९३॥

पंचत्तीसं लक्खा, छप्पणा - सहस्सयाणि पत्तेक्कं ।

सोमादि - दिगिदाणं, हवेदि वसहादि - परिमाणं ॥२९४॥

३५५६००० ।

अर्थ—सोमादि लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके वृषभादिका प्रमाण पैंतीस लाख छप्पन हजार ($२८००० \times १२७ = ३५५६०००$) है ॥२९४॥

दो-कोड़ीओ लक्खा, अड्ढाल सहस्सयाणि बाणउवी ।

सत्ताणीय - पमाणं, पत्तेक्कं लोयपालाणं ॥२९५॥

२४८९२००० ।

अर्थ—लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके सात अनीकोंका प्रमाण दो करोड़ अड़तालीस लाख बानबे हजार ($३५५६००० \times ७ = २४८९२०००$) है ॥२९५॥

जे अभियोम-पइण्णय-किट्ठिसिया होंति लोयपालाणं ।

ताण पमाण - निरुवण - उवएसा संपइ पणट्ठो ॥२९६॥

अर्थ—लोकपालोंके जो आभियोग्य, प्रकीर्णक और किस्विषिक देव होते हैं उनके प्रमाणके निरूपणका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ॥२९६॥

लोकपालोंके विमानोंका प्रमाण—

छल्लक्खा छासट्ठी - सहस्सया छस्सयाणि छावट्ठी ।

सक्कस्स दिगिदाणं, विमाण - संखा य पत्तेक्कं ॥२९७॥

६६६६६६ ।

अर्थ—सौधर्मइन्द्रके लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके विमानोंकी संख्या छह लाख छासठ हजार छह सौ छासठ (६६६६६६) है ॥२९७॥

तेसु पहाण-विमाणा, सयंपहारिट्ट - जलपहा णामा ।

वगूपहो य कमसो, सोमाविय - लोयपालाणं ॥२९८॥

अर्थ—उन विमानोंमें सोमादि लोकपालोंके क्रमशः स्वयंप्रभ, अरिष्ट, जलप्रभ और बलगुप्रभ नामक प्रधान विमान हैं ॥२९८॥

इय-संखा-णामाणि, सणक्कुमारिद - बम्ह - इंदेसुं ।

सोमादि - दिगिदाणं, भणिदाणि वर - विमाणेसुं ॥२९९॥

६६६६६६ ।

अर्थ—सनत्कुमार और ब्रह्मेन्द्रके सोमादि लोकपालोंके उत्तम विमानोंकी भी यही (६६६६६६) संख्या और ये ही नाम कहे गये हैं ॥२९९॥

होवि हु सयंपहक्खं, वरजेट्टस - अंजणाणि वग्गू य ।

ताण पहाण - विमाणा, सेसेसुं दक्खिणिदेसुं ॥३००॥

अर्थ—शेष दक्षिण इन्द्रोंमें स्वयंप्रभ, वरज्येष्ठ, अञ्जन और वल्लु, ये उन लोकपालोंके प्रधान विमान होते हैं ॥३००॥

सोमं सव्वदभद्दा, सुभद्द-अभिदाणि^१ सोम-पहुदीणं ।

होति पहाण - विमाणा, सव्वेसुं उत्तरिदाणं ॥३०१॥

अर्थ—सब उत्तरेन्द्रोंके सोमादिक लोकपालोंके सोम (सम), सर्वतोभद्र, सुभद्र और अमित नामक प्रधान विमान होते हैं ॥३०१॥

ताणं विमाण-संखा-उवएसो णरिथ काल - दोसेण ।

ते सव्वे वि विगिदा, तेसु विमाणेसु कीडंते ॥३०२॥

अर्थ—उन विमानोंकी संख्याका उपदेश कालवश इससमय नहीं है । ये सब लोकपाल उन विमानोंमें क्रीड़ा किया करते हैं ॥३०२॥

सोम-जमा सम-रिद्धी, दोण्णि वि ते होति दक्खिणिदेसुं ।

तेसुं अहिओ वरुणो, वरुणादो होदि धणणाहो ॥३०३॥

अर्थ—दक्षिणेन्द्रोंके सोम और यम ये दोनों लोकपाल समान ऋद्धिवाले होते हैं । उनसे अधिक (ऋद्धि-सम्पन्न) वरुण और वरुणसे अधिक (ऋद्धि सम्पन्न) कुबेर होता है ॥३०३॥

सोम-जमा सम-रिद्धी, वोणिण वि ते होंति उत्तरिदाणं ।

तेसु कुबेरो अहिओ, हवेदि वरुणो कुबेरादो ॥३०४॥

अर्थ—उत्तरेन्द्रोंके वे दोनों सोम और यम समान ऋद्धिवाले होते हैं । उनसे अधिक ऋद्धि सम्पन्न कुबेर और कुबेरसे अधिक ऋद्धि सम्पन्न वरुण होता है ॥३०४॥

इन्द्रादिकी ज्येष्ठ एवं परिवार देवियाँ—

इंव - पंडिवादीणं, देवाणं जेत्तियाओ देवीओ ।

चेट्ठंति तेत्तियाओ^१, वोच्छामो आणुपुठ्वीए ॥३०५॥

अर्थ—इन्द्र और प्रतीन्द्रादिक देवोंके जितनी-जितनी देवियाँ होती हैं उनको अनुक्रमसे कहते हैं ॥३०५॥

एक्केक्क - दक्खिणिदे, अट्ठट्ठ - हवति जेट्ठ-देवीओ ।

पउमा-सिवा-सचीओ, अञ्जुकाया - रोहिणी - नवमी ॥३०६॥

बल-णामा अच्चिणिया, ताओ सन्निव-सरिस-णामाओ ।

एक्केक्क - उत्तरिदे, तम्मेट्ठा जेट्ठ - देवीओ ॥३०७॥

किण्हा य मेघराई, रामाघट्ट-रामरक्खिवा वसुका ।

वसुमिन्ता वसुधम्मा, वसुधरा सख्ख-इंद-सम-णामा ॥३०८॥

अर्थ—पद्मा, शिवा, शची, अञ्जुका, रोहिणी, नवमी, बलनामा और अर्चिनिका ये आठ ज्येष्ठ देवियाँ प्रत्येक दक्षिण इन्द्रके होती हैं । वे सब इन्द्रोंके सदृश नामवाली होती हैं । एक-एक उत्तर इन्द्रके भी इतनी (आठ) ही ज्येष्ठ देवियाँ होती हैं । (उनके नाम) कृष्णा, मेघराजी, रामापति, रामरक्षिता, वसुका, वसुमित्रा, वसुधर्मा और वसुधरा हैं । ये सब इन्द्रोंके, समान नामवाली होती हैं (अर्थात् सब इन्द्रों की देवियों के नाम यही हैं ।) ॥३०६-३०८॥

सक्क-दुग्गम्मि सहस्सा, सोलस एक्केक्क-जेट्ठ-देवीओ ।

चेट्ठंति चारु - निरुवम - रुवा^२ परिवार - देवीओ ॥३०९॥

१६००० ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रकी एक-एक ज्येष्ठ देवीके सुन्दर एवं निरुपम रूपवाली सोलह हजार (१६०००) परिवार-देवियाँ होती हैं ॥३०९॥

अट्ट-चउ-दुग-सहस्सा, एक्क-सहस्सं सणक्कुमार-वुगे ।
बम्हम्मि लंतविदे, कमेण महसुक्क - इंदम्मि ॥३१०॥

८००० । ४००० । २००० । १००० ।

अर्थ—सनत्कुमार और माहेन्द्र, ब्रह्मेन्द्र, लान्तवेन्द्र तथा महाशुक्लेन्द्रकी एक-एक ज्येष्ठ देवीके क्रमशः आठ हजार, चार हजार, दो हजार और एक हजार परिवार-देवियाँ होती हैं ॥३१०॥

पंच - सया देवीओ, होंति सहस्सार - इंद - देवीणं ।
अड्डाइज्ज - सयाणि, आणद - इंदविद्य - चउक्के ॥३११॥

५०० । २५० ।

अर्थ—सहसार इन्द्रकी प्रत्येक ज्येष्ठ देवीके पाँच सौ (५००) परिवार-देवियाँ और आनतेन्द्र आदिक चारकी प्रत्येक ज्येष्ठ देवीके अढ़ाई सौ (२५०) परिवार-देवियाँ होती हैं ॥३११॥

इन्द्रोंकी बल्लभा और परिवार-बल्लभा देवियों—

वत्तीस-सहस्साणि, सोहम्म-कुगम्मि होंति बल्लहिया ।
पत्तेक्कमड्ढ - सहस्सा, सणक्कुमारिद - जुगलम्मि ॥३१२॥

३२००० । ३२००० । ८००० । ८००० ।

अर्थ—सौधर्मद्विक (सौधर्म और ईशान) में प्रत्येक इन्द्रके वत्तीस हजार (३२०००) और सनत्कुमार आदि दो (सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो) इन्द्रोंमें प्रत्येकके आठ (आठ) हजार बल्लभा देवियाँ होती हैं ॥३१२॥

बम्हिदे दु - सहस्सा, पंच - सयाणि च लंतविदम्मि ।
अड्डाइज्ज - सयाणि, हवन्ति महसुक्क - इंदम्मि ॥३१३॥

२००० । ५०० । २५० ।

अर्थ—ब्रह्मेन्द्रके दो हजार (२०००), लान्तवेन्द्रके पाँच सौ (५००) और महाशुक्लेन्द्रके अढ़ाई सौ (२५०) बल्लभा-देवियाँ होती हैं ॥३१३॥

पणुवीस-जुदेक्क-सयं, होंति सहस्सार-इंद-बल्लहिया ।
आणद - पाणद - आरण - अच्चुद - इंदारण तेसद्धी ॥३१४॥

१२५ । ६३ ।

अर्थ—प्राणवल्लभा इन्द्रके एक और पत्नी (११५) और आनत-प्राणत-आरण-अच्युत इन्द्रोंके तिरैसठ (६३-६३) वल्लभा देवियाँ होती हैं ॥३१४॥

परिवार-वल्लभाओ, सबकाओ दुगस्स जेदु-वेवोओ ।

सिय-सभ'-विकुब्बणाओ, पत्तेक्कं सोलस - सहस्सा ॥३१५॥

१६००० ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रकी परिवार-वल्लभाओं और ज्येष्ठ देवियोंमें प्रत्येक अपने समान सोलह हजार (१६०००) प्रमाण विक्रिया करनेमें समर्थ है ॥३१५॥

तत्तो दुगुणं दुगुणं, ताओ निय-तणु-विकुब्बणकराओ ।

आणद - इंब - चउक्कं, जाव कमेणं पवत्तवो ॥३१६॥

३२००० । ६४००० । १२८००० । २५६००० । ५१२००० । १०२४००० ।

अर्थ—इसके आगे आनत आदि चार इन्द्रों पर्यन्त वे ज्येष्ठ देवियाँ क्रमशः इससे दूने प्रमाण अपने-अपने शरीरकी विक्रिया करनेवाली हैं, ऐसा क्रमशः कहना चाहिए ॥३१६॥

सब इन्द्रोंकी प्राणवल्लभाओंके नाम—

विनयसिरि-कणयमाला-पउमा-णंदा-सुसीम-जिणदत्ता ।

एक्केक्क - दक्खिणिदे, एक्केक्का पाण - वल्लहिया ॥३१७॥

अर्थ—एक-एक दक्षिणेन्द्रके विनयश्री, कनकमाला, पद्मा, नन्दा, सुसीमा और जिनदत्ता, इसप्रकार एक-एक प्राणवल्लभा होती है ॥३१७॥

एक्केक्क - उत्तरिदे, एक्केक्का होवि हेममाला य ।

णीलुप्पल-विस्सुवया, णंदा-वड्डलक्खणाओ जिणदासी ॥३१८॥

अर्थ—हेममाला, नीलोत्पला, विश्रुता, नन्दा, वल्लक्षणा और जिनदासी, इसप्रकार एक-एक उत्तरेन्द्रके एक-एक प्राणवल्लभा होती है ॥३१८॥

सयल्लिद - वल्लभाणं, चत्तारि महत्तरीओ पत्तेक्कं ।

कामा कामिणिआओ, पंकयगंधा अलंबुसा - सामा ॥३१९॥

अर्थ—सब इन्द्रोंकी वल्लभाओंमेंसे प्रत्येकके कामा, कामिनिका, पंकजगन्धा और अलंबूषा नामक चार महत्तरी (शणिका महत्तरी) होती हैं ॥३१९॥

इन्द्रों की देवियों का प्रमाण—

क्र.सं.	इन्द्रों के नाम	ज्येष्ठ देवियाँ गा० ३०६-३०८	ज्येष्ठ देवियों की विक्रिया का प्रमाण गा० ३१५-३१६	ज्येष्ठ देवियों की परिवार देवियाँ गा० ३०९-३११	बलभाएँ गा० ३१२-३१४	बलभा देवियों की विक्रिया का प्रमाण गा० ३१५-३१६	प्राण बलभा गा० ३१७-३१८	महत्तरी देवियाँ गा० ३१९	योगफल
१	सौधर्म	८	१२८०००	१२८०००	३२०००	५१२००००००	१	४	५१२२८८०१३
२	ईशान	८	१२८०००	१२८०००	३२०००	५१२००००००	१	४	५१२२८८०१३
३	सतलकुं	८	२५६०००	६४०००	८०००	२५६००००००	१	४	२५६३२८०१३
४	माहिन्द्र	८	२५६०००	६४०००	८०००	२५६००००००	१	४	२५६३२८०१३
५	ब्रह्मा	८	५१२०००	३२०००	२०००	१२८०००००००	१	४	१२८५४६०१३
६	लान्तव	८	१०२४०००	१६०००	५००	६४०००००००	१	४	६४०४०५१३
७	महाशुक्र	८	२०४८०००	८०००	२५०	६४०००००००	१	४	६६०४६२६३
८	सहस्रार	८	४०९६०००	४०००	१२५	६४०००००००	१	४	६८१००१३८
९	आनत	८	८१६२०००	२०००	६३	६४५१२००००	१	४	७२७०६०७६
१०	प्राणत	८	८१६२०००	२०००	६३	६४५१२००००	१	४	७२७०६०७६
११	भारण	८	८१६२०००	२०००	६३	६४५१२००००	१	४	७२७०६०७६
१२	अच्युत	८	८१६२०००	२०००	६३	६४५१२००००	१	४	७२७०६०७६

प्रतीन्द्रादिक तीन की देवियाँ—

पडिइंदावि^१-तियस्स य, णिय-णिय इंदेहि सरिस-देवीओ ।

संखाए एणमेहि, विक्किरिया - रिद्धि चत्तारि ॥३२०॥

अर्थ—प्रतीन्द्रादिक तीन (प्रतीन्द्र, सामानिक और आयस्त्रिश) की देवियाँ संख्या, नाम, विक्रिया और श्रद्धि, इन चार (बातों) में अपने-अपने इन्द्र (को देवियों) के सदृश हैं ॥३२०॥

लोकपालोंकी देवियाँ—

आदिम-दो-जुगलेसुं, बम्हादिसु चउसु आणव-चउक्के ।

दिग्गिद - जेदु - देवीओ होंति चत्तारि चत्तारि ॥३२१॥

अर्थ—आदिके दो युगल, ब्रह्मादिक चार युगल और आनत आदि चारमें लोकपालोंकी ज्येष्ठ देवियाँ चार-चार होती हैं ॥३२१॥

तप्परिवारा कमसो, चउ-एक्क-सहस्सयाणि पंच-सया ।

अड्ढाइज्ज - सयाणि, तदल - तेसट्ठि - बत्तीसं ॥३२२॥

४००० । १००० । ५०० । २५० । १२५ । ६३ । ३२ ।

अर्थ—उनके परिवारका प्रमाण क्रमशः चार हजार, एक हजार, पाँच सौ, अढ़ाई सौ, इसका आधा अर्थात् एक सौ पच्चीस, तिरेसठ और बत्तीस है ॥३२२॥

णिसवम-लावण्णाओ, वर-विविह-विभूसणाओ पत्तेक्कं ।

आउट्टु - कोडिमेषा, बल्लहिया लोयपालाणं ॥३२३॥

३५०००००० ।

अर्थ—प्रत्येक लोकपालके अनुपम लावण्यसे युक्त और विविध भूषणोंवाली ऐसी साढ़े तीन करोड़ (३५००००००) बल्लभाएँ होती हैं ॥३२३॥

लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके सामानिक देवोंकी देवियाँ—

सामाणिय-देवीओ, सव्व - दिग्गिवाण होंति पत्तेक्कं ।

णिय-णिय-दिग्गिद-देवी, समाण - संखाओ सव्वाओ ॥३२४॥

अर्थ—सब लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके सामानिक देवोंकी सब देवियाँ अपने-अपने लोकपालोंकी देवियोंके सदृश संख्यावाली हैं ॥३२४॥

इन्द्रोंमें तनुरक्षक और पारिषद देवोंकी देवियाँ—

सब्बेसुं इवेसुं, तणुरक्ख - सुराण होंति देवीओ ।
पुह छस्सयमेत्ताणि, णिरुद्धम - लावण्ण - रुवाओ ॥३२५॥

६०० ।

अर्थ—सब इन्द्रोंमें तनुरक्षकदेवोंकी अनुपम लावण्यरूपवाली देवियाँ पृथक्-पृथक् छह सौ (६००) प्रमाण होती हैं ॥३२५॥

आदिम-दो-जुगलेसुं, बम्हादिसु चउसु आणद-चउक्के ।
पुह - पुह सन्निदाणं, अद्वभंतर - परिस - देवीओ ॥३२६॥
पंच-सय-चउ-सयाणि, ति-सया दो-सयाणि एक्क-सयं ।
पण्णासं पणुवोसं, कमेण एवाण णादव्वा ॥३२७॥

५०० । ४०० । ३०० । २०० । १०० । ५० । २५ ।

अर्थ—आदिके दो युगल, ब्रह्मादिक चार युगल और आनतादिक चारमें सब इन्द्रोंके अभ्यन्तर पारिषद-देवियाँ क्रमशः पृथक्-पृथक् पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ, एक सौ, पचास और पच्चीस जाननी चाहिए ॥३२६-३२७॥

छप्पंच-चउ-सयाणि, तिग-दुग-एक्क-सयाणि पण्णासा ।
पुव्वोविद - ठाणेसुं, मज्झिम - परिसाए देवीओ ॥३२८॥

६०० । ५०० । ४०० । ३०० । २०० । १०० । ५० ।

अर्थ—पूर्वोक्त स्थानोंमें मध्यम पारिषद देवियाँ क्रमशः छह सौ, पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ, एक सौ और पचास हैं ॥३२८॥

सत्त-छप्प-पंच-चउ-तिय-दुग-एक्क-सयाणि पुव्व-ठाणेसुं ।
सन्निदाणं होंति हु, बाहिर - परिसाए देवीओ ॥३२९॥

७०० । ६०० । ५०० । ४०० । ३०० । २०० । १०० ।

अर्थ—पूर्वोक्त स्थानोंमें सब इन्द्रोंके बाह्य-पारिषद देवियाँ क्रमशः सात सौ, छह सौ, पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ हैं ॥३२९॥

अनीक देवोंकी देवियाँ—

सत्ताणीय - पहणं, पुह पुह देवीओ छस्सया होंति ।
दोणिण सया पत्तेक्कं, देवीओ अणीय - देवाणं ॥३३०॥

६०० । २०० ।

अर्थ—सात अनीकोंके प्रभुओंके पृथक्-पृथक् छह सौ (६००) और प्रत्येक अनीकदेवके दो सौ (२००) देवियाँ होती हैं ॥३३०॥

जाओ पद्मज्याणं, अभियोग-सुराण किञ्चिभसाणं च ।

देवीओ ताण संखा, उवएसो संपह पणट्ठो ॥३३१॥

अर्थ—प्रकीर्णक, अभियोग्य देव और किल्बिषिक देवोंकी जो देवियाँ हैं उनकी संख्याका उपदेवा इससमय नष्ट हो गया है ॥३३१॥

तनुरक्ख-प्पट्टदीणं, पुह - पुह एक्केक्क-जेट्ट-देवीओ ।

एक्केक्का अल्लहिया, विविधालंकार - कंतिल्ला ॥३३२॥

अर्थ—तनुरक्षक आदि देवोंके पृथक्-पृथक् विविध अलङ्कारोंसे शोभायमान एक-एक ज्येष्ठ देवी और एक-एक बलभा होती है ॥३३२॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

वैमानिक इन्द्रों के परिवार देवों की देवियों का प्रमाण—

क्र.सं.	परिवार देव	देवी का पद	— कल्प इन्द्रों के नाम —											
			सौधर्म	ईशान	सनत्कु०	महिन्द्र	ब्रह्म	लान्तव	महाशुक्र	सहस्रार	आनत	प्राणत	आरण्य	अव्युत
१	प्रतीन्द्र	—	—	†	अपने	इन्द्र	की	देवियों	सहस्र	देवियाँ हैं	—	†	—	—
२	सामानिक	—	—	†	—	"	"	"	"	"	—	†	—	—
३	त्रायस्त्रिंश	—	—	†	—	"	"	"	"	"	—	†	—	—
४	प्रत्येक लोकपाल के	ज्येष्ठ परिवार बलभा	४ ४०००	४ ४०००	४ १०००	४ प्रत्येक	४ ५००	४ २५०	४ ११५	४ ६३	४ ३२	४ ३२	४ ३२	४ ३२
५	सब लोकपालों के	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
६	सामा० देवों की	परिवार	६००	६००	६००	अपने	लोक	पाल की	देवियाँ	प्रमाण	—	—	—	—
७	इन्द्रों के प्रत्येक तनुरक्षक के	ज्येष्ठ बल०	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००
८	अभ्यन्तर पारिषद	×	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००
९	मध्यम पारिषद	×	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००
१०	बाह्य पारिषद	×	७००	७००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००
११	प्रधान अनीक की	×	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००
११	साधारण अनीक की	×	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००
१२	प्रकीर्णों की	—	—	—	†	उपदेश	—	नष्ट	—	—	†	—	—	—
१३	आभियोग्यों की	—	—	—	†	"	—	"	—	—	†	—	—	—
१४	किल्बिषियों की	—	—	—	†	"	—	"	—	—	†	—	—	—

देवियोंकी उत्पत्तिका विधान—

सोहम्मीसाणेसुं, उप्पज्जंते हु सव्व - देवीओ ।

उपरिम - कप्पे ताणं, उप्पत्ती णत्थि कइया वि ॥३३३॥

अर्थ—सब देवियाँ सौधर्म और ईशान कल्पोंमें ही उत्पन्न होती हैं, इससे उपरिम कल्पोंमें उनकी उत्पत्ति कदापि नहीं होती ॥३३३॥

छल्लवखाणि विमाणा, सोहम्मे दक्खिणिद-सव्वाणं ।

ईसाणे चउ - लक्खा, उत्तर - इंदाण य विमाणा ॥३३४॥

६००००० । ४००००० ।

अर्थ—सब दक्षिणेन्द्रोंके सौधर्मकल्पमें छह लाख (६०००००) विमान और उत्तरेन्द्रोंके ईशानकल्पमें चार लाख (४०००००) विमान हैं ॥३३४॥

तेसुं उप्पण्णाओ, देवीओ चिण्ह - ओहिणाणेहि ।

णावूणं णिय-कप्पे, णत्ति हु देवा सराग - मणा ॥३३५॥

अर्थ—उन कल्पोंमें उत्पन्न हुई देवियोंके चिह्न अवधिज्ञानसे जानकर सराग मनवाले देव अपने-अपने कल्पमें ले आते हैं ॥३३५॥

सोहम्मस्मि विमाणा, सेसा छव्वीस-लक्ख-संखा जे ।

तेसुं उप्पज्जंते, देवा देवीहि सम्मिस्सा ॥३३६॥

अर्थ—सौधर्मकल्पमें जो शेष छव्वीस लाख विमान हैं, उनमें देवियों सहित देव उत्पन्न होते हैं ॥३३६॥

ईसाणस्मि विमाणा, सेसा चउवीस-लक्ख-संखा जे ।

तेसुं उप्पज्जंते, देवीओ देव - मिस्साओ ॥३३७॥

अर्थ—ईशानकल्पमें जो शेष चौबीस लाख विमान हैं, उनमें देवोंसे युक्त देवियाँ उत्पन्न होती हैं ॥३३७॥

विशेषार्थ—आरण (१५ वें) स्वर्ग पर्यन्त दक्षिण कल्पोंकी समस्त देवांगनाएँ सौधर्म कल्पमें उत्पन्न होती हैं और अच्युत (१६ वें) कल्प पर्यन्त उत्तर कल्पोंकी समस्त देवांगनाएँ ईशान कल्पमें ही उत्पन्न होती हैं । उत्पत्तिके बाद उपरिम कल्पोंके देव अवधिज्ञान द्वारा उनके चिह्नोंको जानकर अपनी-अपनी नियोगिनी देवांगनाओंको अपने-अपने स्थान पर ले जाते हैं । सौधर्मकल्पमें कुल ३२ लाख विमान हैं, जिसमेंसे ६००००० (छह लाख) में मात्र देवांगनाओंकी उत्पत्ति होती है और शेष

२६ लाख विमानोंमें संमिश्र अर्थात् देव और देवियाँ दोनों उत्पन्न होते हैं । इसीप्रकार ईशान कल्पके २८ लाख विमानोंमेंसे ४००००० विमानोंमें मात्र देवांगनाओंकी और शेष २४ लाख विमानोंमें दोनों की उत्पत्ति होती है ।

सौधर्मादि कल्पोंमें प्रवीचारका विधान—

सोहम्मीसाणेसुं, देवा सद्ये वि काय - पडिचारा ।

होति हु सणक्कुमार-प्पहुंवि-दुगे फास - पडिचारा ॥३३८॥

अर्थ—सौधर्म और ईशान कल्पोंमें सब ही देव काय-प्रवीचार सहित और सनत्कुमार आदि दो (सनत्कुमार-माहेन्द्र) कल्पोंमें स्पर्श-प्रवीचार युक्त होते हैं ॥३३८॥

बम्हाहिधाण-कप्पे, लंतव-कप्पम्मि रुव - पडिचारा ।

कप्पम्मि महासुवके, सहस्सयारम्मि सह-पडिचारा ॥३३९॥

अर्थ—ब्रह्म नामक कल्पमें तथा लान्तव कल्पमें रूप प्रवीचार युक्त और महाशुक्र एवं सहस्रार कल्पमें शब्द-प्रवीचार युक्त होते हैं ॥३३९॥

प्राणव-पाणव-आरण-अच्चुद-कप्पेसु चित्त-पडिचारा ।

एत्तो सव्विदाणं, आवास - विहि पख्वेमो ॥३४०॥

अर्थ—आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन कल्पोंमें देव चित्त-प्रवीचार युक्त होते हैं । यहाँसे आगे सब इन्द्रोंकी आवास-विधि कहते हैं ॥३४०॥

विशेषार्थ—काम सेवन को प्रवीचार कहते हैं । सौधर्मेशान कल्पोंके देव अपनी देवांगनाओं के साथ मनुष्योंके सदृश कामसेवन करके अपनी इच्छा शान्त करते हैं । सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंके देव देवांगनाओंके स्पर्श मात्रसे अपनी काम पीड़ा शान्त करते हैं । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ कल्पोंके देव देवांगनाओंके रूपावलोकन मात्रसे अपनी काम पीड़ा शान्त करते हैं । इसीप्रकार महाशुक्र और सहस्रार कल्पोंके देव देवांगनाओंके गीतादि शब्दोंको सुनकर तथा आनतादि चार कल्पोंके देव चित्तमें देवांगनाका विचार करते ही काम वेदनासे रहित हो जाते हैं । इससे ऊपरके सब देव प्रवीचार रहित हैं ।

इन्द्रोंके निवास-स्थानोंका निर्देश—

पडमादु एकतीसे, पभ-णाम-जुवस्स वविसणोलीए ।

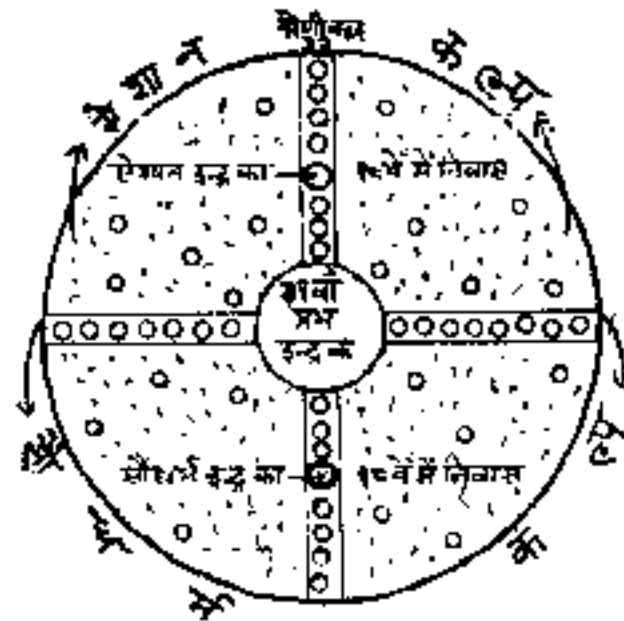
वत्तीस - सेट्ठिवद्धे, अट्ठारसम्मि चेदुवे सक्को ॥३४१॥

अर्थ—प्रथमसे एकतीसवें प्रभ-नामक इन्द्रकी दक्षिण श्रेणीमें वत्तीस श्रेणीबद्धोंमेंसे अठारहवें श्रेणीबद्ध विमानमें सौधर्म इन्द्र स्थित है ॥३४१॥

तस्सिदयस्स उत्तर - विसाए बत्तीस - सेढिबद्धेसुं ।

अट्टारसमे चेठ्ठदि, इंदो ईसाण - णामो य ॥३४२॥

अर्थ—इसी इन्द्रककी उत्तर दिशाके बत्तीस श्रेणीबद्धोंमेंसे अठारहवें श्रेणीबद्ध विमानमें ईशान नामक इन्द्र स्थित है (चित्र इसप्रकार है) ॥३४२॥



पढमावु अट्टतीसे, वविल्लण-पंतीए चक्क - णामस्स ।

पणुवीस - सेढिबद्धे, सोलसमे तह सणक्कुमारिबो ॥३४३॥

अर्थ—पहलेसे अट्टतीसवें चक्र नामक इन्द्रककी दक्षिण पंक्तिमें पच्चीस श्रेणीबद्धोंमेंसे सोलहवें श्रेणीबद्ध विमानमें सानत्कुमार इन्द्र स्थित है ॥३४३॥

तस्सिदयस्स उत्तर - विसाए पणुवीस-सेढिबद्धम्मि ।

सोलसम - सेढिबद्धे, चेठ्ठेदि माहिय - णामिबो ॥३४४॥

अर्थ—इस इन्द्रककी उत्तरदिशामें पच्चीस श्रेणीबद्धोंमेंसे सोलहवें श्रेणीबद्धमें माहेन्द्र नामक इन्द्र स्थित है ॥३४४॥

बम्हुत्तरस्स दविल्लण-विसाए इगिबीस - सेढिबद्धेसुं ।

चोदसम - सेढिबद्धे, चेठ्ठेदि हु बम्ह - कप्पिदो ॥३४५॥

अर्थ—(पहलेसे बियालीसवें) ब्रह्मोत्तर नामक इन्द्रक की दक्षिण दिशामें इक्कीस श्रेणीबद्धोंमेंसे चौदहवें श्रेणीबद्ध विमानमें ब्रह्म कल्पका इन्द्र स्थित है ॥३४५॥

लंतव-इंदय-दक्खिण-दिसाए बीसाए^१ सेढीबद्धेसुं ।

बारसम - सेढीबद्धे, चेद्धेवि हु लंतविद्धो वि ॥३४६॥

अर्थ—(पहलेसे चवालीसवें) लान्तव नामक इन्द्रककी दक्षिण दिशामें बीस श्रेणीबद्धोंमेंसे बारहवें श्रेणीबद्ध विमानमें लान्तव इन्द्र स्थित है ॥३४६॥

महसुक्किय-उत्तर-दिसाए अट्टरस - सेढीबद्धेसुं ।

दसमम्मि सेढीबद्धे, वसइ महासुक्क - णामिदो ॥३४७॥

अर्थ—(पहलेसे पैंतालीसवें) महाशुक्र नामक इन्द्रककी उत्तर दिशामें अठारह श्रेणीबद्धोंमेंसे दसवें श्रेणीबद्ध विमानमें महाशुक्र नामक इन्द्र निवास करता है ॥३४७॥

होवि सहस्सार - दिसाए सत्तरस - सेढीबद्धेसुं ।

अट्टमए सेढीबद्धे, वसइ सहस्सार - णामिदो ॥३४८॥

अर्थ—(पहलेसे सैंतालीसवें) सहस्रार नामक इन्द्रककी उत्तर दिशामें सत्तरह श्रेणीबद्धोंमेंसे आठवें श्रेणीबद्ध विमानमें सहस्रार नामक इन्द्र निवास करता है ॥३४८॥

जिणबिहु-णाम-इंदय-दक्खिण-ओलीए सेढीबद्धेसुं ।

छट्ठम - सेढीबद्धे, आणव - णामिद - आवासो ॥३४९॥

अर्थ—जिनेन्द्र द्वारा देखे गये नामवाले इन्द्रककी दक्षिण-पंक्तिके श्रेणीबद्धोंमेंसे छठे श्रेणीबद्धमें आनत नामक इन्द्रका निवास है ॥३४९॥

तस्सिवयस्स उत्तर - दिसाए तस्संख - सेढीबद्धेसुं ।

छट्ठम - सेढीबद्धे, पाणव - णामिद - आवासो ॥३५०॥

अर्थ—इस इन्द्रककी उत्तर दिशामें उतनी ही संख्या प्रमाण श्रेणीबद्धोंमेंसे छठे श्रेणीबद्धमें प्राणत नामक इन्द्रका निवास है ॥३५०॥

आरण-इंदय-दक्खिण-दिसाए एक्करस-सेढीबद्धेसुं ।

छट्ठम - सेढीबद्धे, आरण - इंदस्स आवासो ॥३५१॥

अर्थ—आरण इन्द्रककी दक्षिण दिशाके ग्यारह श्रेणीबद्धोंमेंसे छठे श्रेणीबद्ध विमानमें आरण इन्द्रका आवास है ॥३५१॥

अच्युत-इन्द्र-उत्तर-दिसाए एककरस - सेढिबद्धे सु ।

छट्ठस - सेढीबद्धे, अच्युत - इन्द्रस आवासो ॥३५२॥

अर्थ—अच्युत इन्द्रकी उत्तर दिशाके ग्यारह श्रेणीबद्धोंमेंसे छठे श्रेणीबद्ध विमानमें अच्युत इन्द्रका निवास है ॥३५२॥

विशेषार्थ—प्रथम ऋतुविमानकी प्रत्येक दिशामें ६२ श्रेणीबद्ध विमान हैं, प्रत्येक इन्द्रक प्रति प्रत्येक दिशामें एक-एक श्रेणीबद्ध विमान हीन होता है। प्रथम इन्द्रकमें हानि नहीं है अतः प्रथम कल्पके अन्तिम प्रथम इन्द्रककी एक दिशामें ३२ श्रेणीबद्ध विमान प्राप्त होंगे उनमेंसे १८ वें श्रेणीबद्ध विमानमें अर्थात् सौधर्म-ईशान कल्पके अन्तिम इन्द्रक सम्बन्धी दक्षिण दिशागत श्रेणीबद्ध विमानोंमेंसे १८ वें श्रेणीबद्धमें सौधर्मन्द्र और उत्तर दिशा सम्बन्धी ३२ श्रेणीबद्धोंमेंसे १८ वें श्रेणीबद्धमें ईशानेन्द्र निवास करते हैं। इसीप्रकार आगे भी जानना चाहिए। यथा—

क्र. सं.	कल्प नाम	इन्द्रक संख्या	एक दिशागत श्रेणीबद्ध	प्रत्येक इन्द्रक प्रति हीन होते हुए श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या	अन्तिम इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध	इन्द्रके निवास सम्बन्धी श्रेणीबद्धों की संख्या	
१	सौधर्म कल्प	३१	६२	६१, ६०, ५९, ५८, ५७, ५६, ५५, ५४, ५३	३२ मेंसे	१८ वें में	
२	ईशान कल्प	०	६२	— " — " — " —	३२ मेंसे	१८ वें में	
३	सनत्कुमार	७	३१	३०, २९, २८, २७, २६	२५ मेंसे	१६ वें में	
४	माहेन्द्र	०	३१	— " — " —	" — "	१६ वें में	
५	ब्रह्म	४	२४	२३ २२	२१ मेंसे	१४ वें में	
६	लान्तव	२	२०	[गा० ३४६ में २० मेंसे लिखा है]	१९ "	१२ वें में	
७	महाशुक्र	१	१८		१८ "	१० वें में	
८	सहस्रार	१	१७		१७ "	८ वें में	
९	आनत	—	—		गा० ३४९-५० में इन दोनों कल्पों संख्या आदि नहीं कही गई है।	—	६ वें में
१०	प्राणत						६ वें में
११	आरण		१६	१५ १४ १३ १२	११ "	६ वें में	
१२	अच्युत		१६		११ "	६ वें में	

छज्जुगल - सेसएसुं, अट्ठारसमम्मि सेट्ठिबद्धेसुं ।
दो-हीण-कमं दक्खिण-उत्तर-भागेषु होंति वेदिदा ॥३५३॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—छह युगलों और शेष कल्पोंमें यथाक्रमसे प्रथम युगलमें अपने अन्तिम इन्द्रकसे सम्बद्ध अठारहवें श्रेणीबद्धमें तथा इससे आगे दो हीन क्रमसे अर्थात् सोलहवें, चौदहवें, बारहवें, दसवें, आठवें और छठे श्रेणीबद्धमें दक्षिण भागमें दक्षिण इन्द्र और उत्तर भागमें उत्तर इन्द्र स्थित हैं ॥३५३॥

पाठान्तर ।

श्रेणियां एवं उनके मध्य स्थित नगरोंके प्रमाण आदिका निर्देश—

एवाणं सेट्ठीश्रो, पत्तेक्कमसंख - जोयण - पमाणा ।
रावेमंडल-सम-घट्टा, पाणावर - रयण - नियरमया ॥३५४॥

अर्थ—सूर्यमण्डलके सदृश गोल और नाना उत्तम रत्नसमूहोंसे निर्मित इनकी श्रेणियोंमेंसे प्रत्येक (श्रेणी) असंख्यात योजन प्रमाण है ॥३५४॥

तेसुं तट-वेदीओ, कणयमया होंति विविह-धय-माला ।
चरियट्टालय-चारू, घर - तोरण - सुंदर - कुवारा ॥३५५॥

अर्थ—उनमें मार्गों एवं अट्टालिकाओंसे सुन्दर, उत्तम तोरणोंसे युक्त सुन्दर द्वारोंवाली और विविध छवजा-समूहोंसे युक्त स्वर्णमय तट-वेदियाँ हैं ॥३५५॥

दारोवरिम-तलेसुं, जिणभवणेहि विचित्त - रुवेहि ।
उत्तुंग - तोरणेहि, सविसेसं सोहमाणाओ ॥३५६॥

अर्थ—द्वारोंके उपरिम तलोंपर उन्नत तोरणों सहित और अद्भुत रूपवाले जिन-भबनोंसे वे वेदियाँ विशेष शोभायमान हैं ॥३५६॥

एवं पइष्णिदाणं, सेट्ठीरां होंति ताण बहुमज्जे ।
णिय-णिय-नाम-जुदाई, सक्क - प्पहुक्कीण रायराई ॥३५७॥

अर्थ—इसप्रकार वर्णित उन श्रेणियोंके बहुमध्य भागमें अपने-अपने नामसे युक्त सीधमें इन्द्र आदिके नगर हैं ॥३५७॥

चुलसीदी-सीदीओ, बाहत्तरि - सत्तरीओ सट्ठी य ।

पण्णास-चाल-तीसा, बीस सहस्साणि जोयणया ॥३५८॥

८४००० । ८०००० । ७२००० । ७०००० । ६०००० । ५०००० ।

४०००० । ३०००० । २०००० ।

सोहम्मिदादीणं, अट्ठ - सुरिवाण सेस - इंदानं ।

रायंगणस्स वासो, पत्तेक्कं एस णावधो ॥३५९॥

अर्थ—सोधर्मादि आठ सुरेन्द्रों और शेष इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके राजाङ्गणका यह विस्तार क्रमशः चौरासी हजार (८४०००), अस्सी हजार (८००००), बहत्तर हजार (७२०००), सत्तर हजार (७००००), साठ हजार (६००००), पचास हजार (५००००), चालीस हजार (४००००), तीस हजार (३००००) और बीस हजार (२००००) जानना चाहिए ॥३५८-३५९॥

रायंगण - भूमीए, समंतदो दिव्व-कणय-तट-वेदी ।

चरियट्ठालय-चारू, णच्चंत - विवित्त - रयणमाला ॥३६०॥

अर्थ—राजाङ्गण भूमिके चारों ओर दिव्य सुवर्णमय तट-वेदी है । यह वेदी मार्ग एवं अट्ठालिकाओंसे सुन्दर तथा नाचती हुई विचित्र रत्नमालाओंसे युक्त है ॥३६०॥

प्राकारका उत्सेध आदि—

सक्क-दुगे तिण्णि-सया, अट्ठाइज्जा-सयाणि उवरि-दुगे ।

बम्मिह्वे दोण्णि - सया, आदिम - पाथार - उच्चैहो ॥३६१॥

३०० । २५० । २०० ।

अर्थ—क्षक-द्विक अर्थात् सोधमं और ईशान इन्द्रके आदिम प्राकारका उत्सेध तीन सौ (३००), उपरि-द्विक अर्थात् सानत्कुमार और माहेन्द्रके आदिम प्राकारका उत्सेध अढ़ाई सौ (२५०) तथा ब्रह्मेन्द्रके आदिम प्राकारका उत्सेध दो सौ (२००) योजन है ॥३६१॥

पण्णास-जुदेक्क-सया, बीसवभहियं सयं सयं सुद्धं ।

सो संतविद-तिवए, असीदि पत्तेक्क-आणदादिम्मि ॥३६२॥

१५० । १२० । १०० । ८० ।

अर्थ—लान्तवेन्द्रादिक तीन (लान्तवेन्द्र, महाशुक्रेन्द्र और सहस्रारेन्द्र) के आदिम प्राकारोंका उत्सेध-प्रमाण क्रमशः एक सौ पचास (१५०), एक सौ बीस (१२०) और केवल सौ (१००) योजन है । प्रत्येक आन्तेन्द्रादिके राजाङ्गणका उत्सेध अस्सी (८०) योजन प्रमाण है ॥३६२॥

पण्णासं पणुवीसं, तस्सद्धं तद्धत्तं च चत्तारि ।

तिणिण य अद्धाद्धजं, जोयणया सह कमे गाढं ॥३६३॥

५० । २५ ३५ । ३५ । ४ । ३ । ३ ।

अर्थ—उपर्युक्त आदिम प्राकारका अवगाढ़ (नींव) क्रमशः पचास, पचवीस, उसका आधा (१२३ यो०), उसका भी आधा (६३ यो०), चार, तीन और अढ़ाई (२३) योजन प्रमाण है ॥३६३॥

अं गाढस्स पमाणां, तं शिखं बहुलस्स गं मि गज्जत्तां ।

आदिम - पायारस्स य, कमसोयं पुव्व - ठाणेसुं ॥३६४॥

अर्थ—पूर्वोक्त स्थानोंमें जो आदिम प्राकारके अवगाढ़का प्रमाण है, वही क्रमशः उसका बाहुल्य भी जानना चाहिए ॥३६४॥

गोपुर द्वारोंका प्रमाण आदि—

सक्क-वुगे चत्तारो, सह तिणिण सणक्कुमार-इंवे-वुगे ।

बम्हिंवे दोणिण सया, आदिम-पायार-गोउर-वुवारं ॥३६५॥

४०० । ३०० । २००

इगिसट्ठी अहिय-सयं, चालोसुत्तर-सयं सयं वीसं ।

ते संतवादि - तिवाए, सयमेक्कं आणवादि - इंवेसु ॥३६६॥

११६१ । १४० । १२० । १०० ।

अर्थ—आदिम प्राकारोंके गोपुर-द्वार सीधमेंशानमें चार-चार सौ (४००), सानत्कुमार-माहेन्द्रमें तीन-तीन सौ (३००), ब्रह्मकल्पमें दो सौ (२००), लान्तवकल्पमें एक सौ इकसठ (१६१), महाशुक्रमें एक सौ चालीस (१४०), सहस्रारमें एक सौ बीस (१२०) और आनत आदि इन्द्रोंमें एक-एक सौ (१००-१००) हैं ॥३६५-३६६॥

चत्तारि तिणिण दोणिण य, सयाणि सयमेक्क सट्ठि-संजुत्तं ।

चालीस - जुवेक्क - सयं, वीसअहियं सयं एक्कं ॥३६७॥

४०० । ३०० । २०० । १६० । १४० । १२० । १०० ।

नोट—गा० ३६७ के अनुसार गा० ३६६ में १६१ के स्थान पर प्रमाण १६० ही होना चाहिए ।

एवाह जोयणाहं, गोउर-दाराण होइ उच्छेहो ।

सोहम्म - प्पहुवीसुं, पुव्वोदिद - सस - ठाणेसुं ॥३६८॥

अर्थ—सौधर्मादि पूर्वोक्त सात स्थानोंमें गोपुर-द्वारोंका उत्सेध क्रमशः चार सौ, तीन सौ, दो सौ, एक सौ साठ, एक सौ चालीस, एक सौ बीस और एक सौ योजन प्रमाण है ॥३६७-३६८॥

एक-सय-णउदि-सीवी-सत्तारि-पण्णास-चाल-तीस-कमा ।

जोयणया वित्थारो, गोउर - दाराण पसेवकं ॥३६९॥

१०० । ९० । ८० । ७० । ५० । ४० । ३० ।

अर्थ—उपर्युक्त स्थानोंमें गोपुर-द्वारोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार क्रमशः एकसौ, नब्बे, अस्सी, सत्तर, पचास, चालीस और तीस योजन प्रमाण है ॥३६९॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्र.सं.	स्थानोंके नाम	राजागणोंका (नगरों का) विस्तार गा० ३५८-३५९	प्राकारों (कोट) का विवरण			गोपुर द्वारोंका प्रमाणदि		
			उत्सेध गा. ३६१-३६२	अवगाढ़ (नींव) गा० ३६३	बाह्य गा० ३६४	प्रमाण गा० ३६५- ३६६	उत्सेध गा० ३६७- ३६८	विस्तार गा० ३६९
१	सौधमें	८४०००० योजन	३०० यो०	५० योजन	५० योजन	४००	४०० योजन	१०० यो०
२	ईशान	८००००० "	३०० "	५० "	५० "	४००	४०० "	१०० "
३	सानत्कुमार	७२०००० "	२५० "	२५ "	२५ "	३००	३०० "	६० "
४	महेन्द्र	७००००० "	२५० "	२५ "	२५ "	३००	३०० "	६० "
५	ब्रह्म	६००००० "	२०० "	१२३ "	१२३ "	२००	२०० "	८० "
६	लान्तव	५००००० "	१५० "	६३ "	६३ "	१६१	१६० "	७० "
७	महाशुक्र	४००००० "	१२० "	४ "	४ "	१४०	१४० "	५० "
८	सहस्रार	३००००० "	१०० "	३ "	३ "	१२०	१२० "	४० "
९	आनतादि ४	२००००० "	८० "	२३ "	२३ "	१००	१०० "	३० "

राजांगणके मध्य स्थित प्रासादोंका विवेचन—

रायंगण - बहुमज्जे, एक्केक्क-पहाण-विब्ब-प्रासादा ।

एक्केक्कस्सि इंदे, णिय-णिय-इंदान णाम - समा ॥३७०॥

अर्थ—राजांगणके बहुमध्य भागमें एक-एक इन्द्रका अपने-अपने नामके सदृश एक-एक प्रधान दिव्य प्रासाद है ॥३७०॥

धुव्वंत-धय-वडाया, मुत्ताहल-हेम-दाम-कमणिज्जा ।

वर-रयण-मत्तावारण-णाणाविह-सालभंजियाभरणा ॥३७१॥

विप्पंत-रयण-दीवा, वज्ज-कवाडोहि सुंवर-दुवारा ।

विब्ब-वर-धूव-सुरही, सेज्जासण-पहुवि-परिपुण्णा ॥३७२॥

सत्ताट्ठ-णव-वसादिय-विचित्त-भूमीहि सुसिदा सव्वे ।

बहुवण्ण - रयण - खचित्ता, सोहंते सासय - सरूवा ॥३७३॥

अर्थ—सब प्रासाद फहराती हुई ध्वजा पताकाओं सहित, मुक्ताफलों एवं सुवर्णकी मालाओंसे रमणीक, उत्तम रत्नमय मत्तवारणोंसे संयुक्त, आभरण युक्त नाना प्रकारकी पुतलियों सहित, चमकते हुए रत्न-दीपकोंसे सुशोभित, वज्रमय कपाटोंसे, सुन्दर द्वारोंवाले, दिव्य उत्तम धूपसे सुगन्धित, शय्या एवं आसन आदिसे परिपूर्ण और सात, आठ, नौ तथा दस आदि अद्भुत भूमियोंसे भूषित हैं । आश्चर्य स्वरूपसे युक्त ये प्रासाद नाना रत्नोंसे खचित होते हुए शोभायमान हैं ॥३७१-३७३॥

प्रासादोंके उत्सेधादिका कथन—

छस्सय-पंच-सयाणि, षण्णुत्तर-चउ-सयाणि उज्जेहो ।

एदाणं सक्क - दुगे, दु'-इंद-जुगलम्मि बम्मिहे^१ ॥३७४॥

६०० । ५०० । ४००

चत्तारि-सय षण्णुत्तर-तिणिण-सया केवला य तिणिण सया ।

सो लंतविव-तिवए, आणव - पहुवीसु दु-सय-यण्णासा ॥३७५॥

४०० । ३५० । ३०० । २५० ।

अर्थ—शक्रद्विक (सोधर्मेशान), सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल और ब्रह्मेन्द्रके इन प्रासादोंका उत्सेध क्रमशः छह सौ (६००), पाँच सौ (५००) और चार सौ पचास (४५०) योजन प्रमाण

है । वह प्रासादोंका उत्सेध लान्तवेन्द्र आदि तीनोंके क्रमशः चार सौ (४००) तीन सौ पचास (३५०) और केवल तीन सौ (३००) तथा आनतेन्द्र आदिकोंके दो सौ पचास (२५०) योजन प्रमाण है ॥३७४-३७५॥

एदाणं विस्थारा, गिय-णिय-उच्छेद्द-पंचम-विभागा ।

विस्थारद्धं गाढं, पत्तेवकं सव्व - पासावे ॥३७६॥

अर्थ—इन प्रासादोंका विस्तार अपने-अपने उत्सेधके पाँचवें भाग (१२०, १०० ९०, ८०, ७०, ६० और ५० योजन) प्रमाण है तथा प्रत्येक प्रासादका अवगाह विस्तारसे आधा (६०, ५०, ४५, ४०, ३५, ३० और २५ योजन प्रमाण) है ॥३७६॥

सिंहासन एवं इन्द्रोंका कथन—

पासादाणं मज्जे, सपाद - पीढा 'अकट्टिमायारा ।

सिंहासणा विसाला, वर - रयणमया विरायंति ॥३७७॥

अर्थ—प्रासादोंके मध्यमें पादपीठ सहित, अकृत्रिम, विशाल आकारवाले और उत्तम रत्न-मय सिंहासन विराजमान हैं ॥३७७॥

सिंहासणाण सोहा, जा एदाणं विचित्त - रुवाणं ।

ण य सक्का योत्तुं 'मे, पुण्ण-फलं' एत्थ परुचवत्तं ॥३७८॥

अर्थ—अद्भुत रूपवाले इन सिंहासनोंकी जो शोभा है, उसका कथन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ । यहाँ पुष्पका फल प्रत्यक्ष है ॥३७८॥

सिंहासणमारुढा, सोलस-वर - भूसणेहि सोहिल्ला ।

सम्मत्ता - रयणा - सुद्धा, सव्वे इंदा विरायंति ॥३७९॥

अर्थ—सिंहासनपर आरुढ़, सोलह उत्तम आभूषणोंसे शोभायमान और सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे शुद्ध सब इन्द्र विराजमान हैं ॥३७९॥

पुव्वज्जिदाहि सुचरिद - कोडोहि संचिदाए लच्छीए ।

सक्कादीणं उवमा, का दिउज्जइ णिरुवमाणाए ॥३८०॥

अर्थ—पूर्वोपाजित करोड़ों सुचरित्रोंसे प्राप्त हुई शक्रादिकोंकी अनुपम लक्ष्मीको कौन सी उपमा दी जाय ? ॥३८०॥

देवीहिं पंडिदेहिं, सामाणिय - पहुवि-वेव - संघेहि ।

सेविज्जंते णिक्खं, इंदा वर - छरा - चमर-धारीहि ॥३८१॥

अर्थ—उत्तम छत्रों एवं चमरोंको धारण करनेवाली देवियों, प्रतीन्द्रों और सामानिक आदि देव-समूहोंके द्वारा इन्द्रोंकी नित्य ही सेवा की जाती है ॥३८१॥

प्रत्येक इन्द्रकी समस्त देवियोंका प्रमाण—

सट्ठि-सहस्सब्भहियं, एक्कं लख्खं हुवंति पत्तेक्कं ।

सोहम्मीसारिणे, अट्ठट्ठा अगग - देवीओ ॥३८२॥

१६०००० । ८ ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके एक लाख साठ हजार (१६००००) देवियाँ तथा आठ अग्र-देवियाँ होती हैं ॥३८२॥

विशेषार्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रोंमेंसे प्रत्येक इन्द्रकी अग्र देवियाँ ८ हैं और वल्लभा ३२००० हैं तथा प्रत्येक अग्र देवीकी १६००० परिवार देवियाँ होती हैं । इसप्रकार सौधर्म अथवा ईशान इन्द्रकी समस्त देवियाँ— $१६०००० = (८ \times १६०००) + ३२०००$ हैं ।

इसीप्रकार सर्वत्र जानना चाहिए ।

अगग-महिसीओ अट्ठं माहिं-सणक्कुमार-इंदाणं ।

बाह्हारि सहस्सा, देवीओ होति पत्तेक्कं ॥३८३॥

८ । ७२००० ।

अर्थ—सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके आठ अग्र-महिषियाँ तथा बहत्तर हजार (७२०००) देवियाँ होती हैं ॥३८३॥

$७२००० = (अग्र ८ \times ८००० परिवार देवियाँ) + ८००० वल्लभा ।$

अगग-महिसीओ अट्ठ य, चोत्तीस-सहस्सयाणि देवीओ ।

णिक्खम - लावण्णाओ, सोहंते बम्ह - कप्पिदे ॥३८४॥

८ । ३४००० ।

अर्थ—ब्रह्मकल्पेन्द्रके अनुपम लावण्यवाली आठ अग्र-महिषियाँ और चौत्तीस हजार (३४०००) देवियाँ शोभायमान हैं ॥३८४॥

$३४००० = (अग्र ८ \times ४००० परिवार देवियाँ) + २००० वल्लभा ।$

सोलस-सहस्स-पण-सय-देवीओ अट्ठ अण-महिंसीओ ।

संतथ - इंदम्मि पुढं, निरुवम - रुवाओ रेहंति ॥३८५॥

८ । १६५०० ।

अर्थ—लान्तवेन्द्रके अनुपम रूपवाली सोलह हजार पाँच सौ (१६५००) देवियाँ और आठ अग्र-महिषियाँ शोभायमान हैं ॥३८५॥

१६५०० = (अग्र० ८ × २००० परिवार देवियाँ) + ५०० वल्लभा ।

अट्ठ-सहस्सा दु-सया, पण्णभहिया हुवंति देवीओ ।

अण-महिंसीओ अट्ठ य, रम्मा महसुक्क - इंदम्मि ॥३८६॥

८ । ८२५० ।

अर्थ—महाशुक्र इन्द्रके आठ हजार दो सौ पचास (८२५०) देवियाँ और आठ अग्र-महिषियाँ होती हैं ॥३८६॥

८२५० = (अग्र० ८ × १००० परिवार देवियाँ) + २५० वल्लभा ।

चत्तारि-सहस्साइं, एक्क-सयं पंचवीस - अब्भहियं ।

देवीओ अट्ठ जेढा, होंति सहस्सार - इंदम्मि ॥३८७॥

८ । ४१२५ ।

अर्थ—सहस्रार इन्द्रके चार हजार एक सौ पच्चीस (४१२५) देवियाँ और आठ ज्येष्ठ देवियाँ होती हैं ॥३८७॥

४१२५ = (अग्र० ८ × ५०० परिवार देवियाँ) + १२५ वल्लभा ।

आणद-पाणद-आरण-अच्चुद-इंदेसु अट्ठ जेढाओ ।

पसेवकं दु - सहस्सा, तेसट्ठी होंति देवीओ ॥३८८॥

८ । २०६३ ।

अर्थ—आतत, आणत, आरण और अच्चुत इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके आठ अग्र-महिषियाँ और दो हजार तिरेसठ (२०६३) देवियाँ होती हैं ॥३८८॥

२०६३ = (अग्र० ८ × २५० परिवार देवियाँ) + ६३ वल्लभा ।

मतान्तरसे सौधर्मेन्द्रकी देवियोंका प्रमाण—

खं-णह-णहट्ठ-दुग-इगि-अट्ठय-छस्सस-सक्क - देवीओ ।

लोयविणिच्छि - गंधे, हुवंति सेसेसु पुब्बं व ॥३८९॥

७६८१२८००० ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—शून्य, शून्य, शून्य, आठ, दो, एक, आठ, छह और सात, इन अंकोंके प्रमाण सौधर्म इन्द्रके (७६८१२८०००) देवियाँ होती हैं । शेष इन्द्रोंमें देवियोंका प्रमाण पहलेके ही सदृश है, ऐसा लोकदिनिश्चय ग्रन्थमें निर्दिष्ट है ॥३८९॥

पाठान्तर ।

मतान्तरसे सौधर्मन्द्रकी देवियोंका प्रमाण—

सगवीसं कोडीओ, सोहम्मिसेसु होंति देवीओ ।
पुण्वं पि व सेसेसु, संगहणियम्मि निहिट्ठं ॥३९०॥

पाठान्तरम् ।

२७००००००० ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके सत्ताईस करोड़ (२७००००००००) और शेष इन्द्रोंके पूर्वोक्त संख्या प्रमाण देवियाँ होती हैं, ऐसा संगहणियेमें निर्दिष्ट है ॥३९०॥

इन्द्रोंकी सेवा-विधि—

माया-वियज्जिवाओ, बहु-रवि-करणेसु शिञ्जण-बुद्धीओ ।
ओल्लगंते निच्चं, गिय - गिय - इंदाण च्चलणाहं ॥३९१॥

अर्थ—मायासे रहित और बहुत अनुराग करनेमें निपुण बुद्धिवाली वे देवियाँ नित्य अपने-अपने इन्द्रोंके चरणोंकी सेवा करती हैं ॥३९१॥

बबबर-चिलाव-खुज्जय-कम्मन्तिय-दास-दासि-पहुडीओ ।
अतेउर - जोग्गाओ, चेट्ठंति विचित्त - वेसाओ ॥३९२॥

अर्थ—अन्तःपुरके योग्य बबर, किरात, कुब्जक, कर्मान्तिक और दास-दासी आदि अनेक प्रकारके (विचित्र) वेषों से युक्त स्थित रहते हैं ॥३९२॥

इंदाणं 'अस्थाने, पीढाणीयस्स अहिचई वेवा ।
रयणासणाणि वेति ह, सपाव - पीढाणि बहुवारिण ॥३९३॥

अर्थ—स्थानके विभागोंकी जानकारी जो जिसके योग्य होता है, देव उसे वंसा ही ऊँचा या नीचा तथा निकटवर्ती अथवा दूरवर्ती अनुसन्ध देते हैं ॥३९३॥

जं जस्स जोभामुच्चं, णिच्चं णियडं विदूरमासणं ।

सं तस्स वेति देवा, णादूणं भू - विभागाइं ॥३६४॥

अर्थ—जो जिसके योग्य उच्च एवं नीच तथा निकट अथवा दूरवर्ती आसन होता है (उसीप्रकार) स्थानके विभागोंको जानकर देव उसके लिए देते हैं ॥३६४॥

वर-रयण-बंड-हुत्था, पडिहारा होंति इंद-अट्ठाणे ।

पत्थावमपत्थावं, ओलगंताण घोसंति ॥३६५॥

अर्थ—इन्द्रके आस्थान (सभा) में उत्तम रत्नदण्डको हाथमें लिए हुए जो द्वारपाल होते हैं वे सेवकोंके लिए प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत कार्यको घोषणा करते हैं ॥३६५॥

अवरे वि सुरा तेसिं, णाणाविह-पेसणाणि कुणमाणा ।

इंदाण भत्ति - भरिदा, आणं सिरसा पडिच्छंति ॥३६६॥

अर्थ—उनके नानाप्रकारके कार्योंको करनेवाले भक्तिसे भरे हुए इतर देव भी उन इन्द्रोंकी आज्ञाको शिरसे ग्रहण करते हैं ॥३६६॥

पडिइंदादी देवा, णिभर - भत्तीए णिच्चमोलगं ।

अभिमुह - ठिदा सभाए, णिय-णिय-इंदाण कुर्वंति ॥३६७॥

अर्थ—प्रतीन्द्रादिक देव अत्यन्त भक्तिसे सभामें अभिमुख स्थित होकर अपने-अपने इन्द्रोंकी नित्य सेवा करते हैं ॥३६७॥

पुब्बं ओलग-सभा, सबकीसाण जारिसा भणिदा ।

तारिसया सव्वाणं, णिय - णिय - णयरेसु इंवाणं ॥३६८॥

अर्थ—पूर्वमें सीधमें और ईशान इन्द्रकी जैसी ओलगसभा (सेवकशाला) कही है, वैसे अपने-अपने नगरोंमें सब इन्द्रोंके होती है ॥३६८॥

प्रधान प्रासादके अतिरिक्त इन्द्रोंके अन्य चार प्रासाद—

इंद-प्पहाण-पासाद-पुब्ब-दिग्भाग-पहुदि - संठाणा ।

चत्तारो पासादा, पुब्बोदिद - वण्णणेहि जुदा ॥३६९॥

अर्थ—इन्द्रोंके प्रधान प्रासादके पूर्व-दिशाभाग-आदिमें स्थित और पूर्वोक्त वर्णनोंसे युक्त चार प्रासाद (और) होते हैं ॥३६९॥

वेहलिय-रजद-सोका, मिसवकसारं च वक्खिणिदेसुं ।

रुचकं मंदर - सोका, सत्तच्छदयं च उत्तरिवेसुं ॥४००॥

अर्थ—दक्षिण इन्द्रोमें वैडर्य, रजत, अशोक और मृषत्कसार तथा उत्तर इन्द्रोमें रुचक, मन्दर अशोक और सत्तच्छद, ये चार प्रासाद होते हैं ॥४००॥

इन्द्र-प्रासादोंके आगे स्थित स्तम्भोंका वर्णन—

सवकीसाण-गिहाणां, पुरदो छत्तोस - जोयणुच्छेहा ।

जोयण-बहला-खंभा, ^१ बारस-धारा ^२ हुबंति वज्जमया ॥४०१॥

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रके प्रासादोंके आगे छत्तीस योजन ऊंचे और एक योजन बाहुल्य सहित वज्रमय बारह धाराओंवाले खम्भा (स्तम्भ) होते हैं ॥४०१॥

पत्तेवकं धाराणं, ^३ वासो एक्केवक - कोस ^४-परिमाणं ।

माणत्थंभ ^५ - सरिच्छं, सेसत्थंभाण वण्णणयं ॥४०२॥

अर्थ—उन धाराओंमें प्रत्येक धाराका व्यास एक-एक कोस प्रमाण है । स्तम्भोंका शेष वर्णन मानस्तम्भोंके सदृश है ॥४०२॥

भरहेरावद-भुगव - तित्थयर - बालयाणाभरणानं ^६ ।

वर - रयण - करंडेहि, संबंतेहि विरायंते ॥४०३॥

अर्थ—(ये स्तम्भ) भरत और ऐरावत भूमिके तीर्थकर बालकोंके आभरणोंके लटकते हुए उत्तम रत्नमय पिटारोंसे विराजमान हैं ॥४०३॥

मूलादो उवरि-तसे, पुह पुह पणुवीस-कोस-परिमाणा ।

गंतूणां सिहरादो, तेत्तियमोवरिय होंति हु करंडा ॥४०४॥

२५ । २५ ।

अर्थ—(स्तम्भोंके) मूलसे उपरिम तलमें पृथक्-पृथक् पच्चीस कोस (६३ यो०) प्रमाण जाकर और शिखरसे इतने (२५ कोस) ही उतर कर ये करण्ड (पिटारे) होते हैं ॥४०४॥

पंच-सय-प्पाव-रुंदा, पत्तेवकं एक्क-कोस-वीहत्ता ।

ते होंति वर - करंडा, णाणा-वर-रयण-रासिमया ॥४०५॥

१. व. कंभा । २. द. व. क. ज. ठ. धारा । ३. द. व. क. ज. ठ. धाराणं । ४. व. कोसा ।
५. द. व. क. ज. ठ. माणत्थं भ । ६. द. व. क. ज. ठ. बालहंदाणां ।

५०० । को १ ।

अर्थ—अनेक उत्तम रत्नोंकी राशि स्वरूप उन अष्ट करण्डोंमेंसे प्रत्येक पाँच सौ (५००) धनुष विस्तृत और एक कोस लम्बा होता है ॥४०५॥

ते संखेज्जा सट्ठे, लंबंता रयण - सिक्क - जालेसुं ।

सक्कादि-पूजसिज्जा, अणादिणिहणा महा - रम्मा ॥४०६॥

अर्थ—रत्नमय सीकोंके समूहोंमें लटकते हुए वे सब संख्यात करण्ड शक्रादिसे पूजनीय, अनादि-निघन और महा रमणीय होते हैं ॥४०६॥

आभरणा पुब्बावर-विदेह-तित्थयर-बालयाणं च ।

यंभोवरि चेद्वृत्ते, भवणेसु सणवकुमार - जुगलस्स ॥४०७॥

अर्थ—सनत्कुमार और माहेन्द्रके भवनोंमें स्तम्भों पर पूर्व एवं पश्चिम विदेह सम्बन्धी तीर्थकर बालकोंके आभरण स्थित होते हैं ॥४०७॥

विशेषार्थ—स्तम्भोंकी ऊँचाई ३६ योजन है । इनमें मूलसे ६३ योजन पर्यन्त उपरिम भागमें और शिखरसे ६३ यो० सीचेके भागमें करण्ड नहीं हैं । प्रत्येक करण्ड २००० धनुष (१ कोस) विस्तृत और ५०० धनुष (३ कोस) लम्बा है । ये रत्नमयी सीकोंपर लटकते हैं । सौधर्मकल्पमें स्थित स्तम्भ पर स्थापित करण्डोंके आभरण भरतक्षेत्र सम्बन्धी बाल तीर्थकरोंके लिए हैं । ईशान कल्प स्थित स्तम्भपर स्थापित करण्डोंके आभरण ऐरावतक्षेत्र सम्बन्धी बाल तीर्थकरोंके लिए हैं । इसीप्रकार सानत्कुमार कल्पगत पूर्वविदेह क्षेत्र सम्बन्धी बाल-तीर्थकरों के लिये और माहेन्द्र कल्पगत करण्डोंके आभरण पश्चिम विदेह क्षेत्र सम्बन्धी बाल-तीर्थकरोंके लिए होते हैं ।

इन्द्र-भवनोके सामने न्यग्रोध वृक्ष—

सयलिव - मंदिराणं, पुरवो णगोह - पायवा होंति ।

एक्केक्कं पुढविमया, पुण्वोविद-जंबु - कुम - सरिसा ॥४०८॥

अर्थ—समस्त इन्द्र-प्रासादों (या भवनों) के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं । इनमें एक-एक वृक्ष पृथिवी स्वरूप और पूर्वोक्त जम्बू वृक्षके सदृश होता है ॥४०८॥

तम्मूले एक्केक्का, जिण्णिद-पडिमा य पडिदिसं होसि ।

सक्कादि-णमिद-चलणा, सुमरण-मेत्ते वि बुरिब-हरा ॥४०९॥

अर्थ—इसके मूलमें प्रत्येक दिशामें एक-एक जिनेन्द्र-प्रतिमा होती है । जिसके चरणोंमें इन्द्र आदिक प्रणाम करते हैं तथा जो स्मरण मात्रसे ही पापको हरनेवाली है ॥४०९॥

सुधर्मा सभा—

सक्कस्स मंदिरादो, ईसाण-दिसे सुधम्म-णाम-सभा ।

ति-सहस्स-कोस-उदया, अउ-सय-दोहा तद्वु-विथारा ॥४१०॥

३००० । ४०० । २०० ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके भवनसे ईशान दिशामें तीन हजार (३०००) कोस ऊँची, चार सौ (४००) कोस लम्बी और इससे आधे अर्थात् २०० कोस विस्तारवाली सुधर्मा नामक सभा है ॥४१०॥

नोट—सुधर्मासभाकी ऊँचाई ३०० कोस होनी चाहिए, क्योंकि अकृत्रिम मापोंमें ऊँचाई का प्रमाण प्रायः लम्बाई + चौड़ाई होता है ।

२

त्थिं ह्वारुच्छेदा, कोसा अउसद्धि तद्वलं वंधो ।

सेसाओ वण्णणाओ, सक्क - प्पासाद - सरिसाओ ॥४११॥

६४ । ३२ ।

अर्थ—सुधर्मा सभाके द्वारोंकी ऊँचाई चौसठ (६४) कोस और विस्तार इससे आधा अर्थात् ३२ कोस है । शेष वर्णन सौधर्म इन्द्रके प्रासाद सदृश है ॥४११॥

रम्माए सुधम्माए, विविह-विणोदेहि कीउदे सक्को ।

बहुविह-परिवार-जुवो, भुजंतो विविह-सोक्खाणि ॥४१२॥

अर्थ—इस रमणीय सुधर्मा सभामें बहुत प्रकारके परिवारसे युक्त सौधर्म इन्द्र विविध सुखोंको भोगता हुआ अनेक विनोदोंसे क्रीड़ा करता है ॥४१२॥

उपपाद सभा—

तत्थेसाण-दिसाए, उववाद-सभा हुवेदि पुव्व-समा ।

दिप्पंत'-रयण - सेज्जा, विण्णास-विसेस-सोहिल्ला ॥४१३॥

अर्थ—वही ईशान दिशामें पूर्वके सदृश उपपाद सभा है । यह सभा दीदीप्यमान रत्न-पाय्याओं सहित विन्यास-विशेषसे शोभायमान है ॥४१३॥

जिनेन्द्र-प्रासाद—

तीए दिसाए चेठ्ठदि, वर-रयणमओ जिणिद-पासादो ।

पुव्व-सरिच्छो ग्रहवा, पंडुग - जिणभवण - सारिच्छो ॥४१४॥

अर्थ—उसी दिशामें दूधके सदृश अथवा पाण्डुक वन सम्बंधी जिनभवनके सदृश उत्तम रत्नमय जिनेन्द्र-प्रासाद हैं ॥४१४॥

अड-जोयण-उड्विहो, तेसिय-भासो हवति पत्तेवकं ।
सेसिदे पासावा, सेसो पुव्वं व विण्णासो ॥४१५॥

८ । ८ ।

अर्थ—शेष इन्द्रोंके प्रासादोंमेंसे प्रत्येक आठ (८) योजन ऊँचा और इतने (८ यो०) ही विस्तार सहित है । शेष विन्यास पहलेके ही सदृश है ॥४१५॥

देवियों और बल्लभाओंके भवनोंका विवेचन—

इंव - प्पासादाणं, समंतदो होंति दिव्व - पासादा ।
देवी - बल्लहियाणं, णाणावर - रयण - कणयमया ॥४१६॥

अर्थ—इन्द्र-प्रासादोंके चारों ओर देवियों और बल्लभाओंके नाना उत्तम रत्नमय एवं स्वर्णमय दिव्य प्रासाद हैं ॥४१६॥

देवी-भयणुच्छेहा, सक्क-बुगे जोयणाणि पंच-सया ।
माहिद - दुगे पण्णळभहियाणि चउ - सयाणि पि ॥४१७॥

५०० । ४५० ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रकी देवियोंके भवनोंकी ऊँचाई पाँच सौ (५००) योजन तथा सानत्कुमार एवं माहेन्द्र इन्द्रकी देवियोंके भवनोंकी ऊँचाई चार सौ पचास (४५०) योजन है ॥४१७॥

बंभिहव - संतविदे, महसुविकदे सहस्सयारिदे ।
आणव-पंहुदि-चउक्के, कमसो पण्णास - हीणाणि ॥४१८॥

४०० । ३५० । ३०० । २५० । २०० ।

अर्थ—ब्रह्मेन्द्र, लान्तवेन्द्र, महाशुकेन्द्र, सहसारेन्द्र और आनत आदि चार इन्द्रोंकी देवियोंके भवनोंकी ऊँचाई क्रमशः पचास-पचास योजन कम है । अर्थात् क्रमशः ४०० यो०, ३५० यो०, ३०० यो०, २५० यो० और २०० योजन है ॥४१८॥

देवी - पुर-उटयादो, बल्लभिया-मंदिराण-उच्छेहो ।
सव्वेसुं इंदेसुं, जोयण - बीसाहिओ होवि ॥४१९॥

अर्थ—सब इन्द्रोंमें वल्लभाओंके मन्दिरोंका उत्सेध देवियोंके पुरोंके उत्सेधसे बीस योजन अधिक है ॥४१९॥

उच्छेह - दसम - भागे, एवाणं मंदिरेसु विक्खंभा ।

विक्खंभ - वुगुण - दीहं, वास्सद्धं पि गावत्तं ॥४२०॥

अर्थ—इनके मन्दिरोंका विष्कम्भ उत्सेधके दसवें भाग प्रमाण, दीर्घता विष्कम्भसे दूनी और अवगाढ़ व्याससे आधा है ॥४२०॥

सव्वेसु मंदिरेसु, उववण - संडाणि होंति दिव्वाणि ।

सव्व-उडु-जोग-पल्लव-फल-कुसुम-विभूवि-भरिदाणि ॥४२१॥

अर्थ—सब मन्दिरोंमें समस्त ऋतुओंके योग्य पत्र, फूल और कुसुमरूप विभूतिसे परिपूर्ण दिव्य उपवन खण्ड होते हैं ॥४२१॥

पोवसरणी-वापीओ, सच्छ-जलाओ विचिस-रुवाओ ।

पुष्पिद्ध - कम्मल - जलाओ, एक्केक्के मंदिरे होंति ॥४२२॥

अर्थ—एक-एक मन्दिरमें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण, विचित्ररूपवाली और पुष्पित कमलधनोंसे संयुक्त पुष्करिणी वापियाँ हैं ॥४२२॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	इन्द्र-नाम	देवियोंके भवनोंकी				वत्सभाग्नोके भवनोंकी			
		ऊँचाई गा. ४१७- ४१८	विस्तार	लम्बाई	नींव	ऊँचाई गा. ४१६	चौड़ाई	लम्बाई	नींव
१	सौधमेन्द्र	५०० यो०	५० यो०	१०० यो०	२५ यो०	५२० यो०	५२ यो०	१०४ यो०	२६ यो०
२	ईशानेन्द्र	५०० "	५० "	१०० "	२५ "	५२० "	५२ "	१०४ "	२६ "
३	सानत्कुमारेन्द्र	४५० "	४५ "	९० "	२२ ३/४ "	४७० "	४७ "	९४ "	२३ ३/४ "
४	माहेन्द्र	४५० "	४५ "	९० "	२२ ३/४ "	४७० "	४७ "	९४ "	२३ ३/४ "
५	ब्रह्मेन्द्र	४०० "	४० "	८० "	२० "	४२० "	४२ "	८४ "	२१ "
६	लान्तवेन्द्र	३५० "	३५ "	७० "	१७ ३/४ "	३७० "	३७ "	७४ "	१८ ३/४ "
७	महाशुकेन्द्र	३०० "	३० "	६० "	१५ "	३२० "	३२ "	६४ "	१६ "
८	सहस्रारेन्द्र	२५० "	२५ "	५० "	१२ ३/४ "	२७० "	२७ "	५४ "	१३ ३/४ "
९	आनतादि ४	२०० "	२० "	४० "	१० "	२२० "	२२ "	४४ "	११ १/२ "

णाणाविह - तूरेहि, णाणाविह-महुर-गीय-सद्देहि ।

सलियमय^१- णच्चणेहि, सुर - णयरान् विराजंति ॥४२३॥

अर्थ—देवोंके नगर नाना प्रकारके तूर्यों (वादित्रों), अनेक प्रकारके मधुर गीत-शब्दों और विलासमय नृत्योंसे विराजमान हैं ॥४२३॥

द्वितीयादि वेदियोंका कथन—

आदिम-पायारादो, तेरस - लक्खाणि जोयणे गंतुं^२ ।

चेट्ठेवि विदिय-वेदी, पढमा मिव सव्व - णयरेसुं ॥४२४॥

१३००००० ।

अर्थ—सब नगरोंमें आदिम प्राकार (कोट) से तेरह लाख (१३०००००) योजन जाकर प्रथम (कोट) के सदृश द्वितीय वेदी स्थित है ॥४२४॥

वेदीणं विच्चाले, णिय-णिय-सामी-सरीर-रक्खा य ।

चेट्ठंति सपरिवारा, पासादेसुं विचित्तेसुं ॥४२५॥

विदिय-वेदी गदा ।

अर्थ—वेदियोंके अन्तरालमें अद्भुत प्रासादोंमें सपरिवार अपने-अपने स्वामियोंके शरीर-रक्षक देव रहते हैं ॥४२५॥

द्वितीय वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

तेसट्ठी-लक्खाणि, पण्णास-सहस्स-जोयणाणि तवो ।

गंतूण तदिय - वेदी, पढमा मिव सव्व - णयरेसुं ॥४२६॥

६३५०००० ।

अर्थ—सब नगरोंमें इस (दूसरी वेदी) से आगे तिरेसठ लाख पचास हजार (६३५००००) योजन जाकर प्रथम (कोट) के सदृश तृतीय वेदी है ॥४२६॥

एदाणं विच्चाले, तिप्परिसाणं सुरा विचित्तेसुं ।

चेट्ठंति मंविरेसुं, णिय - णिय - परिवार - संजुत्ता ॥४२७॥

तेदिय-वेदी गदा ।

अर्थ—इन वेदियोंके मध्य स्थित अद्भुत भवनोंमें अपने-अपने परिवारसे संयुक्त तीन परिवारोंके देव रहते हैं ॥४२७॥

तृतीय वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

तन्वेदीयो गच्छिय, चउसट्ठि-सहस्स-ओयणाणि च ।

चेड्ढेदि तुरिस-वेदी, पढमा - मिव सव्व - णयरेसुं ॥४२८॥

६४००० ।

अर्थ—इस वेदीसे चौंसठ हजार (६४०००) योजन आगे जाकर सब नगरोंमें प्रथम वेदीके सदृश चतुर्थ वेदी स्थित है ॥४२८॥

एवाणं विच्चाले, थर-रयणमएसु विव्व - भवणेसुं ।

सामाणिय-णाम सुरा, णिवसंते विविह - परिवारा ॥४२९॥

तुरिस-वेदी गदा ।

अर्थ—इन वेदियोंके मध्यमें स्थित उत्तम रत्नमय दिव्य-भवनोंमें विविध परिवार सहित सामानिक नामक देव निवास करते हैं ॥४२९॥

चतुर्थ वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

चउसीदी - लक्खाणि, संतूणं जोयणाणि तुरिमादो ।

चेड्ढेदि पंच - वेदी, पढमा मिव सव्व - णयरेसुं ॥४३०॥

८४००००० ।

अर्थ—चतुर्थ वेदीसे चौरासी लाख (८४०००००) योजन आगे जाकर सब नगरोंमें प्रथम वेदीके सदृश पंचम वेदी स्थित है ॥४३०॥

एवाणं विच्चाले, णिय-णिय-आरोहका अणीया य ।

अभियोगा किञ्चिसिया, पइण्णया तह सुरा च तेत्तीसा ॥४३१॥

पंचम-वेदी गदा ।

अर्थ—इन वेदियोंके मध्यमें अपने-अपने आरोहक अनीक, अभियोग्य, किञ्चिषिक, प्रकीर्णक तथा आयस्त्रिंश देव निवास करते हैं ॥४३१॥

पंचम वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

उपवन-प्ररूपणा—

तप्परदो गंतूणं, पण्णास - सहस्स - जोयणाणं च ।
होति हु दिव्व-वणाणि, इंद-पुराणं चउ - दिसासुं ॥४३२॥

अर्थ—इसके आगे पचास हजार (५००००) योजन जाकर इन्द्रोंमें लपरींकी चारों दिशाओंमें दिव्य वन हैं ॥४३२॥

पुब्बादिसु ते कमसो, असोय-सत्तच्छदाण वण-संडा ।
चंपय-चूबाण तहा, पउम - इह - सरिस - परिमाणा ॥४३३॥

अर्थ—पूर्वादिक दिशाओंमें वे कमशः अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र वृक्षोंके वन-खण्ड हैं ॥४३३॥

एक्केक्का चेत्त - तरु, तेसु असोयावि-णाम-संजुला ।
णगोह-तरु-सरिच्छा, वर-चामर-छत्त-पहुदि-जुवा ॥४३४॥

अर्थ—उन वनोंमें अशोकादि नामोंसे संयुक्त और उत्तम चमर-छत्रादिसे युक्त न्यग्रोधतरुके सदृश एक-एक चेत्य-वृक्ष है ॥४३४॥

पोक्खरणी-वावीहि, मणिमय-भवणेहि^१ संजुदा विउला ।
सट्ठ-उडु-जोग-पल्लव-कुसुम-फला भांति षण - संडा ॥४३५॥

अर्थ—पुष्करिणी, वापियों एवं मणिमय भवनोंसे संयुक्त तथा सब ऋतुओंके योग्य पत्र, कुसुम एवं फलोंसे परिपूर्ण (वे) विपुल वन-खण्ड शोभायमान हैं ॥४३५॥

लोकपालोंके क्रीड़ा-नगर—

संखेब्ज-जोयणाणि, पुह पुह गंतूण रांदण - वणादो ।
सोहम्मादि - दिगिद्वाराणं कीडण - णयराणि चेदुंसि ॥४३६॥

अर्थ—नन्दन वनसे पृथक्-पृथक् संख्यात योजन जाकर सोधर्मादि इन्द्रोंके लोकपालोंके क्रीड़ा-नगर स्थित हैं ॥४३६॥

बारस-सहस्स-जोयण-दीहत्ता पण-सहस्स-विक्खंभा ।

गत्तेक्कं ते यवत्ता, दार - वेदी - पहुदि - कयसोहा ॥४३७॥

१२००० । ५००० ।

अर्थ—उत्तम वेदी आदिसे शोभायमान उन नगरोंमेंसे प्रत्येक बारह हजार (१२०००) योजन लम्बे और पाँच हजार (५०००) योजन प्रमाण विस्तार सहित है ॥४३७॥

गणिका-महत्तरियोंके नगर—

गणिया-महत्तरीणं, समच्चउरस्सा पुरीओ विदिसासुं ।

एक्कं जोयण - लक्खं, पत्तेक्कं दीह - वास - जुवा ॥४३८॥

१००००० । १००००० ।

अर्थ—विदिशाओंमें गणिका-महत्तरियोंकी समचतुष्कोण नगरियाँ हैं । इनमेंसे प्रत्येक एक-एक लाख (१०००००, १०००००) योजन प्रमाण दीर्घता तथा विस्तारसे युक्त है ॥४३८॥

सब्बेसुं णयरेसुं, पासादा विव्व-विविह-रयणमया ।

णक्कंत विचित्त-थया, णिरुद्धम - सोहा विरायंति ॥४३९॥

अर्थ—सब नगरोंमें नाचती हुई विचित्र ध्वजाओंमें युक्त और अनुपम शोभाके धारक दिव्य विविध रत्नमय प्रासाद विराजमान हैं ॥४३९॥

जोयण-सय-दीहत्ता, ताणं पण्णास-मेत्त-वित्थारा ।

मुह - मंडव - पहुदीहि, विचित्त - रुद्धेहि संजुत्ता ॥४४०॥

अर्थ—ये प्रासाद एक सौ (१००) योजन दीर्घ, पचास (५०) योजन प्रमाण विस्तार सहित और विचित्र-रूप मुख-मण्डप आदिसे संयुक्त हैं ॥४४०॥

सीधमेंद्र आदिके यान-विमानोंका विवरण—

वालुग-पुप्फग-णामा, याण-विमाणाणि सक्क-जुगलम्मि ।

सोमणासं सिरिरुक्खं, सणक्कुमारिद - दुगयम्मि ॥४४१॥

अर्थ—शक्र-युगल (सौधर्म एवं ईशान इन्द्र) के वालुग और पुष्पक नामक यान-विमान तथा सानत्कुमार आदि दो इन्द्रोंके सीमन्त एवं श्रीवृक्ष नामक यान-विमान हैं ॥४४१॥

बम्हिदादि-चउवके, याण - विमाणाणि सब्बदोभदा ।

पीदिक^१- रम्मक - णामा, मनोहरा होंति चत्तारि ॥४४२॥

अर्थ—ब्रह्मेन्द्र आदि चार इन्द्रोंके क्रमशः सर्वतोभद्र, प्रीतिक (प्रीतिकर), रम्यक और मनोहर नामक चार यान-विमान होते हैं ॥४४२॥

प्राणद-पाणद-इंदे, लच्छी-मालिन्ति - णामवो होदि ।

आरण-कप्पिद-दुगे, याण - विमाणं विमल - णामं ॥४४३॥

अर्थ—आनत और प्राणत इन्द्रके लक्ष्मी-मालती नामक यान-विमान तथा आरण कल्पेन्द्र युगलमें विमल नामक यान-विमान होते हैं ॥४४३॥

सोहम्मादि-चउवके, कमसो अवसेस-कप्प^२-जुगलेसुं ।

होंति हु पुब्बुत्ताइं, याण - विमाणाणि पत्तोवकं ॥४४४॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—सौधर्मादि चारमें और शेष कल्प-युगलोंमें क्रमशः प्रत्येकके पूर्वोक्त यान-विमान होते हैं ॥४४४॥

पाठान्तर ।

एकं जोयण - सखं, पत्तोवकं दीह-वास-संजुत्ता ।

याण - विमाणा दुविहा, विक्कियाए सहावेणं ॥४४५॥

अर्थ—इनमेंसे प्रत्येक विमान एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण दीर्घता एवं व्याससे संयुक्त हैं । ये विमान दो प्रकारके हैं, एक विक्रियासे उत्पन्न हुए और दूसरे स्वभावसे ॥४४५॥

ते विक्किया-जादा, याणविमाणा विणासिणो होंति ।

अविणासिणो य रिणच्चं, सहाय - जादा परम-रम्मा ॥४४६॥

अर्थ—विक्रियासे उत्पन्न हुए वे यान-विमान विनश्वर और स्वभावसे उत्पन्न हुए वे परम-रम्य यान-विमान नित्य एवं अविनश्वर होते हैं ॥४४६॥

धूप-धूप-धूप-धूप विविहास-वन्दन-पहुवि-परिपुष्पा ।

धूप - घडोहि जुषा, चामर - घंटादि - कयसोहा ॥४४७॥

वन्दन - माला - रम्मा, मुत्ताहल-हेम-दाम-रमणिज्जा ।

सुंदर - दुवार - सहिदा, वज्ज-कवाडुज्जला विरायंति ॥४४८॥

अर्थ—उपर्युक्त यान-विमान फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित, विविध आसन एवं शय्या आदिसे परिपूर्ण, धूप-घटोंसे युक्त, चामर एवं घण्टादिकसे शोभायमान, वन्दन-मालाओंसे रमणोक, मुक्ताफल एवं सुवर्णकी मालाओंसे मनोहर, सुन्दर द्वारों सहित और वज्रमय कपाटोंसे उज्ज्वल होते हुए सुशोभित होते हैं ॥४४७-४४८॥

सच्छाईं भायणाईं, वत्थाभरणाइ - आइ दुविहाईं ।

होंति हु याण - विमाणे, विक्करियाए सहावेणं ॥४४९॥

अर्थ—यान-विमानमें स्वच्छ भाजन (बर्तन), वस्त्र और आभरणा आदिक (भी) विक्रिया तथा स्वभावसे दो प्रकारके होते हैं ॥४४९॥

विक्करिया जणिदाईं, विणास-रूवाइं होंति सव्वाइं ।

वत्थाभरणादीया, सहाव - जादारिणि णिरुच्चाणि ॥४५०॥

अर्थ—विक्रियासे उत्पन्न सब वस्त्राभरणादिक विनश्वर और स्वभावसे उत्पन्न हुए ये सभी नित्य होते हैं ॥४५०॥

इन्द्रोंके मुकुट-चिह्न—

सोहम्मादिसु अट्टसु, आणव - पहुदीसु चउसु इंदानं ।

सुवर-हरिणी-महिंसा, मच्छा भेकाहि-छगल-धसहा य ॥४५१॥

कम्प-तरु मज्जेसु, चिण्हाणि णव कमेण भणिदाणि ।

एदेहि ते इंवा, लखिज्जंते सुराण मज्झम्मि ॥४५२॥

अर्थ—सौधर्मादिक आठ और आनत आदि चार (८ + १ = ९) कल्पोंमें इन्द्रोंके मुकुटोंमें क्रमशः शूकर, हरिणी, महिष, मत्स्य, भेक, सर्प, छगल, वृषभ और कल्पतरु, ये नौ चिह्न कहे गये हैं । इन चिह्नोंसे देवोंके मध्यमें वे इन्द्र पहिचाने जाते हैं ॥४५१-४५२॥

इंदाणं सिण्हाणि, पत्तेक्कं ताव जा' सहस्सारं ।

आणद-आरण - जुगले, चौदस - ठाण्हेसु वोच्छामि ॥४५३॥

सुवर-हरिणी-महिषा, भच्छो कुम्मो य भेक-हय-हत्थी ।

चंदाहि-गवय-छगला, वसह-कल्पतरु^१ मउड-मउम्हेसुं ॥४५४॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—सहस्रारकल्प पर्यन्त प्रत्येक इन्द्रके तथा आनत और आरणा युगलमें इसप्रकार चौदह स्थानोंके चिह्न कहते हैं । शूकर, हरिणी, महिष, मत्स्य, कूर्म, भेक, अश्व, हाथी, चन्द्र, सर्प, गवय, छगल वृषभ और कल्पतरु ये चौदह चिह्न मुकुटोंके मध्यमें होते हैं ॥४५३-४५४॥

पाठान्तर ।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्र.सं.	इन्द्रोके नाम	यान-विमानोके नाम				इन्द्रोके मृकट-चित्ते			
		मूलसे गा० ४४१-४४३	क्र.सं. १०	पाठान्तर गा० ४४४	क्र.सं. १०	मूलसे गा० ४४१-४४२	क्र.सं. १	पाठान्तरसे	
								इन्द्र-नाम गा० ४४३	चित्ते गा० ४४४
१	सौधर्मेन्द्र	बालुग	१	बालुग	१	शूकर	१	सौधर्मेन्द्र	शूकर
२	ईशानेन्द्र	पुष्पक	२	बालुग	२	हरिणी	२	ईशानेन्द्र	हरिणी
३	सानत्कुमारिन्द्र	सौमनस	३	पुष्पक	३	महिष	३	सानत्कुमार	महिष
४	माहेन्द्र	श्रीवृक्ष	४	पुष्पक	४	मत्स्य	४	माहेन्द्र	मत्स्य
५	ब्रह्मेन्द्र	सर्वतोभद्र	५	सौमनस	५	मेढक	५	ब्रह्मेन्द्र	कुम्भ
६	लान्तवेन्द्र	प्रीतिक	६	श्रीवृक्ष	६	सर्प	६	ब्रह्मोत्तरेन्द्र	मेढक
७	महाशुकेन्द्र	रम्यक	७	सर्वतोभद्र	७	छगल	७	लान्तवेन्द्र	अश्व
८	सहस्रारेन्द्र	भनोहर	८	प्रीतिक	८	बैल	८	कापिलेन्द्र	हाथी
९	भ्रान्तेन्द्र	लक्ष्मीभा०	९	रम्यक	९	कल्पतरु	९	शुकेन्द्र	चन्द्र
१०	प्राणतेन्द्र	लक्ष्मीभा०	१०	भनोहर	१०	"	१	महाशुकेन्द्र	सर्प
११	आरणेन्द्र	विमल	१०	लक्ष्मीभा०	११	"		वातारेन्द्र	गवय
१२	अच्युतेन्द्र	विमल	१०	विमल	१२	"		सहस्रारेन्द्र	छगल
								आनतेन्द्र-प्राणतेन्द्र	वृषभ
								आरणेन्द्र-अच्युतेन्द्र	कल्पतरु

अहमिन्द्रोंकी विशेषता —

इंदाणं परिवारा, पडिद - पट्टदो ण होंति कइया वि ।

अहमिंदाणं सप्पडिवाराहितो अणंत - सोक्खाणं ॥४५५॥

अर्थ—इन्द्रोंके प्रतीन्द्र आदि परिवार होते हैं । किन्तु सपरिवार इन्द्रोंकी अपेक्षा अनन्त सुखसे युक्त अहमिन्द्रोंके परिवार कदापि नहीं होते ॥४५५॥

उपपाद-सभा विविहा, कप्पातीदाण होंति सव्वाणं ।

जिण-भवणा प्रासादा, गाणाविह-दिब्ब-रयणमया ॥४५६॥

अभिसेय-सभा संगीय-पट्टदि-सालाओ चित्त-रुक्खा य ।

देवीओ ण वीसंति, कप्पातीदेसु कइया वि' ॥४५७॥

अर्थ—सब कल्पातीतोंके विविध प्रकारकी उपपाद-सभायें, जिन-भवन, नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे निर्मित प्रासाद, अभिषेक सभा, संगीत आदि शालायें और चैत्यवृक्ष भी होते हैं, परन्तु कल्पातीतोंके देवियाँ कदापि नहीं दीखतीं ॥४५६-४५७॥

गेट्टुच्छेहां दु - सया, पण्णब्भहियं सयं सयं सुद्धं ।

हेट्ठिम-मज्झिम - उपरिम - गेवेज्जेसुं कमा होंति ॥४५८॥

२०० । १५० । १०० ।

अर्थ—अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयकोंमें प्रासादोंकी ऊँचाई क्रमशः दो सौ (२००), एक सौ पचास (१५०) और केवल सौ (१००) योजन है ॥४५८॥

भवणुच्छेह - पमाणं, अणुदिसाणुत्तराभिधानेसु ।

पण्णासा जोयणया, कमसो पणुवीसमेत्ताणि ॥४५९॥

५० । २५ ।

अर्थ—अनुदिश और अनुत्तर नामक विमानोंमें भवनोंकी ऊँचाईका प्रमाण क्रमशः पचास (५०) और पच्चीस योजन है ॥४५९॥

उदयस्स पंचमंसा, वीहत्तां तद्धत्तां च विस्थारो ।

पत्तोक्कं एपादव्वा, कप्पातीदाण भवणेसु ॥४६०॥

एवं इ'व-विभूवि-परुवणा समत्ता ॥७॥

चोद्दस-ठाणेसु तिया, पंचेक्कंक - वकमेण पल्लाणि ।

एक्का कला य आऊ, उक्कस्से पडम - पडलम्मि ॥४८६॥

१५३३३३३३३३३३३३३३३३३३ । ३ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन, पाँच और एक, इतने पत्य तथा एक कला (१५३३३३३३३३३३३३३३३३३३३ पत्य) प्रमाण पञ्च पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८६॥

चोद्दस-ठाणे सुण्णा, छक्केक्कंक - वकमेण पल्लाणि ।

उक्कस्साऊ लोहिब - सेढी - बद्ध - प्पइण्णएसुं पि ॥४८७॥

१६०००००००००००००००००० ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानों पर शून्य, छह और एक, इतने (१६००००००००००००००००००० पत्य) प्रमाण लोहित इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकोंमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८७॥

पण्णारस - ट्ठाणेसुं, छक्कं एक्कं कमेण पल्लाहं ।

दोण्णि कलाओ आऊ, उक्कस्से वज्ज - पडलम्मि ॥४८८॥

१६६६६६६६६६६६६६६६६६६६ । ३ ।

अर्थ—अंक क्रमसे पन्द्रह स्थानोंमें छह और एक, इतने पत्य एवं दो कला (१६६६६६६६६६६६६६६६६६६६६ पत्य) प्रमाण वज्र पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८८॥

चोद्दस-ठाणेसु तिया, सत्तेक्कंक - वकमेण पल्लाणि ।

एक्क - कला उक्कस्सो, णवाधट्टम्मि आउस्सं ॥४८९॥

१७३३३३३३३३३३३३३३३३३३३३ । ३ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन, सात और एक, इतने पत्य एवं एक कला (१७३३३३३३३३३३३३३३३३३३३३ पत्य) प्रमाण नन्दावर्त पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८९॥

चोद्दस - ठाणे सुण्णा, अट्ठेक्कंक - वकमेण पल्लाणि ।

उक्कस्साउ - पमाणं, पडलम्मि प्हंकरे होवि' ॥४९०॥

१८०००००००००००००००००० ।

अर्थ—तीन सागरोपम एवं तीन कला (३३ सा०) प्रमाण वनमाल इन्द्रकमें तथा चार सागरोपम और एक कला (४३ सा०) प्रमाण नाग-पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४९८॥

चत्तारि सिंधु-उवमा, छरुच कला गरुड-नाम-पडलम्मि ।

पंचणव - उवमाणा, चत्तारि कलाओ लंगलए^१ ॥४९९॥

सा ४ । ३ । सा ५ । ३ ।

अर्थ—गरुड नामक पटलमें चार सागरोपम और छह कला (४३ सा०) तथा लाङ्गल पटलमें पाँच सागरोपम एवं चार कला (५३ सा०) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥४९९॥

छट्ठोवहि-उवमाणा, दोणि कला इंदयम्मि बलभद्दे ।

सत्त-सरिरमण-उवमा, माहिंद-दुगस्स चरिम-पडलम्मि ॥५००॥

सा ६ । ३ । सा ७ ।

अर्थ—बलभद्र इन्द्रकमें छह सागरोपम और दो कला (६३ सा०) तथा माहेन्द्र युगलके अन्तिम (धक्र नामक) पटलमें सात (७) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५००॥

सत्तंबुरासि-उवमा, तिणि कलाओ चउक्क-पविहत्ता ।

उक्कस्साउ - पमाणं, पढमं पडलम्मि बम्ह-कप्पस्स ॥५०१॥

सा ७ । ३ ।

अर्थ—ब्रह्म कल्पके प्रथम पटलमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण सात सागरोपम और चार विभक्त तीन कला (७३ सा०) है ॥५०१॥

अट्ठणव-उवमाणा, दु-कला सुरसमिदि-नाम-पडलम्मि ।

णव-रयणायर-उवमा, एक्क - कला बम्ह - पडलम्मि ॥५०२॥

सा ८ । ३ । सा ९ । ३ ।

अर्थ—सुरसमिति नामक पटलमें आठ सागरोपम और दो कला (८३ सा०) तथा ब्रह्म पटलमें नौ सागरोपम और एक कला (९३ सा०) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०२॥

बम्हुत्तराभिधाने, चरिमे पडलम्मि बम्ह - कप्पस्स ।

उक्कस्साउ-पमाणं, वस सरि - रमणाण उवमाणा ॥५०३॥

१० ।

अर्थ—ब्रह्म कल्पके ब्रह्मोत्तर नामक अन्तिम पटलमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण (१०) सागरोपम है ॥५०३॥

बम्हहृदयम्मि^१ पडले, बारस-कल्लोलिणीस-उवमाणं ।
चोदस-णीरहि-उवमा, ^२उक्कस्साऊ हवन्ति संतवए ॥५०४॥

१२ । १४ ।

अर्थ—ब्रह्महृदय पटलमें बारह सागरोपम और लान्तव पटलमें चौदह सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०४॥

महसुक्क-णाम-पडले, सोलस-सरियाहिणाह-उवमाणा ।
अट्टरस = सहस्रारे, तरंगिणीरमण - उवमाणा ॥५०५॥

१६ । १८ ।

अर्थ—महाशुक्र नामक पटलमें सोलह सागरोपम और सहस्रार पटलमें अठारह सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०५॥

आणद-णामे पडले, अट्टारस सलिलरासि-उवमाणा ।
उक्कस्साउ = पमाणं, चत्तारि कलाओ छक्क-हिदा ॥५०६॥

१८ । १ ।

अर्थ—आनत नामक पटलमें अठारह सागरोपम और छहसे भाजित चार कला (१८ १/२ सा०) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०६॥

एक्कोणवीस वारिहि-उवमा दु-कलाओ पाणवे पडले ।
पुप्फगए बीसं चिय, तरंगिणीकंत - उवमाणा ॥५०७॥

सा १९ । क २ । सा २० ।

अर्थ—प्राणत पटलमें उन्नीस सागरोपम और दो कला (१९ १/२ सा०) तथा पुष्पक पटलमें बीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०७॥

वीसंबुरासि-उवमा, चत्तारि कलाओ सादगे पडले ।
इगिवीस जलहि-उवमा, आरण-णामम्मि दोणिण कला ॥५०८॥

सा २० । क ४ । सा २१ । ३ ।

अर्थ—शातक पटलमें बीस सागरोपम और चार कला (२०ई सा०) तथा आरण नामक पटलमें इक्कीस सागरोपम और दो कला (२१ई सा०) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०८॥

अच्युत-णामे पडले, बावीस तरंगिणीरमण-उवमाणा^१ ।

तेवीस सुवंसणए, अमोघ - पडलम्मि चउवीसं ॥५०९॥

२२ । २३ । २४ ।

अर्थ—अच्युत नामक पटलमें बाईस सागरोपम, सुदर्शन पटलमें तेईस सागरोपम और अमोघ पटलमें चौबीस (२४) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०९॥

पणुवीस^२ सुप्पबुद्धे, जसहर-पडलम्मि होंति छव्वीसं ।

सत्तावीस सुभद्दे, सुविसाले अट्ठवीसं च ॥५१०॥

२५ । २६ । २७ । २८ ।

अर्थ—सुप्रबुद्ध पटलमें पन्चीस (२५), यशोधर पटलमें छव्वीस (२६), सुभद्र पटलमें सत्ताईस (२७) और सुविशाल पटलमें अट्ठाईस (२८) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५१०॥

सुमणस-णामे उणत्तीस तीस^३ सोमणस-णाम-पडलम्मि ।

एक्कत्तीसं पीडिकरम्मि बत्तीस आइच्चे ॥५११॥

२९ । ३० । ३१ । ३२ ।

अर्थ—सुमनस नामक पटलमें उन्तीस (२९), सोमनस नामक पटलमें तीस (३०), प्रीतिङ्कर पटलमें इक्कीस (३१) और आदित्य पटलमें बत्तीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥५११॥

सव्वट्ठ-सिद्धि-णामे, तेत्तीसं वाहिणीस - उवमाणा ।

उक्कस्स जहण्णम्मि य, णिदिट्ठं वीयरानेहि ॥५१२॥

३३ ।

अर्थ—वीतराग भगवान्ने सर्वार्थसिद्धि नामक पटलमें उत्कृष्ट एवं जघन्य आयुका प्रमाण तैंतीस (३३) सागरोपम कहा है ॥५१२॥

देवोंकी जघन्य-आयु—

उडु-पहुवि-इंदयाणं, हेट्टिम-उक्कस्स-आउ-परिमाणं ।

एक्क - समएण अहियं, उवरिम - पडले जहण्णाऊ ॥५१३॥

अर्थ—ऋतु आदि इन्द्रकोंमें अधस्तन इन्द्रक सम्बन्धी उत्कृष्ट आयुके प्रमाणमें एक समय मिलाने पर उपरिम पटलमें जघन्य आयुका प्रमाण होता है ॥५१३॥

तेत्तीस उवहि-उवमा, पल्लासंखेज्ज-भाग-परिहीणा ।

सव्वट्टु - सिद्धि - णामे, मण्णंते केइ अवराऊ ॥५१४॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—कोई आचार्य सर्वार्थसिद्धि नामक पटलमें पल्यके असंख्यातवें भागसे रहित तेत्तीस सागरोपम प्रमाण जघन्य आयु मानते हैं ॥५१४॥

पाठान्तर ।

सोहम्म-कप्प-पट्टमिदयम्म पल्लिवोवमं हुवे एक्कं ।

सव्व - णिगिट्टु - सुराणं, जहण्णा-आउस्स परिमाणं ॥५१५॥

प १ ।

अर्थ—सौधर्म कल्पके प्रथम इन्द्रकमें सब निकृष्ट देवोंकी जघन्य आयुका प्रमाण एक पल्योपम है ॥५१५॥

इन्द्रोंके परिवार देवों की आयु—

अड्ढाहज्जं पल्ला, आऊ सोमे जमे य पत्तेक्कं ।

तिण्णि कुबेरे वरुणे, किच्चूणा सव्वक - दिप्पाले ॥५१६॥

३ । ३ । ३ । ३ ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके दिक्पालोंमें सोम और यमकी अढ़ाई (२३) पल्योपम, कुबेरकी तीन (३) पल्योपम और वरुणकी तीन (३) पल्योपमसे किञ्चित् न्यून आयु होती है ॥५१६॥

सव्वकादो सेसेसुं, वक्खिण - इंदेसु लोयपालाणं ।

एक्केक्क-पल्ल-अहिओ, आऊ सोमादियाण पत्तेक्कं ॥५१७॥

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके अतिरिक्त शेष दक्षिण इन्द्रोंके सोमादिक लोकपालोंमेंसे प्रत्येककी आयु एक-एक पल्य अधिक है ॥५१७॥

ईसाणिब - बिगिदे, आऊ सोमे^१ जमे ति - पल्लाई ।

किंचूणाणि कुबेरे, वरुणम्मि य सादिरेगाणि ॥५१८॥

३ । ३ । ३ । ३ ।

अर्थ—ईशान इन्द्रके लोकपालोंमें सोम और यमकी आयु तीन तीन पल्य, कुबेरकी तीन पल्यसे कुछ कम तथा वरुणकी कुछ अधिक तीन पल्य है ॥५१८॥

ईसाणावो सेसय - उत्तर - इंदेसु लोयपालाणं ।

एक्केक्क-पल्ल-अहिओ, आऊ सोमादियाण पत्तेक्कं ॥५१९॥

अर्थ—ईशानेन्द्रके अतिरिक्त शेष उत्तर इन्द्रोंके सोम-आदिक लोकपालोंमें प्रत्येककी आयु एक-एक पल्य अधिक है ॥५१९॥

सठ्ठाण दिगिदाणं, सामाणिय-सुर-वराण पत्तेक्कं ।

णिय-णिय-दिगिदयाणं, आऊ - पमाणाणि आऊणि ॥५२०॥

अर्थ—सब लोकपालोंके सामानिक देवोंमें प्रत्येककी आयु अपने-अपने लोकपालोंकी आयुके प्रमाण होती है ॥५२०॥

पढमे बिदिए जुगले, बम्हाबिसु चउसु आणव-दुगम्मि ।

आरण - जुगले कमसो, सव्विवेसु^२ सरीररक्खाणं ॥५२१॥

पलिदोवमाणि आऊ, अड्ठाइणं हवेदि पढमम्मि ।

एक्केक्क-पल्ल-चड्ढी, पत्तेक्कं उवरि - उवरिम्मि ॥५२२॥

३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३ ।

अर्थ—प्रथम युगल, द्वितीय युगल, ब्रह्मादिक चार युगल, आनत युगल और आरण युगल इनमेंसे प्रथममें शरीर रक्षकोंकी आयु अढ़ाई पल्योपम और ऊपर-ऊपर सब इन्द्रोंके शरीर रक्षकोंकी आयु क्रमशः एक-एक पल्य अधिक है । अर्थात् सौधर्म युगलमें २½ पल्य, सानत्कुमार युगलमें ३½ पल्य, ब्रह्म युगलमें ४½ पल्य, लान्तव युगलमें ५½ पल्य, शुक्र युगलमें ६½ पल्य, शतार युगलमें ७½ पल्य, आनत युगलमें ८½ पल्य और आरण युगलमें ९½ पल्य प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५२१-५२२॥

बाहिर-मज्झमन्तर-परिसाए होंति तिण्णि चत्तारि ।

पंच पलिदोवमणि, उव्वरि एक्केवक-पल्ल-वड्ढीए ॥५२३॥

३, ४, ५ । ४, ५, ६ । ५, ६, ७, ८ । ६, ७, ८ । ७, ८, ९ । ८, ९, १० ।

९, १०, ११ । १०, ११, १२ ।

अर्थ—प्रथम युगलमें बाह्य, मध्यम और अभ्यन्तर पारिषद देवोंकी आयु क्रमशः तीन, चार और पाँच पल्य है । इसके ऊपर एक-एक पल्य अधिक है ॥५२३॥

विशेषार्थ—

क्र०	कल्प-नाम	बाह्य पारि० की आयु	मध्यम पा० की आयु	अभ्य० पा० की आयु	क्र०	कल्प-नाम	बा० पारि० की आयु	मध्यम पा० की आयु	अभ्य० पा० की आयु
१	सौ० युगल	३ पल्य	४ पल्य	५ पल्य	५	महाशुक	७ पल्य	८ पल्य	९ पल्य
२	सा० "	४ "	५ "	६ "	६	सहस्रार	८ "	९ "	१० "
३	ब्रह्म	५ "	६ "	७ "	७	आ० यु०	९ "	१० "	११ "
४	लान्तव	६ "	७ "	८ "	८	आ० "	१० "	११ "	१२ "

पठमम्मि अहिय-पल्लं, आरौहक-वाहणाय तट्ठाणे ।

आऊ हव्वेदि तत्तो, वड्ढी एक्केवक - पल्लस्स ॥५२४॥

१ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ ।^२

अर्थ—उन आठ स्थानोंमेंसे प्रथम स्थानमें आरौहक वाहनोंकी आयु एक पल्यसे अधिक और इसके आगे एक-एक पल्यकी वृद्धि हुई है । अर्थात् आरौहक वाहनोंकी आयु सौ० यु० में १ पल्य, सन० यु० में २ पल्य, ब्र० यु० में ३ पल्य, ला० यु० में ४ पल्य, सु० यु० में ५ पल्य, शतार यु० में ६ पल्य, आनत यु० में ७ पल्य और आरणा यु० में ८ पल्य है ॥५२४॥

१. द. व. ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ ।

२. द. व. ८ । ९ ।

एककेक पल्ल बाहुण - सावोणं ह्येति तेसु ठाणेषु ।

पढमाहु उत्तरवर - वड्ढोए एक - पल्लस्स ॥५२५॥

१ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ ।

अर्थ—उन स्थानोंमेंसे प्रथम स्थानमें बाहुन-स्वामियोंकी आयु एक-एक पल्ल और इससे आगे उत्तरोत्तर एक-एक पल्लकी वृद्धि है । अर्थात् सी० १, सन० २, व्र० ३, ला० ४, शु० ५, श० ६, आ० ७ और आरण यु० में ८ पल्ल की आयु है ॥५२५॥

ताणं पइण्णएसुं, अभियोग - सुरेसु किम्बिसेसुं च ।

आउ - पमाण - गिरुवण - उवएसो संपहि पण्हो ॥५२६॥

अर्थ—उनके प्रकीर्णक, अभियोग्य और किल्बिषदेवोंमें आयु प्रमाणके निरूपणका उपदेश इस समय नष्ट हो गया है ॥५२६॥

जे सोलस कप्पाद्धं, केई इच्छंति ताण उवएसो^१ ।

जुगलं पडि णावब्बं, पुव्वोविद - आउ - परिमाणं ॥५२७॥

अर्थ—जो कोई आचार्य सोलह कल्पोंकी मान्यता रखते हैं उनके उपदेशानुसार पूर्वोक्त आयुका प्रमाण एक-एक युगलके प्रति जानना चाहिए ॥५२७॥

इन्द्र-देवियोंकी आयुका विवेचन—

पलिदोवमाणि पण णव, तेरस सत्तरस तह य चोत्तीसं ।

अट्टत्तालं आऊ, देवीणं वक्खिणिदेसुं ॥५२८॥

५ । ९ । १३ । १७ । ३४ । ४८ ।

अर्थ—दक्षिण इन्द्रोंमें देवियोंकी आयु क्रमशः (सी०) पाँच, (सानत्कुमार) नौ, (ब्रह्म) तेरह, (लान्तव) १७, (आनत) ३४, और (आरण) अड़तालीस पल्ल प्रमाण है ॥५२८॥

सत्तेयारस-तेवीस - ससवीसेवक - ताल पणवण्णा ।

पल्ला कमेण आऊ, देवीणं उत्तरिदेसुं ॥५२९॥

७ । ११ । २३ । २७ । ४१ । ५५ ।

अर्थ—उत्तर इन्द्रोंमें देवियोंकी आयु क्रमशः (ईशान) सात, (माहेन्द्र) ग्यारह, (महाशुक्र) तेवीस, (सहस्रार) सत्ताईस, (प्राणत) इकतालीस और (अच्युत) पचपन पल्ल प्रमाण है ॥५२९॥

जे सोलस कप्पाणि, केई इच्छंति ताण उवएसे ।
 अट्ठसु आउ - पमाणं, देवीणं वविसिणिवेसुं ॥५३०॥
 पलिदोवमाणि पण एव, तेरस सत्तरस एककवीसं च ।
 पणवीसं चउतीसं, अट्ठसाणं कमेणेव ॥५३१॥

५ । ६ । १३ । १७ । २१ । २५ । ३४ । ४८ ।

अर्थ—जो कोई आचार्य सोलह कल्पोंकी मान्यता रखते हैं उनके उपदेशानुसार आठ दक्षिण इन्द्रोंमें देवियोंकी आयुका प्रमाण क्रमशः (सौ०) पाँच, (सा०) नौ, (ब्रह्म) तेरह, (लान्तव) सत्तरह, (शुक्र) इक्कीस, (शतार) पच्चीस, (आनत) चौतीस और (आरण) में अड़तालीस पत्य है ॥ ५३०-५३१ ॥

पल्ला सत्तेवकारस, पण्णरसेक्कोणवीस-तेवीसं ।
 सगधीसमेवकतालं, पणवण्णं उत्तरिद-देवीणं ॥ ५३२ ॥

७ । ११ । १५ । १९ । २३ । २७ । ४१ । ५५ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—उक्त आचार्योंके उपदेशानुसार उत्तर इन्द्रोंकी देवियोंकी आयु क्रमशः सात, ग्यारह, पन्द्रह, उन्नीस, तेईस, सत्ताईस, इकतालीस और पचपन पत्य प्रमाण है ॥ ५३२ ॥

पाठान्तर ।

कप्पं पडि पंचाविसु, पल्ला देवीण वडुवे आऊ ।
 दो-दो-वडु तत्तो, लोयायणिये समुद्धिहं ॥ ५३३ ॥

५ । ७ । ६ । ११ । १३ । १५ । १७ । १९ । २१ । २३ । २५ । २७ । २९ । ३१ । ३३ । ३५ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—देवियोंकी आयु प्रथम कल्पमें पाँच पत्य प्रमाण है । इसके आगे प्रत्येक कल्पमें दो-दो पत्यकी वृद्धि होती गयी है । ऐसा 'लोणाइणी'में कहा है ॥ ५३३ ॥

विशेषार्थ—सौ० कल्पमें ५ पत्य, ई० ७ पत्य, सान० ९, मा० ११, ब्रह्म० १३, अह्योत्तरमें १५, ला० १७, का० १९, शुक्रमें २१, महाशुक्रमें २३, श० २५, सह० २७, आ० २९, प्रा० ३१, आ० ३३ और अच्युतकल्पमें ३५ पत्य आयु है ।

पाठान्तर ।

पलिदोवमाणि पंचय-सत्तारस-पंचवीस-पणतीसं ।

चउसु जुगलेसु आऊ, एादव्वा इंद-वेदीणं ॥५३४॥

आरण-हुग-परियंतं, वडुते पंच पंच-पल्लाइं ।

मूलायाराइरिया^१, एवं णिउणं^२ णिरुव्वेति ॥५३५॥

५ । १७^३ । २५ । ३५ । ४० । ४५ । ५० । ५५ ।

पाठान्तरम्

अर्थ—चार युगलोंमें इन्द्र-देवियोंकी आयु क्रमशः पाँच, सत्तरह, पच्चीस और पैंतीस पल्य प्रमाण जाननी चाहिए । इसके आगे आरण-युगल पर्यन्त पाँच-पाँच पल्यकी वृद्धि होती गयी है, ऐसा मूलाचार (पर्याप्त्यधिकार ८०)में आचार्य स्पष्टतासे निरूपण करते हैं ॥ ५३४-५३५ ॥

पाठान्तर

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

इन्द्रों की देवियों की आयु (पत्नियोंमें)

क्रमांक	कल्प-नाम	१२ कल्पकी मान्यता गा० ५२८-५२९	१६ कल्पकी मान्यता गा० ५३०-५३१- ५३२	लोगादणी की मान्यता गाथा-५३३	मूलाचार की मान्यता गा० ५३४-५३५
१	सौधर्म	५ पत्न्य	५ पत्न्य	५ पत्न्य	५ पत्न्य
२	ईशान	७ "	७ "	७ "	५ "
३	सनत्कुमार	९ "	९ "	९ "	१७ "
४	माहेन्द्र	११ "	११ "	११ "	१७ "
५	ब्रह्म	१३ "	१३ "	१३ "	२५ "
६	ब्रह्मोत्तर	X	१५ "	१५ "	२५ "
७	लान्तव	१७ पत्न्य	१७ "	१७ "	३५ "
८	कापिष्ठ	X	१९ "	१९ "	३५ "
९	शुक्र	X	२१ "	२१ "	४० "
१०	महाशुक्र	२३ "	२३ "	२३ "	४० "
११	शतार	X	२५ "	२५ "	४५ "
१२	सहस्रार	२७ "	२७ "	२७ "	४५ "
१३	खानत	३४ "	३४ "	२९ "	५० "
१४	प्राणत	४१ "	४१ "	३१ "	५० "
१५	आरण	४८ "	४८ "	३३ "	५५ "
१६	अच्युत	५५ "	५५ "	३५ "	५५ "

इन्द्रके परिवार देवोंकी देवियोंकी आयु —

पडिइंवाणं सामानियाण तेत्तीस सुर-वराणं पि ।

देवीण होवि आऊ, सिण्णिव-देवीण आउ-समो ॥५३६॥

अर्थ—प्रतीन्द्र, सामानिक और आयस्त्रिश देवोंकी देवियोंकी आयु अपने-अपने इन्द्रोंकी देवियोंकी आयुके सदृश होती है ॥ ५३६ ॥

सक्क-दिग्गिदे सोमे, जमे च देवीण आउ-परिमाणं ।

अउ-भजिद-पंच-पल्ला, किच्चूण-दिवङ्ग वरुणम्मि ॥५३७॥

३ । ३ ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके दिक्पालोंमें सोम एवं यमकी देवियोंकी आयुका प्रमाण चारसे भाजित पांच (३) पल्य तथा वरुणकी देवियोंकी आयुका प्रमाण कुछ कम डेढ़ (३) पल्य है ॥ ५३७ ॥

पल्लिदोवमं विवङ्गुं, होवि कुबेरम्मि सक्क-दिग्पाले ।

तेत्तियमेवा आऊ, दिग्गिद-सामंत-देवीणां ॥५३८॥

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके कुबेर दिक्पालकी देवियोंकी आयु डेढ़ पल्य तथा लोकपालोंके सामन्तोंकी देवियोंकी आयु भी इतनी ही होती है ॥ ५३८ ॥

पडिइंदत्तिदयस्स य, दिग्गिद-देवीण आउ-परिमाणं ।

एक्केक्क-पल्ल-वड्ढो सेसेसुं वविखाणिवेसुं ॥५३९॥

अर्थ—शेष दक्षिण इन्द्रोंमें प्रतीन्द्र-आदिक तीन और लोकपालोंकी देवियोंकी आयुका प्रमाण एक-एक पल्य अधिक है ॥ ५३९ ॥

ईसाण-दिग्गिदाणं, जम - सोम-धणेस-देवीसु ।

पुह - पुह दिवङ्ग-पल्लं, आऊ वरुणस्स अदिरित्तं ॥५४०॥

३ । ३ । ३ । ३ ।

अर्थ—ईशान इन्द्रके लोकपालों में यम, सोम और कुबेरकी देवियोंकी आयु पृथक्-पृथक् डेढ़-डेढ़ पल्य तथा वरुणकी देवियोंकी आयु इससे अधिक है । अर्थात् यमकी देवियोंकी १३ पल्य, सोमकी देवियोंकी १३ पल्य, कुबेरकी देवियों की १३ पल्य और वरुणकी देवियोंकी आयु कुछ अधिक १३ पल्य है ॥

एदेसु दिग्गिदेसुं, आऊ सामंत - अमर - देवीणं ।

णिय-णिय-दिग्गिद-देवी-आऊ-प्रमाणस्स सारिच्छं ॥५४१॥

अर्थ—इन दिक्पालोंमें सामन्तदेवीकी देवियोंकी आयु अपने-अपने दिक्पालोंकी देवियोंकी आयु-प्रमाणके सदृश है ॥ ५४१ ॥

पडिइंदत्तिवयस्स य, दिग्गिद-देवीण आऊ-परिमाणे ।

एक्केवक - पल्ल - बड्डी, सेसेसुं 'उत्तरिदेसुं' ॥५४२॥

अर्थ—शेष उत्तर इन्द्रोंमें प्रतीन्द्रादिक तीन और लोकपाल इनकी देवियोंकी आयुका प्रमाण एक-एक पल्ल अधिक है ॥ ५४२ ॥

तनुरक्खण सुराणं, ति-प्परिस-प्पहुवि-आण देवीणं ।

आऊ-प्रमाण-णिरुवण-उवएसो संपहि पणट्ठो ॥५४३॥

अर्थ—तनुरक्षक देव और तीनों पारिषद आदि देवीकी देवियोंकी आयु प्रमाणके निरूपणका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ॥ ५४३ ॥

बद्धाउं पडि भणिदं, उक्कस्सं मज्झिमं जहण्णाणि ।

घादाउवमासेज्जं, अण्ण - सरुवं परुवेमो ॥५४४॥

अर्थ—यह उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य आयुका प्रमाण बद्धायुष्कके प्रति कहा गया है । घातायुष्कका आश्रय करके अन्य स्वरूप कहते हैं ॥ ५४४ ॥

प्रथम युगलके पटलोंमें आयुका प्रमाण—

एत्थ उडुप्पि पढम-पत्थले जहण्णमाऊ दिवड्ढ-पल्लिवोवमं उक्कस्समद्ध-सागरो-
वमं^१ ।

अर्थ—यहाँ ऋतु नामक प्रथम पटलमें जघन्य आयु डेढ़ पल्लोपम और उत्कृष्ट आयु अर्ध-सागरोपम है ॥

एत्तो तीसमिवयाणं बड्ढी-उड्ढी उच्चवे । तत्थ अद्ध-सागरोवमं मुहं होवि ।
सूमो अड्ढाड्ढज-सागरोवमाणि । भूमोवो मुहमवणिय^२ उच्छेहेण भागे हिवे तत्थ एक्क^३-
सागरोवमस्स-पण्णारस-भागोवरिम^४-बड्ढी होदि । ५४५ ।

१. द. व. क. ज. ठ. उत्तरदिग्गिदेसुं । २. द. व. सागरोवमं । ३. द. व. मुहववणिय । ४. द. व. क. ज. ठ. बद्ध । ५. व. सागरोवमट्ठि ।

अर्थ—अब यहाँ तीस इन्द्रकोंमें स्थित देवोंकी आयुमें वृद्धिहानिका (चय) कहते हैं—

यहाँ अर्घ (३) सागरोपम मुख और अढ़ाई (२½) सागरोपम (ऋतु पटल की जघन्य और उत्कृष्टायु) भूमि है । भूमिमेंसे मुखका प्रमाण घटाकर शेषमें उत्सेध (एक कम गच्छ) का भाग देने पर एक सागरोपमका पन्द्रहवाँ भाग (१/१६ सागर) उपरिम वृद्धिका प्रमाण आता है ।

विशेषार्थ—प्रथम युगल में समस्त पटल (गच्छ) ३१ हैं और उपर्युक्त जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुका प्रमाण वातायुष्ककी अपेक्षा है, अतः यहाँ वृद्धि-हानि का प्रमाण—

१/१६ सागर = (३ सा०—३ सा०) ÷ (३१—१) है ।

एवमिच्छिद्य-पत्थड'-संखाए गुणिय मुहे पविस्सत्ते विमलादीण तीसण्हं पत्थ-
साणमाउ-आणि होदि । तेसिमेसा संदिट्ठी—

३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० ।
३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० । ३० ।
। ३० । ३० । ३० । ३० । सा ३ ।

अर्थ—इसे (१/१६ सा० को एक कम) इच्छित पटलको संख्यासे गुणा कर मुखमें मिला देनेपर विमलादिक तीस पटलोंमें आयुका प्रमाण इसप्रकार निकलता है—

विमल ३/३ सा० = [१/१६ सा० × (२—१)] + ३ सागर

चन्द्र ३/६ सा० = [१/१६ सा० × (३—१)] + ३ सागर

वल्गु ३/१ सा० = [१/१६ सा० × (४—१)] + ३ सा० इसीप्रकार वीर पटलमें ३/३ सा०, अरुण ३/६, नन्दन ३/६, नलिन ३/६, कंचन ३/६, रुधिर ३/६, चन्द्र ३/६, मरुत् ३/६, ऋद्धोष ३/६, वैश्वर्य ३/६, रुचक ३/६, रुचिर ३/६, अंक ३/६, स्फटिक ३/६, तपतीय ३/६, मेघ ३/६, अन्न ३/६, हारिद्र ३/६, पद्ममाल ३/६, लोहित ३/६, वज्र ३/६, नन्दावर्त ३/६, प्रभञ्जर ३/६, पिष्टक ३/६, गज ३/६, मित्र ३/६ और प्रभ ३/६ या ३ सागरोपम ।

सणक्कुमार - माहिंसे सत्त पत्थडा । एदेसिमाउ - पमाण - माणिज्जमाणे मुह-
मड्ढाइज्ज-सागरोवमाणि, भूमी १साद्ध-सत्त-सागरोवमाणि सत्त उत्सेहो होदि । तेसि
संदिट्ठी—

३ । १/४ । ३ । १/४ । ४ । १/४ । ५ । १/४ । ६ । १/४ । ६ । १/४ । ७ । १/४ सा ।

अर्थ—सतत्कुमार-माहेन्द्र युगलमें सात पटल हैं । इनमें आयु-प्रमाणको प्राप्त करनेके लिए मुख अढ़ाई सागरोपम, भूमि साढ़े सात सागरोपम और उत्सेध सात है ।

(भूमि $\frac{३३}{४}$ — $\frac{३}{४}$ मुख) $\div ७$

वृद्धि-हानिका प्रमाण $\frac{३३}{४}$ सा० = (भूमि $\frac{३३}{४}$ — $\frac{३}{४}$ मुख) $\div ७$ उत्सेध ।

उनकी संदृष्टि इसप्रकार है—

अञ्जन $\frac{३३}{४}$ सागर = $\frac{३}{४}$ सा० + $\frac{३३}{४}$ सा० इसीप्रकार वनमाल $\frac{३३}{४}$ सागर, नाग $\frac{४३}{४}$ सा०, गरुड़ $\frac{५३}{४}$ सा०, लांगल $\frac{६३}{४}$ सा० बलभद्र $\frac{६३}{४}$ और चक्र पटलमें $\frac{७३}{४}$ सागर है ।

बम्ह-बम्हुत्तर-कप्पे चत्तारि पत्थला । एवेसिमाउ-पमाणिज्जमाणे^१ मुहं अद्ध-सागरोवमाहिय-सस-सागरोवमाणि, भूमी अद्ध-सागरोवमाहिय-दस-सागरोवमाणि । एवे-सिमाउआण संविट्ठी ।

८ । $\frac{३}{४}$ । ९ । ९ । $\frac{३}{४}$ । १० । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पमें चार पटल हैं । इनका आयु प्रमाण प्राप्त करने हेतु मुख साढ़ेसात ($\frac{७३}{४}$) सागरोपम, भूमि साढ़ेदस ($\frac{१०३}{४}$) सागरोपम (और उत्सेध चार) है । [इनमें वृद्धि-हानिका प्रमाण $\frac{३}{४}$ सा० = ($\frac{१०३}{४}$ — $\frac{७३}{४}$) $\div ४$ उत्सेध] इनमें आयु प्रमाणकी संदृष्टि इसप्रकार है—

अरिष्ट = $\frac{३}{४}$ सा० = $\frac{७३}{४}$ + $\frac{३}{४}$ सागर । इसीप्रकार सुरसमिति ६ सा०, ब्रह्म $\frac{९३}{४}$ सा० और ब्रह्मोत्तर की $\frac{१०३}{४}$ सागर है ॥

लान्तव-कापिट्ठे दोण्णि पत्थला । तेसिमाउआण संविट्ठी एसा ।

१२ । $\frac{३}{४}$ । १४ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—लान्तव-कापिट्ठमें दो पटल हैं । उनमें आयु प्रमाणकी संदृष्टि—ब्रह्महृदयमें १२ $\frac{३}{४}$ सा० और लान्तवमें १४ $\frac{३}{४}$ सा० है ॥

महसुक्को^२ सि एक्को चेव पत्थलो सुक्क-महसुक्क-कप्पेसु । तम्मि आउरस अ संविट्ठी एसा । १६ । $\frac{३}{४}$ ।

अर्थ—शुक्र-महाशुक्र कल्पमें महाशुक्र नामक एक ही पटल है । उस महाशुक्रमें आयुका प्रमाण १६ $\frac{३}{४}$ सागर है ॥

सहस्रारओ त्ति एक्को पत्थलो सवर-सहस्रार-कप्पेसु । तत्थ आउयस्स संदिट्ठी^१

—१८ । ३ ।

अर्थ—शतार-सहस्रार कल्पमें सहस्रार नामक एक ही पटल है । उसमें आयुका प्रमाण १८३ सा० है ॥

आणव-पाणव-कप्पेसु तिण्णि पत्थला । तेसुमाउस्स पुवुत्त-कमेण आणव-संदिट्ठी
१९ । १९ । ३ । २० ।

अर्थ—आनत-प्राणत कल्पमें तीन पटल हैं । उनमें पूर्वोक्त विधिसे निकाला हुआ आयुका प्रमाण इसप्रकार है—आनतमें १९ सा०, प्राणतमें १९३ सा० और पुष्पकमें २० सा० ।

आरण-अच्युव-कप्पे तिण्णि पत्थला । एवेसुमाउआणं एस संदिट्ठी । २० । ३ ।
२१ । ३ । २२ ।

अर्थ—आरण-अच्युत कल्पमें तीन पटल हैं । इनमें आयु प्रमाणको संदृष्टि यह है—
शातकमें २०३ सा०, आरणमें २१३ सा० और अच्युतमें २२ सागर ॥

एत्तो उवरि सुदंसणो अमोघो सुप्पबुद्धो जसोहरो सुभदो सुविसालो सुमणसो
सोमणसो पीडिकरो त्ति एदे णव पत्थला गेवेज्जेसु । एवेसुमाउआणं वड्ढि-हाणी णत्थि ।
पावेवकमेवक-पत्थलस्स पाहणियादो । तेसिमाउ^२-संदिट्ठी एसा—२३ । २४ । २५ ।
२६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।

अर्थ—उससे ऊपर सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सोमनस
और प्रीतिङ्कर इसप्रकार ये नौ पटल गेवेयकोमें हैं । इनमें आयुकी वृद्धि-हानि नहीं है, क्योंकि
प्रत्येकमें एक-एक पटलकी प्रधानता है । उनमें आयुकी संदृष्टि यह है—

सुदर्शन २३ सा०, अ० २४ सा०, सु० २५ सा०, यशो० २६ सा०, सुभद्र २७ सा०, सुवि०
२८ सा०, सुमनस २९ सा०, सो० ३० सा० और प्रीतिङ्कर में ३१ सागर हैं ।

णवाणुद्दिसेसु आइच्चो णाम एक्को चेव पत्थलो । तम्मिह आउयं एत्तियं
होदि ३२ ।

अर्थ—ती अनुदिशोंमें आदित्य नामक एक ही पटल है । इसमें आयु इतनी अर्थात् ३२ सागर प्रमाण होती है ।

पंचाणुत्तरेसु सव्वत्थ-सिद्धि-सण्णदो एक्को चेव पत्थलो । तत्थ विजय^१-वड-जयंत-जयंत-अपराजिदारां जहण्णाउवस्स समयाधिय-वत्तीस-सागरोवमुक्कस्सं तेत्तीस-सागरोवमाणि । सव्वत्थ-सिद्धि-विमाणम्मि जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीस-सागरोवमाणि ॥३३॥

एत्तिओ विसेसो सेसं पुब्बं व वत्तव्वं ।

एवमाउर्गं समसं ॥ ८ ॥

अर्थ—पाँच अनुत्तरोमें सर्वार्थसिद्धि नामक एक पटल है । उसमें विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानोंमें जघन्य आयु एक समय अधिक बत्तीस (३२) सागरोपम और उत्कृष्ट आयु तैंतीस (३३) सागरोपम प्रमाण है । सर्वार्थसिद्धि विमानमें जघन्य एवं उत्कृष्ट आयु तैंतीस (३३) सागरोपम प्रमाण है ।

इतनी विशेषता है, शेष पूर्ववत् कहना चाहिए ।

इसप्रकार आयुका कथन समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

इन्द्रों एवं उनके परिवार देव-देवियों के

विरह (जन्म-मरणके अन्तर) कालका कथन—

सव्वेसिं इंद्वाणं, ताण^२ - महादेवि - लोयपालाणं ।

पडिइंद्वाणं विरहो, उक्कस्सं होदि छम्मासं ॥५४५॥

अर्थ—सब इन्द्रों, उनकी महादेवियों, लोकपालों और प्रतीन्द्रोंका उत्कृष्ट विरह-काल छह मास है ॥ ५४५ ॥

तेत्तीसामर-सामाणियाण तणुरक्ख-परिस-तिदयारां ।

चउ-मासं वर-विरहो, ओच्छं^३ आणीय-पहुवीणं ॥५४६॥

सोहम्मे छ-मुहुत्ता, ईसाणे चउ-मुहुत्त वर-विरहं ।

णव-दिवसं दु-ति-भागो, सणक्कुमारम्मि कप्पम्मि ॥५४७॥

बारस-दिणं ति-भागा, माहिदे पंच-ताल बम्हम्मि ।

सोदि-दिणं महसुक्के, सद-दिवसं तह सहस्सारे ॥५४८॥

संखेज्ज-सवं वरिसा, वर-विरहं आणदादिय-चउक्के ।

भणिदं कप्प-गदाणं, एक्कारस-भेद-देवाणं ॥५४९॥

अर्थ—त्रायस्त्रिंश देवों, सामानिकों, तनुरक्षकों और तीनों पारिषदों का उत्कृष्ट विरह काल चार मास है । अतीत आदि देवों का उत्कृष्ट विरहकाल कहते हैं—

वह उत्कृष्ट विरह (काल) सौधर्म में छह मुहूर्त, ईशान में चार मुहूर्त, सत्कुमार में तीन भागों में से दो भाग सहित नौ (९३) दिन, माहेन्द्रकल्प में त्रिभाग सहित बारह (१२३) दिन, ब्रह्म-कल्प में पैंतालीस (४५) दिन, महाशुक में अस्सी (८०) दिन, सहस्रार में सौ दिन और आनतादिक चार कल्पों में संख्यात सौ वर्ष प्रमाण है । यह उत्कृष्ट विरह काल इन्द्र आदि रूप ग्यारह भेदों से युक्त कल्पवासी देवों का कहा गया है ॥५४९-५४९॥

नोट—लान्तव कल्प के विरह काल को दर्शाने वाली गाथा नहीं है ।

कल्पातीव-सुराणं, उक्कस्सं अंतराणि पत्तेवकं ।

संखेज्ज-सहस्साणि, वासा गेवेज्जगे णवण्णं ॥५५०॥

अर्थ—नौ प्रवेयकों में से प्रत्येक में कल्पातीत देवों का उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है ॥ ५५० ॥

पल्लासंखेज्जं सो,^१ अणुद्दिसानुत्तरेसु उक्कस्सं ।

सव्वे अबरं समयं, जम्मण^२-मरणाण अंतरयं ॥५५१॥

अर्थ—वह उत्कृष्ट अन्तर अनुदिश और अनुत्तरो में पल्लके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । जन्म-मरण का जघन्य अन्तर सब जगह एक समय मात्र है ॥५५१॥

मतान्तरसे विरहकाल—

वुसु वुसु ति-चउक्केसु य, सेसे जणणंतराणि^३ चवणम्मि ।

सत्त-दिण-पक्ख-मासा, वु-चउ-छम्मासया कमसो ॥५५२॥

दि ७ । १५ । मा १ । २ । ४ । ६ ।

अर्थ—(सौधर्मादि) दो, दो, तीन चतुष्कों (चार, चार, चार कल्पों) में तथा शेष प्रवेयकों आदि में जन्म एवं मरण का अन्तर क्रमशः सात दिन, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास और छह मास प्रमाण है ॥५५२॥

१. द. ब. क. ज. ठ. सर । २. व. ब. क. ज. ठ. जहण्ण ।

३. द. ब. क. ज. ठ. जणंतराणि भवणाणि ।

इय जन्मण-मरणानं, उक्कस्से होदि अंतर-पसाणं ।

सव्वेसुं कप्पेसुं, जहणए एक्क-समओ य ॥५५३॥

पाठान्तरम् ।

जन्मण-मरणानंतर-कालो समत्तो ॥६॥

अर्थ—इस प्रकार सब कल्पों में जन्म-मरण का यह अन्तर प्रमाण उत्कृष्ट है । जघन्य अन्तर सब कल्पों में एक समय ही है ॥५५३॥

पाठान्तर ।

जन्म-मरणके अन्तरकाल का कथन समाप्त हुआ ।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

देव-देविघोके जन्म-मरणका अन्तर (विरह) काल

नाम	उत्कृष्ट अन्तर	मतान्तर से उत्कृष्ट अन्तर		जघन्य अन्तर
		नाम	अन्तर	
सब इन्द्र महा देवियाँ लोकपाल प्रसीन्द्र	६ मास	×	×	— को
त्रायस्त्रिंश सामानिक तनुरक्षक तीनों पारिवद	४ मास	×	×	
सौधर्म कल्प	६ मुहूर्त	सौधर्म	सात दिन	
ईशान कल्प	४ मुहूर्त	ईशान	सात दिन	अन्तर
सनत्कुमार कल्प	९३ "	सानत्कुमार	एक पक्ष	
माहेन्द्र कल्प	१२३ "	माहेन्द्र	एक पक्ष	
ब्रह्म कल्प	४५ दिन	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	एक मास	समय
लान्तव कल्प	गाथा नहीं है ।	लान्तव-कापिष्ट	एक मास	
महाशुक्र कल्प	६० दिन	शुक्र-महाशुक्र	दो मास	
सहस्रार कल्प	१०० दिन	शतार-सहस्रार	दो मास	एक सर्वत्र
आनत प्राणत आरण अच्युत नव ग्रैवेयक	संख्यात सौ वर्ष	आनत प्राणत आरण अच्युत	चार मास	
अनुदिश	संख्यात हजार वर्ष	नव ग्रैवेयक	छह मास	अनुत्तर
अनुत्तर	पल्य के असंख्यातवें- भाग प्रमाण	नव अनुदिश अनुत्तर	छह मास	

सपरिवार इन्द्रों के आहार का काल—

उवहि-उवमाण-जीवी, वरिस-सहस्सेण दिठ्व-अमयमयं ।

भुंजदि मणसाहारं, णिरुवमयं तुट्ठि-पुट्ठि-करं ॥५५४॥

अर्थ—एक सागरोपम काल पर्यन्त जीवित रहने वाला देव एक हजार वर्ष में दिव्य, अमृतमय, अनुपम और तुष्टि एवं पुष्टि कारक मानसिक आहार करता है ॥५५४॥

जेत्तिय-जलणहि-उयमा, जो जीवदि तस्स तेसिएहि च ।

वरिस-सहस्सेहि हवे, आहारो पणु-दिणाणि पत्तमिदे ॥५५५॥

अर्थ—जो देव जितने सागरोपम काल पर्यन्त जीवित रहता है, उसके उतने ही हजार वर्षों में आहार होता है । पत्य प्रमाण काल पर्यन्त जीवित रहने वाले देवों के पाँच दिन में आहार होता है ॥५५५॥

पण्डिवाणं सामाणियाणं^१ तेत्तीस-सुर-वराणं च ।

भोयण-काल-पमाणं, णिय-णिय-इंदाण-सारिच्छं^२ ॥५५६॥

अर्थ—प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवों के आहारकाल का प्रमाण अपने-अपने इन्द्रों के सदृश है ॥५५६॥

इंद-प्पट्ठुदि-चउण्हं, देवीणं भोयणम्मि जो ससओ ।

तस्स पमाण-परुवण-उवएसो संपहि पणट्ठो ॥५५७॥

अर्थ—इन्द्र आदि चार (इन्द्र, प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश इन) की देवियों के भोजन का जो काल है उसके प्रमाण के निरूपण का उपदेश इस समय नष्ट हो गया है ॥५५७॥

सोहम्मिद-दिग्गिदे, सोमम्मि जमम्मि भोयणावसरो ।

सामाणियाण ताणं, पत्तेवकं पंचवीस-वल-दिवसा ॥५५८॥

३९ ।

अर्थ—सोमर्म इन्द्र के दिक्पालों में से सोम एवं यम के तथा उनके सामानिकों में से प्रत्येक के भोजन का काल साढ़े बारह (१२½) दिन है ॥५५८॥

तद्देवीणं तेरस-वल-दिवसा होदि भोयणावसरो ।

वरुणस्स कुबेरस्स य, तस्सामंतारा ऊणपण-पक्खे ॥५५९॥

॥ १५ ॥

अर्थ—उन (सोम एवं यम लोकपाल और इनके सामानिक देवों) की देवियों के आहार का काल साढ़े छह (६½) दिन है और वरुण एवं कुबेर लोकपाल तथा इनके सामानिक देवों के आहार का काल कुछ कम एक पक्ष (१५ दिन) है ॥५५९॥

पण्णरस-वल-दिणारिण, ताणं देवीण होदि तवकालो ।

ईसारिणद-दिगिंदे, सोमम्मि जमम्मि सक्क-वरुण समो ॥५६०॥

अर्थ—उन (सीधर्मेन्द्र के वरुण एवं कुबेर लोकपाल और उनके सामानिक देवों) की देवियों का आहार काल साढ़े सात (७½) दिन है । ईशानेन्द्र के सोम एवं यम लोकपालों का आहार काल सीधर्मेन्द्र के वरुण लोकपाल सदृश (कुछ कम १५ दिन) है ॥५६०॥

किंचूणमेवक-पक्खं, भोयण-कालो कुबेर-णामस्स ।

तद्देवीणं होदि हु, सामण्णं सोम-देवीणं ॥५६१॥

। १५ । १५ ।

अर्थ—(ईशानेन्द्र के) कुबेर नामक लोकपाल और उनकी देवियों का तथा सामानिक देवों की देवियों तथा (यमव) सोम की देवियों का आहार काल कुछ कम १५ दिन है ॥५६१॥

वरुणस्स असण-कालो, होदि कुबेरादु किंचि-अदिरित्तो ।

सेसाहार - पमाणं, उवएसो संपहि पक्कहो ॥५६२॥

१५ ।

उवमाहार-काल-समत्तो ॥१०॥

अर्थ—वरुण लोकपालका आहार काल कुबेरके आहार-कालसे कुछ अधिक अर्थात् पन्द्रह (१५) दिन है । शेष (सानत्कुमार आदि इन्द्र उनके परिवारके 'देव-देवियों') के आहार कालके प्रमाणका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ॥५६२॥

आहार-काल समाप्त हुआ ॥१०॥

देवोंके श्वासोच्छ्वासका कथन—

पढमे बिदए जुगले, बम्हाविसु चउसु आणव-चउवके ।

हेट्टिम - मज्झिम, उवरिम, गेवेज्जेसुं च सेसेसुं ॥५६३॥

णिय भिय भोयण-काले, जं परिमाणं सुराण पणत्ता ।

तम्मेत्त मुहुत्तारिण, आणापाणाण - संचारो ॥५६४॥

उत्सासो समत्तो ॥११॥

अर्थ—पहले दूसरे युगल, ब्रह्मादि चार और आनतादि चार, इन बारह कल्पोंमें, अधस्तन, मध्यम, उपरिम ग्रैवेयकों में तथा शेष (अनुदिश और अनुत्तर) विमानों में देवों के अपने-अपने भोजन के काल का जो प्रमाण कहा गया है उसमें उतने प्रमाण मुहूर्त में स्वासोच्छ्वास का संचार होता है ॥५६३-५६४॥

देवोंके शरीरका उत्सेध—

देवाणं उच्छेहो, हत्था - सप्त - छ - पञ्च - चत्तारि ।

कमसो ह्येदि ततो, पसेवकं हत्थ - दल - हीणा ॥५६५॥

७ । ६ । ५ । ४ । ३ । ३ । २ । ३ । १ ।

अर्थ—देवोंके शरीरका उत्सेध क्रमशः सात, छह, पाँच और चार हाथ प्रमाण है, इसके आगे प्रत्येक स्थान पर अर्ध-अर्ध हाथ होन होता गया है ॥५६५॥

विशेषार्थ—देवों के शरीर की ऊँचाई सौधर्म कल्प में ७ हाथ, ईशान कल्पमें ६ हाथ, सनत्कुमार में ५ हाथ, माहेन्द्रकल्पमें ४ हाथ, ब्रह्मा कल्प से सहस्रार कल्प पर्यन्त ३½ हाथ, आनतादि चार कल्पोंमें ३ हाथ, अधोग्रैवेयकमें २½ हाथ, मध्यम में २ हाथ, उपरिममें १½ हाथ और अनुदिश एवं अनुत्तर विमानों के देवों के शरीर की ऊँचाई एक हाथ प्रमाण है ॥

बुसु बुसु चउसु बुसु सेसे सत्तच्छ - पञ्च - चत्तारि ।

ततो हत्थ - दलेणं, हीणा सेसेसु पुज्वं व ॥५६६॥

७ । ६ । ५ । ४ । ३ । ३ । २ । ३ । १ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—देवोंके शरीरकी ऊँचाई दो अर्थात् सौधर्मेशानमें ७ हाथ, दो (सानत्कुमार-माहेन्द्र) में ६ हाथ, चार (ब्रह्मादि चार) में ५ हाथ और दो (शुक्र-महाशुक्र) में ४ हाथ है । शेष कल्पोंमें अर्ध-अर्ध हस्त प्रमाण होन होता गया है । अर्थात् शतार-सहस्रारमें ३½ हाथ और आनतादि चारम ३ हाथ प्रमाण है । शेष (कल्पातीत विमानों) में पूर्वके सदृश अर्थात् अधोग्रैवेयकमें २½ हाथ, मध्यम में २ हाथ और उपरिम में १½ है । शेष विमानोंमें पूर्ववत् अर्थात् अनुदिश और अनुत्तर विमानोंमें शरीरका उत्सेध एक हाथ प्रमाण है ॥५६६॥

पाठान्तर ।

एदे सहाव - जादा, देहुच्छेहो हुबन्ति देवाणं ।

विक्किरियाहि ताणं, विचिस - मेवा विराजन्ति ॥५६७॥

उच्छेहो गदो ॥१२॥

अर्थ—इसप्रकार देवोंके शरीरका यह उत्सेध स्वभावसे उत्पन्न होता है । उनका विक्रियासे उत्पन्न शरीरका उत्सेध नाना प्रकारसे मोक्षायमान होता है ॥५६७॥

इसप्रकार उत्सेधका कथन समाप्त हुआ ॥१२॥

देवायु-बन्धक-परिणाम—

आउव - बंधण - काले, जलराई तह य..... ।

सरिसा - हलिदराए, कोपह - प्पहुवीण उदयम्मि ॥५६८॥

नोट—ताडपन्न खण्डित होने से गाथा का अभिप्राय बोध-गम्य नहीं है ।

एवं विह-परिणामा, मणुवा-तिरिया य तेसु कप्पेसु ।

णिय णिय जोगत्थाणे, ताहे बंधंति देवाऊ ॥५६९॥

अर्थ—इसप्रकारके परिणामवाले मनुष्य और तिर्यच उन-उन कल्पोंकी देवायु बांधते हैं ॥५६९॥

सम-दम-जम-णियम-जुवा, णिदंडा णिम्ममा णिरारंभा ।

ते बंधंते आऊ, इंदादि - महद्धियादि - पंचाणं ॥५७०॥

अर्थ—जो शम (कषायों का शमन), दम (इन्द्रियों का दमन), यम (जीवन पर्यन्त का त्याग) और नियम आदि से युक्त, णिदण्ड अर्थात् मन, वचन और काय को बल में रखने वाले, निर्ममत्व परिणाम वाले तथा आरम्भ आदि से रहित होते हैं वे साधु इन्द्र आदि की आयु अथवा पाँच अनुत्तरो में ले जाने वाली महर्द्धिक देवों की आयु बांधते हैं ॥५७०॥

सण्णाण-तवेहि-जुदा, मद्दव-विणयादि संजुदा केई ।

गारव-ति-सल्ल-रहिदा, बंधंति महद्धिग-सुराउं ॥५७१॥

अर्थ—सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् तप से युक्त, मादं व और विनय आदि गुणों से सम्पन्न, तीन (ऋद्धि-गारव, रस-गारव और सात) गारव तथा तीन (मिथ्या, माया और निदान) शक्तियों से रहित कोई-कोई (साधु) महा-ऋद्धिधारक देवों की आयु बांधते हैं ॥५७१॥

ईसो मच्छर-भावं, भय-लोभ-वसं च जे ण वचंति ।

विविह-गुणा वर-सीला, बंधंति महद्धिग-सुराणं ॥५७२॥

अर्थ—जो ईर्ष्या, मात्सर्यभाव, भय और लोभ के वशीभूत होकर वर्तन नहीं करते हैं तथा विविध गुण और श्रेष्ठ शील से संयुक्त होते हैं, वे (श्रमण) महा-ऋद्धि धारक देवों की आयु बांधते हैं ॥५७२॥

कंचण-पासाणेसुं, सुह-दुक्खेसुं पि मित्त-अहिदेसुं ।

समणा समाण-भावा, बंधंति महद्धिग-सुराडं ॥५७३॥

अर्थ—स्वर्ण-पाषाण, सुख-दुःख और मित्र शत्रु में समता भाव रखने वाले श्रमण महा-
ऋद्धिधारक देवों की आयु बांधते हैं ॥५७३॥

देहेसुं गिरिवेवळा, णिडभर-वेरग-भाव संजुत्ता ।

रागादि-दोस-रहिवा, बंधंति महद्धिग-सुराडं ॥५७४॥

अर्थ—शरीर से निरपेक्ष, अत्यन्त बेराग्य भावों से युक्त और रागादि दोषों से रहित
(श्रमण) महा-ऋद्धिधारक देवों की आयु बांधते हैं ॥५७४॥

उत्तर-मूल-गुणेसुं, समिंवि-सुबवे सज्झाण-जांगेसुं ।

णिच्चं प्रमाद-रहिवा, बंधंति महद्धिग-सुराडं ॥५७५॥

अर्थ—जो श्रमण मूल और उत्तर गुणों में, (पाँच) समितियों में, महाव्रतों में धर्म एवं
शुक्लध्यान में तथा योग आदि की साधना में सदैव प्रमाद रहित वर्तन करते हैं वे महा-ऋद्धिधारक
देवों की आयु बांधते हैं ॥५७५॥

वर-मज्झ-अवर-पत्ते, ओसह-आहारमभय-विण्णाणं ।

वाणाणुं बंधंति देवाजं ॥५७६॥

अर्थ—जो उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रों को ओषधि, आहार, अभय और ज्ञान दान
[देते हैं वे मध्यम ऋद्धिधारक] देवों की आयु बांधते हैं ॥५७६॥

सज्जा मज्जावाहि, मज्झिम - भावेहि - संजुवा केई ।

उपसम-पहुवि-समग्गा, बन्धंते मज्झिम-मद्विक-सुराडं ॥५७७॥

अर्थ—सज्जा और मर्यादा रूप मध्यम भावों से युक्त तथा उपशम प्रभृति भावों से संयुक्त
कई मध्यम ऋद्धि-धारक देवों की आयु बांधते हैं ॥५७७॥

पचलिद-सण्णाराणाणे, चारित्ते बहु-किलिह

सबल-चरित्ता कूरा, उम्मगत्था-णिदाण-कद-भावा ।

मंद - कसायाणुरदा, बंधते^१ अप्पइड्ढि - असुराउं ॥५७६॥

अर्थ—दूषित चारित्रवाले, क्रूर, उन्मागमें स्थित, निदान भाव सहित और मन्द कषायोंमें अनुरक्त जीव अप्सिद्धि देवोंकी आयु बांधते हैं ॥५७६॥

देवोंमें उत्पद्यमान जीवोंका स्वरूप—

वसपुब्ब-धरा सोहम्म-पहुवि सव्वड्ढिसिद्धि - परियंतं ।

चोदसपुब्ब - धरा तह, लंतव - कप्पावि वच्चंतं ॥५८०॥

अर्थ—वसपूर्व धारी जीव सौधर्मकल्पसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त तथा चोदह पूर्वधारी लान्तव कल्पसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जाते हैं ॥५८०॥

सोहम्मादी - अच्चुद - परियंतं जंति देसवद-जुत्ता ।

चउ-विह-वाण-पयट्ठा, अकसाया पंचगुरु - भत्ता ॥५८१॥

अर्थ—चार प्रकारके दानमें प्रवृत्त, कषायोंसे रहित एवं पंच परमेष्ठियोंकी भक्तिसे युक्त, ऐसे देवाव्रत संयुक्त जीव सौधर्म स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग पर्यन्त जाते हैं ॥५८१॥

सम्मत्त-णाण-अज्जव^३-लज्जा-सीलादिएहि परिपुण्णा ।

जायंते इत्थीओ, जा अच्चुद - कप्प - परियंतं ॥५८२॥

अर्थ—सम्यक्त्व, ज्ञान, आर्जव, लज्जा एवं शीलादिसे परिपूर्ण स्त्रियाँ अच्युत कल्प पर्यन्त जाती हैं ॥५८२॥

जिण-लिग-धारिणो जे, उक्किट्ट-^४तवस्समेण संपुण्णा ।

ते जायंति अभव्वा, उवरिम - गेवेज्ज - परियंतं ॥५८३॥

अर्थ—जो अभव्य जीव जिन-लिङ्गको धारण करते हैं और उत्कृष्ट तपके श्रमसे परिपूर्ण हैं वे उपरिम-ग्रेवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ॥५८३॥

परदो अफचण^५-वद-तव-दंसण-णाण-चरण-संपण्णा ।

णिग्गंथा जायंते, भव्वा सव्वड्ढिसिद्धि - परियंतं ॥५८४॥

१ द. ब. बद्धते । २. द. क. ज. ठ. अप्पडि अ ।

३. द. क. ठ. अज्जसीला, न. अ. अज्जावसीला ।

४. द. न. क. ज. तवासयेण । ५. द. ब. ज. ठ. अंचतपद ।

अर्थ—पूजा, व्रत, तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्र्यसे सम्पन्न निर्ग्रन्थ भव्य जीव इससे (उपरिम श्रेष्ठेयक से) आगे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ॥५८४॥

चरका परिघञ्ज-धरा, मंद - कसाया पियंवदा केई ।

कमसो भावण - पहुदो, जम्मते बम्ह - कप्पंतं ॥५८५॥

अर्थ—मन्द-कषायो एवं प्रिय बोलने वाले कितने ही चरक (चार्वाक) (साधु विशेष) और परिव्राजक क्रमशः भवनवासियोंको आदि लेकर ब्रह्मकल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ॥५८५॥

जे पंचेदिय-तिरिया, सण्णी हू अकाम-णिज्जरेण जुदा ।

मंद - कसाया केई, अंति' सहस्सार - परिघंतं ॥५८६॥

अर्थ—जो कोई पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यञ्च अकाम-निर्जरासे युक्त और मन्द कषायी है, वे सहस्सार कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ॥५८६॥

तणुदण्णावि-सहियाजीवा जे अमंद-कोह-जुदा ।

कमसो भावण-पहुदो, केई जम्मंसि अचुदं जाव ॥५८७॥

अर्थ—जो तनुदण्डन अर्थात् कायक्लेश आदि सहित और तीव्र क्रोध से युक्त हैं ऐसे कितने ही आजीवक-साधु क्रमशः भवनवासियों से लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त जन्म लेते हैं ॥५८७॥

आ ईसाणं कप्पं, उप्पत्तो होवि देव-देवीणं ।

तप्परबो उब्भूदो, देवाणं केवलाणं पि ॥५८८॥

अर्थ—ईशान कल्प पर्यन्त देवों और देवियों (दोनों) की उत्पत्ति होती है । इससे आगे केवल-देवों की ही उत्पत्ति है ॥५८८॥

ईसाण - संतवच्चुद - कप्पंतं जाव होंति कंदप्पा ।

किन्निवसिया अभियोगा, णिय-कप्प-जहण्ण-ठिदि-सहिया ॥५८९॥

एवमायुग-बंधं^१ समत्तं ॥

अर्थ—कन्दर्प, किन्निविक और आभियोग्य देव अपने-अपने कल्पकी जघन्य स्थिति सहित क्रमशः ईशान, लान्तव और अच्युत कल्प पर्यन्त होते हैं ॥५८९॥

इसप्रकार आयु-बन्ध का कथन समाप्त हुआ ॥

उत्पत्ति समय में देवों की विशेषता—

जायंते सुरलोए, उववाडपुरे महारिहे मयणे ।

जादा^१ य मुहुत्तेणं, छप्पज्जत्तीओ पावन्ति ॥५९०॥

अर्थ—ये देव सुरलोक के भीतर उपपादपुर में महार्थ शय्या पर उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होने के पश्चात् एक मुहूर्त में ही छह पर्याप्तियाँ भी प्राप्त कर लेते हैं ॥५९०॥

णत्थि णह-केस-लोमा, ण चम्म-मंसा ण लोहिद-वसाओ ।

णट्ठो ण मुत्त-पुरीसं, ण सिराओ देव-संघडणे ॥५९१॥

अर्थ—देवों के शरीर में न नख, केश और रोम होते हैं; न चमड़ा और मांस होता है; न रुधिर और चर्बी होती है; न हड्डियाँ होती हैं; न मल-मूत्र होता है और न नसें ही होती हैं ॥५९१॥

वण्ण-रस-गंध-फासं, अइसय-वेगुव्व-विट्ठ-बन्धादो ।

गेण्हदि^२ देवो बोहिं, ? उवचिद-कम्माणु-भावेणं ॥५९२॥

अर्थ—संचित (पुण्य) कर्म के प्रभाव से और अतिशय वैक्रियिक रूप दिव्य बन्ध होने के कारण देव उत्तम—वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श ग्रहण करते हैं ॥५९२॥

उप्पण्ण-सुर-विमाणे, पुव्वमणुग्घाडिदं कवाड-जुमं ।

उग्घडदि तम्मि काले, पसरदि आणंद-भेरि-रथं ॥५९३॥

एवमुप्पत्ती गवा ॥

अर्थ—देव विमान में उत्पन्न होने पर पूर्व में अनुद्घाटित (बिना खोले) कपाट-युगल खुलते हैं और फिर उसी समय आनन्द भेरी का शब्द फलता है ॥५९३॥

इसप्रकार उत्पत्ति का कथन समाप्त हुआ ॥

भेरी के शब्द श्रवण के बाद होने वाले विविध क्रिया—कलाप

सोदूण भेरि-सहं, जय जय णंद त्ति विविह-घोसेणं ।

एत्ति परिवार-देवा, देवीओ रत्त-हिदयाओ ॥५९४॥

अर्थ—भेरी का शब्द सुनकर अनुराग युक्त हृदय वाल परिवारों के देव और देवियाँ 'जय जय, नन्द' इसप्रकार के विविध शब्दोच्चार के साथ आते हैं ॥५९४॥

वायंति किच्चिस-सुरा, जयघंटा पटह-मदल-प्पहुवि ।

संगीय - णच्चस्साइं, पप्पव - देवा पकुब्धंति ॥५९५॥

अर्थ—किल्बिष देव जयघण्टा, पटह एवं मर्दल आदि बजाते हैं और पप्पव (?) देव संगीत एवं नृत्य करते हैं ॥५९५॥

देवी - देव - समाजं, बट्ठूणं तस्स कोदुगं होवि ।

तावे कस्स विभंगं, कस्स वि ओही फुरवि णारं ॥५९६॥

अर्थ—देवों और देवियों के समूह देखकर उस देव को कोतुक होता है । उस समय किसी (देव) को विभङ्ग और किसी को अवधिज्ञान प्रगट होता है ॥५९६॥

णादूण देवलोयं, अप्प-फलं जावमेवमिदि केई ।

मिच्छाइद्वी देवा, गेण्हंति विमुद्ध-सम्मत्तं ॥५९७॥

अर्थ—अपने (पूर्व पुण्यके) फल से यह देवलोक प्राप्त हुआ है, इस प्रकार जानकर कोई मिथ्यादृष्टि देव विमुद्ध सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं ॥५९७॥

तादे देवी-णिवहो, आणं देणं महाविभूदीए ।

एवाणं देवाणं भरणं^१ सेसं पहिद्व-मणे ॥५९८॥

अर्थ—फिर देवी-समूह आनन्द पूर्वक हर्षित मन होकर महाविभूति के साथ इन देवों का भरण-पोषण करते हैं ॥५९८॥

जिन-पूजा का प्रक्रम—

जिण-पूजा-उज्जोगं, कुणंति^२ केई महाविभूदीए ।

केई पुठिवल्लारं, देवारं ओहण - वसेणं ॥५९९॥

अर्थ—कोई देव महाविभूति के साथ स्वयं ही जिनपूजा का उद्योग करते हैं और कितने ही देव पूर्वोक्त देवों के उपदेश वश जिन-पूजा करते हैं ॥५९९॥

कादूण दहे ण्हाणं, पविसिय अभिसेय-मंडवं दिव्वं ।

सिहासणाभिरुद्धं, देवा कुब्धंति अभिसेयं ॥६००॥

अर्थ—द्रह में स्नान करके दिव्य अभिषेक-मण्डप में प्रविष्ट हो सिंहासन पर आरूढ़ हुए उस नवजात देवका अन्य (पुराने) देव अभिषेक करते हैं ॥६००॥

भूषणसालं पविसिय, वर-रयण-विभूषणाणि दिव्वाणि ।

गहिबूण परम-हरिसं, भरिदा कुब्धन्ति णेपत्थं ॥६०१॥

अर्थ—भूषणशाला में प्रवेश कर श्रीर दिव्य उत्तम रत्न-भूषणों को लेकर (वे) उत्कृष्ट हर्ष से परिपूर्ण हो (उसकी) वेषभूषा करते हैं ॥६०१॥

तत्तो ववसायपुरं, पविसिय अभिसेय-दिव्व-पूजाणं ।

जोगाईं वव्वाइं, गेण्हिय परिवार-संजुत्ता ॥६०२॥

णच्चंत-विचिंत-धया, वर-चाभर-चाव-छत्त-सांहिल्ला ।

णिळभर-भत्ति-पयट्ठा, वच्चन्ति जिणिव-भवणाणि ॥६०३॥

अर्थ—तत्पश्चात् वे (नवजात) देव व्यवसायपुर में प्रवेशकर अभिषेक और पूजा के योग्य दिव्य द्रव्यों को ग्रहणकर परिवार से संयुक्त होकर अतिशय भक्ति में प्रवृत्ति कर नाचती हुई विचित्र ध्वजाओं सहित, उत्तम चँवर एवं सुन्दर छत्र से शोभायमान जिनेन्द्र-भवन में जाते हैं ॥६०२-६०३॥

वट्ठूण जिणिवपुरं, वर-मंगल-तूर-सद्द-हलबोलं ।

देवा देवी-सहिदा, कुब्धन्ति पवाहिणं पणदा ॥६०४॥

अर्थ—देवियों सहित वे देव उत्तम मंगल-वादित्रों के शब्द से मुखरित जिनेन्द्रपुर को देखकर नम्र हो प्रदक्षिणा करते हैं ॥६०४॥

छत्तत्तय - सिहासण - भामण्डल-चामरादि-चारुणं ।

जिणपडिमाणं पुरवो, जय-जय-सद्दं पकुब्धन्ति ॥६०५॥

अर्थ—पुनः वे देव तीन छत्र, सिंहासन, भामण्डल और चामरादि से (संयुक्त) सुन्दर जिन-प्रतिमाओं के आगे जय-जय शब्द उच्चरित करत हैं ॥६०५॥

थोदूण थुवि-सएहि, जिणिव-पडिमाओ भत्ति-भरिद-मणा ।

एवाणं अभिसेए, तत्तो कुब्धन्ति पारंभं ॥६०६॥

अर्थ—वे देव भक्ति-युक्त मन से संकड़ों स्तुतियों द्वारा जिनेन्द्र-प्रतिमाओं की स्तुति करने के पश्चात् उनका अभिषेक प्रारम्भ करते हैं ॥६०६॥

खीरद्धि-सलिल-पूरिव-कंचण-कलसेहि अड सहस्सेहि ।

देवा जिणाभिसेयं महाविभूषोए कुब्धन्ति ॥६०७॥

अर्थ—वे देव क्षीर समुद्र के जल से पूर्ण एक हजार आठ सुवर्ण-कलशों के द्वारा महा-विभूति के साथ जिनाभिषेक करते हैं ॥६०७॥

वज्जन्तेसु^१ महल-जयघण्टा-पडह-काहलादीसु^१ ।
दिब्बेसु^१ तूरेसु^१, ते जिण-पूजं पकुब्धन्ति ॥६०८॥

अर्थ—मर्दल, जयघण्टा, पटह और काहल आदिक दिव्य वाद्यों के बजते रहते वे देव जिन-पूजा करते हैं ॥६०८॥

भिगार-कलस-दप्पण-छत्तत्तय-चमर-पहुवि-दब्बेहि ।
पूजं कादूण तवो, जल-गंधादीहि अच्चन्ति ॥६०९॥

अर्थ—वे देव भृङ्गार, कलश, दर्पण, तीन छत्र और चामरादि द्रव्यों से पूजा कर लेने के पश्चात् जल-गन्धादिक से अर्चन करते हैं ॥६०९॥

तत्तो हरिसेण सुरा, णाणाविह-णाडयाइं दिब्बाइं ।
बहु-रस-भाव-जुवाइं, णच्चन्ति विचित्त-भंगीहि ॥६१०॥

अर्थ—तत्पश्चात् वे देव हर्षपूर्वक विचित्र शैलियों से नाना रसों एवं भावों से युक्त नाना प्रकार के दिव्य नाटक करते हैं ॥६१०॥

सम्माइट्ठी देवा, पूजा कुब्धन्ति जिणवराण सया ।
कम्मवखवण-णिमिसं, णिबभर-भत्तोए भरिब-मणा ॥६११॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टिदेव कर्म-क्षयके निमित्त सदा मनमें प्रतिशय भक्ति पूर्वक जिनेन्द्रों की पूजा करते हैं ॥६११॥

मिच्छाइट्ठी देवा, णिच्चं अच्चन्ति जिणवर-प्पडिमा ।
कुल-देवदाओ इअ किर, मण्णंता अण्ण-वोहण-वसेणं ॥६१२॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों के सम्बोधन से 'ये कुल देवता हैं' ऐसा मानकर निश्चय जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं ॥६१२॥

देवों का सुखोपभोग—

इय पूजं कादूणं, पासादेसु^१ णिएसु गंतूणं ।
सिहासणाहिरुढा, सेविज्जन्ते सुरेहि देविवा ॥६१३॥

अर्थ—इसप्रकार पूजा करके और अपने प्रासादोंमें जाकर वे देवेन्द्र सिंहासन पर आरूढ़ होकर देवों द्वारा सेवे जाते हैं ॥६१३॥

बहुविह-विगुब्बणाहिं, लावण्य-विलास-सोहमाणाहिं ।

रवि^१-करण - कोविदाहिं, वरच्छराहिं^२ रमंति समं ॥६१४॥

अर्थ—वे इन्द्र बहुत प्रकारकी विक्रिया सहित, लावण्य-विलाससे शोभायमान और रति करनेमें चतुर ऐसी उत्तम अप्सराओंके साथ रमण करते हैं ॥६१४॥

वीणा - वेणु - ^३भुणीओ, सत्तरसेहिं विभूसिवं गोवं ।

ललियाइं णच्चणाइं, सुणंति पेच्छंति सयत्त - सुरा ॥६१५॥

अर्थ—समस्त देव वीणा एवं बांसुरीकी ध्वनि तथा सात स्वरोसे विभूषित गीत सुनते हैं और विलासपूर्ण नृत्य देखते हैं ॥६१५॥

चामीयर-रयणमए, सुगंध-धूवादि-वासिदे विमले ।

देवा देवीहिं समं, रमंति विठवम्मि पासादे ॥६१६॥

अर्थ—उक्त देव सुवर्ण एवं रत्नोंसे निमित्त और सुगन्धित धूपादिसे सुवासित विमल दिव्य प्रासादमें देवियोंके साथ रमण करते हैं ॥६१६॥

संते ओहोणाणे, अण्णोण्णुप्पण्ण-पेम-मूढ-^४-मणा ।

कामंधा गइ - कालं, देवा देवीओ ण विदंति ॥६१७॥

अर्थ—अवधिज्ञान होनेपर परस्पर उत्पन्न हुए प्रेममें मूढ़-मन होनेसे वे देव और देवियाँ कामान्ध होकर बीतते हुए कालको नहीं जानते हैं ॥६१७॥

गढभावधार^५-पहुविसु, उत्तर - देहा सुराण गच्छंति ।

जम्मण - ठाणेसु सुहं, मूल - सरीराणि चेद्वंति ॥६१८॥

अर्थ—गर्भ और जन्मादि कल्याणकोंमें देवोंके उत्तर शरीर जाते हैं । उनके मूल शरीर सुख-पूर्वक जन्म स्थानोंमें स्थित रहते हैं ॥६१८॥

णवरि विसेसो एसो, सोहम्मीसाण - जाद - देवीणं ।

वच्चंति मूल-देहा, णिय-णिय-कप्पामराण पासम्मि ॥६१९॥

१. द. व. रदा । २. द. व. वरछणाहि ।

३. द. व. भणीओ । ४. द. व. क. ज. ठ. मूल । ५. द. व. रंभाधवार ।

सुह-परुषणां समत्ता ॥

अर्थ—विशेष यह है कि सौधर्म और ईशान कल्पमें उत्पन्न हुई देवियोंके मूल शरीर अपने-अपने कल्पके देवोंके पास जाते हैं ॥६१९॥

सुखं परुषणां समाप्तं हुई ।

तमस्कायका निरूपण—

अरुणवर-दीप-बाहिर-जगतीदी जिणवरुत्त-संखाणि ।

गंतूण जोयणाणि, अरुण - समुदस्स पणिधीए ॥६२०॥

एक-दुग-सत्त-एक्के, अंक-कमे जोयणाणि उवरि णहं ।

गंतूणां वलएणं, खेद्धेदि तमो तमस्काओ ॥६२१॥

१७२१ ।

अर्थ—(नन्दीश्वर समुद्रके आगे ९ वें) अरुणवरद्वीपकी बाह्य जगतीसे जिनेन्द्रोक्त संख्या प्रमाण योजन जाकर अरुण समुद्रके प्रणधि भागमें अंक-क्रमसे एक, दो, सात और एक अर्थात् एक हजार सात सौ इक्कीस (१७२१) योजन प्रमाण ऊपर आकाशमें जाकर बलयरूपसे तमस्काय (अन्धकार) स्थित है ॥६२०-६२१॥

आदिम-खड-कप्पेसु^१, देस- वियप्पाणि तेसु कावूणं ।

उवरि-गद-बम्ह-कप्प^२-पट्ठमिदय-पणिधि-तल पत्तो ॥६२२॥

अर्थ—(यह तमस्काय) आदिके चार कल्पोंमें देश-विकल्पोंको अर्थात् कहीं-कहीं अन्धकार उत्पन्न करके उपरिगत ब्रह्म-कल्प सम्बन्धी प्रथम इन्द्रकके प्रणधितल भागको प्राप्त हुआ है ॥६२२॥

विशेषार्थ—नन्दीश्वर समुद्रको बेष्टित कर नौवां अरुणवर द्वीप है और अरुणवर द्वीपको बेष्टितकर नौवां अरुणवर समुद्र है । मण्डलाकार स्थित इस समुद्रका व्यास १३१०७२०००००० योजन प्रमाण है ।

अरुणवर द्वीपकी बाह्य जगती अर्थात् अरुणवर समुद्रकी अभ्यन्तर जगती से १७२१ योजन प्रमाण दूर जाकर आकाशमें अरिष्ट नामक अन्धकार बलयरूपसे स्थित है और प्रथम चार कल्पोंको (एकदेश) आच्छादित करता हुआ पाँचवें ब्रह्म कल्पमें स्थित अरिष्ट नामक इन्द्रकके तल भागमें एकत्रित होता है । उस जगह इसका आकार मुर्गेकी कुटी (कुडला) के सदृश होता है । अथवा जैसे

१. द. ब. क. ज. ठ. तमस्कादि ।

२. द. ब. क. ज. ठ. कप्पं पट्ठमिदं य पणधितल पंधे ।

भूसा भरनेकी बुरजी नीचे गोल होकर क्रमशः ऊपरको फैलकर बढ़ती हुई पुनः शिखाऊरूप ऊपर जाकर घट जाती है, उसीप्रकार इस अन्धकार स्कन्धकी रचना है। इस अरिष्ट विमानके तल भागसे अक्ष-पाटकके आकार वाली अथवा यमका वेदिका सदृश होता हुआ यह तम आठ श्रेणियोंमें विभक्त हो जाता है। मृदंग सदृश आकारवाली ये तम पंक्तियाँ चारों दिशाओंमें दो-दो होकर विभक्त एवं तिरछी होती हुई लोक-पर्यन्त चली गई हैं। उन अन्धकार पंक्तियोंके अन्तरालमें ईशानादि विदिशाओं और दिशाओंमें सारस्वत आदिक लोकान्तिक देवगण अवस्थित रहते हैं।

नोट—यह विशेषार्थ लोक विभाग और तत्त्वार्थ इलोकवार्तिकालंकार पंचम खण्डके आधार पर लिखा है।

मूलम्भि रुंद-परिही, हवेवि संखेज्ज-जोयणा तस्स ।

मडभम्मि असंखेज्जा, उवारि तत्तो असंखेज्जो ॥६२३॥

अर्थ—उस (तम) की विस्तार परिधि मूलमें संख्यात योजन, मध्यमें असंख्यात योजन और इससे ऊपर असंख्यात योजन है ॥६२३॥

संखेज्ज - जोयणाणि, तमकायाबो दिसाए पुब्बाए ।

गच्छिय 'संडस-मुखायार-धरो दक्खिणुत्तरायामो ॥६२४॥

णामेण किण्हुराई, पच्छिमभागे वि तारिसो^१ य तमो ।

दक्खिण-उत्तर-भागे, तम्मेत्तं गंधुव बीह-चउरस्सा ॥६२५॥

एक्केक्क - किण्हुराई, हवेवि पुब्बावरट्ठिदायामा ।

एवाओ राजीओ, शियमा ण छिवंति अण्णोण्णं ॥६२६॥

अर्थ—तमस्कायसे पूर्व दिशामें संख्यात योजन आकर षट्कोण आकारको धारण करने वाला और दक्षिण-उत्तर लम्बा कृष्णराजी नामक तम है। पश्चिम भागमें भी वैसा ही अंधकार है। दक्षिण एवं उत्तर भागमें उतनी प्रमाण आयत, चतुष्कोण और पूर्व-पश्चिम आयामवाली एक-एक कृष्ण-राजी स्थित है। ये राजियाँ नियमसे परस्पर एक दूसरेको स्पर्श नहीं करती हैं ॥

संखेज्ज-जोयणाणि, राजीहितो दिसाए^२ पुब्बाए ।

गंतूणभंतरए, राजी किण्हा य बीह-चउरस्सा ॥६२७॥

उत्तर-दक्खिण-बीहा, दक्खिण-राजि^३ ठिवा य छिविदूणं ।

पच्छिम-दिसाए उत्तर-राजि छिविदूण होदि अण्ण-तमो ॥६२८॥

१. द. व. क. ज. ठ. सर्वस । २. द. व. क. ज. ठ. तारिसा ।

३. द. व. मिब्बाए ।

४. द. व. क. ज. ठ. राजी रिदो गविसिदूण ।

अर्थ—राजियों से संख्यात योजन पूर्व दिशा में अभ्यन्तर भाग में जाकर आयत-चतुरस्र और उत्तर-दक्षिण दीर्घ कृष्ण-राजी है जो दक्षिण राजी को छूती है । पश्चिम दिशा में उत्तर राजी को छूकर धन्यतम है ॥६२७-६२८॥

संखेज्ज-जोयराणि राजीये पश्चिमाद्भासाहं ।
मत्तुण्णभन्तरए, एक्कं चिय किण्ह^१ - राजियं होई ॥६२९॥

अर्थ—राजी से दक्षिण दिशा में आभ्यन्तर भाग में संख्यात योजन जाकर एक ही कृष्ण राजी है ॥६२९॥

दीहेण छिविदस्स य, जव-खेत्तस्सेवक-भाग-सारिच्छा ।
पच्छिम-बाहिर-राजि, छिविदूणं सा ठिवा^२ णियमा ॥६३०॥

अर्थ—दीर्घता की ओर से छेदे हुए यवक्षेत्र के एक भागके सदृश वह राजी नियम से पश्चिम बाह्य राजी को छूकर स्थित है ॥६३०॥

पुब्बावर-आयामो, तम-काय विसाए होवि तप्पट्ठी ।
उत्तर-भागम्मि तमो, एक्को छिविदूण पुब्ब-बाहि-राजी ॥६३१॥

अर्थ—(दक्षिण) दिशा में पूर्वापर आयत तमस्काय है । उत्तर भाग में पूर्व बाह्य राजी को छूकर एक तम है ॥६३१॥

कृष्ण-राजियों का अल्पबहुत्व—

अरणवर-दीव-बाहिर-जगवीए तह यह तम-सरीरस्स ।
विच्छाल णह्यलावो, अकभन्तर-राजि-तिमिर-कायाणं ॥६३२॥
विच्चाल^३ आयासे, तह संखेज्जगुणं हवेवि णियमेणं ।
सं माणावो रोयं, अकभन्तर-राजि-संख-गुण-जुत्ता ॥६३३॥
अकभन्तर-राजीवो, अहिरेग-जुवो हवेवि तमकाओ ।
अकभन्तर - राजीवो, बाहिर - राजी व किचूणा ॥६३४॥
बाहिर-राजीहितो, बोण्णं राजीण जो वु विच्छालो ।
अदिरित्तो इय अप्पाबहुवं होवि वु चव-विसासुं पि ॥६३५॥

१. व. व. क. ज. ठ. रिण । २. व. व. क. ज. ठ. रिषा ।

३. व. व. क. ज. ठ. विच्छेलायासं ।

अर्थ—अरुणवर द्वीप की बाह्य जगती तथा तमस्काय के अन्तराल से अभ्यन्तर राजी के तमस्कायों का अन्तराल-प्रमाण नियम से संख्यात-गुणा है । इस प्रमाण से अभ्यन्तर राजी संख्यात-गुणी है । अभ्यन्तर राजी से अधिक तमस्काय है । अभ्यन्तर राजी से बाह्य राजी कुछ कम है । बाह्य-राजियों से दोनों राजियों का जो अन्तराल है वह अधिक है । इस प्रकार चारों दिशाओं में भी अल्पबहुत्व है ॥६३२-६३५॥

एवमि तमिस्सेदे, विहरंते अप्प-रिद्धिया वेवा ।

विम्मूढा वच्चंते, माहप्पेण^१ महद्धिय - सुराणं ॥६३६॥

अर्थ—इस अन्धकार में विहार करते हुए जो अल्पार्द्धिक देव दिग्भ्रान्त हो जाते हैं वे महर्द्धिक देवों के माहात्म्य से निकल पाते हैं ॥६३६॥

विशेषार्थ—काजल सदृश यह अन्धकार पुद्गल की कृष्ण वर्ण की पर्याय है । जैसे सुमेरु, कुलाचल एवं सूर्य-चन्द्र के बिम्ब आदि पुद्गल की पर्याय अनादि निधन हैं, उसी प्रकार यह अन्धकार का पिण्ड भी अनादि निधन है ।

जैसे उष्णता शीत-स्पर्शकी नाशक है परन्तु शीत पदार्थ भी उष्णता को समूल नष्ट कर सकता है । वैसे ही कतिपय अन्धकार तो प्रकाशक पदार्थ से नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुछ अन्धकार ऐसे हैं जिन्हें प्रकाशक पदार्थ ठीक उसी रंग रूप में प्रकाशित तो कर देते हैं किन्तु नष्ट नहीं कर पाते । जैसे मशाल के ऊपर निकल रहे काले धुएँ को मशाल की ज्योति नष्ट नहीं कर पाती अपितु उसे दिखाती ही है । उसी प्रकार अरुणसमुद्र स्थित सूर्य-चन्द्र काली स्याही को धूल सदृश फेंक रहे इस गाढ़ अन्धकार का बालाग्र भी खण्डित नहीं कर सकते अपितु काले रंग की दीवाल या काले वस्त्र सदृश मात्र उसे दिखा रहे हैं ॥ (तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकालंकार पंचम खण्ड से) ।

इस घोर अन्धकार में विहार करते हुए अल्पार्द्धिक देव जब दिग्भ्रान्त हो जाते हैं तब वे महर्द्धिक देवों की सहायता से ही निकल पाते हैं ।

लोकान्तिक देवोंका निरूपण—

राजीणं विच्चाले, संखेज्जा होंति बहुविह-विमाणा ।

एदेसु सुरा जावा, ^२खावा लोयंतिया एणम ॥६३७॥

अर्थ—राजियोंके अन्तरालमें संख्यात बहुत प्रकारके विमान हैं । इनमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे लोकान्तिक नामसे विख्यात हैं ॥६३७॥

संसार-वारिरासी, 'ओ लोओ तस्स होति अंतम्मि ।
जम्हा तम्हा एवे, देवा लोयंतिय सि गुणणामा ॥६३८॥

अर्थ—संसार समुद्ररूपी जो लोक है क्योंकि वे उसके अन्त में हैं इसलिए ये देव 'लोकान्तिक' इस सार्थक नामसे युक्त हैं ॥६३८॥

ते लोयंतिय - देवा, अट्टसु राजीसु होति^१ विचचाले ।
सारस्सव-पट्टदि तहा, ^२ईसाणादिअ-विसासु चउवीसं ॥६३९॥

२४ ।

अर्थ—वे सारस्वत आदि लोकान्तिक देव आठ राजियोंके अन्तरालमें हैं । ईशान आदिक दिशाओंमें चौबीस देव हैं ॥६३९॥

पुव्वुत्तर-विब्भाए, घसंति सारस्सदा^३ सुरा णिच्चं ।
आइच्चा पुब्बाए, अणल - विसाए वि वण्हि - सुरा ॥६४०॥
वक्खिण-विसाए अरुणा, णडरिदि-भागम्मि गद्धतोया य ।
पच्छिम-विसाए तुसिदा, अव्वाबाधा समोर-विब्भाए ॥६४१॥
उत्तर - विसाए रिट्ठा,^४ एमेते अट्ट ताण विचचाले ।
दो - दो हवंति 'अण्णे, देवा तेसु' इमे णामा ॥६४२॥

अर्थ—पूर्व-उत्तर (ईशान) दिग्भागमें सर्वदा सारस्वत देव, पूर्व दिशामें आदित्य, अग्नि दिशामें वह्नि देव, दक्षिण दिशामें अरुण, नैऋत्य भागमें गर्दतोय, पश्चिम दिशामें तुषित, वायु दिग्भागमें अव्याबाध और उत्तर दिशामें अरिष्ट, इस कारण ये आठ देव निवास करते हैं । इनके अन्तरालमें दो-दो अन्य देव हैं । उनके नाम ये हैं ॥६४०-६४२॥

सारस्सव - णामाणं, आइच्चाणं सुराण विचचाले ।
अणलाभा सुराभा,^५ देवा चेहुंति नियमेणं ॥६४३॥

अर्थ—सारस्वत और आदित्य नामक देवोंके अन्तरालमें नियमसे अग्न्याश और सूर्याश देव स्थित हैं ॥६४३॥

१. द. व. जे । २. द. व. व होति । ३. द. व. क. ज. ठ. ईसाणदिसाविअसुर । ४. द. व. क. ज. ठ. सारस्सदा । ५. द. व. क. ज. ठ. अरिट्ठा । ६. द. व. क. ज. ठ. अण्णा । ७. द. व. क. ज. ठ. सुराभा ।

चंदाभा सुराभा, देवा आइच्च - वण्हि - विच्चाले ।
 सेअवला खेमंकर, णाम 'सुरा' ^१वण्हि-अरुणम्मि ॥६४४॥

अर्थ—आदित्य और वह्निके अन्तरालमें चन्द्राभ और सूर्याभ (सत्याभ) तथा वह्नि और अरुणके अन्तरालमें श्रेयस्कर और खेमङ्कर नामक देव शोभायमान हैं ॥६४४॥

विसकोट्टा कामधरा, विच्चाले अरुण - गहत्तोयार्ण ।
 णिम्माणराज-विसघंत-रक्खिआ^२ गहत्तोय-तुसिताणं ॥६४५॥

अर्थ—अरुण और गर्दतोयके अन्तरालमें वृषकोष्ठ (वृषभष्ट) और कामधर (कामचर) तथा गर्दतोय और तुषितके अन्तरालमें निर्माणराज (निर्माणरज) और दिगन्तरक्षित देव हैं ॥६४५॥

तुसितव्यावाहाणं, अंतरवो अण्व-सव्व-रक्ख-सुरा ।
 मरुवेवा वसुदेवा, तह अववावाह-रिट्ठ-मज्झम्मि ॥६४६॥

अर्थ—तुषित और अव्यावाध के अन्तराल में आत्मरक्ष और सर्वरक्ष देव तथा अव्यावाध और अरिष्टके अन्तराल में मरुत् देव और वसुदेव हैं ॥६४६॥

सारस्सव-रिट्ठाणं, विच्चाले अस्स-विस्स-णाम-सुरा ।
 सारस्सव-आइच्च, पत्तेवकं होति सत्त-सया ॥६४७॥

७०० ।

अर्थ—सारस्वत और अरिष्ट के अन्तराल में अश्व एवं विश्व नामक देव स्थित हैं । सारस्वत और आदित्य प्रत्येक सात-सात (७००-७००) सी हैं ॥६४७॥

वण्ही अरुणा देवा, सत्त-सहस्साणि सत्त पत्तेवकं ।
 णव-जुत्त-णव-सहस्सा, तुसिव^३ - सुरा गहत्तोया वि ॥६४८॥

७००७ । ९००९ ।

अर्थ—वह्नि और अरुण में से प्रत्येक सात हजार सात (७००७) तथा तुषित और गर्दतोय में से प्रत्येक नौ हजार नौ (९००९) हैं ॥६४८॥

१. व. अ. क. ज. ठ. सुरो । २. व. क. ज. ठ. वण्हिएतम्मि, व. वण्हिए भंति ।

३. द. व. रक्खिणा । ४. व. व. क. ज. ठ. तुरिद ।

अव्याबाहा-रिद्धा, एक्करस-सहस्स एक्करस-जुत्ता ।
अणलाभा वह्नि-समा, सूराम्भ गदतोय-सारिच्छा ॥६४६॥

११०११ । ७००७ । ९००९ ।

अर्थ—अव्याबाध और अरिष्ट प्रत्येक ग्यारह हजार ग्यारह (११०११) हैं । अनलाभ वह्नि देवों के सदृश (७००७) और सूर्याभ गर्दतियों के सदृश (९००९) हैं ॥६४६॥

अव्याबाह-सरिच्छा, चंदाभ^१ - सुरा हवन्ति सच्चाभा^२ ।
अजुवं तिणिा सहस्सं, तेरस - जुत्ताए संखाए ॥६५०॥

११०११ । १३०१३ ।

अर्थ—चन्द्राभ देव अव्याबाधोंके सदृश (११०११) तथा सत्याभ तेरह हजार तेरह (१३०१३) हैं ॥६५०॥

पण्णरस-सहस्साणि, पण्णरस-जुवाणि होंति^३ सेअवखा ।
खेमंकराभिधाणा, सत्तरस - सहस्सयाणि सत्तरसा ॥६५१॥

१५०१५ । १७०१७ ।

अर्थ—श्रेयस्क पन्द्रह हजार पन्द्रह (१५०१५) और खेमङ्कर नामक देव सत्तरह हजार सत्तरह (१७०१७) होते हैं ॥६५१॥

उणवीस-सहस्साणि, उणवीस-जुत्ताणि होंति विसकोट्टा ।
इगिवीस - सहस्साणि, इगिवीस - जुवाणि कामधरा ॥६५२॥

१९०१९ । २१०२१ ।

अर्थ—वृषकोष्ठ उन्नीस हजार उन्नीस (१९०१९) और कामधर इक्कीस हजार इक्कीस (२१०२१) होते हैं ॥६५२॥

णिम्माणराज-णामा, तेवीस - सहस्सयाणि तेवीसा ।
पणुवीस-सहस्साणि, पणुवीस-जुवाणि वितरवखा^४ य ॥६५३॥

२३०२३ । २५०२५ ।

१. द. व. क. ज. ठ. चंदाभासुर । २. द. व. क. ज. ठ. संखाभा । ३. व. व. क. ज. ठ. सेअव्वा ।
४. द. व. तरक्खस्स ।

अर्थ—निर्मणिराज देव तेईस हजार तेईस (२३०२३) और दिगन्तरक्ष पच्चीस हजार पच्चीस (२५०२५) होते हैं ॥६५३॥

सत्तावीस-सहस्सा, सत्तावीसं च अप्परक्ख - सुरा ।

उणत्तीस-सहस्साणि, उणत्तीस-जुदाणि सक्करक्खा य ॥६५४॥

२७०२७ । २९०२९ ।

अर्थ—आत्मरक्ष देव सत्ताईस हजार सत्ताईस (२७०२७) और सर्वरक्ष उन्तीस हजार उन्तीस (२९०२९) होते हैं ॥६५४॥

एकत्तीस-सहस्सा, एकत्तीसं हुवंति मरु - देवा ।

तेत्तीस - सहस्साणि, तेत्तीस - जुदाणि वसु-णामा ॥६५५॥

३१०३१ । ३३०३३ ।

अर्थ—मरुदेव इकतीस हजार इकतीस (३१०३१) और वसु नामक देव तैंतीस हजार तैंतीस (३३०३३) होते हैं ॥६५५॥

पंचत्तीस-सहस्सा, पंचत्तीसा हुवंति अस्स-सुरा ।

सप्तत्तीस-सहस्सा, सप्तत्तीसं च विस्स-सुरा ॥६५६॥

३५०३५ । ३७०३७ ।

अर्थ—अश्वदेव पैंतीस हजार पैंतीस (३५०३५) और विश्वदेव सैंतीस हजार सैंतीस (३७०३७) होते हैं ॥६५६॥

चत्तारि य लक्खाणि, सत्त-सहस्साणि अठ-सयाणि पि ।

छब्बहियारिणं होवि हु, सव्वाणं पिड्ड - परिमाणं ॥६५७॥

४०७८०६ ।

अर्थ—इन सबका पिण्ड-प्रमाण चार लाख सात हजार आठ सौ अह (४०७८०६) है ॥६५७॥

विशेषार्थ—आठ कुलोंके सारस्वत आदि सम्पूर्ण लौकान्तिक देवोंका प्रमाण (७०० + ७०० + ७००७ + ७००७ + ६००६ + ६००६ + ११०११ + ११०११ =) ५५४५४ है और आठ अन्तरालोंमें रहने वाले अनलाभ और सूर्याभ आदि सोलह कुलोंके लौकान्तिक देवोंका कुल प्रमाण (७००७ + ९००९ + ११०११ + १३०१३ + १५०१५ + १७०१७ + १९०१९ + २१०२१ + २३०२३ + २५०२५ + २७०२७ + २९०२९ + ३१०३१ + ३३०३३ + ३५०३५ + ३७०३७ =)

उत्तर-दिसाए रिड्डा, अग्नि-दिसाए वि होंति मज्झस्मि ।
 एवाणं पत्तेयं, परिमाणाइं परूवेमो ॥६६१॥
 पत्तेवकं सारस्सद - आइच्चा तुसिद - गहत्तोया य ।
 सत्तुत्तर - सत्त - सया, सेसा पुब्बोदिव - पमाणा ॥६६२॥
 पाठान्तरम् ।

अर्थ—पूर्व-उत्तर कोणमें सारस्वत नामक देव, पूर्वमें आदित्य, अग्नि दिशामें वह्नि देव, दक्षिण दिशामें अरुण, नैऋत्य भागमें गर्दतोय, पश्चिम दिशामें तुषित, वायु दिशामें अव्याबाध और उत्तर दिशामें तथा अग्नि दिशाके मध्यमें भी अरिष्ट देव रहते हैं । इनमेंसे प्रत्येकका प्रमाण कहते हैं । सारस्वत और आदित्य तथा तुषित और गर्दतोयमेंसे प्रत्येक सात सौ सात (७०७) और शेष देव पूर्वोक्त प्रमाणसे युक्त हैं ॥६६१-६६२॥

पाठान्तर ।

लौकान्तिक देवोंके उत्सेधादिका कथन—

पत्तेवकं पण हत्था, उवओ लोयंतयाण देहेसुं ।
 अट्टमहण्णव - उवमा, सोहंते सुवक - लेस्साओ ॥६६३॥

अर्थ—लौकान्तिक देवोंमेंसे प्रत्येकके शरीरका उत्सेध पाँच हाथ और आयु आठ सागरोपम प्रमाण है । ये देव शुक्ल रेश्म्यासे शोभायमान होते हैं ॥६६३॥

सब्बे 'लोयंतपुरा, एवकारस-अंग-धारिणो णियमा ।
 सम्महंसण - सुद्धा, होंति सतत्ता सहावेणं ॥६६४॥

अर्थ—सब लौकान्तिक देव नियमसे ग्यारह अंगके धारी, सम्मगदर्शनसे शुद्ध और स्वभावसे ही तृप्त होते हैं ॥६६४॥

महिलादी परिवारा, ण होंति एदाण संततं 'जम्हा ।
 संसार-खवण - कारण - वेरगं भावयंति ते तम्हा ॥६६५॥

अर्थ—क्योंकि इनके महिलादिक रूप परिवार नहीं होते हैं, इसलिए ये निरन्तर संसार-क्षयके कारणभूत वैराग्यकी भावना भाते हैं ॥६६५॥

अद्भुतमसरण-पहुवि, भावं ते भावयति अणवरत्नं ।

बहु-दुक्ख-सलिल-पूरिद-संसार-समुद-बुहुण - भएणं ॥६६६॥

अर्थ—बहुत दुःखरूप जलसे परिपूर्ण संसार रूपी समुद्रमें डूबनेके भयसे वे लोकान्तिक देव निरन्तर अनित्य एवं अशरण आदि भावनाएँ भाते हैं ॥६६६॥

तित्थयराणं समए, परिणिकमणम्मि जंति ते सव्वे ।

दु-चरिम-देहा देवा, बहु-विसम-किलेस-उम्मुक्का^१ ॥६६७॥

अर्थ—द्विचरम शरीरके धारक अर्थात् एक ही मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष जानेवाले और अनेक विषम क्लेशोंसे रहित वे सब देव तीर्थंकरोंके दीक्षा कल्याणकमें जाते हैं ॥६६७॥

देवरिसि-णामधेया, सव्वेहि सुरेहि अच्चणिज्जा ते ।

भत्ति - पसत्ता सज्जय - साधीणा सव्व - कालेसु^२ ॥६६८॥

अर्थ—देवसि नाम वाले वे देव सब देवोंसे अर्चनीय, भक्तिमें प्रसक्त और सर्वकाल स्वाध्यायमें स्वाधीन होत है ॥६६८॥

लोकान्तिक देवोंमें उत्पत्ति का कारण—

इह खेसे वेरगं, बहु - भेयं भाविदूण बहुकालं ।

संजम - भावेहि मओ, देवा लोयंतिया होंति ॥६६९॥

अर्थ—इस क्षेत्रमें बहुत काल पर्यन्त बहुत प्रकारके वैराग्यको भाकर संयम सहित मरण कर लोकान्तिक देव होते हैं ॥६६९॥

थुद-णिदासु समाणो, सुह-दुक्खेसु^३ संबधु-रिवु-वग्गे ।

जो समणो सम्मत्तो, सो च्चिय लोयंतिया होंदि^३ ॥६७०॥

अर्थ—जो सम्यग्दृष्टि श्रमण स्तुति और निन्दामें, सुख और दुःखमें तथा बन्धु और शत्रु वर्गमें समान है, वही लोकान्तिक होता है ॥६७०॥

जे शिरवेक्खा देहे, णिट्ठा णिम्ममा गिरारंभा ।

गिरवज्जा समण-वरा, ते च्चिय लोयंतिया होंति ॥६७१॥

अर्थ—जो देहके विषयमें निरपेक्ष हैं, तीनों योगोंको वश करनेवाले हैं तथा निर्ममत्व, निरारम्भ और निरवय हैं वे ही श्रमण श्रेष्ठ लोकान्तिक देव होते हैं ॥६७१॥

संजोग^१ - विष्णुजोगे, लाहालाहम्मि जीविदे मरणे ।

लो समरिद्धी^२ सल्लणो, सो किमय लोयंतिया होति ॥६७२॥

अर्थ—जो श्रमण संयोग और वियोगमें, लाभ और अलाभमें तथा जीवित और मरणमें समदृष्टि होते हैं, वे ही लौकान्तिक होते हैं ॥६७२॥

अणवरदमप्पमत्तो,^३ संजम-समिदीसु भाण-जोगेसु^४ ।

तिट्ठ-तव - चरण - जुत्ता, समणा लोयंतिया होति ॥६७३॥

अर्थ—संयम, समिति, ध्यान एवं समाधिके विषयमें जो निरन्तर अप्रमत्त (सावधान) रहते हैं तथा तीव्र तपश्चरणसे संयुक्त हैं, वे श्रमण लौकान्तिक होते हैं ॥६७३॥

पंचमहव्वय-सहिदा, पंचसु समिदीसु^५ धिर-णिचिट्ठमाणा ।

पंचवख - विसय - विरवा, रिसिणो लोयंतिया होति ॥६७४॥

अर्थ—पांच महाव्रतों सहित पांच समितियोंका स्थिरता पूर्वक पालन करने वाले और पांचों इन्द्रिय-विषयोंसे विरक्त ऋषि लौकान्तिक होते हैं ॥६७४॥

ईधत्थाग्गार (८ वीं) पृथ्वी का अवस्थान एवं स्वरूप—

सव्वट्ठसिद्धि - इंदय - केवणवंडादु उवरि मंतूणं ।

बारस - जोयणमेत्ता, अट्ठमिया चेट्ठदे पुढवी ॥६७५॥

अर्थ—सर्वार्थसिद्धि इन्द्रकके ध्वजदण्डसे बारह योजन प्रमाण ऊपर जाकर आठवीं पृथिवी अवस्थित है ॥६७५॥

पुट्ठावरेण तोए, उवरिम - हेट्ठिम - तलेसु पत्तेवकं ।

वासो हवेदि एवका, रज्जु^६ रुवेण परिहोणा ॥६७६॥

अर्थ—उसके उपरिम और अधस्तन तलमेंसे प्रत्येकका विस्तार पूर्व-पश्चिममें रूपसे रहित एक राजू प्रमाण है ॥६७६॥

उत्तर-दक्खिण-भाए, 'दीहा किच्चूण-सत्ता-रज्जुओ ।

वेत्तासण-संठाणा, सा पुढवी अट्ठ - जोयणा बह्ला ॥६७७॥

१. द. व. संजोगं विष्णुजोगे । २. व. क. सम्महिद्धि । ३. द. व. ज. ठ. अणवरदसमं पत्तो ।

४. द. व. क. ज. ठ. धिर । ५. द. व. क. ज. ठ. रज्जो । ६. द. व. क. ज. ठ. दीह ।

अर्थ—वेत्रासनके सदृश यह पृथिवी उत्तर-पश्चिमदिशा में कुछ कम सात राजू लम्बी और आठ योजन बाह्यवाली है ॥६७७॥

जुरा घणोवहि-घणाणिल-तणुवादेहि' तिहि समीरेहि ।

जोयण - बीस - सहस्सं, पमाण - बहुलेहि पत्तेष्कं ॥६७८॥

अर्थ—यह पृथिवी घनोदधि, घनवात और तनुवात इन तीन वायुओंसे युक्त है । इनमेंसे प्रत्येक वायुका बाह्य (मोटाई) बीस हजार योजन प्रमाण है ॥६७८॥

एदाए बहुमज्जे, खेत्तं णामेण ईसिपवभारं ।

अज्जुण-सुवण्ण-सरिसं, णाणा - रयणेहि परिपुण्णं ॥६७९॥

अर्थ—इसके बहु-मध्य-भागमें नाना रत्नोंसे परिपूर्ण चाँदी एवं स्वर्णके सदृश ईषत्प्राग्भार नामक क्षेत्र है ॥६७९॥

उत्ताण - धवल - छत्तोवमाण - संठाण-सुंदरं एवं ।

पंचत्तालं जोयण - लक्खाणि वास - संजुत्तं ॥६८०॥

अर्थ—यह क्षेत्र उत्तान धवल छत्रके सदृश आकारसे सुन्दर और पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन प्रमाणसे संयुक्त है ॥६८०॥

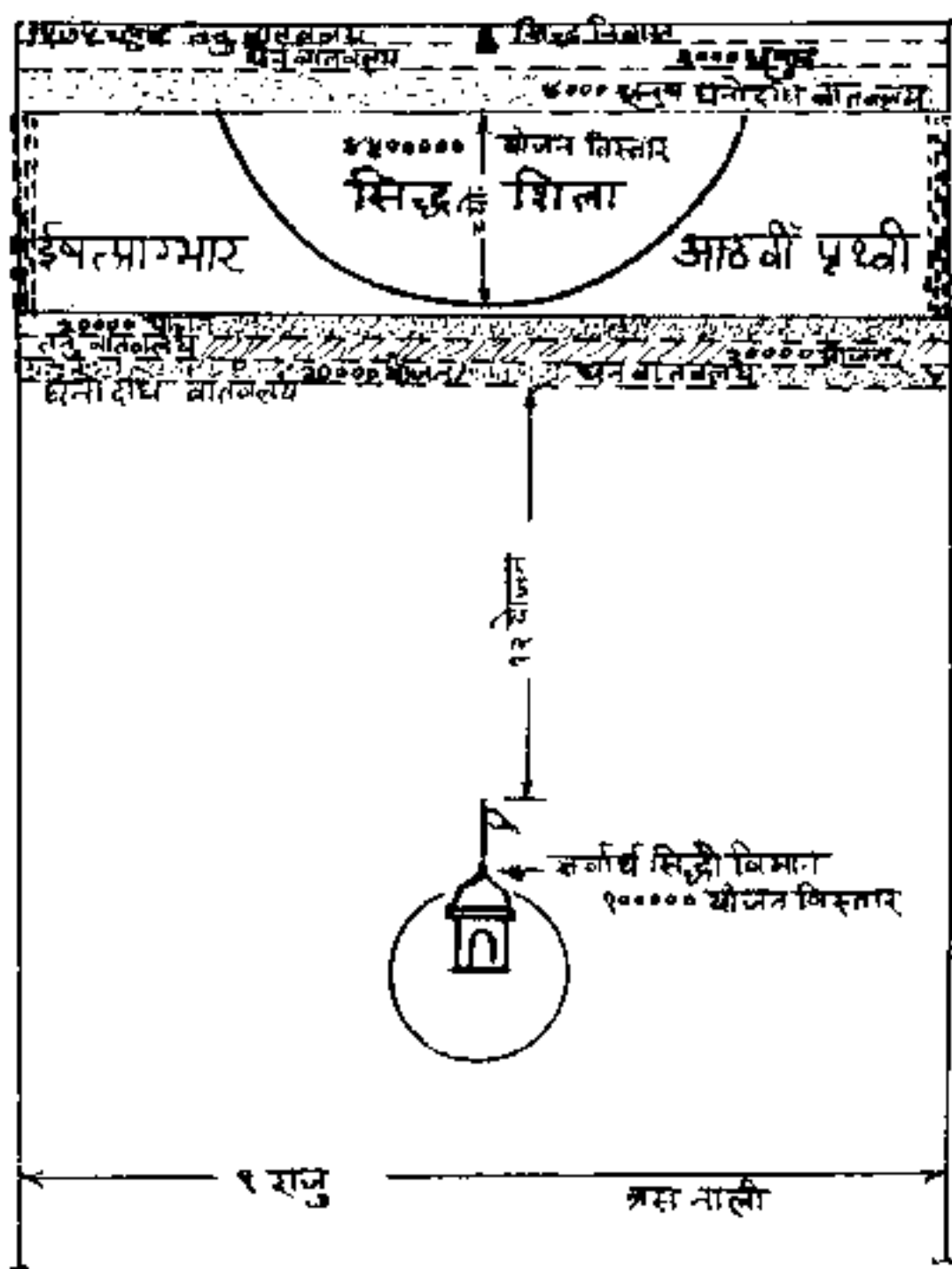
तम्मज्ज - बहुलमट्ठं, जोयणया अंगुलं पि अंतम्मि ।

अट्ठम-सू-मज्ज-गवो, तप्परिही मणुव-खेत्त-परिहि-समो ॥६८१॥

८। अं १ ।

अर्थ—उसका मध्य बाह्य आठ योजन और अन्तमें एक अंगुल प्रमाण है । अष्टम भूमि में स्थित सिद्धक्षेत्रकी परिधि मनुष्य क्षेत्रकी परिधिके सदृश है ॥६८१॥

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]



विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धि विमान के ध्वजदण्ड से १२ योजन ऊपर जाकर क्रमशः बीस-बीस हजार मोटे घनोदधि, घन और तनु-वातवलय हैं; इसके बाद पूर्व-पश्चिम एक राजू विस्तार वाली ईषत्प्राग्भार नामक षठी पृथिवी है। यह पृथिवी उत्तर-दक्षिण ७ राजू लम्बी और ८ योजन मोटी है। इसका घनफल प्रथमाधिकार पृष्ठ १३६ के अनुसार (१ राजू विस्तृत × ७ राजू आयत × ८ योजन बाहुल्य को जगत्प्रतर रूप से करने पर) ४६ वर्गराजू × ६ योजन प्रमाण है।

इस पृथिवी के बहुमध्य भाग में उत्तान (ऊर्ध्वमुख) छत्र के आकार सदृश आकार वाला और ४५ लाख योजन विस्तृत ईषत्प्राग्भार नामक क्षेत्र (सिद्ध-शिला) है। इस शिलाका मध्य बाहुल्य ८ योजन और अन्त (के दोनों छोरों का) बाहुल्य एक-एक अंगुल प्रमाण है। इसकी सूक्ष्म

परिधि का प्रमाण मनुष्य लोक की परिधि के प्रमाण सदृश (चतुर्थाधिकार गा० ७) १४२३०२४६ यो० है । इस पृथिवी के ऊपर अर्थात् लोक के अन्त में क्रमशः ४००० धनुष, २००० धनुष और १५७५ धनुष मोटे घनोदधि, घन और तनु वातवलय हैं । इसप्रकार सर्वार्थसिद्धि विमान के ध्वजदण्ड से (१२ यो० + ८ यो० + ७५७५ धनुष अर्थात्) ४२५ धनुष कम २१ योजन ऊपर अर्थात् तनुवातवलय में सिद्ध प्रभु विराजमान है । इनके निवास क्षेत्र के घनफल आदि के लिए नवमाधिकार की गाथा ३-४ दृष्टव्य है ।

नोट—इसी ग्रन्थके प्रथमाधिकार गा० १६३ के विशेषार्थमें सर्वार्थसिद्धि विमानके ध्वज-दण्डसे २९ यो० ४२५ धनुष ऊपर जाकर लोकका अन्त लिखा है । जो अष्टमाधिकार गा० ६७५-६८१ का विषय देखते हुए गलत प्रतीत होता है । १/१६३ का विशेषार्थ जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग ३ पृष्ठ ४६० पर ऊर्ध्वलोक के सामान्य परिचय के अन्तरगत दिये हुए नोट के आधार पर दिया था । यदि सिद्धशिला के मध्यभाग की ८ योजन मोटाई, ८ योजन मोटी ८ वीं पृथिवी में ही निहित है तो सर्वार्थसिद्धि विमानके ध्वजदण्ड से सिद्धोंका निवास क्षेत्र ४२५ धनुष कम २१ यो० होता है (यही प्रमाण यथार्थ ज्ञात होता है क्योंकि दूसरे अधिकार की गाथा २४ में ८ वीं पृथिवी द्वारा दसों दिशाओं में घनोदधि वातवलय का स्पर्श कहा गया है) और यदि ८ योजन मोटी आठवीं पृथिवी के ऊपर ८ योजन बाह्यवाली सिद्धशिला है तो उस क्षेत्र की ऊँचाई अर्थात् लोक के अन्त का प्रमाण (१२ यो० + ८ यो० + ८ यो० + ७५७५ धनुष) ४२५ धनुष कम २६ यो० होगा । यह विषय विद्वज्जनों द्वारा विचारणीय है ।

एदस्स चउ-विसासुं, चत्तारि तमोमयाओ राजीओ' ।

णिस्सरिदूणं बाहिर-राजीणं होदि बाहिर - प्पासा ॥६८२॥

तच्छिविदूणं तत्तो, ताओ पदिदाओ चरिम-उवहिम्मि ।

अकभंतर^१ - तीरावो, संखातीदे अ जोयणे य धुवं ॥६८३॥

बाहिर-चउ-राजीणं, वहि-अवलंबो पवेवि दीवम्मि ।

जंबूदीवाहितो, गंतूणं असंख - दीव - वारिणिहि ॥६८४॥

बाहिर-भागाहितो, अवलंबो तिमिरकाय-णामस्स ।

जंबूदीवेहितो, तम्मेत्तं गदुअ^२ पददि दीवम्मि ॥६८५॥

एवं ^३लोयंतिय-परुवणा समत्ता ।

१. द. व. क. ज. ठ. रज्जुओ । २. द. अम्भितर ।

३. द. व. क. ज. ठ. गदु ।

४. द. व. क. ज. ठ. लोय ।

अर्थ—इसकी चारों दिशाओं में चार तमोमय राजियाँ निकलकर बाह्य राजियों के बाह्य पार्श्वपर होती हुई उन्हें छूकर निश्चय से अभ्यन्तर तीर से असंख्यात योजन प्रमाण अन्तिम समुद्र में गिरी हैं। बाह्य चार राजियों के बाह्य भाग का अवलम्बन करने वाला जम्बूद्वीप से असंख्यात द्वीप-समुद्र जाकर द्वीप में गिरता है। बाह्य भागों से तिमिर काय नामका अवलम्ब जम्बूद्वीप से इतने ही प्रमाण जाकर द्वीप में गिरता है ॥६८२-६८५॥

नोट—गाथा ६२२ से ६३६ और ६८२ से ६८५ अर्थात् १९ गाथाओं का यथार्थ भाव बुद्धिगत नहीं हुआ।

इसप्रकार लौकान्तिक देवों की प्ररूपणा समाप्त हुई ॥

बीस प्ररूपणाओं का दिग्दर्शन—

गुण-जीवा पञ्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणाओ वि ।

उवजोगा भणिवग्वा, देवाणं देव - लोयम्मि^१ ॥६८६॥

अर्थ—अब देवलोक में देवों के गुणस्थान, जीवसमाज, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा मार्गणा और उपयोग, इनका कथन करना चाहिए ॥६८६॥

चत्तारि गुणट्ठाणा, जीवसमासेसु सण्णि-पञ्जत्ती ।

णिट्ठवत्तिप-पञ्जत्ती, छ-पञ्जत्तीओ छ्हं अपञ्जत्ती ॥६८७॥

पञ्जत्ते दस पाणा, इदरे पाणा हवन्ति सत्तेव ।

इंदिय-मण-वयण-तणू, आउस्सासा^२ य दस-पाणा ॥६८८॥

तेसुं मण-वय-उच्छ्वास-वज्जिवा सत्त तह अपञ्जत्ते ।

चउ-सण्णाओ होति ह, चउसु गदीसुं च देवगदी ॥६८९॥

पंचवक्खा तस-काया, जोगा एक्कारस-प्पमाणा य ।

ते अट्ठ मण-वयारणि, वेगुद्व-दुगं च कम्महयं ॥६९०॥

पुरिसित्थी-वेद-जुदा, सयल-कसाएहि संजुदा देवा ।

छण्णाणेहि सहिदा,^३ सव्वे वि असंजवा ति-वंसणया ॥६९१॥

अर्थ—चार गुणस्थान, जीव-समासों में संज्ञी पर्याप्ति और निवृत्त्यपर्याप्ति, छह पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ; पर्याप्ति अवस्था में पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काय, आयु और श्वासोच्छ्वास ये दस प्राण; तथा अपर्याप्ति अवस्था में मन, वचन और उच्छ्वास से रहित शेष सात प्राण; चार

१. द. क. ज. ठ. दायम्मि । २. द. व. क. ज. ठ. आउस्ससयासदसपाणा ।

३. द. व. क. ज. ठ. सदा ।

संज्ञाएँ, चार गतियों में से देवगति, पंचेन्द्रिय, त्रस-काय; आठ मन-वचन, दो वैक्रियिक (वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्र) तथा कामंण, इसप्रकार ग्यारह योग; पुरुष एवं स्त्री वेद से युक्त, समस्त कषायों से संयुक्त, छह ज्ञानों सहित, सब ही असंयत और तीन दर्शन से युक्त होते हैं ॥६८७-६९१॥

दोण्हं दोण्हं छक्कं, दोण्हं तह तेरसाण बेवाणं ।
 लेस्साओ चौदसाओ, थोच्छामो आणुपुव्वीए ॥६९२॥
 तेऊए मज्झिमंसा, तेउक्कस्स - पउम - अवरंसा ।
 पउमाए मज्झिमंसा, पउमुक्कस्सं ससुक्क-अवरंसा ॥६९३॥
 सुक्काय मज्झिमंसा, उक्कस्संसा य सुक्क-लेस्साए ।
 एवाओ लेस्साओ, णिदिट्ठा सव्व - दरिसीहि ॥६९४॥
 सोहम्म-प्पहुदीणां, 'एदाओ दव्व-भाव-लेस्साओ ।
 उवरिम - गेवेज्जंतं, भव्वाभव्वा सुरा होंति ॥६९५॥
 तसो उवरि भव्वा, उवरिम - गेवेज्जयस्स परियंतं ।
 छब्भेदं सम्मत्तं, उवरि 'उवसमिय-खइय-वेदकया ॥६९६॥
 ते सव्वे सण्णीओ, देवा आहारिणो अणाहारा ।
 सागार-अणागारा, दो च्चेव य होंति उवजोगा ॥६९७॥

अर्थ—दो (सौधर्मेशान), दो (सा०-माहेन्द्र), ब्रह्मादिक छह, शतारद्विक, आनतादि नौ ग्रंथेयक पर्यन्त तेरह, तथा चौदह (नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर), अनुक्रमसे इन देवोंकी लेश्याओं का कथन करता हूँ—

सौधर्म और ईशानमें पीत लेश्याका मध्यम अंश, सनत्कुमार और माहेन्द्रमें पद्मके जघन्य अंश सहित पीतका उत्कृष्ट अंश, ब्रह्मादिक छह में पद्मका मध्यम अंश, शतार युगल में शुक्ल लेश्या के जघन्य सहित पद्मका उत्कृष्ट अंश, आनत आदि तेरह में शुक्ल का मध्यम अंश और अनुदिशादि चौदह में शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अंश होता है; इसप्रकार सर्वज्ञ देवने देवों में ये लेश्यायें कही हैं । सौधर्मादिक देवों के ये द्रव्य एवं भाव लेश्यायें समान होती हैं । उपरिम ग्रंथेयक पर्यन्त देव भव्य और अभव्य दोनों तथा इससे ऊपर भव्य ही होते हैं । उपरिम ग्रंथेयक पर्यन्त छहों प्रकार के सम्यक्त्व तथा इससे ऊपर ग्रीष्मिक, क्षायिक और वेदक ये तीन सम्यक्त्व होते हैं । वे सब देव संजी तथा आहारक एवं अनाहारक होते हैं । इन देवों के साकार और अनाकार दोनों ही उपयोग होते हैं ॥६९२-६९७॥

कप्पा कप्पाबीदा, दुचरम-वेहा हवन्ति केइ सुरा ।
सक्को सहग-महिंसी,^१ सलोयवालो य वक्खिणा इंवा ॥६६८॥
सव्वट्ठसिद्धिवासी, लोयंतिय - णामधेय - सव्व-सुरा ।
णियमा दुचरिम-वेहा, सेसेसुं^२ णत्थि णियमो य ॥६६९॥

एवं गुणठाणांवे-परुवणा समत्ता ।

अर्थ—कल्पवासी और कल्पातीतों में से कोई देव द्विचरम-शरीरी अर्थात् आगामी भवमें मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं ।

अग्रमहिंसी और लोकपालों सहित सौधर्म इन्द्र, दक्षिण इन्द्र, सर्वार्थसिद्धिवासी तथा लोकान्तिक नामक सब देव नियम से द्विचरम-शरीरी हैं । शेष देवों में नियम नहीं है ॥६९८-६९९॥

इसप्रकार गुणस्थानादि-प्ररूपणा समाप्त हुई ॥

सम्यक्त्व ग्रहणके कारण—

जिण-महिम-दंसणेणं, केई जादी - सुमरणादो वि ।
देवद्धि^३ - दंसणेण य, ते देवा धम्म - सव्वणेण ॥७००॥
गेण्हंते सम्मत्तं, णिव्वाणवभुदय - साहण - सिमित्तं ।
दुव्वार - गहिद्व^३ - संसार - जलहिणोत्तारणोवायं ॥७०१॥

अर्थ—उनमें से कोई देव जिनमहिमा के दर्शनसे, कोई जातिस्मरणसे, कोई देवद्विके देखने से और कोई धर्मोपदेश सुनने से निर्वाण एवं स्वर्गादि अभ्युदय के साधक तथा दुर्वार एवं गम्भीर संसाररूपी समुद्र से पार उतारने वाला सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं ॥७००-७०१॥

णवरि हु णय-गेवेज्जा, एवे देवद्धि-वज्जिवा होंति ।
उवरिम - चोदस - ठाणे, सम्माइट्ठी सुरा सव्वे ॥७०२॥

दंसण-गहण-कारणं समत्तं ॥

अर्थ—विशेष यह है कि नी संवेयकों में उपर्युक्त कारण देवद्वि दर्शन से रहित होते हैं । इसके ऊपर चौदह स्थानों में सब देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं ॥७०२॥

सम्यग्दर्शन-ग्रहण के कारणों का कथन समाप्त हुआ ॥

१. द. व. क. ज. ठ. मच्छासि । २. द. देवत्ति, व. देवच्छि, क. ज. ठ. देवद्धि ।

३. द. व. क. ज. ठ. रहिद ।

वैमानिक देव भरकर कहीं-कहीं जन्म लेते हैं —

आईसाणं देवा, जणणा एइंदिएसु भजिदग्वा ।
उवरि सहस्सारंतं, ते भज्जा' सण्णि-तिरिय-मणुवत्ते ॥७०३॥

अर्थ—ईशान कल्प पर्यन्त के देवों का जन्म एकेन्द्रियों में विकल्पनीय है । इससे ऊपर सहस्रार कल्प पर्यन्त के सब देव विकल्प से संज्ञी तिर्यञ्च या मनुष्य होते हैं ॥७०३॥

तत्तो उवरिम-देवा, सध्वे सुवकाभिधाण-लेस्साए ।
उप्पज्जंति मणुस्से, एत्थि तिरिक्खेसु उववादो ॥७०४॥

अर्थ—इससे ऊपर के सब देव शुक्ल लक्ष्म्या के साथ मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, इनकी उत्पत्ति तिर्यञ्चों में नहीं है ॥७०४॥

देव-गदोदो चत्ता, कम्मवत्तेत्तम्मि सण्णि-पज्जत्ते ।
गवभ-भवे जायंते, ण भोगभूमीणा णर-तिरिए ॥७०५॥

अर्थ—देवगति से च्युत होकर वे देव कर्मभूमि में संज्ञी, पर्याप्त एवं गर्भज होते हैं, भोग-भूमियों के मनुष्य और तिर्यञ्चों में नहीं होते हैं ॥७०५॥

सोहम्मादी देवा, भज्जा हु सलाग-पुरिस-एिवहेसु' ।
णिस्सेयस-गमणेसु', सध्वे वि अणंतरे जम्मे ॥७०६॥

अर्थ—सब सौधर्मादिक देव अगले जन्म में शलाका-पुरुषों के समूह में और मुक्ति-गमन के विषय में विकल्पनीय हैं ॥७०६॥

णवरि विसेसो सव्वट्ठसिद्धि-ठाणदो विच्चुदा' देवा ।
भज्जा सलाग-पुरिसा, णिव्वाणं यांति नियमेणं ॥७०७॥

एवं आगमण-परुवरणा समत्ता ॥

अर्थ—विशेष यह है कि सर्वार्थसिद्धि से च्युत हुए देव शलाकापुरुषरूप से विकल्पनीय हैं, किन्तु वे नियम से निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥७०७॥

इसप्रकार आगमन-परुवरणा समाप्त हुई ॥

देवों के अवधिज्ञानका कथन—

सक्कीसाणा पढमं, माहिंद-सणवकुमारया बिदियं ।
 तदियं च बम्ह-लंतव-वासी तुरिमं सहस्सयार^१-गदा ॥७०८॥
 आणव-पाणव-आरण-अरुचुव-वासी य पंचमं पुढविं ।
 छट्ठी पुढवी हेट्ठा, णव - बिह - गेवेज्जगा देवा ॥७०९॥
 सव्वं च लोयणालि, अणुहिसाणुत्तरेसु पस्संति ।
 सव्वेसम्मि^२ सकम्मे,^३ रुधम-गदमणंत-भाणो य ॥७१०॥
 कप्पामराण^४ णिय-णिय-ओही-दव्वस्स विस्ससोवचयं ।
 ठविदूणं हरिवव्वं, तसो धुव - भागहारेणं ॥७११॥
 णिय-णिय-खोणि-पदेत्तं, सलाग-संखा समप्पदे जाव^५ ।
 अंतिल्ल - खंधमेत्तं, एवाणं ओहि - दव्वं खु ॥७१२॥

अर्थ—सौधर्मेशान कल्पके देव अपने अवधिज्ञान से नरक की प्रथम पृथिवी पर्यन्त, सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पके देव दूसरी पृथिवी पर्यन्त, ब्रह्म और लान्तव कल्पके देव तृतीय पृथिवी पर्यन्त, सहस्रार कल्पवासी देव चतुर्थ पृथिवी पर्यन्त; आनत, प्राणत, आरण एवं अच्युत कल्पके देव पाँचवी पृथिवी पर्यन्त, नौ प्रकार के ग्रंथेयक वासी देव छठी पृथिवी के नीचे पर्यन्त तथा अनुदिश एवं अनुत्तर वासी देव सम्पूर्ण लोकनाली को देखते हैं ; अपने कर्म द्रव्य में अनन्त का भाग देकर अपने क्षेत्र में से एक-एक कर्म करना चाहिए । कल्पवासी देवों के विस्ससोपचय रहित अपने अवधिज्ञानावरण द्रव्यको रखकर जब तक अपने-अपने क्षेत्र-प्रदेश की शलाकाएँ समाप्त न हो जावें तब तक ध्रुवहार का भाग देना चाहिए । उक्त प्रकार से भाग देने पर अन्त में जो स्कन्ध रहे उतने प्रमाण इनके अवधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य समझना चाहिए ॥७०८-७१२॥

विशेषार्थ—वैमानिक देवों का अपना-अपना जितना-जितना अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र कहा है, उसके जितने-जितने प्रदेश हैं उन्हें एकत्र कर स्थापित करना और विस्ससोपचय रहित सत्तामें स्थित अपने-अपने अवधिज्ञानावरण कर्मके परमाणुओं को एक ओर स्थापित कर इस अवधिज्ञानावरण के द्रव्यको ध्रुवहार का एक बार भाग देना और क्षेत्र के प्रदेश-पुञ्ज में से एक प्रदेश घटा देना । भाग देने पर प्राप्त हुई लब्धराशि में दूसरी बार उसी ध्रुवहार का भाग देना और प्रदेश पुञ्ज में से

१. महाशुक्र कल्पका विषय छूट गया है । २. व. क. ज. ठ. संखेत्तं ।

३. द. क. ज. ठ. संकम्मे । ४. द. व. क. ज. ठ. कप्पामरा य । ५. व. क. जीवा ।

एक प्रदेश पुनः घटा देना । पुनः लब्धराशि में ध्रुवहार का भाग देना और प्रदेश पुञ्ज में से एक प्रदेश और घटा देना । इसप्रकार अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र के जितने प्रदेश हैं उतनी बार अवधि-ज्ञानावरण कर्म के परमाणु पुञ्ज भजनफल स्वरूप लब्धराशि में भाग देने के बाद अन्त में जो लब्ध राशि प्राप्त हो उतने परमाणु पुञ्ज स्वरूप पुद्गल स्कन्ध को वैमानिक देव अपने अवधिनेत्र से जानते हैं । यथा—

मानलो—अवधिक्षेत्र के प्रदेश १० हैं और विस्रोपचय रहित अवधिज्ञानावरण कर्म स्कन्ध के परमाणु १००००००००००० हैं तथा ध्रुव भागहार का प्रमाण है अतः—

क्षेत्र-१० प्रदेश

अवधिज्ञानावरणका द्रव्य

१०००००००००००

१०—१=९

१०००००००००००० × १ = २००००००००००० ।

९—१=८

२००००००००००० × १ = ४०००००००००० ।

८—१=७

४००००००००० × १ = ८००००००००० ।

७—१=६

८०००००००० × १ = १६०००००००० ।

६—१=५

१६००००००० × १ = ३२००००००० ।

५—१=४

३२०००००० × १ = ६४०००००० ।

४—१=३

६४००००० × १ = १२८००००० ।

३—१=२

१२८०००० × १ = २५६०००० ।

२—१=१

२५६००० × १ = ५१२००० ।

१—१=०

५१२०० × १ = १०२४० ।

पुद्गल स्कन्ध को वैमानिक देव अपने अवधिनेत्र से जानते हैं ।

होति असंखेज्जाओ, सोहम्म-दुगस्स वास-कोडीओ ।

पल्लस्सासंखेज्जो, भागो सेसाण ज्ह - ओगं ॥७१३॥

एवं ओहि-णार्णं गदं ॥

अर्थ—कालकी अपेक्षा सौधर्मयुगलके देवों का अवधि-विषय असंख्यात वर्ष करोड़ और षेव देवों का यथायोग्य पत्यके असंख्यातवर्षभाग प्रमाण है ॥७१३॥

इसप्रकार अवधिज्ञान का कथन समाप्त हुआ ॥

वैमानिक देवोंका पृथक्-पृथक् प्रमाण--

सोहम्मीसाण - दुगे, त्रिदंगुल-तदिय-भूल-हद-सेढी ।

विदिय-^१जुगलम्मि सेढी, ^२एक्करसम-वग्गमूल-हिवा ॥७१४॥

३ । ५५ ।

अर्थ—सौधर्म-ईशान युगलमें देवोंकी संख्या घनाङ्गुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित श्रेणी (श्रेणी × घ० अ० का ३ वर्गमूल) प्रमाण और द्वितीय युगलमें अपने ग्यारहवें वर्गमूलसे भाजित श्रेणी (श्रेणी ÷ श्रेणीका ११ वाँ वर्गमूल) प्रमाण है ॥७१४॥

बम्हम्मि होदि सेढी, सेढी-एव-वग्गमूल-अवहरिदा ।

लंतवकप्पे सेढी, सेढी - सग - वग्गमूल - हिवा ॥७१५॥

४ । ७ ।

अर्थ—ब्रह्मकल्पमें देवोंकी संख्या श्रेणीके तीरवें वर्गमूलसे भाजित श्रेणी (श्रेणी ÷ श्रेणी का ९ वाँ वर्गमूल) प्रमाण और लान्तवकल्पमें श्रेणीके सातवें वर्गमूलसे भाजित श्रेणी (श्रेणी ÷ श्रेणीका ७ वाँ वर्गमूल) प्रमाण है ॥७१५॥

महसुक्कम्मि य सेढी, सेढी-पण-वग्गमूल-भजिदव्वा ।

सेढी सहस्सयारे, सेढी - चउ - वग्गमूल हिवा ॥७१६॥

५ । ४ ।

अर्थ—महाशुक्लकल्पमें देवोंकी संख्या श्रेणीके पाँचवें वर्गमूलसे भाजित श्रेणी (श्रेणी ÷ श्रेणीका ५ वाँ वर्गमूल) प्रमाण और सहस्वार कल्पमें श्रेणीके चतुर्थ वर्गमूलसे भाजित श्रेणी प्रमाण है ॥७१६॥

अवसेस - कप्प - जुगले, पत्तासंखेज्जभागमेक्केक्के ।

देवाणं संखादो, संखेज्जगुणा हवन्ति देवीओ ॥७१७॥

॥ प ३ ॥
॥ रि ॥

अर्थ—अवशेष दो कल्प युगलों में से एक-एक में देवों का प्रमाण पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र है । देवों की संख्या से देवियाँ संख्यातगुणी हैं ॥७१७॥

१. द. ब. जुलम्मि । २. ब. एक्करसग, द. क. ज. ठ. एक्करसवग्ग ।

३. द. ब. क. ज. ठ. ५ ।

हेट्ठिम-मज्झिम-उत्तरिम-गेवेज्जेसु^१ अणुद्विसादि-कुणे ।
पल्लासंखेज्जंसो, सुराण संखाए जह - जोगं ॥७१८॥

| प |
| रि |

अर्थ—अधस्तन ग्रंथेयक, मध्य ग्रंथेयक, उपरिम ग्रंथेयक और अनुदिश-द्विक (अनुदिश-अनुत्तर) में देवों की संख्या यथायोग्य पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ॥७१८॥

जवरि विसेसो सव्वट्ठसिद्धि-णामम्मि होवि-संखेज्जो ।
देवाणं परिसंखा, णिद्धिद्वा वीयरगेहि ॥७१९॥
संखा गदा ॥

अर्थ—विशेष यह है कि सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक में संख्यात देव हैं । इसप्रकार वीतराग-देव ने देवों की संख्या निर्दिष्ट की है ।

संख्या का कथन समाप्त हुआ ॥७१९॥

वैमानिक देवों की शक्तिका दिग्दर्शन—

एक - पलिबोवमाऊ, उप्पाडेदुं घराए छवसंडे ।
तग्गद-णर-तिरिय-जणे, मारेदुं पोसिदुं सबको ॥७२०॥

अर्थ—एक पल्योपम प्रमाण आयुवाला देव पृथिवी के छह खण्डों को उखाड़ने में और उनमें स्थित मनुष्य और तिर्यञ्चों को मारने अथवा पोषण करने में समर्थ है ॥७२०॥

उवहि-उवमाण-जीवी, पल्लट्टेदुं च^२ जंबुवीयं हि ।
तग्गद - णर - तिरियाणं, मारेदुं पोसिदुं सबको ॥७२१॥

अर्थ—सागरोपम प्रमाण काल पर्यन्त जीवित रहनेवाला देव जम्बूद्वीपको भी पलटनेमें और उसमें स्थित मनुष्य और तिर्यञ्चों को मारने अथवा पोषनेमें समर्थ है ॥७२१॥

सोहम्मिदो^३ णियमा, जंबूवीयं समुविखवदि एव ।
केई आइरिया इय, सत्ति - सहायं परुषंति ॥७२२॥

पाठान्तरम् ।

सत्ती गदा ।

१. द. ब. क. ज. ठ. ड़े । २. द. ब. क. ज. ठ. बीवम्मि ।

३. द. ब. क. ज. ठ. सोहम्मिदा ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्र नियमसे जम्बूद्वीपको (उठाकर) फेंक सकता है । इसप्रकार कोई आचार्य उसके शक्ति स्वभावका निरूपण करते हैं ॥७२२॥

पाठान्तर ।

शक्तिका कथन समाप्त हुआ ।

चारों प्रकारके देवोंकी योनि प्ररूपणा—

भावन-वैतर-जोइसिय-कप्पवासोण^१- जणणमुववादे ।
सोदुण्हं अच्चित्तं, संउवया होति सामण्णे ॥७२३॥
एवाण चउ-विहाणं, सुराण सव्वाण होति जोणीओ ।
चउ-लक्खा हु विसेसे, इंदिय-कल्लाव ओवाला (?) ॥७२४॥

जोणी समस्या ॥

अर्थ—भवनवासी, अन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासियोंके उपपाद जन्ममें शीतोष्ण, अचित्त और संवृत योनि होती है । इन चारों प्रकारके सब देवोंके सामान्यरूपसे ये योनियाँ हैं । विशेषरूपसे चार लाख योनियाँ होती हैं ॥७२३-७२४॥

योनियोंका कथन समाप्त हुआ ।

स्वर्ग सुखके भोक्ता—

सम्मदंसण - सुद्धिमुज्जलयरं संसार - णिण्णासणं ।
सम्मण्णाणमणंत - दुक्ख - हरणं धारंति जे सततं ॥७२५॥
णिग्वाहंति विसिद्ध-सोल-सहिदा, जे सम्मचारित्तयं ।
ते सगे सुविचित्त-पुण्ण-जणिदे, भुंजंति सोक्खामयं ॥७२६॥

अर्थ—जो अतिशय उज्ज्वल एवं संसारको नष्ट करनेवाली सम्यग्दर्शनकी शुद्धि तथा अन्तः दुःखको हरने वाले सम्यग्ज्ञानकी निरन्तर धारण करते हैं और जो विशिष्ट शील-परायण होकर सम्यक्चारित्र्यका निर्वाह करते हैं, अद्भुत पुण्यसे उत्पन्न हुए वे स्वर्गमें सौख्यामृत भोगते हैं ॥७२५-७२६॥

अधिकारान्त मङ्गलाचरण—

चल-गङ्ग-पंक-शिखर-शिखर-मोक्ष-लच्छि-मुह-मुकुरं ।

पालदि य धम्म - तिरथं, धम्म - जिणिदं णमंसाभि ॥७२७॥

एवंमाइरिय-परंपरा-गढ़-तिलोयपण्णलीए देवलोय-सरूव'-

निरुयण-पणत्ती पाभ

अद्वसो महाहियारो समत्तो ॥८॥

अर्थ—जो चतुर्गतिरूप पङ्क्तसे रहित, निर्मल एवं उत्तम मोक्ष-लक्ष्मी के मुख के मुकुर (दर्पण) स्वरूप तथा धर्म-तीर्थ के प्रतिपादक हैं, उन धर्म जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७२७॥

इस प्रकार आचार्य - परम्परागत त्रिलोकप्रज्ञप्ति में देवलोक - स्वरूप - निरूपण प्रज्ञप्ति नामक ।

आठवाँ महाधिकार समाप्त हुआ ॥८॥



तिलोयपणत्ती

णवमो महाहियारो

भंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा—

उम्मग्ग-संठियारं, भव्वाणं सोक्ख - मग्ग - देसयरं ।
पणमिय संति-जिणेरं^१, वोच्छामो सिद्धलोय-पणत्ती ॥१॥

अर्थ—उन्मार्गमें स्थित भव्य-जीवोंको मोक्षमार्गका उपदेश करनेवाले शान्ति जिनेन्द्र को नमस्कार करके सिद्धलोक-प्रज्ञप्ति कहता हूँ ॥१॥

पाँच अन्तर्वाधिकारोंका निर्देश—

सिद्धाण निवास-खिदी, संखा ओगाहणाणि सोक्खाई ।
सिद्धत्त - हेतु - भावो, सिद्ध - जगे^२ पंच ग्रहियारा ॥२॥

अर्थ—सिद्धोंकी निवास-भूमि, संख्या, अवगाहना, सीख्य और सिद्धत्वके हेतु-भूत भाव, सिद्धलोक प्रज्ञप्ति में ये पाँच अधिकार हैं ॥२॥

सिद्धोंका निवास क्षेत्र—

अट्टम-खिवीए उवरि, पण्णासदभहिय-सत्तय-सहस्सा ।
वंडारिणं गंतूरं, सिद्धाणं होवि आवासो ॥३॥

अर्थ—आठवीं (ईषत्प्राग्भार) पृथ्वीके ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धोंका आवास है ॥३॥

विशेषार्थ—अष्टम पृथ्वीसे ऊपर लोकके अन्तमें ४००० धनुष मोटा घनोदधिवातवलय, २००० धनुष मोटा घनवातवलय और १५७५ धनुष मोटा तनुवातवलय है । सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलयमें रहते हैं और इनकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ है । वातवलयों के प्रमाणमेंसे उत्कृष्ट अवगाहना घटा देने पर अष्टम पृथ्वीसे कितने योजन ऊपर जाकर सिद्ध स्थित हैं, यह प्रमाण प्राप्त हो जाता है । यथा—

$$७०५० \text{ धनुष} = (४००० \text{ ध०} + २००० \text{ ध०} - १५७५ \text{ ध०}) - ५२५ \text{ धनुष} ।$$

पणवो छप्पण-इगि-अड-णह-चउ-सग-चउ-ख-चदुर-अड-कमसो ।

अट्ट - हिदा जोयणया, सिद्धाण निवास - खिदिमाणं ॥४॥

$$= ८४०४७४०८१५६२५$$

निवास-क्षेत्रं गवं ॥१॥

अर्थ—सिद्धोंके निवास क्षेत्रका प्रमाण अंक क्रमसे आठसे भाजित पाँच, दो, छह, पाँच, एक, आठ, शून्य, चार, सात, चार, शून्य, चार और आठ इतने (८४०४७४०८१५६२५) योजन है ॥४॥

विशेषार्थ—सिद्धोंके निवास क्षेत्रका व्यास मनुष्य लोक सहस्र ४५ लाख योजन है और सिद्धप्रभुकी उत्कृष्ट अवगाहना अर्थात् ऊँचाई ५२५ धनुष प्रमाण है । इसका घनफल इसप्रकार है—

$$\text{सिद्धोंके निवास क्षेत्रकी परिधि} = \sqrt{४५ \text{ लाख}^2 \times १०} = १४२३०२४९ \text{ योजन} ।$$

$$\text{सिद्धक्षेत्रका घनफल} = (\text{परिधि } १४२३०२४९) \times (४५ \text{ लाख व्यासका चतुर्थांश}) \times (५२५ \text{ ऊँचाई}) ।$$

$$= ८४०४७४०८१५६२५ \text{ घन योजन} ।$$

$$\text{या} = १०५०५६२६११९५३६ \text{ घन योजन है ।}$$

नोट—उपर्युक्त प्रमाण घन योजनोंमें प्राप्त हुआ है किन्तु गायामें केवल योजन कहे गये हैं । यह विचारणीय है ।

निवास क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ॥१॥

सिद्धों की संख्या—

तीद-समयाण संखं, अड-समयबभहिय-मास-छक्क-हिदा ।
अड-हीण-छस्सया^१-हव-परिमाण-जुदा हवंति ते सिद्धा ॥५॥

अ । ५१२^२ ।
मा ६ । स ८ ।

संख्या गदा ॥ २ ॥

अर्थ—अतीत समयों की संख्या में छह मास और ८ समय का भाग देकर आठ कम छह सौ अर्थात् ५१२ से गुणा करने पर जो प्राप्त हो उतने [(अतीत समय ÷ ६ मास ८ समय) × ५१२] सिद्ध हैं ॥५॥

संख्या का कथन समाप्त हुआ ॥२॥

सिद्धों की अवगाहना—

पण-कदि-जुव-पंच-सया, ओगाहणया धणूणि^३ उवक्कस्से ।
आउट्टु - हत्थमेत्ता, सिद्धाण जहण्ण - ठाणम्मि ॥६॥

५२५ । ह ६ ।

अर्थ—इन सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना पाँच के वर्ग से युक्त पाँच सौ [(५ × ५) + ५०० = ५२५] धनुष है और जघन्य अवगाहना साठे तीन (३३) हाथ प्रमाण है ॥६॥

तणुवाद-बहल-संखं, पण-सय-रुवेहि ताणिदूण तवो ।
पण्णरस - सएहि भजिदे, उवक्कस्सोगाहणं होदि ॥७॥

१५७५ । ५०० । ५२५ ।^४
१५००

अर्थ—तनुवाद के बाहुल्य की संख्या (१५७५ घ०) को पाँच सौ (५००) रूपों से गुणा कर पन्द्रह सौ का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना [(१५७५ × ५००) ÷ १५००] अर्थात् ५२५ घ० उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण होता है ॥७॥

तणुवाद-बहल-संखं, पण-सय- रुवेहि ताणिदूण तवो ।
एव - सक्खेहि भजिदे, जहण्णमोगाहणं होदि ॥८॥

१. द. ब. क. ज. ठ. छस्सयावाद । २. द. ब. अ मा ५१२ ।

३. द. ब. क. ज. ठ. दणूणि । ४. द. ब. १५०० । १५७५ । ५०० । १ । ५२५ ।

$$\frac{१५७५ \times ५००}{९०००००} \left| \frac{३}{५} \right|$$

अर्थ—तनुवात के बाह्य की संख्या को पाँच सौ रूपों से गुणा करके नौ लाख का भाग देने पर जघन्य अवगाहनाका $[(१५७५ \times ५००) \div ९००००० = \frac{३}{५}]$ धनुष = ३३ हाथ] प्रमाण होता है ॥ ८ ॥

वीहत्तं बाहलं, चरिम-भवे जस्स जारिसं ठाणं ।
ततो ति-भाग-हीणं, ओगाहणं सव्व-सिद्धाणं ॥९॥

अर्थ—अन्तिम अवस्था में जिसका वैसा आकार, दीर्घता और बाह्य हो उससे तृतीय भागसे कम सब सिद्धों की अवगाहना होती है ॥९॥

लोयविणिच्छय-मंथे, लोयविभागम्मि सव्व-सिद्धाणं ।
ओगाहण-परिमाणं, भणिवं^१ किंचूण चरिम-वेह-समो ॥१०॥
पाठान्तरम् ।

अर्थ—लोकविनिश्चय ग्रन्थमें तथा लोगविभागमें सब सिद्धोंकी अवगाहनाका प्रमाण कुछ कम चरम शरीरके सदृश कहा है ॥१०॥

पाठान्तर ।

पण्णासुत्तर-ति-सया, उक्कस्सोगाहणं हवे वंछं ।
तिय-भणिव-सत्त-हत्था, जहण्ण - ओगाहणं ताणं ॥११॥
३५० । ह । ३ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—सिद्धोंकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन सौ पचास (३५०) धनुष और जघन्य अवगाहना तीनसे भाजित सात (३) हाथ प्रमाण है ॥११॥

पाठान्तर ।

विशेषार्थ—मोक्षगामी मनुष्यके अन्तिम शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष और जघन्य अवगाहना ३ या ३३ हाथ प्रमाण होती है । कोई आचार्य अन्तिम भव से $\frac{३}{५}$ भाग कम अर्थात् $(५२५ \times \frac{३}{५} =)$ ३५० धनुष उत्कृष्ट और $(३ \times \frac{३}{५} =)$ ३ या २३ हाथ प्रमाण जघन्य अवगाहना मानते हैं ।

तनुवात-पवन-बहले, दोहि गुणि णवेण भजिवम्मि ।

जं लद्धं सिद्धाणं, उक्कस्सोगाहणं ठाणं ॥१२॥

२२५० । १५७५ । ५०० । १ । एदेण ते-रासि^१-लद्धं ३ । १५७५ । ३५० ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—तनुवात पवनके बाह्यको दोसे गुणित कर नी का भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सिद्धोंकी उत्कृष्ट अवगाहनाका स्थान होता है ॥१२॥

विशेषार्थ—तनुवातवलयका बाह्य १५७५ धनुष प्रमाणांगुलकी अपेक्षा है और सिद्धों की उत्कृष्ट-जघन्य अवगाहना व्यवहारांगुल अपेक्षा है । तनुवातवलय की मोटाईको ५०० से गुणित करने पर (१५७५ × ५०० =) ७८७५०० व्यवहार धनुष प्राप्त होते हैं । सिद्ध परमेष्ठी उत्कृष्टता से तनुवात के एक खण्ड में विराजमान हैं । जबकि (३२१ × ३ =) ९६० धनुष कर १ खण्ड होता है, तब ७८७५०० धनुषों के कितने खण्ड होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{७८७५००}{९६०} =$) २२५० खण्ड हुए । ये २२५० खण्ड व्यवहार धनुष से हैं, इनके प्रमाण-धनुष बनाने के लिये इन्हें ५०० से भाजित करने पर ($\frac{२२५०}{५००} = ४.५$) या ३ प्रमाण धनुष (खण्ड) प्राप्त होते हैं ।

जबकि २२५० अर्थात् ३ खण्डों का १५७५ धनुष स्थान है तब १ खण्ड का कितना होगा ? इसप्रकार पुनः त्रैराशिक करने पर ($\frac{१५७५ \times ५}{३} =$) ३५० धनुषका सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना का स्थान प्राप्त हुआ । मूल संदृष्टि में यही सब प्रमाण दिया गया है ।

पाठान्तर ।

तनुवातस्स य बहले, छस्सय-पणत्तरोहि भजिवम्मि ।

जं लद्धं सिद्धाणं, जहण्ण - ओगाहणं होवि ॥१३॥

१३५०००० । १५७५ । २००० । १ । ते-रासिएण सिद्धं $\frac{१५७५}{३}$ । ३ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—तनुवात के बाह्य में छह सौ पचहत्तर (६७५) का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सिद्धों की जघन्य अवगाहना का स्थान होता है ॥१३॥

विशेषार्थ—गा० १२ के विशेषार्थानुसार यहाँ भी (१५७५ × ५०० =) ७८७५०० व्यवहार धनुष प्राप्त हुए । सिद्धोंकी जघन्य अवगाहना का माप हाथसे है और उनकी अवस्थितिके स्थानका माप धनुष है अतः जबकि ४ हाथका एक धनुष होता है तब ($\frac{४}{३} \times \frac{३}{३} =$) ३ हाथके कितने

धनुष होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $(\frac{1}{2} \times \frac{1}{2} =)$ $\frac{1}{4}$ धनुष प्राप्त हुए । जबकि $\frac{1}{4}$ धनुष का १ खण्ड होता है, तब ७८७५०० धनुषोंके कितने खण्ड होंगे ? इस त्रैराशिकसे $(\frac{1}{4} \times ७८७५०० \times \frac{1}{2}) = १२१००००$ खण्ड प्राप्त हुए । ये खण्ड व्यवहार धनुष से हैं, इनके प्रमाण धनुष और प्रमाण धनुषोंके प्रमाण हाथ बनानेके लिए इन्हें $(५०० \times ४ =)$ २००० से भाजित करनेपर $(\frac{१२१००००}{२००} =)$ ६०५ खण्ड प्राप्त हुए ।

जबकि ६०५ खण्डोंका १५७५ धनुष स्थान है, तब १ खण्डका कितना स्थान होगा ? इस त्रैराशिक से $(\frac{१५७५}{६०५} =)$ $\frac{3}{11}$ हाथका सिद्धोंकी जघन्य अवगाहना का स्थान प्राप्त हुआ ।

मूल संदृष्टिमें यही सब प्रमाण दर्शाया गया है ।

पाठान्तर ।

अवगवकस्सं मस्सिम-ओगाहण-सहिद-सिद्ध-जीवाओ ।

होति अणंताणंता, 'एवकेणोगाहिद-खेत्त-मज्झम्मि ॥१४॥

अर्थ—एक सिद्ध जीवसे अवगाहित क्षेत्रके भीतर जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना-वाले अनन्तानन्त सिद्ध जीव होते हैं ॥१४॥

माणुसलोय - पमाणे, संठिय-तणुवाव-उवरिमे भागे ।

सरिस सिरा सव्वाणं, हेट्ठिम-भागम्मि विसरिसा केई ॥१५॥

अर्थ—मनुष्यलोक प्रमाण स्थित तनुवातके उपरिम भागमें सब सिद्धोंके सिर सदृश होते हैं । अधस्तन भागमें कोई विसदृश होते हैं ॥१५॥

जावद्धम्म - दृव्वं, तावं गंतूण लोयसिहरम्मि ।

खेट्ठंति सव्व-सिद्धा, पुह पुह 'गयसिस्थ-मूस-गव्व-णिहा ॥१६॥

ओगाहणा गवा ॥३॥

अर्थ—जहाँ तक धर्मद्रव्य है वहाँ तक जाकर लोकशिखरपर सब सिद्ध पृथक्-पृथक् मोमसे रहित मूसक (सांचे) के अभ्यन्तर आकाशके सदृश स्थित हो जाते हैं ॥१६॥

अवगाहनाका कथन समाप्त हुआ ॥३॥

सिद्धोंका सुख—

णिरुयम-रुद्धा णिट्ठियकज्जा णिच्चिा णिरंजणा णिरुजा ।

णिम्मल-बोधा सिद्धा, णिरवज्जा णिवकला सगाधारा ॥१७॥

लोयालोय-विभागं, तस्मिद्विद्य सत्त्व-द्वय-पञ्चायं ।

तिय-काल-गवं सत्त्वं, जाणंति हु एक्क - समएण ॥१८॥

अर्थ—अनुपम स्वरूपसे संयुक्त, कृतकृत्य, नित्य, निरंजन, नीरोग, निर्वन्ध, निष्पाप, स्व-
आधार और निर्मलज्ञानसे युक्त सिद्ध परमेष्ठी लोक और अलोकके विभागको, लोक स्थित सर्व द्रव्यों
और उनकी त्रिकालवर्ती सब परियोंको एक ही समयमें जानते हैं ॥१७-१८॥

जाइ-जरा-मरणेहि, निम्मुक्का निम्मला अणवस्यरा ।

अवगद - वेवा सव्वे, अणंत - बोहा अणंत - सुहा ॥१९॥

किदकिच्च सत्त्वण्ह, सत्ताघादा सदा-सिधा सुद्धा ।

परमेद्धी परम - सुही, सत्त्वगया सत्त्व - दरिसीय ॥२०॥

अव्वावाहमणंतं, अक्षयमणुवममणिदियं सोव्वं ।

अप्पुट्टं भुजंति हु, सिद्धा सदा - सदा सव्वे ॥२१॥

सोव्वं समत्तं ॥२२॥

अर्थ—जन्म, जरा और मरणसे विनिर्मुक्त, निर्मल, अनक्षर (शब्दातीत), वेद से रहित,
अनन्तज्ञानी, अनन्तसुखी, कृतकृत्य, सर्वज्ञ, स्व-सत्तासे सब कर्मोंका घात करनेवाले, सदाशिव, शुद्ध,
परम पदमें स्थित, परम सुखी, सर्वगत, सर्वदर्शी, ऐसे सर्व सिद्ध अव्यावाध, अनन्त, अक्षय, अनुपम
और अतीन्द्रिय सुखका निरन्तर भोग करते हैं ॥१९-२१॥

इसप्रकार सुख प्ररूपण समाप्त हुआ ॥२२॥

सिद्धत्वके कारण—

जह चिर-संचिदमिधणमणलो पवणाहदो लहं वहइ ।

तह कस्मिधणमहियं, खणेण भाणाणलो वहइ ॥२३॥

अर्थ—जिसप्रकार चिर-सञ्चित ईंधनको पवनसे आहत अग्नि शीघ्र ही जला देती है,
उसीप्रकार ध्यानरूपी अग्नि बहुतभारी कर्मरूपी ईंधनको क्षण-मात्रमें जला देती है ॥२३॥

जो खविद'-मोह-कलुसो, विसय-विरसो मणो निव'भित्ता ।

समवट्टिदो सहावे, सो पावइ निवुद्धि सोव्वं ॥२४॥

अर्थ—जो दर्शनमोह और चारित्र्यमोहको नष्ट कर विषयोंसे विरक्त होता हुआ मनको रोककर (आत्म-) स्वभावमें स्थित होता है वह मोक्ष-सुखको प्राप्त करता है ॥२३॥

जस्स ण विज्जवि रागो, बोसो मोहो व जोग-परिकम्भो ।

तस्स सुहासुह - दहरा - उक्काणमओ जायदे अगणी ॥२४॥

अर्थ—जिसके राग, द्वेष, मोह और योग-परिकर्म (योग-परिणति) नहीं है उसके शुभाशुभ (पुण्य-पाप) को जलानेवाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है ॥२४॥

दंसण-णाण-समरगं, भाणं णो अण्ण - दव्व - संसत्तं ।

जायदि णिज्जर - हेदू, सभाव - सहिदस्स साहुस्स ॥२५॥

अर्थ—(शुद्ध) स्वभाव युक्त साधुका दर्शन-ज्ञानसे परिपूर्ण ध्यान निर्जराका कारण होता है, अन्य द्रव्योंसे संसक्त वह (ध्यान) निर्जराका कारण नहीं होता ॥२५॥

जो सव्व-संग-मुक्को, अणण्ण-मणो अप्पणो^१ सहावेण ।

जाणदि पस्सदि आदं, सो सग-चरियं चरदि जीवो ॥२६॥

अर्थ—जो (अन्तरङ्ग बहिरङ्ग) सर्व सङ्गसे रहित और अनन्यमत (एकाग्रचित्त) होता हुआ अपने चैतन्य स्वभावसे आत्माको जानता एवं देखता है, वह जीव आत्मीय चारित्र्यका आचरण करता है ॥२६॥

णाणम्मि भावणा खलु, कादव्वा दंसणे चरित्ते य ।

ते पुण आदा तिणिण वि, तम्हा कुण भावणं आदे ॥२७॥

अर्थ—ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यमें भावना करनी चाहिए । यद्यपि वे तीनों (दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य) आत्मस्वरूप हैं अतः आत्मामें ही भावना करो ॥२७॥

अहमेवको खलु सुद्धो, दंसण-णाणप्पणो^२ सवारुवो ।

ण वि अत्थि मज्झि किञ्चि वि, 'अण्णं परमाणुमेत्तं पि ॥२८॥

अर्थ—मैं निश्चयसे सदा एक, शुद्ध, दर्शन-ज्ञानात्मक और अरूपी हूँ । परमाणु मात्र (प्रमाण भी) अन्य कुछ मेरा नहीं है ॥२८॥

अत्थि मम कोइ मोहो, 'बुज्झो उवजोगमेवमहमेगो ।

इह भावणाहि जुत्तो, खवेइ दुट्ठु - कम्मणि ॥२९॥

१. व. ब. क. ज. ठ. अण्णो अप्पणा । २. द. व. क. ज. ठ. णाणप्पणा सवारुवो । ३. द. व. अण्णि ।

४. द. बुज्झो उवजोगमेवमेवमहमेगो, व. बुज्झो उवजोग..... ।

अर्थ—मोह मेरा कुछ भी नहीं है, एक ज्ञान दर्शनोपयोगरूप ही में जानने योग्य हूँ; ऐसी भावनासे युक्त जीव दुष्ट-कर्मोंको नष्ट करता है ॥२९॥

जाहं होमि परेसि, न मे परे संति^१ जाणमहमेवको ।

इदि जो भायवि भाणे, सो मुच्चइ अट्ठ - कम्मेहि ॥३०॥

अर्थ—न मैं पर पदार्थोंका हूँ और न पर पदार्थ मेरे हैं, मैं तो ज्ञान-स्वरूप अकेला ही हूँ; इसप्रकार जो ध्यानमें चिन्तन करता है वह आठ कर्मोंसे मुक्त होता है ॥३०॥

चित्त-विरामे धिरसंति, इंदिया इंदियासु धिरवेसुं ।

आइ - सहावप्पि रया, होवि पुढं तस्स निव्वारणं ॥३१॥

अर्थ—चित्तके शान्त होनेपर इन्द्रियाँ शान्त होती हैं और इन्द्रियोंके शान्त होनेपर आत्म-स्वभावमें रति होती है, फिर उसका स्पष्टतया निर्वाण होता है ॥३१॥

जाहं देहो न मणो, न चेव वाणी न कारणं तेसि ।

एवं खलु जो भाओ, सो पावइ सासयं ठाणं ॥३२॥

अर्थ—न मैं देह हूँ, न मन हूँ, न वाणी हूँ और न उनका कारण ही हूँ । इसप्रकार का जो भाव है (उसे भाने वाला) वह शाश्वत स्थानको प्राप्त करता है ॥३२॥

देहो व मणो वाणी, पोग्गल-दब्बं परोसि^२ णिद्धि^३ ।

पोग्गल - दब्बं^३ पि पुणो, पिणो परमाणु-दब्बाणं ॥३३॥

अर्थ—देहके सदृश मन और वाणी पुद्गल-द्रव्यात्मक पर हैं ऐसा कहा गया है । पुनः पुद्गल द्रव्य भी परमाणु-द्रव्योंका पिण्ड है ॥३३॥

जाहं पुग्गलमइओ, न वे मया पुग्गसा कदा पिण्डं ।

तम्हा हि न देहो हं, कत्ता वा तस्स देहस्स ॥३४॥

अर्थ—न मैं पुद्गलमय हूँ और न मैंने उन पुद्गलोंको पिण्ड (स्कन्ध) रूप किया है, इसलिए न मैं देह हूँ और न इस देहका कर्त्ता ही हूँ ॥३४॥

एवं जाणप्पाणं, वंसण - मूदं अदिवियमहत्थं ।

धुवममलमणालंबं, भावेमं अप्पयं सुद्धं ॥३५॥

अर्थ—इसप्रकार ज्ञानात्मक, दर्शनभूत, अतीन्द्रिय, महार्थ, नित्य, निर्मल और निरालम्ब शुद्ध आत्माका चिन्तन करना चाहिए ॥३५॥

णाहं होमि परेसि, ण मे परे संति णाणमहमेवको ।

इवि जो भायदि भाणे, सो अप्पाणं हवदि भावो ॥३६॥

अर्थ—न मैं पर पदार्थोंका हूँ और न पर पदार्थ मेरे हैं मैं तो ज्ञानमय अकेला हूँ, इस-प्रकार जो ध्यानमें आत्माका चिन्तन करता है वही ध्याता है ॥३६॥

जो एवं जाणित्ता, भावि परं अप्पयं विसुद्धप्पा ।

अणुवममपारमदिसय^१, सोक्खं पावेदि सो जीओ ॥३७॥

अर्थ—जो विशुद्ध आत्मा इसप्रकार जानकर उत्कृष्ट आत्माका ध्यान करता है वह जीव अनुपम, अपार और अतिशय सुख प्राप्त करता है ॥३७॥

णाहं होमि परेसि, मा मे परे णत्थि मज्झमिह किञ्चि ।

एवं खलु जो भावइ, सो पावइ सब्ब - कल्याणं ॥३८॥

अर्थ—न मैं पर पदार्थोंका हूँ और न पर पदार्थ मेरे हैं, यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है; जो इसप्रकार भावना भाता है वह सब कल्याण पाता है ॥३८॥

उद्धोध-मज्झ-लोए, ण मे परे णत्थि मज्झमिह किञ्चि ।

इह भावणाहि जुत्तो, सो पावइ अक्खयं सोक्खं ॥३९॥

अर्थ—यहाँ ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोकमें पर पदार्थ मेरे कुछ भी नहीं है, यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है । इसप्रकारकी भावनाओंसे युक्त वह जीव अक्षय-सुख पाता है ॥३९॥

मद-माण-माय-रहिबो, लोहेण विवज्जिबो य जो जीओ ।

णिम्मल - सहाव - जुत्तो, सो पावइ अक्खयं ठाणं ॥४०॥

अर्थ—जो जीव मद, मान एवं मायासे रहित; लोभसे वज्रित और निर्मल स्वभावसे युक्त होता है वह अक्षय स्थान को पाता है ॥४०॥

परमाणु-पमाणं वा, मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो ।

सो ण विजाणदि समयं-सगस्स सव्वागम-धरो वि ॥४१॥

अर्थ—जिसके परमाणु प्रमाण भी देहादिकमें राग है, वह समस्त आगमका धारी होकर भी अपने समय (आत्मा) को नहीं जानता है ॥४१॥

तम्हा^१ णिब्बुदि-कामो, रागं देहेसु कुणवु मा किंचि ।
देह - विभिण्णो अप्पा, भायव्वो इंदियादीदो ॥४२॥

अर्थ—इसलिए हे मोक्षाभिलाषी ! देहमें कुछ भी राग मत करो । (तुम्हारे द्वारा) देहसे भिन्न अतीन्द्रिय आत्माका ध्यान किया जाना चाहिए ॥४२॥

देहत्थो देहावो, किच्चूणो देह - वज्जिजओ सुद्धो ।
देहायारो अप्पा, भायव्वो इंदियातीदो ॥४३॥

अर्थ—देहमें स्थित, देहसे कुछ कम, देहसे रहित, शुद्ध, देहाकार और इन्द्रियातीत आत्मा का ध्यान करना चाहिए ॥४३॥

भाणे जदि णिय-आदा, णाणादो णावभासदे जस्स ।
भाणं होवि ण तं पुण, जाण पमादो हु मोह-मुक्छा वा ॥४४॥

अर्थ—जिस जीवके ध्यानमें यदि ज्ञानसे निज आत्माका प्रतिभास नहीं होता है तो फिर वह ध्यान नहीं है । उसे (तुम) प्रमाद, मोह अथवा मूर्च्छा हो जानो ॥४४॥

गयसित्थ-मूस-गढभायारो रयणत्तयादि-गुण-जुत्तो ।
णिय-आदा भायव्वो, खय - रहिदो जीव-घण-देसो ॥४५॥

अर्थ—मोमसे रहित मूसकके (अभ्यन्तर) आकाशके आकार, रत्नवयादि गुणोंसे युक्त, अविनश्वर और अखण्ड-प्रदेशी निज आत्माका ध्यान करना चाहिए ॥४५॥

जो आब-भाव-समिणं, णिच्चुव-जुत्तो मुणो^२ समाचरदि ।
सो सव्व - दुक्ख - मोक्खं^३, पावइ अचिरेण कालेण ॥४६॥

अर्थ—जो साधु नित्य उद्योगशील होकर इस आत्म-भावनाका आचरण करता है वह थोड़े समयमें ही सब दुःखोंसे छुटकारा पा लेता है ॥४६॥

१. य. तेमा, अ. तम्मा ।

२. द. क. ज. ठ. भायव्वजो ।

३. द. व. वण्णी ।

४. द. ज. ठ. मोक्खे, ब. क. मोक्खो ।

कम्मे णोकम्मस्मि य, अहमिवि अहयं च कम्म-णोकम्मं ।

जायदि सा खलु बुद्धी, सो हिडइ गरुव - संसारं ॥४७॥

अर्थ—कर्म और नोकर्ममें “मैं हूँ” तथा मैं कर्म-नोकर्मरूप हूँ; इसप्रकार जो बुद्धि होती है उससे यह प्राणी गहन संसारमें घूमता है ॥४७॥

जो खविद-मोह-कम्मो, विसय-विरत्तो मणो णिरुंभित्ता ।

समवट्ठिदो सहावे, सो मुच्चइ कम्म - णिगलेहि ॥४८॥

अर्थ—जो मोहकर्म (दशनमोह और चारित्र्यमोह) को नष्टकर विषयोंसे विरक्त होता हुआ मनको रोककर स्वभावमें स्थित होता है, वह कर्मरूपी साँकलोंसे छूट जाता है ॥४८॥

पयडिट्ठिवि-अणुभाग-प्पवेस-बंधेहि वज्जिअो अप्पा ।

सो हं इवि चित्तेअो, तत्थेव य कुणह थिर-भावं ॥४९॥

अर्थ—जो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रवेश बन्धसे रहित आत्मा है वही मैं हूँ, इसप्रकार चिन्तन करना चाहिये और उसमें ही स्थिरता करने चाहिये ॥४९॥

केवलणाण-सहाअो, केवलदंसण-सहाओ सुहमइयो ।

केवल-विरिय-सहाअो, सो हं इवि चितए एाणी ॥५०॥

अर्थ—जो केवलज्ञान एवं केवलदर्शन स्वभाव से युक्त, सुख-स्वरूप और केवल-वीर्य-स्वभाव है वही मैं हूँ, इसप्रकार ज्ञानी जीवको विचार करना चाहिए ॥५०॥

जो सठव-संग-मुक्को, भायवि अप्पाणमप्पणो' अप्पा ।

सो सठव दुक्ख-मोक्खं, पावइ अचिरेण कालेण ॥५१॥

अर्थ—सर्व सङ्ग (परिग्रह) से रहित जो जीव अपने आत्माका आत्माके द्वारा ध्यान करता है वह थोड़े ही समय में समस्त दुःखों से छुटकारा पा लेता है ॥५१॥

जो इच्छवि णिस्सरिवु', संसार-महण्णवस्स व'वस्स ।

सो एवं जाणित्ता, परिभायवि अप्पयं सुद्ध' ॥५२॥

अर्थ—जो गहरे संसाररूपी समुद्र से निकलने की इच्छा करता है वह इसप्रकार जानकर शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है ॥५२॥

पडिकमणं पडिसरणं, पडिहरणं धारणा न्णियत्ती य ।

णिक्कण-गरहण-सोही, लब्धंति न्णियाद-भावणए ॥५३॥

अर्थ—निजात्म-भावना से (जीव) प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, प्रतिहरण, धारणा, निवृत्ति, निन्दन, गर्हण और शुद्धिकी प्राप्त करते हैं ॥५३॥

जो निहव-मोह-गंठी, राय-पदोसे^१ हि खविय सामणो ।

होज्जं सम-सुह-दुक्खो^२, सो सोक्खं अक्खयं लहवि ॥५४॥

अर्थ—जो मोह रूप ग्रन्थिको नष्टकर श्रमण अवस्था में राय-द्वेष का क्षपण करता हुआ सुख-दुःख में समान हो जाता है, वह अक्षय सुखको प्राप्त करता है ॥५४॥

ण जहवि जो दु^३ ममत्तं, अहं ममेदं ति देह-दविणोसु^४ ।

सो मूढो अण्णाणो, बज्झवि दुट्ठ^५ - कम्मोहि ॥५५॥

अर्थ—जो देह में 'अहम्' (मैं पना) और धन में 'ममेदं' (यह मेरा) इस दो प्रकार के ममत्वको नहीं छोड़ता है, वह मूख अज्ञानी दुष्ट कर्मों से बँधता है ॥५५॥

पुण्णेण होइ विहओ, विहवेण मओ^६ मएण मइ-मोहो ।

मइ - मोहेण य पापं, तम्हा^७ पुण्णो विवज्जेज्जो ॥५६॥

अर्थ—पुण्य से वैभव, वैभव से मद, मद से मति-मोह और मति-मोह से पाप होता है, अतः पुण्यको छोड़ना चाहिए ॥५६॥

परमट्ठ-बाहिरा जे, ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।

संसार - गमण - हेदुं^८, विमोक्ख - हेदुं^९ अयाणंता^{१०} ॥५७॥

अर्थ—जो परमार्थ से बाहर हैं वे संसार-गमन और मोक्षके हेतु को न जानते हुए अज्ञान से पुण्यकी इच्छा करते हैं ॥५७॥

ण ह मणवि जो एवं^{११}, जत्थि विसेसो सि पुण्ण-पावाणं ।

हिडवि घोरमपारं, संसारं मोह - संछण्णो^{१२} ॥५८॥

अर्थ—पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, इसप्रकार जो नहीं मानता है, वह मोह से युक्त होता हुआ घोर एवं अपार संसार में भ्रमण करता है ॥५८॥

१. द. व. क. पदोसो । २. द. व. क. ज. ठ. दुक्खं । ३. व. दु । ४. व. माया । ५. द. व. क. तम्हा ।

६. द. व. क. ठ. अयाणंता । ७. द. व. क. ठ. एणं । ८. द. व. समोहच्छण्णो ।

मिच्छतं अण्णाणं, पावं पुण्णं चएवि तिविहेणं ।

सो णिण्णयेण जोई, भायव्वो अप्पयं सुद्धं ॥५६॥

अर्थ—मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप और पुण्य इनका (मन, वचन, काय) तीन प्रकार से त्याग करके योगी को निदचय से शुद्ध आत्मा का ध्यान करना चाहिये ॥५६॥

जीवो परिणमदि जवा, सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।

सुद्धेण तहा सुद्धो, हववि हु परिणाम - सम्भावो ॥५७॥

अर्थ—परिणाम-स्वभावरूप जीव जब शुभ अथवा अशुभ परिणाम से परिणमता है तब शुभ अथवा अशुभ (रूप) होता है और जब शुद्ध परिणाम से परिणमता है तब शुद्ध होता है ॥५७॥

धम्मैण परिणवप्पा, अप्पा जइ सुद्ध-संपजोग-जुवो ।

पावइ णिव्वाण - सुहं, सुहोवजुसो य सग्ग - सुहं ॥५८॥

अर्थ—धर्म से परिणत आत्मा यदि शुद्ध उपयोग से युक्त होता है तो निर्वाण-सुखको और शुभोपयोग से युक्त होता है तो स्वर्ग-सुखको प्राप्त करता है ॥५८॥

असुहोवएण आदा', कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो ।

दुक्ख-सहस्सेहि सदा, अभिधुदो भमदि अच्चंतं ॥५९॥

अर्थ—अशुभोदय से यह आत्मा कुमानुष, तिर्यञ्च और नारकी होकर सदा अचिन्त्य हजारों दुःखों से पीड़ित होकर संसार में अत्यन्त (दीर्घकाल तक) परिभ्रमण करता है ॥५९॥

अदिसयमाव - समेत्तं, विसयातीवं अणोवममणंतं ।

अट्ठक्खिण्णं च सुहं, सुद्ध-वजोगप्प - सिद्धानं ॥६०॥

अर्थ—शुद्धोपयोग से उत्पन्न सिद्धों को अतिशय, आत्मोत्थ, विषयातीत, अनुपम, अनन्त और विच्छेद रहित सुख प्राप्त होता है ॥६०॥

रागादि-संग-मुक्को, वहइ मुणो सेय-भाण-भाणेणं ।

कम्मिधण - संघायं, अणेय - भव - संचियं खिप्पं ॥६१॥

अर्थ—रागादि परिग्रह से रहित मुनि शुक्लध्यान नामक ध्यान से अनेक भवों में संचित किये हुए कर्मरूपी ईंधनके समूहको शीघ्र जला देता है ॥६१॥

जो संकल्प-वियप्पो, तं कम्मं कुणदि असुह-सुह-जणणं ।

अप्पा - सभाव - लद्धो, जाव ण हियये परिफुरइ ॥६५॥

अर्थ—जब तक हृदय में आत्म-स्वभाव की उपलब्धि प्रकाशमान नहीं होती तब तक जीव संकल्प-विकल्परूप शुभ-अशुभको उत्पन्न करने वाला कर्म करता है ॥६५॥

बंधाणं^१ च सहावं, विजाणिदुं अप्पणो सहावं च ।

बंधेसु जो ण रज्जदि, सो कम्म^२-विमोक्खणं कुणइ ॥६६॥

अर्थ—जो बन्धों के स्वभावको और आत्माके स्वभावको जानकर बन्धों में अनुरञ्जयमान नहीं होता है, वह कर्मोंका मोक्ष (क्षय) करता है ॥६६॥

जाव ण वेदि विसेसंतरं^३ तु आकासवाण दोण्हं पि ।

अण्णाणो ताव दु सो, विसयाविसु वट्टते जीवो ॥६७॥

अर्थ—जब तक जीव आत्मा और आस्रव इन दोनों के विशेष अन्तरको नहीं जानता तब तक वह अज्ञानी विषयादिकों में प्रवृत्त रहता है ॥६७॥

ए वि परिणमदि^४ ण गेण्हदि, उप्पज्जदि ण परदब्ब-पज्जाए ।

णाणी जाणंतो वि दु, पोगल - दब्बं^५ अणेय - विहं ॥६८॥

अर्थ—ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के पुद्गल द्रव्यको जानता हुआ भी परद्रव्य-पर्याय से त परिणमता है, न (उसे) ग्रहण करता है और न (उस रूप) उत्पन्न होता है ॥६८॥

जो परदब्बं तु सुहं, असुहं वा मण्णदे विमूढ-मई ।

सो मूढो अण्णाणी, बज्जदि कुट्टु - कम्मेहि ॥६९॥

एवं भावणा समाप्ता ॥५॥

अर्थ—जो मूढ़-मति पर द्रव्यको शुभ अथवा अशुभ मानता है, वह मूढ़ अज्ञानी दुष्ट आठ कर्मों से बंधता है ॥६९॥

इसप्रकार भावना समाप्त हुई ॥५॥

१. व. ब. क. ठ. बद्धाणं । २. द. व. क. ठ. रंम । ३. द. ब. क. विसेसंतरं । ४. द. व. परिणमदि ।

५. ब. दब्बमणेय विहं ।

कुन्धुनाथ जिनेन्द्र से वर्धमान जिनेन्द्र पर्यन्त आठ तीर्थंकरों को क्रमशः नमस्कार—

केवलणाण-विणेसं, चौत्तीसादिसय - भूदि - संपण्णं ।

अप्प - सरुवम्मि ठिबं, कुन्धु - जिणेसं णमंसामि ॥७०॥

अर्थ—जो केवलज्ञानरूप प्रकाश युक्त सूर्य हैं, चौत्तीस अतिशयरूप त्रिभूति से सम्पन्न हैं और आत्म-स्वरूप में स्थित हैं, उन कुन्धुजिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७०॥

संसारणव-महणं, तिहुवण-भविषाण सोक्ख-संजणणं ।

संदरिसिय - सयलत्थं^१, अर - जिणणाहं णमंसामि ॥७१॥

अर्थ—जो संसार-समुद्र का मथन करने वाले हैं और तीनों लोकों के भव्य जीवों को मोक्ष के उत्पादक हैं तथा जिन्होंने सकलपदार्थ दिखला दिये हैं, ऐसे अर जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७१॥

भव-जण-भोक्ख-जणणं, मुणिद-देविद-पणद-पय-कमलं ।

अप्प-सुहं संपत्तं, मल्लि - जिणेसं णमंसामि ॥७२॥

अर्थ—जो भव्य-जीवों को मोक्ष-प्रदान करने वाले हैं, जिनके चरण-कमलों में मुनीन्द्रों और देवेन्द्रों ने नमस्कार किया है, आत्म-सुख से सम्पन्न ऐसे मल्लिनाथ जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७२॥

णिट्ठ-वियघाड-कम्मं, केवल-णाणेण विट्ठ-सयलत्थं ।

णमह मुणिसुव्वएसं, भविषाणं सोक्ख - देसयरं ॥७३॥

अर्थ—जो धातिकर्मको नष्ट करके केवलज्ञानसे समस्त पदार्थों को देख चुके हैं और जो भव्य जीवों को सुखका उपदेश करने वाले हैं, ऐसे मुनिसुव्रतस्वामी को नमस्कार करो ॥७३॥

घण-घाड-कम्म-महणं, मुणिद-देविद-पणद-पय-कमलं ।

पणमह णमि-जिणणाहं, तिहुवण-भविषाण सोक्खयरं ॥७४॥

अर्थ—घन-धाति-कर्मोंका मथन करने वाले, मुनीन्द्र और देवेन्द्रों से नमस्कृत चरण-कमलों से संयुक्त, तथा तीनों लोकों के भव्य जीवोंको सुख-दायक, ऐसे नमि जिनेन्द्रको नमस्कार करो ॥७४॥

इंद-सय-णमिद-चरणं, आव-सरुवम्मि सव्व-काल-गदं ।

इंदिय - सोक्ख - विमुक्कं, णेमि - जिणेसं णमंसामि ॥७५॥

अर्थ—सो इन्द्रों से नमस्कृत चरणवाले, सर्वकाल आत्मस्वरूप में स्थित और इन्द्रिय-सुखसे रहित ऐसे नेमि जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥७५॥

कमठोपसर्ग-दलणं, तिहुयण-भविषाण मोक्ख-वेसयरं ।

पणमह पास - जिणेसं, घाइ - चउवकं विणासयरं ॥७६॥

अर्थ—कमठकृत उपसर्गको नष्ट करनेवाले, तीनों लोकों सम्बन्धी भव्योंके लिये मोक्षके उपदेशक और घाति-चतुष्टयके विनाशक पार्श्व-जिनेन्द्रको नमस्कार करो ॥७६॥

एस सुरासुर-भणुसिद्ध-बंदिदं धोइ-घाइ-कम्म-मलं ।

पणमामि बड्ढमाणं, तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥७७॥

अर्थ—जो इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्तियों से बंदिद, घातिकर्मरूपी मलसे रहित और धर्म-तीर्थ के कर्ता हैं उन वर्धमान तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७७॥

पंच-परमेष्ठी को नमस्कार—

✽ मालिनी छन्द ✽

जयउ जिणवरिदो, कम्म-बंधा अबड्ढो^१,

जयउ-जयउ सिद्धो सिद्धि-मगो समगो^२ ।

जयउ जय-अणंदो, सूरि-सत्थो पसत्थो,

जयउ जदि बड्ढोणं^३ उग-संघो अविग्घो ॥७८॥

अर्थ—कर्म बन्ध से मुक्त जिनेन्द्र जयवन्त होवें, समग्र सिद्धि-मार्ग को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान् जयवन्त होवें, जगत् को आनन्द देने वाला प्रशस्त सूरि-समूह जयवन्त होवे और विघ्नों से रहित साधुओं का प्रबल संघ लोकमें जयवन्त होवे ॥७८॥

भरतक्षेत्रगत चौबीस जिनोंको नमन—

पणमह चउवीस-जिणे, तित्थयरे तत्थ भरहखेत्तम्मि ।

सव्वाणं भव - दुक्खं, छिदंते णाण - परसेहि^४ ॥७९॥

अर्थ—जो ज्ञान-रूपी परशुसे सब जीवों के भव-दुःखको छेदते हैं, उन भरतक्षेत्र में उत्पन्न हुए चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करो ॥७९॥

१. द. व. अबंधो ।

२. द. व. क. ठ. समग्गा ।

३. व. व. क. ठ. बड्ढीणं । ४. द. व. क. ठ. परसेहि ।

ग्रन्थान्त मङ्गलाचरण—

पणमह जिणवर-वसहं, गणहर-वसहं तहेव गुणहर-वसहं ।
दुसह-परीसह-वसहं, जदिवसहं धम्म-सुत्त-पाठए^१-वसहं ॥८०॥

अर्थ—जिनवर वृषभको, गुणों में श्रेष्ठ गणधर वृषभ को तथा दुस्सह परीषहों को सहन करने वाले एवं धर्म-सूत्रके पाठकों में श्रेष्ठ यतिवृषभको नमस्कार करो ॥८०॥

ग्रन्थका प्रमाण एवं नाम आदि—

चुण्णिसकवं अट्ठं, करपवम - पमाण - किजत्तं ।
अट्ठ - सहस्स - पमाणं, तिलोयपण्णत्ति - णामाये ॥८१॥
मग्गप्पभावणट्ठं, पवयण-भत्ति-प्पचोदिदेण मया ।
भणिवं गंथ - पवरं, सोहंतु बहुस्सुवाहरिया ॥८२॥

एयमाहरिय-परंपरा-गय-तिलोयपण्णत्तीए सिद्धलोक-सकव-
णिरुवण-पण्णत्ती णाम

णवमो महाहियारो समत्तो ॥८३॥

अर्थ—आठ (हजार) पद प्रमाण चुण्णिसवरूप के तुल्य आठ हजार श्लोक प्रमाण यह त्रिलोक-प्रज्ञप्ति नामक महान ग्रंथ मार्ग-प्रभावना एवं अष्ट-प्रवचन भक्ति से प्रेरित होकर मेरे द्वारा कहा गया है । बहुश्रुत आचार्य (इसका) शोधन करें ॥८१-८२॥

इसप्रकार आचार्य परम्परा से प्राप्त हुई त्रिलोक प्रज्ञप्ति में सिद्धलोक-स्वरूप-निरूपण-प्रज्ञप्ति नामक नवा महाधिकार समाप्त हुआ ॥८३॥



प्रशस्तिः

[हिन्दी टीकाकर्त्री पू० आर्यिका विशुद्धमतीजी रचित]

✽ उपेन्द्रवज्रा ✽

अगाधसंसार महार्णवं यस्तपस्तरण्या सुतरां ततार ।
स पार्श्वनाथः प्रणतः सुरैर्धनिपातु मां मोहमहाब्धिगं द्राक् ॥१॥

✽ उपजातिः ✽

श्री मूलसंधे जगतोप्रसिद्धे स नन्दिसंधोऽजनि जैनमान्यः ।
यस्मिन् बलात्कारगणश्च जातो गच्छश्च सारस्वत संज्ञितोऽमृत ॥२॥
बभूव तस्मिन् सितकीर्तिराशिबिभासिताशेष दिगन्तरालः ।
श्री कुन्वकुन्वो यतिवृन्दबन्धो दिगम्बरः सूरिवरो वरीयान् ॥३॥
तत्रैव जाता यतयो महान्तः समन्तभद्रादिशुभाह्वयास्ते ।
श्रुतार्णवो ये र्मथितः सुबुद्ध्या सुमेरुणा मोघसुधा च लब्धा ॥४॥
तत्रैव वंशे गगनोपमाने सूर्याभिसूरिः स बभूव भू यः ।
'श्रीशान्तिसिन्धुर्गङ्गाभि युक्तः प्रचारितो येन शिवस्य पन्थाः ॥५॥
तस्याथ पट्टं मुनि बीरसिन्धुः^१ प्रगल्भबुद्धिः समवाप सूरिः ।
यस्यानुकम्पामृतपानतृप्ता बभूवुरआखिल साधुसङ्घाः ॥६॥
तस्यापि शिष्यः शिवसागरोऽमृतं कुशोऽपि कायादकुशः सुबुद्ध्या ।
शिष्या यदीयाः प्रथिताः पृथिव्यां यदीय कीर्ति धिततां प्रचक्रुः ॥७॥
तदीय पादाब्जरजः प्रसादाद् भवाद् विरक्ता मतिरत्र भंडमृत ।
प्रदाय दीक्षां भुवि पालिताहं पुत्रीष्व येनातिकृपां विधाय ॥८॥
अस्यैवसङ्घे श्रुतसागरालयो मुनीश्वरो मां कृपया समीक्ष्य ।
कृत प्रवेशां करणानुयोगे चकार, चारित्रविभूषितात्मा ॥९॥
अत्रैव सङ्घेऽजितसागरालयो गोर्वाणवाणो निपुणां विधाय ।
स्वाध्याययोग्यां श्रुतसन्ततीनां व्यधाद् दयाप्रेरितमानसो माम् ॥१०॥

दिवंगतेऽस्मिन् शिषसागरेऽत्र बभूव तत्पट्टपतिर्मनोज्ञः ।

श्रीधर्मसिन्धुर्यमिनां सुबन्धुः करोति यः संयमिनां सुरक्षाम् ॥११॥

* मनुष्टुप् *

तस्मिन् संघे मुनिर्जातः सन्मतिसागराभिधः ।

लोकज्ञतागुणोपेतो धर्मघातसत्यसंयुतः ॥१२॥

आयिका सद्ब्रतादाने तेर्नवाहं समोरिता ।

जाताऽशुद्धमतिर्भूत्वा विशुद्धमतिसंज्ञिता ॥१३॥

वीरमत्यादिमत्याद्या मातरस्तत्र सन्ततम् ।

सत्तपश्चरणोद्युक्ताः साधयन्त्यात्मनो हितम् ॥१४॥

रत्नचन्द्रो महाविद्वानागमज्ञानभूषितः ।

गृहाद् विरज्य संघेऽस्मिन् स्वाध्यायं विबधात्य सः ॥१५॥

एतस्य प्रेरणां प्राप्य ममापि रुचिरुद्यता ।

आगमाभ्यास सत्कार्ये स्वात्मकल्याणकारिणी ॥१६॥

गृहाद् विरज्य सन्नार्यः काश्चिदात्महितोद्यताः ।

साधयन्त्यात्मनः श्रेय एतत्संघस्य सन्निधौ ॥१७॥

इत्थं चतुर्विधः संघः पृथिव्यां प्रथितः परम् ।

विबधद् धर्ममाहात्म्यं कुर्वाणो जनताहितम् ॥१८॥

निर्ग्रन्था अपि सग्रन्था विश्रुता अपि सश्रुताः ।

कुर्वन्तु मङ्गलं मेऽत्र मुनीशास्ताम्रमाभ्यहम् ॥१९॥

राजस्थान महाप्रान्ते शौर्यविक्रमशालिनि ।

वीरप्रसविनी भूमिर्मेद पाटेति संज्ञिता ॥२०॥

वर्तते, तत्र कासार सन्तत्या परिसूषितम् ।

उदयपुर मित्याह्वं पत्तनं प्रथितं पृथु ॥२१॥

नाना जिनालयं रम्यं गृहिभिर्धर्मं वत्सलैः ।

संयुतं वर्तते यत्र जैनधर्मप्रभावना ॥२२॥

तत्रास्ति पार्श्वनाथस्य मन्दिरं महिमाम्बितम् ।

भूगर्भप्राप्तसद्विम्ब सहितं महितं बुधैः ॥२३॥

अष्टात्रिंशत्परियुक्तं सहस्रद्वयसंमिते^१ ।
 अब्दे विक्रमराज्यस्य वर्षायोग स्थितो मुनिः ॥२४॥
 सन्मतिसागराभिरुयः समाधि शिश्रिये मुदा ।
 दर्शनार्थं गतां मां स अते स्नेह पुरस्सरम् ॥२५॥
 वत्से ! त्रिलोकसारस्ये टीका दृष्टा त्वया कृता ।
 तथा सिद्धान्त सारस्य टीकापि पठिता मया ॥२६॥
 अथ तिलोपपण्णत्तेरपि टीकां करोत्व्वरम् ।
 गणितग्रन्थि संदर्भ - मोचने कुशलास्ति ते ॥२७॥
 प्रज्ञा परीक्षितं त्वेतत्प्राज्ञप्राग्रहरे^२ रपि ।
 आशीर्मे विश्रुते तुभ्यं दीर्घायुस्त्वंभवेरिह ॥२८॥
 अन्तिमा वर्तते वेत्ता मदीयस्यायुषस्ततः ।
 टीकां युष्मत्कृतां नाहं दृष्टुं शक्यामि जीवने ॥२९॥
 आशिषा कार्यसाफल्यं कामये तव साम्प्रतम् ।
 सम्बलं भवदाशीर्मे भवताद् बलदायकम् ॥३०॥
 इत्युक्त्वा हि तदादेशः शिरसा स्वीकृतो मया ।
 वत्सा शिषं शुभां मह्यं करुणापूर्णमानसः ॥३१॥
 आरुरोह दिवं सोऽयं सन्मतिसागरो गुरुः ।
 दृष्ट वियोग संजात - शोके मे प्रशमं गते ॥३२॥
 टीका तिलोपपण्णस्याः प्रारब्धा शुभवासरे ।
 आग्रहायणमासस्य बहुलैकादशी तिथौ ॥३३॥
 उदिते हस्तनक्षत्रे दिवसे रवि संज्ञिते ।
 कर्मानलनभोनेत्र मिते विक्रमवत्सरे^३ ॥३४॥
 नत्वा पार्श्वजिनं मूर्ध्ना ध्यायं ध्यायं च सन्मतिसम् ।
 टीकां तिलोपपण्णत्ते निर्मातुं तत्परा भवम् ॥३५॥
 टीकायाः प्रचुरो भागो लिखितोऽह्युदये पुरे ।
 रम्ये सलुम्बरे जाता शोभिते जिन मन्दिरैः ॥३६॥

माघ मासस्य शुक्लायां पञ्चम्यां गुरु वासरे ।
 नेत्राब्धिगगनवृन्दप्रमिते विक्रमाब्दके ॥३८॥
 पूर्तिरस्याः समापन्ना टीकाया विदुषा मुदे ।
 सेषा टीका चिरंजोयान्मोहध्वान्त विनाशिनी ॥३९॥

✽ आर्या ✽

यतिवृषभाचार्यकृतस्तिलोपपण्णत्तिसंज्ञितो ग्रन्थः ।
 अति गूढं गणितयुक्तस्त्रिलोक संवर्णनो ह्यस्ति ॥४०॥
 एतस्य वर्णने यास्त्रट्यो जाता मदीय संमोहात् ।
 क्षन्तव्यास्ता विबुधैरागमसरिवीशपारमै नियतम् ॥४१॥

✽ उपजातिः ✽

असौ प्रयासो मम तुच्छ बुद्धेर्हस्यास्पदं स्यान्नियतं बुधानाम् ।
 तथापि तावत्तनुबुद्धिभाजां कृते प्रयासः सफलो मम स्यात् ॥४२॥

✽ पुष्पिताग्रा ✽

यतिवृषभमुनीन्द्र निमित्तेयं कृतिरिह भव्यमनः प्रभोदभर्त्री ।
 रविशशि युगलं विभाति यावद् विलसतु तावद्विह क्षितौ समन्तात् ॥४४॥

✽ उपजातिः ✽

धुनोति शास्त्रं तिमिरं जनानां मनोगतं सूर्यशतेरभेद्यम् ।
 संरक्षणीयं विबुधैस्तदेतन् न्यासीकृतं पूर्वजनैश्च हस्ते ॥४५॥
 तनोति बोधं विधुनोति मोहं धिनोति चेतः सुधियां सुशास्त्रम् ।
 पीयूषतुल्यं जिनभाषितं तत् सदैव यानात्परिरक्षणीयम् ॥४६॥

✽ अनुष्टुप् ✽

यस्या शिषा समारब्धा टीकेयं पूर्तिमागता ।
 स्वर्गस्थं सन्मतेर्दिव्य मात्मानं तं नमाम्यहम् ॥४७॥



गाथानुक्रमणिका



गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
अक्षलियणाणदंसण	७	१	अट्टाण वि पत्तेवकं	६	६८
अग्गमहिंसीओ अट्ट य	८	३८४	अट्टारस जोयणाया	७	४६२
अग्गमहिंसीओ अट्टं	८	३८३	अट्टारस भागसया	७	४०८
अच्चुत्त इत्थं उत्तर दिसाए	८	३४२	अट्टारसभागसया	७	४०६
अच्चुत्तणामे पटले	८	४०६	अट्टारसलक्खाणि	८	४७
अट्ट अणुदिसणामे	८	१६७	अट्टारस जेव साया	७	४२२
अट्टल्लि अट्टपंचा	७	३८९	अट्टारसुत्तरसदं	७	४५८
अट्टचउच्छक्कएक्का	७	२५१	अट्टारसुत्तरसयं	७	१९८
अट्टचउदुग सहस्सा	८	३१०	अट्टावणसहस्सा	७	३१०
अट्टचउदुतितिसत्ता	७	१२	अट्टावणसहस्सा	७	३५५
अट्ट चिय लक्खाणि	७	६०५	अट्टावणसहस्सा	७	३७३
अट्ट ध तिअट्ट पंचा	७	३१५	अट्टावणसहस्सा	७	४०१
अट्टण्णव उवमाणा	८	५०२	अट्टावणा दुसथा	८	५८
अट्टत्ताल सहस्सा	७	६५२	अट्टावीसं लक्खा	७	६०६
अट्टत्ताल सहस्सा	७	३७०	अट्टावीसं लक्खा	८	४३
अट्टत्तालं लक्खा	७	६०७	अट्टासट्ठित्तिसया	७	५९५
अट्टत्तीसं लक्खं	८	२४५	अट्टासट्ठि सहस्सा	७	३०१
अट्टत्तीस सहस्सा	७	५८५	अट्टासट्ठि सहस्सा	७	४०३
अट्टदुणवेक्क अट्टा	७	३२०	अट्टासीदिग्गहाणं	७	४५६
अट्टपणतिदयसत्ता	७	३३५	अट्टासीदिसहस्सा	८	२२५
अट्टमसिदीए उवरि	६	३	अट्टासीदी अघिया	७	१६०
अट्टरसमुत्ताणि	७	२९०	अट्टासीदी लक्खा	७	६१३
अट्टसगससएक्का	७	३३६	अट्टासीदी लक्खा	८	२४१
अट्टसयजोयणाणि	७	१०४	अट्टुत्तरमेवकसमं	८	१९६
अट्टसया अट्टतीसा	८	७६	अट्ठेक्क एवचउक्का	७	२४८
अट्टसहस्सा दुसथा	८	३८६	अट्टजोयण उविस्सो	८	४१५
अट्टं चिय लक्खाणि	८	७०	अट्टतीसलक्खजोयण	८	२९
अट्टं चिय लक्खाणि	८	७१	अट्टलक्खहीणइच्छिय	५	२५३
			अट्टसट्ठी सेट्ठियया	८	१६६

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
अद्वाइजं पल्ला	८	५१६
अणुलदिसाए लंघिय	७	२०६
अणुवरदमपमत्तो	८	६७३
अणुपणा अ पमाणय	६	८१
अणुदिसाविदिसासु	८	१२४
अदिरेकस्स पमाणं	७	१२६
अदिरेकस्स पमाणं	७	४७९
अदिरेकस्स पमाणं	७	४८५
अदिरेकस्स पमाणं	७	१८४
अदिसयमादसमुत्थं	६	६३
अद्दुदमसरणपट्टदि	८	६६६
अधहेट्ठिमगेवञ्जे	८	१७६
अहिमपमाणमंसा	७	४८१
अभमंतर परिसाए	५	२२१
अभमंतर परिसाए	८	२२८
अभमंतर परिसाए	८	२३१
अभमंतरभागादो	५	२१
अभमंतर भागेलु	५	१३९
अभमंतर राजीदो	८	६३४
अभमंतर बीहीदो	७	१८३
॥ ॥	७	२६६
अभिजिस्स चंद जोगो	७	५२४
अभिजिस्स छस्सयाणि	७	४७४
अभिजी छप्प मुहुत्ते	७	५१६
अभिजीसवणघणिट्ठा	७	२८
अभिधोमारां अहिबद्ध	८	२७७
अभिसेयसभा संगोथ	८	४५७
अयणाणि य रविससिणी	७	५००
अरुणवरणामदीपो	५	१७
अरुणवरदीववाहिर	८	६२०
अरुणवरदीववाहिर	८	६३२
अरुणवरवारिरासि	५	५७
अवरा ओहिधरिती	६	९०
अवराओ जेट्ठहा	७	४७२
अवर्ककस्सं मज्झिम	९	१४

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
अवरे वि सुरा तेसि	८	६९६
अवसप्पिणि ए एवं	७	५५३
अवसेसकप्पजुगसे	८	७१७
अवसेसा राक्खंता	७	५२२
अवसेसा राक्खंता	७	५२६
अवसेसाण गहारां	७	१०१
अव्वावाह सरिच्छा	८	६५०
अव्वावाहारिट्ठा	८	६४९
अव्वावाहमरांत	६	२१
असिमुसलकण्णयतोमर	८	२५७
असुहोदण आवा	६	६२
अह चुलसीदो पल्ल	६	८६
अह माणिपुण्णसेल	६	४२
अहमेक्को खलु मुद्धो	६	२८
अहवा आणदजुमले	८	१८५
अहवा आदिममज्झिम	५	२४५
अहवा त्तियुणियमज्झिम	५	२४६
अहवा वंदपमाणं	६	१०
अहवा रासहराखिबं	७	२१५
अकं अकपहं मणि	५	१२३
अंजणपट्टवी सत्त य	८	१३९
अंतिमवंदपमाणं	५	२५६
अंतिमविकसंभद्धं	५	२६६
आ		
आइच्चहंदयस्स य	८	९९
आइच्चहंदयस्स य	८	१२३
आ ईसाणं कप्प	८	५८८
आ ईसाणं देवा	८	७०३
आउगबंधणभावं	७	४
आउवबंधणकाले	५	२६३
आउवबंधण काले	८	५६८
आउसबंधणभावं	६	१०
आऊणि आहारो	६	
आऊ बंधणभावं	७	
आऊबंधणभावो	६	

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
आगच्छिय रां दीसर	५	६६	इगिकोडी छलकबा	८	२३८
आणद आरणसामा	८	१४६	इगितिहुतिपंच कमसो	७	३१४
आणदणामे पडले	८	५०६	इगितीसत्तवउवुगं	८	३९
आणदपहुद्विजउकके	८	२०१	इगितीसत्तवउवुगं	८	१५९
आणदपहुदीछककं	८	१४५	इगितीसं लकखारिण	८	१६६
आणदपाणद आरण	८	१३४	इगिदालुतरसगसय	८	७३
आणदपाणद आरण	८	१९०	इगितीसं लकखारिण	८	५२
" "	८	२०५	इगिसट्ठी महिव सयं	८	३६६
" "	८	३४०	इगिसट्ठी अहिण	८	७
" "	८	३८८	इच्छतो रविबिबं	७	२४१
" "	८	७०६	इच्छिद परिहिपमाणं	७	३६४
आणदपाणदइंदे	८	२२२	इच्छियजलणिहिहं	५	२५२
" "	८	४४३	इच्छियदीउवहीए	५	२७०
आणदपाणदकपे	८	१८४	इच्छियदीबुवहीणं	५	२४७
आदर आणदरकखा	५	३८	" "	५	२४८
आदिमचउकपेसुं	८	६२२	" "	५	२५०
आदिमदो जुगलेसुं	८	३२१	इच्छिय दीबु वहीदो	५	२५१
आदिमदो जुगलेसुं	८	३२६	इच्छियदीवे रुंदं	५	२५५
आदिमपरिहि तिगुणिय	७	४३२	इच्छिय परिरयरसि	७	३८०
आदिमपहाडु बाहिर	७	३६१	" "	७	३६८
आदिमपायारादो	८	४२४	इच्छियपरिहिपमाणं	७	२७०
आदिमपासादस्त य	५	२१४	इच्छिमवातं दुगुणं	५	२७१
आदिमपासादादो	५	२०१	इदुं परिरय रासि	७	२९६
आदिमसूइस्तखं	५	२४६	इदुं परिरयरसि	७	३१२
आदी जंबूदीओ	५	११	" "	७	३२८
आदी लवणसमुद्रो	५	१२	इदोवहिविक्खंभे	५	२६१
आभरणा पुष्पावर	८	४०७	इय एवकेनककलाए	७	२१२
आयामे मुह सोहिय	५	३२२	इय किपुस्तणिवा	६	३७
आरणइंदवदविखण	८	३५१	इय जम्मणमरणण	८	५५३
आरणदुगपरियंतं	८	५३५	इय पूजं कादुणं	८	६१३
आरुडो वरतुरयं	५	८७	इय वासररत्तीओ	७	२९२
आरुडो वरमोरं	५	९७	इय संखाणामाणि	८	२९९
आसाळ पुष्पामीए	७	५३३	इलणामा सुरदेवी	५	१५५
आहारो जस्तासो	७	३	इह खेत्तो वेरणं	८	६६६
" "	७	६२१			
" "	८	३			

माथा	महाधिकार	माथा सं०	माथा	महाधिकार	माथा सं०
इंदपडिद समाणय	६	८४	उडुसेलीवड्ड	८	१०१
इंदपडिदा दीणं	८	३०५	उडुकोधमज्झलोए	६	३६
इंदपपहाणपासाद	८	३६६	अणताललक्खजोयण	८	२८
इंदपपहुदिचड्डहं	८	५५७	उणतीसं तिणिसया	८	२०२
इंदप्पासादानं	८	४१६	उणवणजुदेककसयं	७	१५२
इंदय सदग्गयार	८	१४४	उणवणसहस्सा एण	७	५६०
इंदयसेलीवड्ड	८	११२	उणवणसहस्सा यड	८	१७४
इंदसवणमिदचलणं	६	१०३	उणवण्णा पंचसया	७	१६६
इंदसयणमिदचलणं	७	६२४	उणवीसउत्तराणि	८	१८३
इंददाणं अट्ठाणं	६	७५	उणवीससहस्साणि	८	६५३
इंददाणं चिण्हाणि	८	३९३	उणसट्ठिजुदेककसयं	७	२६२
इंददाणं परिवारा	८	४५५	उणसट्ठिसया इगित्तीस	८	१७५
ईसाणदिगिदाणं	८	५४०	उत्तरकुरुमणुवाणं	८	६
ईसाणम्मि विमाणा	८	३३७	उत्तरदक्खिणदीहा	८	६२८
ईसाणलंतवच्चुद	८	५८६	उत्तरदक्खिणभाए	८	६७७
ईसाणादो सेसय	८	५१६	उत्तरदिमाए रिट्ठा	८	६४२
ईसाणिददिगिदे	८	५१८	उत्तरमहप्पहक्खजा	८	६६१
ईसोमच्छरभावं	८	५७२	उत्तरमूलगुणेषुं	५	५७५
उक्कस्साउपमाणां	८	४९७	उत्ताणभवलघतो	८	६८०
उक्कस्साऊ पत्तं	६	८३	उत्ताणावट्ठिदगोलम	७	३७
उक्कस्से रुक्खवं	६	६५	उत्ताणावट्ठिदगोलम	७	६६
उच्छेहजोयणेणं	५	१८२	उदयस्स पंचमंसा	८	४६०
उच्छेहदसमभाणे	८	४२०	उदयंतकुमणिमंजल	८	२४८
उच्छेहपहुदीहि	५	१५१	उद्धाओ दक्खिणाए	७	४६३
उडुइ दिवपुक्खादी	८	९०	उण्णणसुरविमाणे	८	५६३
उडुणामे पत्तेक्कं	८	८३	उण्णसी तिरियाणं	५	२६५
उडुणामे सेडिगमा	८	८४	उम्मम्मसंठियाणं	९	१
उडुपहसुक्कस्साऊ	८	४६७	उल्लसिदविक्खममाओ	५	२२७
उडुपहुउडुमज्झिमउडु	८	८७	उवरिमतलविवल्लंभा	७	६५
उडुपहुदिइंदयाणं	८	५१३	उवरिमतलविवल्लंभो	७	९१
उडुपहुदिएककीसं	८	१३७	उवरिमतलवित्थारो	७	१०६
उडुविमलचंदणामा	८	१२	उवरिमतलाण रुंद	७	८५

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
उवरिम्मि इदंयाणं	८	२०८
उवरिम्मि णिसहगिरिणो	७	४३५
उवरिम्मि रणीमगिरिणो	७	४३६
" "	७	४५०
उवरि उवरि वसंते	६	८२
उवरि कुण्डलगिरिणो	५	१२०
उववणपोक्खरणीहि	७	५४
उववादमंदिराहं	७	५२
उववादसभा विविहा	८	४५६
उवहिउवमाणजीवी	८	५५४
" "	८	७२१
सवही सयंभुरमणो	५	२२
उस्तासस्तुठारस	५	२८८
ऊणस्स य परिमाणं	८	१३०
एकचउक्कट्टंजण	५	७०
एकचउक्कट्टिच्छका	७	३८१
एकचउदंठाणदुमा	७	५७०
एकट्ठिठयभागकदे	७	३६
एकट्ठी माग कदे	७	६८
एकणवपंचतिपसत्त	७	२५३
एकत्तालसहस्ता	७	३५०
" "	७	६६८
" "	७	६१०
एकत्तालं लक्खं	८	२५
एकत्तालेवकसयं	७	२६१
एकत्तीसमुहत्ता	७	२१३
एकत्तीससहस्ता	७	१२३
" "	७	२२२
" "	७	२४६
" "	८	६५५
एकदुगसत्तएके	८	६२१
एकपलिदोवमाऊ	५	५१
" "	५	१२६
" "	५	१३४

ऊ

ए

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
एकपलिदोवमाऊ	८	७२०
एकपभहिया णउसी	८	१५४
एककरससया इगिबीस	८	१६८
एककरससहस्ताणि	७	६१२
एकसट्ठीए गुणिदा	७	१२२
एकसयणउत्तिदी	८	३६६
एकसयं उणवार्त्तं	७	६०६
एकसया तेसट्ठी	५	५३
एकसहस्सपमाणं	८	२३३
एकं छच्चउवट्ठा	७	३८६
एकं जोयणलक्खं	७	१५०
" "	७	१५३
" "	७	१५४
" "	७	१५५
" चेत य लक्खं	७	१८०
" जोयण लक्खं	७	२४०
" चेतयलक्खं	७	२६७
" "	८	८१
" "	८	४४५
एकं लक्खं चउसय	७	१५६
एकं लक्खं गयजुद	७	३६०
" "	७	३७६
एकं लक्खं पण्णा	७	२३६
एकं कोडी एकं	८	२५९
एकदिदुत्तरियं	७	५२६
एकारसमो कुण्डलगामो	५	११७
एकारस लक्खणि	८	६६
" "	८	१७१
एकारसुत्तरसयं	८	१५१
एकाक्खणसहस्ता	७	३५३
" "	७	३७१
एकेवकइंदयस्स य	८	११
एकेवक उत्तरिदे	८	३१८
एकेवककमलपंथे	८	२८२
एकेवककिण्हुराहं	८	६२६

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
एक्केक्कचारिदेंतां	७	५५६	एवाइ जांयणाई	८	३९८
" "	७	५७७	एदाए बहुमज्जे	८	६७८
" " खरी	७	५७८	एदाओ सव्वाओ	७	८४
एक्केक्क दक्खिणिदे	८	३०६	एदाण चउविहाणं	८	७२४
एक्केक्क परल वाहरण	८	५२५	एदासा मंदिराणं	७	७२
एक्केक्कमयंकारणं	७	३१	एदाणं कुडाणं	६	१८
एक्केक्कमुहे चंचल	८	२८०	" "	७	५०
एक्केक्कम्मि विसाणे	८	२८१	" "	७	७४
एक्केक्कससंकारणं	७	२५	एदाणं परिहीओ	७	४०
एक्केक्कसिद्धे जणु	६	७०	" "	७	६८
एक्केक्काए तीए	८	२८४	एदाणं बत्तीसं	८	२७९
एक्केक्काए दिसाए	५	१८५	एदाणं विच्चासे	८	११०
एक्केक्काए पुरीए	७	८६	" "	८	४२७
एक्केक्का चेसतरु	८	४३४	" "	८	४२६
एक्केक्का जिणकुडा	५	१४०	" "	८	४३१
एक्केक्का पडिइदा	८	२१८	एदाणं वित्थारा	८	३७६
एक्केक्के पासादा	५	७९	एदाणं वेदीणं	५	१५९
एक्केक्को पडिइंदो	६	६६	एदाणं सेढीओ	८	३५४
एक्कोणतीसलपळा	८	४२	एदाणि अंतराणि	७	५६४
एक्कोणवीसलपळा	८	५५	एदाणि तिभिराणं	७	४१५
एक्कोणवीसवारिहि	८	५०७	एदाणि परुलाई	८	४६६
एत्तिथमेसापमाणं	७	५८२	एदाणि रिक्खाणि	७	४६४
एत्तिथमेसाडु परं	७	४४९	एदा सता भणीया	८	२६८
एत्तो विवायराणं	७	४२६	एदि मघा मउभण्णे	७	४६५
एत्तो पासादाणं	५	१९३	एदे उक्कस्साऊ	५	२८६
एत्तो वासरपहुणो	७	२६३	एदे कुलदेवा इव	६	१७
एदम्मि तमिस्से दे	८	६३६	एदे छप्पासादा	५	३०७
एदस्स चउदिसासुं	५	१९२	एदेण गुणिदसंखेज्ज	७	२४
" "	८	६८२	एदे तिगुणिय भजिवं	७	४२०
एवं अंतरमाणं	७	५८४	एदे वि षट्ठ कुडा	५	१५७
" "	७	५८६	एदे सत्ताणीया	८	२३६
" "	७	५८८	एदे सहाव जादा	८	५६७
एवं मादवतिमिर	७	४२१	एदेसु झूडेसुं	५	१२५
एवं चक्खुणातो	७	४३३	एदेसु दिग्गिहेसुं	८	५४१
एवं होदि पमाणं	७	३११	एदेसु दिग्गजिदा	५	१७०
			एदेसु दिसाकणा	५	१४८

गाथा	महाशिकार	गाथा सं०
एदेसु बैतरिदा	६	६७
एदेसु' चेत्तदुमा	५	२३२
एदेसु' णट्टसभा	७	४५
एदे सोलस कूडा	५	१२४
एदेहि गुण्णिदसंखेज्ज	७	१३
" "	७	३०
एयक्खवियलसपला	५	२८०
एयट्ठतिण्णिसुण्णं	७	५१२
एयं च सपसहस्सा	७	५०७
एरावणमारुढो	५	८४
एरावदम्म उदमो	७	४४३
एवं चउस्विहेसुं	८	१०८
एवं चउसु विसासुं	८	९८
एवं चेव यतिगुणं	७	५०५
एवं चंदावीणं	८	८६
एवं जेत्तियमेत्ता	५	११६
एवं णाणप्पाणं	६	३५
एवं दक्खिणपच्छिम	५	७५
एवं पइण्णिदाणं	८	३५७
एवं पुक्कुप्पणे	७	२६३
एवं बारसकप्पा	८	१२१
एवं मित्तिवंतं	८	१०२
एवं विह परिणामा	८	५६६
एवं विह परिवारा	६	७७
एवं विह रुवाणि	६	२०
एवं सत्तविहाणं	८	२७२
एवं सव्वपहेसुं	७	४१७
" "	७	४५३
एवं सेसपहेसुं	७	३९६
एस सुरासुर मणुसिद	६	७७
एसो उक्कस्साऊ	८	४६३
घो		
ओगाहणं तु अवरं	५	३१७
क		
कणयद्विभूलववरि	८	१२६

गाथा	महाशिकार	गाथा सं०
कणयद्विभूलववरि	८	८
कणयमया कलिहमया	५	२३७
कणयं कंचणकुडं	८	२०९
कत्तियमासे किण्हे	५	१४५
कत्तियमासे पुण्णिमि	७	५४७
कत्तियमासे सुक्क	७	५४३
कत्तियमासे सुक्किल	७	५४९
कप्पतरु मउडेसुं	७	५४५
कप्पं पडि पंचादी	८	४५२
कप्पा कप्पातीदं	८	५३३
" कप्पातीदा	८	११४
कप्पाणं सीमाघो	८	६९८
कप्पातीद सुराणं	८	१३६
कप्पातीदा पडला	८	५५०
कप्पामराण शिथगिय	८	१३५
कप्पेसुं संखेज्जो	८	७११
कमठोवसग्गवलण	८	१८६
कमसो असीय चंपय	६	७६
कमसो पदाहिण्णं	६	२८
कम्मकलंकविमुक्कं	५	१०३
कम्मकलवणणिमित्तं	८	१
कम्भे णोक्कम्मम्मि य	६	१६
करिहयपाइक्क तहा	९	४७
कंचणपायाराणं	६	७१
कंचण पासाणेसुं	५	१८४
कंदप्पराजराजाधिराज	८	५७३
कादूण दहे णहाणं	८	२६०
कालस्सामलवण्णा	८	६००
कालोदमोवहीदो	६	५६
किण्हा य मेघराई	५	२६९
किण्हे तथोदसीए	८	३०८
कित्तियरोहिणिमिणसिर	७	५३६
किदकिच्चा सव्वण्णू	७	२६
किचूणअम्मूहणा	९	२०
	७	४४६

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
किंयुगमेवक पक्खं	८	५६१	गच्छदि मुहुत्तमेवकै	७	१८१
किणरकिंपुरुसमहोरगा	६	२५	" "	७	२६८
किणरकिंपुरुसादिय	६	२७	गच्छं चयेण भुणितं	८	१६०
किणरदेवा सत्थे	६	५५	गणहरवेवादीणं	८	२६५
किणरपहुदिषड्ढकं	६	३२	गणिया महत्तरीणं	८	४३८
किणरपहुदी वेंतर	६	५८	गम्भावयारपहुदिसु	८	६१८
कीरविहंगारुढो	५	६१	गम्भुद्धभवजीवाणं	५	२६६
कुब्धंते अभिसेयं	५	१०४	गयणेवक मद्धसत्ता	७	३३३
कुसवरणामो दीघो	५	२०	गयसित्थमूसगम्भा	९	४५
कुं कुमकप्पूरेहि	५	१०५	गरुडविमाराणुढो	५	९३
कुंजरतुरयादीणं	६	७२	गंतूणं सीदिजुद्धं	७	३६
कुंडलवरो त्ति दीघो	५	१८	गीदरदी गीदरसा	६	४१
कुंवेहुसुम्भरेहि	५	१०६	गुणजीवा पञ्जत्ती	८	६८६
कुंमंडववखरवसस	६	४८	गुणठाणादिसरुद्धं	८	४
कूडा जिण्णिदभवणा	६	२२	गुणसंकलणसरुद्धं	५	२००
" "	६	२४	गेण्हते सम्मसं	८	७०१
कूडाण उवरिभागे	६	१२	गेवज्जमणुहिसयं	८	११७
कूडाणं ताई चिय	५	१३१	गेहुच्छेहो दुसया	८	४५८
कूडा णंदावत्ती	५	१६६		घ	
केई पडिबोहणेण य	५	३१०	घणघादकम्ममहणं	६	७४
केवलणणदिणेणं	६	७०		ख	
केवलणणसहावो	९	५०	खउमद्वपंकविमुक्कं	८	७२६
कोवविहंगारुढो	५	८६	खउमयणसत्तणवण्ह	७	२४९
	ख		खउगोउरजुत्तेसु थ	७	२०४
खंगयणसत्ताध्वणव	८	१५२	खउगोउर जुत्तेसुं	७	२७६
खण्हणहट्टुगदणि	८	३८९	खउगोउर संजुत्ता	७	४१
खोरद्विसलिसपूरिद	८	६०७	खउवडसहस्समेत्ता	७	६४
खीरवरदीवपहुदि	५	२७७	खउठाणेसुं सुण्णा	७	४१९
खीरसड्डस्सवणज्जल	७	२२	खउणउवि सहस्सा इणि	७	३३९
खेमक्खापणिधीए	७	२६८	" " "	७	३४०
खेमपुरीपणिधीए	७	२६६	खउणउदिसहस्सा इणि	७	३४१
खेमादिसुरवणंतं	७	४४४	" " " छस्सयाणि	७	३४२
खोदवरवखो दीघो	५	१६	खउणउदिसहस्सा तिय	७	३२३
	ग		" " "	७	३२४
गयणं मुज्जं सोमं	८	६४	खउण उदिसहस्सा पण	७	४०८

गाथा	सहाधिकार	गाथा सं०	गाथा	सहाधिकार	गाथा सं०
चउणउदिसहस्सा पण	७	४०९	चउसट्टी परिषज्जिद	५	२७
" "	७	४१०	चउसण्णा तिरिघगदी	५	३०७
" "	७	४११	चउसीदि सहस्साणि	८	२१९
चउणउदिसहस्सा पणु	७	४०६	चउसीदी अधियसयं	७	२१६
" "	७	३०७	चउसीदी लक्खाणि	८	४३०
चउणवगयणाट्टितिया	७	५६९	चउहत्तरिजुदसगसय	८	७४
चउणवदिसहस्सा छ	७	३४०	चउहत्तरि सहस्सा	८	२६
चउतियगवसगच्छका	७	३१७	" "	८	५६
चउतियतियपंचा तह	७	४६६	चत्तारि गुणट्ठाणा	८	६८७
चउतीसं लक्खाणि	८	३५	चत्तारि तिणिं दोणिए य	८	३६७
चउदक्खिण इंदारणं	८	२६१	चत्तारि य लक्खाणि	८	६५७
चउदसजुदपंचसया	७	१५७	चत्तारिसय पणुत्तार	८	३७५
चउदालसक्खजोयण	८	२१	चत्तारि सहस्साइ	८	३८७
चउदालसहस्सा अड	७	१२८	चत्तारि सहस्साणि	५	१६५
" "	७	१२६	" "	८	१९५
" "	७	२२६	" "	८	२८७
" "	७	२३०	चत्तारि सिद्धकूडा	५	१२७
चउदाल सहस्सा राव	७	१३०	चत्तारि सिधु उवमा	८	४६६
" "	७	१३१	चत्तारि होंति लवणे	७	५७५
चउदालसहस्साणि	७	१२१	चत्तारो लवणजले	७	५५४
" "	७	२२८	चरबिदा मणुवणं	७	११६
चउपंचतिचउणवया	७	३२२	चरया परिषज्जघरा	८	५८५
चउमज्जिदसुखं	४	२५७	चरिमपहादो बाहिं	७	५९१
चउरंगुलंतराले	७	८६५	चरियट्ठालियचारु	८	११६
चउलवसाणि चम्हे	८	१५०	चंदवसुइवड्डी	७	१६३
चउलवसाधियतेवीस	६	६६	चंदपुरा सिग्घगदी	७	१७९
चउवण तिसय जोयण	८	६१	चंदरविगयणखंडे	७	५११
चउवणसहस्सा सग	७	३५४	चंदस्स सवसहस्सं	७	६१६
" "	७	३७२	चंदा दिवयारा गह	७	७
चउवणं च सहस्सा	७	५०६	चंदादो मत्तंडो	७	४६६
चउवीसजुदसया	८	२००	चंदादो सिग्घगदी	७	५१३
चउवीसजुदेक्कसमं	७	२६०	चंदासुसीमाओ	७	५८
चउवीसं लक्खाणि	८	४६	चंदाभा मुराभा	८	६४४
चउसट्टी धट्टसया	७	५६६	चामीधररयणमए	८	६१६
चउसट्टी चालीसं	८	१५६	चालं जोयणलवसं	८	२७
			चालीस दुराय मोलस	७	१९६

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
जालीससहस्राणि	८	१८८	चोदसठाणे सुष्णं	८	४८७
चिट्टे दि कम्पजुगलं	८	१३२	" "	८	४९०
चित्तविरामे विरमंति	९	३१	" "	८	४६३
चित्ताभो सादीभो	७	२७	चोदसठाणेसु तिया	८	४६८
चित्तावणि बहुमज्जे	५	६	" "	८	४७४
चित्तोपरिमत्तादो	७	६५	" "	८	४७७
" "	७	८२	" "	८	४८०
" "	७	८३	" "	८	४८३
" "	७	८९	" "	८	४८९
" "	७	९३	" "	८	४९२
" "	७	९६	" "	८	४९५
" "	७	९६	चोदसरयणवईणं	८	२६३
चुप्पिणस्स रुव	९	८१	चोदससहस्समेत्ता	६	२६
चुलसीदिसहस्राणि	६	७६			
चुलसीदो सीदीभो	८	३५८	छच्छेत्तसया तीसं	७	५०३
चेट्टंति णि रुवमाभो	५	२१७	छच्चेव सहस्राणि	८	१५१
चेत्तदुदुम ईसाणे	५	२३४	छच्छक्कमयणसत्ता	७	३२१
चोत्तीसभेदसंजुव	५	३१६	छज्जुगलसेसएसुं	८	३५३
चोत्तीसाइसयाणं	८	२६६	छज्जोयण भट्टसया	८	७५
चोत्तीसादिसएहि	६	१	छट्ठोवहिउवमाणा	८	५००
चोत्तीए सदभिसए	७	५३८	छण्णउदिततराणि	८	१८०
चोदसजुदतिसयाणि	७	२६४	छण्णवएकतिछक्का	७	३६२
चोदसजोयणलक्ख	८	६२	छण्णवचउक्कपण्णचउ	७	९८५
चोदसठाणेछक्का	८	४७०	छण्णवसयदुगछक्का	७	३१६
" "	८	४७३	छण्णाणा दो संजम	५	३०८
" "	८	४७९	छत्तत्तायसिहासण	७	४७
" "	८	४८२	" "	८	६०५
" "	८	४८५	छत्तिय भट्टुत्तिछक्का	७	३६४
" "	८	४८८	छत्तीस अचरतारा	७	४९७
" "	८	४९४	छत्तीसं लक्खाणि	८	३२
चोदसठाणे सुष्णं	८	४६९	छत्तीसुत्तरधसया	८	१७३
" "	८	४७२	छप्पण्ण छक्क छक्कं	७	२३
" "	८	४७५	छप्पण्णभट्टियसयं	८	१६४
" "	८	४७८	छप्पंचउसयाणि	८	३२८
" "	८	४८४	छप्पासेसुं पुह पुह	७	२७७

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
छल्लकखा खासट्टी	८	२६७	जाओ पइणयाण	८	३३१
छल्लकखाणि विमारा	८	३३४	जाइ जराभरणेहि	९	१६
छब्बीसं च य लकखा	८	४६	जा जीवपोगलाण	५	५
छस्सयपंचसयाणि	८	३७४	जादिभरणेणकेई	५	३११
छस्ससहस्ता ति सया	७	३४७	जायते मुरलोए	८	५६०
११ ११	७	३६५	जाव ए वेवि बिसेछं	६	६७
छायट्टिसहस्ताणि	७	५८३	जावडम्म डव्वं	६	१६
छासट्टि कोटिलकखा	८	४६४	जिणभरियणाडयं ते	५	११५
छासट्टीलकखाणि	८	४६५	जिणदिट्ठणामहंदय	८	३४९
छासीवी भधियसयं	८	१५५	जिणपूजा उज्जोगं	८	५९९
छाहत्तरिजुत्ताहं	७	६०२	जिणमहिमदंसणेखं	८	७००
छाहत्तरि लकखाणि	८	२४२	जिणलिगमारिणो जे	८	५८३
ज			जीवी परिणमदि जदा	९	६०
जक्खुत्तममणहरणा	६	४३	जुत्ता यत्थोवहिषणा	८	६७८
जयड जिणवरिदो	९	७८	जुमिगुट्ठिगड्ढकायो	७	७६
जलकंतं लोहिदयं	८	६६	जुवरायकलसाणं	८	२१६
जलगंधकुसुमतंदुल	५	७२	जे भधियोगपइणय	८	२९६
११ ११	७	४९	जे जुत्ता एरतिरिया	५	२९४
जलहरपडल समुत्थिद	८	२४७	जे गिरवेक्खा देहे	८	६७१
जस्स ए विज्जदि रागो	६	२४	जेत्तियजलनिहिउत्तमा	८	५५५
जस्सि मग्गे ससहर	७	२०६	जे पंचिदियतिरिया	८	५८६
जह् विरसंजिदमिषण	९	२२	जे सोलस कप्पाहं	८	१४८
जं गाढस्स पमारां	८	३६४	११ ११	८	१७८
जं जस्स ओमपूज्वं	८	३६४	११ ११	८	५२७
जं राणरमणोओओ	५	३२३	जे सोलस कप्पाणि	८	५३०
जंबू जीयण लकख	५	३२	ओ आदभावणमिणं	९	४६
जंबू दीवम्म दुवे	७	२१७	ओइगणणयरीणं	७	११५
जंबूदीवसरिच्छा	६	६३	ओ इच्छदि एिस्सरिदुं	६	५२
जंबूदीवाहितो	५	५२	ओइसियणिवासिदी	७	२
११ ११	५	१८०	ओइसयचाणवेंतर	५	७३
जंबूदीवे लवणो	५	२८	ओ एवं जाणिरा	९	३७
जंबू परिहीजुगलं	५	३५	ओ खविदमोहकम्मो	६	४८
जंबूयके दोण्हं	७	५९०	ओ खविदमोह कलुसो	९	२३
जंबूलवणादीरां	५	३७	ओ रिहदमोहगंठी	९	५४
जं भदसासवणजिण	५	७१	ओणी इदि इमिबीसं	८	५

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
जो पणसिं तु सुहं	९	६९	णवचउच्छपंचतिया	७	३८२
जोयणपंचसहस्सा	७	१८८	णवचउसत्तणहाइ	७	२५४
" "	७	१९७	णवजोयणउच्छेहा	५	२०२
जोयणया धणवदी	८	५३	णवजोयणलवखाणि	८	६९
जोयणलम्बायामा	५	६४	णवजोयणसत्तसया	८	७२
" "	६	६५	णव जउदिसहस्सं राव	७	५६७
जोयण सदत्तियकदी	६	१०२	णव जउदिसहस्सा छ	७	२३५
जोयणसयदीहत्ता	८	४४०	" "	७	२३८
जोयणसहस्सगाळ	५	६१	" " णव	७	१४९
जोयणसहस्सगाढो	५	५८	णवणउदिसहस्साणि	७	१४४
जोयणसहस्ससुंग	५	१३७	" "	७	१४७
जोयणसहस्समधियं	५	३१९	" "	७	५८१
जोयणसहस्समेवकं	५	२४१	णवणवदिसहस्साणि	७	१४८
जोयणसहस्सवासा	५	६८	" "	७	४२८
जो सव्वसंभमुक्को	६	२६	णव य सहस्सा चउसय	७	२९७
" "	६	५१	" "	७	३१३
जो सकप्पविपप्पो	६	६५	" "	७	३६९
जो सोलसकप्पाइ	८	५२४	णव य सहस्सा (तइ) चउ	७	३२९
भाणं जदि भियआदा	६	४४	णवरि य जोइतियाणं	७	६२३
न			णवरि विसेसो एसो	८	६१६
सुसदिजुवसत्तजोयण	७	१०८	णवरि विसेसो देवा	७	१०७
णवसत्तसीमभामं	७	५१७	णवरि विसेसो पुष्पा	७	८
राचंचतचमरकिकिणि	५	११२	णवरि विसेसो सव्वहु	८	७०७
णचंचतविचित्तधया	८	६०३	" "	८	७१६
रा जहदि ओ दु ममत्तं	६	५५	णवरि हु रावगेवज्जा	८	७०२
रात्थि राहकेसलोमा	८	५६१	णवि परिणमदि ण गेण्हदि	६	६८
रात्थि मम कोइ मोहो	६	२६	ण हु मणवि जो एवं	९	५८
णभगयणपंचसत्ता	७	३१६	रांदासुंदववीधो	५	६२
णभछकसत्तसत्ता	७	२४७	" "	५	१४६
राभणवणभणवयतिया	७	३८३	रांदावत्तपहंकर	८	१४
राभतियदुगदुगसत्ता	७	३३४	रांदीसरबहुमज्जे	५	५७
रायरेसु तेसु दिग्वा	६	६६	रांदीसरवारिणिहि	५	४६
णवअट्टपंचणवदुग	७	३५	रांदीसरविविसासु	५	८२
रावअट्टेककतिछक्का	७	३९०	राणम्मि मावणा सलु	६	२७
णवअभिजिण्हदीणि	७	४६२	णाणाविह्वेत्तफलं	५	३

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
शाणाविहृत्तरेहि	८	४२३	शीलुप्यलकुसुमकरो	५	९२
शाणाविहृत्तरेह्य	५	६८	शीलेण वज्रिजदानि	८	२०४
शाङ्गण देवलोयं	८	५६७		त	
शामिगिरिण शामिगिरी	५		तककालम्मि सुसीम	७	४४०
शामेण किङ्कराई	८	६२५	तककुड्ढमन्तरए	५	१६२
शामे सशक्कुमारो	८	१४०	" "	५	१६५
शाहं देहो ण मणो	९	३२	" "	५	१७१
शाहं पोम्मलमइओ	९	३४	" "	५	१७९
शाहं होमि परेसि	६	३०	तमिगिरिउवरिमभागे	५	१४४
" "	६	३६	तमिगिरिणो उच्छेद्धे	५	२४२
" "	६	३८	तमिगिरिवरस्स होति	५	१२८
शिच्चं विमलसख्खा	८	२१३	तच्छिविदूरां तत्तो	८	६८३
शिच्चुज्जोवं विमलं	५	१६०	तणुवङ्गणादिसहिया	८	५८७
शिट्ठिविध आइकम्मं	६	७३	तणुरक्खप्पहुदीरां	८	३३२
शिमन्तजोद्धमन्ता	७	२०	तणुरक्खा अट्टारस	५	२२३
शिममाणराजणामा	८	६५३	तणुरक्खा सुरारां	८	५४३
शियणियठाण शिविद्धा	५	२२८	तणुवादपवरावहले	६	१२
शियणामकं मज्जे	६	६१	तणुवादवहलसंखं	६	७
शियणियइंदपुरीरां	६	७८	" "	६	८
शियणियस्सोणियदेसं	८	७१२	तणुवाक्खस्स य बहले	९	१३
शियणियसंबवपमारां	७	५५८	तण्णमरीए बाहिं	५	२२६
शियणियदीउवहीरां	५	५०	तण्णिसयारां मज्जे	७	७५
शियणियपढमपहारां	७	५७१	तत्तो अणुदिसाए	८	१७७
शियणियपरिवारसमं	७	५६	तत्तो अणुदिसाए	८	१०४
शियणियपरिहिपमाणे	७	५९७	तत्तो उवरिमदेवा	८	७०४
शियणियभोयणकाले	८	५६४	तत्तो उवरि भम्भा	८	६६६
शियणियरवीण चद्धं	७	५७६	तत्तो खीरवरक्खो	५	१५
शियणियरासिपमारां	७	११४	तत्तो छज्जुगलाणि	८	११६
शियणियविभूदिजोगं	५	१०१	तत्तो दुगुणं दुगुणं तामो	८	३१६
शियणियससीणअद्धं	७	५५५	तत्तो दुगुणं दुगुणं	८	२३७
शियणियतारा संखा	७	४७०	तत्तो पदेसवड्ढो	५	३१८
शियणियपरिहिपमाणे	७	५७३	तत्तो वयसायपुरं	८	६०२
शिवमसख्खा शिट्ठिय	९	१७	तत्तो हरिसेण सुरा	८	६१०
शिवमसख्खावण्णायां	८	३२३	तस्य च्चिय दिवभाए	५	२०५
शीचोपपाददेवा	६	८०	तस्य हि विजयप्पहुदिमु	५	१८१

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
तस्थेव सध्वकालं	५	२८७
तस्थेसाणदिसाए	८	४१३
तदणंतरमग्गाहं	७	२१०
तदिए अट्टसहस्सा	८	२२९
तदिए पुण्णसू मघ	७	४६३
तविमपहट्टितवणे	७	२८५
तद्विखणुत्तरेसुं	७	१०
तद्दीधीणं तेरसदल दिक्का	८	५५६
तदणुपट्टस्सद्धं	७	४३१
तप्परदो गंतूणां	८	४३२
तप्परिवारा कमसो	८	३२२
तम्मज्जबहलमट्टं	८	६८१
तम्मज्जे वरकूडा	७	८७
तम्मज्जे सोहेज्जसु	७	४२६
तम्मदिरमज्जेसुं	७	५७
तम्मूले एक्केक्का	८	४०९
तम्मेलकासजुत्ता	५	६६
तम्मेलं पहेविच्चं	७	२२५
तम्हा णिब्बुदिकामो	६	४२
तब्बोहीदो कंचिय	७	२०७
तब्बेदीदो गच्छिय	८	४२८
तस्स पमाणां दोणिण य	७	२८२
तस्स य थलस्स उवरि	५	१८६
तस्स य सामाणीया	५	२१६
तस्सिं भत्तोयवेओ	५	२३८
तस्सिं चिय दिक्काए	५	२०६
तस्सिंदयस्स उत्तर	८	३४२
" "	८	३४४
" "	८	३५०
तह पुंढरीकिणी वारणि	५	१५८
तह य उवह्हं कमलं	८	६३
तह य जयंती वचकुत्तमा	५	१७६
तह य सुभदाभद्दामो	६	५३
तह सुप्पबुद्धपट्टदी	८	१०५
तं चोद्दसपविहत्तं	७	१२५
तं पि य अगम्मसेत्तं	७	६

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
ताओ भावाहाणो	७	५८६
ताणं जयरणि अंजण	६	६०
ताणं येवज्जाणं	८	१६७
ताणं जयरत्ताणं	७	९०
ताणं जयरत्ताणि	७	६४
ताणं पदण्णसुं	८	५२६
ताणं पुराणि णाणा	७	१०६
ताणं विमाणसंखा	८	३०२
ताणि जयरत्ताणि	७	९७
" "	७	१०२
" "	७	१०५
ताणोवरि भवणाणि	५	१४७
ताणोवरिम धरेसुं	५	१३८
ताहे देवीणिवहो	८	५९८
ताहे लसहरज्जसा	७	२०८
ताराओ कित्तियादिसु	७	४६५
तावलिदीपरिहीओ	७	३६२
ताहे खम्मपुरीए	७	४३८
ताहे णिसह्णिरिदे	७	४४७
ताहे मुहुत्तामवियं	७	४३९
तिगुणियवासा परिही	५	२४३
तिणिण चिय लक्खाणि	८	२२४
तिणिण महण्णवउक्का	८	४९८
तिणिण सहस्सा छसयं	७	६००
तिण्णेष उत्तरामो	७	५२१
" "	७	५२७
तिदय पण सत्तदु	५	५५
ति दुगेक्क मुहुत्ताणि	७	४३७
तित्थयराणं समए	८	६६७
तिब्भव दु खेत्तरयं	७	५१०
तियअट्टणवट्टितया	७	३४६
" "	७	३६७
तियअट्टारसत्तरस	८	१६१
तियएक्कएक्कअट्टा	७	४१४

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
तियजोयणलवखाइ	७	१७८	तेत्तीससुरप्यवरा	८	२९३
" "	७	२५५	तेत्तीसं लवखाणि	८	३६
तियजोयण लवखाणुं	७	२५६	तेत्तीसामरसामाणियाण	८	५४६
तियजोयणलवखाणि	७	१६१	तेदासलवखजोयण	८	२२
" "	७	१६३	तेदालीस सयाणि	८	१६१
" "	७	१६८	ते दीवे तेसट्टी	७	४५७
" "	७	२५५	ते पुब्बादिदिसासुं	७	८१
" "	७	२५९	तेरसजोयणलवखा	८	६३
" "	७	४२५	" "	८	६४
" "	७	४२७	तेरसमो रुचकधरो	५	१४१
वियठाणेसुं सुण्णा	७	४२९	तेरासियम्मि लखं	७	४७८
तियणवएककतिक्खका	७	३९१	ते राहुस्स विमाणा	७	२०२
तियतियएककतिपंचा	७	३३०	तेरिच्छमतराळं	७	११२
तियतियमुहुत्तमधिया	७	४४१	ते लोण्णिमदेना	८	६३६
तियलवखुणं अंतिम	५	२७३	तेवणसया उणावीस	७	४९०
तिये दुवाराख्खेहा	८	४११	तेवणसयाणि जोयणाणि	७	४८७
तिसपुच्छसंखवणो	७	१७	" "	७	४८८
तिविहं सूडसमूहं	५	२७४	तेवणसहस्साणि	७	४००
तिसमदलगणखंडे	७	५१८	तेवणुत्तरघडसय	७	१७६
तीए दिसाए चेदुदि	८	४१४	ते विक्किरियाजादा	८	४४६
तीद समयारणसंखं	६	५	तेवीसलवखरुंदो	८	५१
तीसद्वारसया खलु	७	५१५	तेवीसं लवखाणि	८	५०
तीसं चिय लवखाणि	८	४०	तेसट्टिसहस्साणि	७	३५६
तीसं णवदी तिसया	७	५७२	" "	७	३५७
तीसुत्तरवेसयजोयण	७	१६४	" "	७	३५८
सुण्हि भपदयणुणामा	६	४६	" "	७	३५९
सुसित्थवावाहाणं	८	६४६	" "	७	३६०
सेऊए मज्झिमंसा	८	६६३	" "	७	३६१
ते किपुरिसा किण्णर	६	३४	" "	७	३६२
ते गोठरपासादा	५	१८७	" "	७	३६३
ते चउचउकोणेसुं	५	६९	" "	७	३६४
ते णयरणं बाहिर	६	६४	" "	७	३६५
तेतियमेत्ता रविणो	७	१४	" "	७	३६६
तेत्तीस उवहि उवमा	८	५१४	" "	७	३६७
तेत्तीसभेदसंजुद	५	३०१	तेसट्टिसहस्सा पण	७	३९३
			तेसट्टी लवखाणि	८	४२६
			" "	८	२४३

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
ते सव्वे चेततह	६	२९	दसवास सहस्साऊ	६	६२
ते सव्वे जिणजिलया	७	४३	दसवास सहस्साणि	६	८५
ते सव्वे पासादा	५	२०८	दसण्णाणासममं	९	२५
" "	७	५३	दारोवरिमत्तेसु	८	३५६
ते सव्वे सण्णीओ	८	९९७	दिएययणयतलादो	७	२७३
ते संखेज्जा सव्वे	८	४०६	दिएययणिजाणणदूठं	७	२४५
तेसीदिजुदसदेणं	७	२२४	दिणवइयहसूचिचए	७	२४४
तेसीदिसहस्साणि	७	२६५	" "	७	२३६
तेसीदिसहस्सा तिय	७	४३०	दिणवइयहंताराणि	७	२४३
तेसीदीमच्चियसयं	७	२२०	दिपंतयणदीवा	७	४४
तेसु जिणप्पविमाओ	७	७३	" "	८	३७२
तेसु ठिदपुढविजोवा	७	३८	" "	८	२११
" "	७	६७	दिवसयरनिबधेदं	७	२२३
तेसु दिसाकण्णाणं	५	१७५	दिग्गवरदेहजुत्तं	८	२६७
तेसु पहाणविमाणा	८	२९८	दिग्गं भमपाहारं	६	८७
तेसुं अण्णणामो	८	३३५	दिसविदिसं तब्भाए	५	१६६
तेसुं तउवेदीओ	८	३५५	दीओ समंमुरमणो	५	२४०
तेसुं पासादेसुं	५	२११	दीहत्तं वाहत्तं	९	९
तेसुं पि दिसाकण्णा	५	१६३	दीहेण द्दिदिसस	८	६३०
तेसुं पि दिसाकण्णा	५	१७८	दुग्गमट्टएककचउणव	७	३३८
तेसुं मणवच उण्णास	८	६८६	दुग्गमट्टदुग्गछक्का	७	३३२
य			दुग्गमिति यतितिणवया	७	२९
आवरलोयवमाण	५	२	दुग्गछक्कमट्टछक्का	७	२५०
अिरहिदयमहाहिदया	५	१३३	दुग्गछक्कतिदुग्गसत्ता	७	३१८
अुइणिदासु समाणो	८	६७०	दुग्गदुग्गमट्टपंचा	७	३३१
ओदूण अुदिसएहि	८	६०६	दुग्गमणवेषकपंचा	७	३८७
द			दुग्गतिगति यतियतिणिण य	७	५६१
दक्कादाहिमकदसी	५	१११	दुग्गसत्त चउवकाई	७	३३
दक्खिण भयणं पादी	७	५०२	दुग्गसत्त दसं चउदस	८	४६२
दक्खिणविसाए अरणा	८	६४१	दुग्गुणिय सगसगवासे	५	२६०
दक्खिणविसाए अरणा	८	६६०	" "	५	२६२
दक्खिणविसाए फलियं	५	१५०	दुमणिस्स एककभयणे	७	५२८
दट्ठूण जिणिदपुरं	८	६०४	दुविहावरअचराओ	७	४९६
दसजोयणसक्काणि	८	६८	दुसुदुसु चउसुदुस	८	५६
दसपुव्ववरा सोहम्म	८	५८०	दुसु दुसु तिचउक्केसु च	८	५५२
दसमे अणुराहाओ	७	४६४	दुंदुभगो रत्तणिओ	७	१६

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
हुंहुहिमयंगमहल	६	१४	पञ्जसापञ्जसा	५	३०६
देवगदीदो चला	८	७०५	पञ्जसो दस पाणा	८	६८८
देवदससहस्राणि	५	२२०	पडिइंदतिदयस्स य	८	५३९
देवरिसिणामधेवा	८	६६८	" "	८	५४२
देववरोवहि दीवा	५	२३	पडिइंदारां सामाणिमाण	८	५३६
देवारां उच्छेदो	८	५६५	" "	८	२८६
देवासुरमहिदाओ	५	२३३	" "	८	५५६
देवीरां परिवादा	७	७७	पडिइंवादितियस्स	८	३२०
देवीदेवसमाजं	८	५९६	पडिइंदादी देवा	८	३९७
देवीपुर उदयादो	८	४१९	पडिइंदा सामाणिम	६	६८
देवीमवणुच्छेदो	८	४१७	" "	७	६०
देवीहि पडिदेहि	८	३८१	" "	८	२१५
देवुत्थो देहादो	९	४३	पडिकमरां पडिसरां	६	५३
देहेसुं एारवेवसा	८	५७४	पडिवाए वासरादो	७	२१४
देहो व मणोवासी	९	६३	पढमपरंतमसणी	५	३१४
दोकोडीओ लक्खा	८	२६५	पढमपवणिददेवा	५	४९
दोणिच्चिय लक्खाणि	७	६०४	पढमपहसंठियारां	७	५६२
दोणिण पयोणिहिउवमा	८	४९६	पढमपहादो चंदा	७	१२७
दोण्हं दोण्हं उक्कां	८	६९२	पढमपहादो बाहिर	७	४१६
दोहोसहस्समेता	७	८८	पढमपहादो रविणो	७	२२६
दोलक्खेहि विभाजिद	५	२६७	पढमपहे दिणवहराणो	७	२७९
दोससिणक्खत्ताणं	७	४६७	पढम्मि अविधपल्लं	८	५२४
घ			पढमादु अटुतीसे	८	६४३
धम्मवरं वेसमणं	८	६५	पढमादु एकतीसे	८	३४१
धम्मेष परिणदग्घा	६	६१	पढमिदयपहुदीदो	८	८६
धरिऊण दिणमुहुरां	७	३४५	पढमुच्चारिदणामा	६	५९
धावइसंडप्पहुदि	५	२७८	पढमे चरिमं सोच्चिय	८	१९
" "	५	२७६	पढमे विदिए जुगले	८	४६१
धुव्वंतघयवडाया	८	३७१	" "	८	५२१
" "	८	४७७	" "	८	५६३
प			पढमो जंबूदीओ	५	१३
पढमविभाणारुद्धो	५	६५	पणकदिजुदपंचसया	९	६
पढमो पुंहरियक्खो	५	४०	पणणउदिसहस्सा इमि	७	३४५
पवलिद सण्णाः णाणे	८	५७८	पणणउदिसहस्सा चउ	७	३०९
पज्जंतंरयण दीवा	५	२३६	पणणउदिसहस्सा तिय	७	३२६

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
पणुवीससहस्सा पण	७	३६६	पणरसट्टाणेषु	८	४६१
पणतीसुतरणवसय	८	७९	पणरस दल दिणाणि	८	५६०
पणदालसहस्सा चउ	७	१३४	पणरसमुहुत्ताहं	७	२८६
पणदालसहस्सा जोयणाणि	७	१३३	पणरस ससहराणं	७	११६
पणदालसहस्साणि	७	१३७	पणरससहस्साणि	८	६५१
" "	७	१३८	पण्णाधियदुसयाणि	७	२७५
" "	७	१३९	पण्णाधियसयदव	६	६३
" "	७	१४१	पण्णारसठाणेषु	८	४८६
" "	७	२३२	पण्णास चउसयाणि	८	२८६
पणदालसहस्सा वे	७	१३२	पण्णास जुदेकसया	८	३६२
" "	७	१४०	पण्णासं पणुवीसं	८	३६३
पणदाल सहस्सा सम	७	१३५	पण्णासं सक्खाणि	८	२४४
" "	७	१३६	पण्णासाधियदुसया	७	२०३
पणदीछपणइगिअड	९	४	पण्णासुत्तर तिसया	९	११
पणपण अउजासडे	५	३०२	पत्तेवकरसा नरुणि	५	१०
पणमह चउवीसजिणे	९	७६	पत्तेवकं तववेदी	७	७०
पणमह जिणवरससहं	६	८०	पत्तेवकं धाराणं	८	४०२
पणवणाधियधुसय	५	५४	पत्तेवकं पण हूत्था	८	६६३
पणवरिसे दुमणीणं	७	५५१	पत्तेवकं रिक्खाणि	७	४७५
पणसंखसहस्साणि	७	१६३	पत्तेवकं सारस्सद	८	६६२
पणुवीसकोडकोडी	५	७	पत्तेयरसा जलही	५	२६
पणुवीसजुदेकसयं	८	३१४	पणपत्तलादिपरदो	८	१०३
पणुवीस जोयणाणि	६	९	पयडिट्टिदि अणुभाग	६	४६
पणुवीससहस्साइ	८	१८१	परदो अक्खणवदत्तव	८	५८४
पणुवीस सुप्पबुद्धे	८	५१०	परमदु आहिरा जे	६	५७
पणुवीसं सक्खाणि	८	४७	परमाणुपमाणं वा	६	४१
" "	८	१९२	परिपक्कजज्जहत्थो	५	६६
" "	८	२४६	परिवारवत्तभाओ	८	३१५
पणत्तरिदलसुं मा	५	१८३	परिवारा देवीओ	५	२१८
पणत्तरी सहस्सा	५	११८	परिहीसु ते चरते	७	४६०
पण्णारठाणे सुण्णं	८	४७८	पलिदोवमं दिवइळं	८	५३८
पण्णारसट्टाणेषु	८	४७१	पलिदोवमाउजुत्तो	६	८९
" "	८	४७६	" "	६	९१
" "	८	४८१	पलिदोवमाणि माऊ	८	५६२
" "	८	४८६	" " पण णव	८	५२८

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
पल्लिदोवमाणि पण णव	८	५३१	पंचसहस्रं अधिया	७	१८६
“ पंच य	८	५३४	पंचसहस्रा इगिसय	७	१८९
पल्लट्टदि भाजेहि	६	६४	पंचसहस्रा छाधिय	७	१९५
पल्लपमाणोठिठिरी	५	१६४	पंचसहस्रा जोयण	७	१८६
पल्लस संखभागं	७	५५२	पंचसहस्राणि दुवे	७	२७१
पल्लक भासणाप्रो	६	३१	पंचसहस्रा (तह) पण	७	४३४
पल्लोठजुवे देवे	६	८८	“ “	७	४४८
पल्ला सलोकारस	८	५३२	पंचसहस्रा तिसया	७	२७२
पल्ला संखेज्जं सो	८	५५१	पंचसहस्रा दसजुद	७	१९६
पवणदिसाए पढमं	५	२०३	पंचसहस्रा दुसया	७	४८४
पंचवखा तसकाया	८	६६०	पंचसहस्रेकसया	७	२००
पंचवखे अउलवखा	५	२९६	पंचसु वरिसे एदे	७	५३६
पंचगयणट्ट अट्टा	७	२५२	“ “	७	५४०
पंच अउठाण छवका	७	५६८	पंचाणउदि सहस्रा	७	३०८
पंच अउतियदुगाणं	८	१८५	“ “	७	४१२
पंचत्तालसहस्रा	७	२७१	पंचाणउदिसहस्रा	७	४१३
“ “	७	४५१	“ “	७	६१४
पंचत्तालं सखं	८	१८	पंचेव सहस्राहं	७	१६२
पंचसीससहस्रा	७	३४८	पंचेव सहस्राणि	७	१९४
“ “	८	६५६	पायाराणं मज्जे	५	१८८
पंचसीसं लवखा	६	७४	पासवयमोराणं	८	२५१
“ “	८	३४	पासादाणं मज्जे	८	३७७
“ “	८	२६४	पासादो भणितोरण	५	१६१
पंचदुग अट्टसत्ता	७	३२७	पीठाणीए दोण	८	२७६
पंचपण गयणदुगअउ	७	३८४	पीदिकर आइअचं	८	१७
पंचसहस्रयसहिवा	८	६७४	पुढविप्पट्टिदिवणप्फदि	५	३१२
पंचमए छट्ठीए	५	१६७	पुढवी आइअउक्के	५	६६८
पंचविदेहे सट्ठि	५	३०३	पुढवीसाणं चरियं	८	२६१
पंचविहत्तो इच्छिय	७	३४६	पुण्णपुणपहवखा	५	४५
पंचसयचंडसयाणि	८	३२७	पुण्णेण होइ विहवो	९	५६
पंचसयचावर्द्धा	८	४०५	पुरिमावलीपवणिद	८	९७
पंचसयजोयणाहं	५	१४६	पुरिसिंथीवेठजुदा	८	६६१
पंचसयजोयणाणि	७	११७	पुयसा पयसत्तमसप्पुहस	६	३६
पंचसयाणि घणूणि	७	१११	पुण्वज्जिवाहि सुचरिद	८	३८०
पंचसया देवीप्रो	८	३११	पुण्वण्हे अवरण्हे	५	१०२

माधा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
पुव्वदिसाए पढमं	५	२०४	बद्धाउं पडि भण्णिदं	८	५४४
पुव्वदिसाए विसिद्धो	५	१३२	बम्भरविसादलुज्जय	८	३९२
पुव्वं ओलंगसभा	८	३६८	बम्भम्हि होदि सैदी	८	७१५
पुव्व्वाए कप्पवासी	५	१००	बम्भहिदयम्मि पडले	८	५०४
पुव्व्वादि चउदिसासुं	५	१२१	बम्भहिदयादि दुदयं	८	१४२
पुव्व्वाधिसुं तं कससो	८	७२३	बम्भाई चत्तारो	८	२०७
पुव्व्वादिसुं अरज्जा	५	७६	बम्भाहिघाणकप्पे	८	३३९
पुव्व्वावरमायाभो	८	९३१	बम्भिवम्मि सहस्सा	८	२२१
पुव्व्वावरदिम्भाय	५	१३६	बम्भिवसंतविदे	८	४१८
पुव्व्वावरविच्चाळं	७	९	बम्भिदादि चउक्के	८	४४२
पुव्व्वावरेण तीए	८	६७६	बम्भिदे चालीसं	८	२२६
पुव्विवल्लवेदिमद्दं	५	१९६	बम्भिदे दुसहस्सा	८	३१३
पुव्वुत्तरदिम्भाए	८	६४०	बम्भुत्तरस्स दक्खिण	८	३४५
“ “	८	६५६	बम्भुत्तराभिघाणे	८	५०३
पुव्वोदिदकुडाणं	५	१५४	बम्भे सीदिसहस्सा	८	१८९
पुव्वोदिदणामजुदा	५	१७२	बलणामा अच्चिणिया	८	३०७
पुस्सो असिलेसाग्रो	७	४८९	बलदेवाण हरीणं	८	२६३
पुह पुह चारक्खेत्तो	७	५५७	बहलतिभागपमाणा	६	११
पुह पुह ताणं परिही	७	९२	बहुविहवेवीहि जुदा	५	१३५
पुह पुह पइष्णयाणं	८	२८५	बहुविहरतिकरणेहि	५	२२६
पुह पुह ससिक्खिणि	७	२१६	बहुविहरसवत्तेहि	५	१०८
पोक्खरणीरम्भेहि	५	२०९	बहुविहविगुक्खणाहि	८	६१४
पोक्खरणीवावीधो	८	४२२	बंघाणं च सहाणं	९	६६
पोक्खरणीवावीहि	८	४३५	बाणउदि उत्तराणि	७	१९१
पोक्खरवरुवहिपहुदि	७	६१८	बाणउदि सहस्साणि	६	७५
पोक्खर करो त्ति दीघो	५	१४	बाणविहीणे वासे	७	४२४
फुल्लंतकुमुदकुवलय	८	२४९	बादाललक्खजोयण	८	२३
“ “	८	२४९	बादाललक्खसोलस	८	२४
बत्तीस अट्टवीसं	८	१७९	बारस कप्पा केई	८	११५
बत्तीसट्टावीसं	८	१४६	बारसजुदसत्तसमा	७	१४६
बत्तीसभेदतिरिया	५	३१३	बारसदिणं तिभागा	८	५४८
बत्तीसलक्खजोयण	८	३८	बारस देवसहस्सा	५	२१६
बत्तीससहस्साणि	८	३१२	बारस मुहुत्तयाणि	७	२८४
बत्तीसं त्रिय लवणा	८	३७	“ “	७	२८६
			“ “	७	२८८

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
बारसविहकपाणं	८	२१४	बाहिरभागे सेस्ता	७	५९३
बारससहसजोयण	५	२३१	बाहिरमग्गे रविणो	७	२८०
" "	६	८	बाहिरमज्झमंतर	८	५२३
" "	८	४३७	बाहिरराजो हितो	८	६३५
बारससहसएवसथ	८	४८	बाहिरसूई मज्जे	५	३३
" "	८	७८	बाहिरसूई वग्गो	५	३६
बारससहसवेसथ	६	२३	बिगुणिय सट्ठिसहसं	८	२२७
बावणसया पणसीदि	७	४३३	नि ति वल्लुगुणजहणं	५	३२०
बावणसया बाणउदि	७	४८६	बिदियपहट्टिवसूरे	७	२०३
बावणणा तिणिसया	७	५९६	बिदियादीणं दुग्गुणा	६	७३
बावत्तरि तिसयाणि	७	३६६	बीस सहस तिलवणा	८	१९४
बावीसजुदसहसं	८	१९९	बुहसुक्कविहस्पइणो	७	१५
बावीसतिसयजोयण	८	६०	बेकोमुच्छेद्दामो	५	१६८
बावीससहसराणि	७	५८७		भ	
बावीसुत्तरहसय	७	१७५	भजिदम्मि सेद्वियग्गे	७	११
बासट्टिजुत्तइगिसय	७	१७३	भजिदूरां ज लढं	७	५६६
बासट्टि जोयणाणि	५	८०	" "	७	५८०
" "	५	१८६	भहं सक्कवोभहं	८	६२
बासट्टिमुहुत्ताणि	७	१८२	भरहेराक्कभूगव	८	४०३
बासट्टिसहसरा एव	७	४०२	भवणं भवणपुराणि	६	६
बासट्टी सेडिगया	८	८५	भवणुच्छेद्दपमाणं	८	४५६
बासीदि सहसराणि	७	३०४	भवकुमुदेक्कचंदं	५	१
" "	७	४०६	भववज्जणमोक्कसजणण	९	७२
बाहत्तरि जुददुसहस	५	५६	भावणवैतरजोइसिय	८	७२३
बाहत्तरि बादालं	५	२८५	भिगारकलसदप्पण	६	१३
बाहत्तरि सहस्ता	७	४०४	" "	८	६०६
बाहत्तरी सहस्ता	७	३०२	भिणिणंदणोलवण्णा	८	२५३
" "	८	२२०	भीमसहभीमविग्घ	६	४४
बाहिर चउराजीणं	८	६८४	भुजगा भुजंगसाली	६	३८
बाहिरपहाडु आदिम	७	२३३	भुजेदिप्पियणाभा	५	३९
" "	७	४५५	भूदा इमे सरूवा	६	४६
बाहिरपहाडु पत्ते	७	२९१	भूवाणि तेलियाणि	६	३३
बाहिरपहाडु ससिणो	७	१४२	भूदा य भूदकंता	६	५४
" "	७	१६०	भूदिदा य सरूवो	६	४७
बाहिरभागाहितो	८	६८५	भूमीए मुहं सोद्विय	७	२८३

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
भूषणसालं पविसिय	८	६०१	मूलम्मि य उवरिम्मि य	५	५६
भोगाभोगवदीपो	६	५२	मूलम्मि रुंदपरिहो	८	६२३
भोमिदाण पदण्णय	६	७६	मूलादो उवरित्तो	८	४०४
	ग		मूलोवरिम्मि भागे	५	१४३
मग्गपभाषणहुं	९	८२	भेहत्तलादो उवरि	८	११८
मज्झिमपरिसाए सुरा	८	२३२		र	
मज्झिमहेट्ठिमणामो	८	१२२	रक्खसहंदा भीमो	६	४५
भणुसुत्तर समवालो	५	१३०	रज्जुकदो गुणिदब्बं	७	५
भणुसुत्तरादु परदो	७	६१७	रज्जुकदो गुणिदब्बा	६	५
मत्तंहदिण्णगदीए	७	४५६	रज्जुए अद्धेणं	८	१३३
मत्तंहमंडलारणं	७	२७८	रत्तिपिजेह्वा ताणं	६	६५
मदमाणमायरहिदो	९	४०	रम्माए सुधम्माए	८	४१२
मदणमुइंगपवहु	७	४६	रम्मारमणीयाओ	५	७८
मदल्लमुयंगभेरी	५	११३	रयणप्पहुपुठवीए	६	७
मरगयमणिसरसत्तणू	८	२५०	रयणमयप्पल्लाना	८	२५६
मरगयवण्णा केई	७	५१	रयणं च सज्जरयणा	५	१७४
महकाओ अतिकाओ	६	३९	रविमयणे एककेकं	७	४०१
महसुक्कहंदमो तह	८	१४३	रविविवा सिग्घमदी	७	२६६
महसुक्कणामपड्ढो	८	५०५	रविमग्गे इच्छंतो	७	२४२
महसुक्कम्मि य सेठी	८	७१६	रविरिक्खगमणसंभे	७	५१४
महसुविकंदपउत्तर	८	३४७	रागादिखंगमुक्को	६	६४
महिलादो परिवारा	८	६६५	राजीणं विच्चाले	८	६३७
महुरामहुरालावा	६	५१	रायंगणबहुमज्जे	५	१६०
मंडलखेत्तापमाणं	७	४६१	" "	७	४२
मंदरगिरिमज्झादो	७	२६४	" "	८	३७०
मंदरगिरिमूलादो	५	६	रायंगणवाहिरए	७	६२
मावस्स किण्हपक्खे	७	५३७	" "	७	७६
माणुसखेत्ते ससिणो	७	६११	रायंगणभूमीए	८	३६०
माणुसलोयपमाणे	६	१५	रायंगणस्स बाहि	५	२२५
मायाक्खिज्जिदाओ	८	३६१	रायंगणस्स मज्जे	७	७१
माहिदे सेट्ठिगदा	८	१६३	राहण पुरतत्ताणं	७	२०५
मिच्छतां प्रण्णायं	६	५९	रिक्खगमणादु अहियं	७	४६८
मिच्छाद्वी वेवा	८	६१२	रिक्खाण मुहुत्तागदी	७	४७७
मुरयं पतंतपक्खी	७	४६९	रिट्ठाए पणिवीए	७	३००
मूलम्मि चउदिसासुं	६	३०	रिट्ठाणं णयरत्तला	७	२७४

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
रिद्धादी चत्वारो	८	१४१	लोयसिहराडु हेड्डा	८	६
रुक्मगवरणामदीप्रो	५	१६	लोयालोयविभागं	९	१८
रुक्मणं इद्रुपहं	७	२२७		८	
रुक्मीणं	७	२३७	वइसाहकिण्हपवखे	७	५४२
रुक्मणं कं सुगुणं	७	५३१	॥ ॥ तइए	७	५४६
रोगादिसंकमुक्को	९	६०	वइसाहपुणिमीए	७	५४८
	८		वइसाहसुक्कपवखे	७	५४४
लक्खणवेजणजुत्ता	५	२१२	वइसाहसुक्कवारसि	७	५५०
लक्खणं हीणकदे	५	२५८	वच्चंति मुद्धरोणं	७	४८२
लक्खविहीणं रुंदं	५	२९८	वज्जंतेसुं मदल	८	६०८
लक्खं छक्ख समणिं	७	१५९	वज्जं वज्जपहवखं	५	१२२
लक्खं वसप्पमाणं	८	६७	वट्ठादि सरुवाणि	६	२१
लक्खं पंचसमाणि	७	१५८	वणसंठणामजुत्ता	५	८१
लक्खाणि एक्कणवडी	८	२४०	वण्णरसगंघपासं	८	५६३
लक्खाणि वारसं चिय	८	६५	वण्णी वण्णा देवा	८	६४८
लक्खणइद्रुहंदं	५	२६३	वर भवरमज्झिमाणां	७	११०
लक्खेण भजिद अंतिम	५	२६५	वरकंचणकयसोहा	८	२८३
लक्खेण भजिदसगसग	५	२६४	वरकेसरिमारुडो	५	८६
लक्खेणुणं रुंदं	५	२४४	वरचक्कवायसुडो	५	९०
मज्जा मज्जादाहिं	८	५७७	वरपडमरायवंबुय	८	२५२
मवणप्पहुदि चउक्के	७	५९४	वरमज्झिग्रवरपत्ते	८	५७६
मवणम्मि बारसुत्तर	७	६०१	वरमज्झिमवर भोगज	५	२८९
मवणंबुरासिवास	७	४१८	वररयणदंडहुत्था	८	३६५
मवणमदिचउक्काणं	७	५६५	वरवारणमारुडो	५	८५
॥ ॥	७	५७९	वरिसे वरिसे चउविह	५	८३
मवणादीणं रुंदं	५	३४	वधणस्स अत्तणकालो	८	५६२
मवणीदे कालोदे	५	३१	वसहतुरंगसरइगज	८	२३५
मंघंता भावाणं भरहे	७	४५२	वसहाणीवादीण	८	२७१
मंतव इंदयदमिक्खण	८	३४६	वसहेसु दामयट्ठी	८	२७४
मंतंतरयणकिंकिणि	८	२५५	वंदणमालारंभा	८	४४८
मंतंतरयणमाला	६	१६	वाज पदातिसंघे	८	२७५
लोयविणिच्छयकसा	५	१२९	वायंति किंश्चिससुरा	८	५९५
॥ ॥	५	१२७	वाहणिवरजसहिमह	५	४२
लोयविणिच्छयसंघे	६	१०	वारुणिवरादि उवरिम	५	२७२
लोयविभापाहरिया	८	६५८	वालुगपुण्णगणामा	८	४४१

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
वावीण ससोय सणं	५	६३	वैतरणिवासखेत्तां	६	२
वावीणं बहुमज्जे	५	६५	व्यास तावत्कृत्वा	५	३२१
वावीण वाहिरए	५	६७		स	
वासिणिमासवारस	५	२८४	सक्कदिमिदे सोमे	८	५३७
वासहि दुमुणउदभो	५	२३५	सक्कदुग्गम्मि य वाहण	८	२७८
वासिददिमंतरेहि	५	११०	सक्कदुग्गम्मि सहस्सा	८	३०६
वासो वि माणुसुत्तर	५	११९	सक्कदुगे चत्तारो	८	३६५
विक्किरियाजणिदाहं	८	४५०	सक्कदुगे तिणिसया	८	३६१
विक्खंभायामे इणि	५	२७६	सक्कस्स मंदिरादो	८	४१०
विच्चालं मायासे	८	६३३	सक्कादो सेसेसु	८	५१७
विजयं सि बहुजयंती	५	७७	सक्कीसाणमिहाणं	८	४०१
विजयं च बहुजयंतं	५	१५६	सक्कीसाणा पढमं	८	७०८
विजयंतवहुजयंतं	८	१००	सगचउणहणवएक्का	७	५६२
" "	८	१२५	सगतियपणसगपंचा	७	३४४
विणायसिरिक्कायमाला	८	३१७	सगतीसलक्खजोमण	८	३०
विद्दु भवण्णा केई	५	२१०	सगवीसलक्खजोमण	८	४५
विप्फुरिदकिरणमंडल	५	१०९	सगवीसं कोडोमो	८	३६०
विमलपहक्खो विमलो	५	४३	सगसममज्झिम सूई	५	२७५
विमलपहविमलमज्झिम	८	८८	सगसगवट्ठिपमाणे	५	२५४
विमलो णिच्चालोका	५	१७७	सगसगवासपमासं	५	२५९
वियला वित्तिचउरक्खा	५	२८२	सच्छाई मायणाई	८	४४९
विबिहाइ णक्खणाई	५	११४	सज्जं रिसहं गंधार.	८	२५८
विसकोट्टा कामधरा	८	६४५	सट्ठिजुदं तिसयाणि	७	१२०
विहगाहिव मारुदो	५	६४	" "	७	१४३
वीणावेणुप्पमुहं	८	२५९	" "	७	२२१
वीणावेणुधुणीमो	८	६१५	सिट्ठजुदा तिसयाणि	७	२३४
वीरणयसयलउट्ठी	७	४६७	सट्ठिसहस्सजुदाणि	८	१९३
वीणहसरिससंधी	७	१८	सट्ठिसहस्ससंभहिमं	८	३८२
वीसंबुरासि उवमा	८	५०८	सट्ठी पंचसयाणि	८	२९०
वीसुत्तराणि होति इ	८	१८२	सण्णाण तवेहिजुदा	८	५७१
वीसुणवेसयाणि	७	११८	सणिं असणी होति इ	५	३०६
वेदीणं विच्चाले	८	४२५	सत्तगुणे ऊराकं	७	५३२
वेदलियजलहिदीवा	५	२४	सत्तक्खिय लक्खणिं	८	१७२
वेदलियरजदसोका	८	४००	सत्तच्छपंचचउतिय	८	३२६
वेदलिपरुक्कवचिरं	८	१३	सत्तछ मट्ठचउक्का	७	३८८

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
सत्तद्वृणवदसादिय	८	२१०	सत्तेयारसतेवीस	८	५२९
" "	८	३७३	सदभिसभरणी मद्दा	७	५०४
सत्तद्वृणवदसादिय	७	५६	" " "	७	५२०
सत्तद्वृणवदसादिय	७	५२३	" " "	७	५२५
सत्तद्वृणवदसादिय	७	३३७	सदरसहसाराणद	८	१२८
सत्तद्वृणवदसादिय	७	३६५	सवलसरिता कुरा	८	५७६
सत्तद्वृणवदसादिय	७	३२५	समचउरसंठिदाणं	६	६३
सत्तद्वृणवदसादिय	८	४१	समदमजमणियम	८	५७०
सत्तद्वृणवदसादिय	७	१८७	समयजुद दोष्णिपल्लं	५	२६२
सत्तद्वृणवदसादिय	७	१५१	समयजुदपल्लमेवकं	५	२६१
सत्तद्वृणवदसादिय	७	४०५	समयजुदपुव्वकोही	५	२६०
" "	८	३३	सम्मत्तगहणहेहू	५	४
सत्तद्वृणवदसादिय	७	३०३	समत्तणण मज्जव	८	५८२
सत्तद्वृणवदसादिय	८	३१	सम्महंसणसुद्धिमुज्जलपरं	८	७२५
सत्तद्वृणवदसादिय	८	२३०	सम्माइट्ठी देवा	८	६११
सत्तद्वृणवदसादिय	७	२५८	सम्मेलिय भासट्ठि	७	१८५
सत्तद्वृणवदसादिय	७	५१०	सयणाणि मासणाणि	५	२१३
सत्तद्वृणवदसादिय	७	२८७	सयलिदमंदिराणं	८	४०८
सत्तद्वृणवदसादिय	८	७७	सयलिदवल्लभाणं	८	३१६
सत्तद्वृणवदसादिय	८	२०	सयलिदाण पडिदा	७	६१
" "	८	८०	सयवंतराय चपय	५	१०७
सत्तद्वृणवदसादिय	५	२२४	सवणादि महुभाणि	७	४८०
सत्तद्वृणवदसादिय	८	५०१	सव्वट्ठसिद्धिदय	८	६७५
सत्तद्वृणवदसादिय	८	२५४	सव्वट्ठसिद्धिणाभे	८	५१२
सत्तद्वृणवदसादिय	८	३३०	" "	८	१२६
सत्तद्वृणवदसादिय	८	२७३	सव्वट्ठसिद्धिवासी	८	६६६
सत्तद्वृणवदसादिय	८	१६२	सव्वपरिहीसु बाहिर	७	४५४
सत्तद्वृणवदसादिय	७	२६५	सव्वपरिहीसु रत्ति	७	३६७
" "	८	६५४	सव्ववर्धंत रमुवस	५	१६६
सत्तद्वृणवदसादिय	८	४४	सव्वस्स तस्स कंदो	५	१४२
सत्तद्वृणवदसादिय	८	१७०	सव्वं च लोयणांसि	८	७१०
सत्तद्वृणवदसादिय	७	३०५	सव्वाण इंदयाणं	८	८२
सत्तद्वृणवदसादिय	७	४०७	सव्वाण दिग्गिदाणं	८	५२०
			सव्वाण सुग्गिदाणं	८	२६४

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
सन्वाणि यणीयाणि	८	२६६	संमुच्छिन्नबीजारां	५	२६७
" "	८	२७०	संसारणकमहारां	६	७१
सन्वासुं परिहीसुं	७	३६३	संसारवारिरासी	८	६३८
सन्वे कुण्ति मेहं	७	६१६	सामाणियतणुरवला	७	७८
सन्वे बीवसमुदा	५	८	सामाणियदेवीप्रो	८	३२४
सन्वे भोगभुवारां	५	३००	सायकरारणचुद	८	१६
सन्वे लोयंतसुरा	८	६६४	सारस्वदणामां	८	६४३
सन्वे वि बाहिणीसा	५	१०	सारस्वदरिद्राणं	८	६४७
सन्वे ससिणो सूर	७	६१५	सावणकिण्हे तेरसि	७	५३४
सन्वेसि हंदाणं	८	५४५	सावणकिण्हे सत्तमि	७	५३५
सन्वेसु दिग्गिदाणं	८	२६२	सासणमिस्स विहोणा	५	३०४
सन्वेसु मंदिरेसुं	८	४२१	साहारणपत्तेय	५	२८१
सन्वेसु वि भोगभुवे	५	३०५	सिद्धाण णिवासिद्धिदी	६	२
सन्वेसुं इवेसुं	८	३२५	सिरिदेवी सुद्धेवी	७	४८
सन्वेसुं णयरेसुं	८	४३९	सिरिपहुमिरिचरणामा	५	४१
ससहरणयरतलादी	७	२०१	त्रिगुणवि सारिणी	७	४५१
ससहरपहसूचिवड्ढी	७	१४५	सिहालकणिदुदुववा	७	१९
ससिणो पण्णरसाणं	७	४६१	सिहासणमारुढा	८	३७६
ससिविबस्य दिशुं पडि	७	२११	सिहासणमारुढी	५	२१५
ससिसंज्ञाएविहत्तं	७	५५६	सिहासणाणसोहा	८	३७८
संज्ञातीदयिभत्ते	६	१००	सीदीजुवमेवकसयं	७	२१८
संगुणिदेहि संसेज्ज	७	३४	सीदी सत्तसगाणि	७	१६७
संठियणमा सिरिवच्छ	८	६१	सीमंकरावराजिय	७	२१
सत्ते जोहीणाणे	८	६१७	सीहकरिमयरसिहिसुक	८	२१२
संपहि कालवसेरां	७	३२	सीहासणादिसिहदा	६	१५
संसेज्जजोयणाणि	८	४३६	सुवकाय मग्गिभमंसा	८	६६४
" "	८	६२४	सुण्णं चउठाणेवका	७	५६३
" "	८	६२७	सुद्धखरभुजसाणं	५	२८३
" "	८	६२६	सुद्धरसरुवसंघ	७	५५
संसेज्ज सवं वरिसा	८	५४६	सुद्धस्सामारवस्सदेवा	६	५७
संसेज्जा उवसणी	५	३१५	सुपदिण्णा जसघरया	५	१५२
संसेज्जा संसेज्जं	८	१११	सुमणयरे घवरणं	७	४४२
संसेज्जो विक्खंभो	८	१८७	सुमणसणाभे उगतीस	८	५११
संजोमविप्पयोमे	८	६७२	सुमणस सोमणसाए	८	१०६
			सुरलोकणिवासिद्धिदि	८	२

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
सुरसमिदीबम्हाइं	८	१५	सोलससहस्रसचउसय	७	१७०
सूरपहसूइवड्डी	७	२५७	सोलससहस्रसणवसय	७	१७२
सूबरहरिणीमहिता	८	४५४	सोलससहस्र पणसय	८	२८५
सूराखो णवक्षत्तं	७	५१६	सोलससहस्रमेत्ता	७	६३
सेढीणं विच्चाले	८	१६८	" "	७	८०
सेढीबड्ढे सव्वे	८	१०८	सोलससहस्र सगंसय	७	१७१
सेणाण पुरवणारां	८	२१७	सोहम्मकण्णामा	८	१३८
सेणामहत्तराणं	५	२२२	सोहम्मकण्णपडमिदयम्मि	८	५१५
सेसम्मि वड्ढजयंत	५	२३६	सोहम्महुगविमाणा	८	२०६
सेसामो मडिक्कमाओ	७	४७३	सोहम्मपपहुदीणं	८	६६५
सेसामो कण्णणाओ	७	५७४	सोहम्मम्मि विमाणा	८	३३६
" "	७	५६८	सोहम्मादिच्चउक्के	८	४४४
" "	७	६०३	" "	८	१५८
" "	७	६०८	सोहम्मादिमु अट्टसु	८	४५१
" "	७	१०३	सोहम्मादी अच्चुद	८	५८१
" "	७	११३	सोहम्मादी देवा	८	७०६
सेसाणं तु गहाणं	७	६२०	सोहम्मिबदिगिदे	८	५५८
सेसाणं वीवाणं	५	४८	सोहम्मिदादीणं	८	३५६
सेसाणं मग्गाणं	७	२५६	सोहम्मिदो णियमा	८	७२२
सेसाणं कीहीणं	७	१६२	सोहम्मीसाणदुगे	८	७१४
सेसा य एक्कसट्ठी	८	१०	सोहम्मीसाणसणकुमार	८	१२०
सेसा वंतरवेवा	६	६१	सोहम्मीसाणाणं	८	१३१
सोवामिणि सि कणया	५	१६१	" "	८	२३
सोदूण भेरिसदं	८	५६४	सोहम्मीसाणेसुं	८	३३३
सोमजमा समरिद्धी	८	३०३	" "	८	३३८
" "	८	३०४	सोहम्मे समुहुत्ता	८	५४७
सोमं सव्वदम्हा	८	३०१	सोहम्मो ईसाणो	८	१२७
सोमादिदि गिदाणं	८	२९३			
सोलसचोदसबारस	८	२३४	हत्थुपलदीवाणं	७	४६८
सोलसजोयणलक्खा	८	५६	हरिदालसिधुदीवा	५	२६
सोलसबिदिए तदिए	५	१६४	हंसम्मि चंडववले	५	८८
सोलसभोम्हिदाणं	६	५०	हाहाहूणारद	६	४०
सोलससहस्र इगिसय	८	५४	हिमुलपयोधिदीवा	५	२५

गाथा	महाधिकार	गाथा सं०	गाथा	महाधिकार	गाथा सं०
हेट्ठिममिच्छम उवरिम	८	१२७	होदि हु गळम विमुधं	७	५४१
” ”	८	१२८	होदि हु समं पहक्खं	८	३००
” ”	८	७१८	होति भवउक्कादिसु णव	७	४४५
हेट्ठिम मज्जे उवरिम	८	११६	होति भसंखेज्जाणी	८	७१३
हेट्ठिमहेट्ठिमपमुहा	८	१४७	होति परिवारतारा	७	४७१
होदि भसंखेज्जाणि	८	१०७	होति भमोघं सत्थिय	५	१५३
होदि गिरी उवक्खरो	५	१६८	होति हु ईसाणादिसु	५	१७६
होदि सहससारुत्तर	८	३४८	होति हु ताणि बणाणि	५	२३०

